श्रीविजयधर्मसूरिग्रन्थमाला पु० ६५

इन्दोर-व्याख्यानमाला

व्याख्यानकार

मुनिराज विद्याविजयजी

वीर स० २४७७ धर्म स० २९ वि० स २००८

प्रकाशक
सत्यनारायण पंड्या
श्री विजयधर्म सूरिग्रन्थमाला
शिवपुरी—मध्यभारत

निवेदन

मुनिराज श्री विद्याविजयजी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। उनकी 'वक्तृत्वकला' ने जहा जहा वे गये, हजारों लाखों जनता को मत्रमुग्ध किया है। कई वर्षों से जनता की यह माग थी कि, उनके व्याख्यानों का सग्रह किया जाय। कराची में उनके २१ व्याख्यान, जो वहा के गुजराती, सिंधी और अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशित हुये थे, उनका सग्रह गुजराती और अंग्रेजी में छपा था और थोडे ही समय में उसकी २–३ आवृत्तिया निकल चुकी थी। अब तो वे भी नहीं मिलती हैं। हिन्दी भाषाभाषियों के लिये इनके व्याख्यान सग्रह की वर्षों से माँग थी। सद्भाग्य से इन्दोर मे, जैनधर्मदिवाकर, दानवीर, रावबहादुर शेठ कन्हैयालालजी भडारी के प्रयत्न से, मुनिराजश्री के व्याख्यानों का सग्रह करने का प्रयत्न सफल हुआ और यही कारण है कि आज हम एक बृहत् ग्रन्थ के स्वरूप में ' इन्दोर व्याख्यानमाला ' के नाम से जनता के करकमलों म सादर करने को समर्थ हुवे हैं।

गुजरात के प्रेसो में हिन्दी का काम बहुत कम होता है, होता है तो जितनी चाहिये उतनी सफाई और शुद्धता नहीं रहती हैं, यह स्वाभाविक ही है। और यही कारण है कि इस पुस्तक में अत्यधिक अशुद्धिया रह गयीं है। यद्यपि दो बार प्रूफ शिवपुरी भगवाकर महाराजश्री स्वय देखते थे, किन्तु फिर भी प्रेस के भूतों की अज्ञानता और असावधानी से अशुद्धिया काफी रह गयीं है, इसका हमे अत्यत दुख है। एक पेज से दूसरे का और एक फार्म से दूसरे फार्म का सम्बन्ध मिलाने का कार्य भी छापते समय न होने से एकाद स्थान पर सम्बन्ध भी तूट गया है। इसके अतिरिक्त १३६ पृष्ठ में तीसरे चौथे गुण का वर्णन अप्रासगिक प्रविष्ट होगया है। इस प्रकार जो छोटी मोटी गल्तियां काफी रह गयीं है, इसके लिये हम पाठकों के क्षमाप्रार्थी हैं।

'इन्दोर व्याख्यानमाला' छपने के प्रारम्भ से ही, जनता में उसके प्राप्त करने की भारी उत्सुकता हमें मालूम हुई थी। क्योंकि एक साधारण विज्ञापन के ऊपर से कइ महानुभावोंने इसके ग्राहक में अपना नाम लिखवाया था, इतना ही नहीं, कईयों ने आधा मूल्य पेशगी भी भेजदिया था। किन्तु पुस्तक के प्रकाशित होने में विलम्ब होता ही गया, इसके कारण जिनकी पेशगी आइ थी, उनको वह रकम वापिस भेजनी ही पडी थी।

आज बहुत लम्बे समय के विघ्न, कठिनाइयों और उलझनों के बाद भी यह महान ग्रन्थ जनता के समक्ष उपस्थित करने को हम भाग्यशाली हुए है।

'हाथ कंगन को आरसी की जरूरत नहीं रहती'। मुनिराज श्री विद्याविजयजी की अद्भुत वक्तृत्व कला, असाधारण तार्किक शक्ति, शास्त्रीय गहरा ज्ञान, और प्रत्येक विषय में उनका अनुभव जनता में विख्यात है। उन्होंने इस 'व्याख्यानमाला' में अपने ज्ञान का निचोड वाणी द्वारा रख दिया है। उन का लाभ हिन्दुस्थान का प्रत्येक घर, प्रत्येक मानव उठावेगा, ऐसी हमें आशा है।

जैसा कि महाराजश्री ने अपने 'प्राक्कथन' में कहा है, ६२ व्याख्यानों में भी उनकी संकलित 'व्याख्यानमाला' अधूरी ही रह गयी है। और इसके लिये, हम भी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि, मुनिराजश्री को ऐसी शारीरिक शक्ति दें कि, किसी सुअवसर पर किसी अच्छे स्थान में, अधूरी व्याख्यानमाला पूरी कर के, जनता के ऊपर महान उपकार करें। और हमें इसका दूसरा भाग जल्दी ही प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हो।

सत्यनारायण पंड्या
मंत्री

श्री विजयधर्मसूरि ग्रन्थमाला
शिवपुरी (मध्यभारत)
दिनांक १–७–५१.
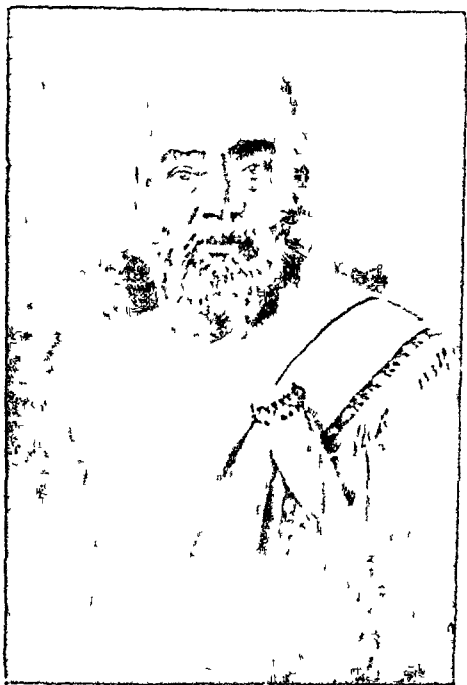
नवयुग प्रवर्तक शास्त्रविशारद जैनाचार्य
श्री विजयधर्मसूरि

प्राक्-कथन

हमारे जैन साधुओं की दैनिक क्रियाओ मे उपदेश-व्याख्यान का भी प्रधान स्थान रहा है। साधु किसी भी छोटे बड़े नगर मे जाँय, गृहस्थो के घरों से किसी को भी कष्ट न हो, इस नियम को लक्ष मे रख कर, भिक्षावृत्ति से निर्वाह करें। दिनभर अपनी धार्मिक क्रियायें करें और पठन-पाठनादि स्वाध्याय करें। किन्तु उसके साथ ही साथ जनता को उपदेश अवश्य करे। विशेष कर चतुर्मास में' वर्षा ऋतु में। जब साधु एक स्थान मे चतुर्मास रहते है, तब उन्हें प्रतिदिन प्रवचन करना अनिवार्य हो जाता है। गृहस्थ लोग भी चतुर्मास के दिनों मे साधुओं की उपस्थिति का लाभ उठाने मे तत्पर रहते है। प्रतिदिन प्रवचन सुनते है और यथाशक्ति तपस्या, धर्मक्रिया एव दानादि करके अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे साधुओ के उपदेश के दो तरीके पाये जाते हैः कुछ साधु प्राचीन शास्त्रों को सुनाते है, जिनमे इतना गहन तात्त्विक और वैज्ञानिक विषय होता है, जिसको बहुत कम श्रोता समझ पाते हैं। और परिणाम म गृहस्थों के जीवन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पडता। अधिकतर प्रतिवर्ष वह की वही बातें एक कान से घुसकर दूसरे से निकलती है, परिणाम यह आता है कि गृहस्थ लोग अपने गृहस्थ धर्म को समझने से भी वंचित रहते है।

दूसरा मार्ग यह है कि समय, स्थान और श्रोताओ की पात्रता को देख कर प्रवचन होते हैं। इसका काफी लाभ श्रोताओं को मिलता है। उसमे दिलचस्पी बढती है, जिज्ञासावृत्ति उत्पन्न होती है और जब सुनते हैं, समझते हैं और उनके जीवन को उपयोगी बाते होती हैं, इसलिये वे किसी अंश मे आचरण मे भी लाते हैं।

साधु होने के बाद, कुछ वर्षों तक गुरुदेव की सेवा में अध्ययन करने के पश्चात्

मुझे भी व्याख्यान–प्रवचन करने का एक व्यसन सा पड गया। यद्यपि जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, प्रतिदिन व्याख्यान करना यह हमारा दैनिक कार्य होता ही है, किन्तु मैं अपने लिये 'व्यसन' इसलिये कहता हूं कि, मुझे इस क्रिया को विशेष रूप से मेरे जीवन में लाने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। 'वक्तृत्व कला' यह भी एक जीवन की कला है, और यह शक्ति वास्तविक रूप में यदि जीवन में आजाय, तो विशेष लाभदायक हो सकती है, ऐसा मेरा विश्वास हुआ और इसका केवल साधु के कर्तव्यरूप ही नहीं, किन्तु विशेषतायुक्त बनाने का प्रयत्न किया और गुरुदेव की कृपा से उसमें मुझे बहुत कुछ अंशो में सफलता मिली।

जैन साधु, प्रायः उपाश्रय (जैन साधुओं के ठहरने का स्थान) की चार दीवार के बीच एक उच्च सिंहासन पर बैठ कर केवल जैनों के समुदाय में प्रवचन करने की प्रणाली निभाते आये थे। आज से करीब ५० वर्ष पूर्व हमारे गुरुदेव जगद्विख्यात शास्त्रविशारद, जैनाचार्य स्वर्गस्थ श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजने इस प्रणाली को तोडकर, किसी भी स्थान में, सार्वजनिक उपदेश देने की प्रणाली आरम्भ की। इस नूतन प्रणाली से जैन समाज में भूकम्प हुआ और जैसा कि हर किसी नवीन प्रणाली को प्रारंभ करनेवाले को रूढिवादियों के द्वारा जो कुछ सहन करना पडता है, वह सब सहन करना पडा। किन्तु समयज्ञ महापुरुषों के लिये ऐसे विरोध या कष्ट कोई प्रभावशाली नहीं होता। वे तो भविष्य को प्रत्यक्ष देखते हैं, और मनमें समझते हैं कि समय आने पर, यह विरोधीदल आप ही आप इस प्रणाली को स्वीकार करेगा। यही हुआ। वे ही विरोधी लोग उनका अनुकरण कर रहे हैं, और शक्ति हो या न हो, सार्वजनिक व्याख्यान देते हैं या न देते हुए भी वर्तमान पत्रों में 'अमुक महाराजने एक विराट सभा में जाहिर व्याख्यान दिया, जिस में जैन जैनेतर सभीने भाग लिया" इत्यादि बातें छपवाकर के 'स्वान्तः सुखाय' का अनुभव करतें हैं। बल्कि कोई कोई तो 'प्रसिद्ध वक्ता' 'प्रखर वक्ता' 'व्याख्यानवाचस्पति' इत्यादि विशेषणों को लगाकर प्रसिद्धि की क्षुधा को तृप्त करते हैं। कुछ भी हो, सार्वजनिक व्याख्यानों की प्रणालिका के 'विरोधी' मिटकर, अब वे उसके 'पूजारी' बन गये हैं, यही समय का प्रभाव है और आनन्द का विषय है।

प्रतिवर्ष चतुर्मास में इसी प्रकार के सार्वजनिक व्याख्यानों की प्रणाली का मेरे जीवन की एक अहोभाग्य की वस्तु बन गयी है। और मैं अपनी शक्ति का भरसक प्रयत्न 'स्वान्तः सुखायः' और 'बहुजन हिताय' करता आया हूं।

शिवपुरी को छोडकर १३ वर्ष तक मालवा, गुजरात, मेवाड, मारवाड, सिन्ध, कच्छ, काठियावाड और गुजरात में भ्रमणकर जब मैं पुनः शिवपुरी आ रहा था, तो उज्जैन में इन्दोर के जैन नेताओंने मुझे पकडा और इन्दोर चतुर्मास करने के लिये आग्रह किया। हालाकि मुझे शिवपुरी जल्दी पहुचना था, किन्तु इन्दोर के महानुभावो की श्रद्धा युक्त विनति को मे अस्वीकार न कर सका।

मुझे मालुम था कि, इन्दोर आज कल बम्बई का बच्चा है। मालवे का प्रधान नगर है। आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, सामाजिक सभी प्रवृत्तियों मे इन्दोर का अग्रस्थान है। किन्तु इसके साथ ही साथ मुझे यह भी मालुम था कि, इन्दोर के जैनो मे साम्प्रदायिक का विष भी खूब भरा है। वहा तपा गच्छ, खरतर गच्छ, अचल गच्छ आदि कई गच्छो के पूजारी है, वहा तीन थुई और चार थुई के पक्षपाती हैं, वहां स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी के जुदे जुदे अड्डे जमे हुवे हैं, वहां तपागच्छ मे भी कोई किसी साधु का रागी है तो कोई किसी साधु का रागी। इस पर दृष्टिराग का भी विष फैला हुआ है। वहा जातीयता की दृष्टि से विसा, दसा और पाचा तथा अढिया के प्रपच खूब चल रहे है; यहा तक कि अमुक अमुक गृहस्थों के साथ धार्मिक भोजनो में भी एक साथ बैठने का परहेज रखा जाता है।

यह सारी बातें मेरे विचारो और मेरे सिद्धान्तो से बिल्कुल विपरीत थी। मैं तो जैन साधु होते हुवे, 'मानव धर्म' का पूजारी रहा हू। जनता मे समानता और वास्तविक धार्मिकता फैलाने का आदी रहा हू। उपर्युक्त बाते और मेरे इन सिद्धान्तों का मेल किस प्रकार मिलेगा? साथ ही साथ मैं यह भी मानता आया हू कि, सामाजिक और धार्मिक विषमतायें समय पकने के पूर्व सर्वथा मीट नहीं सकती। कुछ समय के लिए महाराज को राजी रखने को हा, हा कर लेते हैं, पर हृदय मे जब तक शुद्धि नहीं होती, तब तक वास्तविक परिणाम कुछ नहीं आता। इसलिये जिसमें मुझे आत्मविश्वास नही, उसके लिये प्रयत्न करना समय को बर्बाद करना मैं समझता हूं।

इन सारी बातों का खूब विचार करके मुझे वहा किस प्रकारकी व्याख्यान प्रणाली रखना चाहिये, इसका मन से निर्णय करके मैंने उन महानुभावों की विनति को स्वीकार किया और इन्दोर गया।

मुझे अनुभव था कि, गृहस्थ लोग चतुर्मास में व्याख्यानो में ही अवसर अपने झगडों की बातें निकालते हैं और 'तू, तू मैं, मैं' कर, चतुर्मास खत्म करते

हैं। साधु इस लोभ से कि, मेरे को झगडे निपटाने का यश मिलेगा, बीच में पड जाते हैं। किन्तु जैसा कि मैं ऊपर कह चूका हूं, गृहस्थ अपने मतलब के सिवाय और कुछ नहीं करते।

इस लिये मेरे पहिले दिन के व्याख्यान में ही मैंने तीन बातों की सूचना श्रोताओं को दे दी: (१) व्याख्यान के समय या हमारे समक्ष जातीय झगडे की कोई बात न निकालें (२) चालू व्याख्यान में कोई किसी प्रकार का प्रश्न न करे। जिज्ञासु के लिये व्याख्यान के पश्चात् समय दिया जावेगा। (३) प्रतिदिन पूरे ६० मिनिट का व्याख्यान होगा। ठीक समय पर प्रारम्भ होगा और ६० मिनिट समाप्त होते ही व्याख्यान बन्द कर दिया जावेगा। छोटे बडे किसी भी गृहस्थ की राह देख कर व्याख्यान में विलम्ब नहीं किया जावेगा।

मुझे इस बात की खुशी हुई कि, जब तक मेरी व्याख्यानमाला चली, बराबर इन नियमों का पालन हुआ। और प्रतिदिन सेंकडों नहीं, हजारों स्त्री पुरुषोंने लाभ लिया।

मुझे मालूम था कि, इन्दोर की जनता में बडे बडे श्रीमंत, मीलमालिक, नौकर लोग, व्यापारी, देशनेता, कोलेज प्रोफेसर, विद्यार्थी, राजनीतिज्ञ वगैरह सभी प्रकार के लोग मेरे व्याख्यान में आयेगे। अतः मैंने एक ऐसा विषय पसन्द किया जो लम्बे समय तक चलता रहे। मैंने विषय का नाम रखा 'जीवनविकास और उसके साधन'। किसी भी विषय के ऊपर क्या कहना? कैसे कहना? यह वक्ता के आधीन की बात है। और विषय कोई भी रहते हुवे, श्रोताओ की पात्रता का विचार सबसे पहिले रखा जाना चाहिए। यदि यह बात न देखी जाय, तो वक्ता कभी सफल नहीं हो सकता है।

मैंने मुख्य विषय को अनुलक्ष करके विषय की संकलना इस प्रकार निश्चित की:

१. जीवन २. जीवन का विकास और साधन

साधनों में, साधनों के तीन भेद किये

१. व्यावहारिक २. धार्मिक ३. आध्यात्मिक

१. व्यावहारिक साधनों में गृहस्थ धर्म, और धर्म के योग्य होने के गुण २. धार्मिक साधनों में सम्यक्त्व, बारह व्रत और पंच महाव्रत ३. आध्यात्मिक साधनों में गुणश्रेणी, और मोक्षमार्ग।

इस प्रकार विषयों की अनुक्रमणिका का आधार लेकर, मौखिक व्याख्यानमाला

प्रारम्भ की । क्योंकि म प्राय व्याख्यान के समय कोई ग्रन्थ हाथ में नहीं रखता । नोट भी व्याख्यान के पहिले ही विचार लेता हु । व्याख्यान में भी, जैसा कि अक्सर हुआ करता हैं, कोइ 'जी हा,' 'जी जी' आदि गृहस्थ लोग बीच में बोलते हे, वह मुझे कतई पसन्द नहीं । मेरा बोलना और श्रोताओं का सुनना, यही मात्र क्रिया रहती है । बिना किसी अपवाद के मेरी व्याख्यानमाला ठीक ५२ दिन चली ।

यद्यपि कराची, पोरबन्दर, अहमदाबाद आदि कई स्थानो मे मेरी व्याख्यानमाला चल चुकी थी, किन्तु व्याख्यानों मे निकलनेवाली मेरी भावनाओ का अथवा यो कहना चाहिये कि, इन व्याख्यानों को सग्रहित करने का, जो प्रसग नहीं आया था, वह इन्दोर मे प्राप्त हुआ । इन्दोर के प्रसिद्ध शिक्षाप्रेमी, उदार नागरिक, मीलमालिक, दानवीर सेठ कन्हैयालालजी भडारीने अपनी तरफ से एक शार्टहेन्ड (शीघ्र लिपि) लिखनेवाले लेखक भाई प्रेमराजजी की नियुक्ति प्रारम्भ से ही की थी । वे भाई मेरे प्रत्येक दिन के व्याख्यानों को 'शीघ्र लिपि' मे लिपिबद्ध कर लेते थे । बाद मे उसको शुद्ध करके मुझे दिखा देत थे । यही कारण है कि आज मेरे उन विचारो के सग्रह को हमारी 'ग्रन्थमाला' जनता के समक्ष रखने का सौभाग्य प्राप्त कर रही है ।

'व्याख्यानमाला' यह कोई 'निबन्धमाला' नहीं है । निबन्ध लेखक सोच विचार करके आगे पीछे लिखी हुई बातो को ध्यानमे रखकर सकल्पपूर्वक लिख सकता है । व्याख्यान, व्याख्यान होत है । और वह भी मौखिक व्याख्यान होने के कारण, इसमे पुनरावृत्ति आना स्वाभाविक है । उदाहरण के तौर पर एक बात, एक कथा, एक श्लोक या अन्य कोई पद्य किसी विषय की पुष्टि मे कहा गया हो, वही बात, वही श्लोक, वही कथा और वही पद्य अन्य किसी विषय की पुष्टि में यदि उपयोगी मालूम होता है, तो धाराप्रवाही वक्ता बिना किसी विचार के अवश्य उसका उपयोग करेगा । यह बात इस व्याख्यानमाला मे भी पाठक अवश्य देखेंगे । राजनीति पर, देशनेताओं के व्याख्यान सुननेवालो को अनुभव होगा कि, प्रायः वे अमुक निश्चित बातें भिन्न भिन्न स्थानों मे कहा करते हे । इसका कारण यही है कि, जिस विषय की पुष्टि मे जो कुछ कहना आवश्यक होता हैं, वह वक्ता को कहना ही पडता है ।

एक और बात मेरी 'व्याख्यानमाला' में पाठक देखेंगे । मैं यह मानता हू कि किसी भी विषय की पुष्टि में 'कथासाहित्य' अत्यन्त लाभदायक होता है । विषय करुण

रस का हो, या हास्य रस का, वीर रस का हो, चाहे वैराग्य रस का; उन उन रस की पुष्टि के लिये प्रसंगोपात्त संक्षेप में कही जानेवाली कथायें श्रोताओं के दिल पर तात्कालिक अद्भुत असर करती हैं और यही कारण है कि मेरी इस व्याख्यानमाला में समय समय पर हास्य, वीर, करुणा, वैराग्य आदि रसों की पुष्टि करनेवाली कथाएं विशेष-रूप से श्रोता देखेंगे।

कुछ लोगों का मत है कि ऐसी कथायें 'लोकभोग्य' होती हैं, 'विद्वद्भोग्य' नहीं। किन्तु मेरा ४०, ४५ वर्ष का अनुभव है कि, कैसा भी विद्वान क्यों न हो, गम्भीर विषयों की चर्चामें ही रात दिन आनन्द माननेवाला विद्वान ही क्यों न हो, प्रसंगोचित कही हुई कथा के ऊपर मुग्ध हुवे विना नहीं रहेगा। हां, वक्ता को कथा कहने को आनी चाहिए। कथा कहने में वक्ता को इतनी बातें ध्यान में रखने की होती है—

१. कथा विषय के साथ ठीक सम्बन्ध रखती है या नहीं ?

२. कथा में निरर्थक बातें तो नही आतीं ?

३. वक्ता को कथा कहनेका ढंग आता है या नहीं ! अर्थात जिस समय जिस प्रकार का टोन देनेका हो, उस प्रकार की कोमलता, उग्रता आदि रस की पुष्टि जमाने को आना चाहिये।

४. कथा का अन्त किस प्रकार के वातावरण में लाना चाहिए।

लम्बी कथा को, उसके समस्त भागों को कायम रखते हुवे, सक्षिप्त करके कहना तथा छोटी सी बात को रस की पुष्टिपूर्वक विस्तृत करना—इत्यादि बातों की कुशलता यदि वक्ता रखता है, तो विद्वान् या आम जनता मुग्ध हुवे विना नहीं रह सकती।

मेरी इस 'व्याख्यानमाला' में कुल ६२ व्याख्यान दिये गये हैं। व्याख्यानमाला का अन्त देखनेवालों को ज्ञात होगा कि, विषय काफी अधूरा रह गया है। साधनों के भेदो में व्यावहारिक और धार्मिक भेदों का विवेचन हो चुका है। तीसरा आध्यात्मिक साधन लगभग पूरा का पूरा अधुरा रह गया है।

इतने व्याख्यान होने के पश्चात् पर्यूषणा पर्व आया। इसके बाद तत्काल गुरुदेव की जयन्ति का ८–१० दिन का कार्यक्रम रहा। तत्पश्चात् मेरी आंख का ऑपरेशन हुआ। उस में एक लम्बा समय चला गया।

इन अनिवार्य कारणों के उपस्थित होने से, यह 'व्याख्यानमाला' अधूरी रही।

मेरी जो योजना और कल्पना थी कि, पूरे १०० व्याख्यान इस विषय पर होंगे, वह अधुरी ही रह गयी।

गुरुदेव की कृपा हुई तो यह अधूरी व्याख्यानमाला आगे किसी समय किसी भी स्थान मे पूरी करने का प्रयत्न करुगा।

यद्यपि मेरे इन व्याख्याना का लाभ प्रत्यक्ष रूप से इन्दोर की जनता ने लिया था। किन्तु मे इन्दोर के जैनधर्मदिवाकर, रायबहादुर, दानवीर सेठ कन्हैयालालजी भडारी को अनेक धन्यवाद देता हु कि, जिन्होंने मेरे इन विचारों का सग्रह सग्रहित करवाया था। जिसके कारण देश की हजारो जनता इसका लाभ उठाने मे भाग्यशाली होगी। मेरी इन विचारधाराओ को पढनेवाले हजारो व्यक्तियो में से किसी भी आत्मा को कुछ ही अश में लाभ पहुचेगा, तो मेरा और धर्मवीर भडारीजी महोदय का परिश्रम सफल हुआ हम समझेगे।

जिन गुरुदेव की कृपा से निर्विघ्नतापूर्वक मेरे इन ६२ व्याख्यानो की "व्याख्यान-माला' चल सकी, और उसका लाभ हजारो जनता ने लिया, उसी प्रकार फिर से गुरुदेव ऐसा समय दें कि, मेरी इस अधुरी व्याख्यानमाला को पूरी करसकु, ऐसी प्रार्थना के साथ मै इस मेरे वक्तव्य को समाप्त करता हु।

श्रीवीरतत्त्व प्रकाशक मडल
शिवपुरी (मध्यभारत)
१-७-५१, धर्म स. २९

—विद्याविजय

मुनिराज विद्याविजयजी

इन्दौर व्याख्यानमाला

भाइओ और बहनों !

हजारों मील की मुसाफरी करते हुए सिन्ध और कच्छ जैसे हमारे जैन साधुओं से लगभग अपरिचित देशो में विचरण कर के, आज सोलह–सत्तरह वर्षों के बाद मैं इन्दोर आया हू। आप लोगोंने मेरा जो स्वागत किया, भक्ति दिखलाई, उसके लिये मैं आप को अतःकरण से आशीर्वाद देता हू।

समय बहुत हो गया है, इसलिये सक्षेप मे मैं यही कहूगा कि–दुनिया के लोगों से–फिर वह चाहे कोई बडे से बडा सत्ताधीश हो, राजा हो, रक हो, गरीब हो या श्रीमान् हो, सब से यही पूछता हू कि ' आप लोग क्या चाहते है ? ' सब यही जवाब देंगे कि–" सुख चाहते है। "

सुखी कोन है ?—

हरेक मनुष्य सुख के अतिरिक्त दूसरी कोई अभिलाषा नहीं रखता और जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सुख को ही प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा रहता है, परन्तु अभी तक मुझे कोई राजा या करोडाधिपति श्रीमत भी ऐसा नहीं मिला, जो दावे के साथ कह सकता हो कि–" मै सच्चा सुखी हू। "

इन्दोर में अभी तक किसी को नहीं पूछा, क्योंकि अभी तो आ ही रहा हू। मुझे मालूम नहीं, इन्दोर में कोई दावे के साथ यह कहनेवाला मिलेगा या नहीं कि " मैं सर्वथा सुखी हू। " मेरी राय से तो सारा ससार ही दुःखी है:–

समारात्मा सदा दु खी जन्म–मरण–शोकभाक् ।
चतुरशीतिलक्षासु योनिषु भ्राम्यते सदा ॥

८४ लक्ष जीवयोनि में परिभ्रमण करनेवाला जीव ससारयात्रा में जन्म, मरण और

शोक के दुःखों को अवश्य भोगता है। सुख के लिये इतने प्रयत्न करते हुए भी हम सुखी नहीं है।

इसका कारण मुझे मालूम होता है और वह है-निर्भयता का अभाव। जब तक मनुष्य के दिल में किसी प्रकार का भय रहता है, तब तक उसको प्रतिसमय खटका ही रहता है-चिन्ता ही रहती है और जहां चिंता है, वहां सुख कहां? हां, सुखी वही हो सकता है, जो निर्भय है। और निर्भयी वही हो सकता है जो धर्मशीलतादि गुणों को रखता हो।

शास्त्रकारोंने कहा है:—

> यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी।
> स्वदारतुष्टः परदारवर्जी न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित्॥

अर्थात्-जो धर्मशील है, मान और रोष अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतनेवाला है, विद्यावान् होने पर भी विनीत हैं, दूसरों को दुःख नहीं देता है, स्वपत्नी में सन्तुष्ट है और परस्त्री का त्यागी है, वही मनुष्य सच्चा निर्भयी है और निर्भयी ही सच्चा सुखी है।

कवि उमरखय्यामने कई कविताएं बनाई हैं। एक कविता में उसने कहा है:—

> प्राण जावें देह तज के, आज हो या भले हो कल।
> न मुझ को दोष दो कोई कि, था डरपोक मरने का॥

अर्थात्-मेरी मृत्यु अगर कल होने की हो तो भले ही आज हो जाय और आज होती हो तो अभी हो जावे-मुझे मृत्यु का भय नही-प्राण जाने का डर नहीं; पर इतना जरूर करना कि कभी मेरे पर ऐसा दोषारोपण नहीं करना कि-मैं मृत्यु से डरता हूं। "ऐसा क्यों कहते हो?" कोई पूछ बैठा।

कवि उसका जवाब देता है—

> बिताया है सदा मैंने, सुजीवन नाम पाने में।
> वही मरने से डरता है, जो पापी या अधर्मी है॥

अर्थात्-मृत्यु से वही डरता है कि जिसने उम्र भर पाप और अधर्म ही किया हो-सदाचारी जीवन कभी न बिताया हो। मैंने तो हमेशां शुद्ध जीवन ही बिताया है।

सोचिये महानुभावों! आप लोग निर्भय नहीं होते हैं, सुखी नहीं होते हैं, लेकिन

कहते जरूर हैं कि हम धर्मशील हैं-हम धर्म करते हैं। ये विरोधी बातें नहीं हो सकती। अगर धर्मशील हैं, तो आपको निर्भय होना चाहिये, पर निर्भय तो नहीं हैं। इसलिये आपको समझ लेना चाहिये कि सच्चा धर्म हमारे पास नहीं है।

धर्मशीलता क्या चीज है? इन सारी बातो का वर्णन मै अपने आगे के व्याख्यानों में करूगा। परन्तु यहा एक बात जरूर कह देना चाहता हू कि-सच्चा निर्भयी वही मनुष्य हो सकता है, जो त्यागी, सयमी, शीलवान् और सदाचारी है।

साधु ही निर्भय हैं। क्यों निर्भय हैं? क्योंकि उन्हें भय का कोई कारण नहीं। देखिए साधु की निर्भयता और उसके सुख का वर्णन करते हुए शास्त्रकार क्या कहते हैं:-

न च राजभय, न च चोरभय, इहलोकसुख परलोकहितम्।
नरदेवनत वरकीर्तिकर श्रमणत्वमिद रमणीयतरम्॥

अर्थात्--साधु को राज का भय नहीं, क्योंकि खेती-वाडी, बाग-बगीचा, घर-बार, माल-मिल्कत आदि कोई चीज उन के पास नहीं। जगत् की सेवा करते हुए वास्तवमें वे राजा, प्रजा तथा सर्व प्राणीमात्र का महान् उपकार करते हैं। उन्हें राजा का भय रखने की बिलकुल जरुरत नहीं। अगर वे सच्चे और खरे साधु है तो।

उन्हें चोर का भय रखने की भी आवश्यकता नहीं। क्यों रक्खे चोर का भय? उन के पास ऐसी क्या चीज है, जिसको उठा ले जाने की किसी की नियत हो। बेशक, जो १००-१५० रुपये की कम्बल किसी कपडे में बाध कर सिर नीचे रख कर सो जावे, तो उसको यह जरूर भय रहे कि शायद मेरी कम्बल कोई उठा कर न ले जाय।

पर जो, एक मामूली कम्बल जमीन पर बिछाकर और झाड के नीचे आराम से सो गया हो, उसको किसका भय? रात को अगर चोर आया भी तो शरीर पर हाथ फेर कर चला जायगा और क्या करेगा?।

बल्कि मैं तो यहा तक कहता हूँ कि साधु की चीजें ही ऐसी होती है कि अगर उन्हें चोर उठा कर ले भी जाय, तो वह तत्काल पकड़ा जायगा। हम लोग एक 'तरपणी' रखते है, जो लकडी की बनती है। वह लोटे के आकार की होती है। प्रवाही पदार्थ उसमें रक्खा जाता है। गृहस्थ लोग बजारसे खरीदते है और फिर रगरोगान करते हैं हम लोग। करीब ४-५ रूपये की वह हो जाती है।

हमारी इस तरपणी को ले लीजिये और गृहस्थ का एक पीतल का ४-८ आने का

लौटा ले लीजिये। रख दीजिये इन दोनों को किसी रास्ते पर। दो चार घण्टे में देखिये कि दोनों में से कौनसी चीज चली जाती है? आपका पितल का लौटा चला जायगा। ज्यादा कीमती होते हुए भी हमारा लौटा कोई नहीं लेगा। अगर ले भी ले तो वह तुरन्त पकड़ा जायगा। बचेगा नहीं। इसलिये साधु को चोर का भी भय रखने की जरुरत नहीं।

साधुओं को इस लोकमें भी सुख है; क्योंकि उनके आगे पीछे रोने पीटनेवाला कोई नहीं और साडियॉ, चूडियां मंगानेवाली भी कोई नहीं। घर में अनाज, मीर्च मसाला है या नहीं इसकी चिन्ता नहीं, घी तेल की फिकर नहीं। ५-१० घर गये-दो, चार रोटी मांग लाये। खाया और धर्मध्यान में तल्लीन रहे। न दिवाले की फिकर, न नफा नुकसान की चिन्ता। न बालबच्चों की फिकर, न कमाने की चिन्ता और न खाने की फिकर-किसी चीज की फिकर नहीं। आत्मा के कल्याण में मस्त!। कितना सुन्दर और सुखी जीवन है?।

उनका परलोक भी हितकारी है। इस लोक में साधुता को लेकर अगर संयम पाला हैं, लोकोपकार किया है, और साधुवृत्ति से रहे हैं तो निश्चित है कि परलोक में वे सुख प्राप्त करेंगे। बेंक में जमा किया है, तो अवश्य लेंगे। राजा लोग भी नमस्कार करते हैं। किसको करते है? उनके त्याग और संयम को।

मैं सिन्ध में गया था। सेंकड़ों वर्षों से वहां के निवासियोंने कभी जैन साधु को नहीं देखा था। जब वे लोग जानने लगे कि-'हम लोग स्त्रियों को छूते नहीं, पैसा रखते नहीं, पैदल चलते है, एक ही घर से भिक्षा नहीं लेते' तो बिचारे सुनकर मुग्ध हो जाते थे और बहुत प्रशंसा करते थे।

यह तारीफ किसकी थी? मात्र त्याग और संयम की। ऐसे त्यागी और संयमी साधु को राजा लोग भी नमस्कार करते है।

उनकी कीर्ति भी खूब होती है। कीर्ति हमेशा मनुष्यों से आगे चलती है। अगर साधु, साधु है, पवित्र हैं, त्यागी और संयमी है; तो जरुर उसकी कीर्ति फैल जायगी-डोंडी पीटने की जरूरत नहीं। अपनी कीर्ति के लिये लोग कितने प्रयत्न करते है? परंतु अगर वे चुपचाप रहकर भी अपने आचरण को शुद्ध रक्खें, अन्तःकरण शुद्ध रक्खें तो उनकी कीर्ति स्वयं उसके आगे आगे दौड़ेगी।

इस प्रकार का साधुत्व सचमुच ही रमणीय है। और ऐसा साधुत्व रखनेवाला मनुष्य सुख का भोगी हो सकता है।

यह तो साधुओं की बात कही। ससारिक व्यवहार में रहते हुए आप लोग भी सुखी कैसे हो सकते है ? ये बातें मै कल से आप को दिखलाऊंगा। उसको सुनकर उसके अनुसार अगर उपयोगपूर्वक आचरण करेंगे, तो आप इस लोक में सुखी होंगे और परलोक में भी सुख आपसे दूर नहीं रहेगा। आप अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे और अन्य जीवों का भी।

भाइओं और बहनों !

मैं यहांपर "जीवनविकास और उसके साधन" इस विषय पर अपनी व्याख्यान-माला प्रारंभ करूंगा।

जीवन क्या चीज है ?

पहिले जीवन क्या वस्तु है और उसके साधन कौनसे होने चाहिये ? इस विषय, पर कुछ कहूंगा।

'जीवन' यह जीव के साथ सम्बन्ध रखनेवाली वस्तु है। जीव की क्रिया, यही जीवन है। लेकिन जीव वस्तु है क्या ? और वह होनी चाहिये या नहीं ? इस विषय पर थोड़ा विचार करेंगे; क्यों कि आज संसार में इस विषय में बड़ा मतभेद है।

बहुत से लोग 'जीव' नामकी कोई वस्तु नहीं मानते; पर 'है' यह मैं आप को समझाऊंगा। जरा सुनिए—

संसार में हम जितने भी पदार्थ देखते हैं, वे अनन्त हैं। उनमें कुछ दृश्यमान हैं और कुछ अदृश्यमान भी हैं।

प्रकृति के नियमानुसार 'एक पदार्थ' संसार में नहीं रहता है। अगर दृश्यमान पदार्थ हम देख रहे हैं; तो कुछ ऐसे भी पदार्थ होने चाहिये, जिनके होते हुए भी हम उनको नहीं देख सकते। इस दृष्टि से हम यह निर्णय कर सकते हैं कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। इसी प्रकार संसार में कुछ पदार्थ ऐसे भी है, जिन में कुछ न कुछ क्रिया हम देखते हैं। बोलना, चलना, फिरना, हरना इत्यादि। और कुछ ऐसे भी पदार्थ है, जिनमें किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती। जरा दृष्टिपात कीजिए—यह टेबल, यह मकान, यह कुर्सी, यह चौकी आदि आदि। जो बिलकुल निष्क्रिय हैं, और हम मनुष्य, मनुष्य के अतिरिक्त दूर दूर दृष्टिपात किजिये, वह देखिये पेड, पौधे, झाड इत्यादि। जिस को हम वनस्पति कहते हैं। वे भी कुछ न कुछ क्रियावान है। पौधा

छोटा था, आज कुछ बडा देखते हैं। कल और कुछ बडा देखेंगे। और किसी दिन उस से भी बडे एक भारी वृक्ष के रूप में देखेंगे। जो वृक्ष हम देखते हैं, वह लकडी है, और एक यह भी लकडी है, पाट की, चौकी की, जिस पर हम साधु बैठे हैं। वह दरख्त भी लकडी है और यह भी। इन में फरक इतना ही है कि वृक्ष की लकडी हरीभरी है, छोटी से बडी भी होती है, लेकिन इस चौकी की लकडी सूखी हैं, बढना घटना इस में कुछ नहीं होता। क्या कारण है? दोनों लकडी होते हुए भी इनमें इतना भेद क्यों?

इससे यह निश्चय होता है कि उस वृक्ष में कोई न कोई ऐसी शक्ति है, जिसके कारण से ये सब क्रियाए उसमें होती हैं। डॉक्टर बोझ (जगदीशचन्द्र बोझ) ने इस बात को आधुनिक विज्ञान से प्रमाणित भी कर दिया है कि वनस्पति के अन्दर भी हमारे ही जैसी प्राणशक्ति (जीव) विद्यमान है। वे श्वासोश्वास लेते हैं और हमारी ही तरह सुख दुःख का अनुभव भी करते है आदि। इसी प्रकार पानी, अग्नि वगैरह में भी हम जो कुछ क्रियाए देखते हैं, वह उनके अन्दर रही हुई एक शक्ति का परिणाम है।

मनुष्य का शरीर क्या चीज है? मनुष्य का शरीर एक समय बिलकुल छोटा होता है। देखते देखते वह बढता है और बढते बढते एक दिन वृद्ध तक हो जाता है। इससे मालूम होता है कि उसमें कुछ चीज जरूर है।

मनुष्य का शरीर वही का वही होते हुए-एक एक बाल वही का वही होते हुए, एक समय आता है कि अभी जो क्रियाए इस शरीर में हो रहीं थीं, वे सारी बन्द हो जाती हैं। हम नहीं समझ सकते कि क्या बात हुई? लेकिन बन्द जरूर हो जाती है। बल्कि शरीर सुख दुःख का जो अनुभव करता है, वह भी बन्द हो जाता है। थोडी देर पूर्व अगर शरीर में एक सुई भी लगाते तो बडा दर्द होता उसको कराहता चिल्लाता हुआ पाते, पर अब अगर शस्त्र से काटा जाय, जमीन में गाडा जाय, अग्नि में जलाया जाय, तब भी उसे कुछ नहीं होता है।

इस पर से हमारा यह अनुमान-निश्चय कभी व्यर्थ और असत्य नहीं हो सकता कि हमारे शरीर में भी कोई ऐसी शक्ति है, जिसके कारण यह शरीर सारी क्रियाए कर रहा है। उस शक्ति के उसमें से निकल जाने का ही परिणाम है कि इस शरीर की सारी क्रियाए बन्द हो जाती हैं।

जिस शक्तिसे हमारी क्रियाए जीवित रहती हैं, उसका नाम कुछ भी रखिये-

आत्मा-जीव-सोल (Soul)-रूह-प्राण आदि किसी भी नाम से पुकारिये। सारांश यही है कि कोई शक्तिविशेष जरूर है, जो शरीर की हलचल जारी रखती है।

इसी आत्मा रूपी शक्ति का विकास हमें करना है, और यही मेरा विषय है। यहां एक प्रश्न ऊठता है कि :—

जिस पदार्थ को हम प्रत्यक्ष देखते नहीं, सिवाय अनुभव करने के, उसका विकास क्या ? ऐसा शायद आप कहेंगे।

विकास क्या ?

जरा दृष्टिपात कीजिये। जो शक्ति हमारे में है, वही शक्ति वनस्पति में भी है। वही शक्ति ऐसे कीड़ों में भी है, जिनमें हम सिवाय शरीर और मुख के और कुछ नहीं देखते। वही शक्ति और जीवों में भी है, जिनके शरीर, मुख और नाक मात्र ही हैं। इससे और आगे थोड़ा बढ़िये वही शक्ति ऐसे जीवों में भी है, जिनके शरीर, मुंह, नाक और कान मात्र होते हैं। यही शक्ति उनमें भी देखी जाती है, जिनको हम तिर्यंच कहते हैं-पशु-पक्षी के नाम से पुकारते हैं।

देखिये वह बैल, उसमें पांच बातें पायी जाती हैं। देखिये वह कुत्ता, उसमें भी पांचों इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियाँ पांचों होते हुए उस कुत्ते की अपेक्षा उस बैल में और उस बैल की अपेक्षा हम मनुष्यों में कुछ विशेषता जरूर है। यह विशेषता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। मनुष्यों के अन्दर भी हम कितना तारतम्य देखते है ? किसीको श्रीमन्त देखते हैं, तो किसीको गरीब। किसी को राजा तो किसीको रङ्क। किसीको लूला देखते हैं तो कोई लंगड़ा भी है। किसीके पास बहुत प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि है-विद्या है-बल है और किसी के पास खाने को अन्न और पहनने को कपड़ा भी नहीं, बहुतसे अज्ञानी और निर्बल है-कमजोर हैं। साधु हैं, पर इनमें भी वही तारतम्य। कोई ज्ञानी है, कोई क्रियावादी है, कोई योगी है, कोई त्यागी-सन्यासी है।

कोई किस प्रकार का तो कोई किस प्रकार का-ये सारी बातें देखते हुए हमें ज्ञात हुआ कि मनुष्य के अन्दर भी जीवन के विकास में कुछ तारतम्य जरूर है। प्रत्येक मनुष्य में विशेषताएं विद्यमान हैं। क्या वजह है ? जरुरी बात है कि उनके जीवन में विकास हुआ है, जो अच्छे हैं। जीवन के विकास का मतलब आप यह न समझे कि खूब मोटा-ताजा हो-बहुत समृद्धिशाली हो। विकास का मतलब है यह कि आत्मा

के ऊपर लगे कर्मों का बोझ हलका हो। आत्मा पर लगे हुए आवरण हटते जांय।

एक तुंबे को ले लीजिये। तूम्बे का स्वभाव है पानी के ऊपर तैरना। लेकिन उसी तुम्बे पर मिट्टी लपेट दी जाने और कपड़ें से बाध दिया जाय और फिर वह तुबा किसी को दिखाया जाय तो वह यही समझेगा कि यह तो एक मिट्टी का पिण्ड है। अब उस तुम्बे को पानी में डालिये। पहले जो तुम्बा तैरता था, वही अब पानी में डूब जायगा। फिर धीरे धीरे ज्यों ज्यों मिट्टी हटती जायगी, तूम्बा फिर ऊपर आता जायगा। और एक समय आवेगा जब, सब मिट्टी निकल जायगी और तुम्बा फिर अपने स्वभावानुसार पानी पर तैरने लग जायगा।

ठीक यही दशा हमारे आत्मा की है, जिसको हम जीव कहते हैं। वह कर्मों के आवरण से लिपटा हुआ है। वे आवरण जैसे जैसे दूर होते जायें, वैसे वैसे आत्मा हलका होता जायगा, उसी का नाम है जीवन का विकास। जीवन का विकास प्रत्येक प्राणी धीरे धीरे अमुक हद तक करता है, लेकिन विकास की अन्तिम सीमा–उसकी पराकाष्ठा तो यही है कि जब आत्मा परमात्मा बन जाय, सिद्ध–स्वरूप हो जाय।

जीव और जड कब से है ?

यहां पर एक और बात पर ध्यान देना भी जरूरी है। जिस चेतना शक्ति, यानि क्रिया शीलता को हमने 'जीव' का नाम दिया है और जो निष्क्रिय वस्तु है, उसको 'जड' के नाम से पुकारा है, यह कबसे है? अगर यह माना जाय कि एक समय था जब कि जीव नहीं था, मात्र जड पदार्थ ही था। अथवा पहले जीव–चेतन ही था, जड नहीं था, तो ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि ससार में ऐसा नियम है कि एक ही स्वभाव–स्वरूपवाला पदार्थ कभी नहीं रह सकता। शब्दों का उच्चारण हमेशा सापेक्ष होता है। कोई भी शब्द बोलिये, उसके प्रतिपक्ष में कोई न कोई शब्द जरूर रहेगा। जैसे–सत्य का प्रतिपक्षी असत्य, अच्छा का बूरा। इस प्रकार हरेक में होता ही रहता है। इसी तरह चेतन और जड–ये दोनों पदार्थ विद्यमान थे, और है भी। अनादि से ये दोनों पदार्थ चले आ रहे है। कोई भी समय ऐसा नहीं था कि जिस दिन केवल चैतन्य पदार्थ ही रहा हो, जड पदार्थ न हो। या जड रहा हो और चैतन्य न हो। ऐसा कभी नहीं हो सकता। दोनों के स्वभाव भिन्न हैं। और भिन्न होते हुए भी अनादि काल से दूध और पानी की तरह ओतप्रोत भी है।

दोनों भिन्न स्वभाव के होने के कारण एक समय आता है, जब कि ये दोनों जुदे हो जाते हैं। यहांतक कि, जिसको हम आत्मा कहते हैं, वह पुरुषार्थ करते हुए अपने विजातिय जड द्रव्य को किसी समय सर्वथा दूर फैंक देता है, और वह सिद्ध स्वरूप बन जाता है।

एक ओर उदाहरण देकर समझाऊं। एक भारी गढ़ा खोदते समय मिट्टी का ढेर निकलता है। हम उसको देखते हैं तो मिट्टी कहते हैं। लेकिन कोई वैज्ञानिक देखता है तो उसमें भी सुवर्ण देखता है। कोई पूछे कि मिट्टी और सोना कब इकट्ठे हुए? किसने इकट्ठा किया? क्यों किया? तो इसका कोई जवाब नहीं। कहना पडेगा कि ये दोनों अनादिकाल से मिले हुए हैं। फिर भी दोनों का स्वभाव भिन्न भिन्न है। और भिन्न होने के कारण दोनों अलग किये जाते हैं। मिट्टी मिट्टी हो जाती है और सुवर्ण, सुवर्ण रह जाता है।

ठीक इसी प्रकार जीव और शरीर-चेतन और जड़ दोनों आपस में अनादि काल से मिले हुए हैं परन्तु पुरुषार्थ करते करते आत्मा के लिऐ एक समय ऐसा आवेगा कि जब आत्मा का-चेतन का सम्बन्ध शरीर से-कर्मों से-जड पदार्थ से सर्वथा छूट जायगा।

बस यही जीवन के विकास की अथवा आत्मा की उन्नति की पराकाष्टा है।

जीवन विकास में भेद

संसार में रहते हुए हम जीवन के विकास के कई भेद देखते हैं। और वे कई अपेक्षाओं से हैं। त्याग व संयम की अपेक्षा से हम यह कहते हैं कि यह ऊंचा-शुद्ध आत्मा है। विषय-लोलुपता के तारतम्य की अपेक्षा से भी हम ऊंचा नीचा आत्मा समझते हैं। सांसारिक सुखों के साधनों और पुण्य प्रकृति की अपेक्षा से भी हम जीवन विकास के उच्च नीच भेद करते हैं। कषायों की मन्दता-तीव्रता की अपेक्षा से भी जीवन के विकास की उच्च नीच अवस्था समझते हैं। जातियों और कुलों की उत्पत्ति आदि नाना कारणों से भी हम उच्च नीच का भेद करते हैं। सच्ची बात यह है कि-आत्मा का विकास यही है कि, हमारे दुर्गुण दूर हों। जितनी मात्रा में हम से दुर्गुण दूर होंगे उतनी ही मात्रा में हम जीवन का विकास मानेंगे।

हम ऐसे कई जीवों को देखते हैं कि संसार में रहते हुए, स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, परिवार रहते हुए, व्यापार रोजगार करते हुए और श्रीमन्ताई भोगते हुए भी वे

दुनियादारी की चीजों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। वह आत्मा बिलकूल उदासीन भाव से ही सब कार्य को करता है।

कोई जीव ऐसा भी होता है, जिसके पास कोई ज्यादा सम्पत्ति नहीं है, और साधारण से साधारण चीजों से ही अपना जीवन यापन कर रहा है, तथापि उन साधारण चीजों पर भी उसकी इतनी आसक्ति-लोलुपता रहती है, कि और कोई चीज उसके ध्यान में ही नहीं आती। बल्कि यों कहना चाहिये कि-सब कुछ उसके लिये वही है। आत्मा जैसी कोई चीज उसके लिये नहीं है। यह 'शरीर' यही 'मैं', यह 'पैसा' यही 'मैं', स्त्री-पुत्र-परिवार यही 'मैं'। बस उन्हीं को 'अपने को' समझता है। इन्हीं कारणों से शास्त्रकारोंने जीवन के विकास को दिखलाते हुए आत्मा के तीन भेद बतलाये है:

आत्मा के भेद

(१) बहिरात्मा

(२) अन्तरात्मा

(३) परमात्मा

बहिरात्मा यह है—

आत्मबुद्धि: शरीरादौ, यस्य स्यादात्मविभ्रमात्।
बहिरात्मा स विज्ञेयो, मोह-निद्रास्तचेतन ॥

अर्थात्-शरीर, पुत्र, धन, माता, पिता, पत्नी और संसार के सब पदार्थ यही मैं हूँ। यही मेरा आत्मा है-वह मुझसे पृथक् नहीं और उसीमें वह मरता है अर्थात् मोहरूपी निद्रा में जो बेभान पडा है, उसी आत्मा को बहिरात्मा कहा गया है। यानि बहार की वस्तुओं में ही जो आत्मा को देखता है।

इसके विपरीत, जो बहार के पदार्थों को अपने से भिन्न समझता है, और आत्मा को उससे भिन्न समझता है वह अन्तरात्मा है:

बहिर्भावानतिक्रम्य यस्यात्मन्यात्मनिश्चय।
सोऽन्तरात्मा मतस्तज्ज्ञैर्विभ्रमध्वान्तभास्करै ॥

जो मनुष्य बाह्य पदार्थों में से मोह की वृत्तिको हटा लेता है और आत्मा में ही आत्मा का निश्चय करता है। वह समझता है-आत्मा एक भिन्न चीज है और ये बाह्य पदार्थ जितने है वे भिन्न हैं। आत्मा नित्य है, बाह्य पदार्थ अनित्य है। ऐसी भावना

में जो दृढ होता है, उसीका नाम अन्तरात्मा और यही बात महाज्ञानीयोंने कही है।

भरत चक्रवर्ती के पास चक्रवर्ती की ऋद्धि-समृद्धि थी।-स्त्री-पुत्र-परिवार सब कुछ था। हजारों वर्षों तक लडाईयां की थीं। लाखों मनुष्यों की लडाई में कत्लेआम की थी, लेकिन भरत चक्रवर्तीने शीशभवन में बैठकर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

क्या कारण था? यही कारण था कि इतने सब पदार्थों के रहते हुए भी वे समझते थे कि—

अनित्यं संसारे भवति सकलं यन्नयनगम्।

मेरी आंखों से जितने पदार्थ देखे जाते हैं, वे सब अनित्य हैं। ऐसा समझकर उसी जीवन में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया।

तात्पर्य यह है कि-संसार के पदार्थों को भिन्न समझना और अपने आत्मा को भिन्न समझना, यह बहिरात्मा की अपेक्षा से, जीवनविकास अधिक महत्वपूर्ण है।

अब जीवनविकास की परकाष्टा, यही परमात्मदशा। संसार के सारे पदार्थों को छोडकर जो आत्मा सिद्ध स्वरूप हो जाता है; निर्लेप, आवरणों से रहित, निराकार, निरंजन बन जाता है, उसको परमात्मा कहते हैं। परमात्मा अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा-मुक्त आत्मा-सिद्ध आत्मा, जो भी कुछ कहिये। बस, हमारे जीवन का परम ध्येय जीवन-विकास की पराकाष्टा यही है। परमात्मा का स्वरूप शास्त्रकारोंने यों दिखलाया है:—

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥

जो सर्वज्ञ है, रागादि दोषों को जिसने जित लिये हैं, तीन लोक से जो पूजित हैं, यथास्थित पदार्थों का जो वर्णन करनेवाले हैं। उन्हींको देव, अर्हन् या परमेश्वर कह सकते हैं।

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो

निर्लेपो निष्कलः शुद्धो निष्पन्नोऽत्यन्तनिर्वृत्तिः,
निर्विकल्पश्च शुद्धात्मा परमात्मेति वर्णितः॥

अर्थात्--जो निर्लेप यानि लेप रहित है, क्लेश रहित है, जो शुद्ध है, रागद्वेषादि विकार जिसमें नहीं है, अत्यन्त निर्विकल्प है, अविनाशी सुख स्वरूप है, जिसमें कोई भेदभाव नहीं हैं, ऐसा जो शुद्ध आत्मा है, वही परमेश्वर है।

भाइयों और बहिनों,

कल मैंने जीव, जीवन और जीवन का विकास क्या? ये बातें बतलायीं थीं, और जीवन के विकास की पराकाष्ठा कहां तक पहुंचती है, यह भी बतलाया, अब आज मैं यह बतलाना चाहता हूं कि हमारे मनुष्य जीवन में, हमें 'जीवनविकास' के कितने साधन प्राप्त हुए हैं। मैं जो सीढ़ीएं बतलाऊं, उस पर से आप अपना विचार करते जाना कि— 'हम कितनी सीढ़ीएं चढ़ चूके हैं और अब कितनी सीढ़ीएं बाकी हैं?

मनुष्य जीवन में विकास

यह बात तो निश्चित है कि मनुष्य जीवन को सभीने श्रेष्ठ माना है। इसका कारण यही है कि—मनुष्य योनि ही एक ऐसी है कि जहां जीवनविकास की पराकाष्ठा को पहुंचने की सब सामग्री प्राप्त होती है। श्रीहेमचन्द्राचार्य ने एक जगह कहा है:—

भवेषु जङ्गमत्वं, तस्मिन् पञ्चेन्द्रियत्वमुत्कृष्टम्।
तस्मादपि मानुष्यं, मानुष्येऽप्यार्यदेशश्च ॥ १ ॥

देशे कुलं प्रधानं, कुले प्रधाने च जातिरुत्कृष्टा।
जातौ रूपसमृद्धिः, रूपे च बलं विशिष्टतमम् ॥ २ ॥

भवति बले चायुष्कं, प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानम्।
विज्ञाने सम्यक्त्वं, सम्यक्त्वे शीलसम्प्राप्तिः ॥ ३ ॥

एतत् पूर्वश्चायं समासतो मोक्षसाधनोपायः।
तत्र च बहु सम्प्राप्तं भवद्भिरल्पं च सम्प्राप्यम् ॥ ४ ॥

महानुभावों, देखिये, कैसी अच्छी सीढ़िएं बताई हैं:—
संसार में दो प्रकार के जीव हैं (१) स्थावर और (२) त्रस
स्थावर वे जीव हैं जिनको हम एकेन्द्रिय नाम से पुकारते हैं। जिनके मात्र

एकेन्द्रिय यानि शरीर ही होता है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति-ये पांच प्रकार के स्थावर जीव हैं।

त्रस जीव वे हैं जिनको क्रमशः दो-तीन-चार और पांच इन्द्रियां होती हैं। हमारे जीवन के विकास का यही प्रमाण है।

हम स्थावर में नहीं जन्मे, पर त्रस में हमने जन्म लिया है। और त्रस में भी पञ्चेन्द्रिय हुए हैं। पञ्चेन्द्रिय में भी उन भैंसों में नहीं जन्म लिया, जो कि बेचारे पानी की पखालों को उठाकर ऊंचे ऊंचे पहाड़ो पर ढोकर ले जाते हैं। आपने कभी बम्बई जाते हुए भड़ौच को देखा होगा। नीचे नदी बहती है, और शहर एक ऊंची पहाड़ी पर बसा है। अब तो सम्भव है नल लग गये हों। किसी जमाने में नदी से पीने के लिये पानी लेजाना पडता था। तब ये भैंसे पानी ढोने के काम में आते थे। हमें सोचना चाहिये कि अगर हम इन भैंसों में जन्म लेते तो हमारी क्या दशा होती? घर घर पलपल लाठियां खाते और हांफते गिरते-पडते जीवन व्यतीत करना पडता। इस प्रकार के जानवर नहीं होते हुए हम मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए।

मनुष्य आफ्रीका के जंगलों में-पहाडों में रहनेवाले भी है। वहां मच्छी और अन्य जानवरों का तो क्या? मनुष्य का मांस खानेवाले भी है। वे भी मनुष्य और हम भी मनुष्य। अगर ऐसी जंगली जातियों में हमारा मनुष्यरूप में भी जन्म होता तो हमारी क्या दशा होती?

हिन्दुस्तान में भी कई ऐसे प्रान्त है, जहां के मनुष्य चूहोंके अचार और खटमल की चटनी बनाकर खाते है। वे भी मनुष्य और हम भी मनुष्य। पर आज हमारे एक छोटे से छोटे बालक से भी कीडा मारने को कहा जाय, तो नहीं मारेगा। क्यों कि पूर्वजन्म से ही वह ऐसे ही संस्कारों को लेकर आया है। जिनके कारण न उपदेश, न धर्म, न कर्म, न पुण्य, न पाप-कुछ भी नहीं समझते हुए भी वह हिंसा नहीं करेगा। कितना विकास हमने किया है? तात्पर्य यह है कि मनुष्य होते हुए भी अगर हम अनार्य देश में उत्पन्न होते, तो क्या कर सकते थे? उत्तम देश में जन्म लेते हुए भी, नीच कुल में अगर हमारा जन्म होता तो कुल की मर्यादा के अनुसार हमें भी नीच कर्म करने पडते। लेकिन हमारे जीवनविकास का यह प्रमाण हैं कि हम उच्च कुल में जन्मे।

उच्च कुल के साथ हमारी जाति भी शुद्ध होनी चाहिये। यहा भी हम शुद्ध जाति में जन्मे। बेशक उच्च जाति में जन्म लेते हुए भी, हम नीच कर्म करें तो हमें जाति का लाभ मिलना बेकार है। उत्तम जाति मिलते हुए, उत्तम कुल में जन्म लेते हुए अगर हमारा शरीर कुरूप होता, तो, हम शर्म के मारे चार आदमीयों के बीच नहीं बैठ सकते थे। लेकिन हमें ऐसा रूप भी मिला है कि हम दो आदमीयों के बीचमें बैठकर अपने विचारों का लेन देन भी कर सकते है। सुन्दर रूप होते हुए भी अगर हमारे मन-वचन-काया की शक्ति, दुर्बल होती तो हम क्या कर सकते थे?

हमने शिवपुरी से बम्बई जाते हुए रास्ते में घाटकोपर में एक बालक देखा था। बालक एक उच्च जाति के एक बडे श्रीमन्त के घर जन्मा था। जहा तक मुझे याद है—चार छ महिने का वह बालक होगा। लोग उसे देखनेको जाते थे। मैं भी चला गया। माता की गोद में वह बालक था। चेहरा देखो तो इतना खुबसुरत कि कहा नहीं जाय। उसकी आखे, उसकी नाक, गाल, कपाल, सिरके बाल देखने से प्रतीत होता था कि एक बड़ा तेजस्वी, पुण्यवान् और होनहार बालक है। अगर वह जीवित रहता तो ससार में एक महापुरुष जरुर होता। पर जब मैंने माता से कहा—"बहन, इस बालक के शरीर पर जो कडपा है उसे अलग कर दो तो जरा।" और फिर जो देखा तो, कमर के नीचे का कोई भाग नहीं था। न पैर था, न गुदा का भाग और न पुरुषचिह्न। मात्र एक छेद था जहा से पेशाब और टट्टी होती थी। और दोनों हाथ भी नही थे। मैंने यह दृश्य अपनी आखोंसे देखा था। अभी तक याद है। अगर हमारा जन्म इस प्रकार का होता तो?

कई दूसरे बच्चों को देखते हैं, जो बिचारे कोई हाथों से, कोई पैरों से ऐसे अपग होते हैं, मुह से गूगे, कानों से बहरे और आखों से अन्धे, ऐसी दशा में होते हैं कि ससार में आकर, उच्च कुल और जातिमें जन्म लेकर कुछ भी नहीं कर सकते। हमें विचारना चाहिये कि अगर ऐसी दशा में हम उत्पन्न होते तो?

प्यारे भाईओं! और बहनों! सोचो, उत्तम कुल, उत्तम जाति, और उत्तम रूप मिलते हुए भी शारीरिक, मानसिक और वाचिक शक्ति से हीन मनुष्य क्या कर सकता है?

मान लीजिये सब कुछ मिला। ये भी मिली। लेकिन अगर आयुष्य न होता तो क्या कर सकते थे? आज गर्भ में ही मर जाते हैं, लेते ही मर जाते हैं, दो चार वर्ष के हैं।

हमारा आयुष्य लम्बा हुआ। २५-५०-७०-८० वर्ष की उम्र मिली, पर अगर इस आयुष्य को सफल नहीं किया है, तब भी हमने संसार में आकर क्या किया ? हमें आयुष्य भी मिला है, परन्तु अगर बुद्धि नहीं मिलती, ज्ञान नहीं मिलता, समझदार नहीं होते तो भी निकम्मे थे। बहुत से मनुष्य ऐसे देखे जाते हैं कि बड़ी उम्र होते हुए भी " ढ " होते हैं। जानते हैं आप, ऐसे मनुष्यों को "ढ" क्यों कहा जाता है ?

हमारे यहां कहावत है कि जो मनुष्य कुछ नहीं समझता, कुछ नहीं करता, कोई बात उसके गले में नहीं उतरती, तो उसको " ढ " कहते हैं। लोग कहते हैं— "यह तो 'ढ' का 'ढ' ही रहा।"

आप जानते हैं " ढ " क्यों कहा जाता है ? मैं आपको बतलाऊं।

ढाई हजार वर्षों से लगाकर अभीतक हमारी लिपि को आप देखिये, 'क' से लगाकर 'ह' तक। यहां तक कि सभी स्वर और व्यञ्जनों में क्रमशः रूपान्तर होता आया है, आकृतियाँ बदली है। पर आपको ताज्जुब होगा कि अगर आज तक किसी अक्षर में फेरफार नहीं हुआ है, तो एक मात्र 'ढ' में। हजारों वर्षों पहले 'ढ' की जो आकृति थी, वही आज भी है।

इसलिये जो मनुष्य कुछ समझता नहीं, जिसमें विज्ञान नहीं, बुद्धि नहीं, कुछ भी फेरफार जिसमें नहीं, उसको हम 'ढ' कहते हैं। यह तो विचारा 'ढ' ही रहा। अर्थात् बड़ा होते हुए भी जैसा था वैसा ही कोरा रहा। लेकिन हम उस दर्जे से भी आगे बढ़े हुए हैं। हम में कुछ समझदारी है-विचारशीलता है।

अगर आप सब महानुभावों में विचारशीलता और समझदारी और बुद्धि की शक्ति नहीं होती, तो अपने धन्धे रोजगार को छोड़ कर इन व्याख्यानों को सुनने के लिए कैसे आते ? हां विज्ञान, बुद्धि, समझ सब कुछ मिलते हुए भी अगर श्रद्धा नहीं है तो भी हमारी सब सामग्री बेकार है।

श्रद्धा यह बीज हैं। देव-गुरु-धर्म पर श्रद्धा रखना, पुण्य-पाप जैसी चीज जरुर है इसे मानना पड़ेगा। तमाम जैसी चीजें है वैसा मानना। ऐसी श्रद्धा रखना हमारे लिये जरुरी हैं। श्रद्धा कहो, यकीन कहो, बिश्वास कहो, ये सब पर्यायवाची शब्द है। इस लिए कहा जाता है कि विज्ञान के होते हुए अगर श्रद्धा नहीं है, तब भी

बेकार हैं। लेकिन हम में श्रद्धा भी है। श्रद्धा न होती, तो क्यों आप यहा आते? क्यों धर्म-ध्यान करते? सामायिक, प्रतिक्रमण, दया, दान क्यों करते?

श्रद्धा अवश्य है। यह भी आपके पुण्य का उदय है। और श्रद्धा होते हुए भी शील-सदाचारमय क्रियात्मक जीवन-शुद्ध-उच्च भावनामय जीवन बनाना भी जरुरी है। बस, जीवनविकासके लिये यही सीढियाँ है। हैमचन्द्राचार्य कहते है कि-ये सारी बातें प्राप्त करना चाहिये। इनमें से बहुतसी बातें प्राप्त हुई है। अब सोचें कि कौनसी बात रह गई है। जो चीज अधूरी रह गई हो उसको प्राप्त करने के लिए आप प्रयत्न करें। उस चीज के प्राप्त होते ही आप अपनी आत्माका कल्याण जरूर करेंगे।

जीवनविकास के लिये आपको बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो गई है। अब तो मात्र इन सामग्रीयों को सफल करना यही आपका काम रहा है। मनुष्य के पास सामग्रियों के होते हुए अगर उन सामग्रियो का उपयोग नहीं करता ह, तो उसके जैसा अज्ञानी मनुष्य दूसरा नहीं हो सकता। हाथ में हथियार रहते हुए भी अगर उन हथियारोंसे अपना बचाव नहीं किया, बल्कि उन्हीं हथियारों से हमारी ही हानि हुई, तो वे हथियार प्राप्त होना न होना बराबर है। बल्कि यों कहना चाहिये कि वे हथियार न होते तो अच्छा होता, जो हमारे नाशका कारण तो न बनते?

आज तो, हमारे प्राप्त साधन हमारे जीवनविकास के लिये साधनभूत हो यह तो दूर रहा, बल्कि हमारे ही आत्मा का नाश कर रहे हैं। जीवन-विकास में बाधक बन रहे हैं। पैसा मिला, अभिमान हुआ। नाम प्राप्त हुआ, अभिमान हुआ। ज्ञान प्राप्त हुआ, अभिमान उत्पन्न हुआ। सुदर शरीर मिला, विकारी-व्यसनी और व्यभिचारी बने। शक्ति मिली, लोगों को हेरान किया। बुद्धि मिली, आपस में झगडे बखेडे कराये। क्या हमारी बुद्धि दुनिया में झगडा कराने के लिये है? क्या हमारे ये उच्च साधन अभिमान करने और व्यभिचारी एव व्यसनी बनने के लिये है? यह हमारी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं है क्या?

आज सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजकीय और धार्मिक जितने भी झगडे हो रहे हैं यह मात्र बुद्धिवाद का दुरुपयोग नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

चोरी करनेवाला चोर, चोरी करने में क्या बुद्धि का उपयोग कम करता है? व्यभिचार सेवन करनेवाला दुनिया की आखों में धूल डालनेमें, और अनीति-अन्याय

चोर बजारी आदि अत्याचार करनेवाला क्या कम वृद्धि करता है। लेकिन यह सब दुरुपयोग है। आत्मकल्याण के लिये-जीवन विकास के लिये, धर्म-साधन के लिये ये सारी चीजें उपयोगी होते हुए भी इन साधनों को बिल्कुल दुरुपयोगी बना सकता है। हमारे लिये यह अत्यन्त शर्म और लज्जा की बात है।

साधनों के भेद

मैं अपनी व्याख्यान-माला में आगे "जीवन के विकास और उसके साधन" दिखलाना चाहता हूं। इन साधनों का उपयोग कैसे करना चाहिये? यह भी दिखलाऊंगा। और इस विषय को आगे बढ़ाते हुए जीवन-विकास के साधनों को तीन भागों में विभाजित करूंगा। एक व्यावहारिक साधन, दूसरे धार्मिक साधन, और तीसरे आध्यात्मिक साधन। व्यावहारिक साधन वे हैं जो व्यवहार में हम लोगों को प्राप्त हुए हैं। संसारमें रहते हुए पैसा-टका-धन-माल-मिल्कियत, स्त्री, पुत्र, परिवार, माता, पिता ये सब चीजें यद्यपि छोड़ने लायक हैं। दुनियादारी की चीजें हैं। फिर भी इनका उपयोग हम 'जीवन विकास' के लिये भी कर सकते हैं। व्यवहार में धर्म को हम स्थान नहीं देंगे, वहांतक हम सच्चे धर्म का आचरण नहीं कर सकते। धर्म क्रियाएं कुछ समय तक करलें--सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत-पौषधादिक करलें, और बाद का समय हमारा पापोपार्जन के लिये है, यह समझना निरी अज्ञानता है।

जीवन की प्रत्येक क्रिया-घटना-व्यवहार की प्रत्येक क्रिया धर्म से ओत-प्रोत होनी चाहिये। तभी हम व्यावहारिक साधनों से आत्म-कल्याण कर सकते हैं। जीवन-विकास कर सकते हैं।

धर्म साधनों द्वारा जीवन का विकास जो मैं बतलाऊंगा, वहां उन क्रियाओं को भी दिखलाऊंगा कि जिनसे हम लोग धर्म को प्राप्त करते हैं और धर्मसाधन द्वारा आत्म-कल्याण प्राप्त करते हैं। लेकिन साथ ही साथ यह भी दिखलाऊंगा कि ऐसे धर्म को प्राप्त करने के लिये-धर्म के सच्चे ठेकेदार बनने के लिये-धर्मावतार बनने के लिये जमीन कितनी साफ करनी पडेगी?। कितने गुणों को प्राप्त करना पडेगा? उसके बाद मैं धर्म की क्रियाओं को दिखलाऊंगा और अन्त में जीवनविकास के साधनों में आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन कैसे बनाना चाहिये यह दिखलाऊंगा।

इन तीन बातों से जीवन विकासके साधन बतलाऊंगा।

भाईओं और बहनों !

कल मैंने 'जीवनविकास' के साधनों के तीन भेद कर दिखलाये थेः—१ व्यावहारिक साधन, २ धार्मिक साधन, और ३ आध्यात्मिक साधन। अब मैं अनुक्रम से एक एक विभाग के साधनों पर कहूंगा।

इस बात के दुहराने की जरुरत नहीं है कि-अनादि काल से इस संसारचक्र में परिभ्रमण करता हुआ जीव भिन्न भिन्न योनियों का अनुभव करते हुए महान् पुण्योदय से इस मनुष्यभव में आया है। और इसी मनुष्यभव में जीवनविकास की पराकाष्ठा तक पहुचने के उपर्युक्त तीनों प्रकार के साधन मौजूद हैं। और यही कारण है कि-देवता भी मनुष्यभव को चाहते हैं। अब यह देखें कि-मनुष्यभव में 'जीवनविकास' का प्रारंभ कब से होता है ?

जीवनविकास का प्रारंभ

हम लोग माने हुए हैं कि, जब हमारी बडी उम्र होजाती है, उस समय 'जीवन का विकास' होता है। पर यह बात गलत है। जीवन के विकास का प्रारंभ तभी से होता है जबकी जीव, माता के गर्भ में आता है। 'जीवनविकास' से मतलब कलेवर का बढना, हाथ पैरों का बढना नहीं है। शरीर का विकास यह विकास नहीं। आत्मा अपने वास्तविक गुणों को प्रकाशित करे, यही सच्चा विकास है। अनादिकाल से आत्मा में जो कुछ दुर्गुण भरें हैं, जिनको कि हम 'कर्मों का आवरण' कहते हैं, उन दुर्गुणों के आवरण को, जहा तक हो सके ओछा करना, और अशुभ कर्मों के आवरण को कम उपार्जन करना इसीका नाम है जीवन का विकास। शरीर का विकास यह जीवन का विकास नहीं, हमारे लिये तो वही विकास विकास होना चाहिये, जिसके द्वारा हमारे आत्मा पर जो कर्मों का लेप चढा हुआ है, जो अशुभ कर्मों का बोझ हमारे आत्मा पर पडा हुआ है, वह सब गलकर दूर होजाय। हम जो सुख-दुःखों को भोग रहे हैं-नाना प्रकार

की आधि-व्याधियों से ग्रस्त हैं' ये तमाम बातें हमारे आत्मा परसे दूर हों तथा आत्मा बिलकुल अपने शुद्ध स्वरूप में आजावे, इसीका नाम है सच्चा विकास।

यह जीवन का विकास, माता के गर्भ से शुरु होता है, ऐसा मैं अभी कह चूका हूं। शायद आप को शंका होगी कि "माता के गर्भ में कर्मों का आवरण कम हो, यह कैसे हो सकता है?" माता अगर सुसंस्कारी है, सादे जीवन का पालन करनेवाली है, सदाचारिणी है, सद्विचारवाली है, शुभ क्रियाओं को करनेवाली है, पापों से बचनेवाली है, शान्त और सुन्दर उच्च भावनाएं रखनेवाली हैं, तो उन गुणों का असर, गर्भ पर अवश्य होता है। यही कारण है कि गर्भ में रहते हुए जीव को भी, ऐसी बुद्धिमती धर्मपरायणा माता के कारण कर्मबन्धन कम होता है। और धीरे धीरे जीवन का विकास माता के गर्भ में रहते हुए करता है। इसीलिये हमारे यहांपर माता का स्थान बहुत ऊंचा माना गया है। माता का स्थान समाज में, जाति में, देश में, जगत् में सब से ऊंचा माना है। इसे इतना उंचा माना गया है कि हमारे शास्त्रकारोंने भी इनका गौरवगान किया है। उन्होंने बताया है कि—

माता का गौरव

उपाध्यायान्दश आचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्त्र तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

अर्थात् दश उपाध्याय के बराबर एक आचार्य पूज्य, सौ आचार्य के बराबर एक पिता पूज्य और हजार पिता के बराबर एक माता पूज्य है। अर्थात् माता का गौरव सब से बढ जाता है।

माता का असर हमारे जीवन पर अधिक पडता है। और वह गर्भ से ही होता है। इस लिए माता सब से अधिक उपकारी है, क्यों कि, उसके गुणों का विकास हमारे जीवन के विकास का साधन हो जाता है, परन्तु माता पूज्य कब हो सकती है? माता माता हो तब। माता सच्ची देवी हो तब। जो माता देवों को उत्पन्न करने का अधिकार और सामर्थ्य रखती हो, वही माता पूज्य और वही देवी है। ऐसे देवों को उत्पन्न करनेवाली माता में कितने गुण होने चाहिये, इसको देखें :—

माता के गुण

यों तो माता में अनेको गुण होते हैं-होने चाहिये, परन्तु उनमें मुख्य चार गुण तो अवश्य होने चाहिये। सब से प्रथम (१) चित्त की प्रसन्नता। माता प्रसन्न-

वदना होनी चाहिये। खुशमिजाज आदमी को क्रोध का असर कम होता है। क्रोध उसी पर असर ज्यादा करता है जिस का दिल कमजोर और मुह चढा हुआ रहता है। रात-दिन हरेक बात में, हर परिस्थिति में खुशमिजाज, प्रसन्न वदन और हसमुख रहने वाले मनुष्य को क्रोध कम होता है। अगर क्रोध का निमित्त भी मिल जाय, तो भी उसका बहुत थोडा असर होता है। इस लिये, माता के लिये सब से प्रथम बात यह है कि वह प्रसन्न वदन रहे। कुटुम्ब में, घर में, पडोस में कहीं भी निमित्त मिलने पर भी क्लेश और क्रोध न करे। इसका शुभ परिणाम न केवल उसके जीवन पर, बल्कि कुटुम्ब पर होता है। बाल-बच्चों पर होता है। छोटे बडों पर होता है और पास पडोस पर भी होता है। यही नहीं, बल्कि समस्त मनुष्यों पर होता है। जिस घर में क्लेश होता है उस घरसे लक्ष्मी बीलकुल हडबडाकर भाग जाती है। हमारे गुरुमहाराज कहा करते थेः लक्ष्मी का निवास कहा है? लक्ष्मी आपके लिये बडी जरुरी चीज है। बल्कि मैं तो कहता हू कि जिस साधु के पास कौडी भी है, वह साधु कौडी का। और जिस गृहस्थ के पास कौडी नही, वह कौडी का। यह दूसरी बात है कि इसका उपयोग कैसे करना चाहिये? आप गृहस्थ लोग बिना पैसे से तग रहते है-आप लोगों को जरुरत पैसे की रहती है, पर लक्ष्मी का निवास वहीं होता है जिसके घर में दन्तक्लेश नहीं होता है। और सब लोग प्रेम से, सप से, और आनन्द से रहते है।

सेठ के घर की लक्ष्मी

एक सेठ के घर में लक्ष्मी बहुत थी। एक दिन वह निकलने के लिये तैयार हो गई। रात्री को सेठ सोया हुआ है। लक्ष्मी एक स्त्री के रूप में आकर सेठ को जगाती है। सेठ यकायक उसको देखकर आश्चर्यान्वित हो जाता है। और कहता हैः "रात्रि में यहा कौन आई?" लक्ष्मी जवाब देती है-"मैं तेरे घर की लक्ष्मी हू"।

"कैसे आई?"

"मैं अब जा रही हू।"

यह सुनकर सेठ को बडी चिन्ता हुई। लक्ष्मी घर में से जाने का नाम ले और चिन्ता न हो? अपने आत्मा से पूछीये तो? अगर आपके सामने यही सवाल हो तो आपको कितनी चिन्ता हो? एक समय तो यदि धर्म आकर कहदे-"मैं तुम से चला जाता हू।" आप कहेंगे:-"महेरबान, जिधर तुम्हारी मरजी हो उधर चले जाओ।" लेकिन लक्ष्मी अगर जाने का नाम ले तो बुखार आजावे। ऐसी दशा गृहस्थों की है।

सेठने जब यह सुना, तो फिक्र हुई। सोचने लगाः “ हाय! हाय! मैं गरीब हो जाऊंगा, मोहताज हो जाऊंगा। शान-शौकत दूर होजायगी। मेरी क्या दशा होगी?”

उसने कहा–“मैं तेरे पास बहुत दिनों तक रही। एक जगह रहते रहते थक गई हूं। एक जगह पडे रहना मेरा स्वभाव भी नहीं है।”

“इतने दिनों से तू यहां रही, अब जाते वक्त कुछ तो मेरे लिये करजा।” सेठने कहा।

“ खैर, अगर तू यही चाहता है, तो जो तू चाहे मांगले, मैं तुझे देकर जाऊं।”

सेठ विचार करने लगा–“ एक करोड मेरे पास है। दो करोड़ मांग लूं? दो करोड क्या मांगना? चार करोड मांग लूं? सौ करोड मांग लूं? राज्य मांग लूं?” पर विचार का प्रवाह कहीं जाकर ठहरा नहीं। सेठ सोचते सोचते थक गया।

लक्ष्मी बोलीः–“ सेठ क्या विचार किया?”

सेठने सोचकर कहाः–“ २४ घण्टे की मोहलत देदे। इस बीच में सोच-समझकर मांग लूंगा। तुझे तो जैसे आज जाना, वैसे कल जाना।”

“ बहुत अच्छी बात, कल तैयार रहना। जो मांगेगा सो देने को तैयार हूं।” लक्ष्मी चली गई। प्रातःकाल हुआ। सेठने अपने कुटुम्ब के लोगों को इकट्ठा किया। पुत्री, स्त्री, परिवार सब से रात्रि का हाल सुनाया और क्या मांगना, इस बारे में उनकी सलाह मांगी। किसीने कहाः “ खूब सम्पत्ति मांगलें” किसीने कहा–“ खूब राजपाट मांगलें।” इसीतरह किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ। सबने अपनी अपनी मति के अनुसार विचार दिया।

उस कुटुम्ब में सेठ के लड़के की बहु नयी आयी थी। वही लड़की सुशीला, विनीता और उच्च विचारवाली थी। लज्जा से एक कोने में बैठी हुई थी। चुपचाप सब सुन रही थी। आखिर सेठने उससे भी पूछा–“ तू भी कहदे, तेरी क्या सलाह है?। क्या मांगना चाहिये?।”

“ मैं तो अभी एक बच्ची हूं। आप को क्या सलाह दे सकती हूं।”

“ फिर भी कुछ कह दे। तेरा भी हक तो है सलाह देने का।

“ मैं तो यह सलाह देती हूं, कि–“ आप लक्ष्मी से कह दिजिये कि, अगर कल का मुहूर्त है तेरे जाने का, तो आज-अभी चली जा। हमें तेरी

खुशामद नहीं करनी है, और तू हमारी खुशामद से रहनेवाली भी नहीं। पर अगर तू लक्ष्मी है-देवी है और हमको वचन दिया है और दिये हुए वचन का पालन करना चाहती है तो 'हमारे घर में दन्तक्लेश कभी न हो' ऐसा वरदान देती जा, हमारे घरमें किसी का मुह चढा हुआ न रहे। प्रसन्नता-हसमुखपन हमेशा बना रहे। चाहे हमें दाल रोटी मिले, लुखा सुखा कैसा भी खाने को मिले, पर प्रेम और आनद हमेशा बना रहे। इसकी कमी कभी न होने पावे। बस, तू इतना देकर चली जा, जहा तेरा जी चाहे।"

रात हुई। लक्ष्मी आई।

बोली-" सेठ, क्या विचार किया ?"

"विचार क्या करें ? यही विचार किया है कि तू अगर कल जाती हो तो आज चलीजा, और अगर आज जाती हो तो अभी-इसी क्षण यहा से कूच करजा। तेरी हमें कोई जरूरत नहीं। हमें जिसकी जरुरत है उसके लिये वचन देजा। हमें मात्र इतना ही चाहिये कि हमारे घर में-कुटुम्ब में दन्तक्लेश कभी न हो।"

लक्ष्मी कहती है-" धक्का मार कर निकालोगे तब भी मैं नहीं जाउगी।" वह और कहती क्या है-"मेरा निवास भी वहीं है, जहा प्रेम है, आनन्द है, हसी है, प्रसन्नता है"। कैसी महिमा है इस सप की !।

प्यारे भाईयों, लक्ष्मी को बनाये रखने का यही साधन है। किसी भी कारण से, किसी भी निमित्त से, हमारे घरों में, हमारे भाईयों में कभी आपस में क्लेश न हो। अगर आपने इस बात पर अमल किया तो फिर देखिये, लक्ष्मी आपके यहा आती है या नहीं ! यही लक्ष्मी पाने का तरीका है।

आज हमारा हिन्दुस्थान बरबाद हो रहा है। महाक्लेश का कारण हो रहा है। जाति जाति में, कुटुब कुटुब में, घर घर में, भाई भाई में, बाप-बेटे में, धर्म धर्म में-तमाम जगह क्लेश ही क्लेश नजर आ रहा है। जिधर देखें उधर 'वाद' ही 'वाद' खडे नजर आ रहे है। हमारे यहा अपूर्व ज्ञान का भडार, अपूर्व खाद्य पदार्थों की उपज और जीवन की उपयोगी प्रत्येक चीज इतनी मात्रा में पैदा होती है कि हम अपनी जरुरतें अच्छी तरह पूरी करने के बाद दूसरों को भी दे सकते है। पर फिर भी आज भूखों मर रहे है। पूरी तरह बरबाद हो रहे है। गरीबी, दुष्काल आदि हमारे यहा ताण्डवनृत्य कर रहे हैं। और हम दिन-बदिन दुःखी होते

जा रहे हैं। इसलिये अगर आप चाहते हैं कि आप सुखी रहें, आनन्द में हों, ऐश्वर्यसंपन्न हों, भाग्यशाली हों तो आप प्रसन्नवदन रहें। अपने कुटुंब परिवार सब जगह अगर आप चाहते हैं कि आनन्द ही आनंद हो तो चाहिये कि माता प्रसन्नवदना-हंसमुख रहे। क्योंकि माता का स्थान सबसे ऊंचा है, उसका महत्व बड़ा है। वह जननी है, देवी है, जगदंबा है।

(२) दूसरा गुण होना चाहिये-माता सत्य और प्रिय वचन बोले। माता के असत्य बोलने का असर बालक पर बड़ा बुरा पडता है। माता समझती है कि बालक छोटा है। अगर मैं झूठ बोलती हूं, तो अभी यह क्या समझेगा? । पर यह बात गलत है। वह तो इतना खयाल रखना है कि हम उसका अनुमान नहीं कर सकते। वह समझता है कि माता झूठ बोलती है, कितना झूठ बोलती है और कैसे बोलती है? माता के एक झूठ का असर बालक पर इतना पडता है कि बड़ा होनेपर वह भी झूठ बोलने के लिये तैयार हो जाता है। इसलिये बहनों को चाहिये कि कभी भी, किसी भी निमित्त कैसा भी झूठ न बोले। यह उसका धर्म है कि प्रिय और सत्य वचन बोले। सत्य बोलना और फिर प्रिय बोलना। आप कहेंगे कि "ये दोनों साथ साथ क्यों रक्खा गया गया? । प्रिय हो चाहे अप्रिय हो, सत्य हंमेशा बोलना ही चाहिये"। पर नहीं, ऐसा नहीं। शास्त्रकारोंने इसके लिये कहा है—

सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः॥

हमारा सनातन धर्म यही है कि सत्य बोलो, और प्रिय भी बोलो। सत्य होते हुए और प्रिय होते हुए असत्य भी मत बोलो। अप्रिय कभी मत बोलो। न केवल माताओं के लिये, बल्कि मैं आप पुरुषों के लिये भी कहूंगा कि भाषा की किम्मत अगर आप समझते हैं, तो ये दो बातें अवश्य ध्यान में रखिये।

सत्य बोलो, पर प्रियकारी सत्य बोलो। अप्रिय, सत्य भी हो तो भी मत बोलो। काने को काना कहना घोर पाप है। वह तो पहले ही काना है, आप के काना कहने पर वह सोचेगा-" परमात्माने मुझे पहले ही से काना बनाया है, अब यह काना कहकर मेरा दिल क्यों दुभाता है। यह पापी मनुष्य है, मेरे दिलपर चोट करता है। लूले को लूला कहना, दुःखी को दुःखी कहना घोर पाप है। उनके दिलों में भारी चोट लगती है। यह सत्य होते हुए भी शास्त्रकार असत्य कहते हैं।

" प्रियं च नानृतं ब्रूयात् "

आगे शास्त्रकार कहते हैं प्रियवचन बोले, पर झूठ न बोले । इसे भी शास्त्रकारोंने बुरा बतलाया है।

राजा, महाराजा, सेठ, साहुकारों के पास रहनेवाले लोग समझते है कि-"ऐसा बोलना चाहिये, चाहे वह झूठ ही क्यो न हो, उन्हें बुरा न लगे। अर्थात् झूठ बोलें पर प्रिय वचन बोलना चाहिये, जिससे सेठ साहब को बुरा न लगे यह भी बुरी बात है। बुरा लगने के ख्याल से भी झूठ नहीं बोलना चाहिये । बल्कि मधुरता के साथ, मिठास के साथ, मनुष्यत्व धर्म का ख्याल रखकर सच ही कहना चाहिये। झूठ कभी नहीं।

मैं यह मानने के लिये कभी तैयार नहीं कि अगर सच्ची बात मधुरता-मिठास और नम्रता के साथ कही जाती है, तो कोई भी उसे मानने से इन्कार करदे । मै तो कहता हु, कैसा भी आदमी उसे मानने के लिये तैयार हो जायगा। मनुष्यत्व मनोविज्ञान (Psychology) इस बात को सिद्ध करता है। यह हमारी कमजोरी है कि खुशामद करके-झूठ बोलके किसीको खुश रक्खें। यह गलती और कमजोरी मनुष्य के लिये भयङ्कर नुकसान करनेवाली होती है।, इसलिये माताओं को मेरा यही उपदेश है कि वे सत्य और प्रिय वचन बोले।

(३) तीसरा गुण माता का क्या है ? वह अपने कर्तव्य का पालन करे। माताओं की जवाबदारी जबरदस्त है-महान् है। पुरुष का उत्तरदायित्व तो बस इतना ही है कि बजार में जाना और पैसा पैदा करना। यह माता की जवाबदारी है कि उन पैसों का उस तरह खर्च करना, जिससे उसके घरका, बालबच्चों का, सारे कुटुम्ब का भला हो, वे सुखी रह सकें। लेना-देना, यह सब उनके ऊपर है, ससार की यात्रा में कुटुम्ब-रथ के दो पहियों में यह पहिया महत्त्व का पहिया है। इस पर सब से बडी जिम्मेदारी हैं । बालबच्चों का पोषण कैसे करना चाहिये ? बच्चों पर अच्छे सुन्दर सस्कार कैसे डाले जाने चाहिये ? उन्हें सुन्दर से सुन्दर शिक्षण कैसे देना चाहिये ? जिससे बडे होकर वे देश, जाति, समाज के लिये एक सुन्दर, स्वस्थ और वीरनागरिक बनकर हितकारी साबित हों। तथा अपना भी जीवन-विकास करके अपने आत्मा का कल्याण कर सके। घर की व्यवस्था सुन्दर से सुन्दर कैसे रक्खी जानी

चाहिये ? । घर की इज्जत कैसे बढानी चाहिये ? । आये हुए अतिथियों का सत्कार कैसे करना चाहिये ? यह सब माता पर निर्भर है । माता त्याग और सेवा की प्रतिमूर्ति है। उसमें सम्पूर्ण जगत् का कल्याण निहित है । यह सारे जगत् की जननी है।

अगर ऐसे महत्त्वपूर्ण पद पानेवाली माता स्वच्छता से नहीं रहती है, सदाचारपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन नहीं करती है, और जिस किसी तरह जीवन को व्यतीत करती है, तो इसका बुरा असर समाज-देश-जाति-कुटुम्ब तथा उसके बालबच्चों पर बहुत भारी होता है। इसलिये माताओं का तीसरा कर्तव्य यही है कि अपने लिये उचित उच्च कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करे।

पर, अत्यन्त दुःख है कि यह जगज्जननी माता का पद पानेवाली आज के युग की नारी अपने इस महान् पवित्र कर्तव्य को बिलकुल भूल सी गई है। आज तो उनका क्या कर्तव्य रह गया है ? सुनकर बडा दुःख होता है। रोजाना नई नई फैशन की- नई नई डिझायन की साडियों और चूडियों के लिये अपने पति को आदेश देना, नई नई शृंगार की वस्तुओं के लिये फरमाईश करना-यही इन का कर्तव्य रह गया है। पति बिचारा १५ या २५-३० रुपये मासिक कमाकर लाता है, सेठ सा. की मिल में से रातदिन पूरी मिहनत कर के। पर घर में पत्नी सेठानीजी बनी बैठी है। एक न एक फरमाईश बनी ही रहती है। आज कल के इस मंहगाई के भयङ्कर जमाने में ५०-६० रुपये की तनखाह पानेवाला भी किस तरह से अपना गुजारा चलाता है। यह वही जानता होगा जो रातदिन पूरी महनत कर के कुछ पाता है। पर, जिनको इसकी चिन्ता नहीं और घर में बैठ के रोजाना नयी नयी फरमाईशें करना है, उनका यह कर्तव्य कदापि अच्छा नहीं कहा जायगा। ऐसा करना स्त्री का कर्तव्य नहीं। घर की तमाम बातें संभालना और अपनी परिस्थिति का हंमेश ध्यान रख कर चलना यही स्त्री का सर्व प्रथम कर्तव्य है। पति के प्रति हंमेशा सेवाभावी हो कर बाल बच्चों को हंमेशा सुन्दर आचरण की शिक्षा दे, वही नारी नारी है। और वही अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपनी आत्मा का, कुटुम्ब का तथा अपने पति-पुत्र का कल्याण करनेवाली है।

मैंने देखा है कई कुटुंबो में, जहां आठ-आठ दस-दस दिनों तक मांबाप, भाई बहिन, लडके लडकी कुटुम्ब के सभी आदमी घर में कभी एकठे एक जगह होते ही नहीं। लडका कहीं हैं तो मां कहीं है। इस तरह यह सारी परिस्थिति ही बिगड

गई है। हमारे जीवन के विकास में मातापिता के शुद्धाचरण सुन्दर से सुन्दर कार्य कर सकते हैं। और सहायभूत हो सकते हैं। इस तत्त्व को अगर माता-पिता समझ लें तो हमारे जीवन में एक बडा भारी परिवर्तन हो सकता है। माता अगर अपने कर्तव्य का पालन करनेवाली है तो ऐसी माता की सन्तान भी आदर्श और कर्तव्य-परायण होगी इसमें कोई शक नहीं।

(४) चौथा गुण है माता का सदाचार। अगर माता सदाचारिणी नहीं है, सुशीला नहीं है और अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों से भरी है, तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इसका बचोंपर बहुत ही बुरा असर होता है। आज के लडकों पर बुरा असर पडने में माताओं का सदाचारिणी नहीं होना प्रमुख कारण है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। और अगर माता सदाचारिणी है, शुद्ध उच्च विचारवाली है, तो उसका लडका भी वैसा ही सदाचारी और सुशील होगा, इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। और ऐसी ही माता की सन्तान अपना विकास करके अपने आत्मा का कल्याण कर सकती है, और विश्व के लिये एक आदर्श महापुरुष का पद पा सकती है।

इसलिये सदाचार का पालन करना स्त्रियों के लिये उत्तम और सर्व प्रधान धर्म है। नियमित दृढतापूर्वक निष्ठा और भक्ति के साथ सदाचार का पालन करनेवाली माता अपने आत्मा का तो कल्याण कर ही सकती है, बल्कि अपनी सन्तान के जीवन-विकास का मार्ग भी प्रशस्त करती है। उन्हें दुनिया में एक अनुकरणीय शुद्ध आचरणवाला महान् नागरिक बना सकती है। यही माता की सब से बडी देन है और यही मातृत्व का पूर्ण विकास और चरम सीमा है।

प्रिय सज्जनो और बहिनों,

आपके समझ में आगया होगा कि वही माता माता है, जो हमेशां प्रसन्नवदन रहती है, जिसके कारण घर में कभी क्लेश नहीं होता, जिसको देखकर छोटे बडे सब आनंदित रहते हैं। जो हमेशा सत्य और प्रियवचन बोलती है। जो कर्त्तव्यपालन में निरंतर मशगूल रहती है और जो पवित्रा-सदाचारिणी है।

इन गुणों के रखनेवाली माता के गर्भ में रहे हुए बालक के जीवन पर बहुत ही सुंदर असर पडता है। उसके जीवन में, गर्भ में से ही उत्तम गुण ओतप्रोत होजाते हैं।

इससे विपरीत दुर्गुणों से भरी हुई माता का कमनसीब गर्भ भी दुर्गुणों से लदकर के बाहर आता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि–माता की रहन, सहन, खान, पान, विचार, क्रियाएं–सभी का असर गर्भ में रहे हुए बालकपर अवश्य होता है। इसी लिये मैं कहता हूं कि मनुष्य जीवन के विकास का प्रारंभ गर्भसे प्रारंभ होता है, और उसका प्रधान और प्रथम कारण माता है।

भाईयों और बहिनों !

अब मैं माता के गर्भ से बच्चे के बहार निकलने के बाद उसके जीवन का विकास किस पर निर्भर है, वह आज बतलाऊगा ।

प्रारभिक सस्कार

बच्चा जिस समय गर्भ से बहार निकलता है, वहां से लगाकर तीन वर्ष तक उसके जीवन–विकास का आधार माता पर है । इसीलिये मैने आपको कहा है कि माता में चार गुण अवश्य होने चाहिये, क्योंकि माता के आचरण का असर बच्चों पर ससार में आने के बाद भी तीन वर्ष तक बराबर होता रहता है । इन चार गुणों का वर्णन कल करचूका हू ।

मनुष्य जीवन मे उच्च से उच्च शिक्षा का केन्द्र (University)–मनुष्यत्व की बुनियाद अगर कही पर है तो वह माता के पास है । वहा बालक गर्भ से बहार आने के बाद ३ वर्ष तक अध्ययन करता है । मेरा ऐसा विश्वास है कि माता तीन वर्ष तक अपने सस्कारों से और आचरणों से जो शिक्षा बच्चों को देती है, वह शिक्षा आजकल के B A M A से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है । ये तीन वर्ष तक की शिक्षा से प्राप्त हुए बालक के सस्कार जीवनभर कायम रहेंगे । यह सवाल दूसरा है कि वे सस्कार अच्छे हों या बुरे । जैसे भी सस्कार माताने डाले होंगे, वे बराबर कायम रहेंगे । यह एक वैज्ञानिक सत्य है । आजकल की स्कूलों में से निकलनेवाले B A M A विद्यार्थियों की बुराईयों का हम देखते हैं । नाना प्रकार के व्यसनों से वे भरे होते हैं । पर इन सब बुराईयों के लिये पूरा दोष आजकल के शिक्षण को देने के पूर्व, उनकी माताओं को भी देना चाहिये । जिन माताओंने अपनी निजी युनिवरसीटी में पढाते समय बालकमें

सुन्दर संस्कार नहीं डालें है, वे लडके आगे जाकर कितने भी बडे और शिक्षित क्यों न हो जायं, उनमें से बचपन के संस्कार प्रायः नहीं जा सकते, उनमें वह असर रहेगा, जो कि माताने अपने असद्व्यवहार और दुराचरण द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने बालकों में डाले हैं। यह एक मनोविज्ञान का रहस्य है। बालक में माता के आचरण का प्रभाव रहेगा। माता की एक एक हरकत काम, बोली, आचरण, मनोभाव और विचारों का असर बालक पर होता है। आप देखते हैं, माता की गोद में जब बालक रहता है और माता अपने बच्चे को गोद मे लिये हुए होती है, बच्चा अनिमेष दृष्टि से माता के चेहरे की ओर देखता रहता है। आप को पता है, इस बात के रहस्य का कि बालक अपनी आंखो से माता के चेहरे पर क्या क्या देख रहा है? पता है आपको इसका? नहीं। आप को शायद पता नहीं है। क्षण क्षण में माता के चेहरे पर जो भाव परिवर्तन होता रहता है, उन सब का बालक सूक्ष्मता से अध्ययन करता है। और उन भावों को ग्रहण करता जाता है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जो आदमी जैसे भी बुरे या अच्छे विचार अपने मन में लाता जाता है, उसका ही उसके चेहरे पर जलकता जाता है। अब अगर माता हर समय अपने मनोयोगों को शुद्ध बनाये रखती है, और हंमेशा खुश मिजाज और शुभ भावना भानेवाली है, तो उसकी वैसी ही शुभ झलक उसेक चेहरे पर आती जायगी और उसका बालक पर अच्छा ही असर होगा। हम यह समझते हैं कि छोटा बच्चा क्या समझता है? हम समझते है कि हम अगर क्रोध करते हैं, झुठ बोलते हैं, कपट करते है तो इस में बच्चा क्या समझता है?। पर ऐसा समझना हमारी भारी भूल है। वह तो इतना समझ लेता है, जितना बडे से बडा आदमी भी नहीं समझ सतका। कारण, उसका जीवन विकार रहित और कुदरती जीवन होता है। हमारा जीवन तो कृत्रिम बन गया है। हम हरेक चीज को बनावटी बना सकते हैं। बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। उस का जीवन निर्दोष और स्फटिक जैसा है।

इसी लिये शास्त्रकारोंने कहा है "योगियों का जीवन और बालको का जीवन एक समान होता है।" मनुष्य जिस समय योगी अवस्था में आता है, वह शुद्ध, निर्मल, निर्दोष बालक जैसा हो जाता है। इन दोनों का जीवन निष्पाप जीवन है। इस में कोई कृत्रिमता नहीं, बनावटीपन कुछ नहीं—सब सरल—शुद्ध—साफ—निर्मल—निष्पाप। क्या ही सुन्दर जीवन है। यही जीवन आत्म—कल्याण के लिये बुनियाद

सरीखा है। इसकी मिसाल में आप को देता हू कि बालक कितना सरल और निष्क्रोध होता है। आप किसी भी छोटे बालक को देख लीजिये। माता उस पर आखें निकालती है, क्रोध करती है। पर बालक? वह जरासा सहम जायगा और फिर भूल कर तत्काल माता से लिपट जावेगा। माता चाहे कितना ही क्रोध करती है, पर कुदरती जीवन ऐसा है कि वह क्रोध करनेवाले से भी प्रेम ही करता है और जाकर उससे लिपट जाता है। अब हम बडी उम्र वालों का बनावटी जीवन देखिये। एक बडी उम्र का युवान है। सेठजी से बोलाचाली हो जाने, वह चार दिन रुठ कर बैठ जायगा। इस का कारण यही है कि हमारा जीवन कृत्रिम बन गया है। दम्भ, छल, प्रपञ्च, झूठ, पाप ये सारी बातें हमारे जीवन मे घुस गई है।

इस लिये मित्रो, याद रखिये, तीन वर्ष तक बच्चों की शिक्षा का आधार, उस के जीवन-विकास का आधार उसके आत्मा के कल्याण का आधार मात्र एक सुशिक्षिता, सच्चरित्रा, सदाचारिणी, शुभ भावनावाली और सद्कर्तव्य करनेवाली माता ही है।

माता का स्थान

यहा से आगे चलिये-तीन वर्ष की अवस्था के बाद ८ वर्ष की अवस्था तक बालक के जीवन-विकास का कोई भी अगर आधार है तो वह उसका पिता है।

इस उम्र में बालक के जीवन पर पिता के आचरण का असर पडने लगता है। जबकि पिता बालक की अंगुली पकडकर दुकान पर लेजाता है। और उसे एक जगह बिठा देता है। पिता व्यापार रोजगार करता है। पिता समझ रहा कि मैं जो अनीति करता हू, चोरी करता हू, पाप करता हू, झूठ बोलता हू, छल-प्रपञ्च कर रहा हू, इन सब को यह छोटासा बच्चा क्या समझता है? पर यह समझना भूल है। लड़का इन बातों को खूब समझ रहा है। वह खूब जानता है कि पिताने ७ हाथ नापा है और ६॥ हाथ काटा है। यह खूब समझ रखना चाहिये कि अगर कोई तुम्हारा दोष पकडनेवाला है, तो वह बालक भी है पुलीस भी इस तरह पूरे तौरसे नहीं पकड सकती। घर के गुप्तसे गुप्त काम का-पाप का पता अगर किसी से लेना हो तो उसके बालक से ले लिजिये। वह बालक निर्दोष है-सची सची बात कह देता है। झूठ क्या है, यह वह नहीं समझता। आप लोग उन्हें बालक समझ-कर अपने असद् आचरण से इरादापूर्वक झूठ का पाठ सिखला रहे हैं। इन पर बुरा

असर डाल रहे हैं। अनीति, अन्याय, अत्याचार, छल, प्रपञ्च, दगा, अपशब्द ये जितनी बातें होती हैं, ये सारी बातें बालक को सिखानेवाला एक मात्र उसका पिता है। जीवन के संस्कार, जीवन के विकास का सत्यानाश करनेवाला अगर कोई है तो उसका पिता है। जो अपने कुछ स्वार्थ में आकर इस प्रकार के आचरण करता है। और अपशब्द बोलता है जिसका असर बालक के जीवन विकास के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध होता है।

बालक के सामने कैसा व्यवहार करना चाहिये? एक सुसंस्कारी सदाचारी पिता, नेक जीवन रखनेवाला पिता, मधुर पवित्र वाणी बोलनेवाला पिता बच्चे को पास बिठाकर, उसको साथ रखकर सुन्दर से सुन्दर असर डाल सकता है। आठ वर्ष की उम्र तक जीवन के विकास का सुन्दर से सुन्दर साधन बालक के लिये कोई है तो एकमात्र पिता है। अगर आप व्यसनी हैं, अनीति करने वाले हैं, दुराचारी हैं, अपशब्द बोलनेवाले हैं, अनेक प्रकार के दुर्गुणों को रखनेवाले हैं, ऐसी हालत में अगर आप चाहे कि आप का बालक नेक, सदाचारी, गुणी, मधुरभाषी, सत्य बोलनेवाला और हरतरह से योग्य हो और एक सच्चा नागरिक बन जाय, तो यह कभी नहीं हो सकता—

एक गुजराती कविने कहा है—

> दुष्कर्मना करनार बुद्धिमान् वत् वातो करे।
> तो पण कदि ते लोकना ऊंडा हृदयमां ना ठरे।
> जन शुद्ध जो आचार राखी, मौन ने धारण करे,
> तो पण सर्व जन बोध लेवा तीव्र आतुरता धरे॥

हमारे बालक के जीवन के विकास पर हमारा प्रभाव बोलने से नहीं पडता, व्याख्यान से नहीं होता, उपदेश व शिखामण से नहीं, पर हमारे मौन रहते हुए शुद्ध-सात्विक सदाचारी जीवन से होता है। इसे आप ठीक तरह से समझ लें। सच्चा शिक्षण अक्षरज्ञान नहीं; B. A. M. A. की डीग्री हासिल कर लेना नहीं, माता पिता दोनों द्वारा, अपने शुद्ध सच्चे आचरणसे-उच्च पवित्र भावनामय शुद्ध जीवन के आचरण से अपने बालक को दिया गया शिक्षण ही सच्चा शिक्षण है। अगर यह नहीं है, तो दूसरा अक्षरज्ञान का ऊंचे से ऊंचा शिक्षण व्यर्थ है—हानिकारक है। शुद्धाचरण द्वारा मात-पिता के घर-स्कुल में दी गई शिक्षा ही बालक के जीवन-विकास में पूर्ण सहायक है। माता पिता का घर ही बालक की सच्ची शिक्षणशाला है।

पिता का प्रभाव।

आठ वर्षतक बालक बराबर मातपिता के आचरण को देखता रहता है। किसीकी उम्र चालीस वर्ष की है। और उसके पिता ६०-७० वर्ष के हैं। ४० वर्ष के वे अपने पिता का अपमान करते हैं-तिरस्कार करते हैं, हरतरह से परेशान और दुःखी करते हैं। चाहते हैं कि अब बूढा चला जाय तो अच्छा। इत्यादि बातें अपने पिता के साथ में जो ४० वर्ष का मनुष्य करता है, उसका आठ वर्ष का बालक अपने पिता के आचरण को देखकर सोचता है. मेरे पिता उनके पिता के साथ किस तरह आचरण करते हैं? आप समझ सकते हैं कि, जो पिता पूज्य है, जो माता पूज्य है, उन पूज्य मातपिता के साथ में ४० वर्ष का एक मनुष्य कठोरता के साथ-अविनय के साथ व्यवहार करता है, और वही पिता अपने ८ या उस से अधिक वर्ष के बालक को शिखामण देता है कि, तुम्हे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, इसका क्या असर उस बालक पर होगा? क्या यह शिक्षा उस बालक को लगेगी? नहीं, यह मौखिक शिक्षा उसपर कोई असर नहीं करेगी। सच्ची शिक्षा तो वह उसके आचरण से ही लेगा। इस मौखिक शिक्षण से तो वह ऊल्टे पिता को कपटी समझेगा। समझेगा कि "मेरा चालीस वर्ष का पिता अपने ७० वर्ष के पिता के साथ में किस नालायकी के साथ में व्यवहार कर रहे हैं? । और मुझे बहका रहे है-झूठा उपदेश दे रहे हैं।" अब इन बातों से उस छोटे बालक पर कितना बुरा असर होगा? यह आप खुद समझ लीजिये। दस बारह वर्ष का बालक दुराचारी होजाता है, अपशब्द बोलता है, लडता है-झगडता है। ४० वर्ष का पिता बालक से कहता है: "तुझे ऐसे शब्द नहीं बोलना चाहिये।" पर, खुद दुकान पर बैठकर ग्राहकों के साथ में, घर के अन्दर बहु बेटियों, माता-पिता, स्त्री, पुत्र के साथ में बुरा व्यवहार करता है। अपशब्दों का उच्चारण करता है। इसका असर उस बालक पर कितना बुरा और घातक होता होगा, यह आप आसानी से अनुमान कर सकते हैं। यही कारण है कि-हमारे बच्चों का जीवन नहीं सुधरता। और हमारे बच्चे हाथ से निकल जाते हैं। यह सब क्यों? इसका कारण एकमात्र पिताका आचरण है। खुदने अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया। अपना आचरण अगर निर्मल, शुद्ध और उच्च रक्खा होता, तो आज अपने बालक को उपदेश देने की कोई जरूरत नहीं होती। बालक को आठ वर्ष तक पिता इस अपने हीन आचरणों से भरे हुए

वातावरण में रखकर फिर शाला में भेजता है। उसके जीवन-विकास के मार्ग में दीवाल खडी करके हम उसे शाला में भेजते हैं। इस विश्वास से कि-वह वहां लिख पढकर अपना जीवन विकास करेगा। उसके साधन इकट्ठा करेगा। कितने अफसोस और दुःख की बात है? हम हर्षित होते हैं-बताशें बांटते हैं, इस खुशी में कि-हमारा बालक पढने को जा रहा है। पिता समझता है: आज हमारा बालक जीवन-विकास के लिये शिक्षालय में भर्ती हो रहा है। कितना अफसोस है कि वह यह भूल जाता है कि बालकने आठ वर्षतक मेरे पास रहकर कितना और क्या अभ्यास किया है? उसकी माता प्रसन्न होती है और समझती है कि मेरा बालक अब शिक्षक-गुरु के साथ में बैठेगा, अब यह सुधर जायगा। शिक्षित और होनहार होगा और अपने जीवन का विकास करके आत्मा के कल्याण पथ पर अग्रसर होगा। वाह रे अज्ञान! अफसोस-महा अफसोस!-महाअफसोस! आठ वर्षतक माता-पिता के आचरण से शिक्षा लेने के बाद वह बालक शाला में जाकर क्या कर सकता है?

शिक्षण का स्थान

आजकल हमारी शिक्षण-पद्धति का क्या हाल है? हमारा आज का शिक्षण, जीवनविकास के लिये, आध्यात्मिक जीवन के लिये, आत्मिक कल्याण के लिये, धार्मिक उन्नति के लिये और सामाजिक उत्थान के लिये कहांतक उचित है? यह मैं आपको आज थोड़ा बतलाना चाहता हूं। लेकिन साथ ही साथ मैं पहले आपको भूत-काल की ओर ले जाउंगा।

हमारे हिंदुस्तान में भूतकाल में क्या शिक्षा-पद्धति थी? कैसा शिक्षण दिया जाता था और किस प्रकार हमारे बालक को एक सच्चा नागरिक, विद्वान्, वीर, दानी, धर्मात्मा और कर्मवीर बनाया जाता था? आपने शायद प्राचीन इतिहास को पढा होगा, तो मालूम हुआ होगा कि हमारे यहां शिक्षण-पद्धति दो प्रकार की हुआ करती थी:

(१) आश्रम पद्धति और (२) विद्यापीठ की पद्धति।

हिन्दुस्थान में आश्रम बहुत थे। इतिहासकार कहते हैं कि-हिन्दुस्थान में इतने आश्रम थे कि प्रत्येक ४०० मनुष्यों के पीछे एक एक आश्रम बना था। जिस समय बंगाल को अंग्रेजोने छीना, उस समय अकेले बंगाल में ८० हजार आश्रम थे। ये वे आश्रम थे, जिन में एक एक गुरु ५०-५०, ४०-४०, ३०-३० बालकों को पढाते थे और उनको शिक्षित, सदाचारी और वीर नागरिक बनाते थे। हिन्दुस्थान में इन आश्रमों को चलानेवाले साधु-सन्यासी नहीं

थे। आश्रम चलानेवाले तीसरे आश्रम में गये हुए वानप्रस्थ होते थे। वे आश्रम कैसे थे? । यह भी मैं आपको बताता हू। आज हमारे मारवाड, मेवाड, काठियावाड में गुरुकुल चलते हैं, बहुतसी पाठशालाए है, छात्रालय भी है। परन्तु उस आश्रम का मुकाबला करनेवाली एक भी संस्था नहीं है। न जैनों में है, न दूसरों में है। आश्रम का अगर नमूना देखना है तो आज भी बगाल म चले जाइये। वहा के छोटे छोटे गॉवो में जाइये। वहां आपको अब भी थोडे बहुत रूप में दिखाई देंगे। मै खुद बगाल में विचरा हू। ऐसे ऐसे गॉवों में विचर कर देखा है कि-एक एक आश्रममें एक एक गुरु ४०-५० विद्यार्थियों को रखता है। उन्हें शिक्षण देता है, और विद्यार्थी अपने गुरुओं की सेवा करते हैं। और गुरु के पास से शिक्षण लेते हैं। ब्रह्मचर्य और सदाचार का पालन करते हैं। बूरी वासनाओं से दूर रहते हैं। और अपने जीवन को सुन्दर से सुन्दर सदाचारमय बनाकर देश और जाति के आशा के केन्द्र बनते है। देश और जाति ऐसे ही होनहार, सदाचारी, ब्रह्मचारी नागरिकों को पाकर निहाल होते है-गौरवशाली होते हैं? । ऐसे आश्रमो का बगाल में आजकल टोल Tool कहते है। हिन्दुस्थान में ऐसे ही आश्रमों में विद्यार्थियों के जीवन को घडा जाता था। वहा पर सभी जीवनोपयोगी विषयो की शिक्षा दीजाती थी। ये विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, गुरुओं की सेवा करते हुए कला कौशल्य और शारीरिक व्यायाम करते हुए, शहरों से दूर-गाँवों से बहार प्रकृति की गोद में विचरण करते और पलते हुए, धर्म का शिक्षण लेते हुए मन-वचन-काया की प्रवृत्तियों को वश में रखते हुए सुन्दर सदाचारी जीवन व्यतीत करते थे। यह थी हमारी प्राचीन शिक्षणपद्धति।

आप पूछेंगे, आठ वर्ष में गया हुआ बालक कितने वर्ष तक आश्रम में रहता था? छान्दोग्योपनिषद् में कहा है कि एक विद्यार्थी गुरु क पास ४२ वर्ष की उम्रतक और कम से कम २५ वर्ष की उम्रतक रहता था।

आठ वर्ष की उम्र तक सुसस्कारी माता पिता क पास सुन्दर से सुन्दर सस्कारों को लेकर गुरुकुल में २५ वर्षतक ब्रह्मचर्य पालन करते हुए, गुरु की सेवा करते हुए, शिक्षा ग्रहण करनेवाला, ससार की वासनाओं से दूर रहनेवाला नीति और सन्मार्ग पर चलनेवाला वह कर्मवीर बालक जब गुरु का आशीर्वाद लेकर आश्रम से निकलता होगा, तो कितना महान् नागरिक होता होगा? हम-आप अनुमान लगा सकते हैं। इन्हीं होनेहार कर्मवीर नौनिहालों की बदौलत हमारी सस्कृति और सभ्यता

उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गई थी और देश, धर्म और जाति महान् ऐश्वर्य और वैभवसम्पन्न थे।

पर आजकी हमारी शिक्षण-पद्धति, उससे निकलनेवाले शिक्षित नवयुवक और उनके जीवन को जब मैं देखता हूं तो रोना आता है। कहां है वे हमारे बालक, कहां है वे हमारी शिक्षण-संस्थाएं और कहां है हमारे सुन्दर सुशिक्षित बलशाली निर्मल जीवन वितानेवाले वीर सदाचारी नागरिक ?

आज तो इन शिक्षण-संस्थाओं से निकलते हैं B. A. M A पास किये हुए, दुबले पतले क्षीणकाय, दुर्गुणों से भरे हुए ग्रेजुएट। जिनके पास, सिवाय नौकरी करने और कुर्सियों पर बैठकर अपनी जिन्दगी गुजार देने के, और कोई साधन अपना पेट भरने का भी नहीं है। अगर नौकरी नहीं मिली, बेकार रहे तो फिर भूखों मरने की नौबत आजाती है। करांची में एक 'बेकार कोन्फरन्स' हुई थी। जहांतक मेरा ख्याल है, वहां की कोंग्रेस-कमेटी की तरफ से वह हुई थी। उस समय मैं भी वहां था। मुझे भी उसमें शामिल होने का निमन्त्रण मिला था। मेरा भी एक विषय था। मैंने कहा 'आज हिन्दुस्थान में पढे लिखे ग्रेजूएट जितने बेकार युनिवरसीटियों से विकलते है, उतने अन्य वर्ग में से नहीं। किते बेकार हिन्दुस्थान में युनिवरसीटियों की डीग्री लेकर निकलते हैं। इसका अगर अनुमान लगाना हो तो किसी भी अखबार में एक नौकरी के लिये विज्ञापन निकाल दीजिये। देखिये आपके पास कितनी अर्जियाँ आती हैं। इस बात का मुझ से ज्यादा अनुभव आपको है। मैं अनुभव कर रहा हूं कि इस तरह की बेकारी बढ रही है कि इतनी डीग्रीयों को हासिल करते हुए, इतने बुद्धिमान होते हुए एक शिक्षित ग्रेजुएट के पेट की रोटियों के लिये मारामारा फिरना पड़ता है। कितनी दुर्दशा देश की हो रही है ? हमारे अधःपतन की चरमसीमा होचूकी। किसको दोष दिया जाय ? हम समझ नहीं सकते कि किस प्रकार ये बातें हो रही हैं।

शिक्षण ? शिक्षण हमारे यहां किसलिये होता था ? । हमारे यहां तो मुद्रालेख था:

"सा विद्या या विमुक्तये"

वही विद्या विद्या है, जो हमारे आत्मकल्याण के लिये साधनभूत हो। विचार, उच्चार और आचार-इन तीन बातों को जबतक कोई सिखाता नहीं, वहांतक कोई विद्या विद्या नहीं। अगर हमारे शिक्षणने हमें पवित्र विचार नहीं दिये, अगर उस विद्या से हमारी भावनाएं, हृदय के विचार शुद्ध और पवित्र न हुए तो वह विद्या भी किस

काम की है। हमारे विचार उच्च और शुद्ध हों, यही शिक्षा का वरदान होना चाहिये।

दूसरा है उच्चार-शुद्ध उचार, पवित्र और मधुर भाषा हर किसीके साथ बोलें। भाषा ऐसी मधुर हो कि मनुष्य पर एक प्रकार का प्रभाव पडे। इस प्रकार की भाषा अगर हमारा शिक्षण हमें देता है, तो हमारी विद्या सफल है।

तीसरा है आचार character जीवन की पवित्रता और स्वस्थ, सुदृढ, बलशाली पुष्ट शरीर। शिक्षण वही शिक्षण है जो हमें पवित्र जीवनवाला, स्वस्थ, सुदृढ शरीर-वाला, सदाचारी वीर नागरिक भी बनावे। पर आज का शिक्षण? क्या कहें इसके विषय में? हमारे शरीर कृश हो रहे हैं। न आध्यात्मिक सुख रहा, न धार्मिक और गार्हस्थ्य सुख। जीवन-विकास की कोई बात ही नहीं रही है। शारीरिक सुख तो निरा स्वप्न हो गया है। बालक कालेज में जाते हैं, कोट पतलून पहनकर चलते फिरते जब मैं देखता हू तो यही कहता हूः " महेरबानी करके अपने बदन को खुला कर दिखलाईये-कपडे उतार दीजिये। मैं आपके शरीर को देखना चाहता हु। लोग समझते होंगे कि-पतलून इतना चौडा है, तो इनके पैर भी इतने मोटे होंगे। परन्तु उनको देखलिये जाय तो मोर के पैर के बराबर दिखते हैं। शरीर की पसलीए साफ साफ दीखती है। यह होती है इनकी शारीरिक शक्ति और गठन! और पढते क्या है? बी. ए क्लास में। शरीर दुर्बल है, छाती छोटी है, हाथ-पैर पतले दुबले, आखे गढी हुई है। शरीर नष्ट किया जा रहा है। ज्यों ज्यों ऊंचे पढते जाते है, युवानोंका शारीरिक स्वास्थ्य नीचे गिरता जाता है। शरीर दुर्बल होता जाता है। यह है आज के शिक्षण का प्रतिफल। आज की विद्या हमारे शारीरिक विकास और जीवन-विकास दोनों को नष्ट कर रही है।

आज हमारे शिक्षण की दशा क्या है? सालभर में एक गुरु की जगह अनेकों गुरु होते जाते है। पलपल में गुरु बदले जाते है। एक शाला में ५ ६ पीरीयड होते हैं। एक एक पीरीयड में एक एक गुरु बदलता जाता है। कला, इतिहास, भूगोल, गणित, व्याकरण आदि के कई पीरीयड होते हैं। ४५-४५ मिनीट का एक पीरीयड होता है। ४५-४५ मिनीट के एक एक पीरीयड में गुरु छम छम करके आते हैं और घम घम करके चले जाते हैं। मुझे समझ नहीं पडता कि बालक किसको गुरु माने? और किसके आदर्श को स्वीकारे? जिसका लक्ष रखकर अपना जीवन उसीके अनुसार ढालने का प्रयत्न करे? यह तो रोज की बात हुई। ऐसे गुरुका भी साल साल में तो तबादला

होता ही जाता है। बल्कि कई जगह तो एक साल में न मालूम कितने ही गुरु आते जाते रहते हैं। इस हालत में हमारे जीवन का क्या सुधार और उन्नति हो? यही अफ़सोस है। हमारे मात-पिता समझ रहे हैं कि लड़का इस साल परीक्षा में पास हुआ। B. A., M. A. में जावेगा। उन्नति कर रहा है। उधर भाई साहब बिचारे हो रहे हैं शरीर, जीवन, भावना और पवित्रता से नष्ट और पतित। शरीर से गये, जीवन से गये, माता से गये, पिता से गये। सब ओर से गये ही गये। हाथों से भी गये और पैरों से भी गये।

आजकल की तरह अनेक गुरु पहले नहीं होते थे। एक ही गुरु के पास २५ वर्षोंतक पढते जाते थे। जब २५ वर्षतक रहकर सदाचारी जीवन वाला बनकर विद्यार्थी निकलता था, उस समय गुरु क्या करते थे? उन्हें आशीर्वाद देते थे। आजकल के निकलनेवाले को एक कफनी दीजाती है कफनी। और बनकर निकलता है एक जेन्टलमेन। ऐसा जेन्टलमेन, जैसा किसीने कहा है:--

कोटं च पत्तलूनं च मुखे चिरुटमेव च।
व्हाईट-बूटसमायुक्तो जेन्टलमेनः स उच्यते ॥

अंग्रेजी में जेन्टलमेन का अगर अर्थ किया जाय तो इसका मतलब होगा-आदर्श पुरुष।

पर आज का जेन्टलमेन ऐसा नहीं होता। आज जेन्टलमेन तो वह है-शरीर पर कोट, पैरों में पतलून और मुंह में चिरुट डाले होता हो और सूट-बूट डाले बीबी का हाथ बगल में लिये हवाखोरी करने के लिये जाता हो, इसका नाम है-जेन्टलमेन।

देखिये हमारा मनुष्यत्व, हमारी संस्कारिता, आदर्शता, गरज सभी बातें नष्ट हो रही हैं।

हमारे गुरुओं के पाससे अध्ययन करके जो विद्यार्थी निकलता था, उसको कोई मेडील नहीं दिया जाता था। आशीर्वाद मात्र दिया जाता था। वे भी मात्र गुरुओं का आशीर्वाद ही चाहते थे। चाहे कोई समृद्ध हो, गरीब हो, चाहे वह कैसा भी हो, आशीर्वाद गुरु का चाहता था। उसीको वह अपना कल्याण का मार्ग समझता था। गुरुजी आशीर्वाद देते थे। क्या आशीर्वाद देते थे: 'मातृदेवो भव!' 'पितृदेवो भव!' 'आचार्यदेवो भव!' 'अतिथिदेवो भव!' 'सत्यं वद!' 'धर्मं चर!'।

यह उनका टाईटील होता था । माता को देवी समझना, उसकी सेवा करना, शिक्षित होकर माता का अपमान नहीं करना, लेकिन अपनी माता को देवी समझना। पिता को देव समझना । गुरु को देव समझना । धर्म का आचरण करना । अतिथियों की सेवा करना । और झुठ कभी न बोलना । इतनी आशिष लेकर बहार निकलता था। यही हमारे जीवन का ध्येय था । वह बहार निकलकर चाहे कहीं जावे, कभी भूखा नहीं मरता था । अपनी शक्तियों से बराबर पैसा पैदा करके जीवन का निर्वाह सुख-पूर्वक करता था। पिताजी के हजारों रूपया खर्च करवाकर, पिता का दिवाला निकलवा-कर और जिनकी शक्ति न हो तो, उनको कर्जदार बनाकर भी आज का विद्यार्थी अपना और अपनी बीबी का गुजारा करने की शक्ति नही रखता। उस समय ऐसा नहीं होता था। अपने ही पैरों पर खडा होता था, स्वाश्रयी होता था। यह तो थी हमारी आश्रम पद्धति ।

दूसरी पद्धति थी विद्यापीठों की–काञ्ची, नालन्दा, तक्षशिला, वल्लभीपुर, बनारस इसी तरह मथुरा, अहमदनगर आदि हिन्दुस्थान में ठिकाने ठिकाने विद्यापीठ थे। इतिहास से मालूम होगा, वहापर हरप्रकार की कलाए पढाई जाती थीं। एक एक विद्यापीठ में १५०० शिक्षक अध्यापन का कार्य करते थे। शिक्षण लेनेवाले विद्यार्थियों में दूर-दूर के चीन, जापान के विद्यार्थी यहा पर आते थे। ऐसे विद्यालयों में रहकर बडी बडी विद्याए हासिल करते थे और अपने देशका नाम अमर करते थे। इतने सुन्दर से सुन्दर शिक्षण को पानेवाला, अपनी आत्मा का कल्याण करनेवाला, देश, जाति और धर्म का गौरव कितना बढानेवाला होता होगा ? इसका अनुमान आप कर सकते हैं।

अब वर्तमान में हमारी शिक्षण पद्धति क्या है और किस प्रकार का जीवन है यह मैं पहले दिखला चूका हू। विशेष क्या कहू ? सचमुच हम गिर गये हैं। भले ही देश में अक्षरज्ञान के शिक्षण का प्रचार हो रहा हो, आप लोग इस बात को समझ लें कि आजका शिक्षण हमारे जीवन को नष्ट कर रहा है।

मैं शिक्षा का विरोधी नहीं हू। लेकिन शिक्षा तो वही शिक्षा है-उसे ही मैं तो शिक्षा कहूगा, जो शिक्षा हमारे जीवनविकास में साधनभूत हो। आज तो हमें एक नया शिक्षणक्रम चलाना है। ऐसा शिक्षणक्रम तो नवीन पद्धति के शिक्षण के साथ में प्राचीन पद्धति को लेकर बना हो तो हमारा कल्याण हो सकता है-भला हो सकता है और वही विद्या फिर हमारे जीवनविकास में साधनभूत हो सकती है। आप

जमाना फिर गया है। समय बदल गया है। आश्रमोंकी प्राचीन पद्धति में कुछ सुधारणा करके एक नवीन पद्धति का निर्माण करना चाहिये। और उसके अनुसार बालकों के जीवन को सुधारना चाहिये। हमें चाहिये कि नवीन में प्राचीन का मिश्रण करके ऐसी एक सुन्दर से सुन्दर प्रणाली का निर्माण करे जो व्यवहारिक और सुन्दर हो। और उसके अनुसार शिक्षण संस्थाएं कायम करें। ऐसी संस्थाओं का प्रसार करने के लिये सभी अपना अपना सहयोग दें।

भाइयों और बहनों।

शिक्षण, यह भी जीवन विकास का व्यावहारिक साधन है। और यह शिक्षण हम लोगों को कैसा मिलना चाहिये ? क्रम किस की तरफ से मिलना चाहिये ? प्राचीन भारतवर्ष में शिक्षण देने के क्या-क्या तरीके थे ? शिक्षण की कैसी पद्धतिया थीं ? उस शिक्षण से हमारा जीवन कैसा बनता था ? हम मे कौनसी शक्तियों उत्पन्न होती थीं ? इत्यादि बातें मैं कह चुका हूं।

वर्तमान समय तो हमारे सामने ही है। हम बडी उम्रवालों को जब देखते हैं, तो उनमें अनेक प्रकार के व्यसन एवं आचारहीनता पाते हैं। न केवल बड़ो में, युवकों में भी प्राय श्रद्धाहीनता, आचारहीनता, मर्यादाहीनता, विनय विवेक की शून्यता इत्यादि पाते हैं। हमें सोचना चाहिये कि इसका क्या कारण है ? यही कारण है, कि सब से प्रथम हमको माताओ की तरफ से जो सस्कार और शिक्षण मिलना चाहिये था, वह नहीं मिला। पिता से भी हमें नहीं मिला। बल्कि जो चाहिये उससे विपरीत मिला, सत्य के बजाय असत्य सीखे, नीति के बदले अनीति सीखे। सभ्यता के विरुद्ध असभ्यता सीखे, मधुरभाषिता के स्थान में कटु और बीभत्स शब्दों का प्रयोग सीखे। वहां से छूटकर स्कूलों मे जाने के बाद हमें जो शिक्षण मिलना चाहिये था, वह भी न मिला। आजकल की शिक्षण प्रणाली से हमारे जीवन में क्या आता है इसका इशारा मैं कल कर चुका। शरीर से कमजोरी, मन की दुर्बलता और ऐसी कोई शक्ति भी नहीं कि जिसके कारण से मनुष्य अपने जीवनयात्रा के लिये मैदान में आवे।

माता-पिता का उद्देश्य।

सच बात तो यह है कि जिस दिन से गृहस्थ अपने बालकों को विद्याध्ययन

के लिये शाला में भेजते हैं उस दिन से उन माताओं एवं पिताओं का लक्ष्य ही दूसरा रहता है। हमारा पुत्र विद्या पढकर सद्गुणी होगा, सदाचारी होगा, संसार में नाम कमाएगा, ये भावनाएं नहीं होती। लड़का थोडा लिख पढ लेगा, जरा शान शौकत में आवेगा तो हमारी बिरादरी में से जल्दी उसे लड़की मिल जायगी। ज्यों ज्यों लड़का उम्र लायक होता है त्यों त्यों मातापिताओं का लक्ष्य दृढ होता जाता है। और चुपचाप लड़के के लिये कन्या की शोध शुरु करते हैं। लड़के को यह बात मालूम होजाती है। इधर उम्र काम कर रही है, उधर मातापिता का प्रयत्न शुरु है। परिणाम यह आता है कि लड़के की वृतियाँ चंचल बनती हैं। कुछ समय के बाद मातापिता बच्चे को शाला में भेजने के उद्देश्य को सफल करलेते हैं अर्थात् बिरादरी में से एक लड़की प्राप्त करलेते हैं। लड़का " विद्यार्थी " नहीं, परन्तु विवाहार्थीपने को सार्थक करता है।

दूसरा उद्देश्य माता पिताओं का लडका दो पैसा पैदा करनेवाला होजाय, यह होता है। थोडा यानि तार पढने को आजाय, व्याज बटाव निकालने को आजाय अथवा किसी दफ्तर में क्लार्की के योग्य होकर १०-२० रुपये पेदा करे, यही लक्ष्य माता पिताओं का होता है और उस उद्देश्य में सफलता मिल गई, उसको विद्यालय में पढाना सफल हो गया समझते हैं।

प्रिय सज्जनो!

हमारे शिक्षण का यह ध्येय नहीं होना चाहिये। जैसा कि मैं कल कह चुका हूं। ' सा विद्या या विमुक्तये ' विद्या-शिक्षण वही है जो हमारी उन्नति के लिये, हमारे कल्याण के लिये, हमारे जीवनविकास के लिये हो। संसारयात्रा के लिये द्रव्यादि की प्राप्ति यह तो एक प्रासंगिक लाभ है। मूर्ख से मूर्ख भी अपना गुजरान चला सकता है। शिक्षण को गुजरान का साधन समझना, यह तो केवल अज्ञानता है। इसी प्रकार शिक्षण को गृहस्थाश्रमी बनने का—लड़की प्राप्त करने का मुख्य साधन बनाना, यह भी केवल अज्ञानता है। शिक्षा प्राप्त करके आदर्श बननेवाले सदाचारी, सुशील, तंदुरस्त, विवेकी और पवित्र आत्मा को पैसा और पत्नी इन दोनों के लिये मारे मारे फिरने की जरुरत नहीं रहती।

सज्जनों! अब मैं आप को यह दिखलाना चाहता हूं कि शिक्षण भी जीवनविकास के लिये साधन कब होता है? कोई भी वस्तु रक्षक भी बनती है और घातक

भी बनती है। उसका उपयोग करनेवाले पर आधार है। प्रायः देखाजाता है कि जिसको हम बहुत पढा लिखा समझते हैं, विद्वान् समझते हैं, उनमें जितना कपट, जितनी चालाकी, जितना झूठ और अपने पापों को छुपाने की होशियारी देखते है, उतना उन भोले भाले अनपढ मजदूरो में नहीं पाते। मानवता के स्वाभाविक गुणों की विपरीतता, पढा लिखा आदमी खुब बना लेता है, फिर भी जगत में अपने को उच्च दिखाने की कोशिश करता है। अनपढ आदमी ऐसा नहीं दिखायेगा, और न करेगा। इसका एक मात्र कारण यही है कि हमारी विद्या से मिली हुई शक्तियों का हम दुरुपयोग करते हैं। इस समय एक कवि की कविता मुझे याद आती है। उसने कहा है शिक्षितों के हाथ में दो शस्त्र आते हैं उन शस्त्रों का उपयोग कैसे करना चाहिये, यह दिखलाया है।

शिक्षितों के दो शस्त्र—

पढे लिखे मनुष्यों के पास दो शस्त्र आते हैं। एक दवात और दूसरी कलम। पुलिस में जब कोई भर्ती होने को जाता है तो उसे एक लट्ठ दिया जाता है या बन्दूक, इसलिये कि वह प्रजा, एव उसकी माल-मिलकत की रक्षा करे। परन्तु अक्सर देखा जाता है कि, उसका दुरुपयोग भी किया जाता है। जिसके लिये पढे लिखे लोग पुलिस के प्रति तिरस्कार-घृणा बताते हैं। परन्तु पढे लिखे लोग इस बात को भूल जाते है कि, उनको जो दो शस्त्र प्राप्त हुए है उनका सदुपयोग वे क्या करते हैं? । थोडा पढा लिखा हो या कितना भी डिग्रीधारी, परन्तु सब दावात और कलम अपने पास रक्खेंगे ही। इन दो चीजों का सदुपयोग करनेवाला मनुष्य अपनी सारी शिक्षा की सफलता—जीवनविकास के रूप में कर लेगा और यदि दुरुपयोग हुआ तो यही रक्षण करनेवाली चीज—जीवनविकास के साधन की चीज, उसीके आत्मा की घातक बन जायगी।

एक कवि था। नदी के किनारे बैठा हुआ कविताए बना रहा था। एक सज्जन पुरुष वहा चले गये। दवात को हाथ में लिया और कवि से पूछा:—

" स्याही छे के रोशनाई छे ? कहो कवीश्वर एमा। "

कवि उत्तर देता है:—

" भाई सुणो वस्तु बन्ने छे, तमे कहो तेमा "

नीति सहित जे सपूत लखे, ते रोशनाई अजवाळु
करे कपूत स्याही भुंसी धोळा ऊपर काळु।"

वह पुरुष कविसे कह रहा हैः "कविराज, यह बतलाइये कि इस दवात के अन्दर जो काला पानी है, उसको क्या कहना चाहिये ? स्याही ? या रोशनाई ?

मैं विद्यार्थियोंसे पूछता हूं, कोई जवाब दो कि क्या कहना चाहिये ?

कवि जवाब देता हैः "यह कालापानी स्याही भी है और रोशनाई भी।"

ताज्जुब करता है पूछनेवालाः–स्याही का स्वभाव काला करने का है, रोशनाई का स्वभाव उजाला करने का, ये दोनों नाम कैसे कह सकते हैं ?

जब ऐसी शंका होती है, तो कवि कहता हैः–" इसी स्याही का रंग काला होते हुए भी अगर इसका उपयोग **नीति और प्रामाणिकता, धर्म, सदाचार और सद्विचार** और ऐसी ही तमाम भली बातों के लिखने में किया जाय; मनुष्य, जगत् और आत्मा के कल्याण के साधन के रूप में किया जाय, तो यह लिखित ज्ञान प्रकाश का कार्य करेगा। अर्थात् वे महापुरुष–आत्मार्थी विद्वान् पुरुष, आज भी जब कभी लिखेंगे दुनिया के उपकार के लिये–भलाई के लिये–जगत् के कल्याण के लिये लिखेंगे। हजारों वर्ष वाद भी जगत् म ज्ञानरूपी सूर्य का उदय करेगा। इस अपेक्षा से यह **रोशनाई** है।

हमारे पूर्वज्ञानी महात्माओंने, हमारे आचार्योंने इसी काले पानी से शास्त्र लिखे, बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे, बड़ी बड़ी तात्त्विक बातें लिखी। वे आज ज्ञान का प्रकाश कर रही हैं। हमारी आत्माओं और जगत् को प्रकाश दे रही है। इसलिये यह रोशनाई है।

दूसरी तरफ कवि कह रहा है। आप आजकल के न्यायालयों में जाईये। किसी गृहस्थ की वहियों को न्यायालयों में लाया जाता है। सूक्ष्मता से देखा जाय तो झूठे झूठे दस्तावेज, झूठ झूठे आंकडे, खाते मालूम होंगे। ऐसे सैंकडों अनीति, प्रपञ्च, छल, कपट, जाल साजिशोंसे भरी रहती हैं। उनकी वहियाँ और कागजात, ये सारी बातें सफेद पर काला किया हाता है। बल्कि कवि मुझे इन शब्दों को वदलने के लिये कहे, तो मैं कहुं–

"करे कपूत, स्याही भूंसी मोढा ऊपर काळुं" अर्थात्–वह कपूत, स्याही भूंसकर सफेद पर काला नहीं करता है, बल्कि अपने मूंह को काला करता है।

एक आदमी जब दस्तावेजो को खोटा कहता है, और न्यायालय में पेश करवाता है, और वहा भी झूठा साबित होजाता है, अगर थोडी देरके लिये न भी हो, तब भी अगर आप जानते है कि यह सरासर अनाति पूर्ण और झुठा है, तो आपके दिलोंमे कितनी घृणा की भावना उस पर हो जायगी।

मैंने उज्जैन में अपने एक व्याख्यानमें कहा था कि, २००) रुपये देकर २०००) बनाकर लेनेवाले भी इस समय मौजूद है। क्या दवातका पानी उसके लिये स्याही नहीं है? मैं आप लोंगो को और दुनिया के लोगों को यही कहता हू कि आपके पास में ये दो दवात और कलम शस्त्र हैं। उपयोग कैसे करना इसकी आप पर भारी जिम्मेदारी है। अगर आपने इसका उपयोग अत्याचार, बेइमानी-लोगा के गलों पर छुरियाँ फेरने, अपनी सत्ता-अधिकार और शासन के मद में गरीबों पर नाना प्रकार के अत्याचार करने में किया, तो आप अपना मुह काला करते हैं। जीवन और आत्मा को काला करना हैं। और अगर इनका उपयोग सत्कार्य म, दुनिया की भलाई में करते हैं, तो आपके लिये प्रकाश करनेवाली रोशनाई है। आपका नाम अमर होजायगा। लाखों हजारों वर्ष पूर्व, जो महापुरुष हो गये है, जिनको हम प्रात काल उठकर नमस्कार करते हैं, नाम लेते हैं, इसालिये कि उनके पास यह जो शस्त्र था, इसका उन्होंने सदुपयोग किया था।

अब दूसरी चीज हमारे सामने आती है कलम याने होल्डर। हम लोग पढे लिखे कलम जरुर रखते हैं। चाहे हमने उसकी आकृति और नाम बदल दिये हो। पर रखते जरुर है।

आप को मालूम है-कलम लिखने के बाद कहा रखलेत हैं? आजकल तो लोग 'होल्डर स्टेन्डो' पर रखते हैं। पर पहले अक्सर कान पर रखते थे। कलम कान पर रहती थी। मुट्ठी में नहीं, बगल में नहीं, और कहीं नहीं। ऐसा क्यो था? कविने इसके ऊपर एक अति सुन्दर कल्पना की है। कवि कल्पना करता है कि-कलम कान पर इस लिये रक्खी जाती है कि, वह अपने मालिक के कान ये बात करती हैं।

जड पदाथ होते हुए कलम में इतनी ताकत होती है कि वह सबकुछ कर सकती है। अगर इस कलम से किसी का सत्यानाश करना हो, तो कर सकते हैं। जो काम लाठी से नहीं, बन्दुक से नही, तोप और बम के गोलों से नहीं हो सकता, परमात्मा बचावे, तुम्हारी इस कलम से उससे बहुत अधिक हो सकता है। इस लिये कलम को बडा डर

लग गया कि, हाय ! हाय ! मैं एक शस्त्र हूं, मेरा मालिक मेरा उपयोग न जाने किस तरह करे, जुल्म करे, अनीति-अन्याय करे, न जाने क्या क्या करे ? । इस लिये कान में बैठ कर मालिक से कहती है कि "मैं तेरे कान में सच सच बातें कहती हूं, मैं हर कीसी के हाथ में नहीं आती-मूर्खों के हाथ में नहीं आती। पढे लिखे लोगों के हाथ में ही आती हूं । अब तूं अपना धर्म-कर्म करले, दुनिया की-जगत् की भलाई कर के, अपना यश बढा ले। अपना जीवन सफल करले ! अपने आत्मा के कल्याण का साधन करले । अगर ऐसा नहीं हुआ तो फिर मेरा रखना बेकार है ।

मालीक पूछता है: तो मैं क्या करुं, जिससे तेरा रखना सार्थक हो ? तुझसे मेरा फ़ायदा हो ? कलम क्या जवाब देती है, वह कविके शब्दों में सुनिए—

साधुभ्यः साधुदानं, रिपुजनसुहृदाञ्चोपकारं कुरु त्वम्,
सौजन्यं बन्धुवर्गे, निजहितमुचितं, स्वामीकार्यं यथार्थम् ।
श्रोत्रे ते तथ्यमेतत् कथयति सततं लेखिनी, भाग्यशालिन् !,
नो चेत्, नष्टेऽधिकारे मम मुखसदृशं, तावकास्यं भवेद्धि ॥

अर्थात्—कलम कहती है: तुम इतना काम करलो । क्या करो ?

साधुभ्यः साधुदानं

अर्थात् जा सतपुरुष हैं, उन्हें साधु दान दो । ये दोनों शब्द अर्थसूचक हैं, साधु पुरुषको साधु दान दो ।

'साधुपुरुष कौन है ?' शास्त्रकार कहते हैः—

" साध्नोति स्वपरहितकार्याणि इति साधुः । "

अर्थात् जो जपना और दूसरों का कल्याण करता है, उन्हीं का नाम है साधु । ऐसे साधु पुरुष को साधुदान दो, साधुदान यानि पवित्र दान । पवित्र दान दो । आज आप का दान कितना पवित्र है ? यह तो परमात्मा जाने, या आप जाने। जो दान देना हैं वह बिलकूल पवित्र होना चाहिये । अगर अपवित्र दान दिया है, तो लेने वाला और देनेवाला दोनों ही डूबते हैं । गृहस्थ दान देने से पहेले सोच ले कि मेरा पवित्र अनाज-नीति से पैदा किया हुआ अनाज, पवित्र पैसा-नीति से उपार्जन किए हुए पैसे से लाया हुआ अन्न मैं दे रहा हुं या नहीं ? ।

यहा यह भी सोचने का है कि साधु पुरुष वही है, जो अपना और दूसरों का कल्याण करता है, जैसा कि मैं अभी कह चूका हूँ। न कि पैसा बहोरता हो-ऐश आरामों को भोगता हो। सांसारिक मनुष्यों की तरह मोह-माया में फसा रहता हो।

साधु है सो लेते नहीं, लेते है सो साधु नहीं

एक समय की बात है। अकबरने बीरबलसे कहा.—"बीरबल, खजानेसे दो हजार रुपया ले जाओ, और शेहर में जितने साधु हैं, उनको बाटदो"। बीरबल दो हजार रुपये लेकर दिनभर शेहरमें फिरता रहा, पर किसीको एक कोडी भी नहीं दी। शामको वापिस आकर दो हजार रुपये बादशाह को लौटाता है। उस समय अकबर नारा॰ होकर कहता है–

"बेइमान! दो हजार रुपये साधुओं को देनेके लिये तुझे दिये थे-क्यों नहीं उन्हे दिया? वापिस क्यों ले आया?"

वह कहता है:–"राजन्! आपकी आज्ञा क्या थी?" 'साधुओं को देना,' यही न?

अकबरः हा यही।

बीरबलः तो ठीक है, मैंने आपकी आज्ञाका ही पालन किया है।

अकबरः क्या धूल किया पालन।

बीरबलः हा हजूर, मे बीलकुल ठीक कह रहा हू।

अकबरः क्यों? कैसे?

बीरबलः "देखिये सरकार, जो साधु थे वे लेते नहीं थे, और जो लेते थे वे साधु नहीं थे। फिर मैं किसको दू? इसलिये वापिस ले आया हू। आप की ऐसी ही आज्ञा थी।"

खूब याद रखिये मित्रो! बीरबल क्या जवाब देता है –"साधु था वह लेता नहीं था, और जो लेता था वह साधु नहीं था।"

सज्जनो! इसीलिये कलम आप के कान पर बैठकर कहती है कि "साधुभ्यः साधुदानं" साधु लोगों को साधु दान दो-पवित्र दान दो। आगे कहती है—

"रिपुजनमुद्दराश्चोपकार कुरु त्वम्।"

अर्थात्--

शत्रु और मित्र दोनों पर उपकार कर।

मित्र पर तो सभी कोई उपकार करते हैं: एक मित्र, अपने मित्र को जिमावेगा, और दूसरा उसको जिमावेगा। मैं कहता हूं, इन दोनोंने कौनसा उपकार किया ? यह तो व्यवहार की बात है, इस में कोई उपकार नहीं।

अपने शत्रु पर भी उपकार करे, तब उपकार उपकार है। आप का घोर से घोर दुश्मन-आप के सिर तक काटने को तैयार रहनेवाला-आप की हंमेशा खूब निन्दा करनेवाला-आप को हरतरफ से नुकसान पहुंचानेवाला भी आप के पास आके कहे: "मेरे अपराधों को क्षमा करो। मैं आज आफत में हूं। आप की मदद के लिये आया हुं मुझे आफत से बचाइये" आप का धर्म है कि अवश्य बचावें, अपने पुराने वैर को भुल जायें। उसे मदद करके अब, जब की वह, आप की शरण में आया, उसका बदला लेना आप का धर्म कदापि नहीं। यह तो आप के पास भी आया-फिर अगर कोई आप के पास न भी आवे, और अगर वह दुःख में हो, तो आप का धर्म है, उसको मदद अवश्य करें। सचा उपकार तो यही है। हमें समझना चाहिये कि हमारा बुरा करनेवाला तो कोइ नहीं। हमारा बुरा तो तभी होगा, जब हमारे अशुभ कर्मों का उदय होगा। जब तक पुण्य कर्मों का उदय है, हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। हमारा भला-बुरा करनेवाले तो हम ही हैं। हमें हंमेशा सब का उपकार ही करते रहना चाहिये। अच्छे का फल हंमेशा अच्छा मिलेगा। कलम आगे कहती है—"सौजन्यं बन्धुवर्गे"।

अर्थात्—अपने बन्धुवर्ग से प्रेम करो। स्नेह से रहो।

बड़े खेद का विषय है कि आज हमारा पतन कलम की इस बात को नहीं मानने से हो रहा है। एक दूसरे का तिरस्कार करके बुद्धिमद में पडकर एक दूसरे को दूर दूर कर के हम अपनी शक्तियाँ छिन्नभिन्न कर रहे हैं।

हमें समझना चाहिये कि हमारा धर्म तो यह है कि हम एक दूसरे को मिलावें। हम दुनियोंमें एक दूसरे को मिलाने के लिये आये हैं। जुदा करने के लिये कभी नहीं।

संसार तो आजकल वैसे ही जूदा हो रहा है। जुदाई करके फिर हम कौनसी विशेषता कर सकते हैं ?। हमारा तो काम है जितना हो सके एक दूसरे को मिलाना।

चाहे नीच हो, पतित हो, दुराचारी हो, व्यसनी हो, हिंसक हो, कसाई हो-कोई भी दुनियाका छोटा-बडा प्राणी हो।

आज भारत को स्वराज्य नहीं मिलता*। अगर इसका कोई असली कारण है तो, मेरी समझ में तो यही आता है कि-हमारी शक्तियों को हमने छिन्न-भिन्न टुकडे टुकडे कर दिया है। हमने जुदाई का काम किया। मिलाने का काम नहीं किया। सभव है, मेरे विचार आप को पसन्द न पडते हों। लेकिन मैं तो अपनी समझ में जो ठीक आवेगा, वही कहूगा। अपने विचारों को नहीं दबाऊगा। यही कहता रहूगा कि ससार में मनुष्य मिलानेके लिये आया है, जुदाई करने के लिए नहीं। मै अपनी एक नजर देखी बात कहता हू।

एक शहर में मेरा चौमासा था। इस बीचमें किसी दिन एक बडे करोडाधिपति सत्ताधारी आदमी की मृत्यु हो गयी। जिस समय जीवित था, इतना अत्याचार उसने किया-इतनी जुदाईयॉ करवाई,लोगों की इतनी बुराईयॉ की कि जिसकी कोई हद नहीं थी। जिस समय वह मनुष्य मरा, एक तरफ तो उसकी श्मशानयात्रा निकल रही थी, दूसरी तरफ लोग खुशीयॉ मना रहे थे। मिठाईयॉ और दावतें दीजा रही थीं। दिन भर और रातभर युवक, वृद्ध, स्त्रीपुरुष सबोंने खुब खुशी मनायी। मानो कोई उत्सव हो। मैने एक आदमीसे पूछा-"भाई खुशीयॉ किस बातकी मनाली जारही है ?।" उसने जवाब दिया-"महाराज, फलॉ आदमी आज मर गया इसलिये। बडा अत्याचारी था। अपनी जिन्दगी भर कईओ को आपस में लडवाया। फूट करवाई और नाना प्रकार के दुष्कर्म किये, वह गया तो हमारे शहर,का पाप गया।"

प्यारे भाईयों, देखिये ससारमें दो प्रकार की मृत्यु होती है। जो जन्मा है, वह मरनेवाला तो है ही। इसमें कोई शक नहीं। पर, एक मृत्यु ऐसी होती है कि जिसके पीछे लोग आसु बहाते है-आसुसे घडे भरते है। और एक मृत्यु वह है, जिसके पीछे लोग थूक से घडे भरते है। एकके पीछे दुनिया रोती हुई कहेगी. "हमारे गॉव का नायक गया, हमारा शिरमौर गया, सम्पका बढानेवाला, हमारे घरोंमें आनन्द भरनेवाला गया।" मरनेवाला उनका कोई रिश्तेदार नहीं, बिरादरीवाला नहीं,

* स्वराज्य अब तो मिल गया, परन्तु स्वराज्यमिलने पर भी देशमें पहलेसे अधिक दु खदावानल फैला है।

सम्बन्धी नहीं। फिर भी दुनिया उसके पीछे आंसु बहाएगी, यही मौत मौत है। और वही दुनिया दूसरे के लिए कहती है कि-" वह मरा तो खुशी हुई-पाप गया।" भले-परोपकारी आदमी के लिये इस दुनिया में भी आराम और प्रशंसा है, मरने के बाद भी आराम और प्रशंसा है। अगर आप भी यही चाहते हैं तो कलम का कहना-उसकी सच्ची सलाह मानीये।

कलम आगे कहती है-" निजहितमुचितम् " अर्थात्-'अपने हितों को करलो।' हमने मनुष्य जन्म पाया है, पञ्चेन्द्रिय की पटुता पायी है, दो अक्षर का ज्ञान पाया हैं, बुद्धि पायी है। धन-माल-मिल्कियत पायी हैं, स्त्री-पुत्र-परिवार पाया है, साधु-महात्मा का संयोग मिला है, सद्धर्म मिला है, सब कुछ मिला है, अगर अब भी अपने हित को नहीं किया, अपना आत्म-स्वार्थ नहीं साधा, मनुष्य जन्म को सफल नहीं किया, तो हमारा लिखना--पढना बेकार है। हमारे जैसा बेवकूफ संसार में कोई नहीं। इसलिए अपने हितको समझें और ऐसा कार्य करें कि, हमारा बेड़ा पार हो।

आगे कलम फिर कह रही है--" स्वामीकार्यं यथार्थम्।" अर्थात्--अपने स्वामी के कार्य को यथार्थ बजाओ। अपने मालिक, अपने मातापिता, और गुरु आदि हैं। उनकी आज्ञा का पालन करें। हरेक मनुष्य का कोई न कोई स्वामी अवश्य है। अगर कोई यह कहे कि मेरा स्वामी कोई नहीं है, कोई मालिक नहीं है, तो मैं उन्हें यह जवाब देता हूं कि-तुम्हारा स्वामी कोई नहीं है तो 'धर्म' तो जरुर है। आप धर्म की सेवा करें। धार्मिक जीवन बिताएं। कवि कहता हैं-नो चेत् नष्टेऽधिकारे मम मुखसदृशं तावकास्यं भवेद्धि।

अर्थात्-लेखनी अपने स्वामी के कान में इतनी सच सच बातें कहती है। और आगे फिर क्या कहती है कि-जिस दिन तुम्हारा अधिकार नष्ट हो जायगा, तुम धर्म से चूक जाओगे, जीवन को सफल नही बनाओगे, तब मैं तुम्हारे कान से नीचे गिर जाऊंगी और फिर तुम्हारी दशा कैसी होगी—" मम मुखसदृशं "—

मेरा मुंह जैसा है, वैसा तुम्हारा मुंह भी हो जायगा।

कैसा है मुंह कलम का? काला!

सिर्फ काला ही नहीं, नाक भी कटी हुई है। मित्रो, खूब याद रक्खो, इस कलम की नेक सलाह को। नेक सलाह को मानेंगे तो आप का जीवन सफल है-आप की शिक्षा सफल है, और इसीसे 'जीवनविकास' साध सकेंगे।

भाइयों और बहनों।

जीवनविकास में शिक्षा का क्या स्थान है? और वह शिक्षा कब, किससे, कैसी मिलनी चाहिये? यह बात मैं दिखला चुका हू। शिक्षा के परिणामस्वरूप प्रत्येक पढे लिखे के पास दो शस्त्र-दावात और कलम-मिलते है। इससे हमें क्या सिखना चाहिये और उन दोनों का कैसे उपयोग करना चाहिये? यह बात भी दिखलायी है। अब वहा से आगे बढें।

ब्रह्मचर्याश्रम में से मनुष्य गृहस्थाश्रम मे जाता है। गृहस्थाश्रम को आप एक मामूली आश्रम न समझें। मै तो यहा तक कहता हू कि तीन आश्रमों का मूल स्थान गृहस्थाश्रम है। गृहस्थाश्रम की जितनी शुद्धता, उतनी ही तीनो आश्रमों की सफलता। सब से बडी जुम्मेवारियों का यदि कोई क्षेत्र हो तो वह गृहस्थाश्रम है।

गृहस्थाश्रमी कौन है?

यहा गृहस्थाश्रमी कौन है? यह बात सक्षेप से मैं दिखलाऊगा। अक्सर करके "गृहस्थ" शब्द का प्रयोग तीन जगहपर होता है:--

एक वह गृहस्थ है, जो साधु से भिन्न है। चाहे छोटासा बालक हो, जवान हो, वृद्ध हो, स्त्री हो या बालिका हो। इन सब को हम गृहस्थ कहेंगे।

दूसरा गृहस्थ वह है, जो मालदार है-पैसेवाला है। हम साधु लोग जब कोई अपरिचित शहर या गाव में जाते हैं, और वहा पूछते हैं-" इस गाँव में कौन कौन गृहस्थ हैं?" तो जवाब देते है कि-फला है-फला सेठजी है-फला आदमी है। यहां वह जवाब देनेवाला समझ जाता है कि महाराजजी किसके लिए पूछते हैं?। यहां गृहस्थ के माने हैं-मालदार-पैसेदार।

तीसरी तरह का गृहस्थ वह होता है जो व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार कहा जाय। जैसे "गृहे तिष्ठतीति गृहस्थः।" जो घर में रहे, उसका नाम है गृहस्थ। लेकिन यहां एक दोष आता है। घर में तो साधु भी रहते हैं, लेकिन वे गृहस्थ नहीं। तब यहां पर क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रम से निकल कर स्त्री करता है-विवाह करता है, जिस को पत्नी होती है, उसका नाम है गृहस्थ। हमारे यहां व्यवहार में भी प्रथा प्रचलित है कि हम स्त्री को 'घर' कहते हैं। जैसा हम एक दूसरे को पत्र में भी लिखते हैं कि-'आप के घर में अब कैसा हैं?।' मतलब आप की पत्नी कैसी है? इस तरह गृहस्थ का मतलब हुआ-"गृहे तिष्ठतीति गृहस्थः" और "गृहिणी गृहमुच्यते" जो घर में रहता है, वह गृहस्थ और यहां स्त्री ही घर कही गयी है।

जीवनविकास से गृहस्थाश्रम का सम्बन्धः-

अब यहांपर यह प्रश्न उठता है कि-मेरा विषय तो "जीवन का विकास" है। गृहस्थाश्रम का इससे क्या सम्बन्ध है? एक गृहस्थ अपने आश्रम में रहकर अपने जीवन का विकास कैसे कर सकता है? यह बतलाना मेरा उद्देश्य है। गृहस्थाश्रम में जो मनुष्य गया है, वह, शास्त्रों की विधि, व्यवहार के नियम, प्रामाणिकता और सदाचार के सारे नियमों को सुचारु रूप से पालन करे, तो 'जीवन का विकास' करने में कोई बाधा नहीं आ सकती। शर्त यह है कि-वह शुद्ध, सदाचारी गृहस्थ होना चाहिये। जैसे मैंने कटाक्ष किया था कि-आजकल के बहुत से गृहस्थ ऐसे होते हैं, जिन को गृहस्थाश्रमी कहना चाहिये या नहीं, यह बात विचारणीय है। ऐसी पतित अवस्था में रह कर तो मनुष्य जीवन का विकास नहीं कर सकता। इसने सबसे पहले दो बातों में शुद्ध रहना चाहिये। खूब याद रखिये कि गृहस्थ की दो चीजें भूषण हैं। एक पैसा आर दूसरा स्त्री।

जिसको स्त्री है-वह गृहस्थ है। लेकिन शादी कब करे? किस के साथ करे? क्यों करे? और शादी होने के बाद किस तरह अपने गृहस्थ धर्म का पालन करे? ये बातें मैं आगे दिखलाउंगा।

दूसरी बात बतलायी है, गृहस्थों के पास द्रव्य का होना। मैं एक दिन कह चूका हूं कि जिसके पास कोडी है, वह साधु कौडी का और जिसके पास कौडी नहीं

यह गृहस्थ कोडी का। अगर मनुष्य गृहस्थाश्रमी कहलाता है तो वह स्त्री और पैसे का सम्बन्ध अवश्य रखता है। इसी लिये शास्त्रकारोने कहा है कि-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चार पुरुषार्थों में से तीन पुरुषार्थो की आराधना शास्त्रोक्त नियमानुसार गृहस्थ करे।

तीन पुरुपार्थ।

उपर्युक्त चार पुरुषार्थों में से मोक्ष, यह मुमुक्षुओं के लिये है और विचार किया जाय तो, मोक्ष यह आराधन किये हुए पुरुषार्थों का परिणाम है। गृहस्थ भी मोक्ष की चाहना करे। शास्त्रकारो ने गृहस्थों के लिये कहा है—

" त्रिवर्गससाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफल नरस्य,
तत्रापि धर्मं प्रवर वदन्ति न त विना यद्भवतोर्थकामौ ॥ "

अर्थात्-तीन वर्गों की साधना के बिना मनुष्य का जीवन पशु के समान है। तीन वर्ग कौन से है?—(१) धर्म, (२) अर्थ और (३) काम.

इन तीन पुरुपार्थों में 'धर्म' पुरुपार्थ सर्वश्रेष्ठ है-हमने पूर्वजन्म में जितनी धर्म की आराधना की है, उसीके परिणाम मे अर्थ और काम की हमें प्राप्ति होती है।

सज्जनो! ससार में जो कुछ मिला है-उत्तम जाति का प्राप्त होना, सुन्दर शरीर, पुत्र, परिवार, प्रसिद्धि, ऋद्धि, सिद्धि, ऐश्वर्य निदान जो कुछ मिला है-इसका एक मात्र कारण अगर कोई है तो धर्म है। ऐसे 'धर्म' की आराधना अगर हम समय समय पर नहीं करेंगे तो आगे के लिये हमारी उन्नति-सुख का रास्ता बन्द हो जाता है। हम आगे कुछ प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रसगोपात्त में यहा पर जैनों का ध्यान आकर्पित करना चाहता हू। भगवान् तीर्थंकरने हमारे आचार-व्यवहार, खान-पान, आहार-निहार के लिये जो नियम बताये हैं, वे हमारे आत्मकल्याण के लिये साधनभूत हैं। अगर उनका पालन न किया जाय तो कहना चाहिये कि हम भगवान की आज्ञा का पालन करनेवाले नही है। और जहा आज्ञा का पालन नहीं, वहा धर्म कैसे हो सकता है? हम दुनियादारी के लोगों की आज्ञानुसार भले ही चलेंगे, परन्तु तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन करने में हिचकेंगे-विचार करेंगे। यह हमारे लिये बडी अफसोस और लज्जा की बात है।

एक उदाहरण दे कर आप को समझा दूं। आप कभी बिमार हुए, डाक्टर वैद्य आए। दवाई दी। और कहा कि-"आम न खाना। अगर एक टुकडा भी केरी का खा लिया, तो आप की मृत्यु हो जायगी।" डाक्टर या वैद्य कोई ईश्वर नहीं है, हमारी आयुष्य को बढानेवाले नहीं है। फिर भी अगर वे कहते हैं कि 'केरी का एक टुकडा भी खाया तो भयङ्कर नुकसान होगा—मृत्यु हो जायगी'। डाक्टर के कहने के बाद क्या आप आम खायेंगे? कितनी भी प्यारी चीज होते हुए भी उसे आप कभी नहीं खायेंगे।

मित्रो! इसी तरह भगवान्ने हमारे लिये खानेपीने, रहन-सहन, आचार-व्यवहार आदि के लिये भी आज्ञाए दी हैं। वे महासर्वज्ञ वीतराग केवली प्रभु हैं। हमारी आयुष्य को जाननेवाले हैं, हमारे हिताहित को खूब पहचानते हैं। अब महानुभावो! आत्मकल्याण के अभिलाषी जीवों! भगवान्ने कहा है: "आप को आत्मकल्याण करना है-पापों से बचना है, जीवन को सफल करना है-मोक्ष को प्राप्त करना है तो आरम्भ समारम्भ के कार्यों से बचजाओ। जीवोत्पत्ति होनेवाली चीजों से बचो। रात्रिभोजन मत करो। हजारों-लाखों जीवों की हिंसा हो जावे, ऐसे पाप मत करो। अहिंसक होते हुए भी हिंसक मत बनो।" यह सन्देश भगवान् ने हमें हमारे हित के-कल्याण के लिये दिया है। उन्हें कोई स्वार्थ नहीं था। डॉक्टर तो फिर भी स्वार्थ को ले कर आप को सलाह देता है। परन्तु तीर्थंकर महाप्रभु तो एकान्त हमारे कल्याण के लिये-हमारे उद्धार के लिये फरमा गये हैं। उन की आज्ञा का पालन करना आप का धर्म है। कल्याणकारी है।

कल आर्द्रा नक्षत्र बैठ गया है। इस के बैठने के बाद जितनी रसवाली हरी चीजें हैं, उनमें जीवोत्पत्ति हो जाती है। आम है और भी ऐसी चीजें हैं। इन को अब हमें नहीं खाना चाहिये। वर्षा की ऋतु है-आर्द्रा नक्षत्र के बाद हवा बदल जाती है। और जब हवा बदल जाती है तो ऐसी चीजों में जीवोत्पत्ति बराबर हो जाती है। पर मैं तो सुनता हूं कि इन सारी चीजों का स्वाद तो आप लोग अब लेंगे। अभी तक तो बराबर मजा नहीं आयी थी। अगर यह बात सत्य है तो, बड़ी अफसोस की बात है। अब यदि आप आम का स्वाद लेनेवाले हैं, तो मुझे बड़ा दुःख है। हम अहिंसा का दावा करनेवाले अगर भगवान् महावीर की आज्ञा नहीं मानते हैं, तो हम अपनी

आत्मा को डूबो रहे हैं। आप को अगर भगवान् की आज्ञा पर श्रद्धा है तो, मैं कहता हू, आज की तारीख से आम खाना बन्द कर दें। चाहे उसमें कितना भी स्वाद हो।

एक दूसरी बात। चामासा आ रहा है। लीलन-फुलन हो जायगी। ऐसी बहुत हरी चीजे हैं, जिन में जीवोत्पत्ति जरूर हो जाती है।

हमारे यहा एक रिवाज यह भी है कि लीलोत्री (हरी वनस्पति) के बदले शिकोत्री (सूखी वनस्पति) घर में डालते है। ऐसी लीलोत्री का त्याग करनेवाले शिकोत्री कई महीनों पहले मनों बना कर रख लेते हैं। उनमें कुंथुवे हो जाते हैं। जीवोत्पत्ति हो जाती है। इन जीवों का, इन शिकोत्री के साथ पानी में डालकर और उबाल कर सत्यानाश कर डालते हैं। इसतरह हरी वनस्पति के शपथ का पालन करते हैं और शिकोत्री (सूखी वनस्पति) के जीवों का नाश करते हैं। कितने अफसोस की बात है? एक तरफ स्वाद की लोलुपता छूटती नहीं, और दूसरी तरफ त्यागीपने को दिखलाते हे, यह, कैसे हो सकता है? हरी वनस्पति को सुखाकर कई दिनों तक रखकर उसमें असख्य त्रस जीवों की उत्पत्ति होने के बाद उसको खाना, उन असख्य जीवों की हिंसा करना और ऊपर से अपने को धर्मात्मा समझना,, यह कितना ढोंग है? यह सोचने की बात है।

आजकल लोगोंमें धर्म की आराधना ऐसी ही हो रही है। उच्च धर्म के विषय में मुझे आगे बहुत कहना है। यह तो मैंने प्रसङ्गोपात्त धर्म के नाम से कैसा ढोंग होता है, यह साधारण बतलाया।

जैसा कि मैने पहले कहा, धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों की आराधना गृहस्थों को करने की है। परन्तु यह भूलना नही चाहिये कि तीनों पुरुषार्थमेंसे किसी एक को भी दूर रखकर कोई भी गृहस्थ अपने गृहस्थाश्रम को निभा नहीं सकता। जैसे कोई कहे कि 'मुझे पैसे की जरुरत नहीं है और न काम की जरुरत है। मैं तो धर्मध्यान ही करुगा। मस्त रहूगा'। आप अपने कलेजे पर हाथ धरकर कहिये कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य, जिसके साथ स्त्री है, पुत्र है, कुटुम्ब है, परिवार है, दुनियादारी के सब कामकाज करता है, अर्थ और काम को छोडकर केवल धर्म की आराधना कर सकता है क्या? ऐसा कभी नहीं हो सकता। बिलकुल गैरमुमकिन बात है। बातबात में पैसे की जरूरत होती

है। खाने, पीने, पहिनने को पैसे चाहिये, दुनियादारी के लिये पैसे चाहिये, नहीं तो उनके बालबच्चे भूखों मरेंगे। कहने का तात्पर्य यह हैं कि हरेक काम के लिये पैसा चाहिये।

कोई कहे धर्म और काम करने की हमें जरुरत नहीं। नकद-नारायण पैदा करना, यही मेरा काम है। यह भी कभी नहीं हो सकता। पैसा इकट्ठा करके करेंगे क्या? कमसे कम खाना यह भी तो काम ही है। पांचों इन्द्रियों के विषयों को भोगना, यह भी तो एक प्रकार का काम ही हैं। विषयभोग-स्त्री के साथ सम्भोग करना, यही केवल काम नहीं है। बल्कि पांचों इन्द्रियों के विषयों को भोगना, इसका नाम भी काम है। यह भोगना कैसे? यह भात आगे बताऊंगा। कहने का मतलब यह है कि गृहस्थाश्रमी से काम नहीं छुटता। इन्द्रियाँ अपने विषयों को अवश्य ग्रहण करती है, यही काम है। और पैसा है तो कुटुंब पोषण, खान, पान, व्यवहार आदि में जैसे वह लगता है, उसी तरह से किसी शुभ कार्य में भी लग ही जाता है, यही धर्म। प्रभु का नाम लेना यही धर्म। मीठे वचन बोलना यही धर्म, सत्य बोलना, हिंसासे बचना, चोरी न करना, यही धर्म। अर्थात् गृहस्थ से कुछ न कुछ तो धर्म होता ही है। जैसे गृहस्थ को द्रव्य-पैसे विना नहीं चलता, वैसे काम और धर्म के विना भी नहीं चलता।

कोई मनुष्य यह कहें कि हमें धर्म और अर्थ की जरूरत नहीं। काम ही काम हो। यह भी नहीं हो सकता। क्योंकि काम के लिये भी अर्थ की जरूरत है। इसलिये शास्त्रकारोंने कहा है—

धर्म, अर्थ और काम-इन तीनों पुरुषार्थों का साधन करनेवाला गृहस्थ एक दूसरे पुरुषार्थों को बाधा न पहुंचे और उनका अतिरेक न होजाय, इसका ख्याल रखते हुए पुरुषार्थ की साधना करे।

अर्थशुद्धि

मैं पहले कहचूका हूं कि गृहस्थ को द्रव्य की जरुरत है। परन्तु पैसा कैसे उत्पन्न करे और क्यों उत्पन्न करे? यही विचारणीय प्रश्न है। क्योंकि नीतिकारोंने कहा है-“ प्रयोजनमनुद्दीश्य मन्दोपि न प्रवर्तते। ” मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी कारण के सिवाय कोई प्रवृत्ति नहीं करता। इसलिये द्रव्योपार्जन का भी कोई प्रयोजन होना चाहिए। पैसा यह मनुष्य जीवन का साध्य नहीं है, यह मात्र साधन है।

अपना, अपने घर-वालबच्चो का पोषण करना है, सारे धर्म के कार्य करना है; समाज, देश और जाति की रक्षा करना है-उनका पोषण करना है, इस लिये हमें पैसे की आवश्यकता है। अगर इन बातों में व्यय करने के लिये पैसा मनुष्य उपार्जन करे तो यह उसके लिये उचित ही है। मनुष्योंने जिस दिन से पैसे को अपने जीवन का साध्य बना लिया, उस दिन से वे जडवादी हुए हैं। हमारे जडवाद का मूल कारण हमारा पैसे को ही जीवन का साध्य समझ लेना है। पैसा एक गृहस्थ के पास क्यों होना चाहिये ? उस उद्देश्य को भूले और जिस दिन से भूले, उसी दिन से जडवादी हो गये और परिणाम यह हुआ कि हमारा चतुर्मुख अधःपतन हुआ। " जडवाद की उन्नति का अन्त हमेशा नाश में आता है।" मैंने एक पुस्तक 'ईश्वरवाद' पर लिखा है। उस में लिखा है कि-' जडवाद की उन्नति का अन्त हमेशा बुरा और नाशकारी होता है।' उसका नतीजा सारे संसार को भोगना पडता है। आज सारा संसार जड पदार्थ की तरफ बडी तेजी से दौडता जा रहा है। पर उसका नतीजा भी आज हमारे सामने प्रत्यक्ष है। आप आज के विनाश का स्थल युरोप को देख लीजिये। जडवाद की जितनी उन्नति उसने की, उतना ही आखिरकार उसका अन्त नाश में ही आया। अमरत्व में-सुख में कभी नही आ सकता।

इस लिये जिस रोज से पैसे को हमने 'साध्य' समझा और साध्य समझ कर मात्र पैसा इकट्ठा करना, दुनिया चाहे भूखों मरे, देश चाहे रसातल में जावे, लेकिन मेरे घर में पैसा पैसा और पैसा ही होना चाहिये, ऐसा करना शुरु किया तब से लोगों की शान्ति और सुख खतम हो गये। पैसा होते हुए शान्ति नहीं, सुख नहीं और आराम नहीं।

जरा सोचिये, बहुत आदमियो के मुख से सुना जाता है, और संसार के मनुष्य कह रहे हैं कि-" आज पैसा बहुत बढ रहा है। जिसके पास मामूली सा पैसा था, वह लक्षाधिपति बन गया है। और जो लक्षाधिपति था वह करोडपति बन गया है।" ये सारी बातें हम देख रहे हैं। और लोगों की आखो में भी आया है कि पैसा बहुत है-बहुत है। ज्यादा होने के कारण से आज पैसे की किम्मत घट गई है। जो चीज ज्यादा होती है, उसकी किमत हमेशा घट जाती है। परिणाम यह हुआ कि पैसो की किम्मत घटी इस लिये हमारे जीवनोपयोगी चीजों की किम्मत बढी। खैर,

यह अर्थशास्त्र का विषय हैं, मैं इसे छोडता हूं। मैं तो बताना चाहता हूं कि पैसा किस लिये चाहिये ? पैसा जीवन का साध्य नहीं, मात्र साधन होना चाहिये। साधन के लिये इकट्ठा करे, तभी वह शुभ्र द्रव्य हो सकता है।

किसी कविने कहा है:—

" कोटडिये नाणां करी भले वेसो, पण धर्म विना धन शोभे नहीं।
सोले श्रृंगार भले सजे सुन्दरी, पण नाक विना नारी शोभे नहीं ॥ "

अर्थात्—कवि कितना सुन्दर कहता है। एक स्त्री १६ श्रृंगार सज कर तैयार होती है। सैंकडों रुपये की साडी पहनती है, हजारों की कीमत के सोने जवाहरात के गहने पहनती है। इत्र तेल पाउडर लगाती है। नाना प्रकार के श्रृंगार सज कर निकलती हैं। पर कमी सिर्फ इतनी सी है कि-मुंह पर नाक मात्र नहीं, और सब कुछ है, कितनी सुन्दर लगेगी वह ?

जिस स्त्री के मूंह पर नाक नहीं है, वह कितनी ही सुन्दर हो, सजी सजाई हो, सब बेकार है। कुद्रुप है। इसी तरह से—

" कोटडोये नाणां भले करी वेसो, पण धर्म विना धन शोभे नहीं ॥

पैसा धर्म के लिये, सेवा-परोपकार गरीबों की भलाइ के लिये; देश, जाति और धर्म की उन्नति के लिये है। हमारे लिये नहीं। अगर ये बातें नहीं तो पैसा बेकार है। शोभाहीन है।

सब से पहली बात यह है कि-पैसा मात्र जीवन-विकास के साधन के लिये इकट्ठा कीजिये। जिस दिन आप का ममत्व पैसे पर साध्य का हो जावे, उस दिन समझ लेना चाहिये कि नाश के नगारे सामने खडे रहेंगे।

यूरोपने धनको-पैसे को-जडवादको साध्य समझा। जडवाद-पैसे की उन्नति उसीको चरमलक्ष्य समझा। आत्मा-परमात्मा, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि कोई चीज नहीं। ऐसा समझा और उसी बातको समझ कर युरोपने भौतिक उन्नति की।

हमारे कई भाई कह रहे हैं कि हमारा हिन्दुस्तान युरोपसे बहुत पीछे होता जा रहा है। अमेरिका कितना उन्नतिशील हो गया ? जर्मनी, इग्लेन्ड, रुस आदि कितने बढ गये ? यह हमारे कुछ पढे लिखे लोग, जो कि पाश्चात्य सभ्यतामें रंग गये हैं, मुझसे कहा करते हैं। मैं जवाब देता हूं कि " जरा धीरज रखिये, कुछ समय बाद उसका

परिणाम सामने आनेवाला है। उनकी उन्नतिका अन्त हमेशा नाश में होगा।" आज यह सब प्रत्यक्ष है। यह महायुद्ध उनके नाशके लिये हो रहा है। वह गेस, बम, मशीनगनें, तोपें, वायुयान और न जाने कई कई बडे आविष्कार आज उन्हीं के विनाश के कारणभूत हो रहे हैं। और जिस सीमातक हमारा हिन्दुस्तान इस भौतिक तरक्की में उनके सम्पर्कमें आया, उतने ही परिणाममें वह हमारे लिये भी विनाश का कारण बन रहा है।

मित्रों! खूब याद रखिये, पैसा हमारे जीवनका साध्य कभी नही-कभी नहीं है। आप पैसे को साधन समझें। लाखों करोडो पैदा करें। कोई हरकतकी बात नहीं। लेकिन पैदा करें साधन समझ कर साध्य नहीं। जिस समय जितना पैसा देश, धर्म, समाज, आत्मकल्याण के लिये-मनुष्य जाति के कल्याण के लिये, जीन्दगी के लिये गार्हस्थ्य जीवन की यात्रा के लिये आप खर्च करेगे, उस समय आप कितना ही पैसा पैदा करें, कोई हर्ज नहीं। और फिर वह पैसा कहीं जायगा भी नही। आप देखेंगे, वह पैसा कितना बढता जा रहा है।

लाखों, करोंडो होते हुए भी आज आप के कान पर टेलीफोन का भुगला लगा ही रहता है। आप एक हाथ से रोटीयाँ खा रहे हैं, और दूसरे हाथ से टेलीफोन लगा कर बातें कर रहे है। क्या आप के जीवन में शान्ति है? आज लाखों करोंडो होते हुए भी शान्ति नहीं। घण्टे आधे घण्टे बालबच्चों के साथ बैठकर शान्तिपूर्वक रोटी नहीं खा सकते। स्त्री और बाल-बच्चों के साथ कभी बातें नहीं कर सकते। इनमे दो प्रेम की बातें करना, उनके सुख-दुःख आराम के लिये पूछना, हास्य विनोद करना आपके लिये आज असम्भव सा हो गया है। यदि ऐसा है तो मैं कहूगा-लाखों करोंडो होते हुए भी जीवन बेकार है। जीवन क्यों बेकार हुआ? पैसे होते हुए भी क्यों वे निकम्मे हुए? इसका कारण क्या है?। मनुष्य जीवन का ध्येय बदल गया है। पैसा जीवन के लिये नहीं रहा, आपका जीवन पैसे के लिए बना इसलिये यह सब कुछ हो रहा है।

नीति का द्रव्य।

पैसा कैसा और क्यों होना चाहिये? आप कहेंगे "कैसा माने क्या?" कैसे का मतलब यहां दूसरा है। इसका माने है-पैसा पवित्र होना चाहिये। उसके परमाणुओं में पाप का अणुमात्र नहीं होना चाहिये। शुद्ध से शुद्ध, पवित्र से पवित्र

होना चाहीये । गरीबों के खुन की बून्द मात्र भी न हो । ऐसा प्रामाणिक पैसा अगर है तो वह चाहे जितना हो, कोई हरकत की बात नहीं । सोच लिजिये इसका मतलब । अर्थात् नीति-न्याय का द्रव्य हो । नीति क्या चीज है ? सुनियेः—

"स्वामीद्रोह-मित्रद्रोह-विश्वसितवञ्चन-चौर्यादिगर्ह्यार्थोपार्जनपरिहारेणार्थोपार्जनोपायभूतस्व-स्ववर्णानुरूपसदाचारो न्यायः ।"

अर्थात् स्वामीका द्रोह जिसमें न हो, मित्रका द्रोह जिसमें न हो, कोई हमारा विश्वासु आदमी हो, उसको धोखा देकर-आंखोंमें धूल डालकर इकट्ठा किया हुआ न हो, पाप, अनीति-अन्याय जिसमें न हो, चोरी, डाका, छल, कपट, हिंसासे आया हुआ वह पैसा न हो । केवल प्रामाणिकतासे, न्यायसे, नीतिसे पैदा किया हुआ शुद्धसे शुद्ध जो पैसा है, वही पैसा हमारे आत्मकल्याण के लिये साधनभूत हो सकता है। दूसरों के काम में भी आ सकता है। वही पैसा हमारे देश जाति और धर्म के काममें भी आ सकता है।

आज के जमानेमें, जिस समय कि, लडाईका जमाना चल रहा है, लूटालूट चल रही है, गरीबसे गरीब और अमीर स अमीर एक ही बातको जाने हुए हैं कि लडाई के जमाने में पैसा खूब बढालो, खूब पैदा करलो, इकट्ठा करलो, न जाने आगे क्या होगा ? जितना हो सके लूटलो, और मालदार बन जाओ । न मालूम लडाई बन्द हो जाने के बाद क्या हो जायगा ? जहां पर राजा और प्रजा, साधु और असाधु, गरीब और अमीर तमाम की ऐसी वृत्तियाँ हो रही हैं, उस समय मेरे जैसा साधु नीतिका उपदेश करे, यह कौन माननेवाला है ? मुझे कभी कभी तो निराशा हो जाती है। सोचता हूं कि मुझे बोलना भी चाहिये या नहीं ? इस समयकी प्रजाके लिये रोनाभी चाहिये या नहीं ? इस तरहका विचार कभी आजाता है । लेकिन चाहे असर पडे, या न पडे, दुनिया की हवा कैसी ही हो,-फिरभी धर्म माने धर्म । धर्म कभी अधर्म नहीं होसकता । सच्ची नीति का उपदेश कभी अनीति नहीं कर सकता । धर्म त्रिकालाबाधित होता है । हंमेशा भूत, भविष्य और वर्तमान के लिये एक सरीखा होता है। हमारे जैसे साधुओंका धर्म है कि, आप को अच्छा लगे, चाहे न लगे-रुचे या न रुचे, असर करे या न करे, हमें तो धर्म की बात-नीति के वचन सुनाना ही चाहिये । ग्रहण करें या न करें, आपके अधिकार की बात है।

इस लिये मित्रों ! एक बात खूब ध्यान में रखिये कि पैसा प्रामाणिक, नेकी, न्याय और नीति का होना चाहिए । जितना पैसा अनीति-बेईमानी का आवेगा उतना ही उसका परिणाम बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाला होगा । दिल नापाक हो जायगा ।

अर्थ की अशुद्धि, यह मन की अशुद्धि का, और मन की अशुद्धि यह आत्माकी अशुद्धि का कारण है। अगर आत्मा की शुद्धि करना चाहते है-उसका विकास करना चाहते है तो उसका मूल पाया, जो हमारे पेट मे अनाज जाता है, वह अनाज शुद्ध होना चाहिये और अनाज की शुद्धि का मूल कारण पैसे का शुद्ध होना है। जब तक यह बात नहीं होगी, मनुष्य का जीवन-विकास नहीं होने का।

एक समय मैं गुजरात में था। एक भला गृहस्थ मेरे व्याख्यानों को सुन कर रोया-बहुत रोया और उसने मुझसे कहा-" महाराज! आप जैसे साधुओं का इतना उपदेश देते हुए भी लोगों पर असर नहीं होता है, इसका क्या कारण ?"

" उनके कर्म भारी होंगे, मोहनीय कर्म की प्रबलता होगी, इस लिये वे ऐसे होंगे। मैं क्या करु ? मेरे वश की बात तो इतनी ही है कि जो कुछ मेरे मन में आता है, सच सच कहता हू। किसी का लिहाज मुझे नहीं।"

" कर्म की बात जो कुछ भी हो।" उन्होंने कहा-" पर मैं तो कहता हू कि उनके शरीर में गटर भरा हुआ है। आप उसके अन्दर इत्र कितना भी ऊंचे से ऊंचा डालें-गटर में गया हुआ बेकार ही हो जाता है। जब तक यह गटर साफ न हो-जब तक यह म्लेच्छपन साफ न हो, वहा तक किसी उपदेश का असर नहीं होगा।"

मुझे भी कभी कभी ताज्जुब होता है-कि इतना इतना उपदेश देते हुए भी बहुत कम असर होता है, बिलकुल नहीं होता है, ऐसा तो नहीं। बहुत ही कम होता है। इसका कारण यह है कि जो पापमें रचे-पचे आदमी हों, वे व्याख्यान सुनने को तो बैठते हैं, परन्तु उनका चित्त तो उसी शेरबजार, सट्टाबजार, चादी-सोना बजार में भटकता ही रहता है। भोजन कर सट-पट वहा पहुचने की चिन्ता रहती है कि टाईम हो गया है, देर न करना चाहिये। यहा का उपदेश यहा ही झाड-पोंछकर रख जाते हैं।

इसलिये महानुभाव, कहने का तात्पर्य यह है कि-पैसा गृहस्थ के लिये जरूरी है। लेकिन वह साध्य नही-साधनरुप होना चाहिए और यह साधन तभी हो सकता है, जबकि वह नीति-न्याय और इमानदारी से उपार्जन किया जाय। जो वस्तु शुद्ध से शुद्ध होती है वही हमारे जीवन के लिये लाभप्रद हो सकती है।

आपको यह ताज्जुब होता होगा कि यह क्या बात शास्त्रकारोंने कही ? पैसे में पवित्रता ? नीति और अनीति ? शुद्ध और अशुद्ध ? यह क्या विचित्र बात है ?

यह विचित्र बातें मैं आपको कल समझाऊंगा।

भाईयों और बहनों !

कल मैंने द्रव्य नीतिपूर्वक उपार्जन करना चाहिए, यह बात कही, अब अनीति से पैदा किया हुआ पैसा हमारे मनको कितना मलिन बनाता है और वह कितना अनिष्ट करता है यह मैं आज आपको बतलाऊंगा।

सज्जनो ! मैं कभी कभी लोगों को दृढता पूर्वक कहता हूं कि आप एक दिन के लिये अपने घर का सब पैसा एक तरफ रख दीजिये। अलग कर दिजिये। फिर आप अपनी दुकान पर जाईये, और बिलकूल चकाचक, जिस में नीति का अंश मात्र भी न हो, ऐसे दो रुपये पैदा कर लीजिये। ग्राहक आप की दुकानपर आया और दो रुपये की चीज के आपने सरासर चार रुपये लिये हैं। दिल कबूल कर रहा है कि इसकी आंखों में धूल डालकर दो रुपये आपने वसूल करलिये हैं। यह सरासर अनीति का दो रुपया आपने उससे लेलिया है। यह बिलकूल साफ है। अब आप उन दो रुपये का बजार से आटा ले लीजिये। उस आटे की रोटी बनाकर खा लीजिये। मैं निश्चित कहता हूं—विश्वास के साथ आपसे कहता हूं कि २४ घण्टे के अन्दर खानेवाले की बुद्धि भ्रष्ट हुए विना कभी नहीं रहेगी।

आजकल देखा जाता है कि, एक उपदेशक—सच्चा पवित्र साधु, शुद्ध होते हुए भी कभी पतित हो जाता है—अपने विचारों से गिर जाता है। तब आप को और हम को भी आश्चर्य होता है कि इतना उच्च कोटि का यह साधु अपने चारित्र से गिरा कैसे ? लेकिन अन्दरुनी हालत अगर देखी जावे, तो इसका सच्चा कारण तो कोई ज्ञानी महापुरुष ही इस के हृदय को चीर कर अगर देखे तो जान सकते हैं, पर इतना तो जरुर है कि उसने किसी की बेईमानी की रोटी जरुर खाई है। अनीति की रोटी जरुर खाइ है। हमारे गुरुजी एक उदाहरण दिया करते थे—यह एक घटित घटना है। कोई बनावटी बात नहीं, कोई किस्सा कहानी या नोवेल नहीं है।

साधुने बच्चे का गला क्यों घोंटा ?

एक गाव में एक गृहस्थ था। बडा उच्च और सदाचारी, धार्मिक और नेक जीवन बितानेवाला। उसके बाल बच्चे थे नहीं। सब मर गये। अकेला था। धार्मिक जीवन बिताते बिताते उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। साधु धर्म में दीक्षित होने की इच्छा हुई। ३५ हजार की सम्पत्ति उस के पास थी। वैराग्य उत्पन्न होने से कोर्ट में गया और जा कर मेजिस्ट्रेट के सामने अपनी ३५ हजार की सपत्ति का वील कर दिया। और ट्रस्टी बना कर उस के सुपूर्द कर दिया, कि वे इस सम्पत्ति से एक धर्मशाला बनालें।

वह वैरागी गृहस्थ साधु बन जाता है। एक लगोटी मात्र रखता है और एक झोलेमें कुछ चाकु, वगैरह मामूली चीजें रखलेता है। त्याग, वैराग्य, तप जपमें लगा रहता है। साधु बनकर गॉव गॉव फिरता रहता है। एक समय फिरता फिरता वह एक गॉवमें आता है। और गॉवके बहार शिवजी का एक मन्दिर था, उसके पास धर्मशालामें वह ठहर जाता है।

शामके समय सडक पर दस-बीस लडके दस-बारह वर्ष की छोटी उम्रके खेल रहे थे। साधु उनको खेलते हुए देखता है। वह साधु खडा हो जाता है। उसकी नजर एक बारह सालके कोमल सुन्दर बालक पर पडती है। उसके दोनों हाथ में चादी के दो कडे थे। साधुकी दृष्टि चादी के कडों पर जाती है। साधुका मन कडोंमें ललचा जाता है। अहा! हा! यह वही साधु है जो अभी दो महिने के पहले ३५ हजार की सम्पत्ति को लात मारकर, उसे मिट्टी समझ कर छोड आया है। साधु अपने आत्मा की पुकार सुनकर के आत्मकल्याण करने के लिये-इस मनुष्यभव के मोह के चक्कर से-मृत्यु से मुक्ति पाने के लिये वह साधु हुआ है। कर्मों की कैसी विचित्रता है कि आज वही साधु महेज उस सात-आठ रुपये के चादी के कडो के लिये लालायित हो जाता है। पथ भ्रष्ट होजाता है। सोचता है-इन्हें कैसे लू? सब लडको के बीच तो ले नहीं सकता। उस बच्चे को कुछ मिठाई देने की लालच देकर किसी तरह भी उन लडकों से बचाकर अलग एक गड्ढे में ले जाता है। वहा लेजाकर बच्चे को सुला देता है। उसकी छाती पर बैठ जाता है और दोनों हाथों से कडे निकालने की कोशिश करता है। लडका चिल्लाता है। वह उसके मुहमें कपडा ठुस देता है। कडे निकालने की कोशिश करता है, पर छोटे होने से निकलते नहीं। विचारता है: 'अब तो लिया सो लिया, छोड नहीं सकता। झोले में हाथ डालता है-छुरा निकालने के वास्ते, ताकि उससे उसके दोनों हाथ काट दे। छुरा

निकालता है, दोनों हाथ काट देता है और दोनों कड़े लेकर झोली में डाल देता है, अब खूनी और विचारता है। 'इससे योंही छोड दिया तो मेरी बात मालूम हो जायगी, पुलिस गिरफतार करलेगी। मुझे सजा देगी।' वह इस बच्चेकी छाती पर बैठ कर उसके टूकडे टूकडे करके खतम कर देता है। मित्रो! जरा सोचो! जिसने हजारों की खुद की सम्पत्तिको एक समय लात मार दी थी और साधु हो गया था, वही मनुष्य ७, ८ रूपयोंकी लालच में आकर बारह वर्षके अबोध शिशुका खून कर लेता है। और उसे गाढ़कर फरार हो जाता है।

हल्ला गुला मच गया। उस बच्चे के मा-बाप महादुखी हो जाते हैं। ढूंढते हैं, पर नहीं मिलता है। हो तब मिलन? आखिर निराश होकर पुलिसमें रिपोर्ट करते हैं। पुलिस खोज करती है। खूनी का महिने-दो महिने में पता लग जाता है। और वह साधु पकडा जाता है। मुकदमा शुरू हुआ। बडे मेजिस्ट्रेटके सामने कठघरे में साधुको खडा किया जाता है।

मेजिस्ट्रेट बाबाजी के सामने देखता है और विचार में पड जाता है। दिल में अनेक भाव उत्पन्न हो गये। वह विचार करता है: 'यह बाबा वह तो नहीं है, जिसने अभी थोडे महीनों पहले २५ हजार की मिल्कत धर्मादा में दे दी थी?' मैजिस्ट्रेटने पूछाः—"बाबाजी तुम वही तो नहीं हो; जिसने अभी पीछले दिनों अपनी सम्पत्ति धर्मादा में दे दी थी।"

'वही हूं मैं।'

"आज आप मेरे सामने खूनी होकर आयें हैं? आपने खून किया है?"

"बेशक, किया है"

"सजा होजायगी बाबाजी, बचाव करना है?"

"अपराध किया है, फल भोगना मेरा धर्म है। आप जो कुछ सजा देना चाहें दें, मैं भुगतने को तैयार हूं। सजा से बचना नहीं चाहता!"

मेजिस्ट्रेट कुछ देर ठहरता है। सोचता है, मैं तो सजा कायदे से जो करना होगी करूंगा ही, लेकिन कम से कम यह पूछ तो लूं के "आज दो महिने का समय हुआ आपको कभी ख्याल हुआ कि आपने यह खून क्यों किया?" मेजिस्ट्रेटने साधु से प्रश्न किया।

साधु बोला : "मेरे को भी विचार आया है। मैंने भी खून का कारण तलाश किया है। पर वह कारण मेरे बचाव के लिये काम में नहीं आ सकता है। जो कुछ सजा आप को करनी हो, करिये।" मेजीस्ट्रेट विचारमग्न हुआ और साथ विस्मित भी। "बाबाजी कहिए तो सही, क्या कारण है? आप को क्या मालूम हुआ?"

"खेर, सुनिये. खून करने के सात आठ दिन के बाद मेरा खून ठडा हुआ। चित्तवृत्ति शान्त हो गयी। उस समय तीन बजे प्रातः उठकर ईश्वर को याद किया। फिर मेरे आत्मा में यह भाव उठा कि मैंने क्यों यह खून किया? पेंतीस हजार की मिल्कत पर लात मार कर मैंने उच्च वैराग्य भावना से साधुपना लिया। मुझे उस सम्पत्ति को छोडने का किंचित् भी दुःख नहीं था। बल्कि खुशी थी। फिर यह खून पांच-सात रूपये के लिये किया, तो क्यों किया? मेरे अन्तर में से आवाज उठी, मैं यह मानता हू-ईश्वर की साक्षी से मानता हू कि-मैं इस परिणाम पर पहुचा कि-मैंने उस दिन अवश्य किसी बेईमान, अत्याचारी, पापी और दुराचारी गृहस्थ का अन्न पेट में डाला होगा, जिसके कारण मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उस दिन मैंने किस की रोटी खाई? तलाश करते करते मालूम हुआ कि-जिस गृहस्थने मुझे न्योता दिया था, जिस के घरमें उस दिन जा कर मैंने भोजन किया था, वह महापापी घोर बेईमान था, जिसके घरमें सिवाय अनीति-अन्याय और बेईमानी के नीति की एक थोडी तक नहीं थी। ऐसा वह महान् दुराचारी भी था। उस का अन्न पेट में जाने के कुछ ही घण्टे बाद मेरी बुद्धि बिलकुल भ्रष्ट हो गयी, और फिर मैंने उस बच्चे का खून किया। यह था नतीजा, जिसपर मेरा अन्तरात्मा पहुचा।"

प्यारे मित्रो! आप लोग कभी इस बात को सोचते हैं कि हमारे बालक नव-युवक बुरे आचरण में क्यों पड जाते हैं? पतित क्यों हो जाते हैं? व्यभिचार में क्यों पड जाते हैं? किसी सच्चे ज्ञानी को पूछेंगे तो वे यही जवाब देंगे कि यह सब आप के घर की रोटियों का परिणाम है। आप के साधु अगर भ्रष्ट होते हैं- ७२ लाख साधुओं का पतन हुआ है, और आज अपने देश के करोडों लोग धर्म से विमुख हुए हैं, तो यह सीर्फ बेइमानी की रोटियों ने किया है।

अगर गृहस्थ के घरो में शुद्ध अनाज होता, तो आज महान् उच्च आचरणवाले

त्यागी-वैरागी महात्माओंका पतन नहीं होता, जिनको आज आप घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

इस लिये सज्जनो, आप अनेक आत्मा का कल्याण चाहते हैं, तो निश्चय कर लीजिये-दृढ निश्चय कर लीजिये कि हम कभी बेईमानी का पैसा घर में नहीं आने देंगे। आप का कल्याण होगा। आप के साधुओं का कल्याण होगा। आप के देश जाति धर्म का कल्याण होगा। आप का देश सुखी होगा। आप सुखी होंगे। सब सुखी होंगे। मनुष्य जाति सुखमय बन जावेगी-सारा संसार सुखमय बन जायगा।

अनीति का कारण ?

अब नीति के विषय में विचार करते हुए, आहार की शुद्धता का आधार द्रव्य की शुद्धता के ऊपर है। आहार शुद्धि तब हो सकती है जब द्रव्य शुद्ध हो, और द्रव्य शुद्धि का आधार नीति और प्रामाणिकता पर है। लेकिन एक बात का विचार हमारे सामने आता है। आज सारा संसार, कुछ अपवाद को छोड कर, क्यों अनीति अन्याय के मार्ग पर गया है? जानते हुए भी कि यह पैसा बुरा है-पापमय है-दुर्गति का कारण है-इन सारी बातों को जानते हुए भी वह इस पापमय प्रवृत्ति क्यों करता है? इसका एक ही कारण मुझे मालूम होता है कि संसार में से संतोषवृत्ति उठ गयी है। लोभ वृत्तिने लोगों पर इतना जोर किया है जिस में सब कुछ भूल बैठे हैं। असन्तोष वृत्ति इतनी तीव्र बढ गई है कि जिसके कारणसे अच्छा उच्च आचारवाला धर्मात्मा समझदार पुरुष भी अनीति करने के लिये मौके पर तैयार हो जाता है। मुझे तो कभी कभी बडा विचार आता है। एक गृहस्थ दुकान पर बैठा है, एक आदमी कोई चीज खरीदने को आया। वह आगन्तुक बहुत गरीब है, फूसके झोंपडे में रहनेवाला है। खाने पीने को कुछ नहीं है। बडा ही गरीब आदमी है। उसके साथ व्यापार करने में, व्यापारी को दो रुपये का फायदा होता हो और उस गरीब को १०० रुपये का नुकसान होता हो। उसका सौ का नुकसान माने सारा घर बरबाद। कहिए व्यापारी क्या करेगा? उसका सौका नुकसान करके दो रुपये का फायदा जरुर उठावेगा। यह है आप की दशा! यह है आपकी मनोवृत्ति। जब हृदयमेंसे दया-अनुकम्पा उठ जायगी, उसी समय आप २ के फायदे के लिये उसका १००) का नुकसान करके उसे बरबाद करेंगे। सिवाय इसके कभी नहीं करेंगे। इन सबका मूल कारण यही है कि संसार में लोभवृत्ति खूब ही फैली हुई है।

शास्त्रकारोंने भी कहा है:—

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
जैसे लाभ, वैसे लोभ, लाभसे लोभ बढता ही जाता है ।

कवि सुन्दरदासने क्याही सुंदर कहा है:—

जो दस-बीस पचास भये, शत होई, हजार तु लाख मगेगी ।
कोटी अरब्ब-खरब्ब असख्य, धरापति होने की चाह जगेगी ॥
स्वर्ग पाताल का राज करु, तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी ।
सुदर एक सतोष विना, शठ, तेरी तू भूख कभी न मिटेगी ॥

कहा पर मनुष्य की लालच ठहरती है ? । एक गरीब है, खाने पीने को भी नही है । भीख मागता है । संयोगवश उसे एक सेठजी मिल गये । वह भिखारी कहता है सेठजी से:—"मुझे खाने को नहीं है, आप अपने वहा काम दे दिजिये । मैं आप के वहां झाडू निकालूगा और जो कुछ कहेंगे, काम करने को तैयार हू ।' रोटी के लिये वह नौकर रहा । वह आदमी दो महिने के बाद सेठजी से कहता है:—'मुझे एक दो रुपये दे दिजिये ।' बीडी तमाकु पीने के लिये सेठजीने २ रु० देना शुरु कर दिया । महीना दो महिना होता है, वह आदमी फिर सेठजी के पास आता है, यह इच्छा करके कि चाय के लिये २ रुपये ओर मिल जाय तो अच्छा । फिर वह आता है, मुझे बाझार से पहनने के लिये कपडा खरीदना है, मुझे ६ रुपये औ कर दिजिये । फिर आता है और कहता है—"मेरे शादी करनी है, तनखा बढा दिजिये ।" बचा हुआ, उसको लिखाने पढाने का बन्दोबस्त करना है, नखा बढा दि । इस तरह उस की इच्छा बढते बढते ५०) १००) हजार लाख और बढते बढते एक दिन वह भी मील-मालिक बन गया । गृहस्थ के घर म झाडु निकालकर अपना गुजारा करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य आज मिलमालिक हो गया है, करोडाधिपति बन कर बैठा है । किन्तु क्या आप मानते हैं कि उसकी इच्छा पुरी हो गयी ? नहीं, तृष्णा अब भी इस की नहीं मिटी । उसको तो—

"कोटी अरब्ब-खरब्ब असख्य धरापति होन की चाह जगगी" अब उसके पास नोकर-चाकर, सैंकडो आदमी रहते हैं, हाजरी बजाते हैं । पहेरेदार भी बहुतसे हो गये हैं । सब कुछ होते हुए कोई सरकारी चपरासी अपनी यूनीफोर्म में आकर, कहे

कि-"सेठजी, चलो, आप को मेजीस्ट्रेट साहब बुलाते हैं-दरोगा साहब बुलाते हैं" तो जाना पडता है। अब वह विचारता है कि राजा बन जाउं तो अच्छा, जिससे किसी के सामने जाने की जरूरत ही न रहे। जरा एकान्तमें बैठकर वह सोचना शरू करता है। इंन्दोर का राजा बन जाउं तो अच्छा ? अरे ! इंन्दोर के राज्यमें क्या पडा है ? कोई वडी मालदार रियासत का राजा बन जाऊं तो अच्छा। ग्वालियर-हैद्राबाद का राजा बनूं तो अच्छा। पर इसमें भी क्या पडा है ? वह सोचता है-तब क्या करना ? 'अंग्रेज सरकार अपना राज्य दे तो अच्छा ? क्यों कि अंग्रेज लडाई में लडते लडते थक गये हैं। शायद इसी लिये कह दे कि भाई, तूंही इसे संभाल।' थोडी देर बाद और विचार करता है: "अगर अंग्रेजोने राज्य देभी दिया तो हिटलर या मुसोलोनी, टोजो या रुजवेल्ट तमंचा लेकर छाती पर आ चढेंगे, तब क्या करुंगा ? बहत्तर तो यह है कि जितने जितने राष्ट्र दुनिया के युद्धमें शामिल हैं, वे सब मेरे पास आकर कहें-कि हम तो सब लडते लडते थक गये हैं। दुनिया का राज्य करने की हमारे में ताकात नहीं रही। हमने तो बस अब खूब राज्य करलिया। अब यह सब तुमही संभालो। हमें नहीं चाहिये।"

भाइओ ! आपको कोई इसतरह दुनिया का राज्य देनेको आवे तो आप ना कहेंगे ? नहीं, नहीं कहेंगे। परमात्मा करे आप ना कहें; मुमकिन है पुण्यका उदय हो-भाग्य का सितारा चमके और वे सभी राष्ट्र आपसे कहदें कि यह सब राज लेलो, उस समय राज्य मिल जावे। अब मैं पूछुं-'अब तो आपको कुछ लेना बाकी नहीं रह गया है ?' आप जवाब देंगे और कुछ तो महाराज सा. बाकी नहीं रह गया है। केवल स्वर्ग और पाताल का राज्य और चाहिये। कवि सुन्दरदासजीने क्याही सुन्दर कहा है:—

"स्वर्ग पाताल का राज्य करूं, तृष्णा अधिको अति आग लगेगी।
'सुन्दर' एक सन्तोष विना, शठ, तेरी तू भूख कभी न मिटेगी" ॥

मित्रो ! आज ऐसेभी मनुष्य होंगे, जिनकी किसी समयमें आर्थिक स्थिति बिलकूल कमजोर होगी। और वे चाहे लक्षाधिपति बन गये हों, करोडाधिपति बने हों लेकिन तृष्णा अब भी नहीं बुझी होगी। नहीं शान्त हुइ है। एक एक मील मालिक को देखिये। क्या स्थिति थी ! क्या स्थिति है ? और अधिक द्रव्योपार्जन के लिए क्या क्या कर रहें है ? मैं कहता हुं, कवि सुन्दर के शब्दों में रत्ती मात्रकी क्या असत्यता है ? संसार में प्रत्यक्ष यही हो रहा है। इस लिए भाइओ, यदि आपको सुखी होना है, और अपने पैसे का सदुपयोग करना है तो आप सन्तोषवृत्तिको अपनावें। सुखका एकमात्र

मूल साधन सन्तोप है।

लेकीन जहा पर आशा-लोभ-लालच की गुलामी है, वहा पर सन्तोष कभी नहीं हो सकता। एक कवि कहता है:—

आशाया ये दासा, ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा दासी येषा, तेषा दासायते लोक॥

जो आशाके दास हैं, वे सारे ससार के गुलाम हैं। अपने दिल में समझेंगे कि सेठ सा. की खुशामद करेंगे, राजा, अफसर, अमीर उमराव सबकी खुशामद करेंगे तो कुछ मिलेगा। इसलिये सारे खुशामद का अगर कारण है तो एकमात्र आशा।

लेकिन जिसने आशा को अपनी दासी बना लिया है। आशा पर विजय प्राप्त किया है, उसका सारा जगत् दास होकर रहता है।

मैं विहार करते करते एक समय शिवपुरी से बम्बई जा रहा था। मेरे एक जान कार बडी भक्ति रखनेवाले-ऐसे एक सरदार थे, वे रास्ते में मिल गये। मुझे देख कर अपनी मोटर खडी कर दी।

मुझे पूछा—"कहा पधार रहे हैं?"

"बम्बई" मैंने जवाब दिया।

"मैं भी उधर जा रहा हू, बैठ जाइये मेरी मोटरमें, मैं आप को पहुचा दूगा।"

मैंने कहा—"आप को मालूम है कि मैं मोटर में नहीं बैठता हू। इस लिये शायद यह विनय दिखला रहे हैं। सभव हैं, मैं मोटर में बैठता होता तो, शायद इतना कहना तो दूर रहा, मुह उधर कर के सर्ट कर के निकल जाते। मेरी तरफ झाकते भी नहीं।" हमारा सबध अच्छा था, इस लिये विनोद में भी मैंने नग्न सत्य कह दिया। कहने का तात्पर्य कि, हम जब तक आशा की गुलामी नहीं छोडेंगे, अपना मनोबल मजबूत नहीं बनावेंगे, हमारे दिलदिमाग की गुलामी दूर नहीं करेंगे वहा तक हम किसी चीज के लायक नहीं। कितनी ही लेक्चरबाजी झाडें। कितना ही कुछ करें। आजादी की कितनी ही बातें करें, हम स्वराज्य भोगने के कभी अधिकारी नहीं होंगे। स्वराज्य मिलने पर भी उसका सुख नहीं भोग सकते।

आज प्राय: सारा ससार घोर पाप कर के पैसा इकट्ठा कर रहा है। और उन पापों का परिणाम भी तो प्रत्यक्ष मिल रहा है। 'अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव लभ्यते

फलम् ।' अत्यन्त उग्र पुण्य-पाप का फल प्रत्यक्ष ही मिल जाता है-मिल रहा भी है। फिर भी आंख कहां खुलती है ?

मनुष्यों की असन्तोषवृत्ति कहां तक बढी है, इसका एक विनोदपूर्ण उदाहरण सुनिये।

भीख मांगनेवाला ब्राह्मण ।

एक गांव में एक ब्राह्मण भीख मांगता था। एक दिन एक सेठने उसे देखा और कहाः-"गांव में कोई भीखारी नहीं, तुम क्यों भीख मांगते हो ? क्या दुःख है ?"

"नौकरी नहीं, चाकरी नहीं, भीख न मागूं तो क्या करूं ? हम दो आदमी हैं। पेट तो भरना है।" ब्राह्मण ने जवाब दीया। सेठने कहाः-"अच्छा तुम दो आदमी हो, हमारे यहांसे दो आदमी के लायक सीधा ले जाना, और तुम तुमारे लड्डु-पुडी जो चाहो बनाकर खाओ और मोज करो। मगर भीख न मांगना।" ब्राह्मण अब सीधा ले जाता है और खूब चकाचक फकाफक लड्डु-पुडी बना कर खाता-पीता मौज करता है।

एक दिन उसके दिल में सोचे सोचे विचार हुआ कि-सेठजी दो आदमीयों का सीधा देते हैं, । पर घर में बच्चा होनेवाला है। जब बच्चा हो जावेगा तो उसके लिये कहां से खाने को लावेंगे ? इस लिये बहत्तर है कि दो का तो सीधा आता रहे, और होनेवाले बच्चे के लिये अभी से कुछ भीख मांग कर इकट्ठा करता जाऊं।"

अब उसने 'सरस्वती कल्याण' 'जय हो' करते-करते फिर भीख मांगना शुरु कर दिया। एक दिन सेठजीने उसे भीख मांगते देख लिया। सेठजीने भट्टजी को बुलाया और पूछाः—"अब भीख कैसे मांगते हो ?' ब्राह्मणने कहा-"घर में प्रसूति होनेवाली है, बच्चा जब बडा हो जायगा, खिलाना, पिलाना, पढाना, लिखाना,-सब कुछ करना पडेगा। इस लिये कुछ अभी से इकट्ठा करलुं तो अच्छा है।"

सेठजी बोले-"भट्टजी, तुम्हारी औरत को न मालूम लडका होगा या लडकी ? जिन्दा होगा या मरा हुआ, कुछ भी पता नहीं. फिर अगर वह आवेगा तो क्या अपना भाग्य गिरवी रख कर आवेगा ? जिस समय आवेगा, सब कुछ हो जायगा। अभी से क्यों चिन्ता करते हो ?"

"ऐसा अन्नदाता हो सके कभी ? चिंता तो करनी ही पडती हैं," "अच्छा तो ऐसा करो, दो की जगह तीन आदमीयों का सीधा ले जाया करो।" कुछ दिन हुए। इत्तफाक से भट्टजी निकले एक दिन बाजार में। छोटा सा वाचनालय था। हिन्दी, गुजराती-अखबार लोग पढ रहे थे। भट्टजी भी खडे हो गये।

हिटलर, रशिया, जर्मन, जापान आदि की खबरें लोग पढ रहे थे। लडाई कैसी कहा हो रही है? जापान कहांतक आया है? सुनने लगा। जरा इस विषयमें आजकल लोगों को सुनेन की दिलचस्पी भी बढ गयी है।

भटजी सुनते ही रहे थे, उतनेमें एक आदमीने कहा, "एक बडे आश्चर्य की बात है। देखो, बनारस के पास मिर्जापुरमें एक औरत के दो बचे एक साथ उत्पन्न हुए" सुनकर भट्टजी को चिन्ता हुई। "अब क्या करना चाहिये। शायद मेरी स्त्री को भी ईश्वर एक साथ दो बचे दे दे। फिर उसके खाने पीनेका इन्तजाम? सीधा तो तीन आदमियों का आता है। भीख छोडनी नहीं चाहिये, मागते ही रहना चाहिये।"

मेरे प्यारे बन्धुओ, इस कथा पर आप हसते तो जरुर हैं! पर अपने दिलोंमें आप भी सोच लीजिये। आपमे से कितने एमे हैं, जो इस तरह के विचार नहीं करते, आप भी कितने लडकोंके लिये यह पैसा-धन इकट्ठा कर रहे हैं। अपने अपने बाल-बचे परिवार-कुटुम्ब के पोषण के लिये, जीवननिर्वाह के लिये, दान पुण्य के लिये, आत्मा के कल्याण के लिये, दूसरों की भलाई के लिये, धर्म-ध्यान के लिये, समाज, देश और जातिके लिये, सब के लिये पर्याप्त पैसे होते हुए पैसे बढाने के लिये कितनी हायपीट कर रहे हैं! किसके लिये? क्यों? जरा भी शान्ति है आपके दिलोंमें? जरा भी सन्तोष है आप के हृदय में? क्या उस ब्राह्मणसे आप कमलोभी हैं? यही तो अनीति का कारण है। इस अनीति का-पाप का कोइ कारण है तो यही कि आप लोग लोभिये-लालची बने हुए है। आशा के गुलाम बने हुए है। पापवृत्ति करते हैं। पर इस पापवृत्ति के पैसे को इकट्ठा करके आप भी रहने के नहीं! आप भी इसे भोग नहीं सकेंगे। आखिरकार एक दिन आपको भी इस ससार से जाना होगा। पैसा पैसे की जगह रह जायगा। लडके बचे इसके लिये आपके पीछे झगडेंगे-लडेंगे। आखिकार मुकदमा भी हो जाता है। मुकदमों के पीछे कुछ पेसा वकील मारता है, कुछ मेजिस्ट्रेट। कुछ खर्च होता है। सब इसी तरह बरबाद होता है। बेइमानी का पैसा कभी फलता नहीं।

इसलिये भाइओ! चाहे थोडा पैदा करो, पर करो नीति-न्याय से। अन्याय से कभी नहीं। वही पैसा आपको सुखदायी होगा। फलेगा-फूलेगा और आपके जीवन-विकास में सहायभूत होगा।

अब जो कहना है कल कहूगा।

—: ९ :—

भाइओं और बहनों,

कल मैंने अर्थ पुरुषार्थ के ऊपर कहते हुए यह दिखलाया था कि-गृहस्थ, द्रव्योपार्जन जरुर करे, परन्तु वह नीति-न्यायपूर्वक। अनीतिका द्रव्य गहा बुरा होता है। बुद्धि भ्रष्ट करता है। ऊंचे से ऊंचे आदमी का भी पतन कर देता है। आज सारा संसार दुःखी है, यह अनीति का परिणाम है। सब लोग धर्म से भ्रष्ट हो रहे हैं, यह अनीति के द्रव्य की रोटियों का परिणाम है। अनीति क्यों होती है? एक मात्र लोभसे। आदमी लोभ के कारण ही अनीति करता है। उसको किसी प्रकार पैसा बढाना है। सबकी दृष्टि एक हो रही है। इसी लिऐ मैंने कल कहा था कि सब लोग आशा के गुलाम बन रहे हैं। और गुलामी में क्या सुख है? द्रव्य चाहे कितना भी हो, जहां किसी भी प्रकार की गुलामी है-मन किसी में लगा हुआ है, सुख कभी नहीं हो सकता।

अनीति कौन नहीं करता?

नियमानुसार नीतिपूर्वक उपार्जन किया हुआ द्रव्य ही द्रव्य है। आज सारे संसार में अनीति हो रही है, बड़े से बड़ा अधिकारी, मंत्री, दीवान, राजा, सेठ और झोंपडी में रहनेवाला गरीब से गरीब मनुष्य-वह भी आज तो बेइमानी-अनीति किये बिना नहीं रहता।

व्यापारी लोग अनीति करते हैं। छोटा-मोटा धन्धा करनेवाले अनीति करते हैं, लेकिन नोकरी और चाकरी करनेवाले, जिन का कर्तव्य मात्र जनता की सेवा करना हैं, वे भी सेवा के पद को धारण करते हुए बेइमानी, अनीति और अत्याचार करते हैं। लांच, रुश्वत, घूसखोरी यह भी अनीति ही है। ऐसी घूसखोरी आज कितनी चल रही हैं?।

मेरे ऐसे कई मित्र हैं, जो ३-३ ४-४, हजार रुपया मासिक पैदा करते हैं,

उन से मैं कभी कभी कहा करता हू – " आप को तीन हजार मासिक वेतन मिलता है। एक हजार रुपया महिने का खर्च है और दो हजार बेंको मे जमा हो जाता है। बढ़ता ही जाता है। साल मे २५ हजार होता है और २५ वर्षो की नोकरी में ६–७ लाख रुपये हो जाने के उपरान्त देड दो हजार पेनशन मिल जायगी। मुझे आश्चर्य होता है कि इतनी लक्ष्मी उपार्जन करते हुए आप अपना और अपने बालबचों का व परिवार का पेट रिश्वत के पैसे से–रिश्वत के पापी अनाज से क्यों भरते है ?"

जिस को खाने को न मिलता हो, वह कभी किसी प्रकार की अनीति करभी ले तो, मेरी दृष्टि से वह अपराधी क्षन्तव्य माना जा सकता है। कई आदमी ऐसे होते हैं, जिन्हें सजा पर सजा मिले, पर आदत ऐसी पडजाती है कि, लुचाई लफगाई करना ही उनका पेशा बनजाता है- अनीति और वेईमानी करते नहीं हिचकते, ऐसे लोगों की तो बात ही कथा करना ? वे तो महापाप करते ही हैं।

परन्तु ऐसे खानदानी योग्य शिक्षित पुरुष जान–बुझकर सब साधन होते हुए अनीति, रिश्वतखोरी करें, क्या यह बडी शर्म और लज्जा की बात नहीं हैं ! एक मोका ऐसा भी होता हैं जो अन्तव्य है। किसी खानदानी ईमानदार और सच्चे आदमी को भी कभी चोरी करनी पडती है, और वह बदनाम हो जाता है। हम बिचार करते हैं कि ऐसे सच्चे कुलीन पुरुषने भी चोरी की ? परन्तु सच बात यह होती की वह किसी ऐसे कष्ट में आपडता है, जिससे लाचारी से उसको ऐसा करना पडता है। कुछ समय की बात है, एक धनी मिलमालिक सज्जन मेरे पास एक दिन आये। बात पर बात निकलते उन्होंने मुझे एक बात कही: 'मेरी मील में एक नौकर था। बडा इमानदार, सच्चा और विश्वासपात्र था। उसने एक दिन कोयले की ३–४ गाडिया–मिल की बेच खायी'। मेरे दिल में यह विचार आया कि ऐसा सच्चा, कुलीन, वफादार आदमी ऐसा काम कैसे कर सकता है ? वह मामला मेरे सामने आया। बिलकूल निश्चित था कि उसने चोरी की है, उसमें जरा भी शक नहीं।

परन्तु जब मैंने पूछा, तब उसने कहा–" चोरी नहीं की मैंने। " मेरे पास पापी तो सेंकडो आये पर ऐसा कुलीन और सच्चा आदमी, पहले कभी नहीं आया था। आखिर बहुत तरह से समझाने पर उस ने कहा–" हा मैंने चोरी की। "

मैंने उसको उस समय जाने दिया। वह चला गया। इस के बाद मैंने इस बात की पूरी पूरी तलाश करवाइ कि ऐसा आदमी, जिस की प्रामाणिकता पर किसी को भी शक नहीं हो सकता, उसने चोरी की तो क्यों की? गुप्त रीति से खोज की। मालूम हुआ कि एक दफे उसकी स्त्री बहुत बिमार पडी थी और उसका एक डोक्टर ने इलाज किया था। उस की तीन महिने की फीस चढ गयी थी। ३००) ३५०) रुपया उसे देना था। सौ पोनो सो उसके पास अपनी वेतन में से बचाये थे, वे दिये। बाकी रुपये नहीं दे सका।

अब दूसरी बार उसकी स्त्री बिमार पडी। सख्त बिमार पडी। डोक्टर को बुलाया, तो उसने कहाः 'पहले का बिल चुकाओ तो आ सकता हूं। अन्यथा नहीं।' डोक्टर आ नहीं रहा था, कर्ज किसी से मिल नहीं सका। वह बिचारता हैः- 'फीस चुकाऊं तो डोक्टर आवे और डोक्टर आता है तो स्त्री बचती है, नहीं तो मरती है।'

बेशक, वह अपने मालिक के पास जा कर यह बात साफ साफ कह सकता था, रुपया मांग सकता था। मेरा ख्याल है, मालिक जरुर दे देता, लेकिन न मालूम किस कारण से, उस ने ऐसा नहीं किया। और किसी से जिक्र भी नहीं किया। उसने गाडियां बेच खायी, और रुपये डोक्टर को जा कर दे दिये। मुझे खोज करने पर यह बात मालूम हुआ। पूरी लाचारी की हालत में उसने यह चोरी की। खैर मैंने उसे बुलाया और आगे के लिये समझाया कि अगर ऐसा काम आ पडे तो शर्म नहीं खानी चाहिए। साफ साफ कह देना चाहिये। वे ३५०) रुपया मैंने अपनी जेब से दिये। और उसको मैंने नोकरी में रक्खा।"

ऐसे कोई लाचारी हालत में-भूखी हालत में चोरी-अनीति करते हैं, यह बात दूसरी है।

लेकिन जिस मनुष्य को खूब खानेपीने को मिलता है। हजारों लाखों बेंकों में जमा करने को मिलते हैं। बैठे बैठे व्याजसे ही खूब खा पी रहा है। ऐसी हालत में रहनेवाला गृहस्थ, चाहे वह अफसर हो, राजा हो, श्रीमन्त हो, कोई भी हो, अनीति-अत्याचार क्यों करते हैं? यह भी समझने की बात है। इसका सिर्फ एक ही कारण है, जैसा मैंने कल कहा था-लोभवृत्ति इनको लगी है। बस, दूसरा कोई कारण नहीं।

मालदार हो जाये, खुब पैसे वाले, करोडाधिपति, अजबपति खर्वपति हो जायें। लोभवृत्ति बढती ही जाती है। आज इन्हीं के कारण दुनिया में युद्ध हो रहा है। खून-खराबीयों हो रही हैं। लाखों, करोडों निर्दोष, निष्पाप मनुष्य मोत के घाट उतारे जा रहे हैं, मात्र इन सत्ताधारियों की लोभवृत्ति को शान्त करने के लिये। पर यह कभी हुआ है आज तक कि किसीकी लालसा तृप्त हुई हो? शास्त्रकार कहते हैं:—

"लोभाविष्टो नरो हन्ति मातरं पितरं तथा"-अर्थात्-लोभ में आया हुआ मनुष्य अपने मातपिता तकका भी खून करने में कभी नहीं हिच-किचायेगा। इस लिए सज्जनो, बेईमानी से दूर रह कर धन्धा रोजगार करे। फिर देखिये आपकी बुद्धि कितनी निर्मल और शुद्ध हो जाती है। हृदय कितना पवित्र बन जाता है। धर्मकार्य में कितनी तन्मयता हो जाती है।

प्राचीन भारत के गृहस्थ

अन्याय-अनीति का द्रव्य दुःखदायी है। आज अनीति के पैसे से बना हुआ करोडाधिपति भी दिवाला निकालता है। प्राचीन भारत के इतिहास को आप देखिये, मैंने भी थोडा देखा है, आप किसी से पूछीये। उस समय आप को चोरी, झूठ, व्यभिचार आदिके बीसीयों घटनाए होने के उदाहरण मिलेंगें। परन्तु आप सारा इतिहास ढूढ लीजिये, आपको एसी घटना कहीं नहीं मिलेगी कि किसीने दिवाला निकाला हो।

मैं भारत के प्राचीन-इतिहास की बात कह रहा हू। इसका क्या कारण है? सोचिये। क्या उस समय लक्ष्मी नहीं थी? सबकुछ था, प्राचीन भारत के कुछ नमूने भी तो देखिये। आबूके मन्दिरों को देखिये। आप अनुमान कर सकेंगे कि यहा आज की अपेक्षा हजारो गुना ज्यादा अखुट, अखड लक्ष्मी भरी पडी थी। जिसका कोई हिसाब नहीं था। आप के अनुमान की बात है। और क्या इतनी लक्ष्मी विना व्यापार के ही आ गयीं होगी? परन्तु इतना भारी व्यापार होते हुए-इतनी अखड लक्ष्मी होते हुए किसीने दिवाला नहीं निकाला और आज रोज बीसो लख-पति-करोडाधिपतियों के दिवाले निकलते हैं। इसका एक कारण यह भी है। हमारा बाह्याडबर। पास में पूजी काफी नहीं है और व्यापार करने की हिम्मत करते हैं करोडों लाखों का। इस तरह कागज के महल कब तक रह सकते है? आज सारे व्यापारों की

यही हालत है। पांच लाख की पूंजी पासमें नहीं और व्यापार चला रहे हैं करोंडा का। किसी न किसी दिन दिवाला नहीं निकालेगा तो क्या होगा?

लक्ष्मी की मर्यादा

इसलिये शास्त्रक रोंने व्यापारके लिये विधि भी बतलायी है। अगर आप लोग उस विधि के अनुसार अर्थ का उपार्जन करें, तो दिवाला तो क्या, कभी दुःख या चिन्ता तक का भी काम नहीं पड़ेगा। शास्त्रकार कहते हैं-प्रत्येक गृहस्थ को अपनी लक्ष्मी की मर्यादा बांध लेनी चाहिये। इसे जैन शास्त्रोंमें "परिग्रहपरिमाणव्रत" कहा अर्थात् मुझे कितनी पूंजी रखनी चाहिये. इस बात का परिमाण करलें। लाख दोलाख चार दस लाख-वीस लाख-पचास लाख, जितना चाहें रख लें, परन्तु एक संख्या मुकरर कर लें। इस से ऊपर जो कुछ हो जाय, वह धर्मकार्य में, परोपकार कार्य में खर्च कर दें। इस बढती लक्ष्मी के ऊपर उसका कोई हक नहीं।

एक गृहस्थ है। उसने ५० हजार रुपये का परिमाण किया है। वह प्रतिवर्ष १५-२० हजार दान में खर्च करता है। आज एक लक्षाधिपति, जिस के पास ५-२५ लाख है वह भी १५-२० हजार प्रति वर्ष दान करने की हिम्मत नहीं करता। परन्तु वह ५० हजार का परिणाम रखनेवाला हर साल १५-२० हजार गरीबों में, मोहताजों में देता है। यह है शास्त्र की विधियों का पालन करनेवाला सच्चा जैन। भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य करनेवाला, अपने आत्मा का सच्चा कल्याण चाहनेवाला जन।

वह दान करता है सिर्फ धर्म में श्रद्धा के कारण। परिमाण व्रत के कारण। दान नहीं करेगा तो उन पैसों को करेगा क्या? ५० हजार से ज्यादा तो रख सकता नहीं। इस लिये परिग्रह परिमाण व्रत का एक फायदा तो यह है कि मनुष्य अपने पास थोडी पुंजी रखते हुए भी हजारों लाखों का दान कर सकता है।

दूसरा फायदा यह है कि जो दिवाले और बेइमानियां हो रही हैं वह कम हो जायगी। उसके दिल में तसल्ली हो जायगी कि क्यों मुझे पाप करना चाहिये? मुझे तो दो लाख की पूंजी की जरुरत थी। बस हो गयी है। इस से आदमी में संतोषवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। शान्ति हो जाती है उसकी आत्मा में। जगत् के जीवों पर दया का भाव हो सकता हैं और दो पैसा धर्म के कार्य में अपने गरीब भाइयों की

मदद में खर्च भी कर सकता है। तीसरी बात यह कि उसको कभी आर्थिक दुःख का सामना नहीं करना पडता।

इस लिये महानुभावों, संसार में रहते हुए, पैसे को रखते हुए, बालबच्चों का पोषण करते हुए, व्यवसाय को चलाते हुए, देश, समाज, जाति की रक्षा करते हुए प्रसन्न रहना है, सब तरह के झंझट और दुःखों से बचना है, तो परिग्रह का परिमाण कर लो। उसके उपरान्त जितनी लक्ष्मी आवे उसे अच्छे अच्छे भले कार्यों में खर्च करते जाओ। इसी में जीवन की सफलता है।

आज कल कुछ करने का मौका है। सचमुच ही ऐसा मौका श्रीमन्तों के लिये आया है। लाखों आदमी आज गरीब है। दीन-महोताज हो गये हैं। भूखों मर रहे हैं, अनाज के अभाव मे। चारों तरफ गरीबी, दुःख फैल रहा है। आप जिधर चाहें अपने पैसा का सदुपयोग कर के पुण्यराशि संचित कर सकते हैं। शास्त्रकार आपके हित की एक और बात भी बताते हैं।

द्रव्यका विभाग-

आप अपनी सम्पति को चार भागों में विभाजित कर दें।

(१) एक हिस्सा खजाने में रखलें। (२) एक हिस्सा अपने परिवार के पोषण के लिये रखलें। (३) एक हिस्सा व्यापार में लगावें। (४) और एक हिस्सा दान-परोपकार-धर्मादिक शुभ कार्यों में खर्च करें।

मान लीजिये ५०० रुपये की आपकी मासिक आमदानी है, तो सवासो खजाने में सुरक्षित रखलें, सवासो घर खर्च में रखलें, सवासो व्यापार में लगावें और सवासो धर्ममें खर्च करते रहें। इसी अनुपात से आपकी जितनी आमदानी हो उसका हिसाब करलें। आपकी कितनी सुन्दर गृहस्थी हो सकती है? कितने पुण्यका उपार्जन हो सकता है? इसका आप विचार कर लीजिये। शास्त्रकार भी कहते हैं—लक्ष्म्याः दानं, दानात् लक्ष्मीः-अर्थात्-लक्ष्मी हो तो दान अवश्य करिये, आप दान करेंगे तो लक्ष्मी अवश्य आवेगी। यह चक्र बराबर चलता रहता है। अगर लक्ष्मी उपार्जन करना है और साथ ही पुण्य भी, दोनो चीजे प्राप्त करनी हैं तो अपनी सम्पति के चार हिस्से कर लीजिये। आप दानी बनते जावेंगे। आपका खजाना भरपूर होता जायगा। किसी समय

भी दुःखी होने का काम नहीं रहेगा। बाल-बच्चों-परिवारके रक्षणकी चिन्ता नहीं रहेगी। और कभी भवितव्यता से आ भी जाय, व्यापार रोजगार छूट भी जाय तो भी खजाना भरा है, उसमें से आप खर्च कर सकेंगे। आरामसे जिंदगी बीता सकेंगे। आराम के साथ अपना व्यापार कर सकेंगे।

लक्ष्मी के चार पुत्र।

अगर आपने इस लक्ष्मी के चार विभाग नहीं किये, इसका सदुपयोग नहीं किया, दान-पुण्य का उपार्जन नहीं किया, तो लक्ष्मी के चार पुत्र आप के सामने तैयार खडे है। आपकी सारी लक्ष्मी छीनकर ले जायेंगे।

लक्ष्मी दायादश्चत्वार: धर्माग्निराजतस्करा: ।
वृद्धपुत्रापमानेन कुप्यन्ते बान्धवास्त्रय: ॥

अर्थात्—लक्ष्मी के चार पुत्र हैं: धर्म, अग्नि, राजा और चोर। सबसे बडा पुत्र है धर्म। उसका अगर आपने अपमान किया अर्थात् दान नहीं किया तो उसके दूसेर तीन छोटे भाई बडे कोपायमान होते हैं। परिणाम यह होता है चोर-डाकू लक्ष्मी को लेजायेंगे। राजा ले लेगा या अग्निमें स्वाहा हो जायगी।

आज कल तो और भी क्रान्तिकारियों का जमाना है। पूंजीवाद के शत्रु बहुत पैदा हो गये हैं। किसी दिन वे तमंचा लेकर छाती पर चढ बैठते हैं। तिजोरियां की चावियाँ मांगलेते हैं और उनसे तिजोरी न खुले तो खुद उन्हें खोलकर सब खजाना खाली कर देना पडता है। कहते हैं: ले जा भाई, ले जा, तमञ्चा चलाकर घडाका नहीं करना, तेरे को चाहिये सो लेजा। ऐसे समय दे देते हैं, परन्तु अपने हाथोंसे दान नहीं करते। इधर राजसत्ताओं का टैक्स एक न एक सिर पर हो ही जाता है। कमाई कितनी भी करते जाओ, गरीबों को किसी तरह लूटते जाओ, उनका खुन चूसते जाओ। आखिर— 'मियां चोरे मुठे (तो) अल्ला चोरे ऊटे'। इधर से तुम इन गरीबों के मूंह की कौर छीनते जाओ, उनके पेट पर लात मारते जाओ, और उधर तुम पर टैक्स, सुपर टैक्स लगते जावेंगे। कहा जाता है कि ९९ प्रतिशत हिस्सा तो राजसत्ता ले रही है ! १ हिस्सा तुम्हें रहता है। आखिरकार रहोगे तो वहीं के वहीं। फिर चौथा पुत्र है लक्ष्मी का अग्नि। दूर कहां जाव, आप देखिये न, अभी बंबई में दो ही धडाके में कितना

साफ हो गया ? ज्यादा नहीं हुए थे, सिर्फ दो ही हुए थे। इन दो धडाकों में ही बडे बडे महल मकानात मैदान के मैदान हो गये। एक गृहस्थ है बम्बई में। विद्यार्थी अवस्था से ही मैं उसे जानता हू। बडा लोभी, दो पैसा खर्च नहीं करता था। बडी मूर्च्छा थी लक्ष्मी पर। लेकिन लम्बे चौडे उपदेश दुनिया को देने को तैयार था। मेरे सामने ही सामने उसका पैसा बढा। कहते हैं उस के पास ६०–७० लाख तक हो गया था। मैने नहीं सुना कि उसने कभी दो चार हजार रुपये का भी दान किया हो। लेकिन कहते है, इस धडाके में बहुत बडा दान कर दिया, ४०–५० लाख का सफाया हो गया। न जाने कितनोंने ऐसा दान किया होगा ? सुनते हैं हजारों आदमी मर गये। करोडों की सम्पत्ति नष्ट हो गयी। और भी न जाने इन धडाकों ने क्या किया होगा ? भगवान् ही जाने।

कहने का तात्पर्य क्या है ? अपने हाथो से सुन्दर से सुन्दर कार्यों में इस द्रव्य का उपयोग कर लीजिये। इसका विभाग करिये। आप को कोई तकलीफ नहीं होगी। सुख से जीवन बितायेगे। सुन्दर से सुन्दर गृहस्थाश्रम का निर्माण कर सकेंगे। अपने आत्मा का कल्याण भी कर सकेंगे। गृहस्थाश्रम का भूषण अर्थात् सब से पहला काम अगर कोई है तो वह है अर्थोपार्जन और यह अर्थोपार्जन का पुरुषार्थ एक गृहस्थ किस तरह करे, क्यों करे, ये सब बातें मैंने सक्षेप में आप को अब तक सुनायी।

सज्जनो,

गृहस्थाश्रम में आराधन करने के तीन पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम इन में धर्म के ऊपर सक्षेप मे कह चुका, क्यो कि विस्तार से आगे कहूगा। और 'अर्थ' पुरुषार्थ पर तीन दिन मैंने जितना हो सका, उतना समय के प्रमाण में कहा। अब 'काम' पुरुषार्थ के विषय मे कल कहूगा।

भाइओं और बहनों,

'अर्थ' पुरुषार्थ के बाद अब मुझे 'काम' पुरुषार्थ पर आज कहना है।

'काम' को हम पुरुषार्थ तब कह सकते है जब कि मर्यादापूर्वक, आसक्ति नहीं रखते हुए, संयमपूर्वक, शास्त्र की विधि के अनुसार सेवन किया जाय। इस के विपरीत यदि गृहस्थ आचरण करे, तो वह 'काम' नहीं, व्यभिचार है।

'गृहस्थ' शब्द की व्याख्या करते हुए मैंने एक व्याख्यान में कहा था कि-'गृहे तिष्ठतीति गृहस्थः' और 'गृहिणी गृहमुच्यते।' अर्थात् गृहीणी-पत्नी-स्त्री यह घर है, उस घर में जो रहता है, अर्थात् जो शादी करता है, वह गृहस्थ है।

अब यहां प्रश्न उठता है कि-शादी करना, यह प्रत्येक गृहस्थ को लाजिमी है क्या? नहीं, संसार में धर्म जो होता है, वह व्यक्तिगत वस्तु है।

आजकल लोगोंने धर्म का संबन्ध समाज से जोडा है, मेरा इसी विषय में मतभेद है। 'धर्म' व्यक्तिगत जीवन की सम्पत्ति होनी चाहिए और जीवन में ही इस का स्थान होना चाहिये।

यावज्जीवन ब्रह्मचर्य.

धर्म यह व्यक्तिगत सम्पत्ति है। न कि सामाजिक सम्पत्ति। समाज, देश और मानवजाति जिस प्रकार से जो कुछ करती हैं उसी प्रकार से करना, यह धर्म नहीं। दुनिया किसी भी तरह से करती हो, लेकिन हमारे आत्म-कल्याण के लिये-जीवन-विकास के लिये हमें किस तरह से रहना चाहिये, यह हरेक व्यक्ति के विचारों पर आधार रखता है। जरा देखिए:—

संसार में सभी मनुष्य एक सरीखे नहीं होते। अगर कोई युवक इस बात की प्रतिज्ञा कर ले कि मुझे अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना है

और ब्रह्मचर्य का पालन कर के जगत् की सेवा के लिये अपने को अर्पण कर देना है, तो क्या समाज उसे मजबूर कर सकता है कि, तुम्हें शादी करनी ही चाहिये ? कभी नहीं कर सकता।

आज दुनिया मे ऐसे बहुत से मनुष्य हैं, जिन्होंने आजन्म तक शादी नहीं की। लकिन ऊंचे से ऊंचे नागरिक, तत्त्वदर्शी, ज्ञानी, त्यागी, महात्मा, योगी, तपस्वी हो कर समार का महान् उपकार करते हैं। इस का एक उदाहरण दे दू आप को—

करांची का जमशेदभाई

जमशेद महता का नाम तो आपने सुना होगा। वे थीओसोफिकल सोसायटी कराची के अध्यक्ष हैं। वे बालब्रह्मचारी है। उनके चरित्र को देखें। इतना ही नहीं, उनके तेज, तप और प्रतिभा को देख कर हरएक मनुष्य कह सकता है कि-कितना जबर्दस्त ब्रह्मचारी पुरुष है। उन्होंने अपना समग्र जीवन मनुष्य जगत् की सेवा में अर्पण कर दिया है। लाखो की सम्पत्ति गरीब दुखियों की सहायता के लिये दान कर दी। इतना ही नहीं, आज वे प्रातःकाल ४ बजे उठते हैं और रात के दस बजे तक के समय का एक एक पल उनका समाज की–मानवजाति की सेवा के लिये खर्च होता है। सेवा सेवा और सेवा। इस के सिवा कोई कार्य वे नहीं करते।

कितना सुंदर जीवन है! उनके जीवन की घटनाओ को आप देखेंगे तो मालूम होगा कि जीवन में झूठ–अभिमान क्या चीज है, वह समझते ही नहीं है। १३ वर्ष तक कराची म्युनीसीपालीटी के प्रधान रह कर उन्होंने कराची को बसाया है। आज कराची का आत्मा अगर कोई है तो वह है जमशेदजी। लोग आशीर्वाद लने जाते हैं। उनकी सलाह लेने जाते हैं।

ऐसा जीवन क्यों है ? उनके ब्रह्मचर्य का प्रताप है। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म मात्र व्यक्तिगत सम्पत्ति है। कोई भी मनुष्य या समाज आदर करे चाहे न करे। धर्म उसका निज का विषय है। चाहे जिस धर्म का पालन कर के मनुष्य अपने आत्मा का कल्याण कर सकता है। इस लिये 'काम' विषय को जितने के लिये संसार का कोई मनुष्य प्रतिज्ञा करे कि वह शादी नहीं करेगा–अखण्ड 'ब्रह्मचर्य'का पालन करते हुए शुद्ध से शुद्ध पवित्र और निर्मल जीवन कोई बिताना चाहे तो वह बराबर कर सकता है। समाज या उसके माता–पिता कोई उसे मजबूर नहीं कर सके।

मैं सब से पहले यह बात कहूंगा कि सर्वोत्कृष्ट बात अगर मनुष्य के लिये कोई है तो वह है ब्रह्मचारी रह कर जगत् की सेवा करते हुए जीवन बिताना। ऐसे उत्कृष्ट व्रत का पालन करते हुए संसार की सेवा में अपने को खपाते हुए जो मरता है, वह हंमेशा के लिये अमर हो जाता है। हजारों वर्षों के बाद भी आज हम ऐसे सेवाभावी ब्रह्मचारी महापुरुषों की तारीफ करते हैं, प्रातःकाल में उठकर नमस्कार करते हैं।

अगर ऐसा नहीं रह सकते हैं तो दूसरा उपाय है शादी कर के गृहस्थाश्रम में जाना। परन्तु शादी कब करना? क्यों करना? किसके साथ करना? यह सब विधिके अनुसार होना चाहिए। यह विधि मैं बतलाउं, उसके पहले नवयुवक भाईओंसे और भी थोडा निवेदन करना चाहता हूं।

शादी के पहले कैसे रहना?

मैं पहले एक व्याख्यान में कह चूका हूं कि-यदि गृहस्थाश्रम में जाकर शुद्ध गृहस्थाश्रम का पालन करना है तो प्रत्येक युवक गृहस्थाश्रम में आने से पहले बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करे। प्राचीन समय में कोई ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। कोई ३५-३६ वर्ष तक करते थे। और कोई ३० और जघन्य २५ वर्ष तक भी पालन करते थे। इस बीच में वे संसार की हरेक वस्तु का अध्ययन करते थे। गृहस्थधर्म के सम्पूर्ण नियमों को सिखते थे और आर्थिक शक्तियों को उत्पन्न करने की ताकत प्राप्त करते थे। एवं अपनी शारीरिक शक्ति को सुदृढ बनाते थे। इतनी बातें प्राप्त करने के बाद गृहस्थाश्रम में जाते थे। पुरुषों के लिये नियम था कि कम से कम २५ वर्ष की उम्र से पहले कतई शादी न करें। ऐसा करने से वे स्वस्थ रह सकते थे। शारीरिक शक्ति बिगडने नहीं पाती थी और सुखपूर्वक अपने गृहस्थधर्म का पालन करते हुए अपने जीवन-विकास के पथमें प्रगति करते रहते थे।

परन्तु आजकल! आजकल तो मैं कई युवकों को देखता हूं कि वे इतने रोगी-शोकी-संतापी-दुःखी, दुबले-पतले कमजोर शरीरवाले दिखाई देते हैं कि, आंखे घस गयी। हैं ११ नंबर का चश्मा रखने लग गये हैं। गाल बैठ गये हैं। २०-२५ वर्ष की उम्र के होते हुए, स्कूल से घर आकर माता-पितासे फरियाद करते हैं कि मेरी कम्मर में दर्द होता है-छाती में दर्द होता है। इत्यादि।

कितने शर्म और अफसोस की बात है कि २०-२५ वर्ष के युवक, जिस के नखमें

भी रोग नहीं होना चाहिये, वे अपने पिता से कहते हैं कि मेरी कम्मर छाती और दिमाग में दर्द होता है। लाईब्रेरीयोमें जाते हैं और अखबारों में देखते हैं शक्तिवर्द्धक गोलिया-ताकत की दवा कहा मिलती है? कितनी दु ख की बात है!

यह कितना अधःपतन है? मेरे युवकों! मैं तुम्हें अपील करता हू कि अपने स्वास्थ्य को इस तरह बरबाद न करें। यह सब से बडी पूजी है। अपनी शक्ति का रक्षण करें। आप का शरीर क्षीण क्यों है? ताकात क्यों नहीं है? ब्रह्मचर्य का आप पालन नहीं करते। इसके सिवाय और क्या कारण हो सकता है! नाच-रग-नाटक-सिनेमाओं के पीछे आप अपने शरीर को बरबाद कर रहे हैं। आप की यह हालत है मेरे युवको! भाईओ! खूब याद रखिये, आप को कोई हक नहीं है कि आप शादी करें और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें। यदि वीर्य रक्षण नहीं हुआ है तो फिर आप में ऐसी कौनसी ताकत है, जिसको लेकर आप गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किये जाते है?

जिस गन्ने को आप लोग खाते हैं। उस गन्ने का एक सांठा किसी की पीठ पर लगा दीजिये, चार चक्कर खाजायगा। कितनी ताकत है इस गन्ने में! परन्तु आप जानते हैं सांठे में वह ताकात किसकी है? उस गन्ने मे रहे हुए रसकी है। इसी गन्ने को कोल्हू मे पीसकर उसका रस निकाल लिया जाय, फिर उस में क्या रहेगा? सिर्फ कूचा। घास-मात्र रह जाती है, जिसमे कोई ताकत नहीं होती। यही दशा आज हमारे युवकों की है। हमारे नवयुवकों का शरीर एकमात्र कूचा रह गया है जिन में कोई ताकत नहीं-शक्ति नहीं। वीर्य जैसी कोई शक्ति नहीं।

मैं बार बार आप को क्या कहू? आपका भला जीवन की सफलता-कल्याण सब कुछ इसीमें है कि आप अपने शरीर को खूब मजबूत बनाईये और जितना हो सके, शक्ति का सगृहीत कीजिये। ब्रह्मचर्य का अखण्ड पालन करिये। दुनिया में ऐसा कोई कार्य नहीं जो आप न कर सकें।

अखण्ड ब्रह्मचर्य को पालन करनेवालों को चाहिये कि शादी कतई न करें। जगत् की सेवामें अपने को लगाए और अपना नाम अमर कर जाए।

शादी कब करे?

दूसरा उपाय है गृहस्थाश्रम। जो लोग गृहस्थाश्र में जाना चाहें वे युवक कम से कम २५ वर्ष से पहले कतई शादी न करें। इसी प्रकार बहनों को भी सोचने

का है। माताओं, आप भी ध्यान रखिये। आप ११ वर्ष की बहू का मुंह देखने को बडी लालायित रहती हैं, परन्तु घर में जब बहू आजाती है तब मुश्किल से १५ दिन तो आप का आनंद में जाता है, १६ वें दिन से किचकिच शरु हो जाती है। सास-बहू के झगडे अपना रंग दिखाने लग जाते हैं। आजकल प्राय यही हाल सब जगह हो रहा हैं।

माता पुत्र से कहती है:— "तेरी बहु खराब आयी।" लडका कहता है:— "तूं ही तो लाई थी, फिर खराब आई कैसे?" "कुछ नहीं करती, लडती है, काम भी नहीं करती।" इस तरह की कहानियां चलती हैं। बहु बिचारती है: "सास रांड ऐसी है, मर जावे तो अच्छा हो।" वह अपने पति के कान भरती है, फिर उनमें और सास में लडाई झगडे चलते हैं। पास पडोसवाले विना टीकट का सीनेमा देखते हैं।

कुटुंबमें घरमें क्लेश होना, इसके जैसा पाप दूसरा क्या हो सकता है? ऐसा पाप इन बहिनों के सिवा कौन कर सकता हैं? माता मोह के वश होकर ऐसा पाप करती है।

आज के गृहस्थाश्रम ने तो सारे समाज को बर्बाद कर डाला है। इस मोहने और इन जातियों के भयानक विनाशकारी नियमोंने कितनी हानि पहुंचायी है!

मित्रो! खूब याद रखो। जब तक आप में गृहस्थ धर्म को निभाने की पूरी शक्ति उत्पन्न न हो जाय और ब्रह्मचर्य की शक्ति आप के पास न हो, आप गृहस्थाश्रम में कभी प्रवेश न करें। आप को शादी करने का कोई अधिकार नहीं। २५ वर्ष तक आप यह शक्ति प्राप्त करें।

कन्याओं के लिये भी खास नियम हैं। हमारे यहां तो एक भयङ्कर वहम घुस गया है कि अगर शादी से पहले कन्या मासिक धर्म में आगई तो घर का सत्यानाश निकल जाता है।

परन्तु शास्त्रकार खूल शब्दोंमें कहते है, "त्रिणि वर्षाण्युदी क्षेत" अर्थात्-कन्या मासिक धर्म में आने के ३ वर्ष बाद अपने योग्य, अपने से अधिक गुणवान् पति के साथ शादी करे।

अगर अधिक गुणवाला पति न मिले तो समान गुणवाले के साथ शादी करे। परन्तु मासिक धर्म शरू होने के तीन वर्ष बाद।

अब आप समझ सकते हैं कि-कन्या की उम्र शादी के योग्य होने के लिये

कितनी होनी चाहिये ? कहने का तात्पर्य यह है कि-युवकों के लिये इस प्रकार नियम है और कन्याओं के लिये इस प्रकार ।

वर-कन्या की योग्यता

अब वर-कन्या की योग्यता के विषयमें सुनिए। योगशास्त्रकार श्रीहेम चन्द्राचार्य कहते हैं :

" कुलशीलसमैः सार्द्धं कृतोद्वाहोन्यगोत्रजैः ॥ "

अर्थात्-कन्या और लडका-दोनों के बारे में कहते हैं-कि जिनके कुल और शील समान हों और भिन्न गोत्रवाले हों, ऐसी अवस्था में वे आपस में शादी करें।

अगर लडका उच्च कुल का है और कन्या नीच कुल की है या कन्या उच्च कुल की है और लडका नीच कुल का है, तो कुलका भेद होने से उनमें कुसप पैदा होना स्वाभाविक है। उन के दाम्पत्य जीवन में प्रेमभाव नहीं रह सकता। इस लिये कुल दोनों का समान होना ही चाहिये।

उनके शील-स्वभाव, आचार-विचार, खानपान, व्यवहार भी समान होने चाहिए। अगर कन्या शुद्ध आचार विचारवाली है, निर्मल-विनीत स्वभाव की है, सात्विक खान-पानवाली है, शीलवती है और लडका दुराचारी, व्यभिचारी, नीच विचारवाला है, तो ऐसे लडके के साथ ऐसी कन्या की शादी करना भी बेकार है, क्यों कि-विचार भेद,, आचारभेद, खान-पानभेद आदि के कारण रोजाना क्लेश चालु रहता है। वैज्ञानिक लोग भी प्रकृति-स्वभाव के ऊपर विशेष ही जोर देते हैं। खानदानी बडी चीज है। जानवरों में भी देखी जाती है। ऊंची नस्ल के जानवर से ऊंचे प्रकार का जानवर उत्पन्न होता है। दुःख का विषय है कि मानवजातिने जितना अधिक ज्ञान (!) प्राप्त किया, उतना ही उसने नस्ल का विचार छोड दिया। फिर शास्त्रकारों ने कहा है-गोत्र उनके भिन्न भिन्न होने चाहिये। गोत्र भिन्नता, यह भी महत्त्व का विधान है।

जिन के वीर्य-रज-लोहू एक चला जाता है, उन में यदि शादी होती है तो अनेक प्रकार की बुराइया होने की सभावना है। इस लिये गोत्र भिन्न ही होना चाहिये। आजकल तो विज्ञानिकोंने भी भिन्नवीर्य और एक वीर्य का क्या प्रभाव होता है, यह स्पष्ट किया है।

शास्त्रकारोंने विधि में बतलाया है कि भिन्न गोत्रवालों में शादी होनी चाहिये। अब करना न करना आप के हाथ की बात है। आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार करेंगे, लेकिन इतनी बात तो जरूर हैं कि शास्त्र की विधि बतलाना मेरा धर्म है।

शादी क्यों करें?

अब शादी क्यों करनी चाहिये? यह भी एक प्रश्न है। मैं युवकों को पूछुं इसका जवाब शायद यही देंगे, 'विषयों की तृप्ति करने के लिये'। कार्यरूप में तो वे यही आजकल कर भी रहे हैं।

परन्तु मैं कहता हूं-मित्रो, विषयों की तृप्ति के लिये गृहस्थाश्रम नहीं है। पवित्र जीवन बिताना-आत्मा का कल्याण करते हुए-संसार की सेवा करते हुए, गरीब दुःखियों-दीनों की सेवा-परोपकार करते हुए, संयमपूर्वक शांति पूर्वक निर्विघ्न संसार-यात्रा को व्यतीत करना, यही गृहस्थ धर्म का सच्चा उद्देश्य है।

गृहस्थ धर्म में इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री साथी के रूप में होते हैं। हर बातमें सुख में-दुःख में-चिन्ता में-धर्म में वे एक दूसरे के साथी हैं।

घर के कार्यों को अच्छी तरह निभाना, आये हुए अतिथियों का सत्कार करना, बालबच्चों की देख-भाल करना, धर्मध्यान में अपने पति को योग देना, सच्ची सलाह देना, भले कार्यों में मदद करना, आदि घर के कार्यों को करना स्त्री का धर्म है। और इन कामों के लिये संसार में रहते हुए धर्मकार्यों द्वारा, सत्कार्यों द्वारा पुण्य उपार्जन कर के अपना जीवन-विकास करने के लिये स्त्री को पुरुष की आवश्यकता है और पुरुष को स्त्री की। एक मात्र विषयों को सेवन करने के लिये कभी नहीं। विषय-सेवन, यह तो मात्र सन्तान की इच्छा पूरी करने मात्र के लिये है।

आज संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं, जिन्हों ने गृहस्थाश्रम में रहते हुए, समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुए भी विषय-भोग कभी नहीं किया। सदाचार और पूर्ण संयम से रहे हैं।

यह बात आप भूल जाइए कि एक मात्र विषयसेवन करने के लिये ही शादी की जाती है। और जब तक गृहस्थ धर्म का सच्चा उद्देश्य नहीं समझा जायगा, तब तक संसार से व्यभिचार मिटने का भी नहीं।

व्यभिचार किसे कहते हैं ? मर्यादा का भंग यही व्यभिचार है। खूब याद रक्खें। अगर मर्यादा का भग करते हुए गृहस्थ अपनी स्त्री के साथ भी विषय सेवन करता है, तो दोनों के लिये शास्त्रकारोंने व्यभिचारी कहा है। ऐसा करना दोनों के लिये शर्म की बात है।

विषयसेवन की क्या मर्यादा है ? कब और क्यों विषय-सेवन करना चाहिये ? इसके लिये शास्त्रकार कहते हैः—"पुत्रकामः स्वदारेष्वधिकारी।" पुत्र की इच्छा मात्र से स्त्री के साथ विषयसेवन करने का अधिकार है। वरना कभी अधिकार नहीं।

जिनको पुत्र की इच्छा नहीं, उनको सेवन करने का कोई अधिकार नहीं। अगर पुत्र की इच्छा है तब भी विषयसेवन का उन्हे इतना ही अधिकार है, जब तक गर्भ धारण न करलें। इसके बाद कदापि नहीं। शास्त्रकारोने तो यहा तक लिखा है कि-गर्भाधान समयसे लेकर जब तक बच्चा स्तनपान करता है, तब तक दोनो के लिये विषय-सेवन निषिद्ध है।

लेकिन पुत्र की इच्छा भी कब तक पूरी होती है ? जैसे पैसे की इच्छा का कभी अन्त नहीं, वैसे ही पुत्र की इच्छा का भी अन्त नहीं। ल-के उत्पन्न होते जाय, रूके नहीं, जैसे कुत्ते और बिल्ली के बच्चे उत्पन्न होते हैं वैसे ही कम से कम एक डझन होने ही चाहिये। कितनी दुःख की बात है ? सज्जनो, नियमों का भग कर के भी आप लोग अपने गृहस्थाश्रम को शुद्ध देखना चाहतें हैं ? यह आप का निरा भ्रम है, सिवाय व्यभिचार के और कोई बात इसमे नही होती।

शादी के बाद की मर्यादा

एक सच्चा गृहस्थ, जिसने शादी की है, वह भी गृहस्थाश्रम में रहते हुए ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने के लिये कठोर से कठोर प्रयत्न करे। उसके लिये मनुस्मृति में भी यही कहा गया है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

अर्थात्—माता हो, बहन हो, पुत्री हो, अगर युवावस्था में आ गयी है तो उसके साथ एक आसन पर हमें बैठने का भी अधिकार नहीं। कहा तो यह शास्त्र का नियम कि, माता बहन और पुत्री के साथ में भी एक आसन पर बैठना निषिद्ध है और कहा आज की गृहस्थों की स्थिति !!

नाच-रंग नाटक-सिनेमा नाना प्रकार के रास्तों के द्वारा कितनी बरबादी हो रही है। मनुष्य को जैसे पैसे की लोभवृत्ति लगी है, उसी तरफ से विषयों-कामवासना की भी लोभवृत्ति लगी है।

इस का परिणाम क्या हो रहा है?

लोभवृत्ति किसी भी प्रकार की लगी हो, इस से पतन होने के अतिरिक्त कोई परिणाम नहीं हो सकता।

नव लाख स्त्री चरित्र जाननेवाला पंडित.

काशी से पढ़ कर एक पंडित जा रहा था अपने देश। रास्ते में एक शहर आया। वहां के राजा के पास जाता है। उसे आशीर्वाद देता है।

" कहो पंडितराज। कहां से आ रहे हो?" राजाने पूछा।

" काशी से पढ़ कर आ रहा हूं। और घर जा रहा हूं।"

" आपने क्या क्या पढ़ा?"

" नव लाख स्त्री चरित्र पढे हैं।" पंडितने जवाब दिया।

" बहुत अच्छी बात है पंडितजी। कितने वर्षों तक काशी में रहे?"

" चौद वर्ष तक."

पंडित बडा विद्वान्, त्यागी, वैरागी, ब्रह्मचारी था। राजा प्रभावित हुआ। उसे अपने यहां रख लिया।

राजा उससे रोज उपदेश सुनता है। उपदेश इतना सुन्दर होता था कि राजा वैरागी बनने लगा। राजा के सात रानियां थीं। एक दिन का उपदेश सुन एक रानी छोडी। दूसरे दिन उपदेश सुन कर दूसरी छोडी।

इस तरह से राजा वैरागी बनता गया और एक-एक रानी छोडता गया।

बडी रानी को इस बात की खबर लगी कि एक त्यागी विद्वान् पंडित आया हैं, उसके उपदेशों से राजा वैरागी बन गया है और एक एक कर के हमें छोडता जा रहा हैं। और कल उठ कर तो मुझे भी छोड देंगे। और फिर बाबाजी बन जायगा।

रानी दासी को कहती है: " पंडितजी को अपने यहां पर ले आओ और कहो कि-महारानी साहिबा बुला रहीं है।"

दासी, पडितजी जिस जगह रहते थे, वहा दरवाजे पर जाकर खडी हो गयी ।

स्त्री का रूप देखा कि पंडितजी के लिये भूकप हो गया। " हट जा यहासे, हम तेरा मुह नहीं देखते । यहा क्यों आयी ? चली जा यहा से। "

दासी विचारी धबका गयी! अलग हट गयी! नम्रता से बोली:-" महारानी आप को बुला रहीं है। आप का सदुपदेश वे भी सुनना चाहती हैं। "

पर पडितजीने उसे फटकार दिया। दासी चली गयी, सब बात रानी से कही!

रानी समझ गयी कि, पडितजी बडे पक्के माल्र्म होते हैं, यों पजे में नहीं आयेंगे! परन्तु थी रानी बडी ही बुद्धिमती! उसने बहुत सी गिन्निया एक कटोरी में रखकर दासी को दी और कहा: 'यह कटोरी धीरे से पडितजी के सामने रख देना।'

दासी गिन्नियों की कटोरी लेकर फिर गयी। धीरे से उसको पडितजी के आगे दरवाजे मे से सरका दिया! और आप चुपचाप बहार खडी हो गयी। गिन्नियों की चमक जैसे ही पडितजी की आखो पर पडी, पडितजी फिसल गये। सोचते हैं- इतनी गिन्नियाँ देनेवाली कौन?

बोले " कौन है बाई? अरे कोई हरकत नहीं, आजाओ, बाई आजाओ!" अबतक तो हरकत थी, किन्तु अब इतनी गिन्नियों की दक्षिणा मिली, हरकत मिट गयी!

दासी सामने आ कर खडी हो गयी। बोली:-" हमारी महारानी साहबा बुला रही है। आप का कुछ उपदेश वे भी सुनेंगी। इस के लिये यह दक्षिणा आप को भेजी गयी है। "

पडितजी सोचने लगे:—" जिन्दगी भर अगर उपदेश दिया, नाना प्रकार के राजा महाराजोओ की हाजरी बजाई तब भी क्या इतनी गिन्नियां मिलेगी? बस, ये गिन्निया ले लू, घर जा कर आराम से जीवन बिताऊ।"

पडितजी दासी के पीछे पीछे चले। महारानी के महल में गये। रानी ने दासी से कह रक्खा था कि-पडितजी, हम बैठ जाए तब सब दरवाजे बन्द कर देना। "

दोनों-पडितजी और रानी एकान्त कमरे में बैठे हैं। रानीने गिन्नियों का थाल भर कर सामने रख दिया है।

फिर लगे बातें उपदेशादि करने। रानी ने पंडितजी को बातों में ऐसा

लगाया कि काफी समय निकल गया। १२-१ बज गये। इसी समय उधर राजा शिकार खेलने गया था। कोई शिकार मिली नहीं। देर भी हो गयी थी। हैरान हुआ वापिस लौटा।

आते ही नौकरों का कहता है:-" पंडितजी को बुलाओ, कुछ उपदेश सुनूंगा, फिर स्नान-भोजन आदि करुंगा।"

गया नौकर पंडितजी को बुलाने। पंडितजी हों तो मिलें। पंडितजी तो बैठे हैं रानी के साथ महल में। पंडितजी की तलाश होने लगी। धूम मच गयी। राजाने पूछाः-" अरे क्या हुआ? पंडितजी कहां चले गये? अरे! भटजी महाराज भाग तो नहीं गये?"

आखिर राजा को मालूम हुआ कि पंडितजी रानी के महल में गये हैं। राजा का गुस्सा बढा। ली तलवार हाथ में और चले रानीवास की तरफ।

दरवाजा बन्द था। बोले " खोलो किंवाड" पंडित पूछता हैः "कौन आये?"

" राजा आये हैं " रानी बोली।

"अरे गज़ब हो गया। राजा मुझे देखते ही कत्ल कर देगा। अब क्या होगा?" पंडितजी घबराकर रानी के आगे गिडगिडाने लगे और हाथ जोड़ कर कहने लगे-" बाई। मेरे को किसी तरह बचाओ।"

" कैसे बचाऊं? मैं कुछ करुं तो राजा मुझे भी मार डालेंगे। माफ करो, मैं तो कुछ नहीं कर सकती।"

" मैं तुम्हारे पैरों पडता हूं, तुम कहो सो करने को तैयार हूं। पर मुझे इस वक्त बचालो।"

" बचाने का तो कोई उपाय नहीं। हां, यह एक सन्दुक जरूर पडी है, उस में तुम घुस जाओ, बच सकते हो।" रानी बोली

पंडितजी खा-पी कर मोटे हो गये थे। पेटी थी छोटी। आते नहीं थे। फिर भी दासीओं ने खूब दबदबा कर उन्हें उस सन्दूक में घुसेड दिया। और ऊपर से रानीने ताला लगा दिया।

दरवाजा खोला। राजा आया। रानी को पूछाः "यहां पंडितजी आये थे क्या?"

" हां आये थे "

"कहा गये ?"

"इस सन्दूक में" रानी बोली।

"आ तेरा सत्यानाश हो जाय, तूने एक ब्राह्मण की हत्या करवा दी ?" अन्दर सन्दूक में बन्द पंडित रानी का मन ही मन बुरा-भला कहने लगा। वे डर गये। डर के मारे पंडितजी को पिशाब हो गयी।

राजाने तडाक से सन्दूक को लात मारी। पिशाब छिद्रों द्वारा बाहर आ जाती है। रानी देखकर घबरायी, सोचने लगी:-गजब हुआ, पंडितजीको पिशाब हो गया है, पंडित मर जायगा। ब्रह्महत्या का पाप मुझे लगेगा। और अगर बाहर निकालू तो राजा इस के टुकडे टुकडे कर डालेगा। क्या करना चाहिये अब ? इन्हें किसी प्रकार बचाना चाहिये।

रानी जोश में आकर राजा से कहती है: "लोग सच ही कहते हैं कि आजकल तो आप की अक्ल भी मारी गयी है। अगर पंडितजी यहा आते तो क्या मैं कह सकती थी कि सन्दूक में हैं ? कही सन्दूक में भी आदमी रह सकता है ?। इतना भी अपनी समझ से काम लिया होता तो काफी था। देखिये इस में मेरे बाप के घर से आयी हुई इत्र, तैल, गुलाबजल वगैरे की शीशीयों रक्खी थीं। आपने लात लगा दी, वे फूट गयीं। देखिये ये सब इत्र बहार बह रहा है।"

रानी ने पेशाब को इत्र और गुलाबजल बताया।

राजा स्त्री के कहने में आगया। उसकी बात पर विश्वास कर लिया। रानी के हुकम से दासियोंने पंडित का पेशाब राजा के कपडे और फिर कपडे खोल कर शरीर पर भी लगाया। देखिये, कितना अच्छा इत्र है ?

पेशाब था इस लिये जलने लगा। राजा बोला-"इतना जलता क्यों है ?"

"ऊंची किस्म का होगा और क्या होगा।" रानी राजा को बेवकूफ बना रही है। राजा स्नान घर में जाता है।

रानी ने सन्दूक का ताला खोला और ब्राह्मण को बहार निकाला और पूछती है - पंडितजी, आप काशी में जाकर कितने स्त्री चरित्र पढे थे ?

"नव लाख स्त्री चरित्र पढा था।"

"क्या उस में यह भी आया था ?" रानी ने ताना मारते हुए कहा: "राजा को उपदेश देने चले हो, हमें भी तो थोडा उपदेश दो।"

"ना माताजी, मुझे तो परमात्मा इस से बचावे, ईश्वर की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूं, कि इस बात का उपदेश अब कभी न करूंगा। माफ करो मुझे। तुम जानो और तुम्हारा राजा जाने।"

प्यारे भाईओं!

पंडितजी जैसे इतने बडे विद्वान्, ज्ञानी, ब्रह्मचारी की भी यह दशा क्यों हुई? ऐसी आफत में क्यों आये? इसका पतन क्यों हुआ? एक ही कारण था और वह था उसकी लोभवृत्ति। गिन्नियों की चमकने उनकी पवित्र निर्मल बुद्धि को दूषित कर दिया। प्रतिज्ञाका भंग कराया।

पंडित जैसे विद्वान् होते हुए भी, और स्त्रियों का मुंह नहीं देखते हुए भी, मात्र एक पैसे की लोभवृत्ति से उनकी यह हालत हुई। तो विषयों की लोभवृत्ति में गिरे हुए मनुष्यों की तो न मालूम क्या हालत होती होगी? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि, विषयों के गुलाम धन से, मन से और शरीर से सर्व प्रकारसे गिर जाते हैं। व्यभिचार के कारण सडे हुए मनुष्य आज संसार में क्या नहीं दिखते हैं? इस लिये काम-पुरुषार्थ की सेवना भी मर्यादित और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार हो, तभी यह गृहस्थाश्रम शोभा की वस्तु बन सकती है। और गृहस्थ के लिये कल्याणकर हो सकता है

भाइओं और बहनों,

मैंने कल आप को काम पुरुपार्थ के विपय में कहा था। एक गृहस्थ को शास्त्र की विधि के अनुसार सयम-पूर्वक रहते हुए गृहस्थ धर्म का पालन कैसे करना चाहिये?

मर्यादित विपय

शादी करने का उद्देश्य भी मैंने कल आप को समझाया था। विपय-सेवन और मात्र काम भोग की लालसा तृप्त करने के लिये शादी करनेवाला गृहस्थ पतित है-व्यभिचारी है। इसी का आज परिणाम है कि गृहस्थों की दशा बडी दयनीय बन गयी है। अगर आप को बुरा लगे तो माफ कीजिए, मैं तो कहूगा कि ऐसे व्यभिचारी गृहस्थ कुत्ते आदि जानवरों से भी गय बीते हैं। तुलसीदासजी भी ऐसे लोगों के लिये कहते हैं-

कार्तिक मास के कूतरे, तजे अन्न और प्यास। तुलसी वा की क्या गति, जिनके बारों मास॥

जानवर कभी निय का भग नहीं करते। कुत्ते जैसी जाति हलकी से हलकी मानी जाती है वे भी अपनी प्रकृति का भग नहीं करते। बारह मास में एक आश्विन व कार्तिक महिने में वे विपय सेवन करते हैं। इन महीनों में वे विपय-सेवन करते हुए पागल हो जाते हैं, उनके बाल खिर जाते हैं, हड्डियां निकल आती हैं, खून झरने लग है, बुरी हालत उनकी हो जाती है।

जब बारह मासमें एक ही माम के विपयसेवन मे उनकी यह हालत हो जाती है, तो कवि तुलसीदास कहते हैं-अरे! उन मानवियों की-इन्सान कहलानेवाले उन व्यभिचारियों की क्या दशा होती होगी, जो बारह मास विपय-सेवन करने से नहीं चूकते! परमात्मा ही जान सकता है!

सज्जनों! समझिये इन बातों को। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी, अपनी मर्यादा का भग कभी न करे। विपयसेवन का अधिकार, आपकी मर्यादा के अनुसार तो

तब तक ही है जबतक आप की पुत्र की इच्छा पूरी न हो जाय। शास्त्रकार आप को बार बार याद दिलाते है; मैंने भी आप को कल कहा है—

" पुत्रकामः स्वदारेष्वधिकारी " एक मात्र पुत्र की इच्छा से स्त्रीके साथ विषय-सेवन करने का अधिकार है इसके बाद कभी नहीं !

आप के लिये भी कुछ नियम है। साधु के लिये भी हैं। अब चाहें कोई भी हो, जो अपने नियमों का भंग करता है--अपने अपने धर्म में नहीं रहता, वह साधु हो या गृहस्थ, व्यभिचारी है, पतित है, और महानिन्दा का पात्र है।

गृहस्थ के लिये इन नियमों के अतिरिक्त एक और नियम भी शास्त्रकार बताते हैः—

" स्वदारतुष्टः परदारवर्जी "

अपनी स्त्री में ही संतोष रखते हुए संसार की समस्त स्त्रियों को माता-बहन और पुत्री समझे। मुझे इस समय एक बात याद आती है—

पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी वनवास जा रहे थे। और अपने भाई भरत को उपदेश देना चाहते थे। वे समझते थे कि मेरा भाई भरत ज्ञानी है, महागुणी है, अपने योग्य सब नियमों का पालन करनेवाला है। राजसत्ता में आकर वह अपने कर्तव्य से कभी च्युत नहीं होगा, ये सारी बातें जानते हुए भी मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी सोचते है, अपने प्यारे भाई को कुछ शिखामण दे जाऊं। ऐसा समझते हुए, रामचंद्रजी भरत को उपदेश देते हुए कहते है—

परस्त्री मातेव, क्वचिदपि न लोभः परधने, न मर्यादाभङ्गः, क्षणमपि न नीचेष्वपि रतिः।
रिपौ शौर्य, धैर्यं विपदि, विनयः संसदि सदा, इदं भ्रातर्वच्मि भरत ! नियतः ज्ञास्यसि सदा ॥

इस श्लोक में रामचंद्रजी सारे गृहस्थ धर्म का चित्र खड़ा करते हैं। परन्तु मैं यहां पूरे श्लोक की व्याख्या करना नहीं चाहता। आगे प्रसंग पर देखूंगा। यहां मुझे यही कहना है कि- श्री रामचंद्रजीने इस गृहस्थ धर्म के चित्र में भी पहली बात ' परस्त्री मातेव ' माता के बराबर परस्त्री को समझने का उपदेश दिया है।

मित्रो, खूब याद रखिये, भरत जैसा सर्वगुणसंपन्न भाई राजा है, पर फिर भी राजसत्ता का मद बड़ा बुरा होता है। इस में पड कर बड़े बड़े धीर, वीर और विद्वान् पुरुष भी अपने कर्तव्य को चूक जाते हैं। संभव है भरत भी कहीं चूक न जाय। इस

अभिमान में आ कर अपनी बहिन बेटियों पर अत्याचार न कर बैठे, इस विचार से रामचन्द्रजी मधुर शब्दों में अपने प्रिय भाई को यों समझाते हैं :

" परस्त्री मातेव "–परस्त्री को माता समझना। गृहस्थों, आप के लिये भी यही उपदेश है। गृहस्थ धर्म मे रहते हुए अपनी स्त्री में सन्तोष करना और परस्त्री को माता और बहिन के बराबर समझना।

मैं अपनी बहिनो को भी यही कह सकता हू। अपने पतिव्रत धर्म का पूर्ण रूप से पालन करें। पुरुष कहते हैं कि-स्त्रियों को पुनर्लग्न नहीं करना चाहिये। यह बात बिलकूल ठीक है, परन्तु पुरुषों के लिये भी यही नियम होना चाहिये। क्यों उन्हें छूट दी जावे कि वे २-२, ३-३, ४-४, ५-५ शादिया करें। पुरुष कोई देवता तो है नहीं। फिर उन्हे छूट देना ? इस की कोई जरूरत नहीं। नियम नियम है। धर्म धर्म ह। कोई हो, सब के लिये बराबर है।

एकपत्नीव्रत

लेकिन पुरुष विषयों का गुलाम बन कर अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर के एक पत्नी होते हुए भी दूसरी तिसरी करने को तैयार होता है, यही नहीं, ६०–७० वर्ष की उम्र हो जाय, फिर भी विषयों के लोलुपी नाना प्रकार की शादियों को करते करते मरते हैं। मरते तक भी छोडते नहीं है। ये कितने नापाक और पतित हैं। इस को सोच सकते हैं। एक पत्नीव्रत का भग कर के पुरुष अनेक पत्नी क्यों करता है ?।

नवयुवक जब तक शादी नहीं करता है, उस समय तक विचार करता है: 'देखो, जिन का लग्न होता है वे कितने सुखी हैं। मैं तो बडा दु खी हू' इस लिये वह लग्न करने की तैयारी करता है।

एक पत्नीवाला पुरुष पडोस में किसी के दो पत्निया देखता है, तो समझता है– 'मैं तो दूखी हू, यह दो पत्नीवाला बडा सुखी है'। और इस लिये वह भी दो पत्नियां करने को तैयार हो जाता है। परन्तु यदि वह दो पत्नियोंवाले से पूछे कि, तुझे सुख है या दु:ख है तो पता चल जाय कि सच बात क्या है ?

दो पत्नी का पति

एक गृहस्थने दो पत्निया कीं। एक का नाम रक्खा नयी और दूसरी का नाम जूनी। जूनी रहती है ऊपर और नयी रहती है नीचे। दो मंजिल का उसका मकान

था। नयी के पीछे पागल बन गया। गृहस्थ समझता है-' जो कुछ है वह बस यही है।' जूनी को भूल गया। उस के पास कभी जाता भी नहीं।

एक दिन जूनी कहती हैः-" स्वामीनाथ ! कभी तो मेरे पास आओ।' पर नयी जाने ही नहीं देती।

संयोग से एक दिन सेठजी जूनी के पास जाने को तैयार हो गये, परन्तु नयी कहती हः ' मैं तुम्हे हरगीझ नहीं जाने दूंगी।' और वह कहता हैः ' आज तो जरूर जाउंगा।'

जब सेठजी ऊपर जाने को सीढियां चढने लगे, तो नयी ऊठी और सेठजी के पैर पकड लिये।

जूनी ऊपर बैठी बैठी सब सुन रही थी। देखा, यह क्या गडबड झाला है ? उसने देखा, मेरे पति आज मेरे पास आ रहे हैं, परन्तु वह रांड नहीं आने देती। दौडी और दौड कर कुछ नीचे उतरी। और उतर कर सेठजी की चोटी पकड ली। नयी नीचे से सैठजी की टांग खींचती है और जूनी ऊपर से सेठजी की चोटी खींचती है, खींचातानी खुब चली। सेठजी बिचारे बीच में ही लटकते रह गये।

इसी बीच में, उस दिन सेठजी के घर में एक चोर घुस आया था। चोर सोचता है कि सब जग रहे है, चोरी करने का मौका नहीं है। चोर घर में घुसा तो देखा, यह खींचातानी क्या हो रही है ?। चोर अंधेरे में खडा हो गया और देखने लगाः यह क्या तमाशा हो रहा है। चोर को बड़ी मजा आयी। लगा ख । खड़ा बिना टिकीटका सिनमा देखने।

संयोग से चोर यह सिनेमा देखने में इतना तल्लीन हो गया कि भूल गया कि- मैं किस लिये आया हूं ? और इसी तरह देखते देखते रात बीत गयी।

इधर दिन हुआ, अकस्मात् शेठजी की नजर उधर पड़ी, तो देखा घर में चोर है। चिल्लाये और फिर दोनों स्त्रियाँ और शेठजीने चोर को पकड़ लिया।

चोर पुलिस के हवाले किया गया। मुकदमा चला। चोर न्यायाधीश के सामने उपस्थित हुआ।

सवाल किया गयाः " तू सेठ के घर में चोरी करने घुसा ? "

उसने जवाब दिया-" हां "

" चोरी की ? "

"नहीं, क्यों कि चोरी करने की फुरसत ही नहीं मिली" चोरने जवाब दिया।

" परन्तु तुम्हें सजा जरुर हो जायगी। "

" अच्छा, इसके पहले मेरी भी एक अर्ज सुन लीजिये " चोरने कहा–" मैंने चोरी नहीं की है, एक टूकडा भी नही चूराया है। इतना होते हुए भी मैं चोरी करने के इरादे से उसके घरमें घुसा था, इसलिये आप सजा देना चाहते हैं, तो दे दीजिये। पर, मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये। चाहें आप मुझे तोप के गोले से उडवा दे, आजन्म कैद-की सजा दे दिजिये, बडी से बडी सजा आप मुझे दे, पर एक सजा आप मुझे न दें कि मैं दो स्त्रियाँ का पति हो जाऊ। "

मित्रों! विषयो के गुलाम होनेवाले, दो स्त्रियो के पति बननेवालों का आत्मा ही समझता होगा कि उन्हें कितना सुख है ? एक कवि ने ठीक कहा है:—

> बहुत वणिज, बहुत बेटिया, दो नारी भरथार।
> उसको क्या है मारना, मार रहा किरतार॥

आत्मा को सयम में रखनेवाला, मर्यादा का भग नहीं करनेवाला, एक पत्नी में सन्तोप रखनेवाला गृहस्थ ही सच्चा सुखी है। और कोई नहीं। इसे आप खूब ध्यान में रखिये।

एक पत्नी में भी सन्तोपवृत्ति रखना। इस सन्तोपवृत्ति का मतलब यही है कि–स्वदारा में भी मर्यादा का भग कर के विषय सेवन करने का अधिकार नहीं। मर्यादा का भग कर के विषयसेवन करनेवाला गृहस्थ एकपत्नीव्रत होते हुए भी व्यभिचारी होता है।

एक और बात कहू। आप को याद होगा कि जिस समय मेघनाद को मारने का प्रश्न ऊठता है, उस समय कहा जाता है कि–मेघनाद को वही मार सकता है, जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हैं। किसने ऐसे ब्रह्मचर्यका पालन किया था ? उस समय लक्ष्मण का नाम लिया जाता है कि अगर मेघनाद को मारने की किसी में शक्ति है तो, एक मात्र लक्ष्मण में है।

लक्ष्मण का ब्रह्मचर्य—

मालूम है आपको लक्ष्मण का ब्रह्मचर्य कैसा था ? जिस समय सीता का हरण

होजाता है, रामचन्द्रजी सीता के लिये बडे विकल और दुःखी हो जाते हैं। वन-वन, जंगल-जंगल, ग्राम-ग्राम भटकते हैं, किन्तु कहीं भी पत्ता नहीं चलता। जाते जाते एक पर्वत पर पहुंचते हैं। सुग्रीवादि के पास चले जाते हैं। राम और लक्ष्मण दोनों बैठे हैं। उस समय सुग्रीव कुछ आभूषणों को लाकर उनके सामने रखता है। और कहता है: ' महाराज, जंगल में भटकते हुए, हमें ये आभूषण मिल गये हैं। देखिये ये कहीं माता सीताजी के तो नहीं है? गहने अगर उन्हींके हों तो निश्चय हो जायेगा कि यहीं से होकर सीताजी गयी हैं "।

रामचन्द्रजी उन्हें लेकर लक्ष्मण को देते हैं और कहते हैं: ' भाई, देखो ये आभूषण सीता के तो नहीं है? "

लक्ष्मण उन्हें टटोलते हैं, हार देखते हैं, मन में कहते है: यह भी नहीं। झांझर देखते हैं और कहते हैं: यह भी नहीं। इस तरह देखते देखते रामचंद्रजी को जवाब देते हैं:-

" नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नुपुराण्येव जानामि नित्यं पादाभिवंदनात्॥ "

" हे भाई। मैं इन बाजूबंद को नहीं जानता, और न इन कुण्डलों को जानता हूं। इनमें एक चीज है जिन्हें देखकर मैं कह सकता हूं कि ये चीज सीताजी की हैं, वे हैं ये झांझर, जो उनके चरणों में रहते थे। सीताजी को में हमेशां नमस्कार करता इस लिए मैं इनको पहचान सकता हूं। "

मित्रो! चोबीसों घण्टे सीताजी के साथ रहते हुए, उनके हाथ की बनायी रसोइयां खाते हुए, रात-दिन उनकी सेवा करते हुए लक्ष्मण यह नहीं जानते थे कि मेरी भाभी का मुंह कैसा है? और उनके शरीर पर कैसे कैसे आभूषण रहते हैं?। सच्चा ब्रह्मचारी तो यही है। यही कारण है कि लक्ष्मण के ब्रह्मचर्य का गुणगान आज भी हम गाते हैं। शास्त्रों में उसका वर्णन हैं। शास्त्रकार भी उनका गुणगान करने में पीछे नहीं रहे हैं।

इसी तरह सीताजी के शील की भी कथा है। अगर हमारी माताएं बहनें भी सीताजी की तरह अपने शील का पालन करनेवाली हों, तो मेरा खयाल है, आप लोगों का गृहस्थाश्रम धन्य हो सकता है।

रावण को जीतकर, जब सीताजी घर आती हैं, तब रामको शका होती है: 'इतने लम्बे समय तक सीता रावण के घर रही, इसने अपने शील की रक्षा कैसे की होगी ?'। रामचन्द्रजी को नाना प्रकार की शकाए होती हैं।

सीताजी शपथ लेती हैं, नाना प्रकार की प्रतिज्ञाए और साक्षियां लेकर अपने शुद्ध शील का प्रमाण देती है। रोती है, विलाप करती है। परंतु राम की शकाए दूर नहीं होतीं। जब सीताजीने देखा कि अब भी प्राणनाथ की शका दूर नहीं होती, तो दिल में विचार करती हैं.–"प्राणनाथ दयालु हैं, शका होते हुए भी मुझे शरण जरूर देंगे, परन्तु मेरा धर्म नहीं है कि, इनके दिल में शका रखकर जीऊं। प्राणनाथ के दिल में शका रखकर जीने से तो बहतर है मेरा मर जाना।"

ऐसा विचार कर सीताजी लक्ष्मण को कहती हैं –"चिता बनाओ, मैं तो जल–मरने को तैयार हू। मेरे प्राणनाथ के दिल में शका रखकर जीने से तो मेरा जलकर मर जाना ही श्रेष्ठ है।"

चिता तैयार होती है। ज्वालाए अपनी लम्बी लम्बी लपटें निकाले धू धू करके आकाश की ओर ऊडी जा रही हैं।

उस समय सीताजी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करनेवाली है; ऐसा समझकर देवता–यक्ष–किन्नर सब वहा इकट्ठे हुए हैं। मनुष्य इकट्ठे हुए हैं और राजा महाराजा इकट्ठे हुए हैं। माता सीता जलने के लिये अग्नि के सामने खडी है। वह अग्नि से प्रार्थना करती हुई कहती है:—

" मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमध्ये, यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह शरीरं पावक पावकेदम्, सुकृति–विकृतिभाजा येन लोकैकसाक्ष्यः ॥ "

सीताजी कहती है—' हे अग्निदेव ! केवल काया से ही नहीं, मगर मन, वचन और काया से–तीनों से मैंने सिवाय अपने प्राणनाथ राम को छोडकर किसी भी दूसरे मनुष्य में पतिभाव भी धारण किया हो तो तू मेरे इस शरीर को जला कर भस्म कर दे। क्यों कि पुण्य–पाप का–अच्छे बूरे का तु ही साक्षी है।

इतना कह कर सीताजी धधकती हुई चिता मे कूद पडती है, अग्निस्नान करती है, पर अग्नि पानी हो जाता है। सीताजी जीवित रहती हैं। सारे देवता आकाश

से पुष्पवृष्टि करते हैं। हजारों, लाखों, करोडों वर्ष होते हुए भी सीताजी का नाम आज भी अमर है और रहेगा ।

इसलिये मेरे प्यारे भाईओं और बहनों ! अगर आप गृहस्थाश्रम का शुद्ध रीति से पालन करना चाहते हैं, अपने आत्मा का कल्याण चाहते हैं, अपना जीवन सफल करना चाहते हैं और 'काम' पुरुषार्थ की उचित रीत्या साधना करना चाहते हैं तो नियमों का बराबर पालन करें। परस्त्री का त्याग करें और स्वदारा में संतोष करें। और बहनों को चाहिए कि-परपुरुष के सामने देखें तक नहीं। आंख से आंख न मिलावें। स्पर्श भी न करें।

भाईओं और बहनों !

जीवन-विकास के लिये मैंने आपको धर्म-अर्थ-काम इन तीनो पुरुषार्थों के साधन करने का अनुरोध किया, उसमें अर्थ और काम की साधना कैसे हों ? वह पुरुषार्थ कब हो सकता है ? ये बाते मैं अबतक आप को बतला चूका हू ।

अब मैं आज 'धर्म' के विषय में कहूगा। अर्थ और काम की अपेक्षा यह विषय विशेष महत्त्व रखता है, क्यो कि आज सारे झगड़े हिन्दु-मुसलमान, जैन और बौद्ध, जितने भी ससार के मनुष्य हैं, वे सब इसी 'धर्म' का नाम लेकर अधर्म का आचरण करते हैं। लडाई और झगडे करते ह।

यही कारण है कि लोग नास्तिक होते जा रहे है। 'धर्म' और 'ईश्वर' यह सब ढोंग है, इस प्रकार समझते जा रहे है। और ऐसा साहित्य हमारे देखने में आ रहा है। इन धार्मिक लडाई झगडों के कारण हमारे युवको की धर्म पर से-साधुओं पर से श्रद्धा कम होती जा रही है।

धर्म का महत्त्व

धर्म की कितनी आवश्यकता है ? धर्म क्या चीज है ? यह बतलाउगा। शास्त्रकारोंने इसका इस तरह वर्णन किया है-

" दुर्गतौ प्रपतत् प्राणीन धारणात् धर्म उच्यते ।
धत्ते चैतान्शुभस्थाने तस्माद्धर्म इति स्मृत ॥ "

अर्थात् दुर्गति मे गिरते हुए प्राणी को धारण करता है, इसलिये धर्म है। केवल धारण करता है, उतना ही नहीं, धारण करके अच्छे स्थान में रखता है। शुभस्थान मे स्थापित करता है, हमें अपनी जगह पर बिठाता है। इतना काम करता है, तब 'धर्म' कहलाता है।

चाहे कोई साधु हों, किसीभी सम्प्रदाय का आचार्य हो, महापुरुष हो, किसी भी धर्म को मानेनवाला हो, मान्य है। किन्तु वह 'धर्म' के नाम से रगडा-झगड़ा करे, क्लेश-कंकास करे, टंटा फिसाद करे, खून-खराबी करे, हर तरह से घृणित बुराईयों अगर धर्म के नाम से करे, तो वह मान्य नहीं हो सकता, और वह 'धर्म' धर्म नहीं है बल्कि भयंकर से भयंकर अधर्म है। इसे खूब याद रखिये। धर्म का महत्त्व कितना है?

युरोप की बात छोड दीजिये, वह तो जडवादी देश है, जड़की उन्नति ही अपना सब कुछ समझ रहा है। लेकिन हमारे देशमें, चाहे वह हिन्दु हो, जैन हो, बौद्ध, हो पारसी हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो,-कोई भी सम्प्रदाय ये हो, धर्म को प्राण समझे हुए हैं। शास्त्रकारोंने धर्म के निमित्त से ही शास्त्र बनाए, जगत् की मनुष्य जाति के कल्याण के लिये अधर्म के मार्ग से छुडा कर सच्चे मार्ग पर लाने के लिये शास्त्र बनाये।

सज्जनों, मैं प्राचीन शिलालेखों का संग्रह कर रहा था, जब मैं शिवपुरी में था और उन पर एक पुस्तक भी लिख रहा था। उस संग्रह में एक शिलालेख देखा:- जिस पर यह मुद्रालेख था।

"चीरं जीयात् चीरं जीयात् देशोऽयं धर्मरक्षणात्"

हमारा यह देश धर्म के रक्षण से लाखों-करोडों वर्ष तक जीता रहे। यह हमारे ऋषियों और मुनियों का वाक्य था। इतना महत्त्व हमारे हिन्दुस्तान में-आर्य संस्कृति में धर्म को दिया जाता था। हमारे यहां तो यहां तक सिद्धान्त आ गया था कि जब साधु आशीर्वाद दें तो यह न कहे कि-धनवान् भव, पुत्रवान् भव, ऐश्वर्यवान् भव!। ऐसा आशीर्वाद न दें।

ऐतिहासिक बात है:—सिद्धसेन दिवाकर राजा विक्रमादित्य के पास जाते हैं, किसी कारण से। उस समय विक्रमादित्य को एक अनुष्टुप् श्लोक (जिस में ३२ अक्षर होते हैं) सुनाया जाता हैं। एक श्लोक सुनने पर पूर्व दिशा का राज्य उस साधु के चरणों में राजा धर देता है।

दूसरा श्लोक सुनाते हैं-पश्चिम दिशा का राज्य धरता है। तीसरा श्लोक सुनाते हैं-उत्तर दिशा का राज दे देता है। और चौथा श्लोक सुनाने पर दक्षिण दिशा का राज्य भी दे डालता है।

चार श्लोको में चार दिशाओं का राज्य देकर राजा चरणों में गिरता है और कहता है: 'यह सब सिद्धसेन दिवाकर का राज्य है।'

उस समय विक्रमादित्य को आचार्यजी सुनाते हैं:-"हमे राज्य की जरूरत नहीं। हम तो राज-पाट सब छोड चूके हैं। हम तो तुम्हें आशीर्वाद देने आये हैं। क्या आशीर्वाद है सुनो:—

'धर्मलाभ' का आशीर्वाद

दुर्वारा वारणेन्द्रा, जितपवनजवा वाजिन स्यन्दनौघा,
लीलावन्त्यो युवत्य', प्रचलितचमरैर्भूषिता राजलक्ष्मी:।
उच्चै:श्वेतातपत्र, चतुरुदधितटीसङ्कुला मेदनीयम्,
प्राप्यन्ते यत्प्रभावात् त्रिभुवनविजयी सोऽस्तु वो धर्मलाभ: ॥

अर्थात्-हाथी और घोडे की समृद्धि जिस के कारण से प्राप्त होती है, सुन्दर से सुन्दर रूपवती पतिव्रता धर्म का पालन करनेवाली स्त्रियों जिस के कारण से मिलती हैं, जिस के मस्तक पर छत्र धारण होता है, जिस के कारण से चार समुद्रो से घिरी हुई पृथ्वी मिलती है, जिस के कारण से त्रिभुवन की लक्ष्मी और त्रिभुवन का विजय प्राप्त होता है ऐसा " धर्मलाभ " हे राजन् तुम्हें हो।"

ऐसी दुनिया की कौनसी चीज है जो धर्म से न प्राप्त होती हो ? । मात्र एक धर्म के प्रभाव से ही आज आप लोग ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त किये हुए हैं। सुन्दर शरीर आप को मिला है। पुत्र, परिवार, इज्जत, कीर्ति, पञ्चेन्द्रिय की पटुता, तमाम प्रकार के सुन्दर से सुन्दर साधन मिले हुए हैं। ये सब एक मात्र धर्म के कारण से ही प्राप्त हुए है।

कुछ लोग यह कह सकते है कि दीर्घायुर्भव, पुत्रवान् भव, इत्यादि आशीर्वाद देने में क्या हरकत है ? जैन साधु 'धर्मलाभोऽस्तु' ऐसा आशीर्वाद क्यों देते हैं ? पहले कह चूका कि धर्म में सब का समावेश होजाता है, और यदि 'दीर्घायुर्भव।' इत्यादि आशीर्वाद दिया जाय तो इसका कोई महत्त्व नहीं है। क्योंकि—

दीर्घायुर्भव ! भण्यते यदि, तदा तन्नारकाणामपि,
सौख्यार्थं धनवान् भवेद, यदि पुनस्तन्म्लेच्छकानामपि।
सन्तानाय च पुत्रवान् भव, पुनस्तत् कुक्कुटानामपि
तस्मात् सर्वसुखप्रदोऽस्तु भवतां, श्रीधर्मलाभ: श्रिये ॥

अर्थात्, यदि कहते हैं कि दीर्घायुष्य हो, तो नारकी के जीवों को भी लम्बी

आयुष्य होती है। सुख के लिये धनवान् हो तो म्लेच्छों के पास भी धन तो बहुत होता है। सन्तान के लिये पुत्रवान् हो, तो कुक्कुटों को भी बहुत बच्चे होते हैं। इसलिये जैन साधु समस्त सुखों को देनेवाला कल्याणकारी 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद देते हैं।

दुनियादारी के पदार्थों का प्राप्त होना कोई बडी बात नहीं है। पैसा, पुत्र, स्त्री, महल, मकानात इत्यादि साधन संसारी मनुष्यों के लिये जरूरी हैं, परन्तु उसका सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों हो सकता है। किन्तु समस्त चीजों को देनेवाला-इहलोक और परलोक दोनों को सुधारनेवाला धर्म ही है।

धर्म के नाम से झगडे—

ऐसे धर्म का धारण करना अपने लिए आवश्यक है। लेकिन एक बात सोचने की है। जो धर्म हमें समस्त प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि देता है; आत्मा को शान्ति प्रदान करता है; कषायों को मन्द करता है, जीवन का विकास करता है; मोक्ष-प्राप्ति कराता है, उस धर्म के नाम से लडाई झगडे हुए तो कैसे हुए और क्यों हुए ?

दुनिया का इतिहास देखने से पता चलता है कि जितनी लडाईयों पैसे टके के कारण नहीं हुई, जमीन, जायदाद, व स्त्री की वजह से नहीं हुई, उतनी मात्र एक धर्म के कारण से हुई। पर हमारे देश में धर्म की लडाईयाँ कैसे हुई, ?इसको सुनिये !

> नास्तिक्यं वेदधर्मे, जिनवरसुमते सर्वमिथ्यात्वभावः,
> कौसंग्यं चौद्धवीये, भुवनसुविदिते वैष्णवेऽन्याश्रयत्वम् ।
> साम्राज्येऽनार्यता यत् प्रचलति परमं, म्लेच्छके काफरत्वम् ,
> सर्वाधः पातकारी प्रसरति भयदो भारते भेदभावः ॥

अर्थात्—वेदधर्म के माननेवालों ने डंके की चोट पर कहा- जो वेद को नहीं मानते वे सब नास्तिक हैं। जैनोंने कहाः-सर्वमिथ्यात्वभावः जो अर्हन्त को नहीं मानते वे सब मिथ्यादृष्टि याने नास्तिक हैं। गुजरात में एक सत्संगी पंथ है। यहां है या नहीं मालूम नहीं। वह कहता है, जो हमारे मत को नहीं मानते वे सब कुसंगी या नास्तिक हैं। आप-हम सब नास्तिक। संसार में प्रसिद्ध ऐसे वैष्णवमतवालों ने कहाः- जो विष्णुभक्त नहीं, वे सब अन्याश्रयी याने नास्तिक हैं। अब तो जमाना बदल गया है। जब मैं छोटा था, काशी में पढता था। सनातनियों और आर्यसमाजियों के शास्त्रार्थ होते थे। वाद-विवाद होते थे। और शाम को उनका

अन्त आपस में जोरदार लई लट्ठा और लडाई में आता था। लट्ठबाजी के सिवा दूसरा परिणाम नही होता था। इधर लट्ठिया चल रही है और उधर पुलिस आ रही है। आर्यसमाजी कहते कि " जो आर्यसमाजी नहीं, वे सब ' अनार्य ' और सनातनी कहते "आर्य समाजी नास्तिक है" । बस, यह टाइटील परस्पर दिया जाता था। हिन्दुओंने मुसलमानों को कहा 'म्लेच्छ' और मुसलमानोने हिंन्दुओं को 'काफीर' कहा।

यह हमारा भेदभाव, लडाई टटा और फिसाद एक-दूसरे को नास्तिक कहना, आज हमारे हिंदुस्तान की बरबादी का कारण बन रहा है।

यह तो मोटी मोटी बातें मैंने कहीं। अब बडे बडे धर्मों के आपसी भेद को देखिये। आप और हम सब जानते हैं कि हमारे में भी कितने भेद है?

एक जैन समाज को ही ले लीजिये। जैन समाज के अन्दर कितने फिरके है? श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरहपथी, बारहपथी। श्वेताम्बर के अन्दर भी मूर्तिपूजक, अमूर्ति पूजक-बारहपथी, तेरहपथी। मूर्तिपूजकोमें खरतरगच्छ, तपागच्छ, पायचदगच्छ, अचलगच्छ आदि। तपागच्छ में भी भिन्न भिन्न सघाडे-समुदाय हैं, और बनते जा रहे हैं।

आप समज लीजिये, २४ तीर्थंकरो को बराबर माननेवाले, एक ही महावीर की सन्तान कहानेवाले, एक ही सिद्धान्त और एक ही जाति, उस के अन्दर भी कितने फिरके हो गये हैं।

इस तरह हिंदुधर्म-सनातन धर्म में भी भेदभाव बढते बढते यहा तक बढ गये है कि घर घर में संप्रदायभिन्नता देखी जाती है। कितने अफसोस की बात है। क्या परिणाम आता है इसका? जानते है आप? आप अपने दिलो में समझे हुए है कि, हम धर्म की आराधना खूब करते हैं। मैं कहता हू, आप महज अधर्म कर रहे हैं, धर्म चीज ही दूसरी है।

अगर मैं स्वय धर्म के नाम पर लडाई करु, तनातनी बढाऊ, झगडे फिसाद करवाउ, दिगम्बरों तथा अमूर्तिपूजकों के साथ लडाई कराउ, तो मैं धर्म नहीं कर रहा हू अधर्म करता हू।

सज्जनो! ससार के मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकृतियो को रखते हुए अपनी अपनी इच्छानुसार धर्म का पालन करें। सब से मित्रता रक्खें समभाव रक्खे। यह हमारा कार्य है। लेकिन कोई किसी को 'बुरा' कहकर, 'मिथ्यात्वी' कहकर उसे उसकी

मान्यता से गिराने की कोशिश करता है, तो महेज वह अधर्म है—धर्म कभी नहीं ।

आश्चर्य है कि हम यही समझे हुए हैं—धर्म के विषय में गलत धारणा रक्खे हुए हैं कि—जो कुछ हमने मान रक्खा है, उसी प्रकार करनेवाला जो हो, वही 'धार्मिक' है, बाकी सब अधार्मिक। धर्म ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप इसे निश्चित समझें।

धर्म के माने क्या ?

"दुर्गतो प्रपतत् प्राणीन् धारणात् धर्म उच्यते।" यही धर्म की सच्ची व्याख्या है।

बेशक, हमारी अपनी क्रियाओं पर हमें श्रद्धा होनी चाहिये—प्रेम होना चाहिये। और हम जिसको मानते हैं और सन्मार्ग समझे हुए हैं, उन अपनी क्रियाओं को करते रहें, कोई हरकत की बात नहीं। परन्तु हमारा कोई हक नहीं कि दूसरों की नाव डुबाने की कोशिश करें। एक स्थान को पहुंचने के लिए गंगाजी में, मानलो दस नावें चल रही हैं, कोई किसी में, बैठा है कोई किसी में लेकिन अपनी बोट को आगे लेजाने के लिये दूसरे की बोट को डूबाने की कोशिश करें, तो महेज अधर्म नहीं तो दूसरा क्या कहें? हमारा कोई हक नहीं कि दूसरों को डुबावें—'नास्तिक' कहें। दूसरों को कुछ भी कहने का हक हमारा नहीं। हां, हम अपने लिये कुछ भी कह सकते है। "हमें समकित प्राप्त हुआहै।" "हमें तीर्थंकर गोत्र प्राप्त हो गया है"। "हमने ईश्वर को देख लिया है"। हमारे लिये कुछ भी कहलें। लेकिन हम दूसरों को 'नास्तिक', 'अधर्मी', 'मिथ्यात्वी' कहने का कभी दावा नहीं कर सकते। आज लडाई झगडों का कारण कोई है तो यही कारण है कि, हम अपनी चीजों को अच्छा समझते हुए दूसरों की चीजों को बूरा समझकर डुबाने की कोशिश करते हैं, नास्तिक-अधर्मी कहते हैं। मारपीट करने को तैयार हो जाते हैं। खून-खराबियां करने को तैयार हो जाते हैं। हां, हम हमारी अच्छी चीज दूसरे को दिखाने का, समझाने हक रख सकते हैं, परन्तु दूसरे को गिराने का हक नहीं रख सकते।

सच बात तो यह है कि हमने 'धर्म' को धर्म नहीं समझा। 'रूढि' को धर्म समझ लिया। हम जो क्रियाएं करते हैं, उन क्रियाओं को 'धर्म' समझा। कोई भी क्रिया करो, वह क्रिया धर्म नहीं है। ध्यान रखिये, प्रत्येक क्रिया के पीछे जो तत्व रहा हुआ है, उसको आप समजेंगे तो पता चल जागया कि ये क्रियाएं धर्म नहीं, धर्मका साधन मात्र हैं। अंतःकरण की शुद्धि के लिये है। इसीलिए शास्त्रकारोंने कहाः

"अन्तःकरणशुद्धित्व धर्मत्वम् ।" हमारे कषाय मन्द हों, अन्तःकरण शुद्ध हो, चाहे किसी जगह बैठने में, कोई भी प्रकार के विधि-विधान के करने में अगर हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है, समझ लेना चाहिये, वही धर्म की क्रिया हमारे लिये-आत्म शुद्धि, आत्मकल्याण के लिये कारणभूत होती है। अगर आप इस चीज को समझ लें, अपने दिलों में उतार लें तो मेरा ख्याल है कि फिर लडाई झगडे कहीं भी होने का कोई कारण नहीं रहेगा।

कोई न कोई क्रिया करते हुए अपनी आत्मशुद्धि जो करता है, हृदय को पवित्र करता है, किसी भी देश में रहकर, किसी कुल में रहकर, किसी भी जाति और धर्म में रह कर, किसी भी प्रकार का आचरण कर के अगर कोई अपने अंतःकरण को शुद्ध करता है, जीवन का विकास करता है, आत्मकल्याण करता है तो उसे अधर्मी कैसे कह सकते है ? इस पर ध्यान देकर अगर आप अन्तःकरण शुद्ध करेंगे तभी आप दूसरों के लिये भी उपकारी होंगे। अन्यथा कभी नहीं। इसे आप खूब समझ लें। धर्म की क्रियाए साधन हैं। साध्य कभी नहीं। साध्य जुदी चीज है।

अब आप इस बात को समझ सके होंगे कि धर्म आत्मा के साथ सम्बंध रखने वाली चीज है। क्रियाओ के साथ नहीं। क्रियाए जितनी हैं सब हमारे लिये साधन हैं। साध्य एक है। साधन असंख्य हैं। इन असंख्य साधनों में से किसी प्रकार के साधन को साध करके अपने साध्य को सिद्ध करें, यही मनुष्य का खास कर्तव्य है। इसलिये सच्चे धर्म का पालन करनेवाले मनुष्य को कभी किसी पर रागद्वेष करने का अधिकार नहीं। बुरा कहने का हक नहीं।

ज्ञानपूर्वक क्रिया

इस के साथ ही साथ एक बात का और ख्याल भी करना है। हम धर्म के साधन को अवश्य साधें। लेकिन धर्म के साधन को साधते हुए अपनी बुद्धि का भी उपयोग करना जरूरी है। आज संसार में अधिकतर देखा जाता है कि सब जगह मात्र 'रुढी' की पूजा हो रही है। 'हमसे पहले दूसरे लोग करते आ रहे हैं, इस लिये हम भी कर रहे हैं'। बेशक, करना चाहिये, मैं निषेध नहीं कर रहा हूं। आप मेरी बात गलत न समझ लें। मेरे अर्थ का अनर्थ न करें। मेरे विचारों पर खूब खूब ध्यान रखे।

'क्रिया का निषेध किया', ऐसी बात कह कर घर पर जाकर बुरा भला न कहना। मैं जो कह रहा हूं खूब बिचारपूर्वक कह रहा हूं। हमें हरेक क्रिया करना बहुत जरूरी है, ले न उसके साथ उसका ज्ञान प्राप्त करने की भी बहुत जरूरत है। जो क्रिया हम करते हैं उस से कौनसा कौनसा फायदा उठाने का है? उस क्रिया का अर्थ क्या है? उसको समझन की कोशिश करना हमारा कर्तव्य है। क्योंकि शास्त्रकारोंने कहा है: "ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रिया दोनों के करने से मोक्ष होता है। अकेली क्रिया करने से न मोक्ष मिलेगा, और न अकेले ज्ञान होने से ही।

बाईएं बहुत दफे कहती हैं कि "आज मैंने दस सामायक करली। इतनी तो आजतक कभी नहीं की"। पर इनसे क्या हुआ? अगर इतनी सामायिक करती हुई भी वे काम-क्रोधादि कषायों को न छोड सकीं, कलेश-झगडे को नहीं शान्त कर सकीं, अपने घर के लडाइ झगडे नहीं मिटा सकीं, तो इससे क्या फायदा हुआ? हजार सामायिक करते हुए भी समभाव किस चिडिये का नाम है? इसे न समझे, तो इन सामायिक से- इन क्रियाओं से आत्मा ने कौनसा लाभ उठाया? सामायिक में भी निंदा, विकथा होती ही रहे, दन्तक्लेश भी होता रहे तो, उस सामायिक से क्या लाभ?

इसलिये महानुभावों; आपको चाहिये कि चाहे आप वैष्णव हों, सनातनी हों, बौद्ध हों, जैन हों, ब्राह्मण हों, मुसलमान हों, ईसाइ हों, पारसी हों-कोई भी हों, आप जो कुछ धर्म की क्रिया करें, उसके तत्त्व को समझने की कोशिश करें।

पीछे से चली जाती है

मुसलमानों की एक मस्जिद में ५० मुसलमान भाई नमाज पढ रहे थे। जैनों की प्रतिक्रमण की क्रिया की तरह उसमें भी उठ-बैठ होती है। नीचे झूकते हुए एक मुसलमान का हाथ दूसरे को लग गया-जरा धका लगा। उसने समझा निमाज में ऐसा करना पडता होगा, उसने अपने हाथ की कुहनी पासवाले को लगादी। वह समझा-इस तरह नमाज में हाथ दूसरे को लगाना पडता हो, अतः उसने तीसरे को कोनी मारी और तीसरे ने चौथे को, चौथे ने पांचवे को। चली। ठोकते गये! कानीयों को लगाते गये. लेकिन खुदा का बन्दा कोई यह नहीं पूछता है कि यह कोनी किस लिये लगाई जाती है? चलते चलते बहुत दूर निकल जाने पर एक समझदार भाईने पूछा: "अरे! नुरभाइ, यह क्या है?" "खुदा जाने, यह तो पीछे से चली जाती है।" नुरभाइने

पीरभाइ को और पीरभाइने हर्मानभाइ को-ऐसे पूछते गये; सबका एकही जवाबः "पीछे से चली आती है।" आखिर जिस के हाथ से धक्का लग गया था उसे पूछा गया कि 'क्या हुआ मियां ?' उसने कहा: "भाइ, यह कोइ क्रिया नहीं है। यह तो मेरा हाथ जरा हिल गया और वह दूसर को लग गया और उसने तीसरे को मारा और एस ही यह चल पडा। अच्छा हुआ आपने इसका खुलासा कर दिया, नहीं तो यह ऐसा ही चल पडता।"

सज्जनो, इस पर गौर करिये। कोई भी क्रिया समझने की कोशिश कीजिये। प्रत्येक क्रिया के पीछे कुछ न कुछ हेतु अवश्य रक्खा गया है। इस को जानना हमारे लिये जरूरी है। नहीं करने को नहीं कहता। करो और खूब करो, लेकिन उसके साथ मे समझने की भी कोशिश करो।

हमारी पाठशालाओं में प्रतिक्रमण सिखाए जाते हैं। अर्थात् सूत्रों को रटाया जाता प्रायः है उनका अर्थ नहीं समझाया जाता। लडके जीवविचार, नवतत्त्व, कर्मग्रन्थ सब कुछ तोते की तरह रट जाते हैं। नतीजा यह होता है कि-कर्मग्रन्थ तक पढे हुए विद्यार्थी भी जैनधर्म का वास्तविक अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझा सकते। कर्मग्रन्थ की फिलोसोफी को पढनेवाला मनुष्य, जैनधर्म की क्या व्याख्या है ? इतना भी न समझे तो हमारी पाठशालाओं में क्या पढाया जाता है ? इस का खूब विचार करने की जरूरत है।

हमारा यह शिक्षण हमें बदलने की जरूरत है। ठोस समझदारी का ज्ञान देने की आवश्यकता है।

इसलिये मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी क्रिया हम करें, रूढिमात्र से न करें। उसे अपना साध्य समझकर न करें। साधन समझकर करें और ज्ञानपूर्वक समझ कर करें। तभी हमारा कल्याण हो सकेगा।

धर्म कब करोगे ?

हम छोटे बच्चों में धर्म की भावना डालना चाहते हैं। परन्तु लडके कहते हैं "महाराज, अभी तो हमारा खेलने समय है। जब १५-२० वर्ष के हो जायेंगे, तब धर्म करेंगे।" १५-२० वर्षवालों को पूछते हैं, तो वे कहते हैं "महाराज! अभी तो शादी करने की है, कुछ पढ भी रहे हैं, जरा बडे हो जायेंगे तब करेंगे"। २५-३० वर्ष के युवक से पूछो, कहेंगे: "महाराज, अभी तो शादी हुई है, थोडा धंधा रोजगार करलें, पैसा कमालें, अभी तो कमाने का वख्त है। जब सब तरह से व्यवस्थित हो जायेंगे, कुछ पैसा भी हो जायगा, तब धर्म करेंगे।"

४०–५० वर्ष की उम्रवालों को पूछिये कि 'अब तो सब झंझट छोडकर मनुष्य-जीवन को सार्थक करो। प्रभु के भजन में ध्यान लगाओ।'

"अभी क्या हो सकता है, महाराज! गृहस्थी की झंझटों में फंसे हैं। लडके छोटे हैं। जरा बडे को दुकान पर बैठा दूं। दुकान का कामकाज सिखाकर उसे सौंप दूं? अभी दुकान का काम भी कुछ बाकी है"। ६०-७० वर्ष की उम्रवालो को पूछिये। कहेगा: "अरे, अभी तो सब छोडना बडा मुश्किल है। जरा लडके का बच्चा बडा हो गया है, उसकी शादीहो जाय, और पोते की बहू घर में आजाय तो फिर आपका चेला हो जाऊंगा।" ८० वर्ष का बुड्ढा, वह क्या तो मेरी सेवा करेगा और क्या तो अपना आत्मकल्याण करेगा? मुझे भी लालच खूब देते हैं। ज्यादा कहेंगे, तो उत्तर देंगे: "महाराज, गाँवमें १०८-१०० वर्ष की आयुवाले भी बैठे हैं? क्या उसके पहले हम मर सकते हैं?" ऐसा भी जवाब देते हैं कुछ लोग। प्यारे भाइयो! इस जीवन का कोई भरोसा नहीं। इसलिये शास्त्रकार पुकार पुकार कर कहते हैं।—

> यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं, यावज्जरा दूरतो,
> यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता, यावत्क्षयो नायुपः।
> आत्मन्येव हि तावदेव विदुषा, यत्नो विधेयो महान्
> सन्दीप्ते भवने हि कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः? ॥

जहां तक तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, रोग आया नहीं है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट नहीं हुयी है, हाथ पैरों में जोर है, आयु का क्षय नहीं हुआ है, वहांतक बुद्धिमान् मनुष्य अपने आत्मा के कल्याण के लिये, अपने जीवन के विकास के लिये काम करे। अगर ऐसा नहीं करता है तो शास्त्रकार कहते हैं—

"सन्दीप्ते भवने ही कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः?"

एक मनुष्य बाजार में होकर दौडता हुआ चला जा रहा था। उस समय किसी ने पूछा:—

"अरे क्या बात है? जरा ठहर तो सही!"

"मुझे फुरसत नहीं, मुझे जल्दी जाने दीजिये!"

"कुछ कह तो सही, क्या हुआ? कहां जा रहा है?

"मैं मजदूरों को लेने के लिये जा रहा हूं।"

"अरे क्या जरुरत ऐसी आ पडी ? इतना भागा जा रहा है ?"

"सेठजी, मुझे कुआ खुदवाना है !" वह बोलता है।

"अभी न अभी अरे, कुए की क्या जरुरत पडी ?"

"बस, सेठजी पूछिये मत, क्यों जरुरत पडी ? । बडी जरुरत है, मुझे भागने दीजिये, अगर आप के मिल में मजदूर हो तो उन्हें जरा बुलवा दीजिये।"

"अरे ! कुछ बतायगा भी कि चिल्लाता ही जायगा।"

"सेठजी, मेरे घर में आग लगी है आग। उसे बुझाने के लिये पानी चाहिए। इसीलिये कुआ खुदवाना है। नहीं तो मेरा सारा घर स्वाहा हो जायगा।"

प्यारे भाइओं ! जिस समय घर में आग लगी हो, उस समय मजदूरों को लेने जाय, वह मजदूरों को लावे, कुआ खुदवावे, पानी निकलवावे और वह पानी डालकर अपने घर में लगी आग बुझाए, कितना मूर्ख आदमी है वह ?

आप उसको मूर्ख समझते है, परन्तु ससार में रहते हुए, सब साधनों के रहते हुए, सब शक्तिओं के रहते हुए, दूरदर्शिता रहते हुए, ज्ञान रहते हुए, और सब जानते हुए अगर हम धर्मध्यान नहीं करते, अपने आत्मा का कल्याण नहीं करते, जीवनविकास और आत्मा के कल्याण के साधनरूप इस मनुष्य भवका और उसे मिले साधनों का धर्म के लिये सच्चा उपयोग नहीं करते, तो हम ज्यादासे ज्यादा मूर्ख नहीं है क्या ? हमें मूर्खों का सरदार कहना नहीं चाहिये क्या ?

हककी उम्र कितनी ?

मैं एक बहुत आश्चर्य की बात कहता हू। हमारी जो उम्र है वह हमारी नहीं है, मांगी हुई है। आप जो कहते है "आगे करेंगे, आगे करेंगे।" आगे की अवस्था में कुछ नहीं कर सकते। क्यों कि आगे की उम्र हमारी नहीं है।

ब्रह्माजीने ससार को रचा और बुद्धि तथा उम्र का भी बटवारा उन्होंने कर दिया। मनुष्य को ४०, बैल को ४०, कुते को ४० और बगुले को भी ४० वर्ष द दिये। मनुष्य को ४० वर्ष बहुत कम पडते थ। ब्रह्माजी के पास जा कर चिल्लाहट मचायी। "कुतेको भी ४०, बैल को भी ४०, सब को ४० और मुझ भी ४० ? । यह क्या बात है ? ऐसा अन्याय तो नहीं होना चाहिये। मुझे तो कुछ ज्यादा दिजिये।"

इतने में बैल आया, बोलाः—" मुझे ४० वर्ष दे दिये, मैं क्या करूंगा ? माल ढोता ढोता ही मर जाऊंगा। कुछ आराम नहीं मिलेगा। हमको तो थोडे वर्ष दीजिये."

ब्रह्माने विचार किया इधर यह नहीं चाहता। उधर सेठ मांग रहा है, इस लिये उस बैल के २० वर्ष लेकर सेठजी को दे दिये।

कुत्ता आया रोता चिल्लाता :–"महाराज, दण्डे खाते खाते मर जाऊंगा। गलियों गलियों में भटकूंगा। रोटी के टुकडे टुकडे के लिये तरसुंगा। मुझे इतने वर्ष नहीं चाहिये। जिस को चाहिये उसको दे दो।"

कुत्ते के भी २० वर्ष लेकर सेठजी को दे दिये। सेठ को २० वर्ष कुत्ते के मिल गये। इधर बगुला हांफता हांफता आयाः "ब्रह्मा—महाराज—दुहाई है। मेरे साथ यह अन्याय क्यों ? इतने वर्ष जीकर न मालूम मैं कितना पाप का ढेर लगा लूं॥ मैं दब जाऊंगा महाराज ! उसके नीचे। मछलियाँ खा खाकर क्या करूंगा ? मेरे पर रहम करिये। मेरी उम्र कम करिये।"

ब्रह्मा ने उसके भी २० वर्ष लेकर सेठ को दे दिये। इस तरह साठ वर्ष सेठ को और मिल गये। बैल, कुत्ते और बगुले के।

आप को मालूम है, चालीस वर्ष की उम्र तक शरीर चलता है। तबतक आदमी मस्त रहता है। उसके बाद जब लडके बच्चें हो जाते हैं, लडकों की बहुएं घर आती है. लडका कहता है–" पिताजी, रोटी तब मिलेगी जब बराबर एक मजदूर की तरह दुकान पर बैठोगे। वहां का काम करोगे। नहीं तो नहीं। बैठे बैठे खिलाना, हमें अखरता है।"

विचारा बैल की तरह ६० वर्ष की उम्र तक काम करता है। लडके को पैसा पैदा कर के देता रहता है। इसलिये कि वे २० वर्ष बैल की उम्र के मिले हुए थे। इधर साठ वर्ष की उम्र हुई कि, सेठ के शरीर की ताकत कम हुई। घर में लडकों की बहुएं ठनक ठनक कर आती जाती हैं ! सेठ अशक्त हैं, चल फिर नहीं सकते। खटिया पर पडे हैं।

" काम काज करना नहीं है, पडे पडे टुकडे तोड़ता है।" लडकों की बहुएं अन्दर अन्दर बातें करती हैं : " बुढ्ढा मरता नहीं—मरे तो पाप टले। ले बहन, अब आज इसे तूं जिमादे। कल वह जिमादे, और फिर वह जिमादे। बारी बारीसे इस बुड्ढे को रोटी डाल दो। न जाने कब इस झंझट से छूटेंगे।"

अब सेठ को कुत्ते की तरह रोटी खाने की नोबत आयी। क्यो कि ये १० वर्ष कुत्ते के मागे हुए थे। और जब इन से सेठजी परेशान होने लगे, तो ७०-८० वर्ष के बाद धर्म-ध्यान करने की सूझी ।

'मुहमें राम बगल मे छुरी।' सेठजी खाट पर पडे है। हाथ में माला लिये जप रहे है। बराबर अरिहन्त अरिहन्त कर रहे है। खटिया के नीचे कुछ रक्खा है, उसको याद करते है। आंखों से अन्धे हो गये हैं। कानो से बहरे हो रहे हैं। पर भगवान् का नाम लिये जा रहे है।

मेरे प्यारे मित्रो। भगवान को ठगने की अगर कोई जिन्दगी है तो यह पिछली जिन्दगी है। कभी यह आशा न रक्खें कि बडे होने के बाद धर्मध्यान कर सके।

सच्चा धर्मध्यान करने का समय है तो मात्र ४० वर्ष की उम्र तक। इस पार या उस पार। अगर इस उम्र के बाद दान-शील-तप-भावना की आराधना करके-जीवन को सफल करना चाहे, तो कुछ नहीं होने का। आप का जीवन फिर बरबाद है।

इसलिये मित्रो, पूरा पूरा अनुरोध कर के कहता हू कि-धर्म की आराधना खूब कीजिये। अवस्था करने की यही है। लेकिन अधश्रद्धा से रुढि को धर्म समझकर धर्म न करें। लेकिन धर्म को धर्म समझकर, आत्मकल्याण का साधन समझकर, धर्म को साध्य समझकर, जिस के करने से अन्तःकरण की शुद्धि हो, ऐसे धर्म को धर्म समझकर उसका पालन करें। अन्तःकरण की शुद्धि यही धर्म है।

भाइयों और बहनों !

जीवनविकास के साधनों में आजतक मैंने व्यावहारिक साधन दिखलाये। गृहस्थाश्रम में रहते हुए, द्रव्योपार्जन करते हुए भी मनुष्य जीवन विकास कर सकता है। जिसमें अर्थ, काम और धर्म पुरुषार्थों की साधना गृहस्थ करे। अर्थ और काम की व्याख्या करने के बाद कल मैंने 'धर्म' पर कहा था। आज मैं यह दिखलाना चाहता हूं कि. गृहस्थाश्रम में रहकर के ऐसे कौनसे गुणों को मनुष्य धारण करे कि, जिससे वह अपना जीवन विकास कर सके।

रामचन्द्रजी का भरत को उपदेश

मैंने परसों प्रसङ्गोपात्त एक बात कही थी। रामचन्द्रजी वनवास ज़ा रहे हैं, और भरत को उपदेश देते हैं। इस उपदेश में उन्होने गृहस्थाश्रम का चित्र खड़ा किया है, जिसमें यदि विचारदृष्टिसे देखा जाय तो उसमें गृहस्थ के साधने योग्य तीनों पुरुषार्थों का समावेश हो जाता है। रामचन्द्रजी कहते हैं:

परस्त्री मातेव, क्वचिदपि न लोभ. परधने,
न मर्यादा भङ्ग:, क्षणमपि न नोचेष्वपिरति: ।
रिपौ शौर्य, धैर्य विपदि, विनय: संसदि सदा,
इदं भ्रातर्वच्मि भरत! नियत: ज्ञास्यसि सदा ॥

परस्त्री के ऊपर मैं परसों के व्याख्यान में कह चुका हूं। दूसरी शिखामण देते हैं: दूसरे के धन पर लोभवृत्ति मत करो। नीतिपूर्वक आये हुए पैसे से ही कोष की वृद्धि करना। राम भरत को ही उपदेश नहीं कर रहे हैं, बल्कि सारे मनुष्य जगत् को उपदेश देते हुए कहते हैं कि 'हे जगत् के प्राणियों! अगर तुम्हें भी अपने जीवन को सफल करना है, तो अनीति के द्रव्य से दूर रहो। नीतिपूर्वक पैसा उपार्जन करके अपने गृहस्थ जीवन को धन्य बनाओ। इस विषय पर भी मैं पहले बहुत कह चूका हूं।

आगे रामचन्द्रजी कहते हैं:--न मर्यादाभग ।

कभी मर्यादा का भंग न करो। बात छोटीसी है पर बडी उपयोगी है।

मैंने अपने कई व्याख्यानों में कहा है और पुस्तकोंमें लिखा है कि 'दुःख यह भूल का नतीजा है।' हम जब जब भूल करते हैं, तब तब दुःख उत्पन्न होता रहता है। आर्थिक शक्ति अच्छी नहीं, और बहुत बडा व्यापार करेंगे तो परिणाम मे हमारा दिवाला निकलेगा और दु ख भोगेंगे। हमारी शारीरिक शक्ति अच्छी नहीं, फिर भी अथक परिश्रम करेंगे तो बिमार नहीं होंगे तो और क्या होगा? तपस्या करने की शक्ति नहीं, फिर भी तपश्चर्या करेंगे तो सिवाय कमजोरी बढने के और दु खित होने के कुछ भी सुख नहीं मिल सकता।

इस तरह हम जितनी गलतिया करते हैं, और दुःखी होते हैं, यह सब मर्यादा भंग का फल है।

हमारा देश पराधीन है-दुःखी है। मेरा ख्याल है, इसका कारण भी यही है कि हमने अपनी मर्यादा, रहन-सहन, सस्कृति, धर्म, वेष-भूषा-भाषा-व्यवहार एव समाज, जाति की मर्यादा तोडी है। हमारा छोड कर हम दूसरों की वेष-भूषा भाषा आदि अपनाते हैं। हमारे दुःखो की जड हमारी मर्यादा का भग है।

जरा देखिये, एक साधारण गृहस्थ, जो ४०-५० मासिक कमाता है, वह एक पूजीवाले की स्त्री को देखता है। उसके साज शृगार गहनों को देखकर विचार करता है: "मैं भी अपनी स्त्री को ऐसे ही सजाऊ-गहने पहनाऊ।" क्या करेगा वह? उसकी इतनी आमदनी तो है नहीं? उसकी शक्ति के बाहर की बात है। वह अब अगर अपनी मर्यादा-अपनी शक्ति का विचार नहीं करता है, और पैसे कर्ज पर लेकर अपनी स्त्री को सजाने की कोशिश करता है तो, दु'खी होगा, कर्जदार बनेगा, नहीं चुका सकने पर शहर छोडकर चला जाना पडेगा-नाना दुःख सहेगा।

शारीरिक-मानसिक-वाचिक किसी प्रकार की मर्यादा भग कीजिये। मर्यादा के भग का अर्थ है-दुःखों को न्योता देना।

स्कूलों मे पढनेवाले गरीब युवक अपनी मर्यादा-अपनी शक्ति का भग करके ऊचे ऊचे दामों के नये नये बूट-शूट पहनते हैं। माता पिताको दुःखी बनाते हैं, खुद दुःखी बनते हैं। दुःखी नहीं होंगे तो होगा क्या?

इसी तरह हमारी बहनों की मर्यादा देखिये। आप के देश मालवा-मारवाड तो फिर भी अच्छे हैं। परन्तु गुजरात, काठियावाड, सिन्ध की बहिनोंका तो परमात्मा ही मालिक है। वे ऐसी फैशन में आगयी हैं कि अपनी संस्कृति और मर्यादा का भग करके दूसरों के-पाश्चात्य फैशन के चक्कर में पड गयीं है। अपने देश, जाति और खानदानी की मर्यादा भंग करती हैं। इस तरह हमारा पतन हो रहा है। पुरुप अपने घर की स्त्रियों को नाटक सिनेमा देखने लेजाती हैं। वहां वे नाच गान देखती हैं। फेशन की बातें देखती हैं। नर्तकियों के पहनाव, श्रृंगार, हाव-भावको देखती हैं। फिर वे स्त्रियों भी इसी प्रकार का आचरण करने लगजाती हैं। वे समझती हैं-उनके छोटे छोटे बालक बालिकाएं समझती हैं कि हमें भी ऐसा ही करना चाहिये, ऐसे ही बाल कटवाना चाहिये। पीनें लगानी चाहिये, और हमें भी इसी प्रकार के नखरे करना चाहिये।

शर्म और लज्जा की बात है। ये अपने खानदान की मर्यादाको नहीं देखते। आर्य संस्कृति की मर्यादा को नहीं देखते। दूसरें के बूरे आचरणों में अपने को बहाकर हम अपनी मर्यादाएं भंग करते रहे हैं। यही कारण है कि हमारी आज पतन अवस्था होती जा रही है।

नास्ति नष्टे विचारः

अपने आचार-व्यवहार की मर्यादा को छोडते हैं, फिर वे भी नाचे ही गिरते जाते हैं। शायद मैंने किसी व्याख्यान में उदाहरण दिया था। कहा भी हो तो फिरसे सुनिये। किसी समय भोज राजाने कालीदास पंडित को पूछा—

"भो पंडित! कस्मिन् विचारो नास्ति?"

अर्थात्-'हे पंडित! किस मनुष्य में विचार नहीं होता।' कालीदासने कहाः- 'अवसरे दर्शयिष्यामि।'

अर्थात्- "किसी मौके पर दिखलाऊंगा।"

पंडित कालीदास किसी समय साधु का वेष लेकर, फटी-टूटी सडी गंदी कफनी पहनकर, राजा के महल की तरफ जाता है। राजा भोज रास्ते में ही उसे मिल जाता है। राजा उसको पहिचानता नहीं है, और कोई भिक्षुक समझकर उससे पूछता हैः

भिक्षो! कन्था श्लथा ते? नहि, शफरिबधे जालमश्नासि मत्स्यान्?
ते वै मद्योपदंशान्, पिबसि मधुरसम्? वेश्यया, यासि वेश्यां?

दत्वाग्निमुच्यरीणा, तव किमु रिपवो भित्तिमेतास्मि येषा,
चोरोऽसि ? तद्हेतो त्वयि सकलमिद ? नास्ति नष्टे विचार: ॥

अर्थात्–राजा भोज कहता है–हे भिक्षो ! ते कन्था श्लथा ! हे साधु तेरी ! कफनी फट गयी है क्या ?

साधु जवाब देता है–' नहि, शफरिवधे जालम् '। नहीं, यह मेरी गोदडी फटी हुई नहीं है, यह मछलिया पकडने की जाल है।'

" तुम मछली खाते हो ?"

" अकेली मछली नहीं, मदिरा के साथ खाता हू।" साधु जवाब दे रहा है।

राजा विचार करता है कि–उसको मैं एक चीज पूछता हू, वह बडी निर्लज्जता से उसके साथ एक और बात मिलाकर जवाब देता है। राजा फिर पूछता है:–
" मदिरा भी पीते हो ?"

साधु जवाब देता है–" वेश्या के साथ बैठकर "

" तुम वेश्या के यहा भी जाते हो ?"

" ऐसे ही नहीं जाता, दुश्मनों के सिर पर पैर रखकर जाता हू।" " दिन को साधु हो जाता हू, रात को वेश्या के यहा जाता हू,' इस आशय से दुश्मन के सिर पर पैर रखकर जाता हू।"

" तुम तो साधु हो, साधु का भी क्या कोई दुश्मन हो सकता है ?"

" मैं चोर हू, डकैत हू, दिवालों को तोडकर मकानो म घुसता हू और चोरी करता हू, इसलिये मेरे दुश्मन क्यों नही होंगे ?"

राजा विस्मय में डूब जाता है। फिर पूछता है:–"अरे, तुम चोरी भी करते हो ?"

" जूआ खेलना पडता है। पैसे कहा से लाऊ ?" साधु जवाब दे रहा है।

उस समय राजा हताश होकर कहता है –"त्वयि सकलमिद" " क्या तुम्हारे में सभी अवगुण भरे पडे है ?"

साधु कहता है:–" नास्ति नष्टे विचार: ।" " महाराज ! एक अवगुण के पीछे दुनिया भरके अवगुण आ जाते हैं। और पतित मनुष्य में से विचारशक्ति नष्ट हो जाती है।"

जो मनुष्य धर्मभ्रष्ट हो जाता है, अपनी संस्कृति, समाज, धर्म और खानदानी की मर्यादा भंग कर देता है, कुल को कलङ्क लगाने को तैयार हो जाता है, उसको किसी प्रकार का भी पाप करने में विचार नहीं होता।

मित्रो! जरा इन बातों पर विचार करिये। अगर आपको धर्म प्यारा है, अपना आत्मा प्यारा है, जीवन प्यारा है, हित करना चाहते हैं तो 'न मर्यादा भंगः,' कभी भी मर्यादा का भंग न करें। अपनी संस्कृति, समाज, धर्म, जाति, कुल की मर्यादा को नष्ट न करें। आपने अपने कुल, जाति, देश की मर्यादा का भंग किया, तो समझ लीजिये आप का पतन निर्माण हो चुका है।

रामचन्द्रजी आगे भरत को उपदेश देते हुए कहते हैं-"क्षणमपि न नीचेष्वपि रतिः" "नीच और हल्के मनुष्यों की सोबत एक क्षण भरभी नहीं करना।" मनुष्य का पतन क्यों होता है? मनुष्यों में दुर्गुण क्यों आते है? दुर्गुणी और नीच मनुष्यो की सोबत से ही हमारे में दुर्गुण आते हैं और हमारा पतन होता है।

एक मनुष्य जो सज्जन, साधु, महात्मा, सदाचारी और नेक पुरुषों की सोबत में रहता है, उसके पतन होने का कोई कारण नहीं। लेकिन नीच मनुष्यों की सोबतसे हमारा पतन निश्चित है।

मैं अपने इन नवयुवकों की बातें कभी देखता हूं तो मुझे दुःख होता है। वे नीच पुस्तकों भी सोबत ज्यादा करते हैं।

लाईब्रेरीयों में जाते हैं, शृंगार रस का ही जिन में वर्णन होता है, ऐसी जहरीली पुस्तकें उपन्यास व कहानियों लेकर पढते हैं।

काठियावाड में मुझे एक नव युवक मिला। वह एक दिन मेरे पास आया। बातचीत चर्चा वगेरह हुई। मैंने पूछा "तुमने कितना पढा है!"

उसने कहाः "मैंने छ हजार पुस्तकें पढ डाली हैं!"

मैंने पूछाः "इससे आप के जीवन में कुछ सुधार हुआ?"

वह बोला "महाराज! बजाय सुधार के मेरे जीवन में बडे दुर्गुण आगये हैं। मेरा तो पतन हो चूका है।"

छ हजार पुस्तक पढनेवाला युवक कहता हैः 'मेरा पतन हो गया।' ऐसी

विषैली छ हजार पुस्तकें पढनेवाला युवक अगर एक भी अच्छी उच्च विचारो से भरी सदाचारमयी पवित्र पुस्तक पढ लेता तो, अपने जीवन को सफल कर लेता।

मित्रों! जरा सोचिये इन बातों को, हमारा जीवन कहा चला जा रहा है।

आप इन बुरी पुस्तकों और बुरे मनुष्यो—दोनों की संगति छोड दे। सदाचारी मनुष्यों का और उच्च विचारवाले पवित्र साहित्य का संग करें। आप का कल्याण निश्चित है।

शत्रु कौन ?

रामचन्द्रजी आगे कहते है—" रिपौ शौर्यम्।" सभी लोग अपनी शूरवीरता बताने की इच्छा करते हैं। पर आज हम अपने से छोटे निर्बल पर अपनी धाक जमाने की कोशिश करेंगे। अपनी शूरवीरता गरीब, दुःखियो, दीनो और निर्बलों पर बतला देंगे। अगर कोई शक्तिशाली मिल जाता है, तो उससे दूर भागने की कोशिश करते हैं।

परन्तु रामचन्द्रजी उपदेश देते है कि 'अगर तुम्हें शूरवीरता दिखलानी है, तो तुम्हारे शत्रु को बताओ।'

अपनी निर्बल बहिन-बेटियों पर अत्याचार कर के, निर्बलो को सताकर और निर्दोष पशु, पक्षिओं को सताकर अपनी बहादुरी बताते हो! मर्दाने जंग में उतरकर बहादुरी बताओ, अपने से शक्तिशाली शत्रुओं पर।

आप के शत्रु कौन हैं? मालूम है आप को?

आप लोग तो एक दूसरे को शत्रु समझ बैठ है। समाज में, धर्म में, ज्ञाति में, सम्प्रदायो में अपने शत्रु मानकर एक दूसरे की बुराईओं की जाती है। एक दूसरे को नीचा बताने, नुकसान करने की कोशिश में लगे रहते है, परन्तु वे आप के शत्रु नहीं हैं।

आप का असली शत्रु है आप के आत्मा पर रहा हुआ कषाय। क्रोध, मान, माया और लोभ। इन्हे जीतने की कोशिश करो। अपनी शूरवीरता इन पर बतलाओ। इन को जीतने की कोशिश की है कभी आपने? कभी नहीं।

दुकान पर से कामकाज कर के सेठजी घर पर जाते है। एक बज गया है। भूख लगी है। पेट में आग लग रही है। चूहे दौड लगा रहे है।

घर में पत्नी ने रसोई बनायी है। सेठजी भोजन करने बैठते है। अपनी पत्नीने, जिसको सेठजी प्राण-प्यारी कहा करते है, उसने रसोई बनायी है। दाल-भात रोटी सब तैयार है। स्त्री बडे प्रेम से थाली परोसकर सेठजी के सामने खडी है।

शेठजीने रोटी खायी और साथ में थोडीसी दाल का हाथ लिया, तो मालूम हुआ, दालमें नमक ज्यादा गिर गया है। संयोगसे पत्नी के हाथसे दालमें नमक ज्यादा गिर गया था। शेठजी का मिजाज चढ जाता है। पारा १०५ के ऊपर पहुंच जाता है। जिस पत्नी को 'प्यारी' 'प्यारी' कहते नहीं थकते हैं, उसे ही आज कहते हैः—" रांड! इतने दिन घरमें आये हो गये, अभीतक दाल बनाना भी नहीं आया।"

इतने पर ही मामला नहीं रुका। पत्नी जरा मेट्रीक तक पढी लिखी है। कहती है: " जरा मुंह संभालकर बोलिये। "

जहां स्त्रीने इतना कहा, वहां तो थाली पटक दी और ली हाथ में चप्पल। इधर स्त्री उठकर भागती है और बची हुई दूसरी चप्पल वह हाथ में ले लेती है।

बस, चली चप्पल दोनों में पटापट। क्रोध! क्रोध और क्रोध! कितना क्लेश हो गया ?।

लडाई सुनकर पास-पडौस के लोग इकट्ठे हो जाते हैं। बिना पैसे का नाटक देखने लग जाते हैं।

इज्जत गयी, हंसी हुई, मारपीट हुई, रिसामणा हुआ। इतना सब कुछ हुआ, लेकिन दालमें से नमक नहीं निकला सो नहीं निकला।

मेरे प्यारे बन्धुओं! क्रोध यह हमारी मानसिक कमजोरी का परिणाम है। इन्द्रियों के लालची बने हैं, विषयों के गुलाम बन गये हैं। स्त्रीकी एक जरासी भूल पर इतना क्रोध करने को तैयार हो जाते हैं। इस बात को सोचो तो सही। अगर आपको दाल अच्छी नहीं लगी तो खामोश रहते। दालका कटोरा अलग रख देते। चुपचाप बिना कुछ बोले रोटी और शाक खाकर अपने धन्धे पर चले जाते। जब रसोई करनेवाली आपकी पत्नी खाने को बैठती और मालूम होता कि दालमें नमक ज्यादा है, अपने आप पस्ताती। अपने को धिक्कारेगी कि "अररर, इतना नमक होते हुए भी मेरे प्राणनाथने कुछ भी नहीं कहा। धिक्कार है मुझे जो मैंने ऐसी गलती की और अपने स्वामीको ठीक भोजन भी नही करवाया" आपके प्रति प्रेम और आदर भाव उसका बढ जाता और आयन्दा कभी ऐसी भूल न करती।

इसलिये महानुभावों! अगर आप को जीतना है, अपनी शूरवीरता बतलाना है

तो अपने इन आत्मिक शत्रुओं–क्रोध, मान, माया, लोभादि पर बताओ। इन्हें जीतो। कषायों को मन्द करने की कोशिश करो।

भरत को उपदेश देते हुए राम आगे कहते हैं:–" धैर्यं विपदि। " जब दुख आवे तो धैर्य धारण करो। ससारमें कोई ऐसा मानवी नहीं, जिस पर दुःख न आता हो। यहा तक कि तीर्थंकर, चक्रवर्ती, राजा, महाराजा, साधु, सन्यासी, महात्मा, महान् त्यागी, वैरागी, ब्रह्मचारी और गरीब से गरीब भी दुःखों से नहीं बचता।

ऐसे वक्त हमारा धर्म क्या है? दुःख आए धीरता धारण करें। सहनशील बन जाय। अपनी मानसिक शक्तिओं को प्रबल करें।

प्रभुसे क्या मागना?

मैं एक बात कई दफे कहता हूँ। जैन हो, ब्राह्मण हो, वैष्णव हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, बौद्ध हो, चाहे कोई हो। सब लोग प्रातःकाल उठकर परमात्मा की प्रार्थना करते हैं कि 'हे प्रभो! हमे सुन्दर स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, ऐश्वर्य, मोटर, हवाई जहाज ये सब दो। ताकि इतने साधन आजावें कि–हमें कोई दुःख न हो। सुख ही सुख रहे। पडे पडे आराम करें।"

ऐसी प्रार्थना ईश्वरसे की जाती है। पर मैं ने अपनी पुस्तकों में लिखा है और व्याख्यानों मे भी कहता हू कि–केवल सुखों के लिये की गयी यह प्रार्थना व्यर्थ है। हरेक मनुष्य, जो परमात्मा को मानता है, वह सुबह उठकर भगवान् के नाम-स्मरण के साथ यह प्रार्थना करें कि–" हे प्रभो। हजारों और लाखों दुःखो को सहन करने की शक्ति मुझे दो।" सुख के साधन मिलने पर तो प्रभु का नाम भी मनुष्य भूल जाता है, मनुष्य में चाहिए सहनशक्ति। हमें धैर्य–सहनशीलता–दुःखो को सहने की शक्ति चाहिये। यही सच्चा पुरुषार्थ है।

राम आखिरी उपदेश देते हैं:—

" विनय ससदि "–चार मनुष्यों के बीचमें बैठे हों तो विनय अवश्य धारण करें। शिष्टता को न छोडें।

जिस मनुष्य में विनय नहीं है, उसमें कहना चाहिये कि मनुष्यत्व नहीं है।

विनय के जैसा गुण और कोइ नहीं हो सकता। यह सब गुणों में श्रेष्ठ गुण है। दूसरे हजारों गुण अगर हैं, तो उनका आधार विनय ही रहा हुआ है।

हमें अपने माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के प्रति विनय-भावसे बर्ताव करना चाहिये। पुरुषों को चाहिये कि-अपने बाल बच्चों को सिखलावें कि वे अपनी माता, बड़े भाइ आदि पूज्य लोगों के साथ विनय भाव रक्खे। उन्हें रोज प्रातःकाल उठकर नमस्कार करें। और माता भी बालक को उसके पिता को नमस्कार करनेको कहे।

ऐसे विनीत बालक का, बड़ा होने पर बड़ा मान होगा। वह कोइ बड़ा बुद्धिशाली, महापुरुष बन जायगा। इस में कोई शक नहीं।

विनय यह कुलीनता और सच्ची खानदानी का द्योतक है। और देखा जाय तो धर्म का पिता ही विनय है।

मानवता का सच्चा धर्म विनय है।

रामचन्द्रजीने ये सात शिखामण भरत को ही नहीं दी है, लेकिन हरेक मनुष्य मात्र को दी है। सब इनको धारण करें और अपने आत्मा का कल्याण करें। अपने अपने जीवन का विकास करें।

भाइओं और बहनों !

जीवन विकास के साधनों में व्यावहारिक साधनों को दिखलाते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चार पुरुषार्थों में से, गृहस्थ तीन पुरुषार्थों का साधन करे। अर्थ और काम के विषय में पहले कह चूका था। कल मैंने धर्म के विषय में कहा था। 'धर्म' हमारे लिये कितनी आवश्यक चीज है ? धर्म हमारा प्राण है, श्वासोश्वास है और सर्वस्व है। मुक्ति और सासारिक सुख दोंनो धर्म से प्राप्त होते है।

सुख और शान्ति का सच्चा साधन अगर कोई है तो धर्म है। लेकिन उसी धर्म के निमित्त से ससार के तमाम क्षेत्रों में जितनी अशान्ति, जितना दावानल और खून खराबी हुई हैं, उतनी सांसारिक कार्यों से नहीं हुई। युरोप में रोमन केथेलिक और प्रोटेस्टटोने इसी धर्म के नाम पर एक दूसरे के अनुयायियों को जिन्दा जला दिया-सेंकडों की तादाद में। इसी धर्मके नामपर हिन्दू मुसलमान लडते हैं। बौद्ध, जैन लडते हैं। सारी दुनियां लडती है। बडे अफसोस की बात है कि-जो धर्म हमारे आत्माकी शान्ति के लिये होना चाहिये, कषायों के मन्द करने के लिये होना चाहिए, आत्मकल्याण के लिये और सांसारिक सुख के लिए होना चाहिये, उसी धर्म के निमित्त से घर घर में, पति पत्नी में, भाई भाई में, जाति जाति में, बिरादरी बिरादरी में क्लेश होता है। कितने दुःख की बात है ? धर्म का असली स्वरूप नहीं समझने का यही परिणाम है।

यही कारण है कि आज हमारे इतने धर्म के ठेकेदार होते हुए हमारा कल्याण नहीं होता ? इसका कारण हमने जमीन विना साफ किये उस में धर्मरूपी बीज को बोनेकी कोशिश की है।

धर्म की योग्यता

शास्त्रकारोंने धर्म की योग्यता के लिये जिस प्रकार की पद्धति-नियमोपनियम दिखलाये हैं-जो क्रम बतलाया है, उसके अनुसार हम धर्म को प्राप्त नहीं करते।

७-८ वर्ष के बच्चे को, जो धर्म क्या है ? महाव्रत क्या है ? नहीं जानता, उसे दीक्षा दे कर उसको भी धर्म का ठेकेदार बना दिया जाता है।

सोचिये जरा वह धर्म का ठेकेदार कैसे बन सकता है ? ७-८ वर्ष का साधु, जिसे सांसारिक व्यवहार का भी ज्ञान नहीं, वह धर्माधिकारी बनकर हजारों, लाखों मनुष्यों पर धर्मगुरु का दावा करे, यह कैसे हो सकता है ?।

आज हमारे धर्म के ठेकेदार किस प्रकार के हैं ?। हम जिस बात को हाथ में लिये हुए हैं, उसकी तो भूमिका भी साफ नहीं है; जिसका पाया-नींवत्रही मजबूत नहीं है, उसके ऊपर दिवार को खडी कर रक्खा है। वह कैसे ठहरेगी। यही कारण है कि धर्म के नाम से झगडे बखेडे होते हैं।

शास्त्रकारोंने तो मनुष्यजाति के लिये बहुत ही सुन्दर मार्ग बतलाया है। एक एक सीढी चढते जाओ, देखो, फिर तुम्हारे जीवन का कितना सुन्दर विकास होता है।

एक चित्रकार को एक मनुष्य का चित्र बनाना है, सुन्दर से सुन्दर। लेकिन चित्रकार चित्र बनाने से पहले दीवार का साफ कर लेता है। साफ और बिलकूल साफ, कहीं भी धब्बा नहीं रहने देता। दीवार जब तैयार हो जाती है तब वह चित्र बनाने लगता है।

एक मनुष्य को खेत में अनाज बोना है। लेकिन उसके पहले अपने खेत को साफ करेगा, खात डालेगा, हल चलायगा, उस समय अनाज अच्छी तरह उत्पन्न हो सकेगा।

आज, न हमने दीवार साफ की है, न खेत को साफ किया है। धर्म का ठेकेदार पहेले से ही लेकर बिठा दिया जाना है। जन्म से धर्म के -वतार बनकर बैठ जाते हैं। धर्म से क्या लाभ उठाना चाहिये ? दूसरे को क्या लाभ मिल सकता है ? इन बातों का कोइ ख्याल नहीं आता। संसार में मनमानी चलाने का प्रयत्न किया जाता है। परिणाम यह होता हैं कि संसार में सिवाय झगडे के कुछ नहीं होता।

इसलिये महानुभावों, शास्त्रकारोंने हमें धर्म के योग्य बनाने के लिये, धर्मावतार बनाने के लिये विधान किया है। उसमें सब से पहले दीवार को साफ करना चाहिए ? इसके बाद धर्म का आदर कर सकते हैं। उस पर आचरण कर सकते हैं।

श्री हैमचन्द्राचार्यने ' योगशास्त्र 'में कहा है:—

धर्म के योग्य बननेवाले को पहले ३५ गुणोंवाला होना चाहिये। अर्थात् उसके ३५ गुण दिखलाये हैं। मैं चाहता हूँ कि, जैन और जैनेतर यहां आते हैं। जो लोग यह बात नहीं समझते हैं कि–धर्म का आचरण कौन कर सकता है? धर्म के लायक हम कहां तक हैं? उनके लिए पैंतीस गुणों को संक्षेप से समझना भी जरूरी है। आप अपने आत्मा को देख लेना। पैंतीस गुणों में से एक भी गुण यदि आप में न हो और फिर भी आप 'धर्मात्मा' बनकर बैठे हों तो यह कहां तक योग्य है? आप स्वयं विचार कर सकेंगे।

योगशास्त्रकार श्री हेमचंद्राचार्य कहते हैं'–एक गृहस्थ गृहस्थाश्रम में रहते हुए, पैंतीस गुणों का पालन न करे, वह धर्म के लायक नहीं हो सकता। दीवार साफ नहीं, व्यवहार साफ नहीं, रहन सहन साफ नहीं, वातावरण शुद्ध नहीं, अनीतिवान हो इन दुर्गुणों से युक्त हो, वह 'धर्म के' योग्य कैसे माना जा सकता है?

इस लिये मैं भाईओं और बहनों को दिखलाना चाहता हूं कि आप की धर्म की योग्यता, धर्म पर आचरण करने की योग्यता कितनी है? यह इन पैंतीस गुणों से पता चल जायगा। कितने गुण हमारे में है, और कितने धर्म के लायक हम बन सकते हैं? यह मालूम हो जायगा।

पैंतीसगुण—

पैंतीसगुण इस प्रकार हैं:—

न्यायसम्पन्नविभवः, शिष्टाचारप्रशंसकः।
कुलशीलसमैः सार्द्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥ १ ॥

पापभीरुः, प्रसिद्धं च देशाचारं समाचरन्।
अवर्णवादी न क्वापि, राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥

अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिकः।
अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥ ३ ॥

कृतसङ्गः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः।
त्यजन्नुपप्लुतं स्थानमप्रवृत्तिश्च गर्हिते ॥ ४ ॥

व्ययमायोचितं कुर्वन्, वेषं वित्तानुसारतः।
अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहम् ॥ ५ ॥

अजीर्णे भोजनत्यागी, काले भोक्ता च सात्म्यतः ।
अन्योन्याप्रतिबन्धेन त्रिवर्गमपि सांधयेत् ॥ ६ ॥

यथावदथितौ साधौ दाने च प्रतिपत्तिकृत् ।
सदानभितिविष्टश्च, पक्षपाती गुणेषु च ॥ ७ ॥

अदेशकालयोश्चर्या त्यजन् , जानन् बलाबलम् ।
वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः, पोष्यपोषकः ॥ ८ ।

दीर्घदर्शी, विशेषज्ञः, कृतज्ञो, लोकवल्लभः ।
सलज्जः, सदयः, सौम्यः, परोपकृतिकर्मठः ॥ ९ ॥

अन्तरङ्गारिषड्वर्गपरिहारपरायणः ।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते ॥ १० ॥

१. प्रथमगुणः न्यायसम्पन्नविभवः

सब से प्रथम गुण है न्यायसम्पन्नविभवः । गृहस्थ का द्रव्य न्यायपूर्वक उपार्जन किया हुआ होना चाहिए ।

सब लोग अपने अपने आत्मा को पूछ लें कि यह पहला ही गुण हमारे में है? यह योग्यता की पहिली ही कसौटी है। बाकी ३४ गुण तो बाद में रहे ।

जिसके पास न्याय-नीति का प्रामाणिक पैसा है, वहीं पुरुष गृहस्थ धर्म के लायक बन सकता है। योगशास्त्रकार यह बात कह रहे हैं। मैं नहीं कहता हूँ। हैमचन्द्राचार्य भी मनगढन्त नहीं, किन्तु शास्त्रानुकूल बात कह रहे हैं ।

मैंने नीति के सम्बन्ध में नीति के द्रव्य से क्या फायदा और अनीति के द्रव्य से क्या नुकसान होता है? हम धर्म के योग्य कैसे बनते हैं, ये सारी बातें अपने पीछले व्याख्यानों में काफी विस्तार से कह दी है । पुनरुक्ति करने की जरूरत नहीं है। आप उन्हें सुन चूके हैं। जबतक हमारा अन्न पवित्र नहीं, हृदय साफ नहीं, पेट में शुद्ध अनाज नहीं जाता, मनोवृत्तियाँ शुद्ध नहीं, पवित्र नहीं, कषायों की मन्दता नहीं, आचरण शुद्ध नहीं, हमारी भूमिका अपवित्र है, साफ नहीं हुई, हम धर्म के योग्य-गृहस्थ धर्म के योग्य भी नहीं बन सकते ।

इसलिये शास्त्रकारोंने कहा है कि-पैसे की शुद्धता पहला 'धर्म' है । पेट की शुद्धता

के लिये अनाज की पवित्रता आवश्यक है। और अनाज की शुद्धता के लिये पैसे की शुद्धता की जरुरत है। इसके लिये बहुत उदाहरण दिये हैं। विशेष समझाने की अब जरुरत नहीं। हमारे देशमें कैसी नीति थी–प्राचीन इतिहास पढनेवाले खूब जानते हैं—

चीनी यात्री हुएनच्यागने हिन्दुस्थान में भ्रमण कर अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है: " दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं जो नीति–प्रमाणिकता में हिन्दुस्तान की बराबरी कर सके।"

उसने हिंदुस्तान में किसी घर में ताला लगाया हुआ नहीं देखा। किसी घर में जजीर लगाई हुई नहीं देखी। घर के दरवाजे खुले पडे हैं। एक का दूसरे पर विश्वास है। भाई भाई में विश्वास था। कोई यह नहीं सोचता था कि घर में तिजोरी तोड दी जायगी, तब क्या होगा? ऐसा डर नहीं था।

आज हमारी तो दशा ऐसी हो गयी है कि, अपने सगे भाई का–सगा भाई तो दूर–पति पत्नी तक भी एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। पति भी अगर कहीं बाहर जायगा, तो अपनी सन्दूक–तिजोरी वगैरह की चाबियां अपने साथ लेकर जायगा। डर रहता है कि घर में पत्नी ताला खोलकर कुछ उठा न ले। ऐसा ही पत्नी भी करती है। ५०–५० चाबियो की लडी लगाये घूमती है।

पाटन के सेठ

एक किस्सा मेरे पढने में आया था। ८०० वर्ष की महाराजा कुमारपाल के समय की यह बात है। गुजरात पाटन की यह बात है। एक गृहस्थ दूसरे गृहस्थ के यहां जाकर कहता है. " भाई तुम्हारे पिताजीने मेरे यहा एक लाख लाख रुपये जमा रखे थे, तुम्हारे पिताजी मर गये और मेरे पिता भी। मेरे यहां की बहियों के देखने से यह बात मुझे मालूम हुई है। आप अपने रुपये सब ब्याज के ले जाईये।"

उसने जवाब दिया: "ठीक है, मैं अपनी बहियों को भी देखलूं। अगर मेरे पिताजी ने तुम्हारे पिता के नाम पर उधार रक्खा है, तो मैं जरूर ले जाऊगा।" अपनी बहियों देखीं, एक एक पन्ना देखा, एक एक खाता देखा, परन्तु पता नहीं चला।

वह जाकर कहता है।–"भाइ, मैंने अपनी सब बहि देखली, परन्तु कहीं पता नहीं लगता। कब रक्खा, और कितना रक्खा? इसलिये मैं नहीं ले सकता।"

"लेकिन मेरी बहियों में तो तुम्हारे पिता के नाम जमा है, इसलिये तुम्हें ले लेना चाहिये। मैं दिये बिना नहीं रहूंगा।"

वह जवाब देता है–" मैं नहीं ले सकता "

" मैं दिये बिना नहीं रहूंगा। "

" कुछ भी हो, मैं नहीं लूंगा। "

भाईयों! क्या सवाल जवाब हो रहा है?। एक देने पर तुला हुआ है, दूसरा लेने को साफ इन्कार कर रहा है। अगर आप को कोई आकर कहे कि आप के कुछ पैसे मेरे यहां है तो आप क्या करें? उसको यह कहते कि-मेरी वही देखने दो?

आप तो अगर अपनी बहियों में न लिखा हो तो और लिख दें। जरूरत पडे तो एक नया पन्ना ही उसमें जोड दें। और अगर वह लाख रुपये कहता है, तो आप दो लाख ही निकालें। जब देने को ही बैठा है, तो लेने में कमी क्यों करनी चाहिये?

परन्तु वह तो कहता है: " मैं दिये बिना रहूं नहीं। " और दूसरा जवाव देता है:–'मरुं तब भी लूं नहीं।" आखिरकार यह मामला कुमारपाल राजा के सामने फैसले के लिये पेश किया जाता है। इस मामले में राजा की भी बुद्धि नहीं काम करती है कि मैं क्या फैसला दूं?। आखिरकार इसके फैंसले के लिये दो पंचों को मुकरर किया जाता है। पंचोने बहुत सोच-विचार के बाद यह फैंसला दिया कि "यह देनेपर तुला हुआ है, और वह लेने को तैयार नहीं। इसलिये शहर में एक अच्छे तालाव की जरूरत है, उस में यह पैसा खर्च करदिया जाय।"

यह दशा थी हमारे देश के महाजनों की? आज के महाजनों की क्या दशा है? यह जन–जिन्द जिसको लगा, उसका सर्वनाश समझिये, छोडे नहीं, व्याज का व्याज, चक्रवृद्धि व्याज, मूलसे कई गुना व्याज एक 'जिंदगी' में तो प्रायः पूरा भी न हो, ऐसे भी किस्से सुनने में आते हैं। जबकि–पहले के समय में वह थी हमारे महाजनों की प्रामाणिकता!

अभी थोडे दिन हुए मेरे सांसारिक अवस्था के रिश्तेदारोंमें से एक आदमी आया मेरे पास, बोला:—" महाराज, मुझसे एक पाप हो गया है, प्रायश्चित्त दीजिये। "

मैंने कहा:—" महानुभाव, तुमसे क्या पाप हो गया है? " मैं उसे खूब जानता था। जब मैं छोटा था, हम दोनों साथी थे। हम साथ साथ खाते, खेलते

और पढते थे। अब मैं साधु हो गया। कहने लगाः—"मेरेसे बहुत पाप हो गया है, प्रायश्चित्त दीजिये।

" ऐसा क्या पाप हुआ है ? "

" एक मेरा परिचित था। उस पर मुकदमा चल रहा था। एक खिडकी का मामला था कि यह कितनी पुरानी है। उसमें मेरी भी गवाही थी। मैंने झूठ बोल दिया। पूछा गया किः 'यह कितनी पुरानी है ?' मैंने जवाब दियाः 'यह बहुत वर्षों की बनी है'। ऐसा कहना मेरे लिये पाप है। इसका मुझे प्रायश्चित्त दीजिये। "

मैंने कहा —" अच्छा, अब सच बताओ,। वास्तव में यह कितने वर्षोंकी बनी थी ? "

" १५ वर्षों की तो जरूर बनी हुई थी महाराज।" मैंने कहाः "महानुभाव, १५ वर्ष से बनी हुई चीज को 'पुरानी' कहने में पाप समझ कर प्रायश्चित्त लेने आये और अभी कुछ दिन पहले एक आदमी पर झूठा मुकदमा करने के लिये सारी की सारी 'वही' बदल डाली थी, उसमें कुछ पाप तुमको नहीं जचा ?" विचारा शरमींदा होगया। कितने अफसोस और दुःख की बात है ? भाईयों, आज हमारे में नीति नहीं रही। इसीसे तो हम महान् दुःखी हो गये हैं। आराम और शान्ति हमसे विलीन हो गयी है, गृहस्थ लोग साधुओं के आगे किसी प्रकार से झूठ बोल कर प्रपञ्च-छलकपट से अपने आत्मा को शुद्ध दिखलाने की कैसी कोशिश करते है ? इसका यह एक नमूना है। यह अप्रमाणिकता क्यों ? इसी लिये कि यह पेट अन्याय से उपार्जित अन्न से भरा गया है। उसी अनाज का परिणाम है कि जिस के एक एक दाने दाने में, एक दाने के अणु अणु में पाप कूट कर भरा है। और हमारी बुद्धि पापमय अशुद्ध बनी हुई है।

सज्जनों! यह पाप हम लोभ में आकर करते हैं। जब तक यह लोभ नहीं मिटेगा, धर्म के योग्य हम कभी नहीं बन सकते। कहा जाता है कि-धर्म की माता 'दया' है। " धम्मस्स जणणी दया "

दया नहीं, तो धर्म की उत्पत्ति नहीं। धर्म की माता 'दया' और पिता विनय' है। अगर 'दया' और 'विनय' ये दोनों चीजें नहीं, तो धर्म हमारे यहां नहीं।

१७

पापका बाप

इस तरह से, अगर मुझ से पूछा जाय कि "धर्मका बाप विनय, तो पाप का बाप कौन ?" तो मैं कह दूंगा कि 'लोभ'। एक मात्र लोभ।

प्यारे भाइओं! समझ लीजिये कि कोई भी आदमी किसी प्रकार का पाप करे; जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, राजा, रंक, गरीब, अमीर, छोटा बड़ा, स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवक, कोई भी हो। कोई भी पाप करे, किसी भी विषय का पाप करे, अनीति, चोरी, झूठ, व्यभिचार, अत्याचार, खून आदि कोई भी पाप करे, परन्तु समझ लेना कि-उसने मात्र लोभ के कारण किया है। और कोई कारण नहीं। क्योंकि लोभ पैसे का ही नहीं, विषय का भी लोभ होता है, और इसी लोभ के कारण मनुष्य अपने धर्म को छोडने का 'पाप' भी करता है। एक उदाहरण है, जरा लंबा होगा, परन्तु महत्त्व का और आनंद का है।

"१४ वर्ष काशी में पढकर एक ब्राह्मण घर आया। रात को पत्नी के साथ बैठा, सुख-दुख के समाचार पूछ रहे हैं। यह सब पूछते पूछते पत्नीने पूछा-'१४ वर्ष तक आपने काशी में क्या क्या पढ़ा ?"

"बहुत पढ़ा।" "बहुत क्या ?"

"वेद, वेदान्त, न्याय, व्याकरण, चम्पू, नाटक, ज्योतिष वगैरह वगैरह। बहुत बातें आगयां।"

"मेरे एक प्रश्न का उत्तर देंगे ?"

"तेरे क्या ? तेरे और तेरे बाप के भी प्रश्न का उत्तर देदूंगा। बोल, क्या कहना है ?"

पत्नी धीरे से कहती है:-"पंडितजी, पाप के बाप का नाम क्या ?"

पंडितजी मन में सोचने लगे: "यह कहीं आया नहीं। पंडितजी विचार में पड गये। रामचन्द्रजी, हनुमान, अर्जुन, इन के बापका नाम आया। सब के बाप का नाम आया, किन्तु मेरे शास्त्रों में, इतिहास पुराणों में कहीं भी 'पाप के बाप' का नाम नहीं देखा। दुःख इस बात का हो रहा है पंडितजी को कि अगर पत्नी के इस प्रश्न का जबाब नहीं दिया, तो यह प्रातःकाल उठकर सारे महल्ले में कहती फिरेगी कि-पंडितजी चौदह साल काशी में पढ़कर आये, लेकिन मेरे एक प्रश्न का जबाब भी नहीं दे सके।

काशी नरेश की सभा जीती। दरभंगा नरेश की सभा जीती। बडी बडी सभाओं में फत्तह की। वादविवाद में कहीं पीछे नहीं रहा। लेकिन इस पत्नी के प्रश्न का जवाब नहीं दिया तो, बडी बदनामी होगी। सर्व पर पानी फिर जायगा। स्त्री के प्रश्न का उत्तर नहीं देना, मरने के बराबर है।"

सारी रात नींद नहीं आयी। प्रातःकाल उठे, कपडा लता लिया और चलदिये।

पत्नीने पूछा—" पतिदेव, किधर जाते हैं आप ?"

" काशी जाता हु। तेरे प्रश्न का समाधान करके ही आऊंगा।"

" गजब हो गया," पत्नी विचार करती है: " १४ वर्षोंतक विरह मे रही। अब 'पाप का बाप'का नाम पढने में न मालूम और कितने वर्ष लग जायेंगे। १४ साल और लग गये तो २८ साल हो जायेंगे। बोली' नाथ, मुझे प्रश्न का-उत्तर नहीं लेना है, घर बेठो, भाड में जाय पाप के बाप का नाम।"

" ऐसा नहीं हो सकता।"

चल दिये पंडितजी। उधर से एक अर्थी जा रही थी। 'राम नाम सत्य है' कुछ लोग बोल रहे थे। पडितजी मुर्दे को देख कर एक गली में घुस गये। दो ओरतें वहां खडी थीं। एक सुन्दर थी, एक मामूली थी। मुर्दा चला गया। एक स्त्री जो छोटी थी, बडी उम्रवाली से पूछती है:-"बाईजी, यह नगरसेठ मरकर कहां गये ?"

" ये तो देवलोक मे गये।"

पडितजी मन में सोचते हैं-" काशी मे चौदह साल तक पढा। सब शास्त्र पढ डाले, लेकिन मैं नहीं बता सकता कि-यह आदमी मर कर कहा गया ?। यह स्त्री ज्ञानी मालूम होती हैं। मुमकिन है मेरे से ज्यादा पढी हुई हो। तो बजाये काशीजाने के इसी से पहले पढना अच्छा है।"

पडितजी घुसे उस स्त्री के घर में। गये तो मालूम हुआ-" यह तो वेश्या का घर है।"

कहता है:-" बाईजी, यहां पर मुकाम करना है।"

" बाबा बैठा जपे और जो आवे सो खपे। यहां तो कोई भी हा, जो आवे सो खपता है।"

पंडितजी को कोठरी दे दी। यह वेश्या का घर था। उसके घर का तो पंडितजी खाते नहीं। उन्हें अलग सीधा सामान दे दिया। लकडी आदि देकर भोजन करने का स्थान बता दिया। चकाचक लड्डू पूडी बनायी। और अब पंडितजी भोजन करने बैंठे है। वेश्या सामने बैठी है।

उसने पूछाः—" पंडितजी कहांसे पधारे? कैसे पधारे? क्यों पधारे? कहिये मैं आप की क्या सेवा करुं?" पंडितजीने सब किस्सा साफ साफ कह दिया।

वैश्याने सब सुना, सोचाः—" पंडितजी, बिचारे पढे हैं, लेकिन गुणे नहीं। व्यवहार में निरे मूर्खानंद हैं। इस लिये इनको जरा रास्ते पर लाना चाहिये। नसीहत देनी चाहिये। बेचारी उनकी पत्नी कितनी दुःखी होगी? अगर किसी का भला मुझसे होता हो, तो जरुर करना चाहिये, नहीं तो चौदह वर्ष और भी खोएंगे। इनको कुछ शिखामण जरुर देना चाहिये।"

वेश्याने कहाः" पंडितजी, एक काम करो।"

" कहीये।"

" आज जैसे आपने मेरा घर पवित्र किया है, मेरा अनाज पवित्र किया है, वैसे ही मेरा शरीर भी पवित्र न करें?"

" कभी नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता। मैं एक पत्नीव्रत को अखंड पालन करनेवाला, प्रातः सायं सन्ध्यावन्दन करनेवाला, काशी में चौदह वर्ष पढ़ा हुआ ब्राह्मण हूं, मैंने वेद-वेदान्त का अध्ययन किया है। मैं तुम्हारे साथ कभी नहीं बैठ सकता।"

" पंडितजी, मैं तो सिर्फ यह चाहती हूं कि-जो लड्डू आपने बनाये हैं, उनमें का एक ग्रास मेरे हाथ का खा लीजिये।"

" तु रंडी, वेश्या, तेरे बाप का पता नहीं, मां का पता नहीं। जात-पांत का पता नहीं। लेना नहीं, देना नहीं, तेरे हाथ से लड्डू खाऊं? मेरा धर्म भ्रष्ट करुं? हट दूर, उठ।"

" अच्छी बात है।"

वेश्या चुपचाप बैठ गयी। अपनी एक नौकरानी को बुलाया। उससे एक कटोरा

गिनियॉ भरकर लाने को कहा। वह गिन्नियों का कटोरा पंडितजी के चौके से बाहर रखदिया।

पडितजी के मुंह में गिन्नियाँ देखकर लार आगयी। विचार किया: 'अगर वेश्या के हाथ से न खाऊ, तो यह दक्षिणा भी नहीं देगी। क्या है खालू तो?। यह दक्षिणा तो मिल जायगी। इतना तो मैं उम्र भर लग्न-शादियो कराऊगा–दान दक्षिणा लूगा, तो भी नहीं कमाउगा। भाडमें जाय यह धरम-करम। हमें धर्म की जरूरत नहीं, पैसे की जरूरत है। अगर वेश्या के हाथका खा लिया तो क्या हुआ?"

बोले–"बाई! हां, तुमने पहले क्या कहा था, कहो तो अब जरा?"

बाई कहती है–"अगर आप मेरे हाथसे लड्डूका एक ग्रास लें तो, मैं ये सब गिन्नियॉ आप को दक्षिणा में दे दू।"

"तेरे हाथ से खाने का धर्म तो नहीं, लेकिन क्या करें, तू इतनी दक्षिणा देती है, विनय भक्ति बताती है, तो तेरे हाथ से खाने को तैयार हू। लेकिन दो शर्तों से"

"शर्तें बता दीजिये।"

"एक तो बात यह कि तुं यह बात किसीसे कहना नहीं। और दूसरी बात-मेरे मुह को छूना नहीं। मैं मुह फाड़ू तो तू ऊपर से डाल देना। मजूर है?"

"हां, मंजूर है।"

मनुष्य पाप करता है, लेकिन पाप को छिपाने की कोशिश करता है।

वैश्या उठी। चोके में गयी। लड्डू के टूकडे किये। मुह में डालने के लिये हाथ ऊपर करती है, पर जरा रुकती है, और पडितजी का हाथ पकडकर कहती है:—
"पडितजी, आप क्या पढने के लिये काशी जा रहे थे?"

"पाप के बाप का नाम।"

"आप की समझ में नहीं आया? बस, यही पाप के बाप का नाम है। अब तो आप समझ गये कि नहीं? अभी दो मिनिट पहले तो आप मेरे हाथ से लेने में पतित हो रहे थे। धर्मभ्रष्ट हो रहे थे, परन्तु महाराज, इन गिन्नियो की चमकने, इस लोभ लालचने आप को धर्म से भ्रष्ट किया है। पाप करने के लिये प्रेरित किया है।
"पाप का बाप है लोभ।"

आज हमारे साधु और गृहस्थ, अच्छे अच्छे खानीदानी मनुष्य भी अगर अधर्म के मार्ग पर, पाप के मार्गपर जाते हुए नजर आते हैं, तो इस में एक मात्र लोभवृत्ति ही कारण है।

जीवन विकास के लिये धर्म की आवश्यकता है। और धर्मप्राप्ति के लिये हमें अपने व्यवहार को—अपने आचारविचार को—अपनी मनोवृत्तियों को साफ करलेना चाहिये। धर्म का बीज तभी वृक्ष के रूप में फल फूल सकता है। जीवनविकास में, आत्मा के कल्याण में साधनभूत हो सकता है। ऐसे हमारे शुद्ध सात्विक सदाचारी जीवन के लिये हम में ३५ गुण होनें चाहिये। इनमें पहला गुण सुनाया है—नीति का द्रव्य होना।

प्यारे भाईओं और बहनों,

धर्म के योग्य बनने के लिये ३५ गुणों में से प्रथम गुण का वर्णन मैंने करदिया है। आज दूसरा गुण बतलाता हू।

दूसरा गुण शिष्टाचारप्रशसक

मनुष्य शिष्ट पुरुषों के आचार का प्रशसक हो। हम में जबतक 'गुणानुरागता' का गुण न होगा, तबतक हम सच्चे मनुष्य भी नहीं बन सकते। शिष्ट-सज्जन-गुणी कुछ भी कहिए। वह शिष्ट पुरुष चाहे किसी देश का; किसी जाति का और किसी भी धर्म का क्यों न हो। उसके शुद्ध-पवित्र आचारों की प्रशंसा करना हमारा धर्म ही है। उनके सद्गुणों का हमें अनुकरण करना ही चाहिए। हम एसा नहीं करेंगे, तो हम कभी 'गुणी' नहीं बन सकते, हम धर्म को साधने के लिये साधक नहीं बन सकते।

शिष्ट कौन ?

"शिष्टाचारप्रशसकः" धर्म को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शिष्ट पुरुषों के आचरण की प्रशसा करनी चाहिये, लेकिन "शिष्ट" कौन होता है ? व्रती, ज्ञानी और अनुभवी-इन तीन गुणों को धारण करनेवाला शिष्ट है।

व्रती है, व्रतादि करता है, परन्तु वह ज्ञानी नहीं है-मूर्ख है तो भी ठीक नहीं। मात्र पूर्व परम्परा से चला आता है, इसलिये करना चाहिये और करता है, परन्तु ज्ञान पूर्वक नहीं। ऐसी अज्ञानतापूर्वक व्रत करनेवाला व्रती, व्रती नहीं हो सकता है।

व्रत के साथ तद्विषयक ज्ञान भी होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि कहा है:- ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः'। ज्ञान और क्रिया से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। केवल ज्ञान या केवल क्रिया, कभी भी मोक्ष की प्राप्ति में समर्थ नहीं हो सकते। परन्तु इसके साथ ही हमें एक बात की और भी आवश्यकता जान पड़ती है। और वह है-अनुभव।

सच्चा शिष्ट मनुष्य दूसरों के लिये तभी अनुकरणीय हो सकता है, यदि वह शिष्टता के साथ अनुभवी भी हो। हमारे पूर्व ऋषियोंने, ज्ञानियों की अपेक्षा अनुभावियों को उच्च स्थान दिया है। एक ज्ञानी शास्त्र की बातों को लेकर अनेक तर्कवितर्क करता है। और वहीं जाकर अटकता है कि शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है। परन्तु शास्त्रकार तो यहां तक कहते हैं कि—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिश्चयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥

केवल शास्त्र की बातों को लेकर किसी बात का निर्णय देना मूर्खता है। परन्तु आजकल तो चारों तरफ यही बात देखी जा रही है। यदि कोई तर्क-वितर्क करता है, दलीले पेश करता है, तो एक मात्र यही उत्तर मिलता है कि-" भाई, हम कुछ नहीं जानते। शास्त्र में ऐसा लिखा है। " माना कि ऐसा कहा है, लेकिन शास्त्रों में ऐसा कहते हुए भी शास्त्रकारोंने तो और भी अनेकों बातें कही हैं। शास्त्र तो एक महान् सागर है, उस शास्त्ररूपी सागर में से एक तरफ का भी पानी लिया जाता है, और दूसरी तरफ का भी। इसी तरह शास्त्रों में नाना प्रकार की बातें हैं। एक बात को लेकर हम किसी को कहें कि-'यह ऐसा ही हैं,' ऐसा मानना कई बार भ्रान्तिकारक हो जाता है। यदि उसमें तर्कवितर्क न किया जाय, और अनुभव से काम न किया जाय, तो ग्रन्थकार कहते है कि उस से धर्म की हानि होती है।

आजकल संसार में होनेवाले साम्प्रदायिक झगडों का एक मात्र कारण मैं तो यही समझता हूं कि-मनुष्य अपने अनुभव को काम में नहीं लाते हैं। एक कहता है मेरे शास्त्रों में ऐसा कहा है। दूसरा उनको झूठा बतलाता है। ऐसी दशा में किसको मानना चाहिये? शास्त्रकार कहते हैं—

श्रुति, युक्ति और अनुभूतिः इन तीन बातों से जो बात प्रकट हो वेही बात वास्तव में सत्य है। शास्त्रकार कहते हैं-' शास्त्रों का देखना परमावश्यक है, क्योंकि हमारा ज्ञान इतना नहीं है कि हम प्रत्येक बात के लिये पर्याप्त कह सकें। अतः शास्त्रों का देखना अत्यन्त आवश्यक है।' परन्तु उसका यह मतलब नहीं है कि अपने तर्क-वितर्क अनुभव आदि का उपयोग ही न करें। हमें श्रुति और युक्ति दोनों लगानी पड़ेगी। और साथ साथ अनुभूति भी होनी चाहिये। किसी को अनुभव हुआ हो या नहीं, अनुमान से भी मनुष्य अनुभवी हो सकता है।

उपर्युक्त तीन बातों से जो बात निश्चित होती है, वही बात यथार्थ मानी जाती है। इसीलिये 'शिष्ट' पुरुष वही कहा गया है जो उपर्युक्त तीन गुणों से युक्त हो। ऐसे शिष्ट पुरुषों का आचार, उसीका नाम है 'शिष्टाचार'

सदाचार किसे कहते हैं?

अब सदाचार की व्याख्या शास्त्रकारोंने यो की है:—

लोकापवादभीरुत्व दीनाभ्युद्धरणादयः ।
कृतज्ञता सुदाक्षिण्य सदाचार प्रकीर्तितः ॥

सबसे बड़ी बात इन शिष्ट पुरुषों के आचरण से हमें सीखने की है : अपवादो और बुराइयों से डरना। अगर हम लोग अपवादों से डरनेवाले हैं, तो हमारे जीवन मे शुभ आचरण प्रकट हो सकते हैं। हमारे बुरे आचरण दबे हुए रह सकते हैं। हमारे जीवन मे कोई न कोई सदाचारी बडे मनुष्य का अङ्कुश रहना चाहिये। वही बालक अपने जीवन को सुधार सकता है, सच्चा नागरिक सदाचारी बन सकता है जिस पर बडो का अङ्कुश हो। वह कोई भी बुराई करते हुए डरेगा कि अगर मेरे पिताजी, गुरु बडे देख लेंगे तो?

खूब याद रखिये। एक बच्चा बीडी पीता है लेकिन यदि बडों की मर्यादा है, आंख में शर्म है, पी रहा है और मां सामने आजाय तो झट से हाथ पीछे करलेता है, डरता है, बीडी को बुझा देता है तो, हमारे गुरुजी कहा करते थे कि, अभी उसमें अङ्कुर जरुर है। वह जरुर सुधर सकता है।

परन्तु माता–पिता की, गुरुओं की, बडों की मर्यादा–शरम को छोडकर अमर्यादित होकर, यदि क्रिया करता रहता है तो ब्रह्मा भी आकर कोशिश करे, तो भी वह सुधरना मुश्किल है।

यही लोकापवाद है। मेरे पिताजी क्या कहेंगे? माताजी, गुरुजी, भाई, बडे आदमी क्या कहेंगे?। यह डर रखने वाला लोकापवाद से डरनेवाला है। दूसरी बात-दुसरा गुण होना चाहिये दीनाभ्युद्धरणादय ।

दीन–दुःखियों पर मनुष्य दया करे। इनके दुःखो को दूर करने के लिये यथाशक्ति कुछ न कुछ प्रयत्न करे।

सज्जनो ! मुझे माफ करें, अगर मैं यह कहूं कि दीन और दुःखियों का उद्धार करने के लिये हमारे भाइओंकी मनोवृत्ति कहां तक जातीहै ?। एक गदहा या कुत्ता बिमार पड़ा है । घावसे कराह रहा है और कव्वा आकर ऊपरसे चोंच मार रहा है, तकलीफ दे रहा है । हमारे सामायिक करनेवाले भाई, दया दान का दावा करने वाले भाई उसके पास से निकलते हैं । और देखकर कहते हैं: "अर् र्-र् " सिर्फ इतना कह देते हैं- "अरे ! इसको बड़ा दुःख हो रहा है। बड़ी तकलीफ हो रही है ।" बस, कह दिया और चलते बने । बस, हमारी दया यहांतक है । दो चार रोज बाद तो यह 'अर् र् र्' भी जाता रहेगा । देख लेंगे और निकल जायेंगे। खूब याद रखिये, ऐसी हालत में धर्म का निवास हमारे दिलों में कभी नहीं होगा । मनुष्य को चाहिये कि अपनी शक्ति का उपयोग ऐसे दीन-दुःखियों के दुःख दूर करने में जरूर करे । अगर कुछ नहीं हो सकता है, तो अपना कपड़ा चीर कर उसके जख्म पर धर दे । एक उदाहरण देता हूं ।

महम्मद साहब की रहेम

कहा जाता है कि महम्मद साहब एक वक्त एक किश्ती में बैठ कर नदी पार कर रहे थे । देखते हैं कि-रेत में एक बिच्छू तडप रहा है । मुहम्मद साहब का कलेजा उसको तडपते देख द्रवित हो जाता है । उसे उन्होंने पकडकर छाया में रख दिया । बिच्छूने उनके हाथ में काटा । बिच्छू फिर धूप में चला गया और छटपटाने लगा । महम्मद साहबने उसे फिर उठाया और छायामें रक्खा । दूसरी बार और काटा, तीसरी बार फिर उसे छायामें रक्खा, और फिर भी उसने काटा । तीन तीन दफे बिच्छू काटने का काम करता है, परन्तु महम्मद साहब उसे बचाने की कोशिष करते ही जा रहे हैं । उनके साथ एक आदमी था । बोलता है: "यह तो एक हेवान है, काटता रहता है, परन्तु फिर भी आप उस हेवानको बचाते जा रहे हैं। ऐसे कष्टदायी हेवान को तो मार डालना चाहिये।"

महम्मद साहब क्या कहते हैं ? अय मेरे हिन्दु भाइओं ! सुनना जरा ध्यानसे । महम्मद साहब मुसलमान हैं, परन्तु क्या जवाब देते है ? "बिच्छू हेवान होकर भी जब अपने धर्म को नहीं छोडता है, तो मैं मनुष्य होकर अपने धर्म को कैसे छोड सकता हूं ?" महानुभावो, आज तो हमारे यहां इतना हो गया है कि, कोई लूला, लंगडा, भूखा-प्यासा भिखारी घर पर आता है तो कहा जाता है:—"चल, चल, दूर हो, यह तो बनिये का घर है-जैन का घर है— श्रावकका घर है।" बनिये-निर्दयी ? दया-दानके निषेधक ! कितने शर्म और अफसोस की बात है ? हमने धर्म तो

समझा ही नहीं। अगर समझे होते तो दया-दान का निषेध किसीके लिये नहीं होता। गृहस्थ का, घर अभङ्गद्वार माना गया है। खुला द्वार है। अनुकम्पा की दृष्टि से दान-धर्म का होना लाजिमी है।

तीसरा गुण है—"कृतज्ञता"

किये हुए उपकार को मरे वहा तक न भूले। परन्तु आजकल? आजकल तो आप किसी मनुष्य को पढा लिखा दीजिये। अपने बराबर बना दीजिये, फिर देखिये। आप के साथ क्या करता है वह?

संसार के मनुष्य कहते हैं। "कलियुग आ गया है।" कलियुग में तो इतना सुन्दर मौका है हमारे लिये कि हम चाहें तो अपना आत्म-कल्याण कर सकते हैं। थोडेसे थोडेमें अपनी उन्नति कर सकते हैं। लेकिन कलियुग तो भरा है हमारे पेटमें, कृतज्ञता भी नहीं मानते। समाज स्कोलरशीपें दे देकर, पैसा खर्च करके योग्य बनाता है। B A M A कलेकटर, बेरीष्टर, डाक्टर, मास्टर, ऐडीटर, ऑडीटर, सोली सीटर, आदि 'टर' ही 'टर' बनाता है, उनसे अगर कभी कहा जाय, एक घंटे भर समाज का यह काम कर दीजिये। तो जवाब देंगे।—"पैसे कितने देंगे? अगर उससे पूछा जाय कि क्या लेंगे? तो दूसरेसे, जितना पैसा लेते होंगे उमसे डबल बतावेंगे।

अब कृतज्ञता कहा रही? सोचिये महानुभाव।

चौथा गुण—"सुदाक्षिण्यम्" यानि शरम।

कोई काम करने की हमारी शक्ति है, किन्तु उसे करने की हमारी इच्छा नहीं। लेकिन एक धर्मात्मा, सदाचारी, समझदार मनुष्य, जिसका कोई स्वार्थ नहीं है, निःस्वार्थ वृत्तिसे उसे करने को कहता है, सलाह देता है, किसी तरह उस काम में मदद करने की प्रेरणा करता है, तो उसे उस आदमी का मान रखने के खातिर, उसकी शरम से जरूर वह काम करना चाहिये। इसे कहते हैं। 'सुदाक्षिण्यम्'। बस इन चार गुणों का नाम है "सदाचार"। ऐसे शिष्टाचार-सदाचार की प्रशंसा करनेवाले आप अगर होगे तब धर्म का वास आप के हृदय में स्थिर हो सकेगा। और शिष्टाचारी सदाचारी मनुष्य का कितना असर होता है, यह भी देखिये। भाइयों! ऊपर से कितनी ही धर्मक्रियाए करते जाय। आपमें उच्चगुण उत्पन्न नहीं होंगे। सदाचारी नहीं बन सकेंगे। और जब तक हम सदाचारी नहीं होंगे, तब तक दूसरे हमारा अनुकरण कभी नहीं कर सकते।

उपदेशका असर.

एक सेठका लडका बिमार पडा। वह महेज मिठाई खाता था। ज्यादा मिठाई खाने से उसकी तबीयत खराब हो गयी थी। हजारों रुपया डोक्टर को दिया, कोई फायदा नहीं हुआ। माता-पिता हैरान हो गये। लडके की मरने की नौबत आयी। लोगोंने, डोक्टरने, उसके मात-पिताने लडके को खूब समजाया कि मिठाई छोड दे। परन्तु लडकेने किसी का नहीं माना। उधरसे एक साधुजी जा रहे थे। उसके माता-पिताने देखा, साधु को बुलाया और लडके की सब हालत वता कर के कहाः 'महाराज! आशीर्वाद दीजिये, जिससे बच्चा ठीक हो जाय।' साधुने बच्चे को मिठाई की बुराईयों बताकर उसको छोड देने की सलाह दी। साधु की सलाह को मानकर लडकेने कतई मिठाई खाना छोड दिया और बच्चा अच्छा-तन्दुरस्त हो गया।

गौर कीजिये-माता-पिता, डॉक्टर आदि सब लोगोंने मिठाई की बुराईयाँ बताकर उसे छोड़ने की सलाह दी थी, परन्तु किसी का कुछ भी असर नहीं हुआ था, और आज एक साधु के साधारण उपदेश से उसने मिठाई खाना छोडदिया, उसका क्या कारण ? आपने विचार किया ?

एक ही कारण था कि साधु का आचरण भी उसके उपदेश के अनुकूल था। अर्थात् साधुने प्रतिज्ञा की थी कि "मैं जिन्दगीभर मिठाई नहीं खाऊंगा" जिससे उसका प्रभाव उसके ऊपर जल्दी पडा, यही कारण था, उस बच्चेने मिठाई छोड दी।

आप दूसरों के कहने के अधिकारी तभी हो सकेंगे, जब आप खुद सदाचारी होंगे और तभी धर्म के अधिकारी होंगे, और जगत् का उपकार करनेवाले भी होंगे।

नास्तिकता के वचन

आजकल के जमाने में कई लोग ऐसा भी कहते हैं कि "मनुष्य क्यों शुद्ध आचरण रक्खे ? सदाचार में क्यों रहे ? व्यभिचार, हिंसा, झूंठ, चोरी आदि क्यों न करे ?" मैं खास कर उन लोगों से पूछता हूं, जो ईश्वर को नहीं मानते हैं, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, कर्म, पुण्य; पाप आदि किसी को नहीं मानते हैं। मैं कहता हूं-न मानें, परन्तु फिर भी वे यों सदाचारपूर्वक रहना पसन्द करते हैं। सच बोलना, दूसरे की इज्जत करना, दूसरे की स्त्रियों को माता, बहिन और पुत्री समझना। व्यभिचार सेवन न करना, आदि आदि। क्यों इन सब को अच्छा समझते हैं। ? बस, जो चाहे सो कर, अपनी इच्छा के अनुसार चले। इसके जबाब में यदि

कोई यह कहे कि " क्या करें ? कानून के अनुसार चलना पडता है।" तो मैं कहता हू कि-"यह भी गलत है। जो मनुष्य किसी बात को नहीं मानता है, यहांतक कि परमात्मा तक को भी नहीं मानता है, तो उसे कानून क्यों मानना चाहिये ? । सजा मिलती है तो भोग ले। उसके लिये तो जैसे सुख वैसे ही दुःख। जैसा घर वैसी ही जेल। जब आत्मा का अस्तित्व नहीं, तो सुख, दुःखादि का भी अस्तित्व ही नहीं। तो फिर किसी की परवाह क्यों करनी चाहिए ?, परन्तु नहीं, मनुष्य स्वभाव एक ऐसी चीज है कि उसके हृदय में विचारशक्ति है, ऊपर से चाहे कुछ कहे, दिल में समझता है कि अच्छा क्या और बूरा क्या ?

सज्जनो, अगर आप चाहते हैं कि, दुनिया हमारी प्रशसा करे और हमारा जीवन सफल हो, हम मनुष्य जन्म लेकर कुछ कर जावें-सफल होजावें, तो उत्तम महापुरुष, व्रती, ज्ञानी और अनुभवी मनुष्यों के सदाचरण की प्रशसा करना और तदनुकूल आचरण करना सीखें। तभी आप अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं और वास्तविक धर्म की प्राप्ति कर सकते है। अन्यथा नहीं।

सांसारिक मनुष्यों की प्रायः ऐसी प्रकृति देखी जाती है कि, वे जिसमें कुछ प्रभाव, धार्मिकता, आध्यात्मिकता आदि गुणों का विकास देखते है, उसकी प्रशसा किये बिना नहीं रह सकते। फिर चाहे वह अपना दुश्मन ही क्यों न हो।

रज्जब कविने एक स्थान पर कहा है:—'रज्जब सांचे शूरका, वेरी करे वखाण' वही सचा शूरवीर, विद्वान् या ज्ञानी है, जिसकी शत्रु भी तारीफ करता है। यदि दुश्मन के दिलमें भी इतना असर हो, इतना सद्भाव पेदा हो तो समझना चाहिये कि हमने वास्तव में कुछ कमाया है। वास्तव में हमारा जीवन कुछ सार्थक हुआ है।

अब योगशास्त्रकार—

तीसरा गुण कुलशीलसमै सार्द्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः

बताते है। अर्थात् गृहस्थ शादी करे, तो वह जिसके कुल-शील समान हों और गोत्र भिन्न हो, उसके साथ करे, ऐसी विधि बताते हैं।

ससार में रहनेवाले मनुष्यों को शादीया करनी पडती हैं, तब 'गृहस्थ' कहलाते हैं। मनुष्य को विवाह क्यों करना चाहिये ? पति-पत्नी के क्या कर्त्तव्य और जिम्मेदारियां हैं, आदि बातें मैं पहले बतला चूका हू।

यहां यह बात बतलाना आवश्यक है कि-लग्न करने के पूर्व युवक और युवती, एक दूसरे के गुणों को पहचाने। विवाहेच्छुक युवक और युवती में कौन कौन से गुण होने चाहिये, वे शास्त्रकारोंने इस तरह बताये हैं:

वरके गुण

वर में आवश्यक ये गुण होने चाहिये—

कुलं च शीलञ्च, सनाथता च, विद्या, च वित्तञ्च, वपुर्वयश्च।
वरे गुणाः सप्त विलोकनीयाः ततः परं भाग्यवती च कन्या॥

अर्थात्—अच्छे वंशवाला हो, सदाचारी हो, किसी के अंकुश में रहनेवाला हो-स्वच्छन्दी न हो, विद्यावान् हो-मूर्ख न हो, द्रव्यवान हो-अपना तथा अपने कुटम्बीजनों का भली प्रकार पोषण कर सकता हो, शरीर में किसी प्रकार का विशेष रोग न हो, कन्या के योग्य उम्रवाला हो, कन्या से न बहुत बड़ा और न छोटा हो। इन सात गुणोंसे युक्त युवक को प्राप्त करनेवाली कन्या अवश्य भाग्यशालिनी होती है।

कन्या में गुण

इसी प्रकार कन्या में भी निम्नलिखित गुणों का होना परमावश्यक है:—

या सद्धर्मरता, विवेककलिता, शान्ता, सती, सार्जवा।
सोत्साहा, प्रियभाषिणी, सुनिपुणा, सल्लक्षणा, सद्गुणा॥
सद्वृत्ता, गृहनीतिविस्मित मुखी, दानोन्मुखी सन्मति,
सन्तुष्टा, विनयान्विताऽतिसुभगा, श्रीरेव सा स्त्री ननु॥

अर्थात्—कन्या धर्म में रत-अनुरागवाली, विवेक युक्त, शान्तस्वभाववाली, सती, कोमल हृदयवाली, उत्साह युक्त, मधुरभाषिणी, प्रत्येक कार्य में कुशल, सुन्दर लक्षणवाली, अच्छे गुणों से युक्त, सुन्दर आचरणवाली, गृहनीति को अच्छी तरह समझनेवाली, प्रसन्नचित्तवाली, दान देने में रुचि रखनेवाली, सद्बुद्धिवाली, सन्तोषवृत्ति रखनेवाली, विनयशीला और सद्भाग्यवती। इन गुणों से युक्त स्त्री, स्त्री ही नहीं, परन्तु श्री है-लक्ष्मी है।

मर्यादा की आवश्यकता

गृहस्थ धर्म की भी कुछ मर्यादा है-जिम्मेदारियां हैं। पतिपत्नी दोनों को चाहिये कि वे नियम में रहें-कन्ट्रोल में रहें। समाजने जो मर्यादा बांधी है, उसके

अनुसार चलें, कभी भी अपने को उससे विमुख न होने दें। किसी प्रकार के सामाजिक या नैतिक बन्धन का अतिक्रमण करनेवाले पतिपत्नी अवनति के किस गहरे गर्त में गिरेंगे, उसका कुछ पता नहीं चल सकता।

महम्मद साहब के जमाने में महम्मद साहब ने एक नियम बनाया था कि-कोई भी मुसलमान ४ शादियों से ज्यादा शादी न करे।

शायद आप कहेंगे, चार शादियों के करने की इजाजत देनेवाले महम्मद साहब ने क्या गजब किया ?

परन्तु आप ध्यानपूर्वक इतिहास के पृष्ठों को देखेंगे तो आप को मालूम पडेगा कि-महम्मद साहब के जमाने में समाज की कोई मर्यादा नहीं थी। मनुष्यों में खुल्लम खुल्ला लूटमार, विषय, व्यभिचार, अनीति, अत्याचार आदि फैला हुआ था। कोई कितना भी स्त्रियों पर बलात्कार क्यों न करे, कोई कहनेवाला न था। इन अत्याचारों से बचाने के लिये, स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा के लिये महम्मद साहब का यह नियम बनाना कोई अनुचित नहीं कहा जा सकता। आजकल इस नियम को सुनकर बडा आश्चर्य होता है, परन्तु उस वक्त के लिये यही उचित था।

आज हमारे सामाजिक बधारणों में जो कुछ नियम हैं, ब्रह्मचर्य के लिये, खानदान की इज्जत के लिये, संस्कृति-धर्म की रक्षा के लिये, सदाचार की रक्षा के लिये, बहिन बेटियों के सतीत्व की रक्षा के लिये जो नियम बने हुए हैं, उन्हें पालन करना हमारे जीवनविकास के लिये और समाज, देश, धर्म के उद्धार के लिये कारणभूत हो सकता है। लेकिन वह तभी हो सकता है जब, विधान विधान हो। केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये यदि हम कोई विधान करें तो वह कभी भी आगे, नहीं-चल सकता। उस में अनेक प्रकार के विघ्न आवेंगे।

आप स्वयं समर्थ बनें।

माताओं को चाहिये कि जिसके साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है, जिसे अपना जीवनसाथी बनाया है, उसके सिवाय संसार के तमाम पुरुषों को अपना पिता, भाई और पुत्र समझें। और अपने शील की रक्षा करें।

स्त्रियों की जिम्मेदारी महान् है। वे अपूर्व शक्ति की धारक हैं। संसार की कोई भी शक्ति उनकी शक्ति को रोकने में समर्थ नहीं। यदि वे उन्नति करना चाहें

तो संसार की कोई भी शक्ति उनकी उन्नति में बाधक हो, यह मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूं। और उसे पतित होने से बचाने का भी सामर्थ्य किसी में नहीं है। न माता, न पिता, न भाई, न पति, बल्कि यहां तक कि राजाओं के कानून भी उसे भ्रष्ट होने से बचाने के लिये सर्वथा असमर्थ हैं। उनका रक्षण वह स्वयं ही कर सकती हैं। जिस दिन उनके दिलों में यह निश्चय हो जायगा कि, मैं स्त्री हूं, देवी हूं, अबला नहीं, परन्तु सबला हूं, तो वह शक्तिरूपा बन जायगी, इस समय उसे कोई पतित नहीं कह सकेगा.

मुझे स्मरण है, मैं काशी में पढता था, छोटी उम्र थी, । काशी का 'विश्वनाथ' का मन्दिर मशहूर है। विश्वनाथ के मन्दिर में दोपहर को एक पंजाबी स्त्री दर्शन के लिये गयी। हृष्टपुष्ट शरीर था, अकेली थी। दर्शन कर जब वह परिक्रमा देने लगी, एक गुंडा उसके रूपलावण्य पर मुग्ध हो एकान्त का लाभ उठाकर अन्दर घुस गया। उस स्त्री के पास अपने बचाने का कोई साधन न था। गुंडे लोग प्रायः असहाय स्त्रियों पर ही अत्याचार करने का साहस करते हैं। उस स्त्री पर बलात्कार करने को वह गुंडा आगे बढा। यह देख उस वीर रमणी की आंखों में अंगार बरसने लगे। और साक्षात् जगदंबा का रूप धारण कर क्रुद्ध सिंहनी की भांति उसने उसपर आक्रमण किया, उस दुष्ट की सारी शक्ति पर पानी पड गया, वह पत्थर की भांति खडा रह गया और अबला कहलानेवाली उस सबला से अपना हाथ भी न छुडा सका। उसका हाथ पकड कर वह उससे कहती है—मित्रो ! जरा ध्यान दीजिये—

"अभी तक मेरे शरीर पर दो मनुष्यों के हाथ पडे हैं—एक मेरे पति का और दूसरे मेरे पुत्र का !" वह रमणी उससे ललकार कर पूछती है: 'बतला, तू उन दो में से कौन है'। परन्तु उसकी जिह्वाने उसका साथ न दिया और वह कुछ न कह सका।

उस स्त्री ने उसका हाथ छोडकर उसका सिर पकड लिया और दीवाल से पटका दिया। जिस के परिणामस्वरूप वह दवाखाने भेजा गया।

इसलिए बहिनों और माताओं, मेरा तो आप से यही कहना है कि—जब तक आप स्वयं सबला बनने की कोशिश न करोगी, तबतक आजकल के प्रलोभनों से, अत्याचारों से बचना बडा कठिन काम है। अतः सबळा बनने की भरसक कोशिश करो और अपने अबला नाम को तिलाञ्जलि दो, तभी आप अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकती हैं।

अब धर्म के योग्य बनने के लिये एक महत्त्व का गुण श्रीहेमचंद्राचार्य दिखलाते हैं–

चौथा गुणः-पापभीरुः

मनुष्य को हमेशा पाप से डरते रहना चाहिये। पुलिस, राजसत्ता, मां, बाप घर के मनुष्य, समाज आदि से डरें; यह ठीक है परन्तु यदि आप लोग मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहते है, अपने जीवन को विकसित करना चाहते हैं तो हमेशां पाप से डरते रहना चाहिये। पाप से डरनेवाले को और किसी का डर रखने की जरुरत नहीं हे। समाज का डर, राजसत्ता का डर, मांबाप का डर हमेशां रहता है। फिर भी मनुष्य गुप्त पाप क्यो करता हैं ? इसलिये कि मनुष्य समाज से डरता है, परन्तु 'पाप से डरता नहीं है, पापसे डरे तो फिर समाज से डरने की जरुरत नहीं। जो कार्य समाजादि से छुपाया जाता है, वह 'आत्मा' से नहीं छुपाया जाता है। पाप करनेवाले को राजसत्ता का डर, मनुष्य का डर कुछ नहीं कर सकता हे। 'पाप' का डर ही 'पाप' से बचा सकता है।

सच्चा पुरुषार्थी कौन ?

'पाप का डर' ही एक ऐसी सत्ता है जो हम को पाप करने से रोकती है, बशर्ते कि 'मुझे पाप लगता है' इस प्रकार का डर हो। दुनिया के कुछ लोग कहते है कि–हम पाप करने में डरते हैं, इस कारण से हम निर्बल होगये हैं। हमारी शक्तियां नष्ट होगयी हैं'।

मैं दावे के साथ कहता हूं कि सच्चा पुरुषार्थी ही पाप से डरता है, दूसरा नहीं। एक मनुष्य का अपमान करदेना, कौन बडी बात है? इस में कोई पुरुषार्थ नहीं। परन्तु कोई आपको चार गाली दे, आपका अपमान करदे और उसको आप सहन करलें, तब ही आप सच्चे पुरुषार्थी कहे जा सकतेहैं। सहन करने के लिये शक्ति की आवश्यकता

है। दूसरेका अपमान करने में किंवा किसी की जान लेने में किसी प्रकार की शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य का सच्चा पुरुषार्थ अगर किसी बात में है तो, एकमात्र 'पापभीरु' बनने में है-क्षमा रखने में है, सहनशील होने में है। अनुचित कार्यों से बचने में है।

जो मनुष्य हमारी निन्दा करता है, हमारा नुकसान करता है, उसके वैर का बदला वैर से, बुराइयों का बदला बुराइयों से, खून का बदला खून से लेना कोई पुरुषार्थ नहीं। पुरुषार्थ है शक्ति के होते हुए भी उसको क्षमा करना। क्षमा करने में हमें मानसिक प्रबलता उत्पन्न करनी पडती है। क्षमा ही सच्चा पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ वहीं है, जहां सच्चे गुण को धारण करना पडता है। क्षमा ही सच्चा पुरुषार्थ है, क्योंकि क्षमा करने के लिये मनोबल को दृढ बनाने की खास आवश्यकता है। सच बोलना पडता है, पापों से डरना पडता है, अपने वचनों का पालन करना पडता है, आत्मधर्म का पालन करना पडता है। सच्चे धर्म के लिये कुछ त्याग करना पडता है। और सहनशील बनना पडता है। अपनी प्रतिज्ञा पालन करने के लिये अर्जुनने क्या किया ? जरा विचार करिये।

अर्जुन का प्रतिज्ञा पालन

चोर ब्राह्मण की गायों को चुरा ले जाता है। वह अर्जुन के पास जाता है और चिल्लाकर कहता है -'आपके जैसे क्षत्रियपुत्र के रहते हुए भी हम गरीबोंपर अत्याचार हो, हमारे सामने ही हमारी गायों को चोर चुरा लेजाय, आपका उसको कुछ भी डर न हो, बडे दुःख की बात है। आप मेरी मदद करें।" अर्जुन कहता है:-' तुम डरो मत, जाओ, अर्जुन के रहते हुए दुनिया की कोई भी शक्ति तुम पर अत्याचार का साहस नहीं कर सकती। मैं तुम्हारी गायें लाता हू।" फिर अर्जुन विचार करता है: "ब्राह्मण को वचन तो दे दिया, परन्तु मेरे पास शस्त्र नहीं। बिना शस्त्र के यह काम कैसे हो सकता है ?" अर्जुन उस समय जगल में खेल रहा था। सीधा महल में जाता है। परन्तु क्या देखता है ? ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ बैठे हुए हैं। पाण्डवों में ऐसा नियम था कि-'जब एक भाई द्रौपदी के पास बैठा हो उस समय दूसरा भाई अन्दर प्रवेश न करे। नियम भङ्ग करनेवाले को १४ वर्ष का वनवास भोगना पडता था। अर्जुन सोचता है कि-' यदि मैं शस्त्र लेने के लिये अन्दर जाता हू तो १४ वर्ष का वनवास भोगना पडता है, और शस्त्र के अभाव में गायों को वापस नहीं लानेके कारण अपनी

प्रतिज्ञा से च्युत होता हूं।' अर्जुन शीघ्र अन्दर जाता है और शस्त्र लेकर ब्राह्मण की गायों को छुड़ाकर अपने वचन का पालन करता है और लौटकर सीधे अपने भाई के पास जाता है और कहता है कि-" भाई साहब, मैं अपने नियमानुसार १४ वर्ष के लिये बनवास को जारहा हूं। मुझे आशीष दीजिये ।" युधिष्ठिर कारण पूछते हैं। अर्जुन उत्तर देता है: " मैंने नियम का भंग किया है। " युधिष्ठिर उसको समझाते कि-'तुम छोटे हो, आगये तो कोई हर्ज नहीं।" अर्जुन उत्तर देता है-'नियम नियम है। वह छोटे बड़े सब के लिये समान है।' आखिर अर्जुन १४ वर्ष के लिये वन को जाता है और अपने वचन की रक्षा करता है । यह है पुरुषार्थ-पाप का डर-प्रतिज्ञा का पालन ।

सच्चा पुरुषार्थी ही पाप से डरता है।इसलिये मैं कहता हूं कि-पाप से डरते रहो। दुकान पर बैठकर अपने २) रु. के लाभ के लिये दूसरे का नुकसान कभी न करो। अपने मन की प्रबलता को बढ़ावें। अपनी लोभवृत्ति का दमन करें और अपने दिल को अपने थोड़े से लाभ के लिये दूसरे का नुकसान न करने के लिये समझावें । परन्तु यह सब वही कर सकता है, जिसने लोभ को जीता है, प्रलोभनों और आसक्तियों पर विजय पाने में जिसने सच्चा पुरुषार्थ दिखाया है। और वही सच्चा पुरुषार्थी है । ऐसा ही पुरुषार्थी अपने १००) रु. का नुकसान उठाकर भी दूसरे के २) रु. को बचाएगा। अतः आप लोगों का धर्म है, यदि आप सच्चे पुरुषार्थी हैं तो पाप से डरें। पाप भीरु बनें।

पाप से बचने का उपाय

मै अपनी बहनों से भी यही कहता हूं कि पाप से डरो। संसार में रहना है, अतः आपको नाना प्रकार के आरम्भ समारम्भ करने पडते हैं। रसोई करना, सीना, पिरोना आदि गृहस्थी सम्बन्धी तमाम कार्य करते हुए भी पाप से डरते रहें। प्रत्येक कार्य-रसोई करते हुए भी आपको हमेशां यह ख्याल रखना चाहिये कि, मेरी रसोई के निमित्त किसी जीवको दुःख न पहुंचे। इतना उपयोग तो अवश्य रखना चाहिये। प्रत्येक चीज स्वच्छ रक्खो, हरेक चीज सावधानीपूर्वक काम में लाओ। अपना कार्य भी आराम से होता है और दूसरे जीव को व्यर्थ तकलीफ नहीं उठानी पडती है।

दशवैकालिक सूत्र में एक गुरू का शिष्य अपने दिल में विचार करता है: " मैं साधु तो बन गया, परन्तु खाना भी पड़ेगा, चलना भी पडेगा, उठना, बैठना आदि

तमाम क्रिया करनी पडेगी। और जहा 'क्रिया' होगी वहा कर्म जरूर होगा। इन्हीं क्रियाओ से मुक्त होने के लिये तो मैं साधु बना, इतना करने पर भी ये कर्म मेरे पीछे ही लगे हुए है और 'कर्म' तो है। 'पाप' अवश्य है। शिष्य गुरुजी के पास जाता है और उन मे निवेदन करता है कि:-"गुरुमहाराज, आपने मुझे साधु तो बना लिया, परन्तु 'पाप' से तो मै मुक्त नही हुआ। मुझे सभी क्रियाए करनी पडती है। इन सभी क्रियाओं के करते हुए, मुझे कोई तरकीब बतला दीजिये कि मुझे पाप न लगे-मैं पाप से बचा रहु।'

सूत्रकारने इसे इस ढगसे बतलाया है। शिष्य अपने गुरूजी से पूछता है:—

कह चरे ? कह चिट्ठे ? कहमासे ? कह सये ?
कह भुजन्तो, भासन्तो, पाव कम्म न बन्धइ ?

अर्थात्—"मैं कैसे चलू, कैसे बैठू, कैसे उठू ? कैसे बोलू ? कैसे सोऊ ? कैसे खाऊ ? कैसे पीऊ कि जिससे मुझे पाप न लगे।"

आप कभी मुझे आकर यह पूछते हैं कि-'महाराज, हम व्यापार भी करें, धन्धा रुजगार भी करें, मीलें भी चलावें, लेकिन हमे कोई ऐसा उपाय बता दीजिये कि, ये सारे काम करते हुए भी हमें पाप न लगे ?' यदि आपने ऐसा कभी मेरे से पूछा होता तो मैं वही जवाब देता, जो गुरूजीने अपने प्रिय शिष्य को दिया —

जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे, जय सये।
जय भुजन्तो भासन्तो पाव कम्म न बन्धई॥

अर्थात्—जतना मे चलो, जतना मे उठो, जतना मे बैठो, जतना से खाओ, जतना से पीओ। सब क्रियाए यतनापूर्वक करो, तुमको पाप नहीं लगेगा। जतना अर्थात् उपयोग।

सज्जनो! आपके लिये भी मेरा यही उपदेश है कि-गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी प्रत्येक काम उपयोगपूर्वक करें। यात्रा करें, व्यापार करें, कहीं जाय, आवें, गृहस्थी का जो भी कार्य आप करें, तब प्रत्येक कार्य के करते समय 'उपयोग' रक्खें-पाप से डरें। "मेरे शरीर से, वाणी से, मनसे किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का दुःख न पहुचे" बस इसी प्रकार का उपयोग रखते हुए, आप तमाम क्रियाए करते हुए भी, आपको पापकर्म न लगेगा।

शास्त्रकारों ने कितना सुन्दर मार्ग बताया है:-'उपयोगे धर्म, क्रियाए कर्म और परिणामे बंध, जहां जतना है-विचार है, वहीं धर्म है। और जहां क्रिया है वहीं कर्म है। तीर्थंकर भी इन कर्मों से नहीं बच सकते। और परिणामे बंध।

हमारे आत्मा के साथ बन्ध कैसा होता है? जैसे हमारे विचार होते हैं, वैसे ही कर्मों का बन्ध होता है। किसी मित्र के यहां आप चले गये, उसके बच्चे को लेकर खेलाने लगे। खेलाते खेलाते यकायक बच्चा आपके हाथ से गिर गया, और मर गया। पुलिस, लडके के मरते हुए भी आप पर खूनका आरोप नहीं लगा सकती, क्यों कि आपका इरादा बच्चे को मारने का नहीं था।

उससे विपरीत-एक मनुष्य है। तलवार लेकर दूसरे का खून करने के लिये जाता है। दूसरा मनुष्य यह देखकर भागता है, और वह तलवार लिये हुए उसका पीछा करता है। पुलिस आती है और उस पर 'खून के इरादे' का आरोप लगाती है। यद्यपि अभी उसने दूसरे मनुष्य का खून नहीं किया था-वह उससे १०० गज दूर था, परन्तु उसे अवश्य सजा होगी, क्यों कि उसका इरादा उसको मारने का था।

इसी प्रकार संसार के कार्यों को करते हुए, अगर हम उपयोग रक्खेंगे-विचार-पूर्वक हरेक काम करेंगे, तो पाप के बन्धन से बच सकते हैं, परन्तु यदि उपयोग नहीं है, तो कर्म बन्धनसे कभी छुटकारा नहीं हो सकता है। पापसे डरकर प्रत्येक कार्य यदि उपयोग से किया जाय, तो पापका बन्धन नही होगा। होगा भी तो बहुत अल्प।

एक दूसरे का हम नुकसान कर के, अपमान कर के उसे नीचा दिखाकर, दलील देते हैं:-"अमुक आदमी ने अमुक समय मेरा नुकसान किया था, अत एव मैं भी उसका अपमान करके उसका बदला लूंगा। उसने मुझ से दुश्मनी की थी। मैं भी ऐसा ही करुंगा।" परन्तु ऐसा करनेवाला वास्तव में कमजोर है; डरपोक है, शक्तिहीन है, कापुरुष है। अपमान का बदला अपमान से लेना, खून का बदला खून से लेना यह पुरुषार्थ नहीं, अपितु कायरता है। सच्ची वसुलात तो अपराध करनेवाले को, शक्ति के होते हुए भी क्षमादान, अभयदान देने में हैं, न कि वैर का बदला वैर से लेने में। यह हमेशां याद रखना चाहिये कि-'क्षमा की चोट, दण्ड की चोट से कहीं अधिक होती है। एक अपराधी को यदि हम क्षमा कर देते हैं,

तो फिर वह ऐसा अपराध भविष्य में न करने के लिये प्रतिज्ञा करता है, और अपने किये पर लज्जित होता है और हृदय से पश्चात्ताप करता है। इसके विपरीत सजा देने से वह व्यक्ति और भी निर्लज्ज हो जाता है। दण्ड का उसके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पडता। क्षमा के लिये कितने पुरुषार्थ की आवश्यकता है यह नीचे के दृष्टान्त से ज्ञात हो जायगा।

वैर का बदला

एक राजाने एक जागीरदार का खून किया। उसका लडका छोटा था-उसको नहीं पता था कि, मेरा पिता कैसे मारा गया? जब वह लडका २५-३० वर्ष का हुआ तब एक दिन रोटी खाने बैठा है, उसकी माता उसे भोजन परोसती है। यकायक माता की आखोंमें आंसू देखकर पुत्र माता को प्रश्न करता है.-" मा, आज तू रो क्यों रही है? क्या किसीने तेरे को कुछ कहा है? या किसीने तेरा अपमान किया है?" मा उसको उत्तर देती है कि-' मेरे आंसुओं का कारण जानने की कोई आवश्यकता नहीं, चुपचाप रोटी खालो और अपने काम पर जाओ।"

उस राजपूत युवक का खाना हराम हो गया। और उसे अपने आंसुओं का कारण कहने के लिये बाध्य किया। मा कहती है:-" सुन, आज तू ३० वर्ष का युवान है और मेरे दूध को लज्जित कर रहा है। आज तेरे बापका खूनी संसारमें जीवित रहकर मौज करे और मैं विधवा बनी खून के आंसू बहाती रहूं। और तू क्षत्रिय पुत्र होते हुए घरमें बैठे बैठे रोटियां खाता रहे यह कितनी शर्म और अफसोस की बात है?"

बस। हाथ का ग्रास हाथ में रह गया, युवक उठता है, हाथ मुह धोकर मां से बोलता है: ' मा आज्ञा दे, आशीर्वाद दे कि मैं मेरे पिता के खूनी को तेरे चरणों में लाकर रखने में समर्थ होऊ।' युवक अपने पिता के खूनी का पता ठिकाना मा से पूछकर शस्त्रों से सुसज्जित होकर घर से प्रयाण करता है।

राजा के पास जाते समय रास्ते में विचार करता है.- "मैं अकेला हूं, और वह राजा है उसका और मेरा सामना न हो सकेगा। अतः अच्छा हो, यदि मैं उसका सिपाही बनकर अपने पिता के खून का बदला लूं। आखिर वह राजा का ए. डी. सी बनजाता है। और पूरी वफादारी के साथ नोकरी करता है। धीरे धीरे वह राजा का

एक विश्वासपात्र आदमी बन जाता है। यहां तक कि कोई भी काम राजा उसकी सलाह के बिना नहीं करता। राजा को पता भी नहीं होने दिया कि—यह कौन है ?

एक दिन राजा शिकार को निकला। दोनों घोडे पर सवार थे। दुपहर होने पर एक पेड के नीचे घोड़ा बांधकर विश्राम करने लगे। इतने में राजा को प्यास लगी। और अपने साथी उस युवक से, कहीं से पानी लाने के लिये कहा। युवक उसे पानी लाकर पिलाता है। तत्पश्चात् राजा अत्यन्त थकावट के कारण उस ए. डी. सी. की गोद में सिर रखकर सो जाता है। यकायक उस युवक को अपने पिता के खून की याद आयी। और मारे क्रोध के उसका चहरा लाल हो गया। युवक राजा का खून करने के लिये म्यान से तलवार निकालता है—सोचता है: ऐसा मौका मुझे और कहां प्राप्त होगा ?

परन्तु फिर उसकी विचारधारा पलटा खाती है। वह विचार करता है: " अरे ! एक क्षत्रिय पुत्र होकर मैं यह क्या कर रहा हूं ? एक वीर पिताका पुत्र होकर मैं विश्वासघात कर रहा हूं ? मेरे इसके खून करने से भी क्या होगा ? मैं इसको मारूंगा, इसका पुत्र मुझे मारेगा, फिर मेरा पुत्र इसके पुत्र को—ऐसे कभी इस वैर का अन्त ही न आवेगा। इसलिये क्षत्रिय पुत्र का यह धर्म नहीं है कि वैर का बदला वैर से ले। दूसरी बात यह कि, जब एक मनुष्यने विश्वास में आकर अपना जीवन मुझे अर्पित करदिया है, तब इसका मारना एक भयंकर विश्वासघात होगा। इतना बडा पाप करना एक वीर पिता के पुत्र का काम नहीं।" यह सोचकर तलवार म्यानमें रख लेता है। इतने में ही राजा की निद्रा टूट जाती है और वह उसको तलवार म्यानमें रखते हुए देख लेता है। और उससे तलवार निकालने का कारण पूछता है। वह जवाब देता है:—" कुछ नहीं"। वार २ पूछने पर वह जवाब देता है कि—" आपके खून करने के लिये मैंने निकाली थी, क्यों कि आप मेरे पिता के खूनी हैं।" वह पूछता है—" फिर क्यो मेरा खून नहीं किया ?" " इसलिये नहीं किया कि क्षत्रिय का धर्म है कि अपने शत्रु को मेदाने जंग में ललकारे। न कि विश्वासघात करके अपने शत्रुसे वैर का बदला ले। जब आप मेरेपर विश्वास कर मेरी गोद में सिर रखकर सोए हुए थे, उस समय मेरा आपको मारना कितना घोर पाप था। ऐसा करना वीरों का काम नहीं।"

" दूसरी बात यह कि यदि मैं वैर का बदला वैर से लूं, तो उससे वैर रुकेगा

नहीं। आप का लडका फिर मुझे मारेगा, और मेरा लडका आपके लडके को मारेगा। इस प्रकार दो पापसे डरकर मैंने आप का खून नहीं किया।"

यह सुनकर राजा उस पर अत्यन्त प्रसन्न होता है, और उसे छाती से लगा लेता है। उससे उसके पिता के खून के लिये क्षमा-याचना करता है, और उसकी जागीर वगैरह सब लौटा देता है। ओर उसे अपना प्रमुख विश्वासपात्र दिवान नियुक्त करता है। मित्रो !

आज आपके हाथों से अनेकों पाप हो रहे हैं। यदि आप अपनी दुर्गति से बचना चाहते हैं तो पापभीरु बनें और अन्तःकरणपूर्वक पाप से बचते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करें। यही हार्दिक आशीर्वाद है।

भाइयों और बहनों !

धर्म के योग्य मनुष्य कब बन सकता है ? आज हम लोग योग्यता के बिना ही धर्म के ठेकेदार बने बैठे हैं और बनने की कोशिश कर रहे हैं। शास्त्रकार तो यहांतक कहते हैं कि–जबतक मनुष्य में सम्पूर्ण योग्यता न आ जाय, हमारी हृदयरूपी दिवाल साफ न होजाय, तबतक हमें अपने को धर्म के अधिकारी कहने का कोई अधिकार नहीं। शास्त्रकारोंने इसीलिये, धर्म की योग्यता प्राप्त करने के लिये ३५ गुणों का विधान किया है।

चौथा गुणः' पापभीरु ' के विषय में मैं बता चूका हूं। अब पांचवा गुण बतलाता हूं।

पांचवा गुण. देशाचारं समाचरन्

मनुष्य कैसा होना चाहिये ?। अपने २ देश का जो आचार हो, उसके अनुसार आचरण करनेवाला हो। देशों को दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:— (१) आर्य देश। (२) अनार्य देश।

(१) ' आरात् हेयधर्मात् ऋच्छति–गच्छतीति आर्यः ' न करने योग्य बातें त्याग करनेवाला, जो वृथा धर्म से दूर है, उस देश का नाम है आर्य देश। अथवा किसी भी देश में उत्पन्न होनेवाला भी आर्य और अनार्य हो सकता है। आर्य देश में जन्म लेने से, जैन धर्म में जन्म लेने से, जैन कुल, ब्राह्मण कुल, क्षत्रिय कुल में जन्म लेने से, और हिन्दुस्तान में ही जन्म लेने से मनुष्य ' आर्य ' नहीं हो सकता है।

मैं तो दावे के साथ कहता हूं कि आज जैन कुल में उत्पन्न होनेवाला, ब्राह्मण एवं वैष्णव कुल में पैदा होनेवाला, किसी भी ऊंचे कुल में उत्पन्न होनेवाला भारतवर्ष, जो कि, आर्य देश के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें उत्पन्न होनेवाला भी, यदि त्याज्य वस्तुओं का त्याग नहीं करता है, तो वह भी ' अनार्य ' ही है।

आजकल चारों ओर विपरीत परिणाम दृष्टिगोचर हो रहा है। ऊचे से ऊचे कुलीन घरों में, जो कि 'आर्य' कहे जाते हैं, मास, मछली का आहार होने लग गया है। जितना अधर्म और अनाचार इन बडे कहलाये जानेवाले घरों में होता है, उतना शायद हलके कुलों में नहीं होता होगा, इतना ही नहीं, शराब तो ऐसे लोगों की एक खास पेय वस्तु बन गयी है।

बडे शर्म और अफसोस की बात है, कि आज हम अनार्यता की तरफ बडे वेग से बढते चले जा रहे हैं। यूरोप, जिसको कि हम 'अनार्य देश' के नाम से पहचानते हैं, जो मांसाहार करनेवाले हैं, लेकिन आपको शायद मालूम होगा कि वहा भी विजिटेरियन सोसायटिया (VIGETARIAN) हो गयी हैं। मांसाहार करना नाजायज मानते हैं। और बडे वेग के साथ इसका प्रचार कर रहे हैं कि प्रकृति ने हमारी जिह्वा, दांत, मुह आदि अग हमको इन अभक्ष चीजों को खाने के योग्य नहीं बनाये। किसी प्रकार का मास खाना मनुष्य जाति के लिये हराम है।

विचार कीजिये, आर्यकुल मे, उच्च जाति में जन्म लेने का क्या यही परिणाम हुआ? ऐसे लोगों को आत्मा का और उनके जीवन का क्या हित हुआ?। मनुष्य का ध्येय क्या है? और उसमें आपने कहा तक सफलता प्राप्त की है इसको विचारना चाहिए।

मित्रो! हम अपने कुल, जाति, राष्ट्र, समाज की मर्यादा, चालचलन, पहनाव, रहनसहन, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, देव, गुरु की श्रद्धा आदि बातों को, जो कि आर्यत्व के वास्तविक लक्षण हैं, भूलते जायँ, और अन्य लोगों का अन्धानुकरण कर बिना विचारे हम अपने आर्यत्व को-अपने सच्चे हित को विस्मृत करदें यह कितने दुःख की बात है? बाबू साहब बनकर हम अपने सच्चे कर्तव्य से च्युत हो जायँ, देश जाति को भूल जायँ, तो कहां रहा हमारा वह 'आर्यत्व'? कहां रहा वह हमारा मनुष्यत्व? मैं डके की चोट से कहूगा कि हम सबसे बडे अनार्य हैं यदि अनुचित व्यवहार करते हैं। फिर चाहे हम सेठ हों, पटेल हों, राजा हों, अमीर हों, विद्वान् हों, बडी २ सोसायटियों में आने जानेवाले हों। वक्ता हों, बडे २ काम करनेवाले हों, डाक्टर हों, वैज्ञानिक हों, कोई भी क्यों न हों। हमारा यह आडबर रच कर धोखा देना व्यर्थ है। हम घोर से घोर पाप के भागी हैं। कौन कह सकता है कि-हम आर्य हैं? मनुष्य जाति के लिये हम शापरूप हैं। मैं तो कहूगा कि हम 'अनार्य'

ही नहीं, अनार्य के भी बाप हैं। बशर्ते कि—यदि हम अनार्य के काम करते हों तो। सब के लिये मेरा यह आक्षेप नहीं है।

वास्तव मे आर्य वही है, जो अपने राष्ट्र, जाति एवं धर्म समाज की मर्यादा का अतिक्रमण न करे। जिसके आचार, विचार, व्यवहार, खानपानादि पवित्र हों।

इस बात के वर्णन करने का एक मात्र कारण यही है कि, देश २ की आबोहवा भिन्न प्रकार की होती है। कोई देश शीतप्रधान है, तो कोई उष्ण प्रधान। शीतप्रधान देश में भिन्न प्रकार की खुराक और रहन-सहन की आवश्यकता है, उष्णप्रधान में उससे विपरीत होती है।

जिसका खानपान शुद्ध हो, रहनसहन शुद्ध हो, देश, जाति एवं समाज के लिये जिसके दिल में प्रेम, अनुराग एवं भक्ति हो, धर्म की भावना हो, श्रद्धावान हो, अपनी प्राचीन संस्कृति का पूजारी हो, पापों से दूर रहने की कोशिश करता हो, पाप-भीरु हो, वही सचा आर्य कहलाने के योग्य हैं। सीर्फ आर्यदेश या उच्च कुल में पैदा होनेवाला नहीं।

आचार का महत्त्व

परन्तु मित्रो, देश, जाति एवं धर्म का रक्षण केवल बातों से नहीं, सामायिकादि धार्मिक कृत्यों से नहीं, संध्या करने से नहीं, परन्तु उपर्युक्त बातों को कार्यरूप में परिणत करने से, अपने आचारविचार शुद्ध रखने से ही वास्तविक धर्म का रक्षण हो सकता है। इसीलिये शास्त्रकरोंने कहा है:—

"आचारः प्रथमो धर्मः सर्वशास्त्रेषु विश्रुत" आचार ही पहला धर्म हैं। धर्म का आचरण करने के लिये हमारे आचारविचार बड़े उच्च और शुद्ध होने चाहिये। वेद शास्त्रकारोंने तो यहांतक कहा है कि—"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः" अर्थात् वेद भी आचारहीन को पवित्र करने के लिये समर्थ नहीं हैं। तो मित्रों! हमें चाहिये कि हम अपने देशाचार का आचरण करें।

देशाचार के दो भेद है: लोकाचार और धर्माचार। लोकाचार के विषय में आपको कह चुका हूं। लोकाचार है हमारे समाज, जाति, धर्म, लोक और सोसाइटियों में जिस प्रकार के आचार व नियमों का निर्माण होचुका है, वह है आचार विचार एवं व्यवहार। ऐसे आचार, विचार एवं व्यवहार का पालन करना लोकाचार कहलाता

है। इसका पालन समाज में रहनेवाले मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। और धर्माचार-धर्म के आचार, जिसको क्रियाकाड, सध्यावन्दन, पूजापाठ, दान, शील, तप और भाव एव यम-नियम कहते हैं। इस प्रकार के धर्मों का जो प्रतिपादन हमारे शास्त्रकारोंने किया है, उसका पालन करना हमारा परम कर्तव्य है।

विद्या का प्रभाव

विदेशों में आकर ऊची डिगरियों को प्राप्तकर, हम हिन्दुस्तानियों को, और अपने आप्तवर्ग को मूर्ख समझने लगते है। और यह समजते है कि हम जिस प्रकार यूरोप में रहते थे, उसी प्रकार भारत में रहना चाहिये। हमें ही नहीं, हमारे माता-पिता को भी रहना चाहिए। नहीं तो वे बेवकुफ हैं।

कुछ दिनों की बात है, विलायत से एक जैन श्वेताम्बर डिग्रीधारी महाशय-जिसके कि मातापिता कट्टर मूर्तिपूजक थे-आये। उनके साथ में एक उनके मित्र भी थे। बम्बई में गोडीजी के मन्दिर के पास से निकले। मित्रने कहाः-" भाई, चलो दर्शन करते जायँ। " प्रत्युत्तर में बाबू साहबने कहा-" में दर्शन करने चलूंगा, परन्तु बूट न उतारूगा। " 'क्यों' ? साथीने प्रश्न किया, बडे बडे अंग्रेज भी जब कभी भी जैन या जैनेतरों के मन्दिरों मे देखने की इच्छा से भी जाते है, तो वहा के नियमानुसार वे भी जूते उतारते और अपनी सभ्यता का परिचय देते है। " परन्तु हमारे बाबू साहब क्या जवाब देते हैं -"मुझे नंगे पैर शर्दी लगजाती है"। देखिये, हिन्दुस्तान में जन्म लेनेवाले, यहां की ही संस्कृति में पलनेवाले महाशय आज विलायत जाकर डीग्रीधारी हो आये, तो अब कहने लगे " बूट मोजे नहीं उतारूगा, क्यों कि मुझे शर्दी होजाय "। क्या अधःपतन की कोई सीमा है ? दुर्दशा की पराकाष्ठा इस से और क्या होसकती है ?। हमारे इन विलायती काले नवयुवकों की यह दशा देखकर मुझे तो बडा खेद होता है, इसका एक मात्र कारण हमारे धर्माचार के विषय की अज्ञानता है। मैं अपने नवयुवक भाइयों से अवश्य निवेदन करूगा कि-अगर आप अपना जीवन सफल करना चाहते हैं, जिन्दगी में कुछ यश के भागी बनना चाहते हैं, तो धर्माचार का अवश्यमेव पालन करिये। इसके साथ ही साथ लोकाचार का पालन करना भी परमावश्यक है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। दोनों का पालन करना ही श्रेयस्कर है इसमें ही आपका कल्याण है।

जिस जाति, कुल, धर्म एव समाज में हम पैदा हुए हैं, उसमें जो धर्माचार का निर्माण हुआ है, उस धर्माचार का पालन करना हमारे लिये जरूरी है।

हम धर्म कर्म को मानते नहीं, पर हमें पैसा जरूर चाहिये, स्त्री जरूर चाहिए। सुख, इज्जत, मान मर्यादा आदि भी जरूर चाहिए। हमें नहीं चाहिये तो मात्र एक धर्म। कितनी शर्म और अफसोस की बात है!।

मनुष्य भूल जाता है कि इज्जत, स्त्री, पुत्र, परिवार, सुख, वैभव चादि एक मात्र धर्म के ही कारण से प्राप्त होता है। पूर्वजन्मोपार्जित शुभ कर्म का ही यह परिणाम है कि हमें यह सब सुख सामग्री उपलब्ध हुइ है।

स्त्रीयों में फेशन

इधर पाश्चात्य संस्कृति का–जड़वाद का प्रभाव हमारी बहनों के ऊपर भी काफी पड़ रहा है। यद्यपि मारवाड, मेवाड़, मालवा आदि में फैशनने अपना राज्य इतना नहीं जमाया है, परन्तु गुजरात, काठियावाड, सिंध और बंगाल की बहिनोंने तो अपने देश, कुल एवं समाज के आचार, रहन, सहन, खानपान आदि का परित्याग कर, नाटक, सिनेमा आदि को देखकर तदनुकूल ही अपनी शकलें बनाने में खासी तत्परता दिखलायी है। अपने कपडे, बाल, पीनें, पाउडर आदि बातों की नकल उन सिनेमा नटियों की सी बनाने की कोशिश करती हैं। कितनी शर्म एवं अफसोस की बात है ?। हमारी सादगी, नम्रता, विनय, विवेक आदि न मालूम कहां चले जारहे हैं ?। बहनों! अभी भी चेतो और अपने कर्तव्य को संभालो। तुम्हारी मान मर्यादा पर ही मनुष्यजाति की उन्नति अवलम्बित है। तुम्हारी मानमर्यादा ही देश की मानमर्यादा है। तुम्हारी इज्जत ही देश की इज्जत है। तुम्हारा अधःपतन सारे देश–मनुष्य जाति का अधःपतन है। अतः अपना उत्तरदायित्व संभालो और अवनति के गहरे गर्त में गिरते हुए भारत को बचालो। सारे देश की आंखे तुम्हीं पर लगी हुई हैं। उठो; और अपने कर्तव्य को संभालो। इसी में तुम्हारा एवं तुम्हारे देश का कल्याण है।

नमूंछिए पुरुष

हमारे हिन्दुस्तान का लक्षण–पुरुषत्व का लक्षण–वीरता का लक्षण यदि कोई है तो एक मात्र मूंछ ही है। परन्तु उसी वीरता के एकमात्र लक्षण को भी हमारे आधुनिक सभ्यता के रंग में रंगे हुए नवयुवकोंने क्या ? प्रौढों और वृद्धोंने भी समूल उड़ा दिया है।

मित्रो! राणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास आदि जितने भी महापुरुष वीर हुए हैं, जरा उनके मूंछो से शोभित सिंह तुल्य आकृति को देखिये। और आज उन्हीं की

सतान कहलाने का दावा करनेवाले लोगों को देखिए । क्या शकलें बना रक्खी हैं ? क्या हमारी सस्कृति रहनसहन आचारविचार आदि सब यही हैं ? जिस देश, जाति एव समाजने अपनी सस्कृति, साहित्य और प्राचीन इतिहास को भूला दिया है, वह जाति, समाज एव देश विस्मृति के गहरे गर्त में पड चुके हैं–नष्ट हो चुके हैं। आज उनका नामोनिशान भी नहीं है । इसलिये हे नवयुवक मित्रो ' आपको भी चाहिये अपने सस्कृति, आचार विचार पहनाव आदि से कभी विमुख न होवे । नहीं तो आप अपने को अवनति के गहरे गर्त में सदा के लिये डाल देंगे । जिसका पुनः निकलना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायगा ।

यदि पूछा जाय कि, आधुनिक फैशनें क्यों चली ? किसने चलायी ? दुराचार क्यों बढा ? आदि, तो इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि–देखादेखी ही इन सब फैशनो का एकमात्र कारण है। आजकल के हमारे इन युवकों के पास सिवाय हेट पेन्ट के और क्या रह गया है ? । जब हमारे देशरूपी भवन के स्तम्भ स्थानीय नवयुवकों की ही यह दशा है, तो भारतवर्ष की क्या दशा होगी ? भगवान ही जाने ।

मै फिर से पुनरावृत्ति कर देना चाहता हू कि तुम्हीं देश, जाति एव समाज के गौरव हो । यदि आप इन सबका गौरव बढाना चाहते ह, इनके प्रति अपनी जिम्मेवारी को निभाना चाहते है और अपनी जीवनयात्रा को सफल एव सुखपूर्ण बनाना चाहते ह तो अपने लोकाचार एव धर्माचार से कभी मुख न मोडें । हमें किसी बात की आवश्यकता नहीं है । हमें आवश्यकता है तो एक मात्र धर्म की, जिस की बदौलत हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ।

परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य यह भी है कि–अपने धर्माचार, लोकाचार, आदि का यथावत् पालन करते हुए इनके हेतुओं पर भी लक्ष्य दें । रुढिगत बहुत सी अनावश्यक बातों को, जिसको कि आचार, विचार का रूप दे दिया गया है, उन्हे अपने हृदय मे स्थान न दें । परन्तु जिन विचारों का पालन श्रेयस्कर हो, निन्दा के पात्र न हो और धर्म से च्युत नहो, ऐसे आचारविचारों का अवश्य पालन करना चाहिये ।

प्रत्येक बहिनों का भी यह कर्तव्य है–फिर चाहे वे किसी धर्म, समाज की क्यो न हो–कि घर के तमाम कार्यो मे तल्लीन रहते हुए भी अपने देश जाति एव समाज के आचारविचार का कभी भी उल्लघन न करे । अगर आप नष्ट हुई तो, हमारे बालबच्चे भी नष्ट होने स नहीं बच सकते।

भाइओं और बहनों,

कल मैंने पांचवा गुण 'देशाचारं समाचरन्' पर विवेचन किया था। अर्थात् प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अपने अपने देश के आचार-रीतरिवाज, रहनसहन, संस्कृति, खानपान आदि का ही आचरण करना चाहिए, यह बतलाया था। देशाचार को छोड़ने वाला धीरे धीरे सबकुछ छोड देता है। परिणाम में उसका पतन होता है। आज छठवाँ गुण बताऊंगा।

छठवा गुण

अवर्णवादी न क्वापि, राजादिषु विशेषतः।

जो मनुष्य अपने को उन्नति के उच्च शिखर पर चढाना चाहता है, जो सफल होना चाहता है उसे चाहिये कि-वह किसी की भी निन्दा न करे। आज सारा संसार दूसरे की निन्दा कर के अपना उत्कर्ष बताना चाहता है, परन्तु दूसरे को नीचा दिखाकर स्वयं की उन्नति की आशा रखना, यह बालू से तेल निकालने के तुल्य है। न तो कभी हुआ है, न होगा।

परनिंदा का कारण

परोत्कर्ष सहन नहीं कर सकनेवाला मनुष्य ही दूसरे की निन्दा करता है। दूसरे की साम्पत्तिकादि उन्नति उससे सहन नहीं होती, और वह निन्दा करना आरम्भ कर देता है। यद्यपि निन्दा करनेवाला मनुष्य यह जानता है कि दूसरे की निन्दा कर के भी कुछ प्राप्त नहीं कर सकता हूं, परन्तु फिर भी निन्दा करता ही है। दुनिया के मनुष्यों की मानसिक दुर्बलताएं यहां तक बढी हुई होती है कि जिसके कारण से परोत्कर्ष जरासा भी नहीं सहन कर सकते। किसी कविने कहा है:-

'जब लग पुरबल पुण्य की पूंजी नहीं करार,
तब लग सब कुछ माफ है अवगुण करो हजार'।

जब तक मनुष्य के पूर्वोपार्जित शुभ कर्म है, जब तक मनुष्य को सब प्रकार की सामग्री, ऐश मौजूद है, घोर से घोर निन्दक भी उसका बाल भी बाका नही कर सकता। और पुण्य का खजाना जब खतम होगा, तब उसको गिराने के लिये प्रयत्न की भी जरुरत नहीं रहेगी।

दूसरे की निन्दा करने के पूर्व हमें अपने आत्मा की ही निन्दा करनी चाहिये। क्योंकि सब बुराईया तो हम मे ही भरी हैं। हम दूसरे में दोष देखने जा रहे हैं। एक कवि का वचन है—

> कार्यं च किं ते परदोषदृष्ट्या, कार्यं च किं ते परचिन्तया च।
> वृथा कथं खिद्यसि बालबुद्धे! कुरु! स्वकार्यं, त्यज सर्वमन्यत्॥

अर्थात् हे बालबुद्धे! तू अपने काम से काम रख, दूसरे की निन्दा-विकथा करने से तुझ क्या मतलब?

सज्जनो! आप अपनी प्रकृतियों को शुद्ध रक्खें, अपने आत्मा मे रहे हुए दोषों को ही देखें, और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करे। कभी किसी दूसरे की निन्दा न करें। शास्त्रों में तो सातों व्यसनों का सेवन करनेवाले दुराचारी की भी निन्दा न करने का विधान किया है। अगर आप किसी की भलाई के लिये निन्दा करते हैं, तो यह आप की भूल है। अगर आप वास्तव में एक मित्र की भाति उसका भला चाहते हो, तो उसे एकान्त मे बुला कर प्रेमपूर्वक समझाइये। सम्भव है, इस प्रकार के प्रेमपूर्ण व्यवहार से भविष्य म फिर वैसी भूल न करने की वह कोशिश करे। इस के विपरीत, यदि आप उसकी बुराई बिरादरी में, ५-१० आदमियो के सम्मुख प्रकट करेंगे, तो इस से कोई नतीजा हासिल नहीं हो सकता। सभव है, वह और भी बिगड जाय। अतः इस प्रकार की व्यर्थ निन्दा कर के अपने पाप म वृद्धि करना मूर्खता है।

मनुष्य अपनी आदत से लाचार होता है और यही कारण है कि अनेक बार पापाचरण कर बैठता है। इतना ही नहीं, कई बार दूसरे मनुष्य की हानि करने को भी तत्पर हो जाता है।

छ प्रकार के पुरुष

मुझे याद है-एक बार, मैंने पोरबन्दर के एक व्याख्यान में, निन्दा एवं दूसरे को नुकसान करनेवाले मनुष्यों का विभाग बताया था कि-निन्दा एवं दूसरे की हानि करनेवाले कितने प्रकार के होते है। और दूसरे का भला करनेवाले मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं ? महात्मा भर्तृहरि ने भी एक स्थान पर कहा है।—

ये तावत्कृतिनः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये,
ये च स्वार्थपरार्थसाधनपराः तेऽमी नरा मध्यमाः ।
तेऽमी मानुषराक्षसापरहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ! ।१॥

मैंने कहा थाः संसार में पांच प्रकार के मनुष्य हैं:-

(१) वे उत्तम मनुष्य हैं, जो अपना नुकसान कर के भी दूसरे का भला करते हैं ।
(२) मध्यम वे हैं, जो अपना नुकसान न करते हुए दूसरे का भला करना चाहते हैं।
(३) कनिष्ट वे हैं, जो अपने लाभ को देखते हुए दूसरे को लाभ करते हैं। अन्यथा नहीं.

ये तीन प्रकार भलाई करनेवाले मनुष्यों के हैं। अब नुकसान करनेवालों के भेद देखिये।

(१) अपने स्वार्थ के लिये दूसरे का नुकसान करनेवाले होते हैं जिस को कविने 'मनुष्यराक्षस' कहा है।

(२) परन्तु अपना कोइ स्वार्थ न होते हुए भी व्यर्थ दूसरे का नुकसान करते हैं, उसको क्या कहना ? कवि कहता है कि 'न जानीमहे,' मैं नहीं जानता। इन पांच प्रकार के मनुष्यों की व्याख्या मैंने की ही थी कि, इतने में एक जज साहब बोल उठे कि-"आपने पांच तरह के पुरुष बतलाये, परन्तु छट्ठा मैं बतलाता हूं। छट्ठा वह है जो अपने घर के हजारों रुपये का नुकशान कर के भी दूसरे का नुकसान करनेवाले भी मनुष्य मेरी कोर्ट में कई आते हैं।"

मित्रों! अब आप स्वयं विचार करिये कि उपर्युक्त कोटिमें से आप कौनसी कोटिमें हैं ? यदि आप अपना नुकसान कर के भी दूसरे का भला करनेवाले हैं, अपनी

सम्पत्ति, शक्ति आदि का व्यय करके भी दूसरे का भला करते हैं तो आपके जैसा उत्तमोत्तम कोई नहीं।

अगर आप अपना नुकसान न करते हुए दूसरे का भला करते हैं, तो आप जरूर उत्तम हैं। और यदि आप अपने स्वार्थ के साथ में भी दूसरे की भलाई करनेवाले हैं तो भी आप कुछ जरूर हैं। मगर यदि आप दूसरी तीन कोटियोंमें से हैं, तो आप जैसे अधम कोई नहीं, अब आप हृदय पर हाथ रखकर अपने योग्य कोटि का निश्चित करलें।

यदि आप अपना स्वय का नुकसान करके भी दूसरे का बुरा करनेवाले हैं, जैसा कि जज साहेबने कहा था, तो समझ लीजिये ससार में आपका जीना और मरना समान है। आप अपने जीवन में किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकते। सिवाय कर्मबन्ध के आपसे कुछ भी न बन पडेगा। एक कविने कहा है—

मरना भला हैं उसका, जो अपने लिये जिये।
जीता है वह, जो मर चुका, इन्सान के लिये।

दुनिया की सेवा करके हजारों वर्ष पहेले भी मरनेवाला मनुष्य आज भी जिन्दा है।

यदि आप भी अपना जीवन सफल बनाना चाहते हैं, मरने के पश्चात् भी कीर्त्तिरूप से जिन्दा रहना चाहते हैं, तो दुनिया की भलाई करें, सेवा करें। उनकी भलाई के लिये ही जिऍं और उनकी भलाई के लिये ही मरें। यही उन्नति की प्रथम सिढी है।

मैंने हजारों मनुष्य ऐसे देखें हैं कि जहां एक परोपकार का कार्य होगा, २५-५० मनुष्य एकत्रित हो जायगे और परस्पर विचार विमर्श कर उस परोपकार के कार्य को पूरा करने की कोशिश करेंगे। लेकिन कुछ ऐसे भी हलकी प्रकृति के मनुष्य होते हैं, जो यह सोचते हैं कि यदि इस कार्य में चन्दा होगा तो मुझे भी ५) रू. देना पड़ेगा। अपने केवल पाच रूपये बचाने के कारण ५०००) के चन्दे को बन्द करवाने की कोशिश करेंगे। ऐसा कुछ अडगा लगायगे कि सब काम रुक जायगा। सब किये कराये पर पानी फेर देंगे। केवल अपने पाच रूपये के बचाने के लिये हजारों का नुकसान करानेवाले भी हमारे यहां मौजूद हैं। यह कर्मबन्ध का कारण है। वह सब बडा पातक है। निदय चाण्डाल है,

किसी की निन्दा न करें। मनुष्य जीवन की यात्रा का सुख से सफल करने के लिये, धर्म के योग्य बनने के लिये हरेक मनुष्य को अपने को परनिंदा से दूर

रखना चाहिए। किसी का अवर्णवाद न बोलें। निन्दा न करें। उसमें यह बुराई है, यह दोष है, ऐसा है, वैसा है, तैसा है, यों करता है, त्यों करता है, ये सारी बातें, दुनिया की करने से अपने को कोई फायदा नहीं। मनुष्य अपनी प्रशंसा, अपनी इज्जत अगर बढ़ाना चाहता है तो अपने मुंह पर, अपनी जबान पर खूब काबू रक्खे। मनुष्य यह समजता है कि मैं इस की निन्दा करूंगा, तो इसकी हल्काई और मेरी प्रतिष्ठा हो जायगी। मनुष्य अपनी प्रशंसा को बढाने के लिये दूसरों की निन्दा करता है। लेकिन शास्त्रकारों ने निन्दक को यहां तक बतलाया है कि 'पशुओं के अन्दर गधा' 'पक्षियों में कौआ' जिस तरह चाण्डाल है, उसी तरह से मानव जाती में वह चाण्डाल है, जो अपनी कीर्ति के लिये दूसरों की निन्दा करता है। जैसे कहा हैः

काकः पक्षिषु चाण्डालः, स्मृतः पशुषु गर्दभः।
नराणां कोऽपि चाण्डालः, स्मृतः सर्वेषु निन्दकः।

अगर संसार में सुखी रहना है, चाण्डाल नहीं बनना है तो कभी किसी की निन्दा मत करो। पापी से पापी क्यों न हो, कसाई से कसाई का धंधा करनेवाला क्यों न हो, व्यभिचारी से व्यभिचारी क्यों न हो, कितनी भी अनीति करनेवाला क्यों न हो, दुराचारी से दुराचारी क्यों न हो, किसी की भी निन्दा करने का हमारा हक नहीं। शास्त्रकारोंने कहा हैः—

परपरिभवपरिवादादात्मोत्कर्षाच्च बद्धचते कर्म।
नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोचम्॥

जो व्यक्ति दूसरों की निंदा करता है और अपनी प्रशंसा करता है, उसके प्रत्येक भवमें नीचगोत्रकर्म होता हैं, यह बंध बडी ही कठिनता से छूटता है।

कैसी विचित्र बात है, हजारों दुर्गुणों से भरा हुआ मनुष्य अपने को नहीं देखता, दूसरे को ही देखता है।

सज्जनो! खूब याद रखिये। जो मनुष्य निंदा से दूर रह कर अपने ही दोषों को देखता है वही ऊंचा उठ आता है, और वही मनुष्य संसार में दूसरों का कुछ भला कर सकता है। संसार में मित्र क्यों किया जाता है? मित्र इसालिये किया जाता है कि, जिस समय हम डूबते हों, तो वह हमारा उद्धार करे, हाथ पकड ले। संसार में हमेशा साथ रहकर हमें अच्छे कार्यों में लगावे।

लेकिन आजकल के मित्रों को देखते हैं तो, शायद ही ऐसा कोई मित्र मिलेगा, जो मित्रधर्म का पालन करता हो। आजकल का मित्र तो दुश्मन से भी ज्यादा हो जाता है। हमारा स्नेही, हमारा मित्र जितना हमारा बुरा कर सकता है, उतना हमारा दुश्मन भी नहीं कर सकता।

सच्चा मित्र कौन?

आज आप लोग एक दूसरे के साथ मित्रता करते हैं। युवक भी स्कूलों तथा कॉलेजों में अपने मित्र बनाते हैं। क्लासफेलो परस्पर मैत्री करते हैं। बहनें भी एक दूसरे के साथ, बहनपणी बनाती हैं। यह कहा तक होता है?

अगर नाटक सिनेमा देखने को जाना होगा, सैर सपाटे को जाना होगा, कभी दो पैसा खर्च करना होगा, मौज शोख करने जाना होगा, तो मित्र! सोसायटी में जाना होगा तो यह सारी दुनियादारी के कामों में मोजशोख में साथ रहने के लिये मित्र होगा।

लेकिन अगर वह मित्र समझले कि अब भाई साहब के पास मोजशोख के लिये पैसा नहीं रहा, तो फिर आपके पास फटकेगा भी नहीं। दूरसे ही नजर बचाकर निकल जायगा।

सच्चा मित्र कौन होता है? किसी विद्वान्ने कहा है:—

पापान्निवारयति, योजयते हिताय,
गुह्य निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

अर्थात्—सन्त महात्मा पुरुष उन लोगों को मित्र कहते हैं, जो पापों से हमें बचाता है। अगर मित्र होकर हमें पापों की प्रवृत्ति में-निंदा चुगलीमें-बुराईयोंमें ले जाय तो वह मित्र नहीं, लेकिन भयकर से भयकर दुश्मन है। सच्चा दुश्मन दूर रहता है, इसलिये हमको पाप में नहीं ले जा सकता, लेकिन यह दुश्मन मित्र के रूप में साथ रहकर पाप मार्ग में लेजानेवाला होता है। ऐसे मित्र से आप हजार कोस दूर रहें।

सज्जनो! आज हमारे समाज में झगडे और क्लेश क्यों होते हैं? ऐसे गुप्त शत्रुओं के मिलने से हम जानते हैं कि यह पाप कर रहा है। बुराई कर रहा है,

नाजायज काम कर रहा है, घोर से घोर निंदा कर रहा है। लेकिन उसका साथ देने को हम तैयार हो जाते हैं। उन्हे कभी सच्ची बात नहीं सुनाते। मैं तो ऐसे मित्रों को गुप्त शत्रु ही समझता हूं।

मित्र का दूसरा गुण है 'योजयते हिताय,' जो हमारी भलाई के लिये प्रयत्न करे। हमारे गिरने का–पतन होने का हमेशां हमसे ज्यादा ख्याल रक्खे। रोम रोम में इस बात का विचार भरा हो कि, किसी तरह से मेरा बन्धु–मेरा मित्र पाप न करे।

मित्र का तीसरा गुण है: 'गुह्यं निगूहति' अर्थात् मित्र की गुप्त बातें छिपावे। आज हमारे मित्र क्या कर रहे हैं? उदाहरण के तौर पर, एक सेठ दूसरे अपने मित्र सेठ को कहता हैं कि "सेठजी, मैं इस बात को खानगी तौर पर आप से कहता हूं। मेरा आप पर विश्वास है। किसी दूसरे को मत कहना।" फिर वही दूसरे को भी कहेगा: "यह तो खानगी बात है, तुम्हीं को कहता हूं, दूसरे किसी को मत कहना"। फिर दूसरा तीसरे को कहता है: "देखो, खानगी बात है," इस तरह यह क्रम चलता हैं। आश्चर्य है। आज संसार में जितना जहर फैल रहा है, वह ऐसे ही मित्रों की बदौलत है। इस जहर के कारण संसार दावानल में जल रहा है।

संसार में कौन ऐसा आदमी है, जिसके जीवन में गुप्त बात न हो? जहां तक मैं समझता हूं, भूत, वर्तमान या भविष्य में ऐसा कोई नहीं होगा। दुनिया में कोई ऐसा कुटुम्ब नहीं, जिसमें कोई न मरा हो। इसी तरह छद्मस्थ–अपूर्ण मनुष्य के लिये भी कहा जा सकता है कि ऐसा कोई छद्मस्थ-अपूर्ण नहीं, जिसके पीछे कोई गुप्त बात न हो।

लेकिन एक मित्र की हेसियत से हमारा धर्म हैं कि अगर हम मित्र को मित्र समझते हैं, तो उसकी गुप्त बात को छिपाये रखें।

मित्र का चौथा गुण है--'गुणान् प्रकटीकरोति' मित्र अपने मित्र के दुर्गुणों को छिपाये और गुणों को प्रकट करे। सच्चा मित्र वही है, जो यही कहे कि:–बड़ा नेक आदमी है, बड़ा सद्गुणी है। जिन गुणों की प्रशंसा करनी चाहिये, उन गुणों की प्रशंसा करे। इस तरह से प्रेमभाव आपस में बढता है। मैं आपकी बुराइ करूं, इस से परस्पर प्रेमभाव नहीं बढता है। चाहे आप मेरे स्नेही ही क्यों न हों। परन्तु अगर मैं

दूसरों के सामने किसी का भी गुणानुवाद ही करूंगा-प्रशंसा करूंगा, तो वह मेरा दुश्मन होते हुए भी मित्र के रूप में परिणत हो जायगा। लेकिन आज तो मनुष्यों की ऐसी आदत पड गयी है कि बुराई करने में ही अपनी महत्ता समझते है।

मित्र का पांचवा गुण है " आपद्गतं न जहाति' अर्थात् जिस समय कष्ट आवे उस समय मित्र को छोडना नहीं चाहिये। 'देहं वा पातयामि, कार्यं वा साधयामि' इस तरह उसे कष्ट में पूरी मदद करनी चाहिये। जिसको सहकारी बनाया है, मित्र रूप से जिसका हाथ पकडा है, चाहे हम कुर्बान हो जावें, बर्बाद हो जावें, नष्ट हो जावें, चाहे कुछ भी हो जाय, पकडे हुए हाथ को कभी न छोडे, यही सच्चे मित्र का लक्षण है। जब कष्ट आवे तब छोडे नहीं।

परन्तु आजकल? मित्र ध्यान रखता है, अब उसके पास कहां तक पानी रहा है?। देखता है, अब उसके पास पैसा नहीं रहा, कष्ट में है। शायद मेरे से मदद न मांग ले, इस ख्याल से पहले से ही अलग हो जाता है। और उस से उलटा कदाचित् समझ ले, अब तो कुछ इन के पास पैसा होने लगा है, तो झट उस समय मित्र होने के लिये जायगा। 'क्यों भाई, तुम कैसे हो, ऐसा है, तैसा है, बडी २ बातें कर के उस से मित्रता जाहिर करेगा। दभी दुनिया के ये दभी नाटक नहीं तो और क्या है?

आज संसार में ऐसा ही चल रहा है। आज दुःख, नाना प्रकार के क्लेश, अशान्ति हम उठा रहे है, यह सब इसी का परिणाम है। हमारा कोई भी सिद्धान्त नहीं। मनुष्य अगर सिद्धान्तवादी नहीं है, तो उसे जीने का भी कोई हक नहीं।

मित्र का छट्ठा लक्षण है– 'ददाति काले' अर्थात् समय पर दे कर खडा रहे। लक्ष्मी हमेशा साथ रहनेवाली नहीं है। हमारे साथ यह आती जाती नहीं, यहां की यहां रह जाती है। लेकिन अगर यह समय पर काम में आ जाय, मित्र की भलाई के लिये काम में आ जाय, तो यह सार्थक है, इस के सिवाय हमारी लक्ष्मी का और शक्ति का सुन्दर उपयोग और कौनसा हो सकता है?। ऐसे ही गुणवाले मनुष्य को शास्त्रकारों ने सच्चा मित्र कहा है।

अब आप अपने कलेजे पर हाथ रख कर कहिये कि आप के ऐसे मित्र कितने है? और आप किस के सच्चे मित्र है?

मैं हमारे सब बालकों-नवयुवक भाइयों, वृद्धों, बहिन बालिकाओं सब को कहना

चाहता हूं कि-मित्र किस लिये करना चाहिये ? संसार समुद्र को सुख और शान्ति से पार करने के लिये। तात्पर्य यह है कि सच्चा मित्र ही हमें निन्दा के पापों से बचा सकता है। निन्दा भी हम दो कारणों से करते हैः एक अपने को ऊंचा बताने के लिये, और दूसरे किसी शक्ति के प्रति हम असहनशील हैं इस लिये। मैं इस विषय में काफी बतला चुका हूं। जब तक मनुष्य की पुण्याई है, हम उसकी निन्दा कर कुछ भी नहीं बिगाड सकते। और न हम ऊंचे हो सकते हैं। जिस दिन उसकी पुण्याई खत्म हो जायगी, उस दिन अपने आप वह ठीक हो जायगा। हमारी आवश्यकता भी न रहेगी। असहनशीलता यह हमारी मानसिक कमजोरी है, इस को हमें दूर करना चाहिये।

राजादि की निंदा

यद्यपि हमें हर कीसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। परन्तु उस में भी '**राजादिषु विशेषतः**' खास कर राज्याधिकारीयो की बुराई तो बिल्कुल ही नहीं करनी चाहिये। हेमचन्द्राचार्य योगशास्त्रकार ने दूसरों की निन्दा न करते हुए एक बात की खूब सूचना दी है कि राज सत्ताधारी की निन्दा कभी भी नहीं करनी चाहिये। क्यों नहीं ?

इसलिये कि उनके पास दो बातें है; एक तो खजाना है, शक्ति है, सत्ता है। सत्ता के आगे हमारा ऐश्वर्य नहीं ठहर सकता। अतः हमें राजा की निन्दा करने को शास्त्रकारों ने सख्त निषेध किया है।

चाहे कैसी हालत में कोई हो, परन्तु जब तक उनके हाथ में राजसत्ता है, तब तक वह राजा है, और उसकी आज्ञा मानना हमारा कर्तव्य है। अगर हम चाहते हैं कि किसी प्रकार से हम अपनी जिन्दगी को स्वतन्त्र करे, तो हमें चाहिये कि हम किसी सत्ताधारी की निन्दा न करे। और मेरा तो यहां तक भी कहना हैं कि जब शास्त्रकारों ने घोर से घोर पापी, अन्यायी, व्यभिचारी और कसाई तक भी निन्दा करने का निषेध किया है, तो राजा की तो बात ही कथा कहना ? उसकी निन्दा तो हमें हरगिज नहीं करनी चाहिये।

प्रतिदिन शान्ति पाठ को पढनेवाले हमारे यहां पर तो राजा के आत्मा की

शांति को ही धर्म बतलाया है। जैसे—

' राजाधिपाना शान्तिर्भवतु
राजसन्निवेशाना शान्तिर्भवतु
पौरमुख्याणा शान्तिर्भवतु
पौरजनस्य शान्तिर्भवतु
ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु। आदि।

जगत को शान्ति हो, राजा को शान्ति हो, नगर के सेठो को शान्ति हो। शहर के तमाम लोगों को शान्ति हो। सारे ब्रह्मलोक को शान्ति हो। ऐसा पाठ करनेवाला मनुष्य ऐसा ध्यान करनेवाला मनुष्य, ऐसी उपासना करनेवाला मनुष्य किसी की भी अशान्ति नहीं चाहता। चाहे वह कैसा भी क्यों न हो। इसलिये राजादि में किसी प्रकार की अशान्ति का कारण न होना चाहिये। किसी प्रकार का अवर्णवाद कभी न बोलना चाहिये। अवर्णवाद बोलने से हमारी जिह्वा पापी बनती है। हमारा हृदय नापाक बनता है। मनमें दुर्भावनाएं पैदा होती हैं। ऐसी निन्दा से हमको क्या लाभ ?

मान लीजिए कि राजा राजधर्म से च्युत है तो वह राजा नहीं है। वह अपने पतन का प्रायश्चित्त अवश्य भोगेगा। प्रकृति उसे दण्ड अवश्य देगी। प्रकृति के सामने राजा और प्रजा का स्थान समान है। इसलिये कुदरत के नियमानुसार वह भले ही अपने पापों का फल भोगे, लेकिन एक मानवता की हेसियत से हमारा कर्तव्य है कि यदि ऐसा भी राजा हो, तो भी उसकी जरा भी बुराई न करते हुए उसकी आज्ञा का पालन करें। ऐसी निन्दा से हमें क्या लाभ कि जिससे समाज, देश और जाति मे क्लेश हो। निन्दित मनुष्य जिद्दी बनता है, अपनी बात को रखनेवाला हो जाता है। बस, इससे बुराई ही बुराई फैल जाती है। ऐसी बुराइयों से भरे वातावरण में फसा हुआ मनुष्य सिवाय दुःख के और क्या लाभ उठा सकता है ?। इसलिये महानुभावों, आपको चाहिये कि आप लोग अवर्णवादी न बनें। आप धर्म की बाते धारण करें। साधुओं के पाच महाव्रत को समझें, अपने श्रावक के १२ अणुव्रतों को धारण करें। एक बार व्रत धारी मनुष्य, शुद्ध श्रावक बननेवाला मनुष्य जिस समय बुराइया करे, निन्दा करे, चुगली करे तो आप समझ सकते हैं कि, उसके व्रत का क्या अर्थ है ? कोई अर्थ नहीं।

व्रतधारी बनने के लिये तो मैं यह भूमिका ही बतला रहा हूं। यह भूमिका साफ करलें तभी व्रत धारण करने के योग्य होंगे। यह तो योग्यता की पहली कसोटी है। वह ही सिडी है। यदि इसमें ही नहीं चल सकता तो, वह श्रावक बनने के लायक ही नहीं कहला सकता।

मैं १२ अणुव्रतों का आगे चलकर धार्मिक दृष्टि से विवेचन करूंगा। अभी तो भूमिका ही साफ कर रहा हूं। इतनी भूमिका तक पहुंचने के लिये पहले योग्यता हांसिल करलें। आज तो यह दशा होगयी है कि ज्ञानी निन्दा करता है क्रिया करनेवाले की, और क्रिया करनेवाला करता है ज्ञानी की। दोनों एक दूसरे को बुरा बतलाते हैं। एक स्त्री दूसरी स्त्री को रांड कहे, दूसरी पहली को छिनाल कहे। इनमें सती कौन है? कुछ पता नहीं चल सकता। ज्ञानी और क्रियावादी अगर अपने ज्ञान और क्रिया को सफल करते हैं, तो सफल है, नहीं तो दोनों मूर्ख हैं। सफलता उसी में है कि अपने आत्मा का विचार किया जाय। शास्त्रकारों ने कहा भी है-" अप्पा जिए सव्वं जिअम् " इसलिये महानुभाव आप का धर्म है कि अपने जीवन में आप प्रतिज्ञा कर लीजिये कि किसी की भी निंदा नहीं करूंगा। चाहे मनुष्य कैसा भी हो।

सातवां गुणः-

अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिकः।
अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः॥

घर कैसा होना चाहिये? आपको ताज्जुब होगा कि, शास्त्रों में घर बनाने की विधि भी क्यों बतलायी गयी? जबतक आपके रहनसहन का स्थान अनुकूल न होगा, तबतक आप सम्यग् आराधना भी नहीं कर सकते। जिस मकान के अन्दर अनेक प्रकार के दरवाजे खुले पड़े हैं, कोई घुस जाय, निकल जाय, पर मालूम न पडे। ऐसे मकान नहीं होना चाहिये। और ऐसा भी नहीं होना चाहिये कि, जहां पडोस खराब हो। जहां पडोस खराब होता है, वहां मनुष्य की बुद्धि शुद्ध नहीं रह सकती। आप जानते हैं बहुत जगह ऐसे मामले देखे गये हैं कि पडोस के कारण अशान्ति होती है। गोधरा में मैं गया था, उपाश्रय में ठहरा, उपाश्रय के चारों तरफ मुसलमान ही मुसलमान रहते थे। और जब हमारे व्याख्यान होते थे, पत्थरों की बोछार पड़ती रहती थी। यह किसके कारण था? पड़ोस अच्छा नहीं होने के कारण। इसी कारण गृहस्थ अपने गृहस्थ धर्म का पालन नहीं कर सकता। संसार की

बातों में भी हमेशा यही डर लगा रहता है कि किस समय क्या हो जाय ? गोधरा में ऐसा कहा जाता था, सच झूठ तो ज्ञानी जाने कि, महिने में एक दो घटना तो ऐसी अवश्य घटती थी कि, एक दो लडकियें अवश्य उड जाती थीं। ऐसा क्यों होता था ? एक मात्र पड़ोस अच्छा नहीं होने के कारण। शास्त्रकारोंने हमारे लिये कितना उपकार किया है ? यह बताकर कि, हमारा रहन सहन, पास पडोस, मकान आदि कैसे होने चाहिए ? इन बातों को बराबर दर्ज कर दिया है। जिस मकान में हम रहते हैं, उसमें किसी प्रकार का भय हो, किसी प्रकार की अशुद्धि हो, तो हम अपनी धर्मक्रिया वहा नहीं कर सकते। आजकल तो धर्मक्रिया के लिये उपाश्रय तथा धर्मस्थान मुकरर हो चुके हैं। लेकिन एक जमाना था, जब हरेक गृहस्थ के घरमें एक स्वतन्त्र स्थान रहता था जिसमें वे पूजा, सामायिक वगैरह करते थे।

आज भी बहुत से गृहस्थों के घरों में ऐसा ही देखने में आता है, जो अच्छे श्रीमन्त हैं, घर में बराबर इस प्रकार के साधन मौजूद हैं। परन्तु चारों तरफ का वातावरण शुद्ध हो। अगर अशुद्ध वातावरण में हमारा मकान होता है, तो नतीजा यह आता है कि रात और दिन अशान्ति ही अशान्ति होती जाती है। आगे शास्त्रकार कहते हैं कि गृहस्थ का मकान बहुत खुले एकान्त में नहीं और बहुत गली कूचों में भी नहीं होना चाहिये। अगर मान लीजिये, सारी बस्ती से बहुत दूर एकान्त जंगल में बंगला बनाएंगे तो किसी समय आफत आजावे तो वहां बचाव करनेवाला कौन है ? वहां रहने का अधिकार साधुओं का था, लेकिन हमारा अधिकार आप लोगों ने छिनलिया है। पुराने समय में साधु लोग सदा जंगलों में रहते थे, उद्यान में रहते थे। बस, कहीं आना न जाना। निन्दा न चुगली। अच्छा न बुरा। बस अपने ज्ञान, ध्यान में रहते थे। और मस्त रहते थे। आत्मा का कल्याण करते थे। आत्म चिन्तन करते थे।

साधुओं के उपाश्रय

परन्तु आज हमारा यह अधिकार आप श्रीमन्त लोगों ने ले लिया है और हम लोगों को लाकर इन गलियों में भर दिये और गलियों में भी नहीं ऐसे स्थानों में जहां कुछ होजावे तो पता भी न चले। अब यह जबरदस्त शिकायत की है कि आज साधुओं के लिये जितने उपाश्रय हैं, वह प्रायः शास्त्राधार के विरुद्ध हैं। चारों तरफ लियों का वातावरण भीड़ भरा है, यहां तक कि बरसात का पानी घर के अन्दर हाथ से दो और हाथ से लो। हमारा विरुद्ध मत शास्त्रोक्त उपाश्रय कहांतक उचित है ?

इसे सोच लीजिये। अगर कोई साधु से अच्छा या बुरा कार्य हो जाय और मानलो कि न भी हो, परन्तु रास्ते चलनेवाले को ही किसी प्रकार का शक हो जाय, उस समय संसार में सिवाय निन्दा के पात्र बनने के और क्या हो सकता है?

बाइयें घर का काम काज करती हैं, बाल बनाती है। बालबच्चों की देखरेख आदि घर का कार्य करती हैं। ऐसे वातावरण के बीच में साधुओं को रखना, और फिर ऊपर से दूध और मिठाई खिलाना और यह कहना कि 'बराबर ब्रह्मचर्य का पालन करो, नव वाड़ों का पालन करो, नहीं तो शैतान हो' परस्पर कितना विरोध है। कितने अफसोस और शर्म की बात है। एक तरफ साधुओं को ऐसे वातावरण में रक्खो कि जिससे अगर ब्रह्मा भी आवे तो उसका भी चित्त चलायमान हुए बिना न रहे। और दूसरी तरफ से यह कहो कि "ब्रह्मचर्य का पालन करो। चित्त की वृत्तिएं स्थिर रक्खो"। में कहता हूं कि यह कितने गजब की बात है। आज जितने अनर्थ हो रहे हैं, उसका मुख्य कारण यही है कि उसकी सारी परिस्थिति बिगड गयी है। साधुओं के लिये एकान्त, दूर स्थान होना चाहिये। इतने समजदार, धर्मग्रन्थों को पढनेवाले कर्म-ग्रन्थ और साधुओं के आचार की बातें करनेवाले गृहस्थ साधुओं की मर्यादा को, हमारी परिस्थितियों को बिगाड रहे हैं। वातावरण का प्रभाव साधुओं पर भी पड़ता है। तो फिर तुम गृहस्थों के लिये ऐसे स्थान में, ऐसे वातावरण में रहना कभी योग्य हो सकता है? मैं यह अपनी कल्पनासे नहीं कह रहा हूं। शास्त्रकार पुकार २ कह रहे हैं कि जहां पड़ोस शुद्ध हो, मकान सुन्दर हो, वातावरण शुद्ध हो, ऐसी जगह पर गृहस्थों के लिये मकान होना चाहिये। बालबच्चों पर सुन्दर असर करने के लिये, बहु बेटियों के आचरण शुद्ध रखने के लिये जरूरी है। शास्त्रकार कहते हैं कि-धर्म के लायक तभी बनोगे, धर्म की उपासना भी तभी कर सकोगे, जब कि रहने का स्थान भी अनुकूल और शुद्ध हो। जब सुन्दर पड़ोस होता है तब कितना सुन्दर असर उस वातावरण का बालबच्चों पर पड़ सकता है? कितने सुन्दर आचरणवाले वे बन सकते हैं? हम और आप अनुमान लगा सकते हैं। पर आज देश की परिस्थिति बिगड़ गयी है। इन्दोर शहर में पहेले एक लाख मनुष्य होंगे। सुन्दर, साफ शुद्ध वातावरणवाले मकान भी मिल जाते थे परन्तु आज तीन लाख मनुष्य हो गये, पैसेवालों के अच्छे पक्के मकान बन गये। परन्तु दूसरों को शुद्ध वातावरण और अच्छे पड़ोस के मकान नहीं मिलते। यह सारे देश की स्थिति है। हमारी वृत्तियां हमारी शुभाकांक्षाएं बिगड

गयी हैं। पैसा कमा रहे हैं, सब तरफ पैसे की ही बोलबाला है, सोचते हैं अभी तिजोरियें जितनी खाली हैं, भरलो, आगे कौन जाने क्या होगा ? इस तरह सारी परिस्थिति और वातावरण बिलकुल बिगड गया है। फलतः हम बहुत दुःखी हो रहे हैं। आज हमें अच्छा पडोस नहीं मिलता है।

भाईओं और बहनों,

अब आज मैं आठवां गुण बतलाऊंगा.–

आठवां गुण.–'कृतसङ्गसदाचारैः'

धर्म के लायक कौन से मनुष्य हो सकते है? जो सदाचारी मनुष्य का संग हमेशा करते हैं। हम समकिती जरुर हैं, बुद्धिमान जरुर हैं, आत्मकल्याण के अभिलाषी जरुर हैं। ये सारी बातें होते हुए भी अगर हमारा दिन सज्जनों की संगति में व्यतीत नहीं होता है, तो न मालूम हम कहां जाकर गिरेंगे? इसका पता नहीं। इसलिये शास्त्रकार पुकार कर कहते हैं, कि, सदाचारी का सेवन करनेवाला-सदाचारी पुरुष का संग करनेवाला ही गृहस्थ है। आप लोग साधुओं को विनति कर, हजारों रुपया खर्च कर, उन्हें क्यों बुलाते है? इसलिये कि साधु पवित्र आचरणवाले मुनिराज रहेंगे तो हमारी धर्मक्रिया अच्छी तरह होगी; व्याख्यान वाणी का लाभ होगा। सब तरह से हमारा कल्याण होगा। यही सत्संग है। इतने दूर से अपना समय निकालकर क्यों आते है? एकमात्र सत्संग करने के लिये। आप समझते हैं–एकाद घंटा भी गुरु के पास बैठ जायंगे, दो शब्द उपदेश के कानों में पडेंगे तो भी हमारा आत्मकल्याण होगा। इसलिये शास्त्रकारों ने तो यहां तक कहा है:—

गुरुका महत्व.

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्ज्वललोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नान्धकारे॥

अर्थात्—चाहे एक मनुष्य कितना ही बुद्धिशाली हो, विचक्षण हो, व्यवहार में अतिकुशल हो, शास्त्रों का अध्ययन किया हो, बड़ा श्रीमन्त हो, भाग्यवान् हो लेकिन ऐसे मनुष्य के लिये भी सत्संग की आवश्यकता है। बिना गुरु के उपदेश के ऐसा विचक्षण मनुष्य भी धर्म की प्राप्ति नहीं कर सकता। एक मनुष्य की आंखें कान तक

लंबी है, और उसकी आंखो का तेज इतना है कि दूर दूर की चीजको बराबर देख सकता है, इतनी तेज आखोंवाला मनुष्य भी, अन्धेरे-तहखाने में पास पड़ी हुई चीज भी नहीं देख सकेगा। छोटी सी बत्ती की उसे भी अवश्य आवश्यकता पड़ेगी। जिस तरह आखों का इतना तेज होते हुए भी वह मनुष्य चीजो को नहीं देख सकता, उसे भी दीपक की जरूरत है, इसी तरह कितना ही बुद्धिमान् विचक्षण होते हुए भी, गृहस्थ को धर्मप्राप्ति के लिये गुरु की जरूरत होती ही है। मैं तो साधुओं के लिये भी यही कहूगा कि उन्हें भी सत्सग की अति आवश्यकता है। जो आत्मार्थी है, ज्ञानी है, सदाचारी है, ससार म तमाम प्रकार की समभाव वृत्ति रखनेवाला है, सज्जन है, इस प्रकार के सज्जन—सन्त मनुष्यों की सोबत करना, सबके लिये जरूरी है।

२४ घटो मे एक दो घटे का समय तो कममे कम जरुर निकाल कर सत्सग करना चाहिए। हम लोग किसी समय स्नेह के कारण किसी दुर्जन का सग कर लेते हैं। बाह्यदृष्टि से तो वह सज्जनता दिखलाता है। लेकिन भयकर हानिकारक होता है। शास्त्रकारों ने पुकार २ कर कहा है: ' बिच्छू की पूछ में, साप के मुहमें जहर रहता है। लेकिन दुर्जन के तो हृदयमें विष रहता है। दुर्जन मनुष्य अपने साथी से सोबत करता है, मित्रता दिखलाता है, सज्जनता बताता है, उच्चपन दिखलाता है, खानदानी दिखलाता है, यहातक कि चाहे कोई कितना ही विचक्षण पुरुष हो, भ्रमित होजाता है। लेकिन उसके फंदेमें फसनेवाला किसी समय ऐसा गिर जाता है, कि जिसकी हद नहीं।

सज्जन के लक्षण

इसलिये शास्त्रकारों ने सज्जनों की परीक्षा करने के लिये जो गुण दिखलाये है, वे मैं दिखलाता हू।

> गर्व नोद्वहते, न निन्दति पर, नो भाषते निष्ठुर,
> प्रोक्त. केनचिदप्रयाति सहते, क्रोध न चालम्बते।
> श्रुत्वा काव्यमलक्षण परकृत, सतिष्ठते मूकवत्,
> दोषा छादयते, स्वय न कुरुते, ह्येतत्सता चेष्टितम् ॥

ये सज्जन पुरुष के लक्षण है। पहला गुण है ' गर्वं नोद्वहते '

अभिमान न करे। जो मनुष्य अभिमान करता है, वह हलके मे हल्का है। चाहे विद्वत्ता का अभिमान करे, चाहे समृद्धि का अभिमान करे, रूप का अभिमान करे, चाहे

बल का अभिमान करे, कुल-जाति का अभिमान करे, चाहे किसी का भी अभिमान करे, लेकिन अभिमान करनेवाला पुरुष सचमुच नीचे से नीचा है। सज्जनपुरुष वह है जो किसी बात का भी अभिमान न करे।

संसार में सब चीजों का नाप निकाल कर देखिये, सुख का और दुःखका कोई हिसाब नहीं। एक एक से बढे हुए मनुष्य हैं, जैसे सुख में वैसे दुःख में भी। अभिमान किस बात का? वैसे दुःख में शोक भी नहीं करना चाहिये। अहमदाबाद में मेरे व्याख्यान चल रहे थे। एक विद्वान ब्राह्मण, जो रिटायर्ड इंजीनियर थे, रात को आये और मेरे पैर में गिर कर खूब रोये।

मैंने पूछा: 'आपको क्या होगया है?" जवाब मिला: 'मैं बहुत दुःखी हूं।' आखिरकार उन्होंने अपना दुःख रोया। "मेरे को यह दुःख है, वह दुःख है," इत्यादि संसार की हजार बातें मेरे सामने कहीं।

मेरे से क्या हो सकता था? उन्हों ने कहा: "आप ऐसा उपाय बताइये कि, जिससे मेरे आत्मा में शान्ति हो"। मैंने कहा: 'उपाय एक है। आप अपने घर जाइये, और आपके पडोस के मनुष्यों को देखिये, कोई आप से ज्यादा दुःखी है? अगर आपसे ज्यादा दुःखी वहां न मिले, तो अपनी जाति में देख लीजिये, वहां न मिले, तो आपके शेहर मे तलाश करें, अगर वहां भी न मिले तो किसी बड़े इस्पताल में चले जाइये। अगर यह मालूम हो जाय कि आप से ज्यादा दुःखी कोई न कोई है, तो आप अपने को इतना भाग्यशाली समजिये कि आप उनसे कम दुःखी हैं।

इसी प्रकार से जिस समय आपको अपनी शक्ति पर अभिमान आवे, ज्ञान पर अभिमान आवे, शील-चारित्र पर अभिमान आवे, पैसे पर, रूपपर अभिमान आवे, उस समय आप विचार करलें कि-मेरे से अधिक शक्तिवाला, ज्ञानवाला, श्रीमन्ताई, शरीर, रूप और लावण्यवाला कोई संसार में है? अगर यह मालूम हो जाय कि है तो आपको अभिमान करने की जरूरत नहीं।

वास्तवमें देखा जाय तो हम किस बात पर अभिमान करें? मैं समझूं कि-मैं बड़ा विद्वान हूं, पर बहार निकल कर देखता हूं तो धुरन्धर से धुरन्धर विद्वान् मौजूद हैं। काशी में एक समय ऐसा था कि, जब संस्कृत के विद्वान् लोग न्याय, दर्शन, व्याकरण आदि विषयों की चर्चा करते थे, उस समय यह प्रतिज्ञा की जाती थी कि एक बिन्दी

मात्र भी अशुद्ध बोलनेवाला अपनी जीभ काट डाले। उनके सामने हमारा ज्ञान क्या चीज है ?

यशोविजयजी और आनदघनजी

अभी कुछ दीनो के पहले शायद किसी पत्र में एक लेख मैंने पढा। यशोविजयजी उपाध्याय काशी में बारह वर्ष रहे। तीनसो वर्ष पहेले कि बात है। ब्राह्मण होकर रहे। जनेऊ पहन कर रहे। साधुपना छोडकर रहे। गृहस्थ होकर रहे और काशीमें विद्वत्ता प्राप्त की। यह करने के बाद कई सभाए जीती और इसके बाद 'न्यायविशारद' की उपाधि मिली।

एक सभा ऐसी जीती कि जिसमें ५०० ध्वजाए रक्खी गयी थीं। उस सभामे प्रतिज्ञा थी कि, जो उस सभामे जीते, उसके आगे ये ५०० ध्वजाए रहें। उस सभा को यशोविजयजीने जीत लिया। विहार करते २ जब गुजरात में जाते है, तो ५०० ध्वजाए आगे लेकर चलते है कि मेरे जैसा दिग्विजयी कोई नहीं। एक गावमें चले गये। महान् विद्वान थे, उनका व्याख्यान चल रहा था।

उन्हीं दिनों, वहां आनन्दघनजी भी थे। त्यागी, महात्मा, योगी, महासमर्थ, लब्धिवान् थे। गांवके लोग उनके पास गये। लोगोंने कहा:-'महाराज! यशोविजयजी का व्याख्यान चल रहा है, आप भी व्याख्यान करिये।'

"एक दुकान चलती है, बहुत है। दो दुकानें चलाने की जरूरत नहीं। तुम्हें जो माल चाहिये, वहीं से मिल जाता है।" खैर, आनन्दघनजी बडे योगी, महात्मा थे। आनन्दघनजी और यशोविजयजी दोनों मित्र थे। दोपहर को दोनों एक जगह बैठे हैं। बातें कर रहे हैं। आनन्दघनजी ने यशोविजयजी के सामने एक बात कही' -"सबसे बडे से बडा ज्ञानी आप किसको समझते हैं ?" यशोविजयजी ने उत्तर दिया कि "केवलज्ञानी को। केवली भगवान का ज्ञान सबसे बडा होता है"। "उनके नीचे किस को गिनते हो ?" आनन्दघनजीने पूछा। यशोविजयजीने उत्तर दिया कि "जो १४ पूर्वधारी थे उनको"। "उनसे नीचे ?" "बडे बडे महापुरुष-हरिभद्रसूरि, सिद्धसेन दिवाकर आदि आदि"। "और उनके नीचे किनको गिनते है ?" हेमचन्द्राचार्य आदि अनेक हो गये।"

"इन लोगों के ज्ञान के आगे आपका ज्ञान ज्यादा है या कम है ?" "आप क्या बात करते हैं ?" यशोविजयजीने कहा-"मेरा ज्ञान कहां और इनका ज्ञान कहां ? उनके समुद्रका एक बिंदु मात्र को भी मैं नहीं पा सका।"

"जिनका ज्ञान आपसे इतना ज्यादा था, उन्होंने कभी ५०० झंडियें आगे लेकर विहार किया है ?"

यह सुनकर यशोविजयजी बहुत लज्जित हो गये। पश्चात्ताप करने लगे: "अरे मेरे जैसा अभिमानी मनुष्य कोई और है ? काशी में रहकर पढ़ा, शास्त्रों का ज्ञान हासिल किया। लेकिन इन महापुरुषों के ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान कोई चीज नहीं है।"

कहने का मतलब क्या है ? विद्वान् वही है, ज्ञानी वही है, सज्जन वही है, साधु वही है, आत्मार्थी, वीर, शक्तिशाली और समृद्धिशाली वही है जो अभिमान नही करता है।

एक साधु, ज्ञानी, सन्त, समझदार, विद्वान् होते हुए भी यदि अभिमान है, तो समझ लेना चाहिये कि उतने ही अंशो में वह हीन है, कम हैं। जो सच्चे सज्जन, महापुरुष, ज्ञानी, सन्त और साधु पुरुष हैं, वे कभी अभिमान नहीं करते, और किसी की निन्दा भी नहीं करते। परन्तु आजकल दुःख हैं कि हम इन बातों को नहीं समजते, दूसरों की निन्दा करते हैं, दूसरों के छिद्र ही छिद्र देखते रहते हैं, लेकिन अपने में हजार छिद्र भरे हैं। उनको कभी नहीं देखते।

पशुओं की सभा

दलपतराम गुजरात के एक कवि हो गये हैं। उन्होंने एक कल्पना की है। किसी गांव के बाहर जंगली जानवरों ने एक सभा की। कौआ, शेर, तोता, गौ, घोडा, हाथी आदि सब इकट्ठे हुए। लेक्चरबाजी झाडने लगे। इतने में ऊंट खडा होकर व्याख्यान देने लगा। कवि अपनी भाषा में उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं:-

ऊंट कहे आ सभामां बांका अंगवाळां भुंडां,
भूतळमां पक्षियो ने पशुओ अपार छे।
बगलानी डोक वांकी, पोपटनी चांच वांकी,
कुतरानी पूंछडीनो वाको विस्तार छे।
वारणनी सूंढ वाकी, वाघना छे नख वांका,
भैंस ने तो सिर वांकां, सिगडांनो भार छे।

ऊट ने सब जानवरों का जिक्र किया, कहने लगा: " सब जानवर टेढे हैं सबमें टेढापन है। बगले की गर्दन टेढी, तोते की चोंच टेढी, कुत्ते की पूछ टेढी, हाथी की सूढ टेढी, शेर के नख टेढे, और भेंस भी टढे ही सिंग का बोजा लिए फिरती है। आदि आदि। उसने अवगुण देखे, उसमें यह टेढा, उसमें वह टेढा है, सारी बातें टेढी ही टेढी दिखलायी। पशुओं मे सियाल बडा शैतान होता है। उससे रहा नहीं गया–सहन न हुआ, उसने मनमें सोचा–यह हरामी लेक्चरबाजी झाड रहा है। और सबमें ही टेढापन बतलाता है, इसलिये इसको भी कुछ दिखलाना चाहिये। वह खडा हुआ और बोलने लगा, कवि अपनी भाषा में कहता है —

सांभळी सियाळ बोल्यु दाखे दलपतराम,
अन्यनु तो एक वाकु, आपना अढार छे।

शैतान सियालने धीरेसे कहा–जनाब, हम तो सब एक एक बात मे टेढे हैं परन्तु आपके शरीर को तो देखिये, अढारह अग टेढे हैं।

आज मनुष्य, एक दूसरे की निन्दा, दूसरे में दोष देखते हैं। लेकिन खुद में लाखों करोडों दोष भरेपडे हैं उनको नहीं देखते हैं।

मतलब कि सज्जन पुरुष वही है, जो दूसरे की निन्दा नहीं करते। हरेक से गुण लेनेकी कोशिश करते हैं। सज्जन-सन्तों का आगे गुण है –

'नो भाषते निष्ठुर' अपने मुह मे कभी सज्जन लोग निष्ठुर वाक्य नहीं बोलते। यही सज्जनता का लक्षण है।

एक आदमी सुन्दर से सुन्दर कपडे पहनकर आता है, अपटुडेट दिखलाइ देता है,पर इतना होते हुए अगर अपने मुह मे, कठोर शब्द निकालता है, 'बेइमान', 'नालायक' आदि असभ्य शब्द बोलता है, तो दूसरों पर उसका बडा बुरा असर पडता है।

भाषाके आठ गुण

इसलिये महानुभावों! अगर आप लोग सज्जनता धारण करना चाहते हैं, तो अपने जीवनमें भाषा के गुण अपनाइये। आप को मै भाषा के गुण बतलाता हू। शास्त्रकार कहते हैं —

महुर निउण थोअ कज्जावडिय अगव्विय अतुच्छ
पुव्वमइसंकलिय भणन्ति ज धम्मसंजुत।

पहला गुण हैः–' मधुरं ' बोलते समय आपकी भाषा मधुर होनी चाहिये।

कर्कशता, कठोरता, तुच्छता, हल्कापन उसमें न हो। अगर आप भाषा का महत्त्व समझते हैं, तो ऐसी ही 'मधुर' भाषा का उच्चारण करिये। दूसरा गुण हैः 'निउणं'–निपुण

निपुण शब्द बोलना चाहिये। निपुण माने रामबाण। जिस कार्य के लिये आपकी भाषा निकले, वह कार्य सिद्ध होना ही चाहिये। जबतक वह कार्य सिद्ध होने की संभावना न हो, उसे कभी बोलना नहीं। भाषावलि ऐसी हो कि, जिस काम के लिये निकले वह काम अवश्य पूरा हो। तीरावलि की तरह। वही सच्चा तीर है जो छूटने पर ठीक निशाने पर लगे।

इसी तरह हमारी भाषा भी अपना कार्य पूर्ण करे। हमारी बोली बराबर दूसरे पर असर करे। व्यर्थ कभी न जाय। तीसरा गुण है–'थोअं'–थोडा।

बहुत थोड़े शब्द निकालें। भाषा यह कोई जमीनमें से निकलनेवाली मिट्टी नहीं है कि बस उठाई और फेंकी। इसके लिये कवि कहता हैः–' वचन रतन, मुख कोटडी, चुपकी ताला देत '

यह वचन नहीं, रत्न है, भाषा नहीं यह हीरा है। आपके घरो में हजारों लाखों रूपये के रत्न, जवाहरात, मोती, माणक होते हैं। उन्हें बड़े सजावट के साथ तिजोरी और डिब्बे में रखते हैं; परन्तु उनसे हजारों लाखों गुणी किमत रखनेवाली आप की भाषा हैं। अगर भाषा को बड़ी समझते हैं, उसकी कुछ किंमत पहचानते हैं, तो उसे बहुत थोड़ा निकालिये। उसकी वक्त पर जरूरत पड़ती है।

चोथा गुण है 'कज्जावडियं' कार्यापनितं।

जब काम आ पड़े तब बोलें। बिना जरुरत, बिना प्रयोजन कभी मत बोलो। परन्तु आज हम इस तरह से बोल रहे हैं कि हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, हमको कुछ नहीं मिलता। हम दूसरों की खूब निन्दा करेंगे, गाली गलोच करेंगे। हमारे अवर्णवाद, क्लेशों का कारण है। हमारा बिना प्रयोजन भाषा को मुंहसे निकालना है। अतः इन बुराइयों को दूर करने के लिये हमें बिना प्रयोजन भाषा का उच्चारण नहीं करना चाहिये। पांचवा गुण हैः ' अगव्वियं '

जो भाषा बोली जाय, अभिमानवाली न बोली जाय। एक मनुष्य आपसे बात

करें, आपकी उस आदमी पर श्रद्धा है। इज्जत की दृष्टि मे आप उसे देखते है, लेकिन भाषा बोलने के समय अगर अभिमानी शब्द वह बोलता है, तो आपके ऊपर उसका बुरा असर पडेगा। हमारे दिलों पर उसका जो प्रभाव होना चाहिये, वह एकदम दूर होजायगा। अत अभिमानी भाषा नहीं बोलना चाहिये। छट्ठा गुण है–'अतुच्छ'

तुच्छ भाषा न बोलें। हलकी वाणी, हलके शब्द मुह मे न निकाले। हमारी माताए अपने बच्चों को खिलाती है, पिलाती है, स्नान कराती है, स्तनपान कराती है, उस समय उसपर नाराज होती है, और झिझकती है, और गालिया और हलके शब्द सुनाती है। इनका असर बालकों पर बडा बूरा पडता है। एक माता अपने बच्चे के सामने खराब शब्द बोले, वह अपनी माता के बारे में क्या समझेगा? आप यह न समझें कि वह लडका इन गालियो-खराब शब्दों आदि के व्यवहार को नहीं समझता है। वह खूब समझता है।

इसलिये हमें कभी तुच्छ शब्द नहीं बोलने चाहिये। सातवा गुण है'-पूव्व मयिसंकलिय।

जिस समय बोलना हो, पहले उन्हें बुद्धि से विचार करें, तब बोलें। यह शब्द मुझे बोलना जरुरी है या नहीं, यहा इसका कुछ काम है या नहीं, यह शब्द बोलू तो फिजूल तो नहीं जायगा? किसी पर बूरा असर तो नही पडेगा?।' इस प्रकार की सारी बातों का विचार करें तब मुह में से भाषा निकालें, आखरी गुण है:–'धम्मसयुत्त'

भाषा धर्मयुक्त बोलें। चाहे किसी के पच होकर बैठे हो, चाहे किसी का फैसला देना हो। हम दूसरे के सामने अपना असर अपनी इज्जत रखना चाहते हैं तो आत्मा की साक्षी से सच सच बात कहना चाहिए। सच्चा निष्पक्ष होकर, धर्म पूर्वक फैसला दें। पक्षपात कभी न करे।

उपर्युक्त लक्षण भाषा के हैं। सज्जन पुरुष वही हे, जो इन आठ गुणों से युक्त भाषा का उच्चारण करते हैं। अगर कोई दुष्ट मनुष्य उन्हें किसी प्रकार की निष्ठुर भाषा बोलभी दे, तो उन्हें वापिस वैसी ही भाषा में उत्तर दें, यह सज्जनो का काम नहीं है। वे चुप रहें। उनको सहन करलें। अगर बोलने लायक समझे तो मधुर और ऐसी आठ गुणवाली भाषा ही बोले। और अगर सहन भी नहीं करें

और मधुर भाषामें भी उत्तर देना योग्य न हो तो, चुपचाप सुनलें। और वहां से खिसक जांय। आपके जीवन के उद्धार के लिये दो बातें बतलाता हूं कि हजार उपदेश सुनिये, भगवती, स्थानाङ्ग और आचाराङ्ग आदि सुनिये, और वर्षों तक मेरा व्याख्यान सुनिये, कुछ नहीं होगा। इन दो बातों पर आप खूब ध्यान दीजिये और अपने दिलों में रख लीजिये।

क्रम खाना और गम खाना

शरीर की उन्नति करना है, तन्दुरस्ती बनाए रखना है, डोक्टर, वैद्यो से बचना है, दवाइयों से दूर रहना है तो जितनी भूख हो उससे थोडा कम खाइये। बस आपको कोई रोग न आवेगा। आप कभी बीमार नहीं पड सकते।

और आत्मा की उन्नति करना है, जीवन का विकास करना है तो गम खाने की आदत डालिये। विषयों में, कषायों में खान पान में, क्रोध में, मान में, लोभ में, हर किसी बात में जब मौका आवे तो 'गम' खा जायें। ऐसी आदत डालिये।

आपका जीवन दिव्य बन जायगा। गम खाने की आदत से आपके आत्मा की शक्ति बढ़ जायगी और किसी समय वह शक्ति, जीवन के उद्धार के लिये बड़ी काम करेगी। इसलिये सज्जनों के लक्षण में यह दिखलाया गया है कि-साधु सज्जन निष्ठुर भाषा कभी न बोलें। और कोई कदाचित् कुछ शब्द कह दे, तो उसको सहन करलें। उसके प्रति क्रोध न करें। और किसी के काव्यों को पढते हुए उसमें लक्षणादि के दोष देखें, तो मूक रहें, उस काव्यकार की निन्दा न करे।

सज्जनों के लक्षणों में खास लक्षण यह भी कि, वे हरकिसी के दोष को छिपावें और स्वयं दोष न करे।

मनुष्य संसार की आधि, व्याधि, उपाधियों में हर समय फंसा रहता है, परन्तु कुछ समय अगर ऐसा निकाला जावे कि साधु, सन्त, सज्जन पुरुषों के पास जाकर अपने कर्तव्य का भान करे। हमारे कर्तव्य क्या हैं? मनुष्य जीवन सफल कैसे हो सकता है? इन बातों का ध्यान रखकर आचरण करने की कोशिश करें। हजारों रुपया खर्च करके साधुओं का चातुर्मास आप करवाते हैं, इसलिये कि उनसे उपदेशों का लाभ मिले।

चतुर्मास में लाभ

चतुर्मास आरहा है। चोमासी चउदस आने में चार दिन बाकी है। साधु स्थिर हो जायगे। विहार बन्ध हो जायगा। और आप लोगों के लिये वह एक सद्भाग्य का दिन आता है। सारे चोमासे में धर्मध्यान करने का सुन्दर प्रसग मिलेगा।

चोमासे में गृहस्थों का क्या कर्तव्य है? चोमासी चउदश को तो कहा ही जायगा, लेकिन जरा सा आज भी कहदू। आप लोग हमें लाये हैं। चतुर्मास करवाया है, व्याख्यान सुनते ह, लेकिन सुनने का कुछ लाभ भी समझें? यह नही कि यहा सुना, बाहर गये, महाराज की तारीफ करदी कि बहुत अच्छा व्याख्यान करते हैं और फिर जो सुना है, वहीं झाडकर चलदे। परन्तु क्या इसमें मेरा और आपका दोनों का कल्याण हो जायगा? कभी नहीं।

कल्याण तो मैं तब समझू, जब यहा चोमासेभर आकर धर्म किया करें, खूब दान पुण्य करें। लक्ष्मी पर से मोह उतारें, और अच्छे २ कार्यों को कर के ससार में धर्म की प्रभावना करें। लक्ष्मी का सदुपयोग करें। मन साफ हो। मैंने सुना है-यहा पर कुछ महानुभाव ऐसे हे, जो चार महिने तक उपाश्रय में रहकर साधु जीवन का अनुभव करेंगे। आप समझें, साधु जीवन के अनुभव को? इसे 'पौषध'—'पोसा' कहते हैं। पौषध क्या चीज है? जो १२ घटे का पौषध करते ह, वे १२ घटे तक और जो २४ घटे का पौषध करते ह वे २४ घटे तक साधु जीवन का अनुभव करते हैं। सब क्रियाएँ वैसी ही करते हैं जैसे साधु करते हैं। मात्र एक लुचन नहीं करते हैं। यह अनुभव बाकी रह जाता है।

जो चार महिने तक पौषध करेंगे वे कितने पापों से बच जावेंगे? इन पौषध करनेवालो को एक बात की सूचना जरुर करदू। दिनभर तो सट्टा करना, झूठ बोलना, छल कपट आदि करना और रात को आकर मेरे पास सो जाना, इसका नाम पौषध नहीं है। इसका विचार जरूर कर लेना। बेशक, जितना करेंगे, उतना लाभ जरूर मिलेगा। लेकिन दिनभर तो जुआ, झूठ, छलप्रपंच करें और रात को आकर सब महाराज पर झाड दें। कहें महाराज! आप को यह सब दे दीया। यह ठीक नहीं।

आप जरूर करें, पर ठीक तौर पर करें। पूरा लाभ ले। माया, कपट, पापादि से छूट जावें; काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि १८ पापों से छूटे। इसके लिये साधु जीवन का

अनुभव करना चाहिये। और जिससे यह न हो सके, वह जितना बन सके, उतना समय निकालें। साधु सन्तो का सत्संग करें। अपने आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयत्न करें। इन जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं, यह लक्ष्मी कब चली, जायगी इसका कोई निर्णय नहीं।

अभी मैं पोरबन्दर में था, एक बड़े व्यापारी थे। कहा जाता है कि उनके पास दो तीन करोड की सम्पत्ति थी। उनके वहां किसी की शादी थी। वे व्याख्यान में कभी आते थे। कभी मिले नहीं थे। एक दिन सुबह दस बजे उनका एक आदमी मेरे पास भेजकर कहलाया कि "आज पांच बजे मैं आप के पास मिलने आऊंगा।" मैंने पांच बजे तक उनकी राह देखी, आये नहीं। ५॥ बज गये, तब मैं वहां से निकलकर घूमने के लिये दरिया के किनारे जा रहा था कि, देखा, एक स्मशान यात्रा आ रही थी। लोग पीछे २ आ रहे थे। हजारों मनुष्य थे, कई मेरे परिचित भी थे। मैं पटरी पर चल रहा था, एक तरफ खडा हो गया और एक परिचित से पूछा "यह कौन मर गया है?" उत्तर मिला "पोपटलाल शेठ।" जो महानुभाव दस बजे कहलाते हैं कि पांच बजे आऊंगा, वे ४ बजे मरते हैं, और ५॥ बजे स्मशान में जाते है। भाइयों। इस शरीर का क्या भरोसा है? आपकी और मेरी जिन्दगी का भी क्या भरोसा?

सच्ची बात तो यह है कि संसार की क्षणभंगुरता को देखते हुए जितना धर्मध्यान हो सके, कर लीजिये। दानपुण्य आदि कर लीजिये। कुछ ऐसे भी अच्छे कार्य करते जाइये, आपकी स्मृति को कायम रक्खे।

अब मैं यहा एक संस्था का थोडा परिचय कराऊं। आपके यू.पी. और सी.पी मे, कलकत्ते से लगाकर इधर उदयपुर, गुजरात और काठियावाड तक, सारे देश में अगर सुन्दर से सुन्दर कोई संस्था जैन समाज में है, तो एक मात्र शिवपुरी का वीरतत्त्व प्रकाशकमंडल है। अपने समाज में ऐसा कोई गुरुकुल या संस्था नहीं है, मुकाबिला कर सके। आपके यहां के १२ विद्यार्थी वहां अभी गये और वहां आसपास के आगर वगेरह के ४४-४५-विद्यार्थी वहां गये हैं। आपका कर्तव्य है कि इस संस्था को दान दे कर, इतनी मजबूत कर दीजिये कि आपके जीवन के लिये एक सुन्दर पुण्य का निमित्त होसके।

भाइओ और बहनों !

धर्म के लायक होने के लिये एक गृहस्थमें पेंतीस गुण होने चाहिये । उनमें ८ वे गुण का वर्णन करते हुए में कह रहा हूं कि-' कृतसंगः सदाचारैः । '

अर्थात् हरेक गृहस्थ को अपनी भूमिका साफ करते हुए सदाचारी, सज्जन, सन्तपुरुष, महात्मा पुरुष, उनकी सोबत करना चाहिये । जैसा संग वैसा रंग, किसी कविने ठीक ही कहा है: — तुख्मे तासीर सोबते असर ।

अर्थात्—सोबत का असर बहुत होता है । मनुष्य जैसा संग करता है, जिस मनुष्य के सहवास में आता है वैसा ही रंग होता है । अर्थात् उसका असर जल्दी होता है । बल्कि यों कहना चाहिये कि-अच्छा असर बहुत कम होता है, बुरा असर जल्दी और ज्यादा हो जाता है । यह एक कुछ कुदरती नियम है । अनादि कालमे भ्रमण करता हुआ यह जीव बुराईयों में फंसा हुआ है । इन बुराईयों मे अगर कोई और डाल देनेवाला मिलजाता है, तो जल्दी असर होता है । उन मे अच्छा असर करनेवाले मिल जावें, तो हमारा सद्भाग्य है । मनुष्य इसलिए प्रतिदिन कुछ समय ऐसा जरूर निकाले कि जिस समय सत्सङ्ग हुआ करे ।

सज्जन, साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी, संयमी, विद्वान्-ऐसे मनुष्यों की सोबत मे कुछ न कुछ समय जरूर निकाले ताकि ज्यादा नहीं तो एक घंटे का भी असर उसके दिल मे अवश्य होगा ।

आप लोग खुद भी अनुभव कर रहे हैं कि-एक घण्टे के ६० मिनिट का जो व्याख्यान आप यहां सुनते हैं, और जो भावना, जो परिणाम आप के दिलों में आते हैं, घर जाने के बाद भी एक दो घंटे तो कम से कम उसका असर बराबर रहता है । लेकिन बाज आदमी तो ऐसे होते हैं कि दिनभर भी, जहां जो भी मिल जाता है, उस

सें निरर्थक चर्चाएं करते ही रहते हैं, ऐसा मेरे सुनने में भी आता है। उन लोगों के दिलों में कैसे परिणाम होते होंगे, इसका अनुमान हो सकता है।

पवित्र हृदय का प्रभाव

जो लोग कषायों को मन्द किये हुए हैं; क्रोध, मान, माया, लोभ को जीते हुए हैं, किसी भी संसार के प्राणी पर रागद्वेष की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं; समभाव धारण किये हुए हैं, मोह माया को काट दिया है, ऐसे साधु महात्मा की सत्संगति से न केवल मनुष्य और पशु, वल्कि जातिवैर रखनेवाले जानवर भी अपने वैर को छोड देते हैं। अपने को पवित्र बना लेते हैं। और अपना कल्याण कर लेते हैं। एक कवि कहता है:—

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया, नन्दनी व्याघ्रपोतं,
मार्जारी हंसबालं, प्रणयपरिवशात् केकीकान्ता भुजङ्गम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदो जन्तवोऽन्ये त्यजेयुः
दृष्ट्वा सौम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् ॥

गिरनार की गुफा में एक योगी बैठे हुए हैं। और वे योगी ऐसे हैं, जिन्होंने तमाम प्रकार के मोह को क्षय कर दिया है-किसी पर रागद्वेष की वृत्ति नहीं, गुस्सा नहीं। अपनी तमाम वृत्तियों को शुद्ध और निर्मल बना दिया है। ऐसे महात्मा योगी पुरुष के सामने हरिणी, सिंह के बच्चे को अपना बच्चा समझकर प्यार करती है। उसका भय एकदम चला जाता है। गाय व्याघ्र के बच्चे को अपना बच्चा समझकर प्यार करती है। बिल्ली हंस के बच्चे को अपना बच्चा समझती है और मयूरी सांप के बच्चे को चोंच में पकडकर उडती है; लेकिन खा नहीं जाती-अपने बच्चे तरह प्रेम करती है। सिंह और गाय, हरिण और शेर, इनमें जातिवैर है, सांप और मयूर में जातिवैर है। बिल्ली और हंस जाति वैरवाले हैं-परन्तु ऐसे महात्मा के पास जाकर इनके दर्शन करते ही अपने जातिवैर को भी छोड देते हैं। एक साथ बैठ जाते हैं। किसीका किसी को डर नहीं, और न महात्मा को इनका, कि ये खा जायेंगे। खूबी तो यह है। यह सब क्यों? उनका हृदय इतना पवित्र है कि जैसा निर्मल-स्वच्छ दूध।

जितना आप का हृदय पवित्र और पाप रहित होगा, जितने कषाय मन्द होंगे, उतनी ही मात्रा में संसार के मनुष्यों पर, प्राणी मात्र पर आप का असर बढ़ता जायगा;

उतने ही उनके प्रेम-पात्र होते जायेंगे। और जितना आप का हृदय दूषित और पापमय कषायी होगा, उतनी ही मात्रा में ससार के प्राणी आपसे दूर भागेंगे। डरने लग जावेंगे। आपसे घृणा करने लगेंगे। आपके दुश्मन बन जायेंगे।

अगर आज कोई मेरा दुश्मन है, तो मुझे जरुर यह समझना चाहिये कि जरुर मेरे हृदय में किसी अश में भी कलुषितता है। मेरा हृदय अपवित्र है। मेरे हृदय में ईर्ष्या भरी है। कोई न कोई ऐसी बात जरूर है जिससे वह मुझसे नाराज रहता है।

अगर यह बात नहीं है, तो मुझे ऐसा विश्वास करने की कोई जरुरत नहीं कि फला आदमी मेरा दुश्मन है। अगर इतने पर भी कोई दुश्मन है भी, तो मेरा कोई उससे लेना देना नहीं। मेरा तो प्रेमभाव सब पर है। ऐसा समझना चाहिये। ये बाते तब होगी, जब दिलको, साफ कर डालेंगे।

देखिये, ससार में हम ऐसा अनुभव करते हैं कि-एक आदमी है। उसका मैं विरोधी हू। विरोध होने के कारण दिलमें गुस्सा आता है। मिले तो गालिया दू-अपमान करु-तिरस्कार करु। चलू उसके पास, उसकी सब तरह से हीलना करु। जिस मनुष्य को अपना दुश्मन समझता हू उसके पास जाता हू।

परन्तु अगर उसका हृदय साफ है, निष्पाप है, निर्दोष है, मेरे पर किसी प्रकार का वैर विरोध नही रखता है, मेरी और उसकी जिस वख्त चार आखें हो जायगी, मेरा क्रोध अपने आप शान्त हो जायगा। मैं उसे सब कुछ सुनाने का इरादा कर के चला था परन्तु मुझे मोका ही नहीं मिलेगा। सबकुछ भूल जाऊगा। किसने शान्त किया वह क्रोध? आप इस पर विचार कर लीजिये।

बाज हम देखते हैं, दो विरोधी मनुष्य एक दूसरे के सामने आकर खडे रहते हैं। और आपस में प्रेम से बातें करते हैं। इस में मेरा अनुभव ऐसा है कि उन दो में से किसी एक का हृदय बिलकुल स्वच्छ निर्मल और निष्पाप होना चाहिए। जब हमारा किसी से वैर विरोध नहीं तो कभी किसी का भय रखने की हमें जरुरत भी नही।

ससार में रहते हुए, व्यापार, रोजगार, पैसा पुत्र, परिवार सब कुछ रखते हुए, अपने दिल को साफ पवित्र और निष्पाप रखिये। किसी पर वैरविरोध न हो। जो करता हो, उसे करने दीजिये। ससार में सभी मनुष्य अच्छे नहीं होते। सिर्फ आप अपने दिल को इतना काबू में कर लिजिये कि, हमको किसी मनुष्य पर वैर रखना नहीं

चाहे वह कितना नुकसान करे, हैरान करे, कुछ भी करे। आप यकीन रखिये, अगर आपका दिल पवित्र है, किसी की मजाल नहीं जो आपका बूरा कर सके। दिल पवित्र होने से आपकी पुण्याई बढेगी। पुण्याई जबतक बढती रहेगी, किसी में आपका नुकसान करने की शक्ति नहीं।

फिर भी बुराई करता है। करने दीजिये। बुराई करनेवाला बुराई ही करेगा कहां से? उसके पास गालियाँ भरी है, दे वह गालियाँ। हमारे पास वह खजाना नहीं, हम नहीं दे सकते। श्रीमन्त के पास कोई जायगा, तो पैसा ही लावेगा। सन्त-ज्ञानी के पास जायगा, सद्गुण और ज्ञान ही लावेगा। उस विचारे के पास यही देने का है।

इस लिये मनुष्य मात्र को चाहिये कि अच्छे पुरुषों की सोबत हंमेशा करते रहें। इसका परिणाम यह आवेगा, हृदय क्रमशः धीरे धीरे पवित्र और निर्मल होता जायगा।

जैसा पात्र वैसा परिणाम-

इतनी बात इस में जरूर है कि, सन्त-महात्मा पुरुष उपदेश तो एक सरीखा देते हैं, परन्तु उनके पास उपदेश लेने के लिये पापी भी जाता है, धर्मी भी जाता है, अधर्मी भी जाता है। दुष्ट और दुर्जन भी जाते हैं, सज्जन भी जाते हैं, कई तरह के मनुष्य जाते हैं। अब इन में लेनेवाला जो लेता है, अपनी पात्रता और योग्यता के अनुसार ले लेता है।

भगवान् महावीरस्वामी समवसरण में बैठकर जगत् को कल्याण का सन्देश सुनाते थे। और एक सरीखी भाषा, एक सरीखा उपदेश देते थे। सुननेवाला चाहे दुर्जन हो, सज्जन हो, स्त्री हो, पुरुष हो, बालक हो, वृद्ध हो, कोई हो, लेकिन लेनेवाले क्या लेते थे? लेनेवालों में कोई ऐसा भी होता था कि कुछ लोग सुनकर चारित्र ले लेते थे। कोई श्रावक धर्म को अंगीकार करते थे। कोई कुछ न कुछ व्रत-नियमों को स्वीकार करते थे और कुछ लोग महावीरस्वामी को धूर्त्त पाखंडी कहनेवाले भी थे।

बरसात के दिन शरु हो गये हैं। जरा ध्यान से सुनिये। इस बरसात का पानी कहां कहां गिरता है। और क्या क्या परिणाम होता है। एक कवि कहता है—

> आम्रे, निम्बे, सुतीर्थे, कचवरनिचये, शुक्तिमध्येऽहिवक्त्रे,
> औषध्यादौ, विषद्रौ, गुरुसरसि, गिरौ, पाण्डुमुत्कृष्णभूमौ।
> इक्षुक्षेत्रे, कषायद्रुमवनगहने मेघयुक्तं यथाम्भः,

तद्वत् पात्रेषु दान गुरुवदनभव वाक्यमायाति पाकम ॥

अर्थात्—गुरु महात्मा पुरुषो के मुह से निकले हुए वचन जैसा जैसा पात्र होता है, उसी प्रकार के परिणाम को पाते है।

जैसे बरसात गिरती है, परन्तु जिम पात्र में उमका पानी गिरता है उसी पात्र के अनुसार उसकी परिणति होजाती है। जैसे–आम के वृक्ष में और नीम के वृक्ष में पानी गिरता है। एक में मीठास को देता है, दूसरे में कटुता उत्पन्न करता है। तीर्थ में और कूडे कचरे के ढेर मे गिरता है। एक में पवित्र माना जाता है, दुसरे में घृणा उत्पन्न करता है। सीप में और साप के मुह में गिरने मे एक में मोती बनजाता हैं और दूसरे में भयकर गरल–विष। इसी प्रकार वनस्पतियों और विष वृक्षो मे गिरने से, सरोवर में, समुद्र में, पहाडों के ऊपर और नीचे, पाडुभूमि में और किसी जमीन में, ऊख के खेतों में और किसी कषाय वृक्षो के वन में, ऐसे ऐसे भिन्न भिन्न स्थानो मे गिरा हुआ बरसात का पानी भिन्न भिन्न रुपों और स्वादों को उत्पन्न करता है।

साधु, महात्मा, सन्त, सत्पुरुषों का सग करो। यह आप के दिलों में अच्छा असर करेगा। पवित्र करेगा। पापोमे बचावेगा। हरसमय विचार शुद्ध रहेंगे। दिनचर अच्छा बितेगा। धर्मक्रियामें, सासारिक-व्यावहारिक कार्यो में दिलको प्रसन्नता रहेगी उतनी ही फल की प्राप्ति होगी।

सत्सग का फल

क्या फल देता है सत्सग? श्रीकृष्ण महाराज को नारदजी एक दिन पूछते है?

" भगवन्। सत्सगका फल क्या है? "

तुम्हें देखना है? तो एक काम करो। नर्क के अन्दर रौरव-नरकमें जाओ। और वहा एक कीडा है उसको देखो। वह तुमको सत्सग का फल कहेगा।

नारदजी वहीं गये। जहा नारदजी को देखा, तुरन्त ही वह कीडा मर गया। न कुछ कहना न सुनना। नारदजी को बडा दुख हुआ। नारदजी वापिस पश्चात्ताप करते हुए आये कृष्ण भगवान् के पास।

" क्यों नारदजी, कुछ समझे सत्सग का फल? " भगवान् कृष्णने पूछा।

" नहीं भगवन्! कीडा तो मुझे देखते ही मर गया। समझना तो दूर रहा। मौत का पाप सिर पर लगा सो बढती में। "

" खैर, उस आम्र वृक्ष के ऊपर एक घोंसला बना है, उसमें एक तोते का बच्चा है, वह सत्संग फल बतावेगा। आप वहां जाओ।"

जाते हैं- तोते के बच्चे को देखते हैं, और देखते हैं ही वह बच्चा तड़फड़ा कर मर गया।

नारदजी दिल में पश्चात्ताप करते हैं। दो हत्याएं तो मुझे लग गयीं। भगवान् के तो तमाशा होता है और मुझे हत्याएं लगती है। ऐसा सत्संग का फल मुझे नहीं देखना।

कुछ दिनों के बाद फिर बात छेडी। कृष्णने कहाः-" फलां जगह किसी गाय का बच्चा है, वहां चले जाओ। वह सत्संगका फल आप को बतावेगा।"

वहां जाते हैं नारदजी। पर बच्चा उन्हे देखते ही तडफडाने लगा और मर भी गया। " हाय, हाय, गौहत्या लगी।" एक ब्रह्मचारी महापुरुष नारदजी को बडी चोट लगी।

" न मैं सत्संग का फल देखने आता और न यह गौ-हत्या होती।" बहुत अफसोस करने लगे। और फिर उन्होंने कभी इसका जिक्र भगवान् के आगे नहीं छेडा।

कुछ समय के बाद कृष्ण भगवान्ने स्वयं उन्हें बुलाया। पूछाः-" सत्संग का फल मिल गया कि नहीं ?"

" मिला भी नहीं और मुझे चाहिये भी नहीं।"

पूछाः-" क्या हुआ ?"

" जहां जाता हुं वहां हत्याएं होती हैं। आपका तो कुछ नहीं जाता। मजाक है, और मेरे को गौहत्या-सब हत्याएं लगती हैं।"

" देखीये, अपने गांव से थोडी दूरी पर एक राजा है। वहां पर राजा के एक लडका जन्मा है। वहां जाईए, राजकुमार आपको सत्संग का फल कहेगा।"

" वहां तो मेरी जाने की हिम्मत नही। नारकी में गया, कीडा मर गया, वहां कोई पूछनेवाला नहीं था। तोते के बच्चे के पास गया, मर गया, पूछनेवाला कोई नहीं था। गाय के बच्चे के पास गया, वह मर गया, पर वहां भी पूछनेवाला कोई नहीं था। आज राजा को पचास वर्ष की उम्र में न जाने कितनी आशा करते करते बच्चा हुआ है। मैं जाऊं और देखते ही मर जाय तो मेरी क्या दशा होगी ? फांसी के तख्ते पर चढाया जाऊंगा, माफ कीजिए मुझे।"

" विश्वास रखिये मुझ पर नारदजी । "

" खैर, जाता हू, ऐसा ही अगर आप कहते है तो ? "

नारदजी राजा के यहाँ जाते हैं। वहा तो धूमधाम मची है। अनेक प्रकार के उत्सव-महोत्सव हो रहे हैं। राजा देखकर बहुत खुश होता है। आदर-सत्कार करता है। चरणो में गिरता है और कहता है—" अहोभाग्य हे मेरे, कि आज एक तरफ तो मेरे लडके का जन्म हुआ है, और दूसरी तरफ बिना निमन्त्रण किये ही आप जैसे सन्तने पधारकर मुझे पवित्र किया। आपका पधारना मेरे लिये भाग्य की निशानी है। हुक्म फरमाईये । "

" मेरा कोई हुक्म नहीं, मैं तो आपके बच्चे को देखना चाहता हू । "

" आप पधारिये अन्तःपुर मे, आपके लिये कोई हरकत की बात नहीं । "

अन्तःपुर मे नारदजी जाते है रानी के पास में। आज का जन्मा हुआ बालक नारदजी से कहता है —"महाराज ! सत्सग का फल अभीतक आपको नहीं मिला ? वह नरक का कीडा मैं था। लेकिन वहा आप जैसे ब्रह्मचारी महापुरुष के दर्शन होने से मरकर तोते का बच्चा हुआ। और वहां पर आपके दर्शन होने से मर कर गाय का बच्चा हुआ, और वहा पर आप के दर्शन होते ही मरकर आज राजा का लडका हुआ हू । "

प्यारे भाइओ और बहनो, अगर सत्सग के फल की किम्मत समझते हैं, हृदय को पवित्र करना चाहते हैं, तो साधु-सन्तपुरुषो के समागम करने जैसा कोई पुण्य कार्य नहीं। हृदय को पवित्र और निर्मल करने का साधन अगर ससार में कोई है तो एक सन्त-समागम है। सन्त का बहुत महत्त्व है। जैन, बौद्ध, हिन्दू सब मे हरेक जगह साधु-महात्मा, जो भी हों, परिचय करना चाहिये। उपदेश दे या न दें, कोई बात नहीं।

सत्सग किस लिए ?

एक बात ध्यान में रखने की है कि—सत्सग आत्मकल्याण के लिये ही करना चाहिये, न कि स्वार्थ के लिये। आप लोग तो यह समझते हैं कि " महाराज, देते क्या है ? अगर महाराज हम सटोडियोंको तेजी-मदी बतावे, जादू-टोना मन्त्र कुछ ऐसा बतादें कि हम सट्टे में खूब मालामाल होजायें, बस महाराज हमें कुछ ऐसी तरकीब बता दें। तब तो महाराज के पास जाना सफल है। "

महज स्वार्थ के लिये आप लोग साधुसन्तों का समागम करते हैं। करना चाहते हैं। यही कारण है कि साधुसन्तों के समागम से फल की जो प्राप्ति होनी चाहिए, नहीं होती। निष्काम बुद्धि से, हृदय की पवित्रता के लिये, आत्मा के उत्थान के लिये, जीवन के कल्याण के लिये सन्तों का समागम कीजिये। आप ये सांसारिक चीजें ही नहीं, पूर्ण आध्यात्मिक सुख भी प्राप्त कर सकेंगे।

लेकिन यहां तो स्वार्थवृत्ति ही भरी है। भगवान का नामलें तो भी स्वार्थ के लिए। इसके सिवाय साधु-सन्तों के साथ बात करने की भी फुरसत नहीं। इसी स्वार्थान्धता का परिणाम है कि–आज सारा संसार दुःखी, दुःखी और दुःखी हो रहा है।

जिस समय आपके हृदय में निष्काम वृत्ति उत्पन्न हो जायगी, निरभिमानता, पुद्गलों में आसक्ति कम हो जायगी, आत्मा पवित्र हो जायगी, इन्द्रियों की गुलामी दूर हो जायगी, उस समय, आप देखिये कितने फल की प्राप्ति हो जाती है।

लेकिन सच्ची बात तो यह है कि आज संसार को लक्ष्मी और विषयों की भूख लगी है, बहुत जोर की भूख लगी है। इसकी तृप्ति न कभी होती है, और न कभी होगी।

आप लोग तो निष्काम वृत्ति से साधु सन्तों का समागम करिये, फिर चाहें वे कोई उपदेश दें या न दें। अगर वह सच्चा सन्त–महात्मा होगा, तो मात्र दर्शन से ही आपका दिल पवित्र हो जायगा।

मैंने शायद एक दफे कहा थाः—

"दुष्कर्मना करनार बुद्धिमान् वत् वातो करे,
तो पण कदि ते लोकना ऊंडा हृदय में ना ठरे
जन शुद्ध जो आचार राखी, मौनने धारण करे;
तो पण सर्वजन बोध लेवा तीव्र आतुरता धरे"

अर्थात्––सच्चे साधुओं को––महात्मा सन्तपुरुषों को बोलने की जरूरत नहीं। व्याख्यान झाडने की जरूरत नहीं। उनका पवित्र चारित्र, उनकी निर्मलता, निष्पाप वृत्ति, सच्चा सन्तपन, रागद्वेष रहितता जगत् का कल्याण करने को समर्थ हो जाती है।

गृहस्थों को चाहिये–सन्त पुरुषों का हमेशां समागम रक्खे।

स्त्रीयोंको रखने का सावधानता

मैं अपनी बहनों को जरा कहदूं। मेरी बहनो, साधु-सन्तो की सेवाभक्ति जरुर करो। लेकिन एक बात का पूरा ध्यान रक्खो। साधुओं के पास अपनी मर्यादा का भग करके कभी नहीं जाना चाहिये। रात में या कभी ऐसे वक्त मे, जब कि कोई पुरुष न हो, जाना आपकी मर्यादा के बाहर है। स्त्री का धर्म दूसरा है। साधु सन्तों के पास जाय तो अपने भोलेपन का दुरुपयोग कभी न करे। इसका उपयोग बराबर रक्खे।

आज तो पूर्व देशों में एक कहावत है:—

राधावल्लभ कृष्ण हैं और विधवा वल्लभ सन्त।

नानाप्रकार के बखेडे होजाते है। साधु पतित होजाते है। हमारी माताए और बहनें भ्रष्ट होजाती हैं। यही कारण है कि आज साधुओं पर से श्रद्धा उठ गई है। उन से घृणा होने लगी है। और उनसे लोग डरते रहते है।

आप भक्ति करें, मर्यादापूर्वक करें। अपनी मर्यादा कभी न भूलें। उसका उल्लघन कभी न करें।

" न मर्यादाभगः, क्षणमपि न नीचेष्वपि रतिः "

रामचन्द्रजीने भरत को उपदेश देते हुए यही कहा था कि मर्यादा का भग, और नीच मनुष्यों की सौबत नहीं करना।

इन बातों को मद्दे नजर रखकर स्त्री हो, पुरुष हो, कोई हो, अपना जीवन व्यतीत करें। आपका नुकसान नहीं होने का। अन्त में यही कहने का है कि आप सन्त समागम करें। आपका आत्मा निर्मल निष्पाप होगा। आप मोक्षसुख को प्राप्त कर सकेंगे।

भाईओं और बहनों,

अब नववाँ गुण कहते हैं—

नवाँ गुणः मातापित्रोश्च पूजकः-

जो मनुष्य जीवन का विकास करना चाहता है, धर्म के लायक बनना चाहता हैं उसको माता-पिता का पूजक बनना चाहिए। ईश्वर की पूजा तो मनुष्य जब बड़ा होजाता है तब करता है। लेकिन संसारी मनुष्यों के लिये-दुनियादारी में रहनेवाले मनुष्यों के लिये सच्चे ईश्वर की पूजा शरु होती है अपने घरसे।

भक्ति कब से शुरु की जाय ?

एक बालक घर में रहते हुए प्रातःकाल उठें, तब माता-पिता की पूजा करे, नमस्कार करे, हाथ जोड़, उनको सिर झुकावे, और माता पिता का आशीर्वाद ले तब बाहर निकले।

माता और पिता का कर्तव्य क्या है ? यह मैं पिछले व्याख्यानों में कह चूका हूं। भारत की संस्कृति में माता का स्थान सब से ऊंचा कहा गया है।

ऐमे माता-पिता की सेवा करना बालकों का सर्वप्रथम कर्तव्य है। लेकिन आज तो दशा उल्टी है। लडका युवक होजाता है। अंग्रेजी दसवीं पढने लग जाता है तब जैंटिलमेन बन जाता है। कोट-पेंट-पतलून लगाने लग जाता है। माता-पिता से घृणा करने लग जाता है।

घृणा का सच्चा स्वरूप तो उस समय हो जाता है, जब शादी करके घर में बीबी लाता है।

एक युवक शादी करके आता है, उसकी स्त्री जरा पढी लिखी है। पैसेदार की लड़की है। वह अपने पति के कानों में काना फूसी करती रहती है। आपकी माता ऐसी है, पिता ऐसे हैं, मुझे इतना काम देती हैं। मुझे यह सुनाती है, यह कहती है।

वह कहती है। आदि आदि। युवक-स्त्री के मोह में पागल बना हुआ युवक अपने माता-पिता के प्रति घृणा की दृष्टि से देखने लगता है।

कल शाम तक जो युवक माता-पिता को पूजनीय समझता था 'माता' 'माता' करता था, उनके वचनों को-आदेशो को प्रीतिपूर्वक पालता था, वही लडका आज शादी होने के बाद अपनी स्त्री के बहकावे के कारण मातापिता के प्रति घृणा करने लग जाता है। देखिये ससार की क्या माया है ?।

कौन कैसा है ? एक कवि ने कहा है —

आस्तन्यपानात् जननी पशूना-मादारलाभाच्च नराधमानाम्।
आगेहकृत्याच्च विमध्यमाना-माजीवितात् तीर्थमिवोत्तमानाम् ॥

अर्थात्—पशु-जानवर अपनी माता के साथ मे कहातक सम्बन्ध रखते है ? स्तनपान करते हैं तबतक।

अगर हमारी मनुष्य जाति में कोई स्तनपान तक माता के साथ सम्बन्ध रखनेवाले हैं, तो वे पशु के समान हैं। और नीच मनुष्य कबतक माता से सम्बन्ध रखते हैं ? जबतक दारा-स्त्री नहीं आती है, तभी तक माता-पिता को माता-पिता मानते हैं, इसके बाद तो समझते हैं मेरा सर्वस्व वही (पत्नी) है। माता-पिता-धन-दौलत-धर्म सब वही है। वे नराधम मनुष्य है। कुछ लोग ऐसे जरुर होते हैं जो माता पिता घर का काम करे वहांतक मा को मा और पिता को पिता मानते है। चाहे वह ८० वर्ष की हो गये हों। और मरने की नौबत ही क्यों न आयी हो। और बहू को गद्दी-तकिये-बिछौने पर बिठाये रक्खेगे। वे लडके विमध्यम हैं। पिता—बहुत बडे हो गये हैं, कुछ काम काज नही कर सकते, उस हालत में लडका पिता से कहेगा, "पिताजी, कामकाज करोगे तो रोटी मिलेगी, नहीं तो नहीं मिलेगी।"

सारी मिल्कियत बाप की कमाई की है। अगर स्त्री को बगडिया लाता है, सजाता है, पाउडर लगाता है, सुन्दर से सुन्दर सजवाकर बीवी के साथ नाटक-सिनेमा देखने जाता है, तो यह सब किसके प्रताप से है ? बाप के प्रताप से। लेकिन जब पिता वृद्ध हो गये हैं, युवक के पत्नी आ गयी है, तो वही लडका बाप को धौंस दिखलाता है: "आप काम क्यों नहीं करते? काम करोगे तो रोटी मिलेगी, नहीं तो नहीं।"

कितने शर्म और अफसोस की बात है। वह आदमी मनुष्य नहीं राक्षस है, जो माता पिता से काम करवाता है। और तभी रोटी देता है, नहीं तो नहीं।

लेकिन उत्तम मनुष्य वही है, जो माता पिता जबतक जिन्दा रहते हैं, ईश्वर की तरह उनकी पूजा करते हैं।

तीर्थंकर महावीरस्वामी का उदाहरण आपको मालूम है।

महावीरस्वामी की मातृभक्ति

भगवान् जिस समय गर्भ में आये। उस समय विचार करते हैं:-" अगर गर्भ में रहते हुए हलन चलन की क्रिया करूंगा, तो मेरी माता को दुःख होगा। इसलिये बहतर यह है कि-मैं स्थिर हो जाऊं"। भगवान् स्थिर हो गये।

लेकिन भगवान् की माता तो अज्ञात थी। माता को ज्ञान नहीं था कि, मेरे गर्भ में साक्षात् भगवान् तीर्थंकर का जीव है। उसने मेरे कष्ट का ख्याल करके हलन-चलन की क्रिया बन्द की है। गर्भ को स्थिर होते देख विलाप करती है:-" हाय! हाय! गजब हो गया। मेरा गर्भ चलता-फिरता था, अब बन्द क्यों हो गया? क्या वह गल गया? सड गया? क्या हो गया?"

भगवान् के स्थिर होने का असर उल्टा हुआ।

माताने जो विलाप किया है। कल्पसूत्र में उसे जिस तरह शास्त्रकारोंने वर्णन किया है। सुनकर रोम रोम-रोयाँ रोयाँ खडे हो जाते हैं।

माता तो विलाप करती है, भगवान् ने उपयोग लगाया, तो मालूम हुआ। "मेरी क्रिया का फल उल्टा हुआ। माता तो विलाप करने लगी है। मुझे फिर हलन-चलन की क्रिया करनी चाहिये।" भगवान् फिर हलने-चलने लग जाते हैं। माता को सन्तोष होता है कि मेरा गर्भ मौजुद है। सारे राजमहल में हर्ष छा जाता है।

लेकिन उधर भगवान् विचार करते हैं:-" अभी तो मेरा जन्म भी नहीं हुआ, अभी तो मैं माता के पेट में हूं। नौ महिने निकालना है, फिर जब पैदा होउंगा, तो न मालूम माता-पिता को कितना मोह होगा? । मेरे पर कितना वात्सल्य भाव होगा। मैं मोक्ष में जानेवाला हूं, तीर्थंकर हूं। पर सारी बातें होते हुए भी प्रतिज्ञा करता हूं कि जबतक मेरे माता-पिता जीवित रहेंगे, वहां तक दीक्षा नहीं लूंगा।"

तीर्थंकर का आत्मा-भगवान् होते हुए भी गर्भ में ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

सज्जनो! यहां पर आपको शंका होगी कि भगवान् ने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की? टीकाकार खुद शास्त्रों मे लिखते हैं कि-" संसार में मनुष्य माता-पिता की भक्ति करे

इस वास्ते ऐसा आदर्श खुद उनके सामने रक्खा है।” इस वास्ते आपका कर्तव्य है कि आप अपने बच्चों को ये बाते सिखलावे। बचपन से उन में इस प्रकार की माता-पिता की भक्ति के सस्कार डालें। आज आप के लडके नालायक होजाते हैं। लेकिन मैं कहता हू- “नालायकी का पाठ उन्हें सिखलानेवाले कौन ? उनके माता पिता। यह नालायकी उन्होंनें सिखलायी। हिन्दू जाति की कई लडकियाँ युवती होने पर किसी दूसरे को लेकर भाग जाती है। ऐसा क्यों ? शुरु से उन में धर्म के सस्कार नहीं डाले गये। मोह के कारण जैसे जैसे वह करती गई, उन्होंने उसे करते रहने दिया। चाहे कहीं भी जाये, उठे, बैठे, सिनेमा नाटक थियेटर जावे। किसी के साथ जावे-खेले। घर में कब भी आवें। ऐसी दशा में, जवान अवस्था में किसी के प्रेम में पड जाती है, और भाग जाती है। फिर माता-पिता रोते हैं-चिल्लाते हैं। परन्तु अब क्या ? क्यों पहले से उस पर अकुश नहीं रक्खा ? मर्यादा में नहीं रक्खा ? इसकी सारी जिम्मेदारी माता-पिता पर है। ससार में जितने भी स्त्री-पुरुष हो, छोटे बडे हो, बालक-वृद्ध हो, पिता हो, पुत्र हो, माता हो, राजा हो, अफसर हो, कोई हो। सब का यह कर्तव्य है कि अपनी अपनी जिम्मेवारी को समझें और उसका पालन करें।

आज हम साधु हैं, हमारी जवाबदारी क्या है ? हमारा कर्त्तव्य क्या है ? उपदेश देना, शुद्ध चारित्र पालन करना, सयम रखना, इन्द्रियों को जीतना, कषायों को जीतना, पापों से बचना, और समस्त जीवों पर समभाव वृत्ति रखना आदि। अगर हम यह नहीं करते हैं। अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करते हैं, तो हम साधु नहीं, शैतान हैं। इसी तरह जो जिसकी जिम्मेदारी है, वह अगर पालन नहीं करता है, राजा अपनी प्रजा की रक्षा नहीं करता है, उसके सुख-दुःख की परवाह नहीं करता है, अफसर अपनी दी हुई जिम्मेदारी पूरी नहीं करते हैं, तो ये सब राजा अफसर आदि राक्षस है। शैतान है। नालायक है। किसी काम के नहीं।

जरा एक कथा सुनिये—

बहुरूपी साधु

काशी में एक बहुरूपी आया था ? हमेशा भिन्न भिन्न प्रकार के रूप बनाकर बजार में बडे बडे लोगों के पास जाता। न किसी से मागना। न कुछ लेना देना। बिलकुल चुपचाप आता और चुपचाप लौट जाता।

एक श्रीमन्त मालदार गृहस्थ था। १०-२० लोग गद्दी-तकियों पर बैठे उसकी

कोठी में काम करते थे। दो तिजोरियों रक्खी थी। नोटों और रुपयोंसे भरी थीं।

एक साधु दुकान पर चढकर आता है। उसकी भभूत, उसकी जटा, कपडे लत्ते सारे शरीर को देख लिजिये, मालूम हो जाता था कि किसी महान् गुफा से निकलकर कोई महायोगी-सन्त-महात्मा सीधा चला आ रहा है।

शेठ खडा हो गया और उसके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया और खूब विनय और भक्ति के साथ कहता हैः-"मेरे यहां कोई महात्मा नहीं पधारते हैं, मेरा अहोभाग्य है आप यकायक आज पधारे।"

महात्मा-योगी को आसन दिया और बिठाया। उनकी खूब भक्ति पूजा की। तिजोरी खोली और एक थाल भरकर गिन्नियों साधु के आगे रक्खी। परन्तु साधुने उसको छुआ तक नहीं। ऊठे और सीधे चले गये।

सेठ पश्चात्ताप करने लगा। सन्त-महात्मा क्या नाराज हो गये? मेरी दक्षिणा भी नहीं ली? क्या मुझसे कुछ गलती हो गई? अगर वे चाहते तो दो थाल भरकर देने को मैं तैयार था।

सेठ को तीन रोज तक भोजन भी नहीं रुचा। अफसोस करता रहा।

एक दिन दुपहर का वक्त था। उसी सेठ की दुकानपर एक आदमी चला आया। मामूली वेश में था। सिर पर सफेद टोपी, बदनपर एक कमीज और धोती पहने था। खडा रहा था।

सेठजी विचारते हैः यह कौन आया? चोर-लफंगा जैसा मालूम होता है।

उस से पूछाः-"तुम कौन हो? क्यों आये हो? किसलिए आये? किस को पूछ कर यहां चले आये?" नाना प्रकार के सवाल सेठने कर डाले। वह कहता है-"सेठजी मैं एक बहुरुपिया आदमी हूं, आप के यहां रोज कई दिनों तक वेष बदल कर आया हूं। अब जा रहा हूं। इसलिये कुछ इनाम लेने आया हूं। और मैं आप को बतला देना चाहता हूं कि-में वही आदमी हूं जिस के सामने अभी परसो आपने एक थाली भरकर गिन्नियों रक्खी थीं। मैं उस दिन साधु का वेष लेकर आया था। आपने भी साधु समजकर गिन्नियों रक्खी थी।"

"हैं, तू बहुरूपी है? तू साधु बनकर आयाथा?" सेठने आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया।

" इसलिये कि दुनिया को रञ्जित करने के लिये उस दिन महज् एक घण्टे के लिये मैं साधु बना था। वेष से साधु था, बालों से, भभूत से, कफनी से साधु था और अपने आचार और व्यवहार से भी साधु रहना, मेरा कर्तव्य था "

वह बहुरूपिया समझता था कि–अपने साधु वेषमें यदि मैं कुछ भी पैसा लूंगा, तो मैं इस साधु वेष को कलंकित करूगा। लोग समझेगे कि ससार में जितने साधु हैं, वे सब पैसा रखनेवाले है। एक मेरे निमित्त से बहुरुपिया होते हुए भी साधुवेष में रहते समय साधु सस्था को कलक नहीं लगाना मेरा कर्तव्य है। जैसे मैं वेष से साधु हुआ, उसी तरह आचार से भी साधुता पालन करना चाहिये। चाहे फिर मैं एक घण्टे के लिये ही वेषधारी साधु क्यों न बना हू।"

बहुरुपीया होते हुए भी उसने कैसे सन्मान रक्खा ? उसने अपने वेष की जिम्मेदारी–अपने कर्तव्य को निभाया।

इसी प्रकार भाईओ, आप चाहे जैन हो, बौद्ध हो, क्षत्रिय हो, अफसर हो, राजा हो, कोई भी हो, हम सब अपने अपने कर्तव्य को लेकर इस संसार में आये है। कुछ जिम्मेदारी लेकर आये है, समाज की, जाति की, धर्म की और देश की। इन सब जिम्मेदारियों को अगर हम निभायेगे, अपने कर्तव्यों को पालन करेंगे, तो हम अपने जीवन को सफल कर जायेंगे। इसलिए माता–पिता के प्रति भी हमारा जो कर्तव्य हो, उसे पूरा करना चाहिए।

घरमें ही तीर्थ

हरेक गृहस्थ माता–पिता की पूजा करनेवाला हो। ऊचे से ऊचा तीर्थ अगर गृहस्थ के लिये कोई है तो माता–पिता है। हमारे यहा पर एक रिवाज था। आजकल के जमाने की बात को छोड दीजिये। लेकिन पुराने वक्त में एक रिवाज था और अब भी जो नयी रोशनी से दूर है, उनके लिये यह रिवाज है कि पुत्र अगर परदेश गया है, और अपने पिता को पत्र लिखता है, तो वह यह लिखेगा कि " तीर्थस्वरुप पूज्य पिताजी "। माता को भी यही विशेषण दिया जाता है। आज भी प्राचीन नियमों को माननेवाले और जिनके वहां पूर्वपरम्परा चली आई हैं, उनमें चाहे वह बडे से बडा गृहस्थ हो गया हो, तो भी पिता को और माता को 'तीर्थस्वरुप' ही मानते हैं।

कितनी हमारी भक्ति और प्रेम माता–पिता के प्रति थी ? इसका यह एक उदाह

रण है। हमें भी ऐसे ही माता-पिता में प्रेम और भक्ति रखना चाहिये। उनकी सेवा करनी चाहिये।

सच्ची भक्तिः आज्ञापालन

रात को जाकर उनके सिर और पैर दबादे, एक बात है। सेवा-भक्ति से मेरा मतलब इसी से ही नहीं है। दिली भक्ति होनी चाहिये। हम साधुओं में भी शिष्य तो बहुत होते हैं, पैर दबाते हैं, वैयावच्च करते हैं, सारी सेवा करते हैं, परन्तु जब गुरु कहते हैं-'यहां मत बैठो-वहां मत बैठो।' 'यहां बैठकर पढना चाहिये'-इधर-उधर फिरना नहीं।' तो शिष्य जबाब देता है:-"यह अच्छा नहीं। हम अपनी मरजी आवेगी वैसे बैठेंगे-उठेंगे।"

हम साधुओं में भी स्वच्छन्दता आगयी है। ऊपर से भक्ति जरूर करेंगे, लेकिन आज्ञा का पालन नहीं करेंगे। हम सब को चाहिये, हम सच्चे आज्ञाकारी बने-माता पिता और गुरु के।

नुकसान उठाना पडता हो, उठा लेना चाहिये, एक दफा अगर हमारे विचारों को दबाना भी देना चाहिये। लेकिन आज्ञा जरूर मानो।

तीर्थंकरों की आज्ञा हम मानते हैं। कई बातें हमारी समझ में नहीं आती। समझ में नहीं आते हुए भी श्रद्धा रखनी पडती है। और रखनी भी चाहिये। तीर्थंकरोंने जो कहा है तहमेव सच्चम्

वही सच है, जो तीर्थंकरोंने कहा है। इसी तरह से हम जिन को पूज्य समझते हैं, उनकी भक्ति वही है जो वे कहें उसका श्रद्धापूर्वक पालन करना। फिर अगर हमारी समझ में वह ठीक न हो तो आज्ञा का पालन करने के बाद नम्रता से उनके आगे अपना मत निवेदन कर सकते हैं। वे जरूर हमारी सुनेंगे और आगे से अगर हमारा निवेदन ठीक है, तो ध्यान रक्खेंगे और एक वक्त, जो हमें कष्ट दिया, उसके लिये पश्चात्ताप भी करेंगे। हमारे पर उनका प्रेम पहले से ज्यादा बढ जायगा।

क्षणिक विचार

मैं यह बात युवकों को खास कर के कहता हूं कि-हो सकता है, माता-पिता कभी गलती पर हों। परन्तु वे उस समय कभी गलत नहीं, जिस समय वे आज्ञा देते हैं। हमारी बुद्धि अभी अपरिपक्व और अस्थिर है। कैसी है? जरा सुनियेः—

क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः रुष्टा तुष्टाः क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्ताना प्रसादोपि भयंकर ॥

आजकल के युवकों के विचार अगर देखे जावें तो प्राय क्षण में रुष्ट और क्षण मे प्रसन्न है । घडी म पानी, घडी मे काजी, घडी में पानी । क्षण क्षण में विचार बदलते हैं । अव्यवस्थित चित्तवाले मनुष्य की महेरबानी भी भयकर होती हैं । जिनके विचार स्थिर नहीं, अनुभव युक्त नहीं, फिर उनके ऐसे विचारों पर हम कैसे भरोसा रख सकते है ।

एक राष्ट्रीय ख्याल ही लो कि–कुछ नेता हमारे युवको के सामने लेक्चर-बाजी करते हैं । युवकों को अपना अध्ययन छोडकर देश के लिये कुर्बान होने की सलाह देते हैं । युवक लोग मे आकर सब छोड छोडकर तयार होजाते है ।

माता-पिता आज्ञा देते है–जरा धीरज रक्खो । पढलो- फिर देशसेवा करना ।

" नहीं, धीरज-वीरज कुछ नहीं । बस, देश, देश और देश. "

कुछ दिनों के बाद एक दूसरे नेता आते हैं, वे सलाह देते हैं।–"खबरदार, जब तक तुम लोग विद्वान् नहीं बनोगे, विद्याध्ययन नहीं कर लोगे, देश की कोई सेवा नहीं कर सकोगे । तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारे विचार स्थिर होने दो, और अच्छी तरह अभ्यास करलो । "

बस, हमारे युवक फिर उतारे हुए कपडे पहिन लेते हैं । और पहले वाला इरादा छोड देते हैं ।

इसलिये जबतक हमारे सिद्धान्त ऐसे हैं, विचारों की क्षणिकता इस प्रकार की है, तबतक हमारे लिये कोई लीडर, नायक, शिरछत्र, सलाहकार रखना जरूरी है कि जिनको हम पूज्य समझकर उनकी आज्ञा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें। कहने का तात्पर्य यह है कि, जिनको हम पूज्य समझते हो, उनकी आज्ञा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें । अर्थात् आप लोग माता–पिता के पूजक बनें ।

पूजक वह है, कि जो उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करे। प्रलोभनों और लालच-से दूर रहते हुए माता पिता की भक्ति करे । और जो लालच से दूर वही गृहस्थ माता–पिता की भक्ति कर सकेगा ।

मनुष्य अपने कर्तव्यों से भ्रष्ट क्यों होजाता है? किसी प्रकार की लालच में आजाने के कारण?

बत्तीस बडे

उत्तराध्ययन सूत्र में एक कथा आती है-एक शिष्य गुरु का परम भक्त था, रात-दिन गुरु की सेवा करता था। एक दोष उसमें था इसके सिवाय और कोई दोष नहीं था।

खाने का लालची था। अगर कोई चीज मिल जाय तो गुरु को बिना बताए हडप कर जाना।

एक दिन का जिक्र है। यह शिष्य गोचरी के लिये गया। वहां उसे एक गृहस्थने बडे बहराये। बडे खूल अच्छे बने थे-मसालेदार।

शिष्य देखता है-बाई कितने बडे बहराती है। उसने गिन लिये। ३२ थे। बडे लेकर निकला। उन बडों की ताजाताजा मसालेदार सुगन्ध। शिष्य विचारता है 'हम दो-गुरु शिष्य हैं। गुरुजी का मेरे पर खूब प्रेम है। वे आधे तो बडे मुझे जरुर देंगे। तो ये मेरे भाग के आधे १६ बडे तो मैं यहां ही खालू।

रास्ते में एक जगह कोने में बैठकर १६ खा लिये, स्वादिष्ट लगे। लालच बढ़ी। सोचता है 'अब सोलह रहे। क्या मालूम होगा गुरुजी को कि कितने बहराये थे?। १६ बहराये या ८। कहदूंगा १६ बहराये, इन में से ८ मेरे भाग के होंगे। वह आठ तो और खालूं। आठ और खालिये।

अब बचे आठ। शिष्य फिर विचारता है। गुरुजी को क्या पता लगेगा कि, आठ बहराये थे या चार। चार मेरे भाग के हैं"। शिष्य चार और खा जाता है। अब बचे चार। इन चार के विषय में भी यही विचार करता है। और उनमेंसे भी दो और खा जाता है। अब बचे दो। इन दो में से भी अपने भाग का एक और खा जाता है। इस तरह अपने भाग के खाते खाते गुरुजी के भाग का १ रक्खा। उस एक बडे को लेकर गुरुजी के पास गया। दोनों गुरु चेले आहार करने बैठे। गुरुजी की नजर उस एक बड़े पर गयी। पूछाः "किसके यहांसे लाया बड़े?"

"कस्तुरचंदजी के यहांसे लाया?"

"वहांसे एक ही बड़ा बहराया क्या? उनके घरमें बड़े कजूस हैं।"

"नहीं, महाराजसा०, बहराये तो थे ३२।"

" फिर क्या हुआ ? "

" मेरे भागके १६ मैंने खाये। फिर १६ बचे, उनमें से अपने भाग के ८ खा लिये। फिर ८ बचे। उनमें से अपने भाग के चार खा लिये। फिर चार बचे उनमें से अपने भाग के २ खा लिये। दोमें से अपने भाग का एक खाया।

" कैसे खा गया ? " गुरुजीने पूछा।

वह एक बडा था उसी बडे को लेकर मुह में रखता हुआ शिष्य बोला:

" ऐसे खा गया। "

गुरुजी कहते हैं कि " हरामखोर, कैसे खाया ? तो ऐसे खा गया। जो एक था, वह भी खा लिया।

प्यारे मित्रो!

खूब याद रखिये। ऐसी भक्ति भक्ति नहीं है। भक्ति तो वह है अपने माता, पिता, गुरु आदि बडों की आज्ञा का सच्चे दिलसे पालन करें। कहने का तात्पर्य यह है कि हम पहेले घर से पूजक बनें। पूजा का पाठ पहले घर से ही सीखें। और वहीं से शुरु करें। और जब ऐसे पूजक बन सकेंगे तभी देव, गुरु और धर्म के सच्चे पूजक बन सकेंगे, अन्यथा नहीं।

भाइओं और बहनों,

आज मैं आपको दशवाँ गुण समझाऊंगाः—

दशवाँ गुणः-त्यजन् उपप्लुतस्थानम्

गृहस्थ शान्तिपूर्वक धर्म का पालन करना चाहता हो तो उसे उपद्रववाले स्थान को छोड़ देना चाहिए। अशान्ति के स्थान में धर्मध्यान में-कर्त्तव्यपालन में अनेक बाधाएं खड़ी होती हैं। उपद्रव अक्सर करके सात कारणों से होता हैः दुर्भिक्ष, महामारी, प्लेग, जनविरोध, राजरोष, स्वचक्र, और परचक्र। इन में से कोई भी कारण उत्पन्न होनेपर स्थान छोड़ देना चाहिए। हम साधुओं के लिये भी ऐसा विधान है। चतुर्मास के लिए हम एक जगह हो जाते हैं। लेकिन क्षेत्रों के गुणों का विवरण शास्त्रों में जहां चला है वहां, साधुओं के लिए भी कहा गया है कि-चौमासा बैठ गया है। बरसात आरम्भ हो गयी है, चारों तरफ हरियाली हरियाली और जीवोत्पत्ति हो गयी है। सारी बातें होते हुए भी अगर तुम्हारे आत्मा को अशान्ति होती है, चारित्र के पालन में तरह तरह की बाधाएं पहोंचती हों, नाना प्रकार के राज्य के उपद्रव होते हों, दैवी उपद्रव होते हों, तो ऐसी अशान्ति का स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाना चाहिए।

ऐसे उपद्रववाले स्थानों को छोडने का जब साधुओं को भी अधिकार हैं, तो फिर गृहस्थ के लिये तो कहना ही क्या हैं?

क्यों छोड़कर चले जाना चाहिये? क्योंकि जबतक हमारे आत्मा में शान्ति नहीं होगी, हमारी चित्तवृत्तियां स्थिर नहीं होंगी, धर्म की आराधना हम नहीं कर सकते। सच्ची बात यह है और कोई कारण नहीं। आत्मामें शान्ति नहीं, उस समय तक धर्म की आराधना कोई प्राणी नहीं कर सकता।

साधु अगर १० चेलों का गुरु है और वे चेले रातदिन लडते झगडते हैं, दुरा-

चारी, खटपटी, प्रपची, नाना प्रकार के उपद्रवों को करनेवाले है और गुरुकी चिन्ता बढानेवाले है, तो १० चेलों को भी छोडकर चल देना चाहिये, आत्मा की शान्ति के लिये ।

खुब याद रखिये, समाजके बधारण, देश की स्थितियाँ, हमारी सस्कृति-ऐसी सब चीजें अगर छिन्नभिन्न हो जाय और जब कि हमारे आत्मा को किसी प्रकारकी शान्ति नही रहे, रातदिन आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान करते रहते रहे, तो धर्म की इच्छा रखनेवाले को चाहिये कि, ऐसे स्थान को छोडकर कहीं और जगह चले जायें जहां हमारे आत्मा को शान्ति हो सके, क्योंकि आत्मा की शान्तिमें ही सबकुछ है ।

दुनियाको किसने जीता है ?

अशान्ति के स्थान को छोडने में दुनिया की परवा नही करनी चाहिए । दुनिया तो ऐसी ही चली आयी है, और चलती रहेगी । दुनिया को किसीने नहीं जीता । ससार के मनुष्यों को कोई नहीं जीत पाया । आप कितने ही तपस्वी हो जायें, आप कितने ही सेवाभावी, दानी हो जायें, लेकिन ससार के सभी मनुष्य आपकी प्रशसा करें, यह नहीं हो सकता । दुनिया में ऐसा कोई तीर्थंकर, साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी, योगी, सन्त नहीं हुआ जिस की सारे ससारने प्रशसा ही की हो । भर्तृहरिने राजपाट छोड दिया । पुत्र परिवार छोड दिया । सुन्दर स्त्रियों, ऋद्धि, समृद्धि को छोड दिया । त्यागी, सन्यासी हो गया । एक मात्र लगोटी रखता था, दुनिया की कुछ भी परवाह नहीं करते हुए ' सोऽहं सोऽहं इति सहनान्दात् समरसत्व मोक्षमार्ग. ' का जाप करना अपना लक्ष्य बनालिया था, इतनी शान्तिमें रहनेवाला मनुष्य एक कुए के किनारे पर जाता है । एक पत्थर की शिला पडी थी । उस शिला को तकिया बना कर लम्बा होकर सो गया ।

दो स्त्रियाँ पानी भरने को आती है । उनम से एक कहती है—" देखोजी बहन ! यह महलो में रहनेवाला, सुन्दर स्त्रियो के साथ रहनेवाला, हर प्रकार ऐश्वर्य को भोगनेवाला हमारा राजा आज कैसे त्यागी होकर जमीन पर पडा है ? धन्य है । " और उसको नमस्कार करती है ।

दूसरी बोली " अरे ! तु काहेकी प्रशसा करती है ? सब कुछ छोडा परन्तु यह तकिया छूटा ? "

दोनों स्त्रियाँ पानी भरकर चली गयी। भर्तृहरि विचार करता है:—" बालादपि सुभाषितं ग्राह्यं।" बालक भी अगर अच्छी बात कहता है, तो उसे स्वीकार करना चाहिये। वह झटसे उठा और उस पत्थर के टुकडे को अलग कर दिया। लम्बा होकर सीधा सो गया। वही दोनों स्त्रियाँ फिर पानी भरने को आयीं।

पहली स्त्री, जो गुणग्राही थी, कहती है:— " बहन! देखो कितने त्यागी हैं। जरासी अपने बात की, तो तकिया भी छोड दिया। और जमीन पर ही सो गये।"

दूसरीने कहा:" तकिया छोडा पर चटका छोडा? हमने जरासी बात की, उन्हें गुस्सा हुवा और हठ में आकर छोड दिया, इस में कौनसी तारीफ की बात है?"

उसकी दृष्टि ही ऐसी थी कि कोई भी, कुछ भी काम करे, अच्छा करे या बुरा, सब में दोष ही दोष ढूंढना। यह ऐसे मनुष्यों की प्रकृति है।

आप संसार में १ लाख रुपये का दान कर दीजिये। फिर गुपचुप दुनियों की बातें सुन लीजिये। कोई कुछ केहगा, कोई केहगा और कुछ।

अब किस की मानना? बतलाइये।

मैं तो हमेशा कहा करता हूं कि हमें तो मात्र अपने अन्तरात्मा की आवाज सुनकर काम करना चाहिये। किसी को पूछने और किसी के बूरे भले की परवाह करने की जरूरत नहीं। आप अन्तरात्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करिये। मैं निश्चय-पूर्वक कहता हूं–अगर आपको अभ्यास होगा तो मालूम हो जायगा कि मैं जो कह रहा हूं वह अच्छा है या बुरा। कहने का मतलब यह कि उपद्रववाले स्थानों में कभी नहीं रहना और ऐसे उपद्रवों से आत्मा को शान्ति होगी तभी आप उसकी आवाज सुन सकेंगे। और फिर कोई बूरा काम आप नहीं कर सकेंगे। और तभी आप धर्मध्यान भी कर सकेंगे।

अब ग्यारवाँ गुण कहा जाता है।

ग्यारवाँ गुण–अप्रवृत्तिश्च गर्हिते ॥

अर्थात् निन्दित कार्यों में प्रवृत्ति नहीं करना।

गृहस्थ धर्म के लायक बनने के लिये, सब से पहले व्यावहारिक दृष्टि से जिस

प्रवृत्ति की दुनिया निन्दा करती है, जिसको दुनियाने नाजायज समझा है, और जिसमे अपने आत्मा को हानि पहुचती है। इस प्रकार की कोई भी प्रवृत्ति न करे।

ससार में हमारी सस्कृतिने, समाजने, जातिने, देशने, हमारे व्यवहारने जिन बातो को बुरा समझा है। ऐसी बुरी बातों में प्रवृत्ति कभी न करे। अगर मनुष्य धर्म के लायक बनना चाहता हो तो।

व्यसनत्याग।

ऐसी कौनसी बाते है जो व्यवहार मे निन्दित और गर्हित है। यह मैं बतलाता हू।

सबसे पहली बात है व्यसन।

किसी भी प्रकार का व्यसन मनुष्य मात्र के लिये दु ख का कारण होता है। मैं तो कहता हु कि छोटी से छोटी चीज क्यों न हो। अगर वह व्यसन के रूप में आजाती है, तो समझ लेना चाहिये कि वह हमारे लिए नाजायज हैं।

आज हमारे जीवन में, हरेक गृहस्थ के जीवन मे युवक-स्त्री-पुरुष-माता और बहनों के जीवन में बडे से बडा व्यसन देखा जाता है तो मैं कहूगा वह चाय का व्यसन है। आप को जरुर आश्चर्य होगा कि महाराज चाय को कैसे व्यसन कहते है? आप देखिये चाय पीनेवालोने अपने जीवन मे कितनी चाय की गुलामी स्वीकार करली है।

मनुष्य को जब चाय का व्यसन हो जाता है, तो चाय के बिना उसे शान्ति नहीं। घर आता है, चाय मे थोडी देर हो जाती है, तो उसे क्रोध आता है। घरमें गालीयाँ देने को तैयार हो जाता है। नौकर-चाकरो को गालियाँ देने लग जाता है। कितने शर्म और अफसोस की बात है? हम गुलाम हो गये हैं। चाय की और किसी की भी गुलामी स्वीकार कर लेना, व्यसन नहीं तो और क्या है?

युवक लोग स्वराज्य की डींगे हाकते है। 'स्वराज्य' स्वराज्य' चिल्लाते है। मैं कहता हू जबतक आप किसी चीजके गुलाम रहेंगे, व्यसनो के गुलाम रहेंगे, आपको आजादी नहीं मिलने की। और अगर मिल भी गयी तो कोई सुख आपको उससे हासिल नहीं होनेका।*

* ईसका प्रत्यक्ष अनुभव स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद हो रहा है।

खूब याद रक्खें, हमारे यहां चाय का कितना व्यसन हो गया है। मैं कह नहीं सकता। उसका प्रत्यक्ष अनुभव स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद हो रहा है।

एक छोटा बच्चा तीन चार महिने का जन्मा हुआ, माता की गोद में बैठा हुआ, स्तन-पान की लालसा कर रहा है। भूखा है। लेकिन इतने में माता के लिये चाय का कप आया। एक चम्मच चाय लेकर वह माता उस बच्चे को पिला देती है और अपनी दिक्कत बचाती है। मैं कहता हुं, वह चाय नहीं पिलाई, माताने उस बच्चे के शरीरमें जहर डाला है।

सिन्ध में कहते हैं कि बच्चा जब जन्मता है, तो हिन्दू हो या मुसलमान हो, माता की गोदमें आने के बाद स्तनपान तब कराते हैं, जब पहले उस बच्चे के मुंहमें 'मच्छी' रक्खी जाती है।

हम लोगों में जैनों में, ब्राह्मणों मे सब हिन्दू मात्र में जब बच्चा पैदा होता है, माता उसे अपना दूध पिलाना तो दूर रहा, चाय पिलाने लगती है।

हमारी स्कूलों में जब हम पढते थे। तब पहली पुस्तक का पाठ 'मा भू पा' पढाया जाता था। परन्तु आज 'मा चा पा' पढाया जाता है।

और फिर इससे आगे बढिये, कुता, बिल्ली, चूहा, यही मात्र प्रारंभ के पाठ। कहीं किसी महापुरुष का नाम नहीं। कुत्ता और बिल्ली का नाम पढ़ाया जाता है। क्या इससे हमारी संस्कृति का सत्यानाश नहीं होता है ! ।

आज मैं अगर आप को चाय त्यागने के लिये कहूं, दूध पीने के लिये कहूं तो आप कहेंगे "सिवाय चाय के हमारा कोई काम नहीं चल सकता। चाय हमारे प्राण-सर्वस्व हो गयी है।"

आपके जीवन में यह व्यसन जो है, गर्हित है। ऐसे व्यसन का जरूर त्याग करें

इस के सिवाय शास्त्रों में ७ व्यसन कहे हैं-उनका भी आपको त्याग करना चाहिये।

सात व्यसन

द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति ॥

पहला व्यसन जूआ

पहला व्यसन है जूआ खेलना। आप पिछले इतिहासों को पढिये, जिन जिन

राजाओंने अपने राजधर्म को छोड़ा, राजपाट, ऐश्वर्य सब कुछ त्यागना पडा; अनेक प्रकार के घोरातिघोर कष्ट सहने पड़े, तो मात्र एक जुए के व्यसन के कारण! नल, युधिष्ठिर आदि के उदाहरण हमारे सामने मौजूद है। ऐसे धर्मिष्ठ उच्च और नेक राजा भी इसके कुपरिणाम से नहीं बच सके, तो हम तो क्या चीज है?।

आज भी जुए के कारण देश का अधःपतन हो रहा है। लोग रोज दिवाला निकाल रहे हैं। इज्जत, घर-बार, माल-मत्ता से हाथ धो रहे है। सेकडो तकलीफे बरदाश्त कर रहे हैं।

इतना उपदेश भी सुन रहे हैं। और 'बहुत अच्छा' 'बहुत अच्छा' कह भी देते है। यहां बैठकर तारीफ कर देते हैं। परन्तु यहा से उठकर जरा बाजार में गये कि, फिर वही छक्के पचे का काम शुरू हो जाता है—एका, दुवा, छक्का, पचा। कितने अफसोस की बात है?

आप वर्तमान में देख रहे हैं कि, जो नाना प्रकार की जुवेबाजी में पडे हैं, रोज दिवाले निकालते नजर आते है। हमारा देश कितना पतित और बरबाद हो रहा है। इतिहासकार कहते हैं कि प्राचीन समय में यहा ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि, किसीने दिवाला निकाला हो। ऐसा कहीं भी जिक्र तक नहीं। आप किसी इतिहासकार से पूछ लीजिये। दुराचार, व्यभिचार, झूठ, चोरी के उदाहरण मिलते हैं, परन्तु कहीं नहीं मिलेगा कि किसीने जाकर कोर्ट में नादारी लिखवायी हो। परन्तु आज तो बम्बई जैसे शहरों की कोर्टों में ऐसे दिवालियों की रोजाना एक लम्बी खासी सूची निकलती है। यह है आज की हमारी दशा।

आप लोग समझते हैं कि-हमारे देश में जूए के कारण पैसा बढता जा रहा है। परन्तु मैं कहता हू पैसा नहीं बढ रहा है। हम अदर से सडे जा रहे हैं, सोचिये जरा।

कमानेवाले कितने?

१०० कुटुम्ब हिन्दुस्तान मे बेकार होते हैं, भूखों मरते हैं, मौत के मुख में जाने की तैयारी करते हैं तब एक मनुष्य लक्षाधिपति बनता है। हमारे हिन्दुस्तान में लक्ष्मी बहार से आने का कोई जरिया नहीं। सिवाय इसके कि अपने भाईयों को भूखा और नगा बनाकर, अपाहिज और मुहताज बनाकर, उन्हें मौत के मुख में धकेलकर हम धन-

वान-पूंजीपति बन जायँ। हमारे यहां कमानेवाले कितने हैं ? हिन्दुस्तान की स्थिति को देखिये।

किसी कविने कहा है-उस समय की स्थिति का वर्णन किया है, अब कि, यहां की आबादी ३० क्रोड की थी*। सुनिये—

त्रीस क्रोड माणस नो वस्ती थी भर्यु छे आर्य,
अर्ध अबलाओ, तेमां बेसीने खानारी छे।
त्रण क्रोड बाल, जेना मुखपांथी लार पडे छे.
त्रण क्रोड अंध ने अपंग तो लाचारी छे।
त्रण क्रोड वृद्ध ने अशक्त काम वगरनां
त्रण क्रोड भारभूत बावला भिखारी छे,
ऐदी, कैदी, नट, जट, गांडा ने गमार जातां,
बाकी बे क्रोड महासुख धन्धादारी छे।

हमारी त्रीस क्रोडकी वस्ती में से कमानेवाले सिर्फ दो क्रोड़ हैं।

त्रीस क्रोड़ में से १५ क्रोड अबलाएं तो घर में बैठकर घर का काम करने के सिवाय पैसा नहीं कमाती। बाकी रहे १५ क्रोड़। इनमें ३ क्रोड बालक है। बालक कैसे ? जिनके मुंह में लार टपक रही है। इधर सोवे तो इस करवट से लार पड़े। उधर सोवें तो उस करवट से। ऐसे दुबले पतले हमारे बच्चे हैं।

तीन क्रोड हमारे यहां अन्धे, लूले लंगडे हैं, और तीन क्रोड हमारे जैसे भिखारी भी हैं। कुछ ऐसे हैं: 'अलेख' 'अलेख' करते हैं और दुनिया की रोटी खाते हैं। फिर इन तीन क्रोड वृद्ध हैं, जों कामकाज कुछ नहीं कर सकते। फिर बचे तीन क्रोड, इनमें १ क्रोड नट, जट, कैदी और अयदी हैं।

३० क्रोड मनुष्यों की वस्ती में दों क्रोड कमानेवाले हैं। जहां दो क्रोड मनुष्यों पर, तीस करोड का आधार रहा हुआ है, वह देश बेकार नहीं होगा, कंगाल नहीं होगा, दिवालिया और भूखा नहीं होगा तो और क्या हो सकता है ?

एक वखत अहमदाबाद के एक बड़े मिलमालिक को मैंने पूछा-"आप अपने यहां

---

* पाकीस्तान बनजाने के बाद भी हिन्दुस्तान की आबादी प्रायः तीस करोड की रह गयी है।

मिल में जैन के लडकों को क्यों नहीं काम पर रखते ?" वे कहने लगे-" जितने जैन के बच्चे नौकरी के लिये आते हैं, वे टेबल कुर्सी मागते हैं। मेरे पास इतनी टेबल कुर्सी कहां, जो मैं उन्हें दू। मैं कहता हू:-काम करो-मिहनत करो, मजदूरी करो जितना पैसा चाहो, देने को तैयार हू। लेकिन हमें मजदूरी ही करना नहीं है। हमें तो बैठे मोज उडाना है। अपंगखाना चाहिये, जिसमें हम पडे पडे खायँ।

वाजदअलीशाह का अपंगखाना-

आप जानते हैं, हमारे यहा अपंगखाना कैसा है ? लखनऊ में वाजदअलीशाह नाम के एक बादशाह हो गये। उस समय उन्होंने एक अपंगखाना बनाया था। लखनऊ में जितने भी अपंग, हाथ पैरों से अपाहिज व दरिद्री थे, वहा पर रक्खे जाते थे। एक एक दरी दी हुई थी। खूब खाते पीते थे। और उस पर पडे रहते थे। जिनके जीवन में कोई चेतना नहीं, ऐसे मनुष्य वहा थे। वे कैसे अपंग थे ?

एक मनुष्य अपने पास में सोये हुए अपंगसे कहता है: " भाई, जरा मेरे मुह पर की माख तो उडा दे।"

दूसरे ने जवाब दिया:- " तेरे मुह पर से माख उडाने की शक्ति मेरे में होती तो अभी मेरे मुह पर एक कुत्ता पिशाब कर गया, उसको ही नहीं हटा देता ?"

अब मेरे हिन्दुस्तानियो! जरा विचार करो। हमारी यह दशा है। बैठे बैठे खाना मिल जाय तो महेनत करना नही चाहते। क्या यह निन्दित नही है। इसे छोडदो। मैदाने जग मे आओ। मानाकि बेकारी और महगाई बहुत है, फिर भी हिम्मत न हारो। मिहनत मजदूरी करके पेट भरो। पत्थर तोडकर भी पैसा पैदा करो।

धूलिया में मेरा चौमासा हुआ था। हमारे उपाश्रय के पास एक आदमी रहता था। व्याख्यान में आया जाया करता था। घडियों की दुकान थी। एक दिन रात को बैठे बैठे अपने पिछले जीवन का उसने किस्सा कहा। बोला " मैं सूरत का रहेनेवाला हू। मेरे घर में मेरे माता-पिता वगैरा सब थे, परन्तु हम बडे दरिद्र थे। पैसा पास में बिलकुल नहीं था। भूखों मरने की नौबत आ गई। मेरे पर स १।) रुपये से ज्यादा पुंजी नहीं थी। मैंने सोचा मुझे क्या करना चाहिये ?। वहां एक घडी सुधारनेवाला था। उससे घडी सुधारना सिख लिया। दो तीन घडी वहां सुधारी और जब मेरे पास बम्बई जाने की खर्ची हो गयी। मैं बम्बई गया। २५-५० घडी वहां सुधारी, वहां से मद्रास

मद्रास से रंगून। इस तरह सारे हिन्दुस्तान में घूमा। आज मेरे पास लाख देढ लाख रुपियों की घडियाँ हैं, एक कम्पनी का मालिक हूं।"

सवा रुपये की मुडी में एक पुरुषार्थी मनुष्य पुरुषार्थ करके कितना आगे बढ सकता है, इसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त आपके सामने है। इसलिये आप पुरुषार्थी बनिये। सटे जैसे निन्दित कार्यों को छोडिये। सटा यह भी एक जआ ही है। कितना बूरा व्यसन है? उस व्यसन से बचिये।

जूए का पैसा पुरानी सारी लक्ष्मी को बरबाद कर देता है। भले ही आप ऊंचे से ऊंचे कपडे न पहिन सके। दाल रोटी में ही मस्त रहें। लेकिन जुए का पैसा कभी न रक्खें।

दूसरा व्यसन मांस खाना

दूसरा व्यसन है मांस खाना। मांस खाना यह मनुष्य जाति के लिये सर्वथा अनुचित है। पशु जाति में भी सभी मांस नहीं खाते। प्रकृति ने दांत, जिह्वा, तथा दूसरी अनेक बातें भिन्न बनायी हैं, जिस के कारण मांसभक्षी और वनस्पति आहारी-निरामिषभोजी का भेद पड़ता है। शेर, कुत्ते, बिल्ली आदि मांसाहारी जानवर और हाथी, गाय, भेंस, घोडे आदि वनस्पति आहारी जानवरों में यही तो भेद है। मनुष्य की रचना शुद्ध निरामिषभोजी की है। खूबी तो यह है कि जानवर अपनी मूल प्रकृति को नहीं छोड़ते, लेकिन मनुष्य लालचों में आकर अपनी प्रकृति को छोड़ देता है। यूरोप ठंडा देश है, और मांसाहार वहां है, लेकिन वहां के लोग अब समझने लगे हैं कि मांसाहार हमारी प्रकृति से विरुद्ध है। इतना ही नहीं, मांसाहार की अपेक्षा फलाहार हमारी ताक़त को बढानेवाला है। यही कारण है कि वहां मांसाहार-निषेधक अनेक सोसाइटियां स्थापन हो रही हैं। और जोरों से वेजीटेबल खुराक का प्रचार कर रही हैं। मांसाहार तामसिकता को बढ़ाता है। मनुष्य के लिये तामसिकता उपयोगी चीज नहीं है। जानवर वनस्पति खाकर के ही अपने मांस को पुष्ट बनाते हैं। जिस वनस्पति से जानवर अपने मांस को पुष्ट करे, उन्हीं जानवरों का मांस नहीं खाते हुए, उन वनस्पतियों को ही खाकर के अपने मांस को, अपनी ताकत को, अपने वीर्य को क्यों न पुष्ट किया जाय?

तीसरा व्यसन सुरा

इसी प्रकार शराब भी एक भयकर व्यसन है। पैसे की बरबादी, मानवता का नाश इसी शराब के कारण से होता है। इस विषय में सर्वस्थान पर उदाहरण मौजूद है। राजाओं का राज्य गया शराब के कारण। माता, बहिन और पुत्री के साथ में भी मनुष्य बुरा व्यवहार करता है शराब के नशे में आकर। इस पर क्या विशेष कहा जाय? कहने की जरुरत भी क्या है?।

चौथा व्यसन वेश्यागमन

चौथा व्यसन है वेश्यागमन। इस विषय पर बहुत कुछ कहा गया है और समय पर कहा जायगा। जग प्रसिद्ध यह बुरा व्यसन होते हुए भी आज कुत्तों की तरह से कई लोग वेश्या के दरवाजे खटखटाते रहते हैं। जाति, धर्म, जीवन सबको कलंकित करना, पतित करना, इससे बढ़कर और क्या पाप हो सकता है?

पांचवा व्यसन शिकार

पांचवा व्यसन है शिकार। किसी भी जीव के प्राणों की हानि पहुचाना इसी का नाम है शिकार। रूढी में पशु, प्राणियों की जान लेना उसको शिकार कहते हैं। शौक से, जिह्वेन्द्रिय की लालच से, अपने विनोद के कारण कई लोग पशु पक्षियों का शिकार करते हैं। खास करके क्षत्रिय लोग शिकार करते हैं। क्षत्रिय भाई, राजपूत (राजाओं के पुत्र) असहाय, निर्बल, निर्दोष गरीब जानवरों को, जो उनसे डरते हैं, घास खाकर अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हैं, ऐसे बिचारे गरीब मूक जानवर हिरन, खरगोश को मारकर अपनी बहादूरी बतलाते हैं, अपना क्षत्रियपन बतलाते हैं, परन्तु कवि लोग तो कहते हैं-धिक्कार है ऐसे क्षत्रियत्व पर, ऐसी बहादुरी पर, और ऐसे पौरुष पर। क्षत्रियों का धर्म है रक्षण करने का, बिचारे मूक जानवरों को त्रास देने का नहीं।

निर्बल, मूक जानवर कवि की भाषा में ऐसे बहादुर क्षत्रिय को कैसे धिक्कारते हैं जरा सुनिये—

रसातलं यातु यदत्र पौरुषं, क्व नीतिरेषाऽशरणो ह्यदोषवान् ।
निहन्यते यत् बलिनातिदुर्बलो, हहा ! महाकष्टमराजकं जगत् ॥

शिकारी क्षत्रियों को ललकार कर पशु कहता है: "हे क्षत्रिय! तुम्हारा यह

पुरुषार्थ रसातल में चला जावे। हम जैसे अशरण निर्दोष पशुओं की हत्या करके कौनसा पुरुषार्थ तुम दिखलाते हो ?। तुम्हें हजार बार धिक्कार है।

क्षत्रिय पूछता है: "तब हमारी बहादुरी दिखलावें कहां ?" पशु कहता है:

पदे पदे सन्ति महारणोत्कटा, न तेषु हिंसा रस एष पूर्यते ?
धिगिदृशं ते नृपते ! कुविक्रमम्, कृपाश्रये यः कृपणे मृगे मयि ॥

अगर सच्चे माई के लाल हो, सच्ची क्षत्रियाणी की कोंख से जन्मे हो, तो जगत् में बडे बडे भड बहादुर शुरवीर मोजूद हैं। बाहर रण के मैदान में खडे हैं। वहां जाओ और अपनी बहादुरी बतलाओ। और आजकल लडाई हो रही है, मैदान में ललकारो उन दुश्मनों को। जाओ तो जरा उसके पास ? क्यों हम मूक जीवों पर अपनी बहादुरी दिखलाते हो ?। हम तो घास खानेवाले हैं। पुराने जमाने के सच्चे क्षत्रिय तो थोडी देरके लिये भी घास मुंहमें रखकर अपने सामने आनेवाले अपने दुश्मन को भी क्षमा कर देते थे। उनपर दया कर देते थे। तब हम तो रातदिन घास खाते हैं। हमें मारने से तो तुम्हारा क्षत्रियत्व कभी नहीं शोभता। तुम्हारा धर्म क्या था ? मालूम है ? सुनो-कवि कहता है:—

वैरिणोऽपि विमुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहारा सदैवेते हन्यन्ते पशवः कथम् ॥

दो राजाओ में लडाई हो जाय, मैदाने जंगमें दोनों एक दूसरे का कत्लेआम करें। हजारों-लाखों आदमी कट जाएं। हजारों घर बरबाद हो जाएं, हजारों क्षत्रिओं का सुहाग लूट जाय, परन्तु एक राजा मुंह में तृण रखकर हथियारों को छोडकर, दूसरे समर्थ क्षत्रिय राजा के सामने जाकर खडा हो जाय, और यह दिखलावे कि, मैं तुम्हारा पशु हूं, तो वह क्षत्रिय राजा उसे क्षमा कर दे। छोड़ दे। उसका राजपाट उसे लौटा दे, हजारों का खून हो गया, लाखों विधवाएं हो गयी, परन्तु वह अपना धर्म निभाता है। एक क्षण के लिये मुंह में घास लेकर सामने आनेवाले को क्षत्रिय क्षमा करना अपना धर्म समझता है, तो हम (पशु-जानवर) तो उम्र भर घास खानेवाले हैं। हमें मारना क्षत्रिय का धर्म कैसे हो सकता है ?।

प्यारे भाईयों ! आपको भी यही कहूंगा। जिन्होंने आप का नुकसान नहीं किया, आपके ऊपर विश्वास रखकर कोई आपकी दुकान पर सोदा लेने, कपडा खरीदने या

कोई भी चीज लेने आया, वह गरीब है, दुःखी है, न जाने किस आशासे आपकी दुकान पर आया है, उसकी आंखों में धूल डालकर उसको ठग लेना, १६×५=८२ और दो रक्खे छूटके, बाकी रहे ८४ । लावो भाई ८४ । तो इस तरह उनके साथ बेइमानी अनीति करना, आपकी वीरता नहीं । यह आपका धर्म कदापि नहीं। यहभी शिकार ही है।

छट्ठा व्यसन चोरी

चोरी के तरीके जुदा जुदा होते हैं । चोरी करनेवाला चोरी करता है । शहेर से बहार जंगल में चोर मिलता है । आप से कहता है " सारा जेवर-धन सब यहां रख दो । हमें दे दो । नहीं तो तुम्हें मार देंगे "। आप अपने हाथों से सब धन-जेवर उन्हें दे डालते हैं । इसको आप चोरी कहते हैं । यह चोरी समझी जाती है ।

सेठ साहब मकान में सोए हुए हैं । तिजोरियों में धन-माल रक्खा है । उस समय चोर आता है और आपके सामने पिस्तोल दिखाकर आप से तिजोरी की चावी मांगता है । आप फौरन दे देते हैं और अगर चोर तिजोरी खोलता न जाने तो आप खोलकर सब कुछ मालमत्ता उसकी जोली में डाल देते हैं । सोचते हैं बचेंगे तो और कमा लेंगे । इसको भी आप चोरी कहते हैं ।

लेकिन हमारे भाई, दुकानों पर बैठकर लोगों की आखों में धूल डालकर अनीति का जो पैसा उनसे छीन लेते हैं । क्या यह चोरी नहीं है ? । इसको चोरी क्यों नहीं कही जाती ? । इस चोरी से जरूर बचिये । किसी की भी इच्छा विरूद्ध बिना पूछे किसी भी तरीके से दुसरे की चीज लेना उसका नाम है चोरी । चोरी का धन कभी नहीं रहता ।

सातवाँ व्यसन परस्त्रीसेवन

इस पर भी बहुत कुछ कहा गया है । गृहस्थ गृहस्थ धर्म में रहना चाहे तो उन्हे स्वस्त्री सन्तोष रखना चाहिए

सज्जनो आप अपने आत्मा को शुद्ध करना चाहते हैं, जाति विगेरा में प्रतिष्ठित रहना चाहते हैं, पवित्र भावनाए, पवित्र मनोबल, और धर्म के आचरण की योग्यता प्राप्त करना चाहते है तो इन सात व्यसनों से सर्वथा दूर रहिए ।

भाईओ और बहनों !

संसार की यात्रा सफळतापूर्वक चलाने के लिये शास्त्रकार अब १२ वॉ गुण बतलाते हैं:

बारहवा गुण: व्ययमायोचितं कुर्यात् ।

अर्थात् आमदनी के प्रमाण के अनुसार खर्च करना चाहिये । ५० की आवक एक आदमी को है और खर्च १०० का करता है तो वह आदमी क्या कर सकता है ?। सिवाय इसके कि कर्ज करे । इधर लेता जावे, उधर देता जावे । इस तरह लेते देते कुछ समय होने के बाद सब मामला साफ । अपनी इज्जत बिगाडे, लोगो में निन्दा के पात्र बने और दिवाला निकाले । मुकदमा चले, झगडाबाजी हो ।

ये सब बातें क्यों हुई ? पता है ? आवक के प्रमाण में खर्च नहीं किया और न तरीका जाना । आजकल महंगाई का जमाना है और किसी को बहुत थोडी तनखा मिलती है । उसकी आमदनी बहुत थोडी है, सारे घर का खर्च निकालना मुश्किल हैं । परन्तु मैं कहता हूं, इतना सब कुछ होते हुए भी शायद है कुछ मुसीबतें उठानी पडें । अगर आप लोग अपनी सच्ची आवश्यकताओं का पूरा पूरा ध्यान रखकर खर्च करें, तो उतनी मुसीबतें नो कभी नहीं उठानी पडेगी, जितनी आफतें आज उठानी पडती हैं ।

मान लीजिये आप कोई चीज बाजार में खरीदने गये । रुपये दो रुपये या ८ ही आनेकी सही । दुकान के सामने खडे हैं । सोचिये कि इस चीज के बिना मेरा काम चल सकता हैं कि नहीं । जब यह चीज नहीं थी, उस वक्त काम कैसे चलता था ?। इस विचार पर आप अपने अंतरात्मा की राय लीजिए । अगर आवाज यह कहे कि इसकी मुझे कोई जरूरत नहीं, मेरे घर का काम जैसा चलता है, यह नहीं आवेगी तब भी

चलेगा। तो फिर इसको नहीं लेना चाहिए। बस मामला खतम। इस पर आप जरूर चलिये। आपकी दिक्कतें बहुत कम हो जायगी।

अकबर के समय का व्यय-

अपने पुराने लोग कभी अनावश्यक खर्च नही करते थे। ३००-३५० वर्ष की बात है। एक मनुष्य की जरूरत कितनी थी? । इतिहासकार ब्यौरेवार पाई पाई का हिसाब बतलाते हैं। साडे छ साढे छे आने के अन्दर एक महीने तक एक आदमी दाल-भात-रोटी-शाक, जैसा कि आजकल एक अच्छा श्रीमन्त खाता है, खा सकता था। अकबर के समय की बात है। आप को यह सुनकर ताज्जुब होगा।

आज तो साढे छे आने तो आप के लिए एक दिनमें ही नहीं, एक कप चाय मे ही निकल जाता है। अन्ट-सन्ट निरर्थक चीजें पेट में भर लेते है।

आज भारत मे नाना प्रकार की व्याधियां फैल गयी हैं। इसका कोई कारण अगर है तो यही कि फिजूल निरर्थक चीजें हम अपने पेट में डाल देते है। दूसरा कोई कारण नहीं।

लोग कहते है बम्बई में पानी लगता है। ६ महिने रहकर ईन्दौर आये, कई रोग लग जाते हैं, तपेदिक हो जाता है। मैं पूछता हू दुनिया भरके लाखो आदमी (२० लाख की आबादी गिनी जाती है) वहा रहते है, उनको नहीं लगा-तुम्हे क्यो लगा?

सच्ची बात यह है कि जीभ पर काबू नहीं रखा। बाजार में गये चीवडा लिया, कभी कुछ लिया, कभी कुछ। बस, पेट में भरते जाते हैं, होटलो में जाते है, इधर जाते है उधर जाते हैं, बस दिन भर जैसे मशीन हो, उसमें ये सब कुडा भरते ही गये, बस यही कारण है पानी लगने का।

हमारे गुजराती भाईयो की अपेक्षा मारवाडी भाईयो के शरीर मजबूत होते हैं। मैं तो एक ही नतीजा निकालता हू कि-गुजराती लोग खाने पीने में चट्टू हैं। दिन भर वे खाते ही रहते हैं।

विद्यार्थीओ की फिजुल खरची

आप लोगो के लडके अभ्यास करते हैं। श्रीमन्तों के लडके A M A में पढते है। और रोज नयेनये सूट-बुट पहनकर आते हैं। अपटूडेट रहते हैं। कसरत

करते समय अलग ड्रेस, कालिज का ड्रेस अलग, सोने का ड्रेस अलग, बहार जाते समय अलग ड्रेस, स्नान का ड्रेस अलग, भिन्नभिन्न पोशाके पहनते हैं। अब हमारे गरीब विद्यार्थी, जो दूसरों की स्कालरशीप लेकर कालिजों में पढते हैं। वे कहेंगे कि हमें भी अलग अलग ड्रेस चाहिये। हमें भी नये नये बूट-सूट चाहिये। क्योंकि हमें भी इनकी सोसायटी में रहना है। अब इसका क्या होगा ? इसका आप विचार कर लीजिये। भाई साहब के घर में तो लदीएं ऊंधी पडी हैं। दूसरों के पैसे से पढ़ते हैं। फिर भी कई जात के बूट-सूट चाहिए ही ? कुछ भी विचार आता है ?

जीवन में बहुतसी निरर्थक बातें घुस गयी हैं। हमें इन निरर्थक आवश्यक्ताओं को, जो हमने बडों के देखादेखी बढाली है, छोड देना चाहिये। तभी हम सुखी रह सकेंगे।

इसीतरह अगर श्रीमंतों के घरों की स्त्रियों को देखकर, एक २५, ३० मासिक कमानेवाले क्लार्क या गुमास्ते की पत्नी भी कहे कि-"मुझे भी एसी ही साडियाँ चाहिये, शृंगार चाहिये, बंगडीयां चाहिये" तो यह बात कहांतक उचित हो सकती है ? आप विचार करले।

शास्त्रकार तो पुकार पुकार कर कह रहे हैं-'व्ययमायोचितं कुर्यात्'। अपनी आवक को देखकर खर्च करो। निरर्थक आवश्यकताएं न बढाओ ? अपनी थोड़ी आवश्यकताओं में ही सन्तोष करो। परन्तु आज सन्तोष नहीं। लाखों रूपये की कमाई होते हुए भी सन्तोष नहीं। और गरीब को भी सन्तोष नहीं। एक जमाने में विद्यार्थी पढते थे। कोई गृहस्थ उन्हें १०-१५ रुपया छात्रवृत्ति देदिया करते थे। लेकिन इन १०-१५ में से भी वह २-४ रुपया बचा लेता। अगर ब्राह्मण हुआ तो आश्रमों में भोजन कर लेता था। रात को पढते समय बत्ती का खर्च नहीं रखते थे। थोडासा घास रख लेते थे। थोड़ासा जलाया, बस उस से जो उजाला हुआ, अपना पाठ देख लिया, और उसे रटते थे। फिर जला लिया, फिर थोड़ा देख लिया। इस तरह पाठ याद करते थे।

उनकी जरूरतें बहुत थोडी थीं। सिर्फ १।२ धोती, १-२ कमीज-कुर्ता, और १-२ टोपी, और फिर जरूरी किताबें और भोजन। निरर्थक खर्च बिलकुल एक पैसा नहीं करते थे। विद्याध्ययन करते थे और उच्चकोटि के विद्वान् बनते थे।

आज हमारे बड़े बड़े श्रीमंतो की भी यह दशा हो गयी है कि फिजूल खर्ची अनाप-शनाप बढती जा रही हैं। यही कारण है कि पैसा आते हुए भी उनकी चिल्लाहट, इनका

रोना मरे की भांति मिटता ही नही। रोते ही जिंदगी बीतती है। और रोते ही मरते है। हसकर जीने का तो मानो अधिकार ही नहीं।

लक्ष्मी के चार भाग

इस लीये शास्त्रकार कहते है—व्ययमायोचित कुर्यात्। आमदनी के पमाण में खर्च करो। मैंने शायद एक दिन पहेले कहा था कि-मनुष्य को अपनी लक्ष्मी के चार विभाग कर देना चाहिये।

पाद् आयात् निधिं कुर्यात्, पाद वित्ताय खड्डयेत्।
धर्मोपभोगयो पादम्, पाद भर्तव्यपोषणे॥

अर्थात्—अपनी आमदनी का चौथा हिस्सा भडारमें रक्खे। चौथा हिस्सा व्यापार में लगावे, चौथा हिस्सा धर्म और घरखर्च में रक्खे और बाकी का चौथा हिस्सा जिनका हमारे पर आधार है-ऐसी बहिन, बेटी, नौकर, चाकर आदि उनके पोषण के लिये रक्खे।

इस तरह व्यवस्थापूर्वक अपनी गृहस्थी को चलावे। हम कहते हैं "भाई, आप की आमदनी दो तीन हजार की है। पांचसो फलाने धर्मकार्यमें लगा दो।" कहते है: "महाराज, इतना तो नहीं। कुछ कम कर दीजिये। क्या कम करें? नाटक में, सिनेमा में, ऐश मे, आराम में, भोग विलास म हजारों खर्च करते हैं। अगर कम भी पड जावे तो, उधार लाकर लगाते हैं। ब्याहमें दस बत्तीयाँ से काम चलता है परन्तु फिर भी पचास बत्तियाँ लगावेंगे। इनमें तो एक पैसा भी नहीं कम करेंगे। बल्कि और होगा तो और लगादेंगे।

परन्तु धर्म का कार्य कोई आ पडता है, तो कहते है "ज्यादा नहीं है महाराज! मन्दी आ गयी है। पहले मन्दी नहीं थी।" फिर भले मन्दी में हजारों लाखों कमाते ही जाते हों।

महज, एक बात है गृहस्थों को समार के कार्यो में खर्च करने को पैसा मिलता है, परन्तु धर्म करने को नहीं। समाज हित के लिये नहीं। गरीबों को आराम देने के लिये नहीं। बडी अफसोस की बात है।

इसलिये व्यवस्थापूर्वक अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करना चाहिये।

लक्ष्मी का निवास कहां ?

लक्ष्मी की अगर बढोतरी करना है, तो एक बात याद रखिये, शायद में पहले भी कह चूका हूंगा।

शक्र लक्ष्मी देवी को पूछते हैं:—" हे लक्ष्मी ! तेरा निवास कहां पर है ? " वह कहती है:—

गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र धान्यं सुसंस्कृतम्।
अदन्तकलहो यत्र, तत्र शक्र ! वसाम्यहम् ॥

अर्थात्—

जिस घरमें गुरुओं (गुरुओं माने माता पिता से लेकर तमाम जितने हमारे से बड़े हैं और पूज्य हैं) की पूजा, सत्कार, आदर, सम्मान, बहुमान और विनयादि होता है और अनाज सुसंस्कृत यानि साफ-सुथरा बीना हुआ, नीतिसे पैदा किया हुआ और शुद्ध से शुद्ध आहार होता है। और जिसके घर में दन्तक्लेश नहीं होता है शक्र ! ऐसे लक्षणों से युक्त घरमें मैं वास करती हूं। "

अब घरमें अनाज और भोजन-साफ सुथरा रखना और शुद्ध सात्विक रीतिसे बनाना, यह हमारी बहिनोंका काम है एक बाई ऐसी होती है कि धान को धूल कर के कुटुंब को खिलाती है और एक बाई होती हैं, जो धूलको भी धान बनाकर खिलाती है। यह उनकी चतुराई और अक्लमन्दी पर निर्भर है। शुद्धतापूर्वक किया हुआ भोजन करने से पति, पुत्र, बच्चों के संस्कार शुद्ध और पवित्र बनते हैं। उनकी वृत्ति सात्विक और बुद्धि शुद्ध रहती है।

मैंने कई दफे कहा है; जिस के घर में क्लेश नहीं, भाइयों-भाइयों में, माता-पुत्र में, पति-पत्नी में, सास बहु में, यानि घर के किसी भी आदमी में किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता, संपसे, प्रेम से, रहते हैं। सोचते हैं:-हम क्यों पैसे के लिये या किसी चीज के लिये झगडें ?। क्यों अपने आत्मा को कलुषित करें ?। कर्मबन्ध करें ?। यह लक्ष्मी तो एक को छोडे, दूसरे को छोडे, हमें भी छोड जायगी। यह तो हमें छोडकर चली जाने की ही है। फिर हम क्लेश क्यों करें ?। "ऐसे विचार जिस घरमें रहते हों, और जहां शुद्ध से शुद्ध नीति का पैसा हो, शुद्ध से शुद्ध नीति का अनाज और रोटी होती हो, उस घर में लक्ष्मी का वास हमेशा रहता है। लक्ष्मी ऐसे घरको कभी नहीं छोडती।

इसलिए लक्ष्मी कहती है –" हे शक्र ! ऐसे घर को मैं नहीं छोडती । मैं वहां पर रहती हू ।"

कृपण के वहा लक्ष्मी

एक कविने एक सुन्दर कल्पना की है । पूछता है लक्ष्मी से.–" हे लक्ष्मी ! ज्यादातर कृपण के घर में ही क्यो रहती है ?"

लक्ष्मी जवाब देती है:—

" शूर त्यजामि वैधव्यात्, उदार लज्जया पुनः ।
सापत्न्यात् पडितमपि, तस्मात्कृपणमाश्रये ॥

अर्थात्-शूरवीर आदमी हमेशा युद्ध में जाया करते है । अगर उनकी मृत्यु वहा हो जाय तो मैं विधवा हो जाऊगी । इसलिए शूरवीर के पास नहीं रहती । और उदार पुरुष के पास भी मैं नहीं रहना चाहती, इसलिए कि, वह जिसको तिसको ऐरे गैरे, न जाने कैसे कैसे छोटे गरीब दुःखियो दीनों को दिया करता है । मुझे जहां तहां भटकना पडता है । यह भी मेरे लिये ठीक नहीं । मैं मालिक को कैसे छोड़ ? पति को छोडकर जहा तहा भटकना सती स्त्रियो का काम नहीं । और पण्डित-विद्वान् के पास भी जाने से डरती हू । क्यों कि वहा मेरे लिये साक्षात् सौत खडी है-सरस्वती है । सौत से सभी को डर लगता है । इसलिये कृपण के पास ही रहती हू । कभी मुझे छोडे ही नहीं । वह अपने ही पास रखता है । मुझे न कहीं जाने दे, और न भोगे भी । नपुसक की तरह बिचारा हाथ फिरा कर के ही-स्पर्श मात्र से ही सतोषी रहता है ।

प्यारे मित्रो !

लक्ष्मी हमारे जीवन-विकास का साधन है-साध्य नहीं । अगर लक्ष्मी नहीं छोडती है तो मजबूरन हमें तो एक दिन छोडकर चले जाना है । हमें उसके पास हमेशा कोई नहीं रहने देगा । बुद्धिमानी तो इसीमें है कि-इसका खूब सदुपयोग करें । जीवन-विकास का साधन है, इस साधन को खून साधें । जिससे हमारे जीवन में सुख की प्राप्ति हो । जितनी आमदनी हो उसके प्रमाण में अवश्य खर्च करें । न कृपणता करें, न आवक से ज्यादा खर्च कर के दुःखी हों ।

अब तेरहवाँ गुण कहते है ।

तेरहवाँ गुण वेष विभवानुसार "

हमारे बहनों और भाइयों के लिये वेष-पोशाक कैसी होनी चाहिये ? शास्त्रकार

कहते हैं,–" जैसा हमारा द्रव्य हो, जैसी हमारी आमदनी हो, जैसी हमारी श्रीमन्ताई हो, उसी प्रकार का हमारा वेष भी रहना चाहिये ।

वेष बडी महत्व की चीज है । एक साधु अगर वह अपने साधु वेष में है, तो उसका महत्व है । परन्तु अगर एक मनुष्य गृहस्थ के वेषमें रहकर साधुपने का आचार भी पालता है, तब भी उसका महत्त्व नहीं ।

वेषका महत्व

कई लोग कहते हैं कि " वेष की क्या जरुरत ? गुण और आचार होना चाहिये । फिर वह चाहे गृहस्थ के वेष में भी क्यो न हो " । ऐसा हरगिज नहीं हो सकता ।

आचार के साथ, धर्म के साथ, विधि के साथ में वेषकी भी जरुरत है । फिर मनुष्य अपनी अपनी हैसियत के अनुसार अपना वेष नहीं रखता है, तो संसार में वह निन्दा के पात्र बनता है । जैसे किसी के पास कौडी नहीं, वह जैंटिलमेन बनकर फिरता है, वह निन्दा का पात्र बनता है । बलकि सन्देह का पात्र भी होगा । लोग शंका करेंगे कि यह कहां से ऐसे बाबूसाहब बन गये ? कहीं से धाप मारी होगी । इसी प्रकार एक लखपति धनाढय है, परन्तु फटाटूटा मैला चैला वेष रखता है, तो उसकी भी लोग निन्दा करेंगे । कहेंगेः कितना मूंजी है ? कितना दरिद्री है ? । इसका पैसा क्या काम आवेगा ? यों ही मर जायगा । कपडा भी अच्छा नहीं पहनता, कुरता भी नहीं पहनता ।

गुजराती के एक प्राचीन कविने कहा हैः–

" अति उद्भटवेष न पहरिये रे लोल ।
नवि धरिये मलीनतानो वेष जो,
हांरे मने संसार शेरी विसरी रे लोल ॥

गृहस्थ को ऐसा उद्भट वेष भी नहीं पहनना चाहिये, जिससे लोगों को टीका करने का मोका आवे । और ऐसा मलीन वेष भी नही पहिनना चाहिये जिस से लोगों के दिल में घृणा पैदा हो ।

मेरी बहनों को इसके साथ साथ एक बात और विशेष कहदूं । बहनें ! इस बाह्य शृंगार की तरफ ज्यादा ध्यान न दें । आपका असली शृंगार है आपका शील । आप इस शृंगार को ज्यादा से ज्यादा बढावें । जितना हो सके, खूब इस तरफ ध्यान दें ।

आपका शील देश, जाति, समाज, मनुष्य, जाति का गौरव है। अब इससे ज्यादा मैं आप को और क्या कहू ?।

अब १४ वाँ गुण कहा जाता है।

चौदहवाँ गुण अष्टभिर्धीगुणैर्युक्त

गृहस्थ को बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होना चाहिये। यह बड़ी जरूरी चीज है। हम में अगर ये गुण नहीं हैं, तो हम धर्म के लायक नहीं बन सकते। बुद्धि के आठ गुण ये है—

बुद्धि के आठ गुण

सुश्रुषा श्रवण चैव ग्रहण धारण तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञान तत्वज्ञान च धीगुणा ॥

सुश्रूषा-श्रोतुमिच्छा सुश्रूषा।

सद्गृहस्थ बनने की इच्छावाले मनुष्य को सबसे पहले धर्म की बातें सुनने की इच्छा होनी चाहिये। इसके बाद श्रवण। सुनने की इच्छा मात्र होनेसे कुछ होता नहीं। उसे सुनना भी चाहिये। साधु, सन्त, महात्मा पुरुषों के पास जाकर कुछ न कुछ धर्म की बातें अवश्य श्रवण करनी चाहिये। परन्तु साथ ही साथ धारण, जो सुना उसको धारण भी करना चाहिये। शब्दो को श्रवण किया है, कानों में लिया है, लेकिन हृदय में धारण नहीं किया तो बेकार है।

आप लोग सुनने की इच्छा जरुर रखते हैं और सुनते भी जरूर हैं—कानों से ग्रहण भी करते हैं, (क्यों कि मैं चिल्ला चिल्लाकर बोलता हू) किन्तु हृदय में धारण करते हैं या नहीं ? यह तो परमात्मा जाने या आप जानें।

मित्रों !

जबतक हृदय में धारण नहीं होगा, वहातक आप का आत्मा का कल्याण कभी नहीं होने का। इसलिये जो बात सुनी उसको धारण जरूर करें। हृदय में धारण करने के बाद उस पर ऊहापोह करने का है। अर्थात् जो बातें धारण की हैं, उनके ऊपर ऊहा और अपोह करें। ऊहापोह का मतलब है कि—उस पर तर्क करें, कहा तक सत्य है, कहा तक यह ठीक निश्चित रूप में है और हम इसे कहा तक ग्रहण कर सकते हैं ?। क्या छोडने लायक है, क्या जानने लायक है और क्या त्यागने लायक है। इसे हेय,

ज्ञेय और उपादेय तीन प्रकार का कहा है। यानि जो धर्मज्ञान सुना है, उस में त्याग करने लायक कितना, जानने लायक कितना, और आदरने लायक यानि हृदय में धारण कर के उस पर आचरण करने लायक कितना इसी को ऊहापोह कहा है।

सन्त, महात्मा, ज्ञानी महाराज जो उपदेश देते हैं, उसमें नाना प्रकार की बातें आती हैं। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, लोक, परलोक, नर्क, स्वर्ग, मोक्ष, पाप, पुण्य इत्यादि बातें आती है। लेकिन इसमें हेय, ज्ञेय, उपादेय क्या है?, कितना है?, इन तीन बातों का ज्ञान आप खुद नहीं करेंगे तब तक कोई फायदा होने का नहीं। आगे है, 'तत्त्वज्ञानं' उपदेश में कथा नहीं, शब्द नहीं, कहानी नहीं, श्लोक नहीं, कविता नहीं, उसमें अर्थ विज्ञान कितना है? उसमें रहस्य क्या है? यह जानना हमारे लिये लाजिमी हैं।

जिस प्रकार दूध दहीं में से मक्खन निकाला जाता है और बाद में उसे गरम कर के घी बनाया जाता हैं, ठीक यही काम तत्त्वज्ञान का है। उपदेशमें तत्त्व क्या है और कितना है? यही जानना आखिरी प्रसंग हैं।

येही बुद्धि के ८ गुण हैं!

बुद्धि हरेक मनुष्य को मिली है। संसार का कोई प्राणी ऐसा नहीं, जिस को बुद्धि न मिली हो। लेकिन बुद्धि का सदुपयोग करना, अपने आत्मा के कल्याण का साधन बनाना, यही सच्चा मनुष्यत्व है।

सुमति का आत्मा को सद्बोध

मनुष्य कुमार्ग में क्यों पड जाता है?

मनुष्यने अपनी बुद्धि का दुरुपयोग किया इसलिये? ऐसी बुद्धि के दुरुपयोग को कुबुद्धि कहते हैं। एक प्राचीन गूजराती कविने कल्पना की हैं कि–

मानो आत्मा की शादी हुई है सद्बुद्धि–सुमति के साथ। अब सुमति यह चाहती है कि–मेरा पति–आत्मा मेरे कहने के मुताबिक रहे और दूसरी तरफ न जाय अर्थात् कुमति का संग न करे।

लेकिन जिस समय आत्मा सुमति का साथ छोडकर कुमति–कुबुद्धि–दुष्ट बुद्धिके साथ जाता है, उसे अपनाता है, तो सुमति अपने प्रीतम–आत्मा से विनंति करती है उसी को कविने कहा है:

हे प्रीतमजी ! प्रीत की रीत अनीत तजी चित्त धारिए,
हे वालमजी, वचन तणो अति ऊडो मर्म विचारिये ।

अर्थात्—सद्बुद्धि कहती है अपने स्वामी–आत्मा को कि–हे प्राणनाथ ! आप विचार करिये, आपने मेरे साथ शादी की है, अपने कल्याण के लिये, हम दोनों के संयोग से आप का कल्याण होना जरुरी है, लेकिन आप क्या कर रहे है ? आप तो मुझे छोडकर दुर्बुद्धि के वहा जा रहे है। आप मेरे वचनों का गहरा अर्थ बराबर विचारना। वह कहता है:—

तुमे कुमति के घर जावो छो,
तुमे कुलमा खोट लगावो छो,
धिक् एठ जगतनु खावो छो, हो प्रीतमजी
अमृत त्यागी विष पीओ छो,
कुमतिनो मारग लीओ छो,
ए तो काम अयुक्त कीयो छो, हो प्रीतमजी,

प्यारे भाईओ, कवि क्या कहता है:–ध्यान दीजिये दुर्बुद्धि में जानेवाले मनुष्य, अनाचार का सेवन करनेवाला मनुष्य, पाप प्रवृत्तिमें पडनेवाला मनुष्य, सद्बुद्धि को छोडकर कुमति के मार्ग पर जाता है, अपने कुल को कलक लगाता है, दुर्जनों की सोबत करता है। यह सब करना, संसार के मनुष्यो का झूठा खाने के बराबर है। अमृत को छोड विष भक्षण के बराबर है।

मित्रो ! सद्बुद्धि आपकी साथी है। उसका सदुपयोग कर लीजिये। अपना जीवन सफल कर लीजिये। जबतक आप इसका सदुपयोग नहीं करेंगे, आपका कर्तव्य क्या है यह नहीं समझेंगे, तबतक बुद्धि आपको मिलना न मिलना समान है।

व्यापार में, रोजगार में, पैसा कमाने में, ऐश आराम में भले ही आप विचक्षण हो, बुद्धिमत्ता दिखलायें। लेकिन अगर समाज में छिन्न-भिन्न दशा करा देते है, समाज के टुकडे टुकडे करादेते है। नानाप्रकार के मतभेद खडा करदेते हैं, अपने स्वार्थ-लोभ के कारण समाज और जाति में भेदभाव पैदा करा देते है, फूट डाल देते है, तो यह बुद्धि नही, दुर्बुद्धि है।

बुद्धि से पैसा पैदा करलिया तो क्या हुआ ? दूसरा कोई काम अच्छा नहीं किया, यह बुद्धि, बुद्धि नहीं है कुबुद्धि है। बुद्धि का बडा भारी दुरुपयोग है।

भाइयो और बहिनो,

चार प्रकार की बुद्धि

कल मैंने बुद्धि के आठ गुणों का वर्णन किया था। संसार के मनुष्यों में बुद्धि अनेक प्रकार की होती है, किसी किसी की बुद्धि का परिचय होने से हम लोग मुग्ध हो जाते हैं। चमत्कारिक बुद्धि कईयो की होती है। शास्त्रकारोंने एक जगह चार प्रकार की बुद्धि का वर्णन किया है:- १ औपपातिकी, २ वैनेयिकी, ३ पारिणामिकी और कार्मिकी। इन चारों प्रकार की बुद्धि उदाहरण के साथ समझाऊं। औपपातिकी का मतलब है, एसी बुद्धि, कि इधर पूछा, और उधर जवाब। अर्थात् हाजिरजवाबी जिसको कहते हैं।

एक राजाने दूसरे मित्र-राजा को चिठ्ठी भेजी:-" तुम्हारे यहांसे एक कुवा भेज दो।"

उस राजाने कुछ भी विचार किये बिना तत्काल जवाब लिखा:-" मेरे कुवेने तुम्हारे गांव का रास्ता नहीं देखा। आप के वहां से एक कुवा लेने को भेज दो, वह आकर ले जावेगा।"

तर्क कुतर्क करने की जरूरत नहीं। समझ गया कि राजाने दिल्लगी की है। हम भी ऐसा ही जवाब दे दें। यह 'औपपातिकी' बुद्धि है। दूसरी है वैनेयिकी-द्रोणाचार्य के पास एकलव्य नाम का एक भील का लडका बाणविद्या सिखने गया। परन्तु इन्कार कर दिया। उसने मिट्टी की द्रोणाचार्य की एक मूर्ति बनायी। और उसीके सामने बाण विद्या सीखा। जब राजकुमारों की परीक्षा होती है, तो वह भील का लडका सब से-अर्जुन से भी बढ़ जाता है।

अर्जुन, द्रोणाचार्य से कहता है:-" महाराज इसने मेरे से भी ज्यादा विद्या सिख ली। ऐसा उपाय करिये कि इसकी विद्या व्यर्थ हो जाय।"

अर्जुन के ऊपर द्रोणाचार्य का पक्षपात था-मोह था। आचार्य भील के वालक के पास आये और पूछा: " यह विद्या तुमने कहासे सिखी ? "

" आपसे सिखी " वालक जवाब देता है। " मैंने कब सिखायी ? " आचार्यने कहा।

भील वालक मिट्टी का पुतला बताता है और कहता है " मेरे गुरु ये है। इनकी आज्ञासे सीखी है। "

द्रोणाचार्य कहते है.- " अगर तूने द्रोणाचार्य से सीखा है, तो द्रोणाचार्य को गुरु दक्षिणा देनी चाहिये। दक्षिणा देना तुम्हारा धर्म है। "

" महाराज ! आज्ञा फरमाईये, मे तैयार हू। बोलिये। क्या दू ? "

" तुम्हारे दाहिने हाथ का अगूठा दे दो। "

बडासा चाकू लेकर अगूठा जमीन पर रखकर ऊपर से झटका मार देता है। अगूठा कट जाता है। उसे लेकर गुरु को देता है। इतनी पढी हुई उसकी वाणविद्या विना अगूठे के निरर्थक होजाती है, लेकिन गुरु के विनय के कारण विद्याभ्रष्ट होने का उसे अणुमात्र रज नहीं-दुःख नहीं। प्रत्युत प्रसन्नता है। भक्ति दिखलाता है। सोचता है: " विद्या नष्ट हो जाये, परन्तु गुरु का विनय न जाये। " इसका नाम है 'वैनेयिकी' बुद्धि। आगे है पारिणामिकी। बहुत अनुभव करने के बाद जो बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसका नाम है " पारिणामिकी " बुद्धि।

एक युवक की शादी थी। बारात जानेवाली थी। युवकोंने विचार किया, ' अगर बुड्ढे साथ चलेंगे, तो ये बुड्ढे न हमें खाने-पीने देगें, न मोज-शौक उडाने देगें। कुछ भी नहीं करने देगें, इसलिए किसी भी बुड्ढे को साथ नहीं लेजाना '।

बुड्ढोंने विचार किया। ये सब लडके है। अभी इनमें अनुभव नहीं। ये सब खुले सिरके लडके वहा जाकर कुछ न कुछ बेइज्जती ही करावेगे। बेहत्तर है हम में से एक तो जरुर जाय। चाहे छिपकर भी जाये। "

बैलगाडीओं में बारात जानेवाली थी। गाडीयों में भडाग्या होता है। उसमें एक बुड्ढा घुसकर चुपचाप बैठ गया। लडकों को कुछ मालूम नहीं पडा।

बारात गाव पहुच गयी। उतारा मिल गया। सब ठहर गये।

लडकी के पक्ष की तरफ से बाजरी के इडे एक टोकरी में भरकर भेजा गया और कहलाया। " इसकी रस्सी बटकर भेज दो, ताकि चवरी बना ली जाय। "

सब लडके एकट्ठे हो गये। सोचने लगे: " इसकी रस्सी कैसे बनेगी ? ' एकने कहा:-'मैं नहीं जानता '। दूसरेने कहा-' मैं भी नहीं जानता '। मैं भी नहीं जानता। बस कोई नहीं जानता।

एक कहता है--" मेरे मेट्रीक तक में यह सायन्स की बात कही नहीं आयी।"

B. A. M A युरोप के इतिहास पढनेवाले सबने कहा:-" हमारे किसी के पढने में नहीं आया। अंग्रेजी वैज्ञानिक पुस्तकों मे येह बातें आयी ही नहीं।"

लडके बिचारे हैरान हो गये। आपस में कहने लगे:-देखो मैंने कहा था, एक बुड्ढे को लेलो। आता तो इस समय काम में आजाता। क्योंकि उनका तो रातदिन का अनुभव रहा होता है।"

दूसरेने कहा:-" तुमने किसीने माना नहीं, बुड्ढा होता तो कुछ न कुछ रास्ता निकाल ही देता।"

इतने में बुड्ढेने भंडारिया खड़खड़ाया। सोचता है: "जब मेरा काम है बहार निकाल।" अरे काका, अब तो आप आये हैं। हमारी इज्जत रखना आपके हाथमें है। यह झूंडे का टोकरा भेजा है, कहते हैं: रस्सी बनाकर भेजो। अब कैसे इसकी रस्सी बनावे ?। हमारी तो समझ में नहीं आता। हम में से तो किसीने नहीं पढ़ा। तुम्हीं बताओ काका ?" एक लडका बोला।

" हरामखोर, इतना भी नहीं जानते। कहला दो उन्हें कि-" तुम्हारे वहां से चलनी में पानी भरकर भेज दो। तब हम रस्सी बनाकर भेज देंगे। उसके विना रस्सी नहीं बनती।" बुड्ढे काकाने उन युवकों को सलाह दी।

आदमी कन्या के घर पर गया और जाकर कहता है: " चलनी में पानी भरकर मंगवाया है और कहा है जब चलनी में पानी भरकर आजावेगा तब रस्सी बनेगी।"

लडकी के पक्षवालोंने सोचा: " इन लडकों के साथमें कोई न कोई बुड्ढा जरूर आया है। यहां लडकों की बुद्धि कभी नहीं चलती। उसीने यह तरकीब निकाली है।" खेर,

कहने का मतलब यह है:-अनुभव के बाद जो बुद्धि स्थिर होती है, उसे कहते है ' पारिणामिकी ' बुद्धि। आगे है-" कार्मिकी ' बुद्धि।

एक सुथार का लडका जन्म से सुथार नहीं बन जाता है। लेकिन बचपन से बाप के साथ बैठकर सीखता है। कुछ न कुछ करता ही रहता है। धीरे धीरे कुछ वर्षों में वही सुन्दर से सुन्दर कारीगर बनजाता है।

जन्म से शिल्पकार नहीं बनता। धीरे धीरे कोशिश करते करते एक जबरदस्त मूर्तिकार बनजाता है।

इसका नाम है कार्मिकी बुद्धि। मित्रो! यह चार प्रकार की बुद्धि मनुष्यों को मिली है। लेकिन उस बुद्धि का विकास करना-अपने आत्मा का कल्याण करना यह मनुष्य का धर्म है। आप इस पर आचरण करें, आपका कल्याण होगा।

अब १५ वा गुण करते हैं—

" शृण्वानो धर्ममन्वहम् "

अर्थात्—हमेशा धर्म का सुननेवाला हो। मनुष्य पंडित है, विद्वान् है, ज्ञान का प्रभूत खजाना भरा है, किन्तु उसका उपयोग नहीं करता। धर्म सुनने की इच्छा है, घर मे बैठे डींगे हाके " मैं तो इतना पढा हू, इतना विद्वान् हू,-ज्ञानी हू "। धर्म को सुनने के लिये कतई समय नहीं मिलता। धर्म की जिज्ञासा नहीं रहती है। धर्मश्रवण नहीं करता है, वह मनुष्य, परिणाम मे अपने आप को इतना विद्वान् समझ लेता है कि उसे किसी बात की जरूरत नहीं। धर्म में विशेष बात क्या आती है? और इसी तरह की बातें करने लगता है।

हरेक मनुष्य को, चाहे वह कितना ही समझदार ज्ञानी हो, चाहिये कि, कहीं न कहीं जाकर धर्म को सुने। जिस को कुछ नयी बात सीखनी है, चाहे कितना ही विद्वान् पंडित या ज्ञानी हो, उस मनुष्य को चाहिये कि कहीं भी कथा होती हो, सुनने को चले जाना चाहिए।इसमें न पोझीशन का ख्याल देखो, न किसी बात का। हमें तो सीखना है, हम जानते हैं उस मे और नई बात दूसरों से मिल जाय। जीवन सीखने के लिये है, सिखाने के लिये नहीं। वह शिक्षक शिक्षक नहीं, जो विद्यार्थियों को पढाते समय यह न समझे कि, मैं खुद सीख रहा हू।

एक ही विषय जिसका उसने खूब अभ्यास किया है, उसीको पढाते हुए, न मालूम किस विद्यार्थी की बुद्धि मे क्या तर्क निकल आवे!। कौनसी नई बात का

सुझाव किसी के दिमाग में आजावे, कोई पता नहीं चल सकता। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि धर्मवार्ता हमेशां सुनता रहे।

चार विकथाएं

धर्मवार्ता सुनने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य संसार की और बातों को छोड दे। हमारे यहां चार विकथाएं कही हैं। उनका परित्याग करदें। वे यें है—

(१) स्त्रीकथा, (२) देशकथा, (३) भक्तकथा, (४) राजकथा।

आजकल हमारे नवयुवक दोचार अगर कहीं मिल जाते हैं, तो और कोई धर्म-ज्ञान चर्चा की बात करना तो दूर रहा। स्त्रियों के रूप, रंग, राग वगैरह की बातों करेंगे। मनोवृतियों चंचळ बनाने के, सिवाय परिणाम क्या आवेगा?

खूब याद रखिये कि जैसे परमाणु हमारे शरीर पर आजावेंगे, उसका असर हमारे मन पर हुए बिना नहीं रह सकता।

साधुओं के लिये इस तरह की कथाएं करने के लिये शास्त्रकारोंने सख्त से सख्त निषेध किया है। अगर चारित्र का रक्षण करना है तो ऐसी बातों से हजार कोस दूर रहना चाहिए। आगे है देशकथा। बेशक, ऐसे मनुष्यों को, जिन्होंने देश के उद्धार की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले रक्खी है, देश के विषय पर विचार कर सकते हैं। उनके लिये जरूरी है-वह क्षंतव्य है। परन्तु हम विना प्रयोजन, दुकानों में देखो, उपासरे में देखो, धर्मस्थानो में देखो, घरों में देखो, जहां देखो वहां, देश की कथायें होती ही रहती हैं, फलाने देश में यह हो रहा है, फलाने में यह। उस देश में यह हुआ-क्या हुआ? कैसे हुआ? कहां हुआ? आदि आदि फिजुल बातें करते हैं।

ये बातें करनेवालों को सोचना चाहिये कि मैं देश की कुछ भी सेवा कर सकूं। ऐसा कौनसा कार्य मुझे करना चाहिये। कुछ व्यवहारिक (Practical) काम करूं। कोरी बातों में कुछ नहीं धरा। कोरी बातें करना फिझुल है।

खादी को अपनावें

मैं एक सस्ती और सच्ची देश-सेवा करने की एक तरकीब आपको बतलाऊं। अगर देश प्रति आपके दिलो में सच्चा प्रेम आप चाहते हैं कि आपके देश के गरीब सुखी रहें और आप भी सुखी रहें। इतना ही नहीं, आपका जीवन भी पवित्र और सात्विक-उच्च विचारोंवाला बने और आपको पाप भी कम लगे। तो इसका उपाय है

कि-आप खादी पहनें। खादी पहनने के लिये सच्ची प्रतिज्ञा आप अपने जीवन में कर लें। बस आपका देश के प्रति जो जो कर्तव्य है, बहुत कुछ पूरा हो जायगा। खाली बातें करने से कुछ न होगा।

हमारे लोगों को बातें करना बहुत आता है। कुछ क्रियात्मक सेवा करने की हिम्मत नहीं। हम कायर और बुजदिल हैं। हमारे लिये यह शरम की बात है।

इतना तो त्याग करलो। नाटक और सिनेमाओं में, रंडियों में भोगविलास में नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में, हमारों लाखों खर्च कर देते हैं, लेकिन अगर खादी पहनने को कहें तो कहते हैं- ' महाराज! खादी में खर्च ज्यादा होता है "। परन्तु मैं कहता हूं मानलो, खर्च कुछ ज्यादा है। आप हजारों लाखों कमाते हैं, श्रीमंत हैं। हजारों रुपये देश के लिये खर्च भी करते हैं। देश के लिये-त्याग करने के लिये अगर कुछ और खर्च होजाय तो कौनसी बुरी बात ? । फिर यह तो आपके धर्म की दृष्टि से भी शुद्ध और सात्विक चीज है।

पवित्रता और शुद्धता की दृष्टि से देश के लाखों गरीब भाइयों के भूखे पेट में अगर कुछ जाय तो पुण्य की दृष्टि से, गरीबों के पालन की दृष्टि से, कम से कम जैनों को तो मैं कहूंगा जरूर खादी पहनना चाहिये-अगर हम दीनों के दुःख से दुःखी होते हैं, करुणा और दया अगर हमारे दिलों में हैं, और हम अहिंसक महावीर के अनुगामी होने का दावा करते हैं, तो हर हालत में खादी पहनना आवश्यक है। हमारे देश का स्वाभिमान इसी में है। हमारी संस्कृति का गौरव इसी में है।

हमारे यहां पर एक फैशन चला है। क्या जैनों में और क्या ब्राह्मण, वैष्णवों में-सभी में, लोग मानते हैं कि "रेशमी वस्त्र का कपड़ा बड़ा पवित्र होता है " अपनी स्त्रियों की साड़ियाँ लावें, तो भी रेशमी। हमारे यहां चदरे वगैरह धर्मकार्य के लिये बनते हैं वे भी रेशम के पूजा के लिए। कपड़े पहनें तो रेशम के। रेशम शुद्ध और बाकी सब कपड़े अपवित्र। खादी भी अपवित्र!। कितनी शरम और लज्जा की बात है? मालूम होता है हमने अपने विवेक, अक्ल और समझदारी को बिल्कुल निकाल बाहिर किया है।

रेशमी वस्त्रों का त्याग करो

मेरे प्यारे भाईयों और बहनों, जो कुछ मैं कहता हूं-समझो, कहांतक इसीतरह रूढ़ियों में पड़े रहोगे? अपने असली धर्म को पहचानो। आज आप कहां हो, सोचो, जरा समझो विचार करो किधर दौड़ जा रहे हो।

जानते हैं आपका रेशमी कपडा कैसे बनता है? संवत् १९६४ की बात है। बंगाल में रेशम के कारखाने हमने खुद अपनी सगी आंखों देखे हैं। हम ३०-३५ लोगों मे से ५-७ आदमी तो देखते ही वहीं मूर्च्छा खाकर गिर पडे। यह प्रसंग मुझे अबतक याद है। और उसी वक्त हम सबने रेशमी कपडा वापरने का त्याग किया था। हजारों लाखों और करोडों ही नहीं, अरबों-कीडों को मारकर यह रेशम बनता है। चौरेन्द्रिय कीडों से यह बनता है।

भगवान् के ऊपर रेशम के कपडे ओढाने बिछानेवाले अहिंसकों से मैं कह रहा हूं कि-देश में जो करोडों-अरबों चौरेन्द्रिय जीवों को मारकर कपडा बनता है, ऐसे रेशम के कपडे अपने धर्मकार्यों में उपयोग करें यह कहांतक ठीक है? कहां रही हमारी पवित्रता! कहां रही हमारी अहिंसक वृत्ति!। कहां गये हमारी बुद्धि और विवेक।

हमारी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है। हमारे दिलों में अपवित्रता भरी रहती है, यह सब क्यों होता है? हमारे शरीरपर हमारे वस्त्रों पर अपवित्र परमाणु लगे रहते हैं इस कारण। और कोई कारण नहीं। इसी कारण हम नाना प्रकार की धर्मक्रिया करते हैं। लेकिन हमें फल की प्राप्ति जैसी चाहिये, वैसी नही होती।

प्यारे भाईयो और बहिनो, जरा देश की बातें तो दूर रखिये, लेकिन अपने जीवन की पवित्रता के लिये भी आप रेशमी कपडों को छोडदें। रेशमी कपडा आपके शरीर के लिये लोही का कपडा है और शुद्ध से शुद्ध, पवित्र से पवित्र अगर कोई कपडा है तो एक मात्र खादी है। इसे खुद पहनिये और धर्मस्थानो में इसका उपयोग करिये। भगवान् की सेवा में इसीको ले जाइये। आपको सच्चे फल की प्राप्ति होगी।

संवत् १९७६ की साल की बात है। बम्बई में गांधीजी और मेरे व्याख्यान साथ साथ हो रहे थे। उस समय की एक सभा में मैंने कहा था:—

हमारे देश-भारतवर्ष का उद्धार तभी होगा, जब सारा हिन्दुस्थान खादी अपनावेगा। हो सकता है, हम लोगों में और बातों पर मतभेद हो। परन्तु मैं तो यही मानता हूं और यही कहता हूं। हमारे किसान भाई भी इस खादी को मोटी कहकर पहनने के इन्कार करने लगे हैं। उनको भी बारीक कपडा चाहिये। हमारा कितना पतन हो गया है। मैं कह नहीं सकता। महानुभावो, मैं आप लोगों की तो क्या बात करूं। आज तो हम साधु भी इस मुलामियत के गुलाम बन गये हैं। १२ वर्ष पहले मैं

गुजरात में गया था। हमारा मुनि सम्मेलन हुआ था, उसमें करीब ४००-५०० साधु थे। उन में बडे उच्च कोटि के धुरंधर, विद्वान्, त्यागवीर आचार्य महापुरुष थे। मैं उनके कपडे देख रहा था। मात्र इनेगिने-दोचार साधुओंने खादी पहनी थी, परन्तु बाकी के ऐसे ऊंचे और किमती विलायती कपडे थे कि आप करोडपति भी शायद ही पहनते होंगे। यहींतक नौबत न थी-हमारे यहां चोलपट्टा होता है, उनमें किसी का चोलपट्टा भी आप देख लीजिये। इतना बारीक से बारीक कि एक एक बाल आप देख सकते है। यह शर्म और अफसोस की बात है। हमलोग भी कितने मुलायमियत और सुख-वैभव के गुलाम हो गये हैं?।

माता-पिता, पुत्र, परिवार, भाई, बन्धु, जाति-सारी बातों को हम लोगोंने छोडा। इतना छोडते हुए भी हमारे शरीर पर मुलायम से मुलायम ऊंचे से ऊंची मलमल होनी चाहिये। यह शौक, यह आराम, यह मौज जबतक नहीं जायगी, संयम की रक्षा हम कैसे कर सकेंगे?। मुझे तो इसका बडा विचार आता है। कोई कहे इसमें हमारा क्या दोष? हमको तो जो गृहस्थ दें सो लें।

अपना दोष गृहस्थ पर डालते हैं। अपनी गल्ती उनपर रखते है। हम गृहस्थो के वहां भिक्षा को जाते हैं। यदि उनके वहा कोई अभक्ष्य पदार्थ होता है तो हम इन्कार कर देते है। हम नहीं लेते। यह चीज हमें नही कल्पती। अकल्प्य वस्तु लेना हमारा धर्म नहीं।

'जो दे सो लें' ऐसी बात अगर साधु करें तो उसके चारित्र का रक्षण नहीं हो सकता। हम उपदेश देने योग्य नहीं हो सकते। दुनिया को सुधारने योग्य हम नहीं हो सकते।

इसलिये गृहस्थों को चाहिये कि निरर्थक देश की बातें न करे। निरर्थक बातें मात्र करने से देश का भला नहीं होने का। अगर देश पर सच्चा प्रेम है, कुछ सची लगन है, उसकी सेवा करने की इच्छा है तो निरर्थक बातें छोडिये। कुछ कर्तव्य करिये। कुछ पुरुषार्थ करिये। कुछ त्याग करिये और खादी पहनिये। हम यदि देश के कसाई बनना नहीं चाहते तो खादी को अपनाईये। कुछ क्रियात्मक सेवा, त्याग, और पुरुषार्थ दिखलाईये। व्यर्थ बातें न करिये। अब आगे हैं-" मत्त कथा "

'भक्त कथा' जानते हैं आप ? भजन करनेवालों की कथा नहीं, खाने-पीने की कथा। इसका नाम है भक्त कथा।

हमारी बाईयाँ सामायिक करने एक जगह इकट्ठी होती है। धर्मस्थान में जाती है। साध्वीजी के यहां इकट्ठी होती हैं। उपाश्रय में आती है। प्रतिक्रमणादि धर्मक्रियाएं करती हैं। उस वक्त आपस में बातें करती हैं: "आज तेरे घर कैसी रसोई बनी ? तेरे घर में आज क्या बना ? क्या साग बनाया ? तूने क्या बनाया और मैंने क्या बनाया, इसके सिवाय कोई बात नहीं।

आप पुरुष लोग भी इन्हीं बातों से अपना समय बरबाद करते हैं । क्या चींज कैसी बनती है ? क्या स्वाद है ? आदि २। ऐसी कथा करने से कोई फायदा नहीं। इसमें सिवाय कर्मबन्धन के कुछ नहीं।

'राजकथा' करने का भी हमें अधिकार नहीं। राजा क्या क्या सुधार करनेवाला है ? क्यों नहीं ऐसा रहता ? वैसा रहता ? आदि २ जिन बातों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं, वैसी बातें नहीं करना चाहिये।

इन चार कथाओ से गृहस्थ को दूर रहना चाहिये ! धर्मकार्य करते समय सांसारिक कथा-वार्ता से हंमेशा दूर रहना चाहिये। फिर अपने गृहस्थ जीवन में भी आप ये बातें कभी न करें। ये बातें लडाई-झगडे के मूल हैं। अपने आत्मा की अशान्ति का बीज है।

इन चार स्त्री कथा, देश कथा, भक्त कथा और राजकथाओ से दूर रहकर आप साधुसंतो के उपदेश-धर्मकथा जरुर सुनिये। आप के दिलोंमें पवित्र भावना रहेगी। उच्च विचार होंगे। वैरागी रहेंगे। और पापों से बचने के लिये, आज न सही, कभी न कभी विचार जरूर आवेंगे।

पुराने जमानेमें जो श्रीमन्त होते थे, वे धर्मकथा सुनने के लिये अपने अपने यहां एक विद्वान् रखते थे। अगर साधु-सन्तों का जोग न मिले, तो उसी विद्वान् पंडित से प्रातःकाल नियमित रूप से थोडी थोडी धर्मकथा जरूर सुनते थे। इस लिये कि दिनभर उनका चित्त प्रसन्न रहे, विचार पवित्र रहें, और पाप से बचते रहें। सारे घर के स्त्री-पुरुष और बच्चे भी उनका उपदेश सुनते थे। उनके संस्कार भी अच्छे होते थे।

हजारों रुपयो आप लोग सांसारिक कार्योंमें खर्च करते हैं। परन्तु बच्चों को

सुधारने के लिये, घर की बहनों में उत्तम भावनाएं रखने के लिये क्या करते हैं? एक ऐसा विद्वान् अपने घरमें जरूर रक्खें।

धर्मकथा क्यों सुनना ?

धर्म क्यों सुनना चाहिये ? यह बात ध्यान रखने योग्य है। इसलिये सुनें कि उस प्रकार का आचरण करने के लिये कोशिश करें। सारी उम्र भर सुनते जाय, एक इञ्चभी आगे न बढे, कोई फर्क हमारे जीवन में न आवे, इसका तो कोई मतलब नहीं।

अभी गुजरात के एक गॉव मे मैं गया था। सीधा बाजार से होकर उपाश्रय में गया। किसीने नहीं पूछा कि महाराज! कहां से आये हो? ठहरिये, उपदेश सुनाईये, आहार को पधारिये। कुछ भी नहीं।

खेर, रास्ता पूछते पूछते गाव के किनारे उपाश्रय था, वहां गये। गोचरी लाये। निवृत्त हुए। प्रतिक्रमण किया और रात को १० बजने का वक्त हुआ तब तक कोई हमारे पास नहीं आया। हम सोने लगे। करीब रात के साडे दस बजे किसीने किवाड खट खटाया। जगलेम मकान था। सोचा, न मालूम कौन आया होगा?।

उठकर दरवाजा खोला। देखा ४-६ श्रावक आये हैं। अन्दर बैठे। मैंने कहा कौन हो भाई।

बोले-श्रावक हैं। कुछ उपदेश सुनने आये हैं।

" दिनको क्यों नहीं आये ? "

" फुरसत नहीं थी! महाराज। " उत्तर मे कहा।

" तुम्हें दिनको फुरसत नहीं, हमको रात को फुरसत नहीं। रास्ता पकडो भाई, हमें सोने दो। "

" हमें नहीं मालूम था कि विद्याविनयजी महाराज आये हैं। " वे बोले।

मैंने कहा:-" वे क्या सीगडे लगाकर आये हैं। "

" नहीं महाराज ऐसा नहीं, कुछ दिन ठहरो। "

" रोक कर करोगे क्या ? "

" व्याख्यान सुनेंगे "

" सच सच कहो, इतनी जिन्दगी में किसी महाराज का व्याख्यान सुना है या नहीं ? " मैंने पूछा।

" बहुत। कई आचार्यों के और मुनिराजों के। रास्ता ऐसा है कि साधु महाराज प्रायः आते ही रहते हैं और हमें व्याख्यान सुनाते ही रहते हैं। " वे बोले।

" इतनी उम्र में इतने व्याख्यान सुने। अब सच्ची बात कहो, कि पिछले २५ वर्ष के व्याख्यानों से तुम्हारे जीवनने कितना पल्टा खाया ?। कितना झूठ छोडा, कितना अनीति का त्याग किया ? कितना सदाचार का पालन किया ? दान-पुण्य कितना कितना किया ? कितनी बेइमानी छोडी ? " मैंने पूछा।

उनमें से एक आदमी बोल उठाः-'सच्च बात कहूं महाराज। 'इन पचीस वर्षों में जितने बिगड़े, उतने कभी नहीं बिगड़े थे। जितने जितने आचार्यों के-साधुओं के व्याख्यान सुनते गये, वैसे वैसे हम बिगड़ते गये। यह मैं नहीं कहता कि-व्याख्यान सुनने से बिगडे, जमाने का प्रभाव समझो या कुछ भी समझो, बहुत बिगड़े, शान्ति ही नहीं। "

मैंने कहाः-" मुझे रखकर तब क्या करोगे भाई ? और जो कमी है पूरी होगी। माफ करो, मुझे जाने दो। "

तजी मसूर की दाल

प्यारे मित्रो ! कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म सुनने का मतलब यह है कि-उस पर आचरण किया जाय। जबतक आचरण नहीं करोगे, कोरे के कोरे ही रह जाओगे कुछ लाभ नहीं होने का।

किसी कविने कहा हैः—

" कथा सुनि तजी मसूर की दाल। "

चार महिने, एक साधुजी एक गांव में रहे। रोज कुछ न कुछ त्याग करने का उपदेश करते रहे। परन्तु एक शेठजीने कुछ भी नहीं किया। चौमासा खतम हुआ। साधुजी पहिचान गये। शेठजी से फिर आग्रह कियाः "अब तो मैं जाता हूं, कुछ तो त्याग करो।"

" क्या करु ? मेरे से तो कुछ नहीं होता। महाराज, अच्छा एक काम कर लीजिए। मसुर की दाल का त्याग करा दीजिये। "

गुजराती लोग मसूर की दाल प्रायः नहीं खाते हैं। उसने सोचा, चलो महाराजजी जोर दे ही रहे हैं, तो उनका भी मन रखो। हम खाते तो कभी भी नहीं। महाराज राजी होजायेंगे कि सेठजीने मेरा मान रक्खा।

इसलिए किसी कविने कहा:--

काम न विसर्यो क्रोध न विसर्यो
विसर्यो न मोह, जमाल-
कथा सुनी तजी मसूर की दाल।
अभ्यागत कोई आगन आवत
ताको बतावत काल (कल)
घरमें जाई बढाई करत है
कैसे दियोजी निकाल?
कथा सुनी तजी मसूर की दाल।

कोई गरीब भिखारी बेचारा आता है, कुछ मांगता है उसे धुत्कारता है और कहता है: "कल आना कल। आज कुछ नहीं मिलेगा।"

फिर घर में जाकर पत्नी के सामने बहादुरी बताता है:—"देखा, साले को मैंने कैसा निकाल दिया?। यहां कोई उसके बाप का कमाया हुआ पडा है। पैसा है, कपडा है, रोटी है, बस, उसे दे ही दो। जैसे उसके बाप का हो।"

प्यारे मित्रो! 'कथा सुनी तजी मसूर की दाल,' ऐसे नहीं करना। जो कुछ सुनो, जीवन में उतारो। जीवनमें पल्टा करो। शास्त्रों के अनुसार चलिये। ब्रह्मचर्य, एक पत्नी व्रत का पालन करीये। खादी पहनिये। रेशम जैसी अपवित्र चीजों को छोडिये। अधर्म से बचिये। धर्म का आचरण करिये। जीवन को सुन्दर बनावें। ऐसा करेंगे तो आप के आत्मा का कल्याण होगा।

प्यारे भाइयो और बहिनों,

अब १६ वाँ और १७ वॉ गुण बताऊं।

सोलवाँ-सत्तरहवाँ गुण —

अजीर्णे भोजनत्यागी, काले भोक्ता च सात्म्यनः।

इन दोनों गुणों का परस्पर संबन्ध है, इसी लिए साथ में ही वर्णन करूंगा। इसमें भोजन की विधि है। भोजन कब करना, कब नहीं करना, किस समय करना ? और कैसा करना ? ये बातें दिखलायी हैं। जीवनविकास के लिये शरीर साधन है। और शरीर का संबन्ध भोजन के साथ है। इस लिये भोजनविधि जान लेना, और उसके अनुसार चलना भी आवश्यक है। शास्त्रकारोंने कहा है:—

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।"

धर्मात्मा पुरुषों के लिये यह शरीर धर्म का साधन है। और पापी पुरुषों के लिये पाप का साधन है। शरीर में रोगों का मूल कारण है अजीर्ण। वैद्यक शास्त्रों में भी यही कारण बताया गया है कि–जब अजीर्ण हो जाय तो भोजन का त्याग करो।

अजीर्णे भोजनत्यागी।

उपवास किसको कहना ?

शरीर ठीक रहना, धार्मिक दृष्टिसे भी ठीक है। हमारे यहां भी शास्त्रों में कहा है:—हर पन्द्रह दिनों के पश्चात् प्रायश्चित्तस्वरूप हर मनुष्य को एक उपवास करना चाहिये।

अगर उपवास करता है, तो उसका पाप धुलता है, और तन्दुरस्ती शुद्ध हो जाती है। जुलाब लेने की जरुरत नहीं। चूरन चटनी लेने की जरूरत नहीं। वैद्यो और डॉकटरों के पीछे परेशान होने की जरुरत नहीं। रोग कभी आवेगा नहीं, अगर आ भी गया, तो उपवास से दूर हो जायगा।

परन्तु उपवास ऐसा नहीं होना चाहिये, कि उपवास के डर से पहले दिन खूब डटकर खालो । दो दिनका एक साथ भरलो । आखिर क्या हुआ ? रोजाना एक दफे दस्त होता था, उस दिन तीन दफे हुआ । यह उपवास नहीं है । उपवास तो ऐसा होना चाहिये:—

विषय-कषाय-आहार त्यागो यत्र विधीयते ।
उपवास स विज्ञेय , शेष लघनक विदु ॥

अर्थात्—तीन चीजों का त्याग करें, तब उपवास होता है ।

जिस दिन उपवास करें, उस दिन विषय-सेवन न करें । हर-तरह से मन को वश में रक्खें । किसी तरह मे इन्द्रियों का उद्रेक न हो और कषाय को भी छोडे । अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ को जीतें—काबू मे रक्खे ।

१२ बज गये हैं । पेट में चूहे दौडम दौडाकर रहे हैं । रोटी न खायी । दूसरों को ही खाले । घर में जाते है, क्रोध, क्लेश कलाम, रगडा, झगडा करता है यह क्या उपवास है ?

उपवास करनेवालों को कषाय भी छोड देने चाहिये । और साथ में आहार का भी त्याग करना चाहिये ।

लालाजी की एकादशी

हमारे यहा तो उपवास में गरम पानी भी पी लेते हैं, परन्तु वैष्णव-ब्राह्मणों के यहा तो उपवास में पानी भी नहीं, पीने का अधिकार है । ' निर्जला एकादशी ' का उपवास होता है, जिसमें पानी भी पीने की जरूरत नहीं । लेकिन आज ?

हमारे वैष्णव भाई भी बैठे हैं, माफ करें । उनके लिये भी कह रहा हू । आज तो उनका उपवास भी ' एकादशी ' नहीं, ' द्वादशी की दादी ' हो गयी है । उपवास में क्या खाते हैं ? सिंघाडे का शिरा और राजग्रहे की पूरी । और आलू का शाक ।

मथुरा में कहा जाता है:—" लालाजी की एकादशी द्वादशी की दादी है ।

एकादशी का उपवास किया है । सुबह जमुना पर गये । भग घोंटी, स्नान किया । निवृत हुए, दोतीन लोटे भग पी लिया । २-३ घण्टे के बाद जब भूख लगती है जरासा दूध लेते हैं । गुजरात का १६ सेर और उधर का आठ सेर पक्का । बादाम, पिस्ता, चिरौंजी वगैरह, वगैरह डालकर घोटघाटकर पी जाते हैं ।

लालाजी का सुबह का उपवास पूरा हो जाता है। दोपहर को भूख लगी, पेट पर हाथ फेरते रहते हैं: "क्या करें? भय्याजी, आज तो उपवास किया है, बडी भूख लगी है। कुछ थोडासा खाना होगा।" घर आते हैं, कहते हैं: "कुछ बनाओ।" २-३ सेर अन्दाज सिंघाडे का सीरा, राजग्रहे की पूरी और आलु का साग। बस और ज्यादा नहीं।

भाया उतना खाया। खा कर लालाजी लम्बे हो कर सो गये। दोपहर का उपवास खत्म हुआ।

चार-पांच बजे फिर लालाजी उठे। पेट पर हाथ फिराया। फिर भूख लग गयी। कहने लगे:-" उपवास है। थोडा बहुत तो खाना चाहिये न। बस ज्यादा नहीं दो डजन केले, दो डजन सन्तरे, दो डजन आम, मौसंबी-वौसम्भी ले आवो।" बस ४-६ उसन पेटमें डालकर लालाजी निश्चिन्त हुए। शाम का उपवास खत्म हुआ।

रात को सोने का समय हुआ। 'अरे भाई! रात कैसे जायगी? रात को भूख लगेगी। नींद नहीं आवेगी। ज्यादा नहीं, तो २-४ सेर दूध ही ले आओ।" बस दूध में बादाम, पिस्ता, मीठा आदि डालकर पीया और सो गये।

सुबह उठकर उपवास पूरा हुआ। उठते हैं, घरवालों से कहते हैं: "लाओजी, कुछ न कुछ तो बनाओ। कल उपवास था-भूख लगी है। जरासा खालूं।"

भाइओ, यह उपवास कैसा? रोजाना लालाजी २-३ आने में गुजारा करते हैं, परन्तु आज तो उपवास है। लालाजी को ५ रुपये से कम किसी तरह खर्च नहीं होना चाहिये।

कितनी अफसोस की बात है? चाहे ब्राह्मण हो, चाहे कोई हो, जबतक इन तीन चीजों का त्याग नहीं होगा, हमारा उपवास उपवास नहीं होगा, धर्म का उपवास करो।

ऐसा न हो कि एक दिन का छोडा और चार दिन का खाना पेट में डाला।

हुआ क्यों ऐसा? ब्राह्मण राजाओं को उपदेश देते थे कि 'तुमको भी कभी कभी उपवास करना चाहिये। धर्म के लिये कुछ करना चाहिये।'

बहुत अच्छी बात है। परन्तु विचारोंने कभी तकलीफ देखी है नहीं, सुकुमार सरस आराम से रहनेवाले रहे। कहने लगे:-हमसे तो ऐसा उपवास नहीं हो सकता, कुछ तो छूट करदो।"

"आपद्धर्म के लिहाज से पलाहार करलिया करो"। ब्राह्मणोने ऐसा विधान कर दिया कि, "तुलसी के पत्ते पर जरासा प्रसाद रख लीजिये, मुह में रखकर पानी पी लीजिये।

पहले हुआ पलाहार, फिर हुआ फलाहार और धीरे धीरे फलाहार से हुआ ढगलाहार। खूब खाने लगे।

इसलिये भाइयों, ऐसे उपवास को छोडिये। उपवास ऐसा करिये, जिससे आपकी तन्दुरस्ती बनी रहे, और आत्मा का भी कल्याण हो। आगे है—"काले भोक्ता च सात्म्यतः" अर्थात्—काल के अन्दर भोजन करे और सात्विक भोजन करे।

रात्रिभोजन

हमारे भोजन करने का समय कौनसा है ? चाहे जैन हो, ब्राह्मण हो, वैष्णव हो, कोई हो, मैं दावे के साथ कहता हू कि 'मनुष्य के भोजन का समय है दिन। रात कभी नहीं। रात को भोजन करने का सर्वथा निषेध है, निषेध होना ही चाहिये।

रात्रि मात्र शयन करने के लिये, योग-समाधि, ध्यान वगैरह करने के लिये, और स्वाध्याय के लिये है।

रात्रि को भोजन करनेवाले की सात्विकता नष्ट हो जाती है। प्रमादी हो जाता है। मनुष्यत्व को भूल जाता है। मासाहार की दृष्टि से मासाहार का त्याग करनेवाला मनुष्य रात्रि भोजन करे और यह कहे कि "मै मासाहार का त्यागी हू।" कभी नहीं मान सकते। एक सिर्फ हड्डी नहीं खाता, लेकिन मास तो जरुर खाता है।

बरसात का समय आया है। अनेक प्रकार के जीव खुराक के साथ हमारे पेट में जाते हैं। यह राक्षसी भोजन है-घोर से घोर पाप है। शास्त्रकारोंने इसी लिये इसका निषेध किया है।

धार्मिक दृष्टि के सिवाय, शारीरिक दृष्टिसे भी रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिये।

स्वास्थ्य का यह नियम है कि खाने के ३ घण्टे बाद अनाज पचने लगता है, और उसकी रसादि धातुए बनती हैं। परन्तु जब हम ९-१० बजे खायेंगे और खाकर तुरत १०-१५ मिनिटमें सो जायेंगे, तो अन्न पचने का वख्त नहीं मिलेगा। हमें अजीर्णादि रोग हो जायेंगे। हम तन्दुरस्ती खो देंगे।

अब सूर्यास्त के पहले भोजन कर लिया तो २-३ घण्टे आसानीसे मिल जायेंगे-पचने में। हम सोने जायेंगे ८-१० को। हमें कोई कष्ट नहीं होगा। आरामसे सोयेंगे। और आराम से उठ जायेंगे। न रात्रि के समय कोई दुःस्वप्न आवेगा और न अपचा होगा। हमने इस प्रकृति के नियम को तोड़ा और आज नाना प्रकार की बिमारीयों के रुपमें इसका प्रतिफल भोग रहे हैं। इसलिये मैं तो आपको बार बार अनुरोध करुंगा कि शरीर साधन है। शरीर की तन्दुरुस्ती बनाए रखने के लिये आप रात्रिभोजन का त्याग करें। आप धर्म कर सकेंगे, तंदुरस्त रह सकेंगे और अपने आत्मा का कल्याण भी कर सकेंगे।

किस समय में भोजन करना चाहिए, यह आपको दिखलाया। भोजन दिन दिन में होना चाहिए।

सात्विक भोजन

अब भोजन विधि में एक और बात दिखलायी जाती है, वह है सात्त्विकता। अर्थात् भोजन सात्विक होना चाहिए। हमारी खुराक ऐसी हो जिससे हमारे जीवन में, शरीर में सात्विकता आवे। राजसिकता और तामसिकता की हमें जरुत नही। मनुष्य जीवन एक ऐसा उत्तम जीवन है कि जिसमें सात्विकता की ही प्रधानता चाहिये। 'सात्विक' की व्याख्या शास्त्रकारोंने यों की है

पानाहारादयो यस्याविरुद्धा प्रकृतेरपि।
सुखित्वायावकल्पन्ते तत्सात्म्यमिति गीयते॥

अर्थात्—हरेक मनुष्य की प्रकृति भिन्न रहे। जठराग्नि जुदी जुदी है। परन्तु हमारी प्रकृति के अनुकूल--हमारी जठराग्नि के अनुकूल जिस प्रकार के आहार और पानी का उपयोग हम करें, उसका नाम है सात्विक भोजन।

अपनी प्रकृति के विरुद्ध विजातीय द्रव्य-विजातीय अनाज हमारे पेट मे डालने से वह विजातीय अनाज कभी पेट में नहीं रह सकता। क्या होता है परिणाम उसका? सोचा है कभी आपने?

या तो वह उल्टी होकर निकल जायगा या प्राण निकल जायेंगे। इस शरीर में रही हुई इन दो चीजों में कोई मेळ नहीं। इन दोनो में से एक को निकलना पडेगा।

इस शरीर का नियम ऐसा ही बना है। जहर अफीम आदि नशीली चीज इसके प्रमाण हैं। यह बात अलग है कि आप धीरे २ थोडा २ खाकर अपनी प्रकृति को

उसी तरह बनाने के लिये लाचार करदें। जैसे अफीम खानेवाले, भाग खानेवाले धीरे २ खाते २ खूब खाने लगजाते है। परन्तु उसके जहर का असर उनपर नहीं होता-बाहरी नहीं होता, परन्तु उसका वह इतना गुलाम होजाता है, कि न मिलने पर टांगे घिस घिस कर मरजाता है। इसलिये इन बातो का ध्यान रखिये। समय पर खावें और सात्विक भोजन करें।

इस से हमारा जीवन भी सात्विक बनेगा, शुद्ध उच्चविचारवाला बनेगा-शरीर स्वस्थ रहेगा।

ऐसा न करने से तामसिक और राजसिक-प्रकृतियाँ बनजाती हैं। यही कारण है कि संसार में क्लेश और झगडे होते है।

लोग कहते है-मास खानेवाले बहादुर होते है। बिलकुल नहीं। इस विषय पर पहले काफी कह चूका हू।

मासाहार से तामसिकता आजाती है, क्रोधीपन आजाता है। झट से बेकार किसी को मार देता है।

मनुष्य-प्रकृति तामसिक नहीं, सात्विक होनी चाहिए।

जैन धर्म में जितनी धार्मिक क्रियाओं का निरूपण किया गया है उन सब में शरीरस्वास्थ्य और सात्विकता का ही लक्ष्य रक्खा गया है। महीने में दो उपवास करना, रात्रि को भोजन नहीं करना, गरम पानी पीना, इत्यादि सभी बाते बडे महत्व की हैं, उसके अनुसार चलनेवाला न कभी बीमार पडे, न कभी उसके आत्मा में अशान्ति हो। उपवास और रात्रिभोजन के विषय में पहले कह चुका। अब पानी को भी लिजिये।

गरम पानी

गरम पानी पीनेवाले को कभी बीमारी नहीं आनी चाहिए। कच्चे पानी से जो विकार होता है वह नहीं होता। कच्चे पानी के विकारों से हमारे में नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। साधु लोग हमेशां भ्रमण करनेवाले हैं। जुदा जुदा ग्राम, कुए, बावडियों का पानी उनके पीनेमें आता है। अगर वे बिना गरम पानी किये पीते, तो बडी मुश्किल में पडजाते। लेकिन गरम पानी करने पर चाहे सडा से सडा पानी हो, वह भी शुद्ध होजाता है। पीनेपर नुकशान कभी नहीं करता।

लते नहीं, रोग आने के बाद सैकडों विधि की औषधी करेंगे। परन्तु इसके पहले शक्ति नष्ट न हो, इसके लिये वे क्या करते है ? उनके मां-बाप क्या करते हैं ?

आपको चाहिये, शरीर को प्रकृति के नियमानुसार बनायें रखें।

कदाचित् किसी समय अजीर्ण होजाय, मैं पहले कह चुका हूं, सब रोगों की जड अजीर्ण है। जब आप को इसकी जरासी भी शिकायत होजाय-कब्जी होजाय तो खाना त्याग करदें। परन्तु हम तो समझते हैं: "हम तो खाने को जन्में हैं। इसे छोडे कैसे ?" यह गलती है। जीने के लिये खाते हैं। खाने के लिए नहीं जीते। धर्मध्यान के साधन, आत्मा के कल्याण का साधन समझकर शरीर के पोषण के लिये खाते हैं।

जितना शरीर स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, धर्म-ध्यान उतना ही अच्छा होगा, स्फूर्ति रहेगी, चेतना रहेगी, उत्साह रहेगा-आलस्य पास में नहीं फटकेगा। योग, समाधि, ध्यान ये सारी बातें शरीर की स्वस्थता पर निर्भर है। और शरीर की स्वस्थता कम खाने पर या मौका आने पर भोजन को बिलकुल छोड देने पर रहता है।

करांची में मैं एक समय बिमार हो गया। बाहर बंगले में था। बंगले के पास में ही एक सिंधी रहते थे। बनारस युनीवर्सिटी के प्रोफेसर थे, लेकिन साथ ही योगी थे। योग का अभ्यास किया करते थे। छुट्टी पर आये हुए थे। मेरे पास आने जाने लगे। "मैं यह योग करता हूं, यह आसन करता हूं, यों करता हूं, त्यों करता हूं, इसी तरह वार्तालाप चलता था।"

मैंने कहा:-"कहिये क्या बात है ?"

बोले:-"होता यह है कि मैं १२-१ बजे उठकर समाधि में बैठ जाता हूं, परन्तु तीन चार बजे तक फिर निंद आजाती है। यह निद्रा क्यों आती हैं ? निद्रा न आये इसका आप उपाय बताये।"

मैंने पूँछा-"आप शामको भोजन करते हैं या नहीं ?"

बोले—"हॉ।"

मैंने कहा-"उपाय यही है कि आप शाम का भोजन छोड दीजिये और जिस वक्त निद्रा आने लगे, खडे होकर कहीं भी घूमने चले जाइये।"

मैं क्या बताऊँ ? उन्होंने सात-आठ दिन शाम का भोजन छोड़ दिया। अपनी इच्छानुसार ध्यान करने लगे। निंद्रा नाम नहीं, इतना उपकार मानने लगे कि हद नहीं। बड़ी श्रद्धा हो गयी। कहने लगे-"महाराज! आपने तो ऐसी तरकीब बताई कि अब निद्रा क्या चीज है, मैं समझता ही नहीं। १२ १ बजे योगासन, प्राणायाम वगैरह करता हूं। प्रातःकाल तक बराबर निर्विघ्न करता ही रहता हूं।"

प्यारे भाइयो!

हमारे शरीर में प्रमाद लानेवाली चीज कोई है तो मात्र खुराक है, जितनी हो उतनी थोड़ी खुराक लीजिये।

आप यह न समझें कि ज्यादा खाने से अच्छा रहता है। शरीर ताजातर होता है। मैं तो कहता हूं कि अगर किसी की पचाने की शक्ति अच्छी है, तो वह मनुष्य एक पावभर दूध पीकर उम्र भर तक रह सकता है। समस्त धातुएं पुष्ट बन सकती हैं, और शरीर स्वस्थ तथा सुन्दर बना सकता है।

प्यारे भाइयो और बहनों,

कल मैंने भोजनविधि बतलायी थी। अजीर्ण हो तो भोजन का त्याग करो। समय पर, यानि दिन में ही भोजन करो, रात्रि को भोजन मत करो और सात्विक भोजन करो। इत्यादि बातें कही। आज मैं यह दिखलाना चाहता हूं कि–सात्विक प्रकृति के, सच्चे नागरिक गृहस्थ में और भी कौन कौन से गुण होने चाहिये अर्थात् किस गृहस्थ का गृहस्थाश्रम धन्य है। इन गुणों में भोजनविधि भी आजायगी। शास्त्रकारोंने कहा है—

धन्य गृहस्थाश्रम किसका ?

सानंदं सदनं, सुताश्च सुधियः, कान्ता न दुर्भाषिणी,
सन्मित्रं सधनं, स्वयोषितिरतिः, आज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं, जिनपूजनं, प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासते हि सततं, धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥

अर्थात्–वही गृहस्थाश्रम धन्य है, जिस में इतनी बातें बराबर पायी जाती हैं। बहिनों जरा ध्यान देना। आपका भी इसमें काम पडता है।

सानंदं सदनं–जिसके घर में हमेशां आनंद रहता है, किसी प्रकार की भी अशांति नहीं, तकलीफ नहीं, बच्चे से लेकर बडे तक हँसमुख और खुशमिजाज रहते हों। नफा नुकसान धन्धे में हो गया, तो क्या हुआ ?। यह तो संसार में होता ही रहता हैं।

सुताश्च सुधियः–जिसके पुत्र पुत्री सुबुद्धिशाली हों; चाहे एक हों या दो हों या अनेक हों, बडे सुबुद्धिशाली हों। बुद्धिशाली का यह मतलब नहीं कि जैंटिलमेन हों। परंतु विनयी हों, माता–पिता की भक्ति–सेवा करनेवाले हों। सदाचारी हों। अपने कर्त्तव्य और धर्म को समझते हों।

कान्ता न दुर्भाषिणी – जिसकी स्त्री दुर्वचन बोलनेवाली न हो। जिसके घर में स्त्री कटुवचन बोलनेवाली-कर्कशा-कलह और कुकाम करनेवाली, पति के जीव को खाने वाली, उसकी चिन्ता को बढानेवाली, बच्चों पर नाना प्रकार के बुरे असर अपने आचरण से डालनेवाली हो, वह घर नहीं है, वह गृहस्थाश्रम नहीं है। उसके मालिक को रात-दिन चिंता ही चिंता रहती है। शादी कर के तो घर में ले आये, लेकिन क्या करें, जिन्दगी भर दुःख उठाना पड़ता है।

परन्तु जिसके घर में सदाचारिणी, सुशीला, मृदुभाषिणी, पति के दुःख से दुखित होनेवाली, दुःख में सान्त्वना देनेवाली, पति-भक्तिपरायणा, बच्चों से प्रेम करनेवाली पति की चिंताओं को कम करनेवाली हो तो वह घर पृथ्वी पर स्वर्ग है। समाज व देश के लिये आदर्श है।

मेरी बहनो! ध्यान दीजिये! आप के ऊपर कितना उत्तरदायित्व है इसे समझिये। आगे है–

सन्मित्र सधन-जिस गृहस्थ के मित्र मालदार हो, वक्त पर दुःख में काम आते हों, वही सुखी है।

मैंने अपने एक व्याख्यान में मित्र का महत्त्व बतलाया है। कितना महत्त्व है? अगर अपना दुःख किसी को सुनाकर अपना दिल हलका करने की कोई जगह है, और सच्ची बातें किसी के आगे सुनाने का कोई स्थान है तो वह मित्र ही है।

एक पुरुष अपनी पत्नी को जो बात नहीं कह सकता-अपने सगे भाई-बन्धु को नहीं कह सकता वह कहने का स्थान कोई अगर है तो मित्र है। लेकिन मित्र सच्चा मित्र होना चाहिये सच्चे मित्र की व्याख्या मैं पहले कर चुका हूँ। ऐसा मित्र अगर धनवान भी हो, तो हरेक के लिये सुख का कारण होता है। गृहस्थों में सबसे बड़ा दुःख पैसे का है। मौका पड़ने पर ऐसा सच्चा मित्र पैसे से भी मदद कर सकता है।

स्वयोषितिरतिः –एक गृहस्थी में पुरुष कैसा होना चाहिये? अपनी पत्नी में प्रेम रखनेवाला होना चाहिये। जो पुरुष अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्रियों के साथ प्रेम रखनेवाला होता है, उसके घर में निरंतर आग जलती रहती है, वहां स्त्री का सुख नहीं, वहां गृहस्थाश्रम कैसा? स्त्री समझती है मेरा पति जहांतहां भटकता फिरता

है, वहां स्त्री की क्या दशा होगी ? आप समझ सकते है ? जहां स्त्री को सुख नहीं, वह गृहस्थी भी सुखी नहीं ।

बाज वक्त ऐसे पुरुषों की स्त्रियां भी दुराचारिणी होजाती हैं ।

स्त्री अगर दुराचारिणी है, तो शास्त्रकारोंने उसे सदाचारिणी बनाने का एक अचूक उपाय बताया है कि, पति एकपत्नीव्रत का पालन करते हुए संसार की तमाम स्त्रियों को माता-बहन और पुत्री समझे । ऐसे पति की पत्नी अगर दुराचारिणी भी हो जावे, तो उसे वह बराबर ठिकाने ला सकता है । चाहे किसी की उपाय से ! पुरुषों में बुद्धि बहुत है । स्त्रियों की प्रकृतियां-लाचारी, शर्म और कमजोरी के आगे पुरुष की अक्ल अच्छी चलती है ।

दुराचारिणी स्त्री को ठिकाने लानेवाला पति

एक ऐसे ही सदाचारी गृहस्थ, जिसके सदाचार की हद नहीं, उसकी पत्नी दुराचारिणी हो जाती है । चार पुरुषों के साथ में उसका संबंध होता है ।

पति जब दुकान पर जाता है, उस समय वे चार पुरुष घर में आते हैं । ऐसी बातें छिपी नहीं रहा करतीं । बात की भिनक पति के कानों तक जाती है । कभी २ दो पहर को भी घर आने जाने लगा । देखता है, चार गुण्डे बैठे हैं । बराबर बात पक्की है । स्त्री नालायक हो रही है, इसे अब किसी तरह ठिकाने लाना चाहिये ।

जब पति बराबर घर आने लगा । ४ पुरुष स्त्री से कहते हैः-" देखो, अब तो तुम्हारे पति को शक हो गया है । हमारे आराम में बाधा डालता है । बहतर है इसे तुम मार डालो । "

स्त्री की हिम्मत नहीं चली कि पति को मारे ?

उनके आराम में विघ्न जारी रहा । पति ने दोपहर को आना जाना न छोडा । आखिरकार उन ४ पुरुषों ने कहाः-"अच्छा ! एक काम करो । एक तरकीब करो कि तुम्हारा पति अन्धा हो जाय । "

" अन्धा कैसे करुं ?" पत्नी ने पूँछा ।

" एक बाई से सलाह लो ।" वे बोले ।

एक बाई के पास वह स्त्री जाती है । और पूछती है कि-"मुझे एक आदमी को अंधा करना है । (उसने अपने पति का नाम नहीं लिया) । कुछ उपाय बताओ" ।

उसने जवाब दियाः–"एक काम करो। गाव के बाहर एक देवी का मदिर है। उसकी भक्ति करो और कहो कि–उस आदमी को अधा करदे। जरुर अन्धा बन जावेगा"।

बस देवी के वहा जाना शुरु करदिया। आराधना करती है। प्रार्थना करती है–कहती है "हे देवि! मेरे पति को अंधा बना दो"।

पति को शका पडी कि कहीं जाया करती है। तलास करते २ मालूम हुआ कि किसी देवी के मंदिर में जाती है। वहां कुछ न कुछ करती है।

पति मदिर के पिछले भाग में जाकर खडा रह जाता है। होश्यार था, चालाक भी था। पत्नी देवी के आगे प्रार्थना करती है–" मेरे पति को अधा बनादो।"

पति सुनता है और अपनी भाषा को थोडा बदलकर कहता है–"मैं प्रसन्न हू। तुम अपने पति को रोजाना मालमलिदा, बादाम पिश्ता वगैरह खिलाओ। वह अन्धा होजायगा।"

देवी उपाय बतलाती है पति को अधा करने का। स्त्री समझती है–देवी प्रसन्न है। अब खूब आराम होजायगा। पति अंधा होजायगा। घर गई।

प्रातः पतिने भोजन किया, दुकान गया। और पत्नीने बादाम का हलुवा बनाया। शाम को पति आता है, जीमने को बैठा है। बादाम का हलुवा परोसती है। पूछता है–" आज हलवा कैसे बनाया?"

" यह तो एक मेरी बहन आयी थी।" इस तरह आज यह आयी इसलिये बनाया–कल वह आयी इसलिये। कभी बादाम का हलवा, कभी पिस्ते का, कभी मैदे का। इस तरह खूब बनाने लगी और पति को खिलाने लगी।

इधर पति भी ढोंग करने लगा। एक दिन कहता—" मुझे तो रतौंध आ रही है।" दुसरे दिन कहने लगा–" अब तो कुछ अधापन बढता जारहा है।"

पत्नी विचारती और खुश होती है कि–" अब कुछ न कुछ जरुर देवी की कृपा से असर होरहा है।"

ऐसे होते २ पतिने कहा–" अब तो मुझे कछ दिखता नहीं। मुझे तो एक लकडी का डडा देदो। दुकान का धधा तो कुछ अब होगा नहीं। दरवाजे पर बैठा रहुगा।"

पति अब अधा होकर दरवाजे में बैठता है। चारो पुरुष आया करते हैं। पति 'कुत्ता आया' 'कुत्ता आया,' कौन आया? कौन आया? करते करते १०–२० डन्डे

उनको रोज मार देता और चिल्लाता है-" कौन आया, घर में, कुत्ते घुसते ही रहते हैं "।

उन चारों पुरुषों ने पत्नी को एकांत में ले जाकर कहाः-" अरे! यह तो बुरा हुवा -जब कुछ दिखता था तो दुकान पर तो चला जाया करता था। अब अन्धा बनकर तो घर पर ही बैठा रहता है। हम आते हैं, तो कुत्ता समझकर 'मारता ही' रहता है। अब तो बस एक ही उपाय है-किसी तरह इसे खतम करदो। "

" बहुत अच्छी बात है, " पत्नी बोली। विषयी मनुष्य क्या नहीं कर सकता? पुरुष हो चाहे स्त्री हो। जब विषय में अन्धा बनजाता है-आपे से बाहर होजाता है। उसका हृदय निर्लज्ज और निष्ठुर बन जाता है। कुछ भी विचार नहीं करता।

स्त्री लड्डू बनाती है, पति बैठा २ देखता रहता है, यह क्या २ करती है।

दो लड्डू जहर के बनाये और उन्हे अलगकर एक थाली में रख देती है। बाकी ८ लड्डू और बनाये, उन्हे एक अलग थाली में रखती है। पति सब याद रखता है। इसके बाद पत्नी उन चार पुरुषों को बुलाने जाती है। इतने में पति क्या करता है? हजरत उन आठ लड्डुओं में से २ लड्डू निकाल लेता है और जहर के लड्डुओं को अन्य लड्डू के साथ मिलाकर सब झेर के बनादेता है।

अब हजरत डंडा लेकर अंधे बने हुवे दरवाजे पर आकर बैठ गया।

" कौन आया है? " चिल्लाता है।

" यह तो कोई नहीं हैं। " स्त्री बोली। और उन चारों पुरुषों के साथ घर में घुस गई।

वे ८ लड्डू जो अलग रख गयी थी, उन चार आदमियों को खिला दिये, और वे दो लड्डू जिन्हे वह समझ रही है जहर के बने हैं, अलग एक थाली में रखे थे-अपने पति को खिला देती है।

वे चारों खापीकर ऊपर गये और आराम से सोजाते हैं। 'जैरामजी' करके सो गये, बस लम्बे बने।

अब इधर पति लड्डू खाकर वहीं अपनी जगह बैठा है।

स्त्री इंतजार कर रही है:–" अब मरेंगे, तब मरेंगे।" लेकिन वह तो मरता ही नहीं। मरनेवाले तो ऊपर गये।

काफी समय हुआ। स्त्री को वहेम हुवा। पति तो आराम से अपना डंडा हाथ में लिये बैठे हुवे हैं। फिर ऊपर जाकर देखती है–वहा तो मुह फाडे सब लम्बे पड़े हैं। 'चलो जैरामजीकी'।

स्त्री घबराती है। रात के ८ बजे का समय है। चार आदमियों के मुर्दे घर में पड़े हैं।

डरती डरती नीचे आई और अपने पति से बोली:–" स्वामीनाथ! ऊपर चलो। रातको कुछ महमान आये थे, उनको क्या हो गया, चढकर देखिये।"

" तू जाने और तेरे महमान जाने रॉंड। मेरे से क्या काम है? । मेरा तो कोई दखल नहीं है।" पति बोलता हैं और मारता है दो-चार डण्डे।

फिर बडबडाता है–" रंडी कहींकी, सीरा पुडी खानेवाला आदमी कभी अंधा होता है? । बराबर ऑंखों से देख रहा हू, तेरी तरकीबें। मैं खूब समझता हू–ये सब शैतानियां। तूने मुझे बिलकुल उल्लू समझ रखा था। मैं तो तुझे अभी घर से बाहर निकाल देता हू। मेरे घर में एक पल भी तेरा काम नहीं।"

स्त्री पैरों में गिरती हैं। माफी मांगती है। प्रतिज्ञा करती है, अब आप कुछ भी करो, मैं कभी आपको छोडे कहीं नहीं जाऊगी। परमात्मा की साक्षी से कहती हू। अब दुराचार में नहीं जाऊगी। अब तो इन मुर्दों का कुछ भी ठिकाना करो।"

सेठ को भी मुर्दों का ख्याल आनेपर घबराहट जरूर हुई। पुलिस को अगर खबर पडजाय तो न जाने क्या हो? । लेकिन होश्यार था। एक तरकीब निकाली। ऊपर के एक मुर्दा लाकर नीचे सुलाता है। बाजार में जाता है और ४ मजदूरों को ले आता है। कहता है:–" देखो यह आधे घण्टे का काम है। फलानी बावडी मे डाल आओ। रुपया दश देदुगा।"

मजदूरोंने सोचा:–आधे घन्टे में रुपये १० मिलेंगे। उठाया मुर्दा और उसे बावडी में डालदिया।

इधर ऊपर से दूसरा मुर्दा लाकर नीचे रखदिया। मजदूर लौट कहने लगे:– " लावो पैसा "।

" किसके पैसे "? सेठने पूछा

" मुर्दा उठाने के ।" मजदूरोंने कहा ।

" तुमने डाला कहां ? मुर्दा तो यह आकर पड़ा है ।" सेठने उस दूसरे मुर्दे को बतलाकर कहा ।

मज़दूरोंने देखा कि-मुर्दा तो जरुर पड़ा है । सोचा, हमने डाला जरूर है । परंतु कोई भूत-प्रेत है फिर यहां वापिस आगया है । चलो, फिर डालकर आजावें ।

उसको फिर उठाया । बावडी में डाला । ऊपर से २-४ बड़े बड़े पत्थर भी डाले कि कहीं फिर न भाग आवे ।

मगर फिर सेठ तीसरा मुर्दा लाकर रख देता है । मजदूर आये, देखते हैं । हरामखोर, फिर यहांपर पडा है । सोचा-" उस बावडी में जरूर भूत-प्रेत है । कहीं दूर डालकर आना चाहिये' ' । यहां से दो कोस दूर जाकरखूब पत्थरों से बांधकर उसे एक कुए में डालदेते हैं । करीब तीन बजे वापीस लौटे । सेठने चौथा मुर्दा नीचे लाकर रखा ही था । फिर आये तो देखा-' फिर वापिस लौट आया है ।' उन्होंने सोचा अबकी बार ऐसा डालो कि वापस न आये । घरसे दो चक्की के पहिये ले आये । इसीसे बांधा और एक बावडी में डाला ।

इत्तफाक की बात कि- एक डाढीवाले मुल्लाजी जंगल गये थे । ४-५ बजे का वक्त था । जंगल जाकर वजू करने के लिये उसी पावडी में नीचे उतरे थे, अल्ला, खुदा, रहम करो । बड़बड़ते थे उतनेमें ऊपर से धडाम से मुर्दा पडा । मुल्लाजी डरेः-क्या है ? ? या अल्ला, या खुदा ।

चिल्लाकर वे भागे । चारों आदमी पीछे दौड़े । मुल्लाजी की डाढ़ी पकड़ी । गर्दन पकड़कर लगे मारनेपीटने और गाली देने-" हरामखोर ! फिर निकलकर भागता है । चार २ दफे लाकर पटका, फिर भी नहीं रहता, अब हरामखोर ठीक पकड में आगया । उठाकर उनको लाये उसी बावडी पर । बोले-" हाश । अब तो हरामखोर चुप होगया । बनिया बेचारा सच्चा बोलता था " । मुल्लाजी को डालदिया ।

घर जाकर सेठजी से कहते हैं-" सेठजी ! तुम कहते थे हरामखोर मुर्दा भाग-कर आजाता था । बिलकुल सच बात है । वह फिर आरहा था, परन्तु हमने पकड लिया, और ऐसा जोरों से डालदिया है कि, अब आने का नाम भी न लेगा ।"

सेठजीने उन्हें १०) रु. देकर विदा दिया ।

स्त्री को साथी बनाया। १०) रु. में चार मुर्दों को ठिकाने लगाया। पुलीस के मुकदमें से भी बच गया। इसका नाम है होशयारी।"

मेरे भाइयो!

स्त्री अगर दुराचारिणी होजावे, परन्तु यदि आप सदाचारी हैं, एकपत्नीव्रत पालन करनेवाले हैं तो ठिकाने लासकते हैं।

अर्थात् गृहस्थी को चाहिए कि-अपनी पत्नी में ही प्रेम रखे।

अब आगे है—

आज्ञापरा सेवका--

वही गृहस्थ भाग्यशाली है, जिसके घर में नोकर-चाकर उसकी आज्ञा का बराबर पालन करनेवाले हों। कोई चिंता उसे नहीं रहती। जहां आज्ञापालन करनेवाले नहीं, वहां क्लेश ही क्लेश रहता है। गृहस्थ को चिंता लगी रहती है। एक दूसरे को बदलता ही रहता है। और परेशानी में उसका समय जाता है।

अतिथि सत्कार

आतिथ्य-शुद्ध सुखी गृहस्थाश्रम वह है जिसके घर में अतिथि का सत्कार होता हो।

हमारे हिन्दुस्थान में महमानों की भक्ति-आदरसत्कार करने की भावना इतनी जागृत रहती थी कि-जहां तक किसी अतिथि को भोजन न कराये, वहा तक खुद नहीं भोजन करते थे। चाहे सारे दिन भूखा भी रहना पडे। यह हमारी अतिथि-सत्कार की चरम सीमा थी। यहां तक सचेत रहते थे कि हमारे गावमें ऐसा कौन मनुष्य आया है, जिसको मैं किसी प्रकार अपने यहा भोजन कराद्ं"। लोगो में इसीपर झगडे होते थे कि मेरे यहां जीमे, वह कहता था नहीं, मेरे यहा जीमें। उस समय हमारा देश भाग्यशाली था।

हमारा पुणिआ श्रावक दो आने की मुडी रोज कमानेवाला। उसकी प्रतिज्ञा थी। 'जब तक किसी एक अतिथि को भोजन न कराद्ं, वहां तक मैं भोजन न करुं'। पति पत्नी दोनों ऐसे थे। आवक थोडी थी, क्या करता? एक दिन पति उपवास करता और एक दिन पत्नी। यह था हमारा आदर्श।

लेकिन। आज हमारी दशा क्या है? जरुर महगाई, कन्ट्रोल, और चीजें न

मिलने के कारण से अगर आप लाचार हैं तो यह बात दूसरी है। परंतु, खास कर के, ऐसा मोका हो तो भी आज तो दशा यह है। महाराज के पास एक गृहस्थ बाहर से आया है। बैठा है। पुरुष की इच्छा होजाती है कि उसे अपने घर ले जाकर जिमावे। लेकिन विचार होता है-अगर पत्नीने कुछ कहा तो? विचारा डर जाता है। घर में बीवी जी सा. का डर इतना लगता है, बीबी का वश अगर चले तो आजकल तो पति से भी कहदे: " जाओ जी, मेरे से यह महिनत नहीं होती। तुम तो बीशी में जीमालो तुम तो ऐसे कईओं को ले आया करोगे।" पुरुष विचारा ठंडा पड जाता है। आज आप लोंगो की दशा यह है। पहले स्त्रियों ऐसी नहीं होती थीं। वे सती साध्वी होती थी। आतिथ्य-परायणा होती थी। हमेशा अपने पति से कहती थी:-" स्वामीनाथ। गांव में कोई अतिथि आया हो तो बुला लाओ। उन्हें जिमाकर हम जीमेंगे। कोई लूला-लंगडा, अंधा भिखारी हो, उसे देकर भोजन करेंगे। " यह हमारे देश की सभ्यता थी। कहां वह अतिथि-परायणा हमारी अतीत की नारी और कहां आजकल फैशन-परस्त नारी! देखकर रंज और अफसोस होता है। अतिथि-सत्कार क्या चीज है? आजतो हम समझते ही नहीं। अतिथियों को भोजन करावें। इन अतिथियों में से कौन आत्मा कैसा होगा, शायद कोई तीर्थङ्कर का जीव हो, कोई आचार्य, महापुरुष का जीव हो, कोई साधु, योगी, तपस्वी का जीव हो। हम क्या करसकते है? परन्तु कभी योगानुयोग ऐसे महापुरुषों के पात्र में हमारी रोटी चली जाय तो हमारा तो कल्याण ही हो गया समझो। हमने तो महापुण्य इकट्ठा कर दिया। हमारी तो गृहस्थी और जीवन सार्थक हो गये। " ऐसी भावना होनी चाहिए।

परंतु हमारी मनोवृत्तियां आजकल बदल गयी हैं। कौन घर लेजाकर जिमाने का झंझट करे; बीबी नाराज होती है। चूल्हे को फूंरु-फोंक करना पडता है। चलो चन्दे से ही महमानों की व्यवस्था करलो।

चातुर्मास के समय में साधु मुनिराज के दर्शन, व्याख्यान-वाणी का लाभ लेने गृहस्थ आवेंगे। चन्दे से भोजन का प्रबंध न हो सका तो धर्मादा खाते के पैसों से रसोडा (भोजनालय) खोल देंगे। चलो छुट्टी हुई। बुरा न मानियेगा आप। मैं कोई आप के लिये नहीं कर रहा हूं। यह तो आज हमारे सारे संसार की, हमारे देश, जाति और समाज की भावनाएं ही ऐसी हो रही हैं।

अब जो चन्दे से भोजन का इतजाम हो, वहांतक तो फिर भी हरकत की कोई बात नही, परन्तु धर्म खाते का भोजन करना एव कराना योग्य नहीं।

आप अतिथि-सत्कार करें। अपने घर जिमाएं। आपके यहा अतिथियों का आदर-सत्कार होना चाहिए।

मैं खासकर बाइयों से कहूगा-यह काम उनका है। उन्हें खिलावें। आप कुछ मह नत करें। केवल शरीर पर, पैरों में, गले में गहने से लदलदकर पडी रहती है। सारे पेट को फुलाये रहती हैं। सिवाय इसके कुछ काम नहीं। मैं तो कहूगा-यह आप का कर्त्तव्य कदापि नहीं। आप अपने कर्त्तव्य से हट गयी हैं।

और पुरुषों से कहूगा-हमारे गृहस्थलोग विषयो के लालचु हो गये हैं। स्त्री को कुछ कह नहीं सकते कि तुमको यह काम करना होगा। बस, कहे सो सचः " तहमेव सचम्। "

तीर्थङ्कर की आज्ञा का भग कर सकते है, परन्तु स्त्री की आज्ञा का भग कभी नहीं कर सकते।

सज्जनो! बुरा न मानना। सच्चा गृहस्थाश्रम यह नहीं। गृहस्थ का वही अनाज धन्य है, जो अतिथियों को जीमाकर फिर जीमते हैं।

आगे है-जिनपूजन-प्रतिदिन-तीर्थङ्करो की पूजा करना। पूजा कितने प्रकार की है यह आगे चलकर दिखलाउगा। आप लोग आजकल पूजा नहीं करते। आपको धन्धा, रोजगार और अपने बाजार की पडी है। परन्तु इष्टदेव की पूजा करना आपका प्रधान कर्त्तव्य है।

आगे है-मिष्टान्नपान गृहे-जिसके घर में हमेशा कुछ न कुछ मिष्टान्न चालू रहता है। व्यापार में फायदा हो या नुकसान, लेकिन जो खानपान में कभी कृपणता नहीं करते। दिल की दिलावरी खाने में और खिलाने में बराबर नजर आती है और प्रसन्नतापूर्वक जिनके यहा कुछ न कुछ मिष्टान्न बनाही रहता है।

साधुसगउपासते-हमेशा साधुओं का सग जिसके यहा होता रहता है। साधु जिसके यहां जाकर आशीर्वचन बोलते हैं, वह गृहस्थाश्रम धन्य है। जो साधु-सत

पुरुषों का सत्संग करते हैं, उनकी प्रार्थना करते हैं, सहवास करते हैं, धर्मध्यान का लाभ लेते हैं–नानाप्रकार का ज्ञान उनसे प्राप्त करते हैं।

धन्यः सः गृहस्थाश्रमः–ऐसा गृहस्थाश्रम, जिनमें ये सब गुण हों, धन्य है। ऐसा उच्च से उच्च गृहस्थाश्रम अगर हमारे यहां हो तो कई उंचे महापुरुष उत्पन्न हो सकते हैं। साधु, महात्मा, ऋषि, त्यागी, संयमी इन सारे महापुरुषों के उत्पन्न होने की अगर कोई खान हैं, तो एकमात्र ऐसा गृहस्थाश्रम ही है।

इसलिये आपको चाहिए, अपने गृहस्थाश्रम के नियमों का शुद्ध पालन करें और आत्मकल्याण करें।

भाइयो और बहिनों ।

कल १७ वाँ गुण बतलाया था । अब १८ वाँ गुण कहते हैं:-

आठवा गुण अन्योन्याप्रतिबन्धेन त्रिवर्गमपि साधयेत्

अर्थात् यह बात पहले भी मैं दिखलाचुका हूँ कि चार पुरुषार्थ हैं: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों मे से तीन पुरुषार्थों की साधना गृहस्थधर्म में रहते हुए एक दूसरे को बिना हानि पहुँचाये, विधि और मर्यादा के अनुसार करें। ये तीन पुरुषार्थ- अर्थ, काम और धर्म के विषय में मैं पहले कहचुका हूँ ।

लेकिन इतना विशेष समझ लीजिये कि धर्म पुरुषार्थ की साधना हरएक मनुष्य करने को तत्पर है । दूसरे शब्दों में कहू तो धर्म का साधन करते भी हैं, लेकिन उसका साधन करने के लिये, जो मुख्य बात होनी चाहिये उसका अभाव है । इस के लिए यही आज मैं दिखलाना चाहता हू । युधिष्ठिर और भीम के सवाद की ओर आप का ध्यान आकर्षित करता हू.

युधिष्ठिर-भीम सवाद

युधिष्ठिर और भीम का सवाद होता है । महाभारत में इसका जिक्र है । शाति से युधिष्ठिर विराजमान हैं । उस समय भीम पूछता है उनसे-

कथ उत्पद्यते धर्म ? कथ धर्मो विवर्द्धते ? ।
कथ च स्थाप्यते धर्मः ? कथ धर्मो विनश्यति ? ॥

अर्थात् धर्म की उत्पत्ति कैसे होती है ? वृक्ष होता है तो उसका बीज भी होता है । वैसे ही धर्म की उत्पत्ति का बीज कौनसा है ? इसके बाद, जैसे वृक्ष के बढने के लिये खाद वगैरह चाहिये, इसके बिना बीज का वृक्ष नहीं बनता, वैसे ही धर्मवृक्ष की वृद्धि करने के लिये हमें कौनसा साधन है ?

वैसे ही इस धर्म की स्थापना यानि मूल मजबूत कैसे होता है ? एक वृक्ष उत्पन्न

हो जाता है; डाली, फूल, पत्ते निकल आते हैं, परन्तु दीमक लगजाती है तो सड़ जाता है। वैसे ही धर्म के वृक्ष को मजबूत करने के लिये क्या करना चाहिये? और फिर झाड़ का नाश जैसे होता है, वैसे ही धर्म का नाश कैसे होता है? सारी बातें बड़ी सुन्दरतासे बतलाई गयी हैं।

युधिष्ठिर जवाब देते हुए कहते हैं:—

> सत्येनोत्पद्यते धर्मः दया—दानेन वर्धते ।
> क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोध—लोभात् विनश्यति ॥

जहां सत्यता नहीं, वहां धर्म की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सब ऊपर से महल—मकान कुछ भी बना लीजिये, लेकिन नींव—बुनियाद झूठी है, पोली है, तो महल ढह जायगा, चाहे कितना भी सुन्दर वह बना हो।

साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, हमारे जीवन में सत्यता नहीं, व्यवहार में, वाणीमें, विचारों में, प्रवृत्ति में, सत्यता नहीं, तो धर्म कभी उत्पन्न नहीं होसकता। संसार में चाहे कितना ही काम करलीजिये, घोडा, बग्घी, मोटर, मिलें, नोकर चाकर, पैसा टका, सब कुछ इकट्ठा कर लीजिये। आप अपने कलेजे पर हाथ धरकर पूछ लीजिये कि—आप का धर्म कहां तक ठीक है?

आप के पास ज्ञान कम हो, पैसा ऋद्धि—सिद्धि ऐश्वर्य कम हो, क्रियाकाण्ड कम हैं, कोई हरकत नहीं। लेकिन एक बात सच्चाई नहीं जानी चाहिये। इसके पीछे मर पिटना। "देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि।" बस, यही धर्म की उत्पत्ति का मूल है।

सज्जनो खूब याद रक्खो—"सत्य के पीछे मर मीटना।" यह बात जिस दिन आपमें आजायगी, आपमें धर्म की उत्पत्ति होजायगी—आप के आत्मा का कल्याण पूर्णतः निश्चित है।

कोई सामायिक, प्रतिक्रमण न करता हो, किन्तु वह सत्य के पीछे अपने को कुर्बान कर देनेवाला हो, तो मैं उसे श्रेष्ठ समजता हूं हालांकि क्रिया न करना, यह मेरा आशय नहीं है। दुनिया तो दोरंगी है। कोई कुछ करता है कोई कुछ, किन्तु खरी बात यह है कि मूल बात देखनी चाहिए कि वस्तुतः कियाकांड की सफलता का भी मूल कारण क्या है? बेशक " बालः पश्यति लिंगम् "

जैसे बालक मात्र बाहर के वेष को ही देखता है, वैसे ही हम बाह्य क्रियाकाण्ड को देखने लगते हैं।

परन्तु ऐसी बात करने वाले को पूछो'–" तुम्हारे जीवन में सचाई कितनी है ? कोई बात अगर आपडे तो सत्य के लिये कितनी कुर्बानी करने को तैयार हो ?" लेकिन फिर भी मैं कहता हू कि–इसका यह अर्थ न समझें कि, सामायिक आदि क्रियाकांड न करो। करना जरुर चाहिये, पर साथ ही साथ सत्यता को नहीं छोडना चाहिये। सचाई के साथ में की हुई क्रियाएं सम्पूर्ण फल को देनेवाली होती हैं। कई लोग तो केवल बातें ही करते रहते हैं। हजार क्रियाए करते जाओ। सचाई की पहले जरुरत है। इसे खूब याद रक्खो मेरे भाइयो !

जीवन का गौरव और धर्म की नींव अगर किसी पर खडी है, तो एक मात्र सचाई पर। सबमे पहले सचाई को देखिये, फिर किसी के जीवन मे सारी बातें देखिये। मनुष्य, जीवन में यदि सचाई का आदर करता है, तो सचाई पर कितनी भी कुर्बानियाँ क्यों न करनी पडे, जरुर करे। कोई हरकत की बात नहीं।

हमारा झूठ, दम्भ, पाप वगैरह नहीं चल सकते। अगर थोडी देर के लिये चल भी जाय, तो हमारा आत्मा तो अन्दर से जरुर खटकता है।

धर्म करनेवाले मनुष्य को चाहिये, पहले अपने जीवन को सत्यमय बनावे।

मूर और स्पेनीस लडके

एक अंग्रेजी कथा आती है:—

मूर और स्पेनिश लडके आपस में खेलरहे थे। खेलते खेलते स्पेनिश लडके के हाथ से एक मूर लडका मारा गया। खूनी भागता है। गावके बाहर चला जाता है। एक बगले म घुस जाता है। घर के मालिक को पुकार कर कहता है–" मेरे को मारने के लिये पीछे लोग आरहे हैं। मुझे बचाओ।"

" मेरे जीते जी तुम्हारा कोई बाल बॉका न करेगा" कहते हुए मालिक ने लडके को आश्वासन दिया। और छिपा दिया। थोडी देर के बाद वे लडके चिल्लाते हुए मुर्दे को उठाकर उसी बगले के आगे आये। मुर्दे को रखकर मकान मालिक से पूँछते है:–" यहां कोई लडका आया है ?"

" क्या काम है ! "

" उसने खून किया है, खूनी लडका है।"

मालिक मुर्दे के पास जाता है। और अपनी आखों से देख कर चिल्लाता है:–

" हाय ! हाय !! यह तो मेरा खुद का एकलौता प्यारा लड़का है । "

प्यारे मित्रो ! मालिक कहता है लड़कों से:-" मैं देख लूंगा, तुम चले जाओ । "

घर में आता है । आप समझिये-उसके आगे दो प्रश्न खड़े हैं: एक तरफ है अपने वचन की रक्षा और दूसरी तरफ है अपने प्यारे पुत्र का खूनी युवक ।

भाइयो !

बतलाइये, आप जैन, ब्राह्मण, वैष्णव, हिन्दु और मुसलमान-सब बैठे है, ऐसी हालत में आप क्या करेंगे ? अगर इस लड़के के पिता की जगह आप होते तो क्या करते ? मेरा ख्याल है उस लड़के के टुकड़े २ कर डालते । अगर ऐसा न करते तो कम से कम उसे हवालात में अवश्य सुपूर्द कर देते ।

परन्तु वह मालिक समझता है: " मेरे लड़के की अपेक्षा मेरे वचन की कीमत ज्यादा है । मेरे लड़के का यह खूनी है, इसके साथमें मैं अपने वचन का खून नहीं करना चाहता । "

वह आदमी उस खूनी लड़केके पास जाता है और कहता हैं:-" अय बेईमान ! जिस लड़के का खून तूने किया है, वह मेरा खुद का लड़का है, परन्तु क्या करुं, लाचार हूँ । मैं अपना वचन तुझे देचुका हूं । इस लिये तुझे नहीं मार सकता । नहीं तो तेरे टुकड़े२ कर देता । सच्चाई पर रहना ही मेरे जीवन का धर्म है । इस मेरे घोड़े पर सवार होकर पहाडी के उसपार चला जा-नहीं तो लड़के तेरा खून करदेंगे । "

वह आदमी अपना टट्टू उसे देता है । और इस तरह अपने वचन की रक्षा करता है ।

भाइयो !

इसका नाम है सच्चाई । जीवन की कीमत इसीमें है । अगर हमारे वचनकी कीमत नहीं, घड़ी में कुछ और घड़ी में कुछ, तो धर्म हमारे से हजारों कोस दूर है ।

दया-दान से धर्म की वृद्धि

अब धर्म की वृद्धि कैसे होती है ?

दयादानेन वर्द्धते-अर्थात् धर्म का वृक्ष अगर फलताफूलता है, तो मात्र दया और दान से ।

जहां हमारे जीवन में दया और दान नहीं, अहिंसा का पालन नहीं, वहां धर्म की वृद्धि नहीं। अहिंसा और दया दोनों चीजें जुदी है।

दया–यह हृदय का विषय है और अहिंसा क्रिया का। क्रिया माने किसी को मारना नहीं, तकलीफ देना नहीं। लेकिन यह बातें तभी हो सकती हैं, जब हमारे हृदयों में दया होगी। हमें चाहिये, अपने सब व्यवहारमें दया हो। हमारे जीवन में किसी भी प्राणि को तकलीफ न हो। ऐसा जीवन अगर होजाये, तो हमारे धर्म की प्रगति हो जाय। जो दया धर्म का पालन करते हुए–अहिंसा धर्म का पालन करते हुए, अपने स्वार्थ की जरासी हानि के कारण, जीवों की हिंसा करदेते है, और समझते है कि,–जो जीव मनुष्य को तकलीफ दे, उसके स्थानमें बाधा डाले उसको तो मारना ही धर्म है। वे सचमुच ही गलतराए पर है।

जगली जानवरो की हिंसा।

जरा सोचिये। हमारे जैनों में तो ऐसा रिवाज नही है किन्तु बहुत से लोगों में ऐसा रिवाज सा है कि–खटमल, बिन्छू, साप वगैरह जो जहरीले जानवर हमें तकलीफ देते है, उन्हें मारते है। इसमें कोई हानि नही समझते।

मैं जरा समझाता हूँ, क्या इन को मारना हमारे लिये कभी जायज होसकता है?

खटमल को मारने का हमें हक नहीं। खटमल की उत्पत्ति हमारे पसीने से होती है। जिसकी उत्पत्ति हमारे से होती है, उसको मारना अपने पुत्र को मारने के बराबर है। केवल हमें तकलीफ दे, इसलिये उसे मार डालना, कितना अत्याचार और भयकर से भयकर पाप है। और वह तकलीफ भी हमारी गलती से देता है। न कि वह इरादापूर्वक देता है।

अगर हम प्रकृति के नियम को मानते हैं, तो जिस जानवर का खून जहां ज्यादा गिरता है, वहा उन्हीं जानवरो की उत्पत्ति ज्यादा होती है। यह प्राणी–शास्त्र का–प्रकृति नियम है। अगर खटमल को मारकर उसमे बचना चाहें यह घोर अज्ञानता है। प्राणी–शास्त्र को आप नहीं जानते। ऐसा कभी नहीं होसकता। फिर दया–अहिंसा की दृष्टि से भी उनको मारने का हमारा हक नहीं।

अब रहे बिच्छू, सांप, व्याघ्र वगैरह जहरीले और हिंसक जानवर। हम समझते है कि यह तकलीफ देते हैं, इसलिए हमारे गुनहेगार हैं। बिलकुल जूठ बात है। कोई जगली जानवर मनुष्य का गुनेहगार नहीं। वे तो सब मनुष्य को देखकर ही डरते

है। दूर भाग जाते हैं। अगर नुकसान करनेवाले होते और मनुष्य के दुश्मन होते तो कभी डर कर नहीं भागते।

आप इतने आदमी बैठे हैं, अगर आपके बीच में कोई साप भी आजावे और काट ले तो इसकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। वह जहां मनुष्य को देखलेगा अपना रास्ता ही दूसरा बदल देगा और उधर से ही भग जावेगा। इसीलिये तो ये जानवर हमसे डरकर घांस के अन्दर, पत्थरों के बीच में, घरों की दीवालो में, जमीनमें और जंगल में छिपकर रहते हैं।

अगर संसार में सब से भयंकर कोई प्राणी है तो वह एक मात्र-मनुष्य है। हम स्वयं भयंकर हैं। ये डरनेवाले-बेचारे जंगली जानवर नहीं।

हमारी शकल देखते ही जंगल के निर्दोष जानवर तक भाग जाते हैं। हमारे पास आना भी नहीं चाहते। हमें देखकर पत्थरों में, घांस में, झाडियों इत्यादि में छिपजाते हैं। डरते है कि यह राक्षस आया है। हमें मारकर खाजावेगा।

शेर, सांप और बिच्छू जैसे जानवर भी हमारे पर कभी हमला नहीं कर सकते, जब तककि वे किसी आफत में न आजाय।

अभी तो मौका नहीं है। कोई बिच्छू है नहीं, नहीं तो मैं बता देता आपको। आपके सारे शरीर पर बिच्छू फिरा देता। अगर वह काट ले तो जबाबदार मैं होता। शर्त यह कि, उसकी जो ऊपर की चमडी है, उसका स्पर्श आप न करें।

हम प्राणी-शास्त्र को जाने नहीं और गलती हम करे और फिर गलतीका नतीजा भोगें, तो इस में उसका क्या दोष? हम गुनहगार हैं।

मैं ने इस विषय पर एक लेख लिखा है। "जंगली जानवरों की हिंसा।" हिन्दी गुजराती में छपचुका है। उसमें दलीलों के साथ मैं ने दिखलाया हैं कि, इन जानवरों के मारने का मनुष्य को कोई हक नहीं और फिर जितने मारे जाते हैं, उतनी उनकी उत्पत्ति ज्यादा होती है।

मैं ने यू. पी. गवर्नमेन्ट की, इस विषय की, जहांतक मुझे याद है-सन् १९२५ से ३२ तक की रिपोर्ट मंगाई थी और देखी थी। वह हरसाल इन जंगली जानवरों-व्याघ्र, सिंह और सांपों को मारने के लिये इनाम निकालती है। जो जितने ज्यादा मारता है, उसको उतना ही ज्यादा इनाम दिया जाता है।

रिपोर्ट के आकड़ों से मालूम हुआ कि. सन् १९२४ में जितना इनाम निकला, सन २५ में उससे ज्यादा, और २५ से २६ में और ज्यादा, इस तरह २५ से ३२ तक उत्तरोत्तर इनाम बढता ही गया।

परिणाम इसका क्या हुआ है ? उधर इनाम ज्यादा निकलता गया, इधर उन्हीं जानवरों से मनुष्यों की मृत्युसंख्या निरतर ज्यादा होती गयी।

गवर्नमेन्ट मजूर करती है कि-जितनी इन जानवरों के मारने की कोशिश हम करते हैं, उतनी ही मनुष्यो की इनके कारण मृत्युसख्या ज्यादा होती जाती है।

मैं खुद अपना अनुभव कहू-शिवपुरी में जब हमारी सस्था को लाये, उस समय वहां भयकर जंगल था और जहां आश्रम है वहां बिच्छू, सांप बहुत निकलते थे। हमारे विद्यार्थी प्रतिक्रमण करने समय अपनी २ टोपिया पास लेकर बैठते थे। पास आने पर बिच्छू को टोपी से झट ढक देते थे और फिर अपने हाथ से पकडकर फेंक देते थे।

यह रिवाज सा पड गया था। कभी गल्ती मे अगर दब गया तो काट भी लेता। किन्तु मारता कोई नहीं।

परिणाम यह आया कि, आश्रम में इतनी तादाद होते हुए भी अब प्राय' जितने बिच्छू थे गायब हो गये, कदाचित् ही बिच्छू देखने में आता है। यही दशा सांपों की थी। गुरुदेव की कृपा से आजतक कोई नुकसान नहीं हुआ और न कभी कोई सांप मारा गया। जब कि गांवमें रोजाना सैकडों साप और बिच्छु मारे जाते हैं और प्राय कोई दिन खाली जाता होगा, जिस दिन सांप का काटा न मरता हो।

मैंने इन सब बातों को देखकर निश्चय किया कि जिस जगह जानवरों की मृत्यु ज्यादा होती है, और जहां जिसका खून ज्यादा गिरता है, वहा उसकी उत्पत्ति भी ज्यादा होती है। शेर, बाघ जैसे जानवर भी मनुष्यों की आबादी से दूर ही रहते हैं। जहा जहा मनुष्यो की आबादी हुई, वहा वहां से दूर भागते जाते हैं।

इसलिये महानुभावों, आप याद रखें-जिनको हम जगली जानवर मानते हैं, उन जानवरों को मारनेका भी हमारा हक नहीं और यह तभी हम कर सकते हैं, जिस समय हमारे हृदय में दया और दान की भावना जाग्रत होगी।

छोकरा रोता था !

जब तक आप दान नहीं करें, आपका गृहस्थाश्रम शून्य है, बिलकुल शून्य है। आप जरूर दान दे। गरीबों, अनाथों, दुखियों और दीनों की जरूर मदद करें, यही धर्म बढाने का–पुन्याई बढ़ाने का रास्ता है। परन्तु यह तब हो सकता है, जब उपदेश को जीवन में उतारें।

एक सेठजी व्याख्यान में रोज आया करते थे।

एक दिन ज़रा देर से आये।

"आज देर से कैसे आये ?" महाराजने पूछा।

"कुछ काम था।" सेठजीने कह कर टालना चाहा।

"अरे भाई, क्या काम था ?"

"ज़रा लड़का रोता था, उसे चुप कराने में समय लगगया।" सेठ बोला।

"क्यों रोता था ? क्या बाईने मारा पीटा ?"

"नहीं महाराज, जरा जिद्द करने लग गया था कि मैं भी व्याख्यान में आऊंगा।" सेठ बोला।

"रोजाना आप आते जाते है अगर इतवार की छुट्टी के दिन लड़का भी आजाता तो क्या हर्ज था ?" महाराजने कहा।

"माफ करिये महाराज। ये तो हमारे जैसे हैं जो जिन्दगी भर व्याख्यान सुनें, तो भी कोई हर्ज ही नही। लेकिन अगर हम लडके को ले आवें, तो आप तो उपदेश देदेकर कई लडकों को बाबाजी बनादें। यह तो हम ठीक हैं जो सारी उम्र भर व्याख्यान सुनते जायं, तो भी आपके व्याख्यानों का ज़रा भी असर न हो।" सेठने जबाब दिया।

मेरे प्यारे मित्रों।

बहुत से ऐसे भी सज्जन हैं, जो उम्रभर व्याख्यान सुनें, लेकिन एक कौड़ी किसी को देना कैसा होता है, यह नहीं जानते।

इसलिये मित्रो ! आप भी ऐसे न बनें। कुछ न कुछ दान करें। इन गरीबों, दुखियों की मदद जरुर करें। इसी में आप की शोभा है। इसी दया और दान से धर्म की वृद्धि होती है।

क्षमासे धर्म की स्थापना

" क्षमया स्थाप्यते धर्मः । "

अर्थात् क्षमा से धर्म की स्थापना होती है। क्षमा क्या चीज है ?

कोई भी गुनहगार हो, उसके गुनाह की तरफ ध्यान नहीं देकर उसे क्षमा करदें। उसकी बुराई का बदला न लें।

ऐसी क्षमा का गुण जिस समय हमारे हृदयमें होगा, उस समय हममें सची सहनशीलता उत्पन्न होगी। और फिर इसके कारण कितना भी कष्ट आपडे, उस समय उफ तक नहीं करेंगे।

भावना यही रक्खेंगे—क्षमा करना हमारा धर्म है।

बडा हो या छोटा, किसी प्रकार का उपद्रवी हो, अन्यायी और अत्याचारी हो—हमारा धर्म दया का चिंतन कर के उन्हे क्षमा करने का है।

जिस समय हमारे रोम रोम में ऐसी क्षमा पैदा होजायगी, तब धर्म की जड हमारे आत्मा में मजबूत हो जायगी। लेकिन अगर हममें यह बात नहीं है कोई अगर हमें कुछ कडवी बात भी कह दे, तो सहन न हो, आक्रमण करने को तैयार हों, तो समझ लीजिये—वहा पर धर्म का स्थान नहीं है।

चण्डरुद्राचार्य—

उत्तराध्ययन सूत्र में चण्डरुद्राचार्य की कथा आती है -

चण्डरुद्राचार्य भयकर मे भयकर क्रोध की मूर्त्ति थे। बात २ में आक्रोश करना, साधुओं को सताना, सैंकडो गालियाँ देना, मारपीट भी करना आदि उनका काम था।

विहार करते २, एक गांव के बाहर उद्यान में साधुलोग ठहरे हैं। साधुओंने विचार किया कि गुरुजी को किसी प्रकार की तक्लीफ न हो, इसलिये उन्हें एकांत स्थान में बिठाया जाय। साथ बैठेंगे तो, कहीं हमारे निमित्त से क्रोध हो जायगा और उनको नुकसान होगा।

एक एकांत जगह मे उन्हें ठहराया जाता है। गुरु क्रोधी होते हुए भी महान् आचार्य थे, विचारक थे, और थे विद्वान् तथा समझदार। सोचते हैं'—" यहीं एकांत में ठीक हूँ। क्या करू, मेरी प्रकृति ही ऐसी है। मैं लाचार हूँ, क्रोध का नहीं रोक

सकता'। इस तरह विचार करते हुए आचार्य दूर एकांत में बैठे हैं। एक झाड के नीचे अन्य साधु बैठे हैं।

शाम का समय था। कुछ लडके खेलते हुए, साधुओं के पास चले गये। उन में से एक लडका ऐसा भी था, जिस की शादी इन्हीं दिनों में हुई थी। वे लडके साधुओं से हंसी दिल्लगी करने लगे। साधुओं को कहते हैं:-"महाराज, इस लडके को दीक्षा दो।" लडका वही था, जिस की अभी शादी हुई थी।

साधु समझ गये-ये हमारे से दिल्लगी करते हैं। टालने के इरादे से बोले-'भाई, हम लोग तो चेले हैं। हमारे गुरुजी उस झाड के नीचे बैठे हैं। वेही दीक्षा देसकते हैं, हम नहीं।"

साधुओंने समझा, लडके चले जायेंगे; परन्तु लडके वैस ही दिल्लगी बाज हुवा करते हैं। गये गुरुजी के पास और लगे वहां भी यही दिल्लगी करने। कहते हैं:-"गुरुजी महाराज! इस लडके को अपना चेला बना लीजिये।"

आचार्य को गुस्सा आगया। पकड लिया उस लडके को। उसका शिर अपने दोनों हाथों क बीच पकडकर तडातड उसके सिर के सारे बाल निकाल लिये। लूंचन कर डाला, जैसा हम साधु करते हैं। बोलते हैं:-"देखा, कैसा अच्छा साधु होता है, यह मस्करी करता है मुझसे भी।"

जवान लडका था, तत्काल शादी हुई थी, और सिरपर से सारे बाल निकाल लिये, लडके यह देखकर-"हाय हाय गजब होगया"-कहते हुए वहां से भागे। युवक में खानदानी थी। विचार आया दिल में:-"मेरी जिन्दगी में साधुपना आता नहीं। परन्तु, जब कि जबरदस्ती भी दे दिया है तो इसे निभाना चाहिये। लिया सो लिया। जिस प्रकार यह संयम अंगीकार किया, उसी प्रकार पार भी लगाना चाहिये।"

यह सोचकर गुरुजी से कहता है:-"महाराज। मेरी इच्छा चारित्र अंगीकार करने की नहीं थी, लेकिन आपने जब लोच करही दिया है, तो मुझको भी अब आप अपनाइये। मैं आप के साथ रहकर आपकी सेवा करुंगा।"

"परन्तु साथ ही एक बात जरुर कहनी है-महाराज! मेरे माता-पिता यहीं रहते हैं। खानदान व पैसेवाले हैं, राज दरबार में मान है। मेरी शादी कलही हुई है। अगर ये सब सुनेंगे, जरूर झगडा खडा करेंगे-आप को गिरफ्तार कराएंगे। इस से

जिनशासन की हीलना होगी । इसलिये अच्छा है, रातों-रात वहा से कहीं और जगह विहार कर जायें । ”

आज दीक्षित साधु गुरु को साथ लेकर वहा से भागता है । रास्ते में चले जारहे है । शाम हुई, रात आई । अंधेरा हुआ। रास्ता ककरीला, पथरीला, ऊबडखाबड और कटीला था। गुरुजी को काटे चुभते थे । पत्थर पर गिर पडते । नाना प्रकार की तकलीफें होतीं, क्यों कि गुरुजी रतौंधे थे । रात की अधेरी में दिखता नहीं। शिष्य के लिये चले जा रहे हैं । गुस्सा जाता है । उस लडके को गुरुजी सैंकडों गालियों देते हैं “ बेइमान, नालायक, हरामखोर, मैंने तुझे क्यों चेला बनाया ?' आदि न जाने क्या २ बकते थे। लडका सब सहन करता है । गुरुजी के पैरों में पडता है, बोलता है।-“ क्या करु, अंधेरी रात है, मैं अभागा हू अपने गुरुजी को कुछ आराम नहीं दे सका, मेरे कारण से आप को रात में ठोकरें खाना पड रही हैं-तकलीफ होरही है । ” नाना प्रकार से वह बालक पश्चात्ताप करता है । गुरुजी का हाथ पकडकर आगे२ चलता है।

अनेक प्रकार के गड्ढे आते हैं। ककडपत्थर की ठोकरें खाते है । रास्ता जगल का है । जब२ गुरुजी को ठोकरें लगती हैं डडा उठा कर गुरुजी मारते है उस बालक के सिर में । बाल निकल गये हैं । खून गिररहा है । गुरु उसके सिर में डडों पर डण्डे मारने लगते हैं और ऊपर से गालियों की बौछार ।

चेला सब सहन करता है । परमात्मा का ध्यान करते हुए पश्चात्ताप करता हुआ जा रहा है-गुरुजी को किसी प्रकार का सुख नहीं दे सका ।

चलते २ कहता है।-“ महाराज । एक काम करिये । आप मेरे खधे पर बैठ जाइये । ककडकाटे नहीं लगेंगे । आप को तकलीफ कम होगी । ”

गुरुजी कधे पर बैठ जाते हैं । चलते २ रात अंधेरी में अब चेला ठोकर खाता है, ऊपर नीचे होता है। गुरुजान हाथ मे डडा लियाही है-तडाक से मारा चेले के सिर पर । गालियों बोलते है-कहते है-“ तू नालायक, मुझे तकलीफ देता है । ”

चेला समता ही रखता है । किञ्चित् मात्र भी रोष मन में नहीं । पश्चात्ताप कर रहा है कि-मैं गुरुजी को कुछ भी आराम नहीं दे सका । पश्चात्ताप की मात्रा बढती ही जारही है ।

उत्कृष्ट परिणामों की धारा बढी । थोडा आगे चलता हैं-लडके को कवलज्ञान उत्पन्न होजाता है ।

केवल-ज्ञानी बालक का रास्ता साफ होजाता है, कॉटा न कंकड, लेना न देना।

जब शिष्य सीधा चलता है, ठोकरें नहीं खाता। गुरुजी कहते हैं:-" अब नालायक। सीधा चलता है-डण्डे ने तेरी अक्ल ठीक करदी।"

" आप की कृपा का फल है," केवलज्ञानी बालक उत्तर देता है।

गुरुजी विचार करने लगे। क्रोधी जरुर थे, पर विद्वान थे, समझदार थे। सोचने लगे-शिष्य ऐसा क्यो बोलता है ?। पेहले तो वह ठोकरें खाता था। लेकिन अब सीधा चलता हैं। और कहता है-" आप की कृपा का फल है।" यह क्या बात है ?"

" क्या तेरे को केवल-ज्ञान तो नहीं हुवा ?" गुरुजी शिष्य को पूछते हैं ?

शिष्य कहता है:-"महाराज ! आपकी कृपा से"।

गुरु अपने आत्मा को धिकारते हैं। "हाय मेरे आत्मा को मैंने कितना नीच बनालिया है। ५० वर्ष हो गये-तपचारित्र का पालन करते हुए। क्रोधी होकर चारित्र को डुबाया पर कल के दीक्षित साधुने, क्षमा को धारण करके, केवल-ज्ञान को प्राप्त किया। धिक्कार है मुझको ! मैंने केवळ-ज्ञानी की आशातना की।"

गुरुजी कूद पड़े और शिष्य के पैरो में प्रणाम करते हैं। जपने आत्मा को धिक्कारते है:-" हाय ! हाय ! ! मैंने केवली को कष्ट दिया, दुर्वचन कहे। मेरे जैसा पापी और कोई नहीं। केळवज्ञानी प्रभो ! मैंने आपकी आशातना की है।"

गुरुजी चेले के चरणों में पड़कर केवलज्ञान प्राप्त करलेते हैं। दोनों केवली होजाते हैं।"

मेरे प्यारे मित्रो !

क्षमा ऐसी चीज़ है।

जो क्षमा को अंगीकार करेगा, वह जरुर इसके फल को प्राप्त कर सकता है। चेला हो, गुरु हो, पुरुष हो, स्त्री हो, राजा हो, रंक हो, गरीब हो, अमीर हो और कोई भी हो।

इसलिए महानुभावो !

धर्म की स्थापना चाहते हों तो क्षमा धारण करो।

धर्म के ठेकेदार बनकर आज हम कितनी क्षमा रखते हैं ? दुनिया पर कितना प्रेम रखते हैं ? अपने आत्मा से पूंछे, तो मालूम होगा।

हम धर्मात्मा बनने का ढोंग करते है । आप लोग रात को पौषध तो करते हैं, प्रतिक्रमण करते है और

" खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे ।
मित्ति मे सव्वभुएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ "

यह पाठ बोलते है । पाठ बोलनेवाले हजारो मनुष्य हैं । लेकिन यह तभीतक के लिये है जबतक हमारी जीभपर उच्चारण होता है । जहां सीढीया उतरे बस प्रभावना लेने के समय आपस मे तूतू, मैं मैं हुई । लडाइ झगडे करने को तैयार होजाते हैं ।

हमारी क्षमा कहा है ? हमारी क्षमा तो मात्र शब्दो मे रह गयी है ।

महावीर के सिद्धात को जाननेवाला जीव, प्रतिक्षण यह विचार करे कि, मेरी किसी से दुर्भावना नहीं, समस्त जीवों को खमाता हू, और मेरे गुनाह को वे माफ करें । वही सच्चा क्षमाशील है ।

आप भी ऐसे ही क्षमाशील बनिये । धर्म की जड तभी मजबूत होगी ।

भाइओं और बहनो,

कल के व्याख्यान में मैंने धर्म की उत्पत्ति, धर्म की वृद्धि और धर्म की स्थापना कैसे होती है किस से होती है, यह बात बतलायी थी, आज धर्म का नाश अर्थात् मनुष्य, धर्म से भ्रष्ट कैसे होता है ? यह बतलाऊंगा ।

धर्म का नाश कैसे हो ?

" क्रोधलोभात् विनश्यति । "

युधिष्ठिर बताते हैः धर्म कैसे नष्ट होजाता हैः क्रोध और लोभ से नष्ट होता है। कितना ही ऊचे से ऊंचा मनुष्य हो, धर्म का नाश करनेवाला वह जरुर हो जायगा यदि क्रोध और लोभ उसेक शरीर में प्रविष्ट कर जायेंगे ।

क्रोध के कारण मनुष्य का धर्म रह सकता हैं ? साधु का साधुपना रह सकता हैं ? तपस्वी की तपस्या रह सकती है ? संयमी का संयम रह सकता है ? हरगिज नहीं।

शास्त्रकार कहते हैः—

हरत्येकदिनेनैव तेजः षाण्मासिकं ज्वरः ।
क्रोधः पुनः क्षणेनापि पूर्वकोट्यार्जितं तपः ॥

अर्थात्—

एक दिन का ज्वर हमारे चेहरे के ६ महिने के तेज को हरण करलेता है। मनुष्य आज प्रसन्न चित्त है, खुश है, बिलकुल स्वस्थ है, लेकिन रात को १००-१०१-१०४ डिग्री तक बुखार आजाय, फिर प्रातःकाल बुखार न भी रहे, तो भी उसके शरीर को देखिए-चेहरा उतर गया होगा ।

लेकिन शास्त्रकार कहते हैं-एकदिन के क्रोध की जरूरत नहीं, एक घन्टे भर की भी जरूरत नहीं; मात्र एक क्षणभर का क्रोध हजारो, लाखों, करोड़ो वर्षों की हमारी

तपस्या को धूल में मिला देता है। ऐसा है यह क्रोध, यह मैं नहीं कहता। शास्त्रकार भी अपने घर की बात नहीं कहते। तीर्थङ्करोंने ऐसा फरमाया है।

धोवी और साधु

तपस्या करके शरीर कृश करनेवाला साधु, महाघोर तपस्वी, जिसने तपस्या से एक यक्ष को वश में करलिया था। यक्ष से वचन मिला था कि, जिस समय तपस्वी को तकलीफ हो मदद करने को आवे।

साधुजी बाहर जाते हैं। प्रातःकाल का समय है। तालाब के घाट पर जाकर जगल चले जाते हैं। जंगल जा कर के उठे ही हैं कि इधर से धोबी आया घाट पर। देखता है–यह साधु घाट पर ही टट्टी गया है। उस समय धोबी कहता है:–" साधु! तू यहा पर जगल कैसे गया?"

"मेरे को क्या कहता है?" तपस्वी बोलता है।

धोबी हट्टाकट्टा मजबूत था शरीर से। तपस्वी को एक तमाचा लगा दिया। उधर साधुजी को क्रोध आगया। उठाकर एक तमाचा उन्होंने भी दिया। लगे दौनो लट्ठमलट्ठा करने। धोबीने साधुजी की हड्डियो ढीली करदीं।

उस समय साधुजी विचार करते हैं:–" हे यक्ष। तू मेरे को बचाव! आव!" लेकिन कौन आवे?

यक्ष नहीं आया। कोई खबर नही पूछी साधुजी की। लडाई शांत हुई। धोबी अपने घर गया। इधर साधुजी अपने कपडों को झाड–पौंछकर वहीं एक वृक्ष के नीचे खडे रहे।

इतने में यक्ष उनके सामने आया और बोला:—

" महाराज! सुखशाता है?" साधुजी बोले'–" अब हरामखोर! मार मार कर धोबीने मेरी हड्डियॉ ढीली करदीं। बुलाया, फिर भी आया नहीं। अब सुखसाता पूछता है?। तूने वचन दिया था कि मुझको तकलीफ जब होगी, तू बचाने को आवेगा। इतनी तकलीफ हुई, आया क्यो नहीं?"

यक्ष जवाब देता है–"महाराज आपके पास में ही तो खडा था।"

"अरे हरामखोर! पास में खडा था, तो बचाया क्यों नहीं?" साधुजी पूछते हैं।

"धोबी कौन और साधुजी कौन ? उस वक्त मुझे मालूम नहीं हुआ ! उस वक्त तो आप दोनों एक कोटि में थे । न वह धोबी था, न आप तपस्वी । दोनों क्रोधी थे । अगर आप साधु होते, तो अवश्य बचालेता ।"

मित्रो !

क्रोध यह दशा करता है । जिस समय क्रोध हमारे शरीर में व्यापता है, हम अपने माता पिता गुरुजनों-बडों को भी भूल जाते हैं । क्रोध में आया हुआ मनुष्य मातापिता का खून तक भी तो कर डालता है । जो लोग सज्जन से सज्जन, तपस्वी से तपस्वी, त्यागी से त्यागी कहे जाते हैं, वे भी, जिस समय क्रोध में आजाते हैं, उस समय सब पापों को करने के लिये तैयार होजाते हैं ।

इसी प्रकार लोभ के कारण भी मनुष्य अपना धर्म खोता है ।

मैं अनेक बार कह चूका हूं-संसार में अगर कोई पाप का मूल है तो वह-लोभ है । गुजरात में एक कहावत है-लोभिया होय त्यां धुतारा भूखे न मरे ।

इन लोभी मनुष्यों के कारण ही तो धूर्त लोग बढ़ते हैं और मौज मज़ा उड़ा रहे हैं ।

बर्त्तनों को बच्चे हुए ।

एक धूर्त आदमी एक लोभी गृहस्थ के यहां से कुछ ताम्बे, पीत्तल के बर्तन ले आया । उस के यहां किसी की शादी थी । गिनकर लाया । ५० बर्तन कुल थे । जब काम पूरा हो गया, तो वह धूर्त आदमी उन बर्तनों में थोड़ी कटोरियां मिला कर उन बर्तनों वापिस पहुंचाता है ।

वह देनेवाला कहता है:—"ये तो ८० हैं, मेरे तो ५० थे । ३० ज्यादा कैसे आये ?"

"सेठजी कुछ बर्तन बिया गये-उनके बच्चे हुए, इस लिये बढ़ गये ।" उस धूर्तने जबाब दिया ।

उस लोभीने सोचा, यह बेवकूफ मालूम होता है । खैर ज्यादा आये तो मेरा तो फायदा ही है । वह उन बर्तनों को रख लेता है ।

थोड़े दिन बाद, फिर कोई विवाह शादी का मौका आया । वही धूर्त आदमी फिर बर्तन लेने गया ।

सेठ साहबने कुछ तांबे की, कुछ पीतल की थालियां तथा गिलास सब दे दिये।

" सेठ साहब! थोडे से चांदी के भी दे दीजिये । बडे बडे लोग आनेवाले ह । ' उस धूर्तने कहा ।

सेठ सा. ने विचार किया-थोडे दे ही दू, विचारा प्रामाणिक आदमी है ।

थोडे से चादी के भी बर्तन देदिये । सब मिल कर १०० बर्तन ले गया ।

काम होने पर वापिस लाया ।

सेठजीने बर्तन गिने । ७५ ही थे । बोले-" पौन सो ही कैसे लाया ? बाकी के कहाँ है ? "

धूर्त बोला-" कुछ मर गये, कुछ जल गये । "

" अरे, कहीं बर्तन भी मरते हैं ? " सेठ बोला ।

" और कहीं बर्तन बच्चे भी देते है ? जब ज्यादा लाया, तो बच्चे ममझ कर लेलिये । कम लाया हू तो मर गये-समझ लीजिये । " जवाब दिया धूर्तने ।

मतलब यह है कि-जहां लोमी है, वहा धूर्त भी खूब मिलते है ।

आज ससार मे धूर्त-बदमाशों की चल रही है । इस का मूल कारण है-लोगों का लोभी बनना ।

दखते हैं-आजकल अखबारों में खबरें आती हैं: " १० तोले सोना दो, २० तोला बना दू । " २० तोले तो दूर रहे, १० तोले भी गायब । यह सब क्यों होता है? मात्र एक लोभ के कारण । सच तो कहा है:-'अतिलोभो न कर्त्तव्यः' । परन्तु बनियों से रहा थोडा जाय ? । चाहे कितना ही नुकसान उठाना पडे, धर्म खोना पडे, इसकी परवाह नहीं, परन्तु बस कुछ भी करके पैदा करना है, लूटना है । मैंने कईबार कहा है कि-आज सारे ससार में अनीति, लाच, रिश्वतखोरी, जो कुछ हो रहा है, वह एक मात्र लोभ के कारण । यही अनीति का द्रव्य दुर्बुद्धि बनाता है, और दुर्बुद्धि के कारण सब कुछ अनथ होते हैं । नीति और अनीति के द्रव्य का प्रभाव पडे बिना रहता नहीं, यह बात अनेक बार कह चुका हू । जरा समय तो लगेगा, परन्तु एक और कथा कह कर, मैं आप को दिखलाना चाहता हू कि- नीति आर अनीति के द्रव्य का क्या प्रभाव पडता है ।

राजा की गीनी

शास्त्रों में एक राजा का किस्सा आता है-राजा को एक महल बनाना था। महल के शिला-न्यास के लिये मुहूर्त निकाला गया। सब इकट्ठे हुए! ज्योतिषीजी को पूछा जाता है:-"अब मुहूर्त में कितनी देर है" । ज्योतिषीजी बोले- "मुहूर्त में अब कोई देर नहीं है, परन्तु इस की नीव में ५ सोना मुहरें रखनी चाहिये"

राजाने कहा:-" बहुतसी सोने की मुहरें हैं। " खचांजी से कहा गया 'पांच सोने की मुहरें ले आओ।'

ज्योतिषी बोले:" महाराज! राजा का द्रव्य नीति का नहीं होता। आप नीति का द्रव्य इस की नींव में रक्खेंगे तो, हजारों वर्षों तक आप का यह महल बना रहेगा।"

'यह क्या बात है? हमारा द्रव्य अनीति का है तो क्या हुआ? हमारी प्रजा बहुत है, मैं अभी हुक्म देता हूं। उन के पास नीति का द्रव्य बहुत होगा।' राजाने सभा में बैठे हुए प्रजाजनों से कहा:-"जाओ, जिस के पास नीति का द्रव्य हो, लेआओ।" "पाप जाने आप, और मा जाने बाप" इस का अर्थ समझते हैं आप? मनुष्य कितना भी पाप करता है वह खुद ही जान सकता है। दूसरा नहीं। और लडके का बाप कौन है? यह कोई नहीं कह सकता, सिवाय उसकी मा के।

इसी तरह राजा की सभा में कई धनिक बैठे थे, परन्तु किसीने दावे के साथ खड़ा हो कर नहीं कहा कि-मेरा द्रव्य नीति का है।

राजा को यह जानकर बड़ा अफसोस हुआ। इतने में राजा को मालूम हुआ कि- और तो सब आये, लेकिन एक आदमी आया नहीं है, जो नीतिवाला है। उसको बुलाने के लिये घुडस्वार भेजा जाता है, और वह आता है।

राजा उन से कहते हैं:-" हमें पांच सोने की मुहरें चाहिये।" "जितनी चाहिये, उतनी मौजूद है" सेठने कहा।

" हमें तो नीति का द्रव्य चाहिये। उस में अनीति का नाम-निशान न हो" राजाने कहा।

" मेरे पास अनीति का एक कौडी भी नहीं है। आप को पांच मोहरें किस लिये चाहिये?" सेठने कहा।

" यह महल बनवाना है, उसकी नींव में रखना है।" राजाने उत्तर दिया।

सेठ राजा को इन्कार कर देता है। " मेरा द्रव्य इस महल के काम में नहीं आ सकता, क्यों कि मेरा द्रव्य नीति का है और इस महल में मास खाया जायगा, आप के महल में शराबें पी जायेंगी। रडियो का नाच होगा। नाना प्रकार के व्यभिचार होंगे। पाप होंगे। प्रजाजनों के अहित के लिये कानून बनेंगे। प्रजा पर यहा बैठकर अत्याचार और अन्याय किया जायगा। नाना प्रकार के पाप होंगे। ऐसे पापोत्पादक महल के लिये मेरा पैसा काम नहीं आसकता।"

राजा को गुस्सा हुआ। सेठ को कहता है: " देना है या नहीं ? " राजा की आंख लाल हो गयी ?

ज्योतिषी इतने में बोल उठे: " महाराज! अब तो इस सेठ का नीति का भी पैसा लेंगे, तो वह भी आप के लिए तो अनीति का ही हो गया। "

मुहूर्त टल गया। राजा के मन मे बात खटक गयी। सोचता है:-"यह नीति का और अनीति का ढकोसला क्या बला है ?। देखूं तो सही मैं भी। "

राजा मन्त्री को बुलाता है और कहता है -" एक गिन्नी अपने खजाने से लो और उसे एक ऐसे आदमी को दो, जो महायोगी हो। और फिर तुम देखो इसका नतीजा क्या आता है। "

" और एक गिन्नी इस सेठ की लो और किसी पापी मनुष्य को दो। और फिर देखो इसका नतीजा क्या आता है। दोनों चीजा का परिणाम देखो और फिर मुझे आकर इसकी सूचना दो। "

मन्त्री दोनों गिनियो को लेकर एक नदी के किनारे जाता है। नदी के किनारे एक योगी बैठा है। ४० वर्षों से योग की साधना करता है। महान् ब्रह्मचारी है, सयमी है। इन्द्रिय-निग्रह करनेवाला है। मन्त्री वह खजानेवाली गिन्नी उस महात्मा के सामने रख देता है। प्रधान दूर जाकर खडे होजाता है और देखता है कि-अब क्या परिणाम होता है।

सूर्य की किरणें उस गिन्नी पर पडती है और उससे पैदा हुई चमक योगी पर। योगी देखता है, उसेक सामने एक गिन्नी पडी है। उसका प्रतिबिम्ब उस पर पडने से योगी की बुद्धि फिर जाती है। उस गिन्नी को देखकर योगी विचार करता है:- 'मुझे आज तक कोई एक पैसा भी नही देने आया। आज ईश्वरने गिन्नी क्यों दी ? मैंने सब कुछ देख सुन लिया है। कर्म क्या चीज है ? आत्मा-परमात्मा क्या चीज है ?

जाना है, शास्त्रों का अध्ययन किया है, उन्हें सुना है। परन्तु रंडी क्या चीज है-कैसी होती है? नहीं देखी। उस का गाना नहीं सुना। उसको देखूं। इसीलिये ईश्वरने यह गिन्नी भेजी है'। मंत्री देखता है-वह योगी महान् योगी-४० वर्षों का योगी अपने योग से भ्रष्ट होजाता है। संयम से च्युत हो जाता है।

अपने चालीस वर्ष के योग को पानी में मिला देता है। अनीति के द्रव्य को हाथ में लेकर।

मन्त्री दूसरे दिन प्रातःकाल उस सेठ की नीति से पैदा की गई गिन्नी को लेकर निकलता है घर से। रास्ते में देखता है: एक मच्छीमार खलभल खलभल करती हुई मच्छियों से भरा एक टोकरा लेकर जा रहा है। मन्त्री विचार करता है कि-इसके जैसा पापी दूसरा कौन मिलेगा?

उस मच्छीमार को बुलाता है और उसे वह गिन्नी देकर कहता है कि "भाई, एक परोपकारी मनुष्यने यह गिन्नी तुझे दान दी है।"

वह मच्छीमार गिन्नी हाथ में लेता है। और विचार करता है:-"आज मच्छियां ले जाने की क्या जरुरत है?। यह गिन्नी मिल गयी है। इस से अनाज खरीद लूंगा बस मेरा काम चल जायगा। वापिस इन को तालाब में डाल दूं।" वह जाता है, उन मच्छियों को वापिस तालाब में डाल देता है। और एक रुपये का अनाज लेकर घर लौटता है। खुद खाता है, और अपनी स्त्री-बाल-बच्चों को खिलाता है। सब को इकट्ठा करता है और सब की राय लेकर कहता है: "क्यों हमें यह पापी धन्धा करना चाहिये? इसे छोड दें। अब तो कहीं न कहीं मजूरी करके गुजारा करेंगे। अभी तो चार-छ महिने तक तो इस गिन्नी के पैसे से अपना गुजारा चल ही जायगा। इतने में तो कहीं न कहीं अच्छी मजूरी मिल ही जायगी।"

प्रधान सब देख रहा है। नीति और अनीति के द्रव्य का परिणाम उसको प्रत्यक्ष होता है। और राजा के आगे निवेदन करता है।"

यह है नीति और अनीति के द्रव्य का प्रभाव। इस लिये महानुभावो, अनीति छोडो, लोभवृत्ति को कम करो, जिस से नष्ट होनेवाले धर्म से बच सको।

अब उन्नीसवाँ गुण कहता हूँ।

उन्नसवां गुणः-यथावदातिथि साधौ दीनेषु प्रतिपत्तिकृत्।

गृहस्थ को चाहिये कि-अतिथि, साधु और दीनजनों की यथायोग्य भक्ति करे, सेवा करे।

मैं अनेक बार कह चुका हू कि-जिस गृहस्थ के पास कोडी नहीं, वह कोडी का, और जिस साधु के पास कोडी है, वह कोडी का। गृहस्थ के पास पैसा होना चाहिये, परन्तु क्यों होना चाहिये ? यह भी आप बहुतवार सुन चुके है। पैसा साधन है। धर्म के लिए भी साधन है। इस लिए अतिथि, साधु और दीन दुखीयों की सेवा करने में लगावे, तभी द्रव्य सार्थक है। बाकी अपना अपना पोषण तो सब करते हैं। यह कोई बडी बात नहीं। जानवर भी यही करते हैं। कुत्ती भी ब्याहती है और अपने बच्चों का ठीक तरह से पालन-पोषण करती है। पर, मनुष्य का एक और भी कर्त्तव्य है। उस पैसे के साधन को अपने साध्य के लिये उपयोग करे और पुण्य उपार्जन करे। कुटुम्ब का पोषण करना-यह पुण्य उपार्जन के लिये नहीं है। यह तो अपने दुनियादारी के कर्त्तव्य का पालन करना है। यह तो ससार का काम पडा है। जो मनुष्य-पास में पैसा होते हुए अतिथियों का, साधुओं का आदर-सत्कार करने और गरीब दुखियों का दुःख निवारण करने की कोशिश नहीं करता, उसे पैसा रखने का कोई हक नहीं।

साम्यवाद क्यों चला ?

आज ससार में 'साम्यवाद' चला है। समाजवाद आदि अनेक वाद चले हैं। अगर कोई मुझे यह पूँछे कि-ये क्यों चले ? तो मैं यह कहूगा कि इन पूजिपतियों को जिस कारण से पैसा रखने की जरुरत थी, उस कारण के लिये पैसे का उपयोग उन्होंने नहीं किया। प्रकृति के विरुद्ध आचरण किया-नीति के विरुद्ध कदम रखा। इन वादो को किसने खडा किया ? मनुष्योंने नहीं। आप ताज्जुब करेंगे सुन। फिर किसने किया ? मात्र कुदरतने।

हम साधु लोग आप को उपदेश करके मर जाय कि पैसा धर्म के लिये इकट्ठा करो, आत्मकल्याण को सामने रख कर पैसा पैदा करो, गरीबों की मदद के लिये नीति पूर्वक पैसा कमाओ, पानी पहले पाल बाँधलो, लेकिन कोई सुनता नहीं।

कहेंगे—"महाराज ! जमाना ऐसा आया है। फलाना ऐसा आया है।" ऐसी वैसी बातें सैंकडो बनाएँगे उस समय। लेकिन जिस समय कुदरत का प्रकोप, प्रकृति

बडे से बडे साधु से पूंछा कि: 'संसार में भीख मांग कर गुजारा करनेवालों के दो भाग कौन से हैं ?': "एक अतिथि और एक अभ्यागत।" जवाब मिला।

'अभ्यागत' याने 'भिक्षुक' मांगनेवाला। मैंने पूँछा-"हम जैन साधु अतिथि हैं या अभ्यागत?" वे जरा विचार में पडे। वे 'अभ्यागत' तो कह नहीं सकते थे, क्योंकि इसका अर्थ होता था भिखमंगे। अपने को 'भिखमंगा' कहना, यह तो शर्म की बात है। फिर विचारते थे अगर 'अतिथि' कहने को जाते हैं, तो अभी कहीं न कहीं पकडेंगे।

वे बडे आचार्य थे। बहुत प्रेमसे जवाब दिया--"कहना तो 'अतिथि ही चाहिये"

मैं ने कहा:-"शास्त्रकारोंने अतिथियों की क्या व्याख्या की है? जरा यह तो बतलाइये?" वे चुप रहे। मैं ने कहदिया-'अतिथि की व्याख्या शास्त्रकारोंने योंकी है:—

"तिथि-पर्वोत्सवा सर्वे त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं तं विजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः।"

जिन महात्माओंने तिथि और पर्व का त्याग करदिया है। त्याग करने का मतलब क्या है? जिस दिनसे संयम लेते हैं-पंच महाव्रत को धारण कर लेते हैं, संसार की प्रवृति-लोभ, छल प्रपञ्च को त्याग कर देते हैं, भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हैं, उस दिन से रोज तिथि और रोज पर्व है उनके लिये। दिवाली तो आपके यहां आवेगी दिवाली के दिन, परन्तु हम साधुओं के यहां तो रोज ही दिवाली है। आपके यहां पर तो कभी २ मिठाई होती है, पर्व और तिथि के दिन-परन्तु हमारे यहां साधुओं के पात्रों में तो रोज ही मिठाई आती है।

अब बतलाइये, ऐसे साधु, जिनके रोज तिथि और रोज ही पर्व हों, आज 'तिथियों' के लिये लड़ाई झगडे करें, कोर्टों में मुकदमा चलावें, हजारो लाखों रुपया समाज का बर्बाद करें, इसको आप सोच लीजिये, कितनी गलत बात हैं?। यह सब किसलिये होता है? अपनी जिह्वा से अपना 'कक्का' खरा कराना चाहते हैं।

अष्टमी के दिन साधु गोचरी लेने को जायं, श्रावक के घर हरासाग बनाया है। बाई कहेगी:-"महाराज! आज तो अष्टमी है, हरा साग दूं या नहीं?" साधु जवाब देगें:-"बाई! हमारे आठम क्या और चौदस क्या? हमको तो 'तिथि' का ख्याल नहीं करने का है। निर्दोष है कि नहीं? यही देखने का है। हम तो अतिथि है।"

शाक लेने के समय 'अतिथि', और विरोध खड़ा करने के लिए तिथि! कितनी आश्चर्यजनक बात है।

आपको इस पर सोचना चाहिये। और मैं भी, आप श्रावकों को यही सलाह दूंगा कि-आप इस झगड़े में कभी न पड़े, यह झगड़ा चौथ पाचम का नहीं, 'तिथि' का नहीं। यह तो अपने पुराने वैरों का बदला है। व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष का परिणाम है। तिथि तो बिचारी निमित्त मात्र है। जरा और देखिये। श्रावक लोग १२ व्रत लेते हैं। बारहवा व्रत आता है-'अतिथिसंविभागव्रत।'

जो गृहस्थ साल में कभी भी 'अतिथिसंविभाग' का करते हैं, वे यह नियम करते हैं कि-साधुमुनिराज को बहरा कर खाना। बहुतसे श्रावक तो उत्कृष्ट क्रिया करते हैं-"जितनी चीजों को साधुजी लें, उतनी ही चीजें मुझे खाना"-ऐसा भी करते हैं। उस रोज मुनिराज को बहरा कर-भिक्षा दे कर फिर भोजन करना, नहीं तो नहीं।

यह क्या? 'अतिथि' का विभाग करता है। हमारे खाने में, पीने में, सब चीजों में अतिथि का संविभाग करना चाहिये। कहने का मतलब यह है-अतिथि संविभाग जिस समय करते हैं उस समय भिक्षा लेने के लिये तो साधु 'अतिथि' बनकर जाते हैं। लेकिन जिस समय एक दूसरे से लड़ना होता है, उस समय 'तिथि'-वाले होकर लड़ते हैं।

कितनी विचित्र बात है? अतिथि वही है, जिसने तिथियों का त्याग करदिया है। इसके लिये लड़ना झगड़ना छोड़ देना चाहिए।

आप लोग कभी इसमें भाग न लें। सिवाय कर्मबंधन के और कोई बात इस में नहीं। चाहे कितनाभी आपको राग हो, मान सम्मान आता हो, लेकिन जिस क्रिया में राग द्वेष की वृत्तियाँ बढ़ती जाती हों। ऐसा कोई भी काम करना हमारे लिये अच्छा नहीं। यह हमारे आत्मा को डुबानेवाली है। अगर हम धर्म के निमित्त से भी राग-द्वेष की वृत्ति बढ़ावें, तो यह भी अनुचित है। भगवान् कभी आज्ञा नहीं देते। इसके लिये यह नाजायज है। क्योंकि-धर्म का तो अर्थ यह है-जिससे राग-द्वेष की प्रवृत्तियाँ कम हों, कम होने के बदले बढ़ती हों, तो उसे समझ लेना चाहिए-यह धर्म नहीं, अधर्म है। ऐसे अधर्म से बचकर अतिथियों की सेवा-भक्ति करें।

श्रीपाल और उसकी माता

श्रीपाल की माता पटरानी हो कर महलो में रहती थी। उसे मालूम नहीं था गरीबाई का दुख। भूख का दुख क्या चीज होती है जानती नहीं थी।

लेकिन श्रीपाल का काका विरोधी हुआ और श्रीपाल को मारने का इरादा करता है। उस समय एक वृद्ध विश्वस्त मंत्री से श्रीपाल की माता को इस की खबर लगती है। लड़के को बचाने के लिये माता रातोंरात भागती है। बच्चा किस माता को प्यारा नहीं होता? अपनी जानसे भी ज्यादा प्यारा होता है। खुले पैर चलने से उसके पैरोंमें से खून निकलने लगता है। चारों तरफ भयंकर जंगल है। दिल थरथर काँप रहा है। माता विचारती है-"हाय! हाय!! मेरा और मेरे बच्चे का क्या हाल होगा?"

रात किसी तरह बीतती है। दिन होता है। श्रीपाल को भूख लगती है और राज की तरह माँसे खाने को माँगता है। परन्तु माता के पास देने को क्या था? इस समय श्रीपाल की माता को क्या दुःख हुआ होगा? आप अंदाज़ लगा सकते हैं।

मेरे प्यारे मित्रो! कहने का मतलब यह है कि तकलिफ आने पर ही मालूम होता है कि तकलीफ और भूख किसे कहते हैं? गरीबों, दीनदुखियों, मोहताजों को क्या दुःख होता है, आप श्रीमानों को पता भी है?। दुनियां भर की सेठाइयां भोगते हैं। ऐश आराम में लाखों खर्च करदेते हैं, लेकिन रोटी का टुकडा इन गरिबों को देने में आप लोगों को संकोच होजाता है। उस वक्त विचार पड़जाता हैं कि हमारे घर में से पैसा खूट जायेगा। बडे दुःख और अफसोस की बात है।

अभी खरतरगच्छ और तपागच्छ की लड़ाई शुरू करदो-लाखों रूपये आप बर्बाद करदेंगे। लेकिन अगर धर्म के लिये बात करो, गरीबो के लिये बात करो, देश की उन्नति के लिये बात करो, समाज, जाति की उन्नति के लिये बात करो, जैनधर्म के प्रचार के लिये बात करो, जैन साहित्य की उन्नति के लिये बात करो, कोई भी भलाई की बात करो। ये हमारे महावीर के अनुयायी होने की दम भरनेवाले नाम मात्र को जैन कहानेवाले पैसे के लालच, विषय-भोगों के लालची-तडाक से उत्तर देगे—"महाराज समय ठीक नहीं।" इनके लिये अभी समय ठीक नहीं है।

आप के पास लक्ष्मी है—थोडी हो या ज्यादा हो, कितनी भी हो, उसका एक हिस्सा भी अगर अतिथियों की, साधुओं की, संत महात्माओ की सेवा-सुश्रुषा, आदर

सत्कार करने और गरीब मोहताजों के दुखो को दूर करने में लगावेंगे, तभी आपकी लक्ष्मी की सार्थकता है और आपका जीवन भी सार्थक है। नहीं तो इसे तो एक दिन यहीं छोड़कर चले जाना ही है। यह निश्चित हो चुका है। अपने हाथों से कर लिया सो काम, और भज लिया सो राम।

गृहस्थका सुभोजन कब?

शास्त्रकार कहते हैं–एक सुगृहस्थ का भोजन सुभोजन कब हो सकता है? शास्त्रकार ही जवाब देते हैं–सुनिये –

अर्हद्भ्य प्रथम निवेद्य सकल, सत्साधुवर्गाय च,
मासाय प्रविभागत सुविधिना, दत्वा यथाशक्तित ।
देशायातसधर्मचारी साद्ध च काले स्वयम्,
भुञ्जीतेति सुभोजन गृहवता पुण्य जिनैर्भाषितम् ॥

अर्थात्––

पहिले तीर्थङ्करो को नैवेद्य धारण करे, फिर तलाश करे कि अपने गाव में कोई साधुसत महात्मा तो नहीं है, उनको में अपने घर लाऊं और यथाशक्ति भक्ति करु। आहार पानी का दान करू। और फिर अपने घरमें नौकर–चाकर आदमी वगैरह और हो, उनको यथाशक्ति जो लेना देना हो, वह ले दे। सबका विभाग करें। फिर मालूम करे कि मेरे घर कोई महमान तो बाहर का नहीं आया है। अगर आया हो तो उसके साथ बैठकर भोजन करें। इसी में गृहस्थ की शोभा है और यही भोजन सुभोजन कहलाता है।

जिनेश्वर भगवान ने इन बातो में महापुण्य माना है। आप दान करिये, पुन्य उपार्जन करिये।

मैंने अनेक बार कहा है कि–आप लोग दान तभी करसकेंगे, जब मूर्च्छा उतरेगी। चाहे कितनी भी अवस्था होजाय, पर ज्यों २ उम्र घटती जाती है, वैसे हो मूर्च्छा बढती है। आप यह न समझें कि जो वृद्ध मनुष्य हैं उनकी मूर्च्छा कम होजाती है। सबके लिये नहीं कहता परन्तु ज्यादातर यही बात है।

वृद्धावस्था में क्या होता है?

भर्तृहरिने कहा है–वृद्धावस्था में क्या २ दशा होती है?—

गात्र सकुचित गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि,
विशीर्णा दन्तालि, निजगतिरहो यष्टिचारणा ॥

जडीभूता दृष्टिः श्रवणरहितं श्रोत्रयुगलं ।
मनो मे निर्लज्जः तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति ॥

आज का बालक अगर इस बात का विचार करे कि, मैं तो बालक हूं, जरा बडी उमर का हो जाऊंगा, तब धर्म करुंगा। हजारो युवक विचार करें कि शादी की है, जरा मौज आराम करुं, फिर धर्म करुंगा। ४० वर्ष का व्यापारी यह समझे कि अभी तो व्यापार करलूं। २-४ लाख इकट्ठे करलूं, फिर दान, पुण्य, धर्मध्यान वगैरह करुंगा। ६०-७० वर्ष का विचारेगाः अभी तो दुनियादारी में फंसा हूं। लडकों को धन्धे पर बिठादूं, फिर दान-पुण्य-करुंगा। धर्म में दिल लगाऊंगा।

मित्रो! लेकिन यह सब मन ही मनमें रह जाती है। वृद्धावस्था आने पर भी लोभ-लालच, विषय-वासना छूटती नहीं। वृद्ध कहता हैः-

वह तरुण रमणियों के हृदयों का आनंद देनेवाला जो तारुण्य था, वह नहीं रहा। दांतों की पंक्ति गिर गई हैं, परन्तु फिर भी खाने की लालसा नहीं मिटी। नोकर से कहेगा-" जा-जारे! बाजार से सेव ले आ, उससे कहेंगेः कूट-पीसकर पाउडर बना कर दे दो, खालुंगा, कहता है जरा सा स्वाद तो लेलूं।"

जिस समय पैरो से चलता था-दौड़मदौड़ होती थी, जरासा कहें, उपासरें में चलो, उस समय कहता था अभी फुरसत नहीं है। परन्तु सट्टा बाजार में खूब फुरसत मिल जाती थी। रातमे १२-१ बजे तक जहां तक तार न आवे, खड़ा ही रहता था। फिर घर आता था। लेकिन अब चलने की शक्ति नहीं रही, लकड़ी से ही सहारा हो गया। आंखों का तेज भी कम हो गया है। परन्तु दुकान पर बैठे हैं। कानोंमें गहनों की झंन्कार पड़ जाती थी तो आंखों ऊंची कर के फाड़ता है, कुछ भी तो देखलूं। कौन आई, कैसे आई, कैसे चली गई, मनमें यही सोचता था। परन्तु आज कानोंसे बहिरा हो गया हूं, वह अगर कोई दो जने बात करते होंगे, तो उधर ही कान दे कर सुनने की इच्छा होती है कि क्या मेरी बात तो नहीं करते हैं।

लेकिन भर्तृहरि कहते है-" इतना होने पर भी उस वृद्ध का निर्लज्ज निष्ठुर, विषयी और लालची मन अभीतक विषयों से दूर होने को तैयार नहीं।

कितने शर्म और अफसोस की बात है? आज जीवन कहां चला जारहा है सोच लीजिये।

एक मात्र 'दान' की साधना

गृहस्थ दुनियादारी के फंदो में-झझटोंमे फमा है। उसके उद्धार का साधन क्या है? एक मात्र दान है-दूसरी कोई चीज नहीं। स्त्रियों के बीच रहकर, विषयो के भावनामय वातावरण में रहकर गृहस्थ ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके अपने आत्मा का उद्धार करे, यह उसके लिये गैरमुमकिन है। फिर क्या तपश्चर्या करे? यह भी गैर-मुमकिन है। भावना भी शुद्ध और ऊंची रहे, यह भी मुश्किल है-सट्टा करते है, रात दिन पूछते रहते है:-'क्या भाव आया, क्या घटा? भाव बढा?' आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के सिवाय बात नहीं। अब क्या साधन रहा उद्धार करने का गृहस्थ के पास? सिवाय इसके कि पैसे का दान करे, परोपकार करे, गरीब अभ्यागतों के दु ख दूर करे। उनकी मदद करे। साधु महात्माओं-अतिथियों की सेवा-भक्ति करे।

इसलिये मित्रो! जहातक आपके पास शक्ति है, वृद्धावस्था नहीं आयी है, तबतक आप दानपुण्य कर लीजिये, मूर्च्छा को हटाइये।

किसी गुजराती कविने कहा है:-"बीजके झबूके मोती पोइले, तो पाइले।"

विजालिया आकाश में चमकती है। अगर कोई आपको कुछ मोती दे दे। रात का समय हो, और एक डोरा आपके सामने रख दे, फिर कहे 'इस विजली के प्रकाश मे इन मोतियों को इस डोरे में पिरोदो। १०८ मोतियों की माला तैय्यार करलो।' मित्रो! आप चारों तरफ से होश्यार हैं, पर क्या मोतियों की माला कर सकते हैं? मोतियों की माला करना जितना कठिन है उतना ही बल्कि उससे अधिक कठिन जीवन को सफल करना है। विजली की चमक को कुछ समय लगता है। लेकिन प्यारे मित्रो! अनादिकाल से परिभ्रमण करनेवाले जीव को, महापुण्य के प्रताप से यह जो मनुष्यभव का आयुष्य मिला है, इसे खतम होते तो उतना समय भी नहीं लगेगा।

इसलिये जो यह मौका मिला है, उसे सफल करलीजिये। मोतियो की माला पिरो लीजिये। नहीं तो आखिरकार क्या होगा? १२ बज जायेंगे। अपने उद्देश्य मे कोई अगर निष्फल हो जाय, मरजाय, उसका दिवाला निकल जाय, तो हम अपनी भाषा में कहते हैं-इसके १२ बज गये।

बारह बज गये।

९ बज गये, ८ बज गय, ७ बज गये-ऐसा नहीं कहते, परन्तु १२ बज गये, ऐसा

क्यों कहते है ? जानते है इसका रहस्य आप ? हमारी हरेक कहावत के बीच कोई न कोई तत्त्व रहा ही है । १२ बजने की कहावत भी इसीके लिये हुई चली है—

एक राजा के गांव में २ साहूकार रहते थे । कर्मचंद और धर्मचंद । दोनों सगे भाई थे । राजा की बड़ी भक्ति और पूरी वफादारी से सेवा करते थे। राजा उन पर बड़ा प्रसन्न हुवा । एक दिन उन्हें राजाने अपने पास बुलाया और कहने लगाः- "देखो, कर्मचंद ! धर्मचंद ! मैं तुम दोनों से बडा प्रसन्न हूं । तुम्हें कुछ इनाम देना चाहता हूं । बोलो तुम मांगो सो देदूं । "

धर्मचंद कर्मचंद के कान में कहता हैः "अपने पास में एक करोड़ है, दो करोड़ और मांग लें । "

"बेवकूफ है ! बेवकूफ ! ! " कर्मचंद बोलाः "जब राजा देने को ही बैठा है तो सभी क्यों न मांगलें । " बिचारा धर्मचंद विचार करता ही रहा । इधर कर्मचंद बोल उठाः-" बापु ! अगर आप खुश हैं तो आपका राज्य देदीजिये । " बिचारे राजाने क्या समझा होगा ? परन्तु 'सकृन् जल्पन्ति राजानः सकृन् जल्पन्ति साधवः' राजा एक वचन बोलता है, साधु एक बचन बोलता है । फिर चाहे कुछ भी कुरबानी होजाय । दिया सो दिया-कहा सो कहा ।

राजा बुद्धिमान था । आजकल के कई राजाओं के जैसा नहीं था । राजाने कहा- "अच्छी बात है कर्मचंद । मैं इसके लिये भी तैयार हूं । पहली अप्रेल के दिन सुबह ६ बजे से १२ बजेतक कर्मचंद राज करे और १२ बजे से ४ बजेतक धर्मचंद । "

८ दिन बाकी थे । कर्मचंद घर आया । बीबी से सब किस्सा सुनाया । "पहली अप्रेल को मैं राजा बन जाऊंगा और तू रानी बनजावेगी ।"

बस, सेठ सेठानी खुश हो गये हैः "मैं राजा और तूं रानी-मैं राजा और तू रानी" कहते २ वह पागलसा बन गया ।

पहली अप्रेल के पहली रात को वेश्याओं को बुलाता है । बडा भारी जलसा करता है । उनका नाच गाना करवाता है । बस, खुशी मे फूला नहीं समाता । सुबह तो हम राजा होने को हैं । जलसा, नाच-गाना रात को ३ बजे तक चला । रात को घन्टे २ घन्टे बीवी के साथ बातें कीं-"सुबह होगा, मैं राजा बनुंगा और तू रानी-मैं राजा बनुंगा और तू रानी " । बस इस तरह कहते २ मुश्किलसे चार बजे सो गया । सुबह ८॥ बजे उठा । छ बजे राज करना था, गादी पर बैठना था । परन्तु २॥ घन्टे तो नींदमें गये ।

फिर सोचा, अब टट्टी तो हो आऊं। लिया लोटा हाथमें और सीगरेट ली मूहम। टट्टी में जाकर जम गये। फिर वहां जाकर दिमाग में वही "मैं राजा और तू रानी" की धून चली। वहां से घन्टे भर बाद निकला फिर हाथपैर धोये कि इतने में ९॥ बज गये। फिर सोचा–" हजामत तो बनवालू।" हज्जाम आता है–चटपट २ करके हजामत करता जाता है और खुशामद भी करते जाता है कि, "सेठ सा मेरे को भी एक गाव दे देना महाराज"। "अबे हरामखोर। जल्दी २ कर। मेरा तो टाइम निकला जाता है। तुजे गाव की सूझी है।" फिर साबू लगाने, स्नान करने, कपडे पहन वगैरह में १०–१०॥ बज गये।

इतने में सेठानी साहिबा सामने आयी। बोली–" रसोई बन गयी है। जीमकर जाईये–राजा होनेवाले है।"

सेठ सा बैठे जीमने को। कहते है–" सेठानी। मैं राजा और तू रानी।" चली फिर वही राजा रानी की बातें। करते करते ११ बज गये। सेठजी को ख्याल आया– ११ बज गये अब तो चलना ही चाहिये।

निकले। सजधज के साथ हाथी पर सवार हुवे। आगे २ बाजे बज रहे है। अमीर, उमराव पीछे २ चल रहे हैं। कर्मचदने सोचा–" राजा दरबार मे जा रहे है–जरा शान से क्यों न जाँय–शहर में घुमते हुए जाना चाहिए।"

हुक्म दिया–सारे शहर में घुमते हुवे चलो।

चले साहब सब शहर में घूमते २ राजदरबार में पहुचे। "जेरामजी की" "मुजरो साहब" "आदाबअर्ज" कहते हुवे सब राजदर्बारीने झुकझुककर कर्मचदजी सा. का स्वागत किया। सब से मुजरा करते २ सेठ सा. जिस समय सिंहासन के पास गये और सिंहासनपर कदम रखने कोही थे कि इतने में घडीवालेने टन् टन् २ करके बारह बजा दिये।

मत्री बोला'—" कर्मचद सेठ, नीचे ऊतर जाओ। तुम्हारे १२ बज गये।"

" मैं जरासा ऊपर तो चढलू?" सेठजी बोले। " तेरे बाप का राज है? उतर नहीं तो ।" सेठ सा. का मुह उतर गया। चुप चाप नीचे उतर गये। " मैं राजा तू रानी" का ख्याल मन का मन में ही रह गया।

फिर आवाज लगती है –" धर्मचद! धर्मचद! हाजिर"।

" हाजिर"

बैठे धर्मचंद गादीपर। बैठते ही मंत्री से कहा—"जितना खजाना-मालमत्ता तिजोरियों में रखा है, सब की चाबियां लाओ।" चाबियीं मंगवायीं। सब धन लोगों में, गरीबों में, दुखियां में, अपने दोस्तों में, सगे संबंधियों में बांट दिया। खूब लुटाया, दो तीन बजे तक।फिर मंगायी राज की सब बहियां, उनमें सब को दिया लिया सब बराबर करदिया। सब बातें करकराके सब चौपट कर दिया। राजाजी को तो बावाजी जैसा बना दिया। ४ बजेतक को सब मामला खत्म करदिया। ४ वजे बाद नीचे उतर कर धर्मचंद कहता है—" आप का राज संभाल लीजिये।"

" अब क्या सम्भालूं मेरा कपाल ?" राजा उत्तर देता है।

प्यारे मित्रो ! अब आप विचार करलीजिये कि आप कर्मचंद हैं या धर्मचंद ?

मैं जानता हूं आप में धर्मभावनाएं ज्यादा हैं। आप धर्मचंद बनें। दीन दुखी अनाथों की रक्षा करें। उनकी मदद करें।

यह सेवा, व्रत होकर गृहस्थमें रहनी चाहिये। यह इच्छा बराबर बनी रहे कि-कम से कम मेरी रोटीमेंसे कुछ न कुछ एक टुकडा भी साधुसंत, योगी, महात्मा, अतिथि और दीन दुखियों, गरीब, लूले-लंगडे, मोहताज ऐसे लोगों के पेटमें जाय। यह भावना अगर नहीं है, तो समझ लेना चाहिये कि हमारा भोजन राक्षसी है। शास्त्रकार इसे राक्षसी भोजन कहते हैं।

खूब याद रखिये मित्रो ! सेवा से बढ़कर दूसरा कोई सद्गुण दुनियामें नहीं। जिसने दूसरों की सेवा करने के लिये जन्म लिया है, उसके जैसा जीवन किसी का नहीं। वह निराला ही पुरुष होता है।

कौन्ट टॉलस्टाय की सेवा

टॉलस्टाय के जीवन में क्या खूबी थी ?-यही कि-वह महान सेवाव्रती था। इतिहासकारों को विदित है। उसने अपनी सारी लक्ष्मी दूसरों की सेवा के लिये अर्पण कर दी। अपनी अमूल्य पुस्तकें-लायब्रेरी गरीब जनता के चरणों में भेट चढा दी।

एक दिन वह घूमने निकला है। सड़क के किनार बैठी एक बुढिया हाथ पसारे कुछ माग रही थी। टॉलस्टाय उसके पास निकला, जब बुढिया को देखता है तो अपनी जेबमें हाथ डाला। कुछ हो ता दूं। पर कुछ हाथ में आया नहीं। एक पैसा भी नहीं था। उसका दिल रोता है-यह जानकर कि मेरे पास इस दुखी बुढिया की मदद के लिये

कुछ भी नहीं है। मैने आजतक अनेकों को मदद की पर इसकी मदद नहीं कर सका। यकायक एक बात याद आजाती है। मैं चाहे पैसे से सेवा न कर सकूं, पर शरीर से तो सेवा करसकता हूं। ऐसा विचार कर उसके पास जाता है और धूप में से उठाकर छाया में रख देता है। अपने दिल में सतोष मानता है।

प्यारे भाइयो! इसका नाम है सेवा। आप अपने कलेजेपर हाथ रखकर सोच लीजिये कि आप कितनी सेवा करते हैं? गरीब, दुखी जगत की कितनी सेवा करते हैं?

तनसे, मनसे, धनसे, बुद्धिसे, विचारशक्ति से, विद्या से, पैसे-टके से जिस प्रकार की शक्ति मिली हो उस प्रकार की शक्ति से दूसरा की कितनी मदद की है? कितनी सेवा की है? इसका नाप निकाल लीजिये। फिर अपने आत्मा की क्या हालत है? इसको देखिये।

अगर ऐसा नहीं करते तो समझ लीजिये-जिन्दगी बेकार है! बर्बाद!! किसी काम की नहीं!!! महज पेट भरने को जिन्दगी है। लेकिन दुनिया का हलके से हलका एकेन्द्रिय जीव भी पेट तो भर लेता है, फिर मनुष्यों का सिर्फ पेट भरना, क्या महत्व रखता है? भाव-भक्ति से, दिलसे दिया हुआ आपका रोटी का टुकडा, आटे की एक मुट्ठीमे भी आप जितना पुण्य उपार्जन कर सकते हैं, उतना जबरदस्ती से, लाज-शरम से, लाखों हजारों का दान देनेवाले को भी इतना पुन्य नहीं हो सकता। इसलिये साथ ही साथ मैं यह भी आप से कहुंगा-" जो कुछ दो भावसे, पूरी श्रद्धा और प्रेम से दो। महापुण्य के भागी होंगे। अपने आत्मा का कल्याण कर सकेंगे, यह अटल सत्य है।

भाइयो और बहनों,

दो दिन मैंने उन्नीसवे गुण की व्याख्या कर दिखलाथी, अर्थात् अतिथि, साधु, और दीन दुखियों की सेवा करने को कहा। अब आज बीसवां गुण कहूंगा।

बीसवा गुण-सदा अनभिनिविष्टः

अर्थात् सच्चा गृहस्थ हमेशां दुराग्रह से दूर रहे। 'मेरा सो सच्चा' ऐसा नहीं, परन्तु 'सच्चा सो मेरा' यह प्रकृति रखे। कई लोग कहते हैं कि "मैं तो सिद्धान्तवादी हूं" परन्तु सिद्धान्तवाद और दुराग्रह में बहुत फर्क है। सिद्धान्तवादी हठी न होगा, जो बात सही होगी, न्यायपूर्ण होगी, अवश्य ग्रहण करलेगा। झूठी चीज अगर उसके समझ में आगयी, तो तत्काल छोड़देगा। परन्तु हठी-दुराग्रही तो बात पकड़ चुका-चाहे झुठ हो और सरासर झूठ हो-जब 'ना' कहदिया तो फिर ना ही ना है। "सौ तेरी रामदुहाइ, एक मेरी उंहूं।" बस फिर परमात्मा भी उसे नहीं समझा सकता।

ऐसी प्रकृतिवाले को दुराग्रही कहा है। मनुष्य को ऐसा दुराग्रही नहीं होना चाहिए। दुराग्रही को शास्त्रकारोंने मिथ्यात्वी कहा है।

सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी कौन ?

यह दुराग्रह अज्ञानता से पैदा होता है। 'मिथ्यात्व' और 'सम्यक्त्व' दो शब्द हैं। सम्यक्त्व कहते है प्रकाश को। आत्मा के सम्यग्दर्शन को, जो सम्यक्त्वी है, यानि जिसे आत्मा का सच्चा ज्ञान है, वह आत्मा के ऊपर के कर्मों के आवरण को दूर कर सकता है और आत्म-दर्शन प्राप्त करता है। इससे विपरीत, जो मिथ्यात्वी, यानि दुराग्रही है, वह आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि-अज्ञानता का पड़दा उसके आत्मा पर पड़ा हुआ है। यह है हठी और दुराग्रही का लक्षण। मनुष्य मात्र चाहता है-"मैं गुणवान बनूं। मेरा आत्मा के गुणों का विकास हो।" लेकिन गुणी तो तभी बन सकता है, जब हठाग्रह छोड़ दे, ज्ञान का पिपासु बने, नम्रता, विनय,

सरलता और विवेक को धारण करें। हठी समझता है–" ब्रह्माने दुनिया को रचते समय १॥ अकल मुझे दी है, और आधी अक्ल सारी दुनिया को, परन्तु वास्तव में इसके जेसा अज्ञानी दूसरा कोई नहीं। चाहे वह समझनेवाले ही वडा विद्वान, सत–महात्मा, त्यागी और तपस्वी हो। उसके आत्मा पर अज्ञान का पर्दा आजायगा। सच्चा गुणवान वह कभी भी नहीं हो सकता। अतः सच्चा आत्म–ज्ञान नही प्राप्त कर सकता। सच्चा आत्म–ज्ञान तो वही प्राप्त कर सकता है, जो समझे कि " मेरे में अभी बहुत कमी है। मुझे दुनिया मे बहुत कुछ सीखना है। दुनिया एक ज्ञान–शाला है। इससे अगाध कोई बडी ज्ञान नहीं। युनिवर्सिटिया तो बहुत सकुचित ज्ञान का दायरा है, परन्तु ऐसी यूनिवर्सिटी से निकला हुआ लडका आज समझता है–" मैं पढलिखकर क्या निकला–सर्वज्ञ होकर निकला हू। यह तो आजकल एक मामूली सी बात होगयी है!

आजकल के सर्वज्ञ

आजकल कोई मनुष्य विलायत हो आता है, थोडा पढा-लिखा होजाता है, समझने लगता है मैं तो सर्वज्ञ हू। इससे नीचा तो कुछ समझता ही नहीं। बस सीधा सर्वज्ञ बनने का ही दावा करता है।

बम्बई में मेरा चोमासा था। जैनों में से एक युवक विलायत होकर आया था। पी. एच. डी. डीग्री पास की थी। वैसे मेरा भक्त भी था। उसने एक व्याख्यान दिया विद्यार्थियों के सामने। उसने कहा:–" जैन शास्त्रो में, वेद पुराणों में, बाइबल में कोई ऐसी चीज नहीं, जिसपर हम अन्वेषण कर सकें।"

दूसरे दिन मुझे मालूम हुआ। वह मेरे पास आया।

" कल तो आपने खुब व्याख्यान दिया।" मैं बोला।

उसने कहा:–" क्या व्याख्यान दिया। जो मनमे आया सो कहदिया।"

क्या यह भी सत्य है कि ' तुमने ऐसा कहा कि जैन आगमों में ऐसी चीज नहीं, जिनका अध्ययन कर सकें और अन्वेषण या खोज कर सकें? ।" मैंने उससे पूछा।' " मैंने जरूर कहा।" उसने मजूर किया।

एक बात पूछता हू, जरा बतलाइए:–" जैन सूत्र कितने है?" मैंने प्रश्न किया।

एक दो सूत्रो के नाम लिये, बाकी आगे जाकर पी. एच. डी. साहब रुक गये।

मैंने कहाः-" पहली बात तो यह है कि, आप जैन-सूत्रों का नाम तक नहीं जानते। दूसरा प्रश्न मेरा हैः-" कितने सूत्रों का अभ्यास आपने किया है ? "

वे जवाब देते हैः-" एक भी सूत्र का अभ्यास तो मैंने नहीं किया। "

" जैन सूत्रों पर किसी जैन साधु से चर्चा की है ? " मैंने फिर पूछा।

" किसी साधु के पास जाता ही नहीं, सिवाय आपके। " भाईसाब जवाब देते हैं; " और आपके पास भी आठ-दस दिनों से ही आरहा हूं। "

मेरी भी जरा युवावस्था थी, उस वक्त। मैंने उसे बहुत कुछ कहा। उनको तो बस वाहवाही चाहिये, कुछ भी ऐसी बात कहो कि, युवक खुब तालियाँ पीटे और कहें P. H. D साहब बडे विद्वान हैं, कितनी बडी बात कहदी। "

कुछ दिनो के बाद एक डो. शुब्रिंग जर्मनी से मेरे पास आये। चार-आठ दिन रहे। बातचीत चलने पर उसने कहा-" मैं चालीस वर्षसे जैन सूत्रोंका अभ्यास कर रहा हूं और कोई विषय नहीं लिये, सिवाय जैन सुत्रों के। परन्तु ३०-४० वर्षों के अभ्यास के बाद भी अभीतक मैं इसका पंडित बनना तो बहुत दूर, विद्यार्थी अवस्था को भी नहीं पहुंच सका हूं। यह तो अथाग ज्ञान का सागर है। मेरे जैसा इसको नहीं पंहुच सकता। "

मैंने कहाः-" डॉक्टर सा। क्या आप अपने इस अभ्यास पर से कुछ पब्लिक के सामने लेक्चर कर सकते है ? "

उन्होंने उत्तर दिया-" जैसी आपकी आज्ञा। " मारवाडी विद्यालय होल में, हमने उनका व्याख्यान रक्खा, और जितने भी कोलज के युवक, प्रोफेसर्स, विद्वान, जैन अजैन को, सब को निमन्त्रण दिये। कोई २-२॥ घन्टेतक उनका व्याख्यान हुवा। ४० वर्ष के अभ्यास में क्या सीखे यह ऊन्होंने समझाया। उन्होंने जैन सिद्धांतका ऐसे सूक्ष्म रीतिसे प्रतिपादन किया कि मेरा अनुमान है—कि हमारे मंदिरमार्गी और स्थानकवासी में हजार-दो हजार साधू हैं। लेकिन इन में २-४ को छोडकर शायद ही ऐसा कोई निकलेगा, जो कि उन की बातों का जबाब देसके। उस के विषय को छूं भी सके। उस समय मुझे भी कुछ कहने का मौका आया। मौका अच्छा था। वे P. H. D. साहब और उनके मित्र सामने ही बैठे थे। मैंने कहा—"P. H. D. साहब, आपसे इन डॉ. साब की उम्र भी डबल है। ४० वर्षों तक मात्र जैन सूत्रों का अभ्यास किया है; परन्तु फिर भी यही कह रहे हैं कि मैं जैन सूत्रों को पार नहीं कर सका

और एक आप हैं कि जो जैन ग्रंथों का अभ्यास तो दूर रहा उनका नामतक नहीं जानते और आप लेक्चर में फर्माते हैं कि-" जैन ग्रंथों में अन्वेषण के लिये कोई चीज ही नहीं।"

कहने का तात्पर्य कि-आज हमारी यह दशा होगयी है। हम हठी और दुराग्रही बन गए हैं। अज्ञानता का पर्दा हम पर पड़ा है। सच्चा आत्म-ज्ञान हमसे कोसों दूर है। जो ज्ञान हम में है, बस वही गोया सर्वज्ञ का ज्ञान है, आगे कुछ नहीं, ऐसा समझे बैठे हैं। यही कारण है कि, आज हम पिछड़े हुवे हैं। आगे नहीं बढ़ते।

मूर्ख के पांच लक्षण

अपने दिल में चाहे हमें भी ज्ञानी, विद्वान् जो चाहें समझ लें, परन्तु शास्त्रकार तो ऐसे दुराग्रही को मूर्ख ही कहते हैं। मूर्खों के पांच लक्षण बताये हैं—

मूर्खस्य पञ्चचिह्नानि, गर्वी, दुर्वची तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

पहला लक्षण है गर्वी-जो अपने दिलमें अभिमान रखता है वह पहले दर्जे का मूर्ख है। कीर्ति, यश, पैसा, विद्या, रूप, शक्ति, कला, तपस्या किसी भी बात का अभिमान करे उसका नाम है गर्वी। हम किस बात पर अभिमान करें? मैंने पिछले व्याख्यानों में कहा है-संसार में ऐसा कोई दुःखी नहीं, सुखी नहीं, धर्मी, धनी नहीं, ज्ञानी नहीं, रूपलावण्य और बलवाला नहीं, जिसके आगे बढ़कर कोई दुःखी, सुखी, धनी, ज्ञानी, इत्यादि न हो।

जबतक केवलज्ञान न होजाय, हमें समझ लेना चाहिये कि हम सब अपूर्ण हैं। और अपूर्ण जितने हैं, वे सब मनुष्य एक दूसरे से अधिकाधिक शक्तियों को रखनेवाले हैं। अब बतलाइये कि हम किस बात का अभिमान करें?

मेरे मित्रो! आप खूब याद रखिये। जिस दिनसे हम लोग अभिमान को छोड़कर सरलता, नम्रता, और विनय अपनावेंगे, उसी दिनसे हम गुणवान बनते जायेंगे। हमसे बहुत कुछ बढ़ी चढ़ी शक्तियां दुनिया में हैं। उनका आदर करना हमारा धर्म है। हमारी भी शक्तियां बढ़ती जायेगी और हम भी बढ़ते २ एक दिन पूर्ण बन ही जायेंगे। अपने आत्म-धर्म को प्राप्त करही लेंगे। विनय और नम्रता ऊपर चढ़ने की सीढ़ियां हैं इन्हें कभी न छोड़िये।

अब दूसरा लक्षण है-"दुर्वचनी"। दुर्वचन बोलनेवाली चाहे स्त्री हो, पुरुष हो, बालक हो, वृद्ध हो, गृहस्थ हो, चाहे साधु-संन्यासी हो, महामूर्ख है। हमारी जिव्हा गटर नहीं है। खुशबू के लिये है। दुनियां की शांति और तसल्ली के लिये है। इसी से हमारी भी भलाई है और हमारे खानदानपने की पहचान है।

तीसरा लक्षण है-" हठी "-हठाग्रही, जो अपनी बात को चाहे वह झूठी हो, समझाने पर भी न छोडे-वह भी मूर्ख है। आज हमारे हठाग्रह के कारण ही हमारे समाज, देश, जाति और धर्म बर्बाद होते जाते हैं। हम भी कम बदनाम नहीं होते। मरते है तब भी लोग हम पर थूकते हैं, खुशियों मनाते हैं कहते है-" चलो, मर गया अच्छा हुवा। बड़ा हठी था, जिद्दी था। जो पूंछ पकड लेता, चाहे हजारों लोगों का नुकसान होजाय, छोडता नहीं था। हमें संताप देता था।" खुले शब्दों में न कहें, मनमें कहें।

मित्रो! कभी हठी न बनो। सरल बनो। गुणग्राही हो। अच्छीबात-हित की बात कोई कहे, तो जरुर मानो। इस में हमारा कोई हल्कापन नहीं। आत्मा के उज्ज्वल-पन की निशानी है। परन्तु हठाग्रह हमारी मानसिक कमजोरी है। इसे शास्त्रकारोंने मूर्खों के लक्षणों में गिना हैं।

हम सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, पूजा पाठ करते हैं, इसलिये हम समकिती हैं। जो हमारे जैसी क्रियाऐं नहीं करते, उनमें समकित है ही नहीं-वे सब मिथ्यात्वी हैं, ऐसा मानते हैं। एक बात याद आयी-कहदूं। जरा सुनने लायक बात हैं। ध्यान से सुनिये।

अभी गुजरातसे आरहाथा। रास्ते में एक गांवमें एक साधु मुनिराज मिले।

मैंने कहा-"महाराज!यहां जितने जैनेतर हैं उनमें समकिती कोई होगा या नहीं?"

" वे तो सब मिथ्यात्वी हैं, अजैन कभी समकिती होसकते हैं? आप भी तो कैसी बात करते हैं?" वे बोले

मैंने फिर पूछा-" महाराज! अपने जैनों में जो स्थानकवासी हैं, उनमें कोई समकिती होगा या नहीं?"

" नहीं, वे मूर्त्ति नहीं मानते। सब मिथ्यात्वी हैं।"

मैंने पूछा-"दिगम्बर?"

" नहीं, वे भी मिथ्यात्वी, वे नग्न मूर्ति मानते हैं।"

" खैर, मूर्त्ति पूजकों में खरतरगच्छ में कोई समकिती हो सकते हैं?"

" कभी नहीं। वे छ कल्याणक को मानते हैं, इसलिए वे भी मिथ्यात्वी हैं।" उत्तर दिया उन महाराजने।

" तपागच्छ में ?" मैंने एक आचार्य का नाम लेकर पूछा।

" नहीं, वे भी मिथ्यात्वी है।"

एक दूसरे आचार्य का नाम लेकर पूछा।

" वे परपरा की तिथि को नहीं मानते इसलिये वे भी मिथ्यात्वी है।"

एक तीसरे आचार्य और उनके शिष्यों का नाम लिया।

" वे सुधारक बने बैठे है। इसलिये वे भी मिथ्यात्वी हैं।"

मैंने कहा-" तो फिर दुनिया में आपके सिवाय कोई समकिती है ही नही। यही कह दीजिए। सभी मिथ्यात्वी हैं। मेरी लम्बी चौडी बातें करने का कोई मतलब नहीं।" आज हमारी यह दशा है।

यह दुराग्रही का लक्षण है। मनुष्य दुराग्रही-हठी बनजाता है, उस समय उसके आत्मा पर घोर अज्ञान का पडदा पडता है। किसी में गुण तो दिखता ही नहीं। जो खुद अधकार में हो, वह प्रकाश को कैसे पहचाने ? इसलिए सज्जनो! अगर मनुष्य के गुणों को प्राप्त करना है, गृहस्थाश्रम में रहकर सुखी होना है तो आपको चाहिये कि आप हठी बिलकुल न बनें। सरल प्रकृति रखें। जहापर गुण हों उन्हें आदरने की वृत्ति रखें। ऐसा करके अपने आत्मा का-जीवन का विकास करें।

चौथा लक्षण है—"अप्रियवादी"

दुर्वचन बोलनेवाला मूर्ख है। दुर्वचन बोलने से हरएक मनुष्य को दुःख होता है। अपना कोई काम होता ही नहीं। सब उस से दुःखी और नाराज हो जाते हैं। कोई भी उसका हमदर्दी मददगार नहीं रहेगा। जहा जाता है वहा दुःख ही दुःख होगा। इसलिये मित्रो! अप्रियवादी कभी नहीं बनना चाहिये। मधुर वचन बोलो, मिठास से बोलो। आप का हर काम सिद्ध होगा। आप को फायदा ही फायदा है। कुलीनता का लक्षण है।

और पाचवा लक्षण है—"परोक्त नैव मन्यते"

दूसरों की कही हुई बात कभी माने ही नहीं। चाहे वह कितनी ही हितकारी सत्य हो, उचित हो, व न्यायपूर्ण हो। मूर्ख के ये पाच लक्षण हैं।

अब २१ वाँ गुण कहते हैं—

इक्कीसवाँ गुण, पक्षपाती गुणेषु च।

अर्थात्—सद्गृहस्थ को गुणों का पक्षपाती होना चाहिये। अर्थात् गुणों का प्रशंसक-गुणानुरागी होना चाहिये, चाहे कोई कितना भी दुर्गुणों से भरा हो। पतित हो, सड़ा हुवा हो, यदि हमारी रुचि गुणों को ही लेने की है, तो ऐसी निकृष्ट से निकृष्ट चीज़ों से भी गुण ग्रहण कर सकते हैं।

रास्ते में मरा हुवा, कीड़ों से सड़ा हुवा, जिस से दुर्गन्ध निकल रही है, ऐसे एक कुत्ते का कलेवर पड़ा था। उधर से श्रीकृष्ण जा रहे थे, लोग दिखाते हैं—"देखिये महाराज! यह कितना सड़ा है!"

कृष्ण जबाब देते हैं—"नहीं, देखो! इसके दांत कैसे मोती के समान सफेद और चमकदार हैं।"

सड़े कुत्ते का सड़ापन नहीं ध्यान में लाये। उनकी दृष्टि तो अच्छाई देखने में थी। क्यों कि वे गुणग्राही थे।

दुनिया की कौनसी ऐसी चीज़ है जो गुणों को रखनेवाली न हो। जहर है पर वैद्य लोक उसको भी अमृत बना देते हैं। उसका ऐसा उपयोग करते हैं कि मनुष्य का शरीर तंदुरुस्त और मजबूत होजाता है। मिट्टी है—कोई उपयोग इसका नहीं, पर बड़े से बड़ा रोग पलभर में दूर करने की ताकात रखती है। "मिट्टी का रोगों पर उपयोग" विषयपर बहुत साहित्य लिखा है। वह साहित्य पुकारकर कह रहा है कि रोगों को दूर करने की अपूर्व शक्ति मिट्टी में भरी पडी है, परन्तु जो मिट्टी को मात्र मिट्टी समझे, वह उससे कोई गुण नहीं लेसकता। मनुष्य दुनिया की प्रत्येक वस्तु से हजारों गुण अगर लेना चाहें तो लेसकता है। लेकिन अगर हमारी वृत्तियां बुरी हैं—दुष्ट बुद्धि है तो हर चीज से दुर्गुण के सिवाय कुछ नहीं ले सकते। यह हमारी दृष्टि का दोष है। हमारी आंखो में पीलिया रोग होजाता है। आंखोंपर हरा चश्मा लगा लेते हैं। दुनिया में हरेक चीज पीली और हरी दिखती है। हालांकि वे वस्तुएँ पीली और हरी नहीं है—आवरण हरा-पीला आंखो पर हुवा है, इस वास्ते सब हरा आर पीला दिखाई देता है। इसीतरह जब हमारी बुद्धि के आगे, अज्ञान का आवरण आजाता है, हमें सब जगह अवगुण दिखाई देने लगते हैं। हमें अपने अज्ञान को देखना चाहिये। जो पर्दा पडा है अज्ञान का हमारे आत्मापर, बुद्धिपर, उसे हटाने की कोशिश करनी चाहिए।

काजीजी थे दुबले। किसीने पूछा: "काजीजी! दुबले क्यो? 'अरे भाई! सारे शहर की फिकर लगी हैं। इसलिये।" लोग कहते है- "काजीजी। शहर की फिक्र तुम्हें क्यों पडी? तुम अपनी खुद की ही फिक्र करो न।' परन्तु नहीं, मनुष्यो का स्वभाव ऐसा ही पडा है। शास्त्रकार तो कहते हैं-" हे मूढ! क्यो व्यर्थ दूसरों की चिंता करता है? तू अपने को ही देख। तेरे आत्मा मे असख्य दुर्गुण भरे है उन्हें दूर कर। तू अपने आत्मा का विचार कर, गुणो का प्रशसक बन और अपने में वे गुण उतार। उसी में तेरा कल्याण है। जो मनुष्य अपना ही सोचता है, वह चेत जाता है।

इतने जल्दी क्यों?

एक साधु थे। १८ वर्ष की जवान उम्र के। रूप लावण्य युक्त। २ बजे के समय एक गृहस्थ के घर गोचरी-भिक्षा लेने गये। एक १५--१६ वर्ष की जवान बाई घर में से बाहर आयी। और महाराज को वन्दन कर के कहने लगी:-

' महाराज, इतने जल्दी क्यों?"

बूढा सेठ बाहर बैठा था। बहियों लिख रहा था। और हिसाब किताब करता जाता था। १६×५=८२ और झूठ के खरे+२=बाकी रहे ८४। वह देख रहा था। जवान बाई और जवान साधु दोनो अकेले खडे थे: "महाराज! इतने जल्दी क्यों।" विचारता है सेठ-" छोकरी की अकल कहा गयी? २॥ बजे का वक्त होने आया और कहती है: "इतने जल्दी क्यो?"

साधु जवाब देते है:-" बाई। समय नहीं पहिचाना मैंने।"

सेठ विचारता है -" छोकरी ही बेवकूफ नहीं। साधु भी बेवकुफों का सरदार मालूम पडता है। ढाई बज गये है और उसे मालूम नहीं, इतनी धूप चढ गयी है?। और यह क्या कोई भिक्षा का समय है?

महाराज पूछते हैं:-" बाई। तेरी उम्र कितनी?"

बुड्ढा सब सुन रहा है और देख रहा है-सोचता है-" महाराज, अपनी आखों से देख रहे हैं, जवान बाई है, और घरमें बच्चा खेल रहा है। लेकिन फिर भी पूछ रहा है-" तेरी उम्र कितनी? क्या जरुरत है उमे उम्र की? हद आचुकी मूर्खता की।" बुड्ढा मन में विचार कर रहा है: " ये दोनों बेवकूफ इकट्ठे हुए हैं। पहले तो साधु को उसकी उम्र पूछने की क्या जरूरत थी? एकात मे खडा होकर लडकी को पूछता है

कि तेरी उम्र कितनी ? और वह भी कितनी नालायक है कि, कहती है: ' ३ वर्ष की। इतनी बडी हुई-१ बच्चे की मां बनी, फिर भी मूर्ख की मूर्ख ही रही । "

" बहन ! तू गरम रसोई खाती है या ठण्डी ? " साधुनें फिर पूछा।

" मैं तो रोज ठण्डी खाती हूं महाराज, मेरे नसीब में गरम रसोई नही।" लडकीने उत्तर दिया।

बुड्ढा मनमें बहुत ही दुःखी हुवा। विचारता है: अभी तो मेरे सामने गरम २ दाळभात रोटी खायी है और कहती है में रोज ठण्डी रसोई खाती हूं। और फिर महाराज भी कैसा बेवकूफ ! दाल खाती है कि रोटी खाती है-गरम खाती है कि ठण्डी ? वह पूछने कीं उसे क्या जरूरत ?

महाराज बोलते हैं-" बहिन एक बात और पूछूं ? "

" इतनी पूछी और भी पूंछ लीजिये।" लड़कीने कहा। महाराजने पूछा: "तेरे श्वसुरजी जिन्दा हैं या मरगये ? "।

वह बुड्ढा लडकी का श्वसुर था। तडाक से बाई कहती है-"महाराज ! वे तो कभी के 'राम-नाम-सत्' होगये। "

महाराज अपने स्थान को लौट गये। बुढ्ढे के दिल में बडी चोट लगी। बडा गुस्सा हुआ। सोचता है: " कैसी मूर्ख बहु घर में आयी है ! " बुढे की आंखों में अंधेरा छा गया। भूकरुप हो गया।

उठकर गया अपने लडके की बहू के पास। कहता है:-" तेरी महाराजसे क्या बात हुई ?तीन साल की उम्र है, जल्दी क्यों आये ? ठण्डा खाती हूं, सुसर मर गया। इन सबका क्या मतलब ? " बहू कहती है- " मैं कुछ नहीं समझती। मुझे अर्थ-वर्थ कुछ नहीं मालूम, अगर आपको जवाब लेना है, तो महाराज के पास जाइये। "

बुड्ढा ७० वर्ष का हो गया था। सारी जिन्दगी में साधुजी के पास कभी नहीं गया, लेकिन आज बहुने ' मार दिया ' इसलिये जिन्दा होने के वास्ते साधुजी के पास जाना पडता है।

साधुजी जंगल में उतरे हुवे थे। बुड्ढा जाता है और कहता है:—

" मत्थएण वंदामि, महाराज,। मैं आप को खमाता हूं-क्षमायाचना करता हूं।"

" अरे ! तेरे मेरे कब लड़ाई हुई ? बात क्या है ?" महाराजने पूछा।

साधुजी के पास जाकर वह कहने लगा—"महाराज ! मेरे लडके की बहूने आप का अपमान किया है। इसलिये माफी मॉगता हू।" "कोई अपमान नहीं किया ! तुम्हारे लडके की बहू तो बहुत ज्ञानी है, अच्छी है, विदुषी है। क्या बात है ? बोलो।"

"ढाई बजे आप पधारे, परन्तु वह कहने लगी: "इतने जल्दी क्यों ? इसका क्या मतलब ? अपने घर अगर बहराने (भिक्षा देना) को हुवा, तो बहराया, नहीं तो वह कह देती: महाराज जोगनाई (भिक्षा) नहीं।" बुड्ढा बोला।

"ऐसी बात नहीं है, उसने पूछा था: "इतने जल्दी साधु क्यों हो गये ? जवान अवस्था है। रूप लावण्य मिला है। इतनी जल्दी साधु क्यो हो गये ?"

"और फिर आपने क्या जवाब दिया ?" वृद्धने पूछा।

साधु बोले—"मैंने कहा, समय को नहीं पहचाना। साधु वैसे तो 'काले काल समायरे, समय पर सब काम करते है। खाते है, पीते है, उठते है, स्वाध्याय ध्यान, तपस्या आदि सर्व क्रियाए समय पर करते है, लेकिन साधु वह समय नहीं जानता कि किस समय उस की मृत्यु होगी ?"

"आपने मेरे लडके की बहू को पूछा कि-तेरी उम्र कितनी-इसका मतलब ? एक बच्चा भी आपके सामने खेल रहा था, उसी पर से आप अनुमान कर सकते थे। लेकिन उसने भी कहा "मेरी उम्र तीन वर्ष की।"

"बिलकुल ३ वर्ष की उम्र है उसकी। उसने अपनी सारी जिन्दगी व्यर्थ गवा दी है। सामायिक, प्रतिक्रमणादि धार्मिक क्रियाए कभी नहीं कीं लेकिन वह तीन वर्ष से आप के घर में आयी है, तब से धार्मिक क्रियाएं-धर्मध्यानादि करने लगी है, इस हिसाब से उसने कहा कि उसकी उम्र ३ वर्ष की है। सच्ची उम्र तो यही है। बाकी सब बेकार है। धर्म ध्यानवाली उम्र ही सच्ची उम्र है।"

"आपने कहा था:-गरम खाती हो या ठण्डा और उसने जबाब दिया:-ठण्डी खाती हू," इसका क्या मतलब ?"

"जो मनुष्य पूर्वजन्म के पुण्य की कमाई से मिला हुवा खाता है, उसके लिये तो यह बासी ही है। इसलिये ठीक ही कहा कि ठण्डा खाती हू। पूर्वजन्म में पुण्य किया था, जिस से आप जैसे श्रीमत के घर में आयी। लेकिन यह सुख है तो पूर्वजन्म की कमाई का, इसलिए ठण्डा ही है।"

" एक बात और पूछने को रह जाती है । महाराज ! आपने पूछा–तेरा ससुर जींदा है या मर गया ? लेकिन मैं उसका ससुर हूं । अभी तो जीता हूं और ५।२५ वर्ष आगे जीने की उम्मीद भी रखता हूं । उसने क्यों कहा–वे तो कभी के मर गये ? इसका क्या मतलब । कृपा करके जरा इतना और बतला दीजिये । "

" तुम्हारे लडके की स्त्री बडी विदुषी है, समझदार है । जिस मनुष्यने अपनी जिन्दगी में कभी धर्म-ध्यान नहीं किया, गुणानुरागता उत्पन्न नहीं की, दया-दान नहीं किया, साधुसंतों की सेवा नहीं की, शास्त्रवाणी का श्रवण नहीं किया, पैसा होते हुवे भी परोपकार–गरीबों दीन–दुखियों की सेवा नहीं की यानि दुनिया में आकर सिवाय पापाचरण के कोई अच्छा काम जिसने नहीं किया, वह जीता हुआ भी मुर्दे के समान हैं । आपने अपनी जिन्दगी में कुछ भी धर्म–ध्यान नहीं किया, इसलिए आपके लड़के की बहूने यह जवाब दिया है कि स्वसुरजी तो कभी के सिद्धार गये हैं ।"

सेठजी को यह सब सुनकर वैराग्य हो गया । पूछता हैः–" अब भी मैं जी सकूं ऐसा कोई उपाय है ? "

" उपाय जरुर है । आओ हमारे पास, धर्मध्यान करो, शुभ भावना भावो, अंतःकरण शुद्ध रक्खो, सामायिक, प्रतिक्रमण करो, पैसे से दान पुण्य करो, व्रत–नियम करके जीवन को सफल करो । तुम्हारी लड़के की वहु फिर ऐसा नहीं कहेगी । "

प्यारे भाइयो और बहनो !

आपको भी मैं यही बात कह रहा हूं । जिन्दगी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये । आप को भी ऐसा जीवन बिताना चाहिये । नहीं तो सेठजी की तरह जीते हुवे भी मुर्दे के समान होंगे ।

आप मुर्दा न बनें । हमेशा जीवित रहें । मृत्यु के बाद भी अपने सद्कार्यों से जिन्दा रहें । ऐसा करते जांय तो लोग आपके पीछे भी याद करते रहेंगे । हमेशा जीवित रहने की रातदिन कोशीश करो और अपने आत्मा का कल्याण करो ।

भाइयो और बहनों !

कल मैंने २१ वें गुण " पक्षपाती गुणेषु " के बारे में कहा था ।

गुण के पक्षपाती बनो

हम गुण और गुणवानों के पक्षपाती बनें । पक्षपात का यह मतलब नहीं कि, किसी के पख तोड दें । जैसे पक्षियों के पंख टूट जाँय और वह नीचे आकर गिरता है, ऐसा शाब्दिक मतलब नहीं लेना । अंधश्रद्धालु होकर गुण अवगुण को देखे बिना किसी के 'पक्षपाती' बन जाय, यह तो हमारा निरा पतन है । पक्षियों के पख टूट जाने से जैसे वे नीचे गिर जाते हैं वैसे ही अगर हमारी सचाई और विवेकरूपी पख टूट जाय तो हम ही नीचे गिर जाय ।

परन्तु यहां 'योगशास्त्र'कार यह कहना चाहते है:—पक्षपात याने अनुराग । अर्थात् गुणों का अनुरागी बनें । जिस में किसी प्रकार का गुण हो उसको प्राप्त करने के लिये कोशिष करें । अपने आत्मा को जहां कहीं से भी लाभ हो, उस लाभ को प्राप्त करें । हमें अपने आत्मा का विकास करना है, गुणवान बनना है, आत्मा के ऊपर लगे कर्मों के आवरण को दूर करना है और अपनी आत्मज्योति को प्रकट करना है । यही हमारा लक्ष्य है । इस बात को सामने रखकर ससार के किसी भी पदार्थमें से हमें गुण प्राप्त कर लेना चाहिये ।

शास्त्रकारोंने तो यहांतक कहा है कि—ससार में जितने पदार्थ हैं, वे सब हमारे पतन के कारण हैं और हमारे उद्धार के लिये भी कारण हैं ।

जे आसवा ते परासवा । जे परासवा ते आसवा ॥

इसी दृष्टिसे हमें ससार को देखना है । हथियार हथियार है, हमारा संरक्षण करनेवाला भी है, और हमारी गर्दन भी काट सकता है । दोनों बातें करता है । इसी तरह से स्त्री, पुत्र, परिवार, राजपाट, धन–दौलत, ऐश्वर्य, हर प्रकार की

सांसारिक शक्ति-वे सब बेशक पाप के कारणभूत हैं। हमको डुबानेवाले हैं। परन्तु ये सारी बातें होते हुए भी अगर इसका हम सदुपयोग करलें, तो हमारे उद्धार के साधन भी ये हो सकेत हैं। भरत चक्रवर्ती, चक्रवर्ती की ऋद्धि सिद्धि भोगते थे। आजके सम्राटों की ऋद्धि समृद्धि तो उसके आगे कोई चीज नहीं। उन्होंने हजारों वर्षों तक राज्य शासन किया, महान् भयङ्कर युद्ध किये, लाखों मनुष्यों की कत्लें कीं, परन्तु आखिर एक मामूली दुनिया की चीजसे वैराग्य प्राप्त करके आरीसा भवन में जाकर केवलज्ञान को प्राप्त किया।

बस, ऐसे सच्चे खिलाडी होना चाहिये। अगर मनुष्य सच्चा खिलाडी है, तो खेल में भी आत्मकल्याण कर सकता है। खेलका एक उदाहरण याद आजाता हैं।

गंजीफा का एका

हम लोग छोटे थे तब तास खेलते थे। उस खेल मे से एक मनुष्यने एक पाठ सिखाया था। आज भी मुझे याद है। उन्होंने कहा-'' देखा ! गंजीफा खेल रहे हो। क्या है गंजीफे में-खाली २-३-४-५-६-७-८-९-१० गुलाम, राणी, राजा और एकका। देखिये, हमारी सारी समाज का बन्धारण इस में है। खेल जिस समय शुरु किया जाता है। एक पत्ता अलग रहता है। और दूई से शुरु होता है, दोके ऊपर तीन, तीन पर चार और इस तरह दस तक पत्ते डाले जाते हैं।

हमारी समाज-व्यवस्था में दो आदमी को पंच कह सकते है। एक को नहीं, अब दो आदमियों की शक्ति से तीन की शक्ति ज्यादा बडी, ३ से ४ की ज्यादा, ४ से ५ की और इस तरह बढते बढते १० की शक्ति सबसे बडी।

अब १० आदमी इकट्ठे हुए, पर मामला नहीं सुलझा। लडाई झगडे होने लगे आखिर मुकदमा शुरु हुवा। मुकदमा सीधा सरकार के पास तो जानहीं सकता। यह बात अलग है कि किसी एकाध का सीधा परिचय राजा से हो और उसके पास चला जाय, परन्तु सिपाही को दो-चार आने देदो और सीधे पहुंच जाओ राजा के पास। अब कुछ दिया और गुलाम से काम लिया। झट से अंदर घुसे, परन्तु राजा से काम निकालता है तो रानी की सिफारिश अधिक कामयाब हो सकती है। अगर रानी हाथमें आजाय तो उसकी खुशामद करलें। वह अगर प्रसन्न हो जाय, तो फिर राजा के पास हमारा काम सिद्ध हो जाय। इसलिये गुलाम के ऊपर रानी का पत्ता डाला जाता है। गोया गुलाम को रानी खागयी।

यद्यपि रानी को खुश तो कर लिया। किन्तु जब तक राजा की महोर नहीं लगती, तब तक काम नहीं होता। इसलिये राजा के पास जाना पडा। गये राजा के पास। मोहर-सिक्का सब कुछ कर दिया। कन्ट्रोल इस तरह होना चाहिये। गेहू इस तरह देना चाहिये, चावल, लकडी इस तरह बाटनी चाहिये। यह सब कुछ करलिया। लेकिन खूब याद रखिये—

अगर हमारे मे एकता है, अगर जनता में इत्तिफाक और प्रेम है, वे सब एक हैं तो राजा क्या, राजा के बाप के हुकम को भी बदलवाया जा सकता है। राजा के मोहर-सिक्कों को उठाकर नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं। यह है राजा के ऊपर एके की जीत।

यह हमारा खेल है गंजीफे का। इस गुण को, हम खेलसे नहीं लेते, महज अपना समय व्यर्थ करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये।

एक हल्का खेल, जिसको शास्त्रकारों ने आर्त्तध्यान का कारण कहा है-नाजायज कहा है-अगर उसमे से भी गुण लेना चाहे तो लेसकते हैं। दुनिया की ऐसी कौनसी चीज है, जिस में से हम गुण नहीं ले सकते। मात्र हमारी दृष्टि का विकार दूर होना चाहिये। वृत्ति स्वच्छ और पवित्र हो जानी चाहिये। हमें गुणानुरागी हो जाना चाहिए।

आज तो गुणानुराग की जगह हो गया है मात्र दृष्टिराग। हमारी दृष्टि जिसपर रागकी होजाय, वह चाहे कितना ही बुरा हो, अच्छा लगता है और जिसपर हमारी द्वेष दृष्टि होजाय, वह चाहे कितना ही पवित्र हो, उत्तम हो, साधु सज्जन हो, महात्मा, त्यागी कैसा भी हो, उसको भी मानने को हम तैयार नहीं। यह राग तीन प्रकार का है।—

तीन प्रकार के राग

(१) कामराग। (२) स्नेहराग। (३) दृष्टिराग।

कामराग:-दुनिया की जिस वस्तुओं से काम की उत्पत्ति होती है, उसी में जिसको राग होता है उसे कामराग कहते हैं। यह सर्वथा त्याज्य है।

स्नेहराग -उसको कहते हैं, जिससे माता का, गुरु का, भाई का, बहन का, परिवार का राग हो। प्रेम या मित्रता जिसको कहते हैं। यह निर्दोष भी होता है और सदोष भी होता है। प्रशस्त अप्रशस्त दोनों प्रकार का होता है।

दृष्टिराग:-इन दोनों रागों से दृष्टिराग को ज्यादा पापानुबन्धवाला माना है। मैं तो कहता हू कि अगर कामराग करनेवाला तीसरी नरक मे जाता है, तो दृष्टिराग

करनेवाला ७ वीं नरक में जाना चाहिये। इसलिये कि दृष्टिरागी कभी किसी के गुणों को नहीं देख सकता।

हमें गुणानुरागी होना चाहिये। चाहे कोई मनुष्य कितना ही पतित से पतित और बुरे से बुरा हो, हमें इससे मतलब नहीं। हमें तो देखना चाहिए कि इसमें भी कोई गुण है या नहीं।

कर्मों का खेल

इस तरह गुणों को हम कब देख सकते है? जबकि हम संसार में कर्मों की विचित्रता को जान लेंगे। बडे २ महापुरुषों को भी कर्म नचाता है। तीर्थंकर, गणधरों को कर्म नचाता है। महान् त्यागी, तपस्वी महापुरुष इस कर्म के बन्धनमें बंधे हैं। किसी की ताकात नहीं कि इनके असर से बच सके।

जब कर्मों की सत्ता इतनी बलवान हैं, तो फिर हम किसी को बुरा कहने और समझने का क्या अधिकार रख सकते है?

हिन्दुओं में रामचंद्रजी को मर्यादा पुरुषोत्तम माना है। भगवान का अवतार माना है। अवतार होते हुए भी उन्हे कितने कष्ट उठाने पडे?

राजगद्दी पर बैठने का मुहूर्त वशिष्ट ऋषिने दिया। दशरथ को कहते हैं: "कल अमुक समयपर राम को गद्दी पर बैठाया जाय"। दशरथ जैसे प्रतापी राजा, मर्यादा-पुरुषोत्तम राम जैसे महाप्रतापी पुत्र, और वशिष्ठ जैसे ऋषि-महाऋषि-जबर्दस्त ज्योतिष के जाननेवाले धुरंधर पण्डित और उनका बतलाया हुवा शुभ मुहूर्त। कमी किस बात की थी? परन्तु कर्मगति बलवान है। रामचन्द्रजी उस समय गद्दीपर नहीं बैठते हैं, प्रत्युत १४ वर्ष के लिये उन्हें वनवास जाना पड़ता है।

देखिये मित्रो! कहां गये वे शुभ मुहूर्त? वह ज्योतिष विद्या का बल? सभी कहां चले गये?

मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए, हिन्दुओं की मान्यतानुसार भगवान के अवतार होते हुए इस कर्म के विधान को मिटा न सके।

कर्मणो हि प्रधानत्वम्, किं कुर्वन्ति शुभाग्रहाः।
वशिष्ठदत्तलग्नोऽपि, रामः प्रव्रजितो वने॥

राम फिर वन जाते हुए विचार करते हैं कि—

" यश्चिन्तितं तदीह दूरतरं प्रयाति, यच्चेतसा न गणितं तदीहाम्युपैति ।
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती, सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी ॥

रामचंद्रजी सोचते हैं:—रात्रिको मैंने विचार किया था कि कल सुबह मैं चक्रवर्ती राजा होजाऊंगा-वह बात मेरेसे हजारों कोस दूर हो गयी और जिस की स्वप्नमें भी उम्मीद नहीं थी, वही बात मेरे सामने आकर खडी रही, राजा होना तो दूर रहा आज उसी मुहूर्त में एक जटिल तपस्वी बनकर वन में जा रहा हू । "

प्यारे भाइयो !

किस समय कर्मों की विचित्रता अपने सामने आजायगी, कुछ पता नहीं । ६०, ६५ वर्षो तक चरित्रपालन करनेवाले, ब्रह्मचारी कहे जानेवाले योगायोग से भ्रष्ट हो जाते हैं-पतित हो जाते है । उनकी हम भी निंदा चुगली आदि करें, तो यह हमारी कमजोरियो का परिणाम है । क्यों कि-जो कुछ होता है, कर्मानुसार होता है । ऐसे २ ज्ञानी महात्मा जब गिर जाते हैं-इन कर्मो की विचित्रता के कारण, तो फिर हम तो क्या चीज है ?

पतन यही भयकर सजा है

मेरे एक जज मित्र हैं । उनके पास एक मुकदमा आया । उसमें एक जैन साधु; पच महाव्रतधारी साधु-पैसे-टके को नहीं रखनेवाला साधु गुनहगार होजाता है । उसने साधु धर्मको छोड दिया था । एक गृहस्थ की, जिसके यहा वह ठहरा था, एक २५ तोले की सोने की कण्ठी चुराली । गृहस्थ को इसका पत्ता चला । मुकदमा चलाया और उस जज के पास में वह मुकदमा गया । उस गृहस्थने मुझको लिखा-" जज सा. आपके भक्त है, उनको आप लिखें इस चोर साधु को खूब सजा दें । "

मैंने जवाब दिया-"वे जज मेरी क्या, किसी की भी शिफारिश नहीं मानते । उनके जैसा नेक और प्रामाणिक आदमी मैंने कही देखा नहीं । मैं कभी किसी की शिफारिस नहीं करता । मैं तो अपने अपनीही सभाल लू तो काफी है । "

अखबारों में पढा कि-उस साधु को एक महिने की सजा ई और २०० रु. जुर्माना हुवा ।

एक दिन की बात है । मेरा एक शिष्य उन जज सा. के पास मिलने गया ।

वे फर्यादी गृहस्थ भी वहीं थे और जज सा. की पत्नी भी वहीं बैठी थी। वह गृहस्थ कहता है-"साहब! आपने उस साधु को बहुत कम सजा दी।"

उस समय जज की पत्नी कहती है-" भाई। आप साहब को कहते हैं आपने सजा कम दी, परन्तु आप नहीं जानते कि साहबने जिस दिन सजा दी उसके दो दिन तक खुद रोते रहे। रोटी भी नहीं खायी।" "क्यों रोते रहे?" वह पूछ बैठा!

" साहब को विचार हुवा कि जो साधु पंच महाव्रतधारी, संसार के ऊंचे से ऊंचे पदार्थ को छोड देनेवाला-ऊंचे से ऊंचा आदर्श बनकर रहनेवाला, उस विचारे साधु का पतन हो गया और आखिर इसके कर्मोंने चोरी तक करने का पाप उससे करवाया। तो क्या यह कम प्रायश्चित्त है!"

निःसंदेह यह प्रायश्चित्त कम नहीं है। एक आदमी इतना ऊंचा होकर पतित होजाय। उसका आत्मा इतना गिर जाय। हमें उसकी निंदा-घृणा नहीं करना चाहिये, बलिक उस पर दया करनी चाहिये।

कर्मों की गति विचित्र है। यह सोचकर हम अपने आत्मा का विकास कर किसी के भी अवगुणों को नहीं देखना चाहिये। यदि हम वैसा नहीं करेंगे तो हमारे आत्मा का विकास कभी नहीं होसकता। हम कूपमंडूक हो जायेंगे। जानते हैं आप कुपमण्डुक का आशय! कुवे को ही मेंढक, तालाव, नदी, समुद्र यानि सबकुछ समझता है। बस, उसको अपना बहुत बड़ा विकास मालुम पडता है। समझता है-" मैं इतनी उन्नति कर गया हूं कि सारे कुवे को पार कर सकता हूं।"

मित्रो!

आपके जीवन का विकास ऐसा नहीं है। अभी तो हमारे सामने मानों असंख्य द्वीप-समुद्र पडे हैं। यह विकास तभी होसकता है, जब हम पापी से पापी जीव से भी गुण ही ग्रहण करेंगे। हमे यह मनुष्यभव अनमोल मिला है, हम अपने आत्मा का जितना विकास करना चाहें, इस समय कर सकते हैं। ऐसा जानकर भी हम गुणों को ग्रहण न करें तो हमारे जैसा मूर्ख आदमी संसार में कोई नहीं। हम यह अपना अमूल्य जीवन योंही हार जायेंगे।

चिन्तामणी रत्न

एक ग्वाला जगल मे गायें चराता था। दो पहर का वक्त था। गर्मी के दिन थे। वह थका हुवा एक तालाव के किनारे चला गया। किनारे पर एक बडा वडका वृक्ष था। उसकी छाया में गायें बैठ गयीं। और वह ग्वाला किनारे पर एक जगह छाया देखकर बैठ गया। वहापर एक काच का टुकडा पडा था, वह उसके हाथ में आ गया।

बडा सुदर लगा उसे वह काच का टुकडा। उसने सोचा:-काच बडा सुन्दर, रमणीय और चमकदार है। मेरे लडके को बडा पसद आवेगा-उसे अच्छा लगेगा। चलो उसके खेलने के लिये एक अच्छी चीज होजायगी। इसे फेंकना नहीं चाहिये। वह उस काच को अपने कपडे के एक छोर में बाध लेता है। ग्वाला तालाब के किनारे बैठा था। दोपहर का वक्त था। उसे भूख लगी। वह सोचता है-" बडी भूख लगी है परन्तु यहा तो कुछ खाने को है नहीं। बडे लोग खूब आराम में होते हैं। खूब पूडी मिठाई खाते है, पीते है। उन्हे कभी भूख नहीं सताती। मुझे भी कुछ पूडी मिठाई मिलजाय। और तालाब का पानी दहीं होजाय और ये बड की पत्तिया पूडी होजाय, तो कितना अच्छा हो।" भूखा आदमी खाने के सिवाय और क्या सोच सकता है?

ग्वाला देखता है कि तालाब का पानी दहीं बन गया है और उधर गरमा-गरम पूडिया।

" अ र र ! यह क्या होगया!!" ग्वाला आश्चर्य करता हुवा कहता है। फिर सोचता है.-" इतना दहीं और पूडी? अगर मेरा पुत्र, स्त्री और सारा परिवार यहा हो तो और सब साथ बैठकर खूब खावें।

ग्वाले के विचार करते ही उसकी स्त्री, पुत्र परिवार सब वहा ही देखता है।

वह ग्वाला ताज्जुब में आजाता है। सोचता है-" जो कुछ मन में कल्पना करता हू वही होजाता है अगर ऐसी बात है तो फिर एक सुन्दर महल भी यहा बनजाय, तो खुब आनद से अरीसा भवन में बैठकर जीवन का रस लू।"

यह भी होजाता है। वह ग्वाला अपने पुत्र स्त्री परिवार सब लेकर आनद से महल में बैठता है। आराम के सभी साधन उसे इसतरह मिलगये हैं।

जीवनभर में उसनें ऐसा कभी देखा नहीं था, आज महल पाकर वह बडा खुश होगया।

अधिष्ठायक देवता विचार करता वे कि इस ग्वाले के इतने पुण्य हैं या नहीं ? वह इन ऋद्धि-सिद्धियों को भोग सकता है कि नहीं यह जानने के लिये, वह एक कव्वे का रूप धारण कर उस महल में आता है। और ग्वाले के सामने महल की दीवार के एक कोने पर बैठ कर काँव-काँव करना शुरू करता है।

इधर ये भाई सा. खूब ऐश-आराम में पडे हैं। कौए की काँव-काँव की आवाज से उनके आराम में विघ्न पडता है। ग्वाला कहता है-" यह हरामखोर आकर हमारे आराम में विघ्न डालता है। इसे उडादेना चाहिये। ताली पीटकर उडाना चाहा, परन्तु उडा नहीं। ज्यादा परेशान करने लगा। वह बोलता है-"इस हरामखोर को उडाने को कोई पत्थर भी तो यहां नहीं मिलता।" इतने में याद आता है कि: " अरे एक पत्थर मेरे पल्ले में बंधा हुआ तो है।"

उस पल्ले में बंधे हुवे चिंतामणी रत्न को, जिसे वह हतभागी कांच का एक मामूली सा टुकडा या एक छोटासा पत्थर समझे था, हाथ में लेता है और उस कौवे को उडाने के लिये उसपर फेंकता है।

कौवा इस रत्न को अपनी चाँच में लेकर उड जाता है। और वह ग्वाला जैसे पहले तालाव के किनारे गायों के पास भूखे-प्यासे बैठा था वैसे होगया। न महल रहा, न वह ऋद्धि-सिद्धि। सब चला गया। वह पछताता है-रोता है पर अब क्या ?

मेरे प्यारे मित्रो !

इस संसार का एक २ पदार्थ गुणों से भरा है। अगर उन गुणोंसे भरे पदार्थों से भी आपने गुण नहीं लिये, अपने जीवन-विकास का साधन नहीं बनाया और उसे योंही निरा कांच का टुकडा समजकर फैंक दिया, तो जिस तरह वह मूर्ख ग्वाला अब पश्चात्ताप कर रहा है कि, 'मैं जो इच्छा करता था वही हो जाता था,' अरे कहीं वह चिंतामाणि रत्न तो नहीं था, वैसे ही आप भी पश्चात्ताप करेंगे। जब यमराज घरमें आकर हमारे सामने खडा हो जायगा, हमारी गरदी हिलने लगेगी, और डॉक्टर या वैद्य हमारी नाडी देखकर कहदेंगे कि-" बस, अब तो मामला खतम है-हमारे वस की बात नहीं-हम नहीं बचासकते;" उस समय आप रोवेंगे-तडफेंगे। आपको चिंतामणि रत्न याद आवेगा: " हाय ! हाय ! महाराज कहते थे कि-मनुष्य भव रूपी चिंतामणि रत्न मिला। सभी प्रकार के सुख-साधन मिले। मुझे गुणानुरागी बन कर अपने

अपने आत्मा का कल्याण करना था। अपने जीवन को निर्मल बनाकर आत्म कल्याण करना था, अब भी कुछ करलू।" परन्तु अब सोचे क्या होत है, जब चीडीया चुनगई खेत। आपने इस चिंतामणि रत्न सरीखे मनुष्य जन्म को तो अनीति-पापाचरण-दूसरों की निंदा-चुगली-कलह-कुसुम्प पैदा करने में खोदिया।

इसलिये मेरे मित्रो, मेरा आपसे यही कहना है कि जो कुछ कहना है अभी करलें।

अपने को गुणानुरागी बनालो। खूब गुण लो। हर पदार्थ, हर चीज, हर आदमी, हर प्राणी से गुण सीखो। जीवमात्र के गुणो के अनुरागी बनो। अवगुणो को कर्मों की विचित्रता समजकर उस जीव की मानसिक दुर्बलता समझकर कभी ध्यान मत दो। उन्हे बिलकुछ छोड दो। आपका कल्याण-मार्ग सुगम हो जावेगा।

भाइयो और बहनों !

कल मैंने कर्म के बारे में बताया था। अब १२ वॉ गुण कहते हैं—

वारहवां गुण. अदेश-कालयोश्चर्यां त्यजन्

मनुष्य मात्र को अपनी प्रवृत्ति कैसे रखनी चाहिये ? जैसा देश और काल हो, उसके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिए। गृहस्थ दो पैसा खर्च करे, दान-पुण्य करे, तपस्या करे, भाव--भक्ति करे, धर्म-ध्यान करे, दुनिया का व्यवहार चलावे, अपनी गृहस्थो के धर्म का पालन करे, सबकुछ करे, चाहे जितना सुन्दर से सुन्दर-भले से भला काम क्यों न करे, परन्तु यह सब करते हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का अवश्य ध्यान रखे। देश और काल को न भूले। समय और पात्र को बराबर देखता रहे। अगर भले से भला काम भी इन चीजों के बिना ध्यान रखे किया, तो याद रखिये, आप जगत में उपहास के पात्र बनेंगे। भला काम भी आप की कुछ भलाई करने में सहायक नहीं हो सकेगा। यह मैं ही नहीं कह रहा हूं। भगवान तीर्थङ्कर महावीरने अपने उपदेशों में कहा है-जगत के सम्पूर्ण धर्मोंने-वेद-वेदांत, गीता, पुराण, कुरान, बाइबल सम्पूर्ण सिद्धान्तोंने इस बात का जोरों से समर्थन किया है। इन बातों को भूलकर हम कभी अपने आत्मा की किंवा अपनी जाति, देश और धर्म की भी कोई भलाई या सेवा नहीं कर सकते। अब इस से ज्यादा और मै क्या कहूं ?

जनों की संख्या क्यों घट रही है ?

मैं इस बात का विचार अनेक बार करता हूं कि हमारी जैन समाज प्रतिवर्ष अपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों में करोडों रूपया खर्च करती है-उत्सव, महोत्सव, दान, पुण्य, प्रभावना, जीमण, दया-दान, विवाह-शादियां आदि नाना कार्यों में करोडों रूपये प्रतिवर्ष खर्च करते हुवे भी पिछले ७०-८० वर्षों में हमारी जनसंख्या घटती ही गयी है। और अब भी ८० हजार जैन प्रतिवर्ष घटते ही जारहे है। यह क्यों ? इसका हिसाब मुझसे कोई ले, तो एक साधु की हैसियत से यह आपको कहूंगा कि हमारे ये

करोडों रु० विना समय, और पात्र को देखे देशकाल के विरुद्ध प्रायः खर्च किये जाते हैं। यही कारण है कि, हमारी कोई की उन्नति नहीं होती और पतन की तरफ तेजी से गिरते जारहे हैं। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं। सभव है आप में से कुछ मेरे इन विचारों से सहमत न हों। लेकिन मैं तो मान रहा हू कि हमारे धर्म का प्रचार हमारी जाति की वृद्धि और उत्थान बिना उच्च साहित्य के और उच्च कोटि के विद्वानों के तैयार हुए कभी नहीं होसकता। आज के देश, काल, समय, स्थान और पात्र, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, सबका यही एक मात्र तकाजा है। लेकिन अफसोस है-महान शोक और दुःख है कि-इतनी बडी महत्व की बात हम भूले हैं। हमारा साहित्य दुनिया का सर्वोत्कृष्ट धार्मिक साहित्य होते हुए भी, आज उसे हम अधकार में छिपाये रक्खा है। दुनिया की नजरों मे हम आज पिछडे हैं।

बौद्ध धर्म का प्रचार कैसे हुआ ?

कलकत्ते की महाबोधि सोसायटी की रिपोर्ट कई वर्ष पहले मैने पढी थी, जब मैं शिवपुरी था। इस सोसायटीने बुद्ध भगवान का चरित्र प्रकाशित करने में (जहातक मुझे याद है) २९ लाख रुपये खर्च किये थे। केवल एक चरित्र प्रकाशित करने में इतना खर्च उन्होंने किया। दुनिया की हरेक भाषा में वह प्रकाशित हुवा। छोटी से छोटी प्रांतीय भाषाओं में भी वह निकला। वह एक प्रामाणिक ग्रन्थ बन गया। बौद्धोंने इतना ही नहीं किया। जिस समय वे हिन्दुस्तान से निकाल दिये गये थे उस समय उन्होंने चीन-जापान में इसका प्रचार किया। हिन्दूओंने उनका घोर विरोध किया। उनका सिद्धात कमजोर था, हमारे सच्चे और महान् सिद्धातो के आगे व नहीं ठहर सके। यह देश छोड-कर उन्हें जाना पडा। लेकिन आज बुद्धभगवान को माननेवालो की कितनी सख्या है आप जानते हैं ? । इस से और अपनी सख्या से भी जरा तुलना करलीजिये। आज इनकी सख्या ५६ करोड से भी ज्यादा मानी जाती है, जबकि भगवान् महावीर के त्याग, सयम और अहिंसा के उच्च सिद्धात को माननेवाल की सख्या घटते २ बारा लाख और ३२ हजार मे आगयी है। बतलाइये इतना करोडों रूपया खर्च करते हुये भी हमने भगवान वीर के शासन की क्या सेवा की है ? इसको आपही सोच लीजिये।

हमने मात्र हमारी पुरानी रुढि का पोषण किया है। हमारे बापदादा ऐसा ही कहते आये है-उत्सव, महोत्सव, खाना-पीना, जीमन आदि में पैसा खर्च करते आये हैं, उसी मे ही खर्च करते जायेंगे। देश काल और पात्र को हम भूलगये है।

पंच इकट्ठा करो.

आपका एक भूखा बन्धु, अथवा एक भूखी विधवा बहन अपनी भूख के कारण मुसलमान होने जारही हो, । कोई आदमी विधर्मी होने जारहे हों । और उस वक्त मेरे जैसा साधु आप को आकर कहेः—" भाई ! ये आप को छोड़कर विधर्म में चले जारहे हैं । इन्हें बचाने का उपाय करिये " । आप जवाब देंगे-" पञ्च इकट्ठे करेंगे फिर विचार करेंगे और अगर बचाने लायक होगा तो बचावेंगे । " पञ्च इकठे कर के विचार करने के सिवाय तो कोई बात ही नहीं । मारवाड़ की एक बात है । एक साधुजी का घडा फूट गया मिट्टी का । सेवक से एक दूसरा घड़ा लाने के लिये कहा । वह क्या जवाब देता हैः भाइयो ! जरा सुनना । वह कहता हैः—"महाराज ! महाजन, पञ्च इकट्ठा करेंगे फिर घडा देना या न देना इस पर विचार करके कुछ करेंगे । " यह तो हमारी दशा ! और हरेक बात में पञ्च, पञ्च और पञ्च । इन पञ्चों के इकठे हुए बिना कोई काम नहीं होने का । घर में आग लग जावे । अर्जी देनी होगी । हाकिम का हुक्म आवेगा, फिर दमकल आवेगी, जबतक कि घर जलकर राख होचुका होगा । यह जैसी हमारे राज्यों की दशा है, वैसी ही हमारे इन पञ्चों और महाजनों की भी दशा है । आप बुरा न मानें । मैं आप के लिये नहीं कहता । समस्त समाज के लिये कहता हुं ।

है कोई सुंदर महावीर चरित्र ?

मेरे कुछ अंग्रजी विद्वान मित्र हैं । और भी दूसरे विद्वान हजारो हैं, जिन्हें हम नहीं जानते । परन्तु भगवान महावीर के जीवन का अध्ययन करने की, उन्हें जानने की तीव्र जिज्ञासा है । वे हमसे कहते हैंः-" महाराज आपके भगवान महाविर का कोई प्रामाणिक चरित्र किसी भी भाषा में हो तो हमें दिखयाइये कि जिससे हम दिलचस्पी से पढ़सकें, मनन कर सकें और इन परमात्मा के अवतार को पहचान सकें । उनके सच्चे उपदेश को समझ सकें ।

है कोई आपके पास ऐसा चरित्र ? हों तो १०५ कापी मुझे देदीजिये । मैं उन जिज्ञासु बन्धुओ को भिजवादूं ।

हमारे पास साधन है-पैसा है-सिद्धांत है और है सबकुछ । परन्तु नही है हमारे पास देश, काल स्थान और पात्र का ज्ञान । नहीं है द्रव्य, क्षत्र, काल और भाव की पहिचान । यह बात हमारे पास नहीं और यह नहीं है इस लिए सब साधन भी बेकार है । हमारी जाति समाज और धर्म को कोइ भी फायदा

नहीं। उमकी कोई वृद्धि और उत्थान नहीं । इसे आप खूब समझ रखें । अगर हम इस बातों का ख्याल रखकर काम करें तो हम वहुत कुछ कर सकते हैं। आज के जमाने को लोग चाहे कलयुग का जमाना कहे, पचमकाल कहें, किसी प्रकार क बुरे नाम से सबोधित करें, लेकिन मुझे तो अनुभव हो रहा है कि, धर्म का प्रचार करनेके लिये जैसा समय आज आया है, लोगों का सन्मार्ग पर लाने के लिये, वैसा पहले कई वर्षो में कभी नहीं आया होगा। इतना सुन्दर अवसर, इतना अच्छा समय हमें आज मिला है। आज लोगों की जिज्ञासावृत्ति-सैद्धातिक प्रेम बढता जारहा है। लोगों के दिलो से पक्षपातवृत्ति उठती जारही है। एक कठोर से कठोर ब्राह्मण हो या कोई भी कट्टर से कट्टर धर्म को माननेवाला हो, वेद-वेदान्त का अभ्यामी हो, कट्टर वैष्णव-शैव-वेदान्तिक, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान आदि कोईभी हो, परन्तु आज तो वह भी सच्ची बात को-युक्तियुक्त चीज को स्वीकार करने के लिए हरसमय तैयार है। सत्यान्वेषण की जिज्ञासा, आज कट्टर से कट्टर कहे जानेवाले किमी धर्म के अनुयायी की भी बढी हुई है।

लेकिन हमको कहां फुरसत है ? हमारे धर्मप्रचार की तरफ कोई रुचि ही नहीं। आप खुद ही नहीं जानते कि सिद्धान्त क्या चीज है ? स्याद्वाद क्या चीज है ? गुणस्थान क्या चीज है ? आप लोगो को खुद को ही रस नहीं ज्ञान नहीं।

सच्चे ज्ञान का अभाव

खैर ! आप तो अब वृद्ध होने जारहे हैं। आपका तो जो कुछ हुवा सो हुवा, लेकिन आपके बच्चों को आप सच्चे जैन बनावे। उन्हें विद्वान बनावें, जैन सिद्धांतों के पूर्ण जानकार बनावें। जैनधर्म एक विशाल धर्म है । आत्मधर्म है। निष्पक्षपात धर्म है। यह बात मैं विस्तार से कभी आपको समझाऊगा। इस धर्म में कोई पक्षपात नहीं। आक्षेप और निक्षेप जैसी कोई चीज नहीं। बिलकुल शुद्ध प्राकृतिक धर्म है । यह एक आत्मधर्म है। आत्मा का जितना सुलझाया हुवा सुन्दर से सुन्दर वर्णन इसने किया है, कोई अन्य धर्म उसे नहीं पहुचसका। परन्तु आज की दशा तो विचित्र है। अगर बुरा न लगे तो कुछ कहदू-महात्मा कबीरदासजीने एक जगह कहा है।—

'भागवत भणीने भट्ट कहेवाणा,
एवा भट्ट अनन्ता हुआ।
पण परब्रह्मनो भेद न जाण्यो
पछी लोट मागी मागी ने मुआ।

ब्राह्मण लोगों से पूछिये, आप क्या जानते हैं ? 'सत्यं ब्रह्म मिथ्या जगत्' का सिद्धांत प्रतिपादन करेंगे वेदवेदान्त, पुराण का वर्णन करेंगे—संसारी बातें करेंगे। लेकिन 'परब्रह्म' क्या चीज है ? आत्मा-परमात्मा क्या चीज है ? यह नहीं जान सकते। और प्रातःकाल उठते ही कई लोगतो घर २ 'सरस्वती कल्याण' 'शनिमहाराज' सुनाकर मांगने को फिरते हैं। आगे फिर कहा है—

मांगणना भुवा ने सेलडीना भुवा, एवा भुवा अनंता हुवा,
पण घरना देवनी खबर न सूझी, पछी डाकलां ठोको ठोकोने मुवा ॥

कई लोग कहते फिरते हैं-"अरे भाई, मेरे घरमें भूत है-प्रेत है" एसे एक तरह के गृहस्थ होते हैं जो 'भुवे' कहलाते हैं। लेकिन कुछ नहीं जानते। और दुनियां के भूत-प्रेत-डाकनी को निकालने के लिए डाकलें पीटते फिरते हैं। पर यह नहीं जानते कि मेरे खुद के घर के देवता कौन हैं ? क्या है ? जागे है—

काजी अने मुल्लां एवा मुल्लां अनंता हुवा।
पण खुदाना घरनी खबर न सूझी, पछो बांगों ठोकी ठोकीने मुवा।

प्रातःकाल में देखो मस्जिदों में कान में अंगूलियां डालकर बड़े जोर २ से "अल्लाहों अकबर" करके चिल्ला चिल्ला कर बांग पुकारते हैं काजीजी, परन्तु खुदा कहां पर बैठा है ?। यहा उनको पता भी नहीं। बस यह उनकी दशा है। अब साधु-बाबाओं की दशा देखिए—

गुरु गोरखनाथ, बावा मछन्दर, एवा बाबा अनंता हुवा।
पण साधु धर्मनो भेद न जाण्यो, पछी चीपिया ठोकी ठोकीने मुवा ॥

नाना प्रकार के साधु अलख अलख करके दुनिया भरमें फिरते रहते हैं, परन्तु साधु धर्म क्या चीज है ?। त्याग संयम क्या चीज है ? आत्मा-परमात्मा क्या चीज है ? कुछ नहीं जानते।

मित्रो बुरा न मानो !

आजकल यही दशा हमारे जैनों की भी है। जीवनभर परमात्मा की पूजा की, भक्ति की, सामायिक की, व्रत, प्रत्याख्यान किये, जप-तप किये-सब कुछ किया, परन्तु इसके तत्त्व को नहीं पहिचाना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार क्रिया नहीं करते, इस तरह से तो चाहे कितना भी करते जाओ जो लाभ होना चाहिये, वह लाभ कभी नहीं मिलसकता। जबतक हम देश, काल, भाव अर्थात् समय, स्थान और पात्र

का विचार नहीं करेंगे, और ऐसे विद्वान, धर्म के प्रचार के लिये, आत्मा के कल्याण के लिये हमारी समाज में नहीं पैदा करेंगे, हमारा कल्याण होनेका नहीं। हमारे समाज तथा धर्म की उन्नति कभी होने की नहीं।

आप इस पर जरुर विचार करें। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार अपने द्रव्य पर से मूर्च्छा उतार कर खर्च करें। हमारे पूर्व आचार्योंने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार हरेक क्रिया को किया था और उसीके अनुसार वर्तन भी किया था। इसी के कारण समाज बराबर उन्नति करता रहा तथा जीवित रहा। हमें भी चाहिए कि हम देश, कालको देख कर ही कार्य करें और तभी आत्मा का भी कल्याण होसकता है और समाज की उन्नति भी होसकती है।

देश और काल के विरुद्ध जितनी भी प्रवृत्ति हो, उसका त्यागकर। हरेक क्रिया करते समय, चाहे धर्म की क्रिया हो, चाहे शारीरिक क्रिया हो, चाहे सामुदायिक क्रिया हो, कोई भी क्रिया हो, लेकिन देश काल जिसको इन्कार करता है, देशकाल जिसके लिये लाल बत्ती दिखाता है, ऐसी कोई भी क्रिया न करें।

दुःख यह भूल का नतीजा है

संसार में मनुष्य किसी भी प्रकार का दुःख उठाता है, इसका कारण है भूल। 'भूल, यह हमारे दुःख का कारण है'। वह मैं पहले भी बताचुका हूं। यह भूल किस बात की करते है? देश काल का विचार नहीं करते हुए समय स्थान को नहीं देखते हुवे हम जो काम करते हैं, उससे हमें दुःख उठाना पडता है।"इसे खूब याद रखिये।

यह देश-काल का विचार हमारी सफलता की कुञ्जी है। खेती करने वाला जब खेत में अनाज बोने का विचार करेगा, तो समय और स्थान जरुर देख लेगा कि इस समय कौनसा अनाज बोना चाहिए। जगह कैसी है? एक किसान यह सब बातें देख लेगा, जिसको हम अज्ञानी, मूर्ख, अनपढ और गवार समझते है। पर हम सभ्य और समझदार कहलानेवाले मनुष्य समय और स्थान का विचार नहीं करते है। क्यों एक आदमी दिवाला निकालता है? जरुरत क्या? दिवाला निकालने की? देश-काल का विचार न करते हुवे अपना व्यापार व्यवसाय किया इसलिये।

बडे घरों में मनुष्यों की प्रकृतियों का विचार नहीं करते हुए गृहस्थ अपनी प्रकृति के अनुसार सारे मनुष्यों को रखने की कोशिश करता है। सबब, सब गडबड

हो जाती है। भाइयो २ में भाइयो २ में, झगडा खडा हो जाता है, हमेशा के लिये क्लेश की आग जलती ही रहती है। कभी शांत होने का समय नहीं आता। इसका क्या कारण है ? एक व्यापारी बराबर ईमानदारी और नेकी से व्यापार करता है। पुलिस को उसके यहां जानेकी जरुरत नहीं। वह शांति में रहता है। परन्तु एक अनीति करता है। वेईमानी करता है। लुका छिपी, चोरी से माल लेता है और बेचता है। उसको शांति नहीं। रातदिन डर रहेगा। पुलिस आयगी तो। ? वारंट आवेगा तो ?। तलाशी होगी तो ?। इसके सिवाय और हो भी क्या सकता है ?। गुनाह करते समय विचार नहीं करते।

रामचंद्रजीने सीता क्यों खोयी ?

रामचंद्रजीने अपनी पत्नी खोयी। क्यों खोयी ? रामचंद्रजी जैसे मर्यादापुरुषोत्तम पुरुष अपनी स्त्री को खोवे। कोई उठा लेजाय-यह क्यों ? रामचंद्रजी समय और स्थान का विचार न करते हुए सीताजी के कहने में आगये कि-"वह स्वर्ण का मृग है, शिकार करके ले आओ।"

क्या राम इतना नहीं समझते थे कि कहीं स्वर्ण का भी मृग होता है ?। किसीने देखा भी है ? किसीने अपने घर कभी पाला भी हैं ? इसका विचार उन्होंने नहीं किया। समय, स्थान और पात्र का विचार न करते हुवे केवल सीताजी के ऊपर मोह होने के कारण, स्वर्ण का मृग लाने दोड़ पड़े, क्यो कि जब दुःख आनेवाला होता है तो बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। उस समय स्थान और पात्र का भी विचार नहीं रहता। एक कवि कहता है—

> न भूतपूर्वो, न च केन दृष्टो।
> हेम्नः कुरङ्गे। न कदापि वार्ता ॥
> तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य।
> विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥

आज हमारी आर्य संस्कृति नष्ट होती चली जारही है। देशसे, वेशसे, खानसे, पानसे, आचार-विचार और व्यवहारसे, धर्मसे, सारी बातों से हम अपनी संस्कृति का नाश कर रहे हैं। हमारा पतन हो रहा है। क्या कारण है ? हमने देशकाल का विचार नहीं किया। हम पाश्चात्य भौतिक जड़वादी संस्कृति का अनुकरण करने लग गये हैं। यह अनुकरण हमने एक बात में ही नहीं किया--सारी बातो में किया है। बुरीबुरी

और बुरी ही बातों में किया। जिस बात में करना चाहिये था, उसमें नहीं किया। हमारे दुर्गुणों को दूर करने के लिये, हमारे समय की कीमत आंकने के लिये अगर हम पाश्चात्य लोगो के इन गुणों का अनुकरण करते तो आज हमारी यह दशा भी न होती। लेकिन यह तो कुछ किया नहीं। यूरोपियन लोग कोट, पेन्ट, कॉलर-नेक्टाय लगाकर कुर्सी टेबलपर बैठ रहते हैं, और इसी हालत में खाना खाते हैं, सब काम करते हैं। इसलिये हमें भी टेबल कुर्सीपर कोट पैंट कॉलर नेक्टाय लगाकर रातदिन बैठना चाहिए, अंग्रेज लोग खडे खडे पिशाब करते हैं, इसलिये हमें भी खडे २ पिशाब करना चाहिए। क्या तारीफ है अनुकरणकी ?

पाश्चात्यों का अन्ध अनुकरण

आज बडे २ कहलानेवाले गृहस्थों के घरो में जाता हू तो देखता हू-सेठसाहब कोट पैंट सूट पहिने हैं। चमडे के बूट पहने हैं और टेबल कुर्सीपर एक तरफ आप बैठे खाना खा रहे हैं और सामने बीबीसाहिबा बैठी है। और खाना ? दही-दाल-भात चावल रोटी शाक। ऐसी हालत में हमारे जैसा कोई साधु आहार लेने जाता है तो उन दम्पती की भी क्या दशा होजाती है ?। मारे शर्म के स्थिर होजाते हैं। और हमें भी एकदम होजाता है कि यहा कहा आ फसे ?

कहा तो हमारे लोगों में रात और दिन यह भावना रहती थी कि " कोई साधु-मुनिराज घर आवें और मैं अपने हाथों उन्हें आहार दान दूं। पुण्योपार्जन करु। " परन्तु आज कई घरों की अंग्रेज और हिन्दुस्थानी-मिश्रित अर्थात् वर्णशंकरशाही को देखकर बडा ही दुःख और आश्चर्य होता है।

बल्कि-अब तो लग्न और शादियों मे भी उनका अनुकरण करना शुरु हो गया है। जिसके साथ दिल मिला, हुआ हुई शादी कर ली और न बनी तो छोड भी दी। इसे कहते हैं तल्लाक देदेना। लाये तो भी क्या और छोड दिया तो भी क्या ? यही लग्नका महत्त्व रहा है। उनका अनुकरण तो आज एक फैशन ही गया है।

विचार करिये ! आप किस अभिमान में हैं ? अपनी संस्कृति को खोकर बच नहीं सकेंगे। हमारा अस्तित्व मिट जायगा।

भाइयो और बहनों,

कल मैंने अदेश और अकाल की चर्या को नहीं करने के लिये कहा था। अर्थात् देशकाल के अनुसार हमारा रहन, सहन, आचार, विचार, खानपान आदि रखने को कहा था। आजकल की फेशन में मारवाड, मेवाड, मालवा भाग्यशाली है कि–वह नहीं फसा है। यद्यपि उसमें भी शुरुआत तो हो गयी है, परन्तु इतना तो है कि– गुजरात, काठियावाड, सिंध, बंगाल, यू. पी. आदि की अपेक्षा से बहुत कम।

फेशन से खराबियां

उन देशों को देखिये। आज वहां की स्त्रियों के पास में बैठकर धर्मदेशना देने में हमारे जैसे साधुओं को भी लज्जा आजाती है। उनके कपडे, रहन–सहन, बनाव, शृंगार को देखिये। दिन में चार २ वार अपने कपडे बदलेगी। बीसों वार शृंगार करेगी। घन्टों आयना के सामने खडे रहकर अपने को एक गुड़िया की तरह आकर्षित बनाने की चेष्टा करेंगी। शरीर सुंदर बनाया जाता है। एक सभ्य सदाचारी कहा जानेवाला मनुष्य इनके पास खडा भी नहीं रह सकता। फिर वह चाहे सती का अवतार ही क्यों न हो?

इससे नानाप्रकार की बुराइयां होती रहती है। मेरी लिखी "सिंधयात्रा" पढिये। आपको पता चलेगा कि रोजाना एक दो लड़कियां सिंध की कॉलेजों में से उठाई जाती है। किसी न किसी युवान के साथ भाग जाती हैं। क्या कारण है इसका? उसका वेष, उनका पहिनाव, उनकी तड़क–भड़क, उनका वातावरण, उनके जीवन पर खूब असर करता है। विषय–वासनाओं का जोर होजाता हैं। परिणाम यह आता है कि वे अपने सर्वस्व को खोकर चली जाती है।

प्यारे भाइयो और बहनों!

आप लोग सद्भागी हैं। मैं अपनी इन माताओं को कहुंगा कि–वे सद्भागी हैं कि जो फैशन आज सारे संसार में महामारी की तरह फैल रही है, उससे बची हुई हैं। बस, इतना सद्भागी आप अपने को समझ लीजिये। लेकिन सावधान रहिये!

जमाना बड़ा बुरा आरहा है। तूफान बढ़ता जारहा है। वातावरण भयानक और विषैला बनता जारहा है। ये सिनेमा, ये नाटक-नाचगान, विषाक्त वातावरण हमें बिगाडने को, हमारा सर्वस्व अपहरण करने को हमें महान् पतन के गर्तमें गिराने को मुँह बाये खड़ा है। यह दावानल हमारे चारों तरफ सुलगा है। आप इनसे जितने सावधान होंगे, धर्मकी दृढ भावनावाले होंगे, उतने ही बच सकेंगे। इनमे बचने का केवल यही उपाय है। आप अपने धर्म की भावना दृढ करिये। अपनी संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा पर अटल रहिये। माता-पिताओं को चाहिये कि अपने नन्हे २ छोटे बच्चे बच्चियों पर, बालक बालिकाओं पर अभीसे अपनी संस्कृति के-धर्म के संस्कार डालते जांय। नहीं तो बड़े होने पर कुछ नहीं होगा। आजकल का जमाना बुरा है। वातावरण बिगड़ा हुआ है, दावानल सुलगा है। न मालूम ये बड़े होकर क्या करेंगे? कहां जाकर गिर जायेंगे? इसलिये अभी से सतर्क हो जाने की जरूरत है। यही देशकाल का आपको तकाजा है।

हमारे साधु, महात्मा, ऋषि गण भी पूर्व समय में अपने संघ की वृद्धि के लिये, धर्म की सेवा के लिये, देशकाल को देखकर राजाओं के पास भी जाते थे। उनसे बातचीत करते थे। वह साधु, संसार की सेवा कभी नहीं करसकता जो देश और काल का विचार नहीं करता है। देश काल के पहचानने के एक दो उदाहरण दूं—

सिद्धसेन और विक्रमादित्य

सिद्धसेन दिवाकर विक्रमादित्य राजा के पास जाते हैं, एक मंदिर के काम के लिये। जैनों और हिन्दुओं में उस वक्त राग-द्वेष की प्रवृत्ति चल रही थी। एक दूसरे के धर्मकार्यों में रोडे अटकाया करते थे। हिंदुओंने एक जैन मंदिर का शिखर बनने से रोकदिया था। सिद्धसेनने सोचा मंदिर का शिखर बनना जरुरी है। परन्तु अब यह तबतक नहीं बन सकता, जबतक राजा की आज्ञा न मिले।

सिद्धसेन, राजा विक्रमादित्य के पास गये। पुलिस उन्हें रोकती है। वे सोचते हैं—मैं यहां धर्म-गुरु की हैसियतसे आया हुं। मुझे काम किसी तरह से निकालना है। राजा को प्रसन्न करना जरुरी है। देशकाल का विचार करके सिद्धसेन वहीं पर एक श्लोक बनाकर उस पुलिसवाले को देते हैं-राजा के पास पहुँचादेने के लिये। सिद्धसेन जैसा धुरंधर कवि, संसार में कोई नहीं हुवा। वे मात्र ३२ अक्षर का एक श्लोक था:

दिदृक्षु भिक्षुरेकोऽस्ति, वारितो द्वारि तिष्ठति।
हस्तन्यस्तचतु श्लोको। यद्वाऽऽगच्छतु गच्छतु॥

हे राजन् ! आपको देखने की इच्छा रखनेवाला एक भिक्षुक, सिपाही के द्वारा रोका गया, तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा है। जिसके हाथ में चार श्लोक हैं। वह आपके पास आवे या चला जाय ? ।

सिपाही जाकर विक्रमादित्य के हाथ में वह श्लोक देता है। राजा उस ३२ अक्षर के श्लोक को देखकर चकित हो जाता है। विचारता है, मानो न मानो, यह श्लोक बनानेवाला कोई जबर्दस्त विद्वान् होना चाहिये। राजा वापिस जबाव देता है:

दीयतां दश लक्षाणि शासनानि चतुर्दश।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोको यद्वाऽऽगच्छतु गच्छतु।

अपने नोकर को हुक्म देते हुवे वह लिखता है:—" उन्हें १० लाख सोने की मोहरें देदो और १४ गांव का राज्य देदो। फिर जिसके हाथ में चार श्लोक है, उसको कहदो कि, अगर उन्हें आने की इच्छा हो तो मेरे पास आजाय, और जाने की इच्छा हो तो चला जाय।

वे थे सिद्धसेन दिवाकर। न उन्हें सोनामोहरें चाहिए थी, न शासन। उन्हें तो लगन थी एकमात्र धर्म-सेवा की। सिद्धसेन दिवाकर विक्रमादित्य के पास चले गये। उस समय राजा पूर्व दिशा की ओर मुंह करके सिंहासन पर बैठा था। सिद्धसेनने एक श्लोक और सुनाया, प्रसन्न होकर राजाने पूर्व दिशा का राज्य देदिया। दूसरा श्लोक सुनाया। पश्चिम का राज देदिया।

इसीतरह तीसरे और चौथे श्लोक सुनाने पर राजा उत्तर और दक्षिण दिशाओं का भी राज्य दे देता है। और चारों दिशाओं का राज्य देकर राजा विक्रमादित्य सिद्धसेन के चरणों में गिर जाता है।

विक्रमादित्य कहते हैं:—" राजन् ! मैं राज्य लेने नहीं आया हूं। आप अपना राज्य संभालिये। मेरा तो काम इतना मात्र है कि—साम्प्रदायिक मतभेद के कारण से हमारे धर्म का कार्य रुका हुवा है। आपको चाहिये कि हमारा यह कार्य करवादें। राजा फौरन हुक्म करदेता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि सिद्धसेन दिवाकर जैसे प्रकाण्ड विद्वान् आचार्यने भी द्रव्य, क्षेत्र और काल भाव को देखकर धर्म की रक्षा के लिये इस बात का विचार नहीं किया कि मैं अपने चारित्र-साधुपने का ख्याल रखकर के राजा के पास क्यों जाऊं ? क्यों उसकी खुशामद करूं ? क्यों उसे प्रसन्न करने की कोशिश करूं ?

अगर वे अपने आचार्यपन के–साधुपन के अभिमान में रहते तो काम नहीं कर सकते थे।

हेमचद्राचार्य और ब्राह्मण पडित

खादी के मोटे कपडे पहने हेमचन्द्राचार्य पाटन के बाजार में होकर निकलते हैं। एक मोटा डडा हाथ में लिये हैं। कन्धे पर मोटा कम्बल रक्खा है। मोटा ताजा शरीर है।

एक पण्डित सामने मिलता है। पण्डित जानता है कि ये हेमचन्द्राचार्य हैं। प्रकाण्ड विद्वान् हैं। इन्होंने ज्ञान का कोई विषय ऐसा नहीं छोडा जिसे ये न जानते हों। इन्होंने सभी शास्त्र बनाये हैं, यहांतक कि कामशास्त्र भी। पाच वर्ष की उम्र में ये गुरु को सोंप दिये गये थे। आप जान सकते हैं कि इस हालत में इन्हें संसार का क्या अनुभव होगा ? परन्तु नहीं-इनका ज्ञानबल बडा ही प्रचंड था। कहा जाता है कि साढेतीन करोड श्लोक उन्होंने बनाये हैं।

पण्डित मश्करी करते हुवे कहता है—

आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन् ॥

यह 'हेम' नाम का ग्वाला सामने से आरहा है, जिसके हाथ में डडा है और कन्धे पर कम्बल है। बात ठीक है। क्योंकि ग्वाले के सभी बाह्य लक्षण इनमें थे। हाथ में मोटा डण्डा भी था और मोटा कम्बल भी खधेपर डाला था।

हेमचन्द्राचार्यने विचार करलिया कि इसने बराबर मेरी मश्करी की है। इसे जवाब जरूर देना चाहिये। बोलते हैं—

आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन्।
षड्दर्शनपशुप्रायाश्चारयन् जैनवाटके ॥

जरुर तुम कहते हो सो ठीक है। हेम ग्वाला आया है। पर यह कैसा ग्वाला है, यह तुम्हे नहीं मालूम। सुनो, यह षटदर्शनरूप पशुओं को जैन बाडे में चराता हुआ ग्वाला है।

मित्रो! देखिये, यह विद्वानों की मश्करी थी। कोई बुरी मश्करी नहीं थी। कुतर्क भी नहीं। जैसा सवाल, ठीक वैसा ही जवाब।

कहने का तात्पर्य यह कि जो मनुष्य समय स्थान को नहीं पहचानता है, उसके

अनुसार काम नहीं करता है, वह मनुष्य सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

कालकाचार्य और गर्दभिल्ल

अब कालकाचार्य का उदाहरण देखिये।

कालकाचार्य भी एक जबरदस्त धुरंधर विद्वान् साधु थे। उनके समय में उज्जयिनी का राजा गर्दभिल्ल था, वह महाअत्याचारी और व्यभिचारी था। हरकिसी की बहन बेटीपर अत्याचार करना, उसके लिये मामूली बात थी।

आचार्य साधु होते हुए भी यह अत्याचार न देख सके। वह सोचते हैं:-इतना अत्याचार मैं कैसे सहन कर सकता हूं?। परन्तु मुझे भी समय देखना चाहिये। यह समय क्या है? मुझे क्या करना चाहिये? मैं राजा के पास नहीं जासकता, परन्तु फिर भी कोशिश तो अवश्य करूंगा, राजा को समझाने की। आचार्य कोशिश करते हैं।

संयोग ऐसा आगया कि उन्ही आचार्य की एक साध्वी बहन सरस्वती गोचरी-भिक्षा लेने निकली कि उन्हें राजा के सिपाही पकडकर महल में लेगये। वह बडी सुन्दरी थी। राजा के नोकरोंने यह नहीं देखा कि यह पञ्च-महाव्रतधारी सती साध्वी है। उन्होंने तो उनकी सुन्दरता देखी और लेगये राजा के पास।

आचार्यने जब यह बात सुनी तब उनका खून उबलने लगा। राजा इतनी हिम्मत करले कि एक सती साध्वी को भी मेरे रहते उठाले जाय?। इतने दिन तो संसार की स्त्रियों को लेजाता था, परन्तु अब पवित्र साध्वीओं के ऊपर भी उसकी यह हिम्मत होने लगी? उस अत्याचार को मिटाना चाहिए। वरना मेरा जीना बेकार है।

कालकाचार्य श्रावकों से कहते हैं: "तुम प्रयत्न करके उन्हें वापिस लाओ, नहीं तो मुझे प्रयत्न करना होगा।"

लेकिन श्रावक तो जैसे आज के हैं वैसे उस वक्त के भी। कहते हैं-"महाराजजी आपका काम है, हमलोग क्या कर सकते हैं?"

आचार्य तब खुद गर्दभिल्ल राजा के पास जाते हैं। कहते हैं-"राजन्! एक राजा की हैसियत से तेरा यह धर्म नहीं कि तू अपनी प्रजा की बहन-बेटियों की इज्जत ले और ऐसा अत्याचार करे। परन्तु तेरी इतनी हिम्मत बढ गयी है कि तूने अब साध्वियोंपर भी हाथ डालना शुरु करदिया है। मैं कहता हूं सावधान हो। उन्हें छोड दे।"

अभिमानी राजा तैयार नहीं हुआ, आचार्य की शिक्षा को मानने के लिये । उस समय आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं " हे राजन् ! आज मैं साधुपना छोडता हू और अगर तुझे तेरी गद्दीपर से उतारकर फैंक ना दू-तुझे इन अत्याचारों का बदला न दू, तो समझ लेना मैं साधु नहीं । मुझे कालकाचार्य मत समझना । "

आचार्य साधुपना छोडदेते हैं । हथियारों को धारन करके सैनिक बनते हैं । वहां से सिन्ध देश में जाते हैं । सिन्धुनदी पार करके उस पार उत्तर दिशा मे चले जाते हैं । वहां अपने उपदेश से अपने ऋद्धि-सिद्धियों तथा ज्ञानबल से ९६ मडलिक राजाओं को हाथ में करते हैं । उन्हें कहते हैं आचार्य कि: " तुम हिन्दुस्तान में चलो, मैं तुम्हें वहा का राजा बनाऊगा । "

साधु सेनाए लेकर सिन्धु नदी को पार करते हुए सौराष्ट्र की सीमा में आजाते हैं । वहा विश्राम करने के बाद उज्जयिनी पर चढाइ करते हैं । खुद आचार्य सेना का सञ्चालन कर रहे हैं ।

गर्दभिल्ल राजाने गर्दभी विद्या का साधन किया था । गर्दभी की जितनी दूरतक आवाज पहुचे, वहातक उन्हें कोई नुकसान नहीं होसकता था । आचार्य की सेना आगे नहीं बढ सकी । लेकिन आचार्यने भी विद्या की साधना की थी । और वह थी गर्दभी की मा । उन्होंने गर्दभी की मा को साधा था । जब गर्दभी चिल्ला रही थी, आचार्यने तीर छोडे और उस गर्दभी का मुह बन्द करदिया । आचार्य की सेनाए आगे बढती हैं और गर्दभिल्ल की राजधानीपर अधिकार कर लेती है । गर्दभिल्ल गिरफ्तार होजाता है । उसे आचार्य अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बराबर गद्दी से हटा देते हैं । उसके अत्याचारों और कुकर्मों की सजा उसे दी जाती है और फिर कालकाचार्य चारित्र अंगीकार करते हैं और बराबर अपने आत्मा का कल्याण करते हैं ।

प्यारे भाइयो ! खूब ध्यान रखिये । आज हमारी अवनति का एक ही मात्र कारण है कि-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नहीं देखा जाता । जब बडे आचार्य तक भी इसको ध्यान में रख समाजहित का कार्य करते थे, तब हमारा समाज चतुर्मुख उन्नति पर था । जब हम फिर इस चीज को समझकर चलेंगे तबही हमारे समाज का कल्याण होगा, हम उन्नति अवश्य करेंगे ।

अब २३ वां गुण कहा जाता है:—

तेईसवा गुण ज्ञानन् बलाबलम्

बल और अबल-शक्ति और अशक्ति को जानकर हरेक काम करें ।

अपने लिये और दूसरे के लिये सबके लिये अपनी २ शक्तियों को देखकर मनुष्य सभी काम करें, अगर वह शक्ति-अशक्ति का माप नहीं निकालता है, तो धोखा खाये बिना नहीं रह सकता और यह धोखा उसके दुःख का कारणभूत हो जाता है।

संसार में रहते हुए भी जो विरक्त होगये हैं, साधु संन्यासी होगये हैं, उनको तो कुछ काम नहीं है, सिवाय अपना आत्म-कल्याण के। यद्यपि कल्याण तो गृहस्थ को भी करने का है, परन्तु अपने सम्पूर्ण व्यावहारिक कार्यों को करते हुवे। उन्हें व्यवहार में रहना है। एक दूसरे के दुःख में हिस्सा बंटाना पडता है। कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री के साथ रहना पडता है। समाज और देश के प्रति उनके कर्त्तव्य हैं। राजा के साथ, दूसरे मनुष्यो के साथ कैसा संबंध रखना चाहिये ? धर्म-ध्यान कैसे करना चाहिये ? आदि नाना प्रकार के कर्त्तव्यों में गृहस्थ बंधे हैं। इन सारे कर्त्तव्यों का पालन करते हुवे, इन सारी सांसारिक परिस्थितियों में रहते हुए कौन अपना जीवनविकास कर सकता है ? जो बलाबल का निर्णय करके चले। जो ऐसा न करे उन्हें नुकसान उठाना पडता है। जैसे मान लिजिये, आपके शरीर में ताकात नहीं, फिर भी आप अपने बल का-अपनी हेसियत का ख्याल न करते हुए अपने से शरीर में ताकातवर से लडपडें, क्या होगा ? सिवाय दुःख उठाने के। इसीतरह सब बातों में समझ लीजिये।

एक बात और है। अगर शक्ति होते हुए भी जो मनुष्य कोई काम न करे, तो यह भी उसकी मानसिक कमजोरी और दुःख का कारण है। द्रव्य बहुत है, आप के पास। परन्तु आप उसे धर्म-कार्य में खर्च न करे, इधर उधर भागते फिरें तो यह आपकी मानसिक कमजोरी है। पैसेपर आपको मूर्च्छा है-मोह है। आप मानसिक कमजोर न बनिये। सच्चे शूर बनिये।

शूरवीर आदि कौन ?

शास्त्रकार के शब्दो में मैं आपको कहता हूं:—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

अर्थात् १०० मनुष्यों में एक मनुष्य शूरवीर होता है। नाना प्रकार के शूरवीर होते है। कोई शरीर का, कोई दान का, कोई तपस्या का, कोई ध्यान का, कोई योग का। लेकिन १०० में एक होता है। और हजार आदमियो में एक पण्डित होता है। और १० हजार आदमियों को इकट्ठा करिये, मुश्किल से एक वक्ता निकलेगा। और हजारो

लाखों को इकट्ठा कर लीजिये। दाता तो मिलना ही कठिन है। एकाद मिला तो मिला, नहिं तो नहीं मिलेगा। लेकिन एक बात है, शूर, पंडित, वक्ता और दाता कहना किसको ? इसके लिए कहा है:—

इन्द्रियाणां जये शूरः धर्मं चरति पंडितः।
सत्यवादी भवेत् वक्ता दाता भीताभयप्रदः॥

हजार मनुष्यों को अपने कब्जे में करलेना यह शूरवीरता नहीं। सचा शूर तो वह है, जिसने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करलिया है। पंडित उसका नाम नहीं कि जिसने बडे २ ग्रन्थ रटलिये हों। बडा ज्ञानी बना फिरता हो असली पंडित तो वह है, जो धर्म का आचरण करता है। वक्ता वह नहीं, जो हजारों आदमियों के बीच बडा अच्छा सा लेक्चर झाड दे। वाह-वाह करवा ले। सत्य बोलनेवाला सचा वक्ता है। और जो भयभीत दुःखी जीवों का रक्षण करता है उसका नाम है दाता।

आजकल हम शूरवीरता बताते हैं, एक दूसरे की बुराई करने में-नीचे गिराने में, एक दूसरे के साथ लडाई झगडा करने में, और उसे बर्बाद करने में, अदालतें में लडने में और सरकार का घर भरने में। वह शूरवीर नहीं, यह तो कायरता है। शूरवीर तो वही है जो ५ इंद्रियों के २३ विषयों को जीत ले, दुनिया को जीतना सरल है, परन्तु इन्द्रियों के विषयों को जीतना अति कठिन है।

जरा देखिये तो सही, खाने को बैठे। ५० चीजें बनी हैं, लेकिन एक आपकी रुचि की चीज बाकी रहगयी। पत्नी से लडने झगडने को तैय्यार होजाते हैं। यह कौन कराता है ? मात्र इन्द्रियों की गुलामी। शूरवीर इंद्रियों की गुलामी कभी नहीं कर सकता।

और पण्डित ! आजकल तो पण्डित बहुत होगये हैं। काशी में तो भंगी तक को पंडित कहकर पुकारते हैं। और ब्राह्मण तो जितने हैं सब पण्डित। चाहे काम कुछ भी करता हो। कोई हरकत नहीं। ये पंडित आजकल के किस तरह के हैं, एक कवि कहता है:—

पण्डित भये मशालची, बातों करे बनाई।
औरनकु उजाला करे, आप अंधेरे जाई॥

मशालची होते हैं। जानते है आप ? आजकल तो बिजली की बत्तियां होगयी है। पहिले जमाने में एक डण्डे पर कपडा लपेटकर उसपर तेल डालकर जलाते थे। उसे लेकर जो चलता था, वह कहा जाता था मशालची।

आजकल के पंडित प्रायः कैसे है-मशालची के अवतार। नाना प्रकार की बातें इधर उधर की करेंगे। इतनी बातें करेंगे कि-अच्छे लोग भी मुग्ध हो जायेंगे। इतना ज्ञान भरा होता है कि उसका ठिकाना ही नहीं। इस प्रकार दूसरों को हजार प्रकाश देंगे-ज्ञान बतावेंगे, लेकिन खुद मशालची की तरह अंधेरे में ही रहेंगे। काशी में बडे २ धुरन्धर विद्वान् हैं, परन्तु ऐसे बडे धुरन्धर ज्ञानी पण्डित भी प्रातःकाल लोटा लेकर गंगाजी पर स्नान करने जायें। स्नान करने के बाद किनारे बैठकर सूर्यनारायण का जाप करने को बैठ जायें, 'सोऽहं सोऽहं इति सहजानंदात् समरसत्वं मोक्षमार्गः' का जाप करें। नानाप्रकार के श्लोक पढा करें। लेकिन ध्यान किस में रखे ? किनारे पर आनेवाली मछलियोंपर। आयी कि उठाकर रखी लोटे में। घर आकर उनका साग बनाकर खालेंगे। हमारे पण्डितों की यह दशा है।

दुनियां की प्रशंसा की कोई दरकार नहीं। धर्मक्रियाएं करें। शुद्ध आचरण पालें। अपना व्यवहार सरल एवं शुद्ध रखे, वही सच्चा पण्डित है।

और वक्ता वही है, जो सत्यवादी हो। आचरण में-व्यवहार में सब जगह सब हालत में मुंहपर मिठास रखें। और सत्य ही बोलें। सत्य बोलनेवाला ही सच्चा वक्ता है। वास्तविक सत्य वही है जो सत्य होते हुए प्रिय भी हो। प्रिय-मधुर न हो तो वह सत्य भी सत्य नहीं। और मधुर-सुन्दर प्रिय बोलनेवाला सुखी भी होता है। किसी किसी मनुष्य की भाषा ऐसी होती है कि वे अपने मुंह से भले या बुरे सभी प्रसंगो में सुंदर ही बोलते हैं। इसका एक उदाहरण है:—

सुन्दर-अतिसुन्दर

एक राजा के पास एक दीवान था। बडा मधुरभाषी। कभी अपशब्द या बुरा शब्द उसके मुंह से निकले ही नहीं। परमात्मा पर अटल विश्वास रखनेवाला। कोइ उसे कहे:-" महाराज ! फलाने का लडका मर गया।" वह कहे-" सुन्दर " कोई कहे-" फलाने ले घर में आग लग गयी।" " अति सुंदर " यही जवाब दीवान देता था। उसे कोइ कुछ भी अच्छा या बुरा कहे; बस ' सुन्दर ' और ' अति सुन्दर ' इसके सिवाय कोई बात वह दीवान नहीं कहता था।

सयोग से एक दिन राजा जगल में शिकार खेलने गया। शिकार तो मिली नहीं, परन्तु राजा का एक अगूठा टूट गया, बन्दूक की गलती के कारण। राजा खिन्न होकर महल म लौटा। डॉक्टर, वैद्य सब को बुलाया। खबर सुनकर और भी सब अफसर वगैरह राजा के साथ सहानुभूति बताने आये। परन्तु दीवान नहीं आये। उन्हें बुलाया गया। आदमीने कहा-" राजा साहब का अगूठा टूट गया है। आपको बुलाते है।" " सुन्दर हुवा " दीवान बोलते हैं।

सिपाही आगे २ दौडादौडा गया। राजा से कहा: " महाराज! आपका अगूठा टूट गया, दीवान सा. कहते हैं:-" सुन्दर हुवा " यह क्या बात?" राजा कुपित हो गया। सोचता है-" दीवान मेरा वफादार नौकर नहीं। उसे हुक्म देता है-" तुम मेरे राज्य को २४ घन्टे में छोडकर चले जाओ।"

दीवान को इस प्रकार की चिट्ठी मिलनेपर यही कहते हैं: " अतिसुन्दर "। दीवान चले गये। दूसरों की सीमा में जाकर रहने लगे।

इधर राजा का अगूठा महीना बीस दिन में ठीक हुआ। फिर एक दिन शिकार को निकला। घोडे पर सवार हुवा सरपट सरपट, एक शिकार के लिये दौडा जारहा है। राजा एक भयावने जगल में जा निकला।

इतने में " कौन! कौन! " कहते हुए १५-२० हथियारबद आदमी राजा के पास आखडे हुए। राजाने पूछा-" तुम कौन हो? क्यों आये हो? क्या चाहते हो?"

" हम शक्तिपूजक है " वे बोलते है " शक्तिदेवी की पूजा के लिये ३२ लक्षणोंवाले एक पुरुष की खोज में हैं। उसे देवी के सामने वध करेंगे। तुम मिलगये हो हमें खुशी है।"

राजा को पकडकर वे लोग देवी के सामने लेगये। राजा घबरा गया। राजा को परमात्मा याद आता है।

राजा की गर्दन पर तलवार उठाइ जाती है कि इतने में एक आदमी चिल्लाकर कहता है-" ठहरो! ठहरो!! इसे मत मारो। यह आदमी हमारे काम का नहीं: यह ३२ लक्षणवाला नहीं है। इसके हाथ का एक अगूठा नहीं है। इसका अगभङ्ग है।"

" ले तेरा घोडा और भाग जा यहा से " कहते हुए उन शक्तिपूजकोंने राजा को छोडदिया।

राजा परमात्मा को याद करता हुआ महल में आया। राजा को याद आता है, जिस दिन अंगूठा टूटा था, दी. सा. ने कहा था कि "सुन्दर"। सचमुच मेरे लिये 'सुन्दर' हुवा, अगर आज अंगूठा टूटा हुवा न होता तो मेरी गर्दन भी टूट गई होती। राजाने हुक्म दिया—" उन पहले के दीवान सा. को बुलाओ।" नौकर गये, जहां वे रहते थे। दीवान सा. आये। राजा को प्रणाम कर बैठे।

सबकुछ कुशलसमाचार पूछने के बाद राजा सा. बोले—" दीवानजी, आपने उस दिन, जब मेरा अंगूठा टूटा था, कहा था कि 'सुन्दर'। सचमुच ही, मेरे लिये सुन्दर हुवा।" कहते हुवे राजाने सब किस्सा कह सुनाया। "लेकिन" राजा फिर बोला—" जिस दिन मैंने आपको यहां से निकल जाने को कहा और आपने जबाब दिया—'अतिसुन्दर' सो आपके लिए 'अति सुंदर' क्या हुआ?"

दीवान उत्तर देता है: " आपही विचार करलीजिये। अगर उस वक्त आपकी नोकरी में मैं रहता तो आप मुझे भी अपने साथ शिकार ले गये बिना नहीं रहते। उस वक्त मैं भी आपके साथ पकडा जाता और वह तलवार आपकी जगह मेरी गर्दन पर चलती; क्योंकि आपका तो अंगभंग था, मैं मारा जाता। इस लिए मेरा 'अतिसुन्दर' कहना उचित ही था।

प्यारे मित्रो!

इसतरह आप भी मिष्ट-भाषी बनें। आपका भी भला होगा।

भाइयो और बहनो !

मैंने कल ३२ वां गुण कहा था। उसमें आखिर में वक्ता कैसा होना चाहिये ? इसकी व्याख्या की थी।

अब आगे दाता के विषय में कहता हू।

सच्चा दाता कौन है ?

दाता कौन है . " दाता भीताभयप्रदः। "

भयभीत, दुःखी जीवों की जो रक्षा करता है, उन्हें आश्रय देता है। उन्हें दुख से बचाने की कोशीश करता है, अभयदान देता है, उसका नाम है सच्चा दाता।

पैसा यह हाथ का मैल है। वह काला ही करता है। चला जाय तो मुह काला करता है और ज्यादा पास में है तो हाथ काला करता है। लेकिन सच्ची बात यह है कि–उसे भयभीत, दु खी, गरीब, और नाना प्रकार की विपत्ति में आये हुवे प्राणी को बचाने के लिये उपयोग में लाना चाहिए, यह सच्चा दातृत्व है, जो बहुत कम जगह मिलता है। ऐसी चञ्चल मैल सरीखी सम्पत्तिपर से भी लालची-मोही मनुष्य की मूर्च्छा नहीं उतरती. इसका कारण क्या है ? दातृत्व का–उदारता का गुण नहीं है। पैसा बटोरते जाते हैं–लाखों करोडों हो जाते हैं यह सब होते हुए भी कोइ इकाध विरला ही भाग्यशाली होता है, जो उसपर से मूर्च्छा को कम करके उसे शुभ कार्यों में खर्च करता है।

दान में भी ठगाई

मेरे सुनने में आता है कि कितने ही गृहस्थों के घरो में धर्मादा का पैसा इकट्ठा होता है। उस धर्मादा के पैसे से अपनी स्वार्थ पूर्ति कर रहे हैं। ऐशआराम उडा रहे हैं। वह धर्मादा भी अपने घर का नहीं होता, बाहर का होता है। दूसरे के मालपर से धर्मादा निकालकर अपने घर में रखते हैं। हजार, ५ हजार, १० हजार होजाते हैं। फिर भी उनको खर्चने का जिक्रतक नहीं होता। जबतक वह बढता नहीं, बस तभी तक

कुछ होता है। पहले तो कुछ न कुछ मन में रहता भी है : 'अपनी शक्ति के अनुसार रकम खर्च करुं'। लेकिन जिस समय धर्मादे की रकम इकठी होजाती है, ५-२५ हजार जुट जाते हैं फिर उसमें से खर्च की भी नियत नहीं होती। आप लोग मुझे साफ करना; मैं कुछ बात कहुं तो। मेरा अनुमान है कि आप लोग इन बातों से दूर होंगे। मैं नहीं कह सकता। उस धर्मादे के पैसे से पालीताने की यात्रा करेंगे। वहां जाकर स्वामीवत्सल करेंगे, इन्हीं धर्मादे के पैसे में से। दान, पुण्य, धर्मादा वगैरह जो कुछ करेंगे उसी रकम में से। क्या ऐसा हो सकता है ? दूसरे के पैसे, नामवरी अपनी, धर्मादा के पैसे खाया खुदने और अपने भाइओंने। मै कहता हूं—

आपने अपनी मूडी में से कौनसा पैसा खर्च किया ? दातृत्व का गुण दुनिया को दिखाना है, लेकिन अपने घर में से कौनसा पैसा खर्च किया है ? दूसरों के मालपर से-दूसरों के व्यापार पर से, दूसरों से धर्मादा लेकर घर में जमा करते हो और दुनियां में दान का ढोंग करना चाहते हो। यह कितना अन्धेर चल रहा है ! आप कहते हैं: "हम इतना दान करते हैं। फल की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?" इसका उत्तर तो आप अपनी अंतरात्मा से लीजिए कि आप दानी हैं या दान के नाम से नादानी करते हैं ? सच्चा दानी वह तो जो अपनी रोटी में से दान दे। खूब याद रखिये, सच्चा दातृत्व यही है, जिसको दूसरे शब्दों में अगर कहें तो 'जिगर कहना चाहिये। वह सोचेः मैं अपने पैसे का सदुपयोग करुं, कुछ ऐसे काम में लगाऊं कि जिस से हजारों लाखों आदमियों को लाभ हो। उनके दुःख दूर हो" आप अगर सच पूछें और मुझ से अगर नग्न-सत्य में कहलाना चाहें तो बहुत कम ऐसे होंगे-सर्वथा अभाव नहीं होता है-जिनके दान को सच्चा दान कह सकते हैं। और फिर ऐसा दान करनेवाला मनुष्य आडम्बर नहीं करेगा। जो कुछ करना होगा, करता जायगा अपनी शक्ति के अनुसार।

मेरे प्यारे भाइयो ! धर्मादे की रकम अपने काम में लेना भयंकर से भयंकर पाप है। अगर आपके पास हो तो आप अब सोच लीजिय, और नहीं तो फिर तो कोई बात ही नहीं। क्यों पाप है ? जरा आपको बताऊं। आपके हक्क की वह मिलकियत नहीं। फिर उस में थोडासा खर्च मात्र होजाय-एक पाई भी हमम की पेट में चली जाय तो वह हमारी बुद्धि को भ्रष्ट करदेती है।

आज हमारे यहां समाज में इतना दान होता है जिसकी हद नहीं। मैं कहता हूं- और सब दानों को छोड दीजिये, लेकिन एकमात्र पर्युषणा में हमारा सारा जैन समाज

जो दान करता है, खाने-पीने में, पूजा में, दया में, प्रभावना वगैरह में, उस समय हमारा सारा जैन समाज यह ठहराव पास करदे कि-" मात्र स. २००१ के पर्युषण की समस्त आवक और खर्चे की रकम युनिवर्सिटी के कायम करने में खर्चने के लिये होनी चाहिये" तो मेरा ख्याल है, दो युनिवर्सिटियाँ आसानी से कायम होजाय। इतना खर्च करते हुए भी आज हमारे यहा कोई सुन्दर कॉलेज नहीं, कोई हायस्कूल या गुरुकुल नहीं, कोई अच्छी से अच्छी सस्था नहीं। अज्ञान का पूरा अधकार फैला है। इसका कारण समझ लीजिये। आपके दिलो मे क्या है ? पैसे पर से मोह छूटता नहीं, छूटता भी है तो घरके पैसे पर से नहीं। और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार दान होता नहीं है। यही कारण है कि, हमें दान के फल की प्राप्ति जो होनी चाहिये नहीं होती।

कहने का मतलब यह है -" दाता भीताभयप्रदः " जो दुःखी भयभीत प्राणियों को बचावे वह दाता है-वह दानी है।

अभयदान, यह सच्चा दान

दातृत्व का गुण रखनेवाला वही है, जो समय के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार भयभीत, दुखी, दीन, पशु, पक्षी, मनुष्य यानी जीव मात्र की रक्षा करता है। कितना सुख है ऐसे दानी को।

एक भयभीत प्राणी को बचादे, उस आदमी को कितना सतोष और तसल्ली होती है और वह आपको कितना आशिर्वाद देगा ? एक कथा है—

एक राजा के गाव में एक चोरने चोरी की। राजाने उसको फासी की सजा दी। कल सुबह ८ बजे उसे फासी दीजानेवाली है। रात को रानी राजा से कहती है'—'महाराज! जिस चोर को कल फासी देनेवाले हैं उसकी फासी की सजा महरबानी करके एक दिन आगे बढादीजिये। इस एक दिन में मुझे उसकी भक्ति करने दीजिए।' " बहुत अच्छा। कल नहीं, परसों ही सही "। राजा बोला।

रानीने उस चोर की खूब भक्ति की। खूब नहलाया, खिलाया। नाटक, नाच, गाने वगैरह दिखलाये। तल, इत्तर, वगैरह सुदर २ वेष-भूषासे उसे सजाया गया। दिनभर खूब आनद और आराम से रक्खा। पाचो इन्द्रियों के विषयों की भोगने की सम्पूर्ण सामग्री उसे ददी गई। लेकिन उसका मान ठिकाने नहीं था। वह तो यही समझता था कि कल सवेरा होते ही ८ बजे मुझे फासी होगी।

रात को दूसरी रानी राजा से कहती है:–" महाराज आपने पटरानी की इच्छा को मान दिया है। मेरी भी इच्छा है कि एक दिन मुझे भी मौका देदीजिये कि मैं भी उस चोर की सेवा भक्ति करुं।"

राजाने कहा–" यह कौनसी बडी बात है। एक दिन देर से ही सही। तुम भी अपनी इच्छा पूरी करलो।"

पहली रानीने जितनी भक्ति की थी, दूसरी रानीने हजारो रुपया ज्यादा खर्च करके, उससे भी ज्यादा उसे शारीरिक आराम दिया। पर चोर का ध्यान किसी चीज में नहीं था, किसी ऐश–आराम में नहीं था। उसे कुछ भान नहीं था कि क्या हो रहा है?

इसीतरह से तीसरे दिन तीसरी रानीने चोर को अपने पास रक्खा। चौथे दिन चौथीने। यों ६ रानीयोंने छः दिनतक उसे अपने पास रक्खा। और खूब आनंद कराया।

सातवें दिन सातवीं रानी राजा के पास जाकर प्रार्थना करती है:–"महाराज! आजतक मैंने कोई चीज नहीं मांगी। आज मैं एक चीज आपसे मांगती हूं। मेरी इच्छा को पूरी करें।"

" कहो, क्या मांगती हो, मैं देनेको तैयार हूं।" राजा कहता है।

रानी कहती है:–" महाराज! अगर काप देने को तैयार हैं, तो मैं प्रार्थना करती हूं कि चोर का फांसी का हुक्म रद्द करदीजिये। और उसे मेरे यहां एक दिन रखें।"

राजा रानी की प्रार्थना स्वीकार करता है। चोर को रानी अपने महल में बुलाती है। सब से पहले उसे यह खबर सुनाती है कि–" तुम्हारी फांसी का हुक्म रद्द करदिया गया है।"

चोर खुश होगया। आंखें खुल गयी। सिर का बोझा हलका होगया। रानी उसे मामूली छाछ रोटी खिलाती है। सुबह होते ही कह देती है कि अब चले जाईए।

अब रानियोंमें आपस में लडाइ होती है।

पहली रानी कहती है: "मैंने इतना खर्च किया उसको आराम पहुंचाने में।" दूसरी कहती है–" मैंने इतना किया, यह किया वह किया।" तीसरी, चौथी, पांचमी, और छट्ठी भी यही कहती है। सब यही कहती है:–" मैने उसे सुख ज्यादा दिया, मैने ज्यादा दिया।"

आखिर रानियों की लडाई का झगडा जाता है राजा के पास । राजा समझ नही सकता है कि क्या करना चाहिये ? एक कहती है–"मैने इतना खर्च किया, इतना सुख दिया ।" दूसरी कहती है–"मैने इतना किया, इतना दिया ।" सभी यही कहती है । राजा झुझलाकर कहता है–" अरे भई ! ठीक है । तुमने खूब सुख दिया, मगर लेनेवाले से पूछो कि–उसको किस से ज्यादा सुख मिला । "

उसे बुलाया गया । राजा कहता है:–" देखो, तुम्हारी फॉसी का हुक्म इस रानी के कहने से निरस्त किया है, लेकिन इन सात दिनों मे कौनसी रानीने तुम्हें ज्यादा सुख दिया ? जवाब दो । "

चोर कहता है.–" मुझे कुछ नहीं मालूम । सुख क्या चीज है ? मैंने क्या खाया ? क्या किया ? कैसे रहा ? कुछ भी मालूम नही । अगर कुछ मालूम हुआ और सुख मिला, तो कल के दिन । जब इस रानी साहिबा के पास गया, तब मिला । इन्होने कहा कि.–"मेरा फॉसी का हुक्म रद्द हो गया है ।" जब मैंने यह सुना तो मेरा आत्मा सुख से फुला नहीं समाता था । मुझे ज्यादा से ज्यादा सुख दिया तो इन्होने । मैं इनका उपकार मानता हू । "

प्यारे भाइयो और बहनों ।

खूब समझिये । एक जीव जिस समय भय में आजाता है, अगर हम उसके भय को दूर कर दें, उसको निर्भय कर दें, तो इसके जैसा श्रेष्ठ दान कोई नहीं । अभयदान सब स बडा दान है ।

आपको चाहिये कि ऐसे दातृत्व के गुण को प्राप्त कर के धर्म को प्राप्त करें ।

अब २४ वाँ गुण कहा जाता है ।

चौबीसवाँ गुण " व्रतस्थज्ञानवृद्धाना पूजक ।'

जो व्रती है, व्रतों मे रहनेवाले है, व्रतों का पालन करनेवाले है और जो ज्ञानवृद्ध है उनकी सेवा करनेवाला हो–उनका आदर करनेवाला हो ।

व्रती कोन है ?

अब व्रती किसे कहना ? व्रत तो नाना प्रकार के होते हैं, परन्तु जिन व्रतों से, नियमो से हमारे जीवन का विकास हो, हम पापो से बच जायें–ऐसे किसी भी व्रत को पालनेवाले का नाम है व्रती ।

ऐसे व्रत गृहस्थ के लिये और साधुओं के लिये भिन्न २ प्रकार के होते हैं। जिनका मैं आगे जाकर विवेचन करूंगा। अभी तो यह दिखलाना चाहता हूँ कि, हरेक मनुष्य किसी न किसी प्रकार का व्रतधारी जरुर हो। और वह व्रत का पालन करने के लिये रातदिन उतनी ही कोशिश करे, जितनी अपने आत्मा का रक्षण करने की कोशिश करता है। मैं किसी अपेक्षा से यह मानने को तैयार हूँ कि–जीवन की अपेक्षा व्रतों का पालन बड़े महत्व का है। व्रतों का धारण करना, किस लिये होना चाहिये यह मैं बताता हूँ।

व्रतों को लेने का महत्त्व।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं–मानने लगे हैं कि, "हम व्रत नहीं लेते हैं, परन्तु पालन तो करते हैं। फिर व्रत लेने की क्या आवश्यकता ?"

मैं कहता हूँ:—कोई गृहस्थ साधु के वेष में नहीं रहते हुए पञ्च–महाव्रतो का पालन करने को तैयार हो, तो क्या वह पञ्च–महाव्रत पालन कर सकता है? कभी नहीं। गृहस्थाश्रम में रहनेवाला मनुष्य पेसा पैदा करे, पुत्र, स्त्री, परिवार का पोषण करे, व्यापार भी करे, रोजगार भी करे, विवाह–शादी भी करे, तमाम दुनियादारी के काम करे और साथ ही महाव्रतों का भी पालन करे, यह कभी नहीं हो सकता। किसी आदमी से यह कहा जाय कि–'तुम काजल की कोठरी में रहो, और सब दीवालें छु कर चलो, लेकिन कपडों पर दाग नहीं लगना चाहिये।' यह जितना कठिन है, उससे ज्यादा कठिन संसारी वातावरण में रह कर महाव्रतों का पालन करना है। उसको कालिख लगे बिना नहीं रह सकती, पतित हुए बिना कभी रह नहीं सकते। खूब याद रखिये। मनुष्य को व्रतों का लेना जरुरी है। जो व्रत धारण कर लेता है, उसकी मनोवृत्तियों में फर्क आ जाता है। दिल के अंदर यह भावना जागृत हो जाती है कि जिसके कारण उसको यह ध्यान रहता है कि 'व्रत लिये हैं इन्हें पालन करना चाहिये।'

चार प्रकार के मनुष्य

व्रतों का अनुलक्ष करके मनुष्य के चार भेद शास्त्रोमें कहे है:—

(१) एक मनुष्य ऐसा है, जो व्रतों को लेता है और पालन भी करता है। (२) एक मनुष्य ऐसा है जो व्रतों को लेता नहीं, परन्तु पालन करता है। (३) एक

ऐसा है जो व्रतों को लेता है परन्तु पालन नहीं करता। (४) और चौथा ऐसा भी मनुष्य है, जो लेता भी नही और पालन भी नही करता।

पहले मनुष्य का मार्ग श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है। दूसरा व्रतो को नहीं लेकर पालन करनेवाले को कभी न कभी शिथिल होने का मौका आजाता है। चित्त की चञ्चलता से मलिन वातावरण के कारण मनोवृत्तियां काबू से बाहर होजाती हैं। सोचता है " चलो, व्रत लिया तो नहीं, पाल सका वहातक पाला। आज अगर नहीं पाल सकता हू तो मुझे दोष तो कुछ लगेगा नहीं।' परन्तु मनुष्य जब किसी बात का व्रत लेलेता है तो वह डरता है। ऐसे वातावरण में भी वह पूरी तरह से पार निकल जायगा। एक आदमीने उपवास का पच्चक्खाण लिया है, स्वयम् या साधुजी के पास जाकर। परिणामस्वरूप दिनभर उसकी मनोवृत्ति उपवास की ही होजाती है। लेकिन जो पच्चक्खाण नहीं लेता है और वैसे ही उपवास करना चाहता है उसका उत्साह ८ बजे १० बजे १२ बजे तक रहता है। कहता रहेगा " मेरेको उपवास करना है-मेरेको उपवास करना है।" कहते २ जहा १-२ बजे और पेट में चूहे दौडने लगे, उसी समय वह फिसल जायगा। घर जायगा, पत्नी से कहेगा'-" मैंने पच्चक्खाण कहां लिया? लाओ जरासा खालूं।" जरासा खाने को तैय्यार होजाता है, पच्चक्खाण न लेने का यह परिणाम है।

हमारे यहा पच्चक्खाण लेना, व्रत लेना, प्रतिज्ञा लेने की जो यह परिपाटी है, बडी महत्त्वसे महत्व की चीज है। आज इसी परिपाटी के बल पर अगर २। हजार वर्षों पूर्व प्रचलित नियमों का दृढता से पालन करनेवाले कोई साधु इस भारत के ७२ लाख साधुओं में से हैं तो वे हैं मात्र जैन के साधु।

जिसने अपने आत्मा से, गुरु से कोई प्रतिज्ञा नहीं ली है और वह अगर व्रतों का पालन करना छोड दे, तो उसे पश्चात्ताप नहीं होगा। इसकी वह जरूरत ही नहीं समझेगा। परन्तु जिसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की है, चारित्र की प्रतिज्ञा की है, किसी भी व्रत की प्रतिज्ञा-नियम करलिया है, सम्भव है, कभी वह भूल भी करले, व्रत भग भी करदे, तो भी उसे बडा पश्चात्ताप होता है कि " हाय, मैंने नियमों का भग कर डाला। मैं कितना पापी हू"। पश्चात्तापपूर्वक वह अपने आत्मा का कल्याण भी करलेगा। व्रतों का फिर से यत्नपूर्वक दृढता के साथ पालन करते हुवे अपना उद्धार करलेगा।

अरणिक का उद्धार कैसे हुआ ?

अरणिक मुनि बाल्यावस्था में दीक्षा लेते हैं। माता भी दीक्षा ले लेती है। अरणिक मुनि बडे सुकुमार हैं। दोपहर का वक्त है। बडी कडी धूप पड रही हैं। सिर खुला है, तप रहा है, पैर जल रहे हैं। अरणिक मुनि ऐसे वक्त गोचरी (भिक्षा) लेने के लिये अपने स्थान से बाहर निकले। शहर में आते हैं। परन्तु चलते २ पैर जलने लगे, वहीं एक मकान की छाया देखकर उसके नीचे थोडी देर के लिये खडे होगये। झरोखे में एक स्त्री बैठी थी, उसने युवान मुनि को देखा, वह उनपर मुग्ध होजाती है। दासी को कहती है:–" नीचे एक साधु खडे हैं, आदर से उन्हें ऊपर लेआओ। "

दासी साधु के पास आती है। कहती है: " महाराज ! पधारिये, हमारी बाईजी आपको बुलाती हैं। बहराना है (भिक्षा देना है) आप गोचरी के लिये पधारिये। "

साधु ऊपर चले जाते हैं, और इसके बाद स्त्री नाना प्रकार के हावभाव से, बोल-चाल से उन्हें अपनेपर मुग्ध करती है, कहती है: "इस साधुपने में क्या रखा है ? इतना सुकुमार शरीर ! यह यौवन अवस्था ! यह तो अवस्था तुम्हारे लिये नानाप्रकार के काम, भोग, विलास भोगने की है। इस शरीर को क्यों कष्ट देते हो ? योंही जलाजला-कर राख क्यों कर रहे हो ? तुम्हें चाहिये, मेरे साथ रहकर भोगविलास में मग्न रहो-आनंद करो। "

अरणिक मुनि वहीं रह जाते है। चारित्र को भ्रष्ट करदेते हैं। अरणिक जब नहीं लोटे, तो उनकी साध्वी माता को चिंता होती है। मेरा लडका कहां चला गया ? क्यों नहीं अभीतक आया। माता पागलसी होजाती है। मेरा लडका मेरी कुक्षी से जन्मा हुआ, छोटी उम्र में भावना से उसे दीक्षा दी और मैंने भी ली। आज कहां चला गया ? क्या हो गया ? साध्वी होते हुए भी मोह का उदय होता है।

> अरणिक अरणिक करती मा फिरे। गलिए गलिए बजारो जो ॥
> केणे दीठोरे मारो अरणीलो पूछे लोक हजारो जी ॥ अरणिक मुनिवर चाल्या गोचरी ॥

"भाई ! तुमने मेरा लडका देखा ? सुन्दर काया है। साधुवेप में है। भिक्षा के लिये निकला है, परन्तु अभीतक नहीं आया। तुमने देखा है उस को ? " हजारों मनुष्यों को पूछती फिरती है। पागल सी होगयी है।

सयोग से झरोखे में स्त्री के साथ बैठा हुआ अरणिक अपनी माता को रोते देख लेता है।

सज्जनो ! महाव्रत लेना कितना महत्त्वपूर्ण कार्य है और लेने के बाद पतित होजाते हैं, तब फिर इसके लिये पश्चात्ताप कैसे करते है ? इसका उदाहरण है। अरणिक विचारता है' "जिस माता की कुक्षी से जन्म लिया और जिसने मेरे आत्मा के कल्याण के लिये दीक्षा दी, और स्वयने भी ली, उस माता को मेरे लिये आज रोने का समय आया है। धिक्कार है मेरे आत्मा को ! । मैंने चारित्र लेकर क्या किया ? मै ने पाच महाव्रत लेकर क्या किया ? यह साधु वेष लेकर क्या अनर्थ किया ? सब कुछ डुबो दिया ?। आज अपने आत्मा का पतन करदिया ? हाय धिक्कार है मुझे ! ! " अरणिक माता के पास नीचे आता है:—

> गोखेथी उतरीरे जननी पाय पडयो, मन शु लाज्यो अपारो जी ।
> हु कायर छू रे मारी मावडी, मैं कीधो अविचारो जी ॥ अरणिक—

माता के चरणो में गिर जाता है। पश्चात्ताप करता है। रोने लगता है –" मा ! मैने तेरी कुक्षी को लजाया है। माफ कर। प्रायश्चित्त करने को तयार हू।"

प्यारे मित्रो ! यह महाव्रत की प्रतिज्ञा लेकर महाव्रत नहीं पालने का परिणाम है। अगर उसने प्रतिज्ञा न ली होती, तो यह पश्चात्ताप कभी नहीं करता।

माता भी इस समय यह नहीं कहती कि " तू घर चल और शादी करले। " परतु यही कहती है कि–" मैं तुझे गुरु के पास लेजाती हू, और जो कुछ प्रायश्चित्त या दड दें लेकर तू अपने आत्मा का कल्याण करले। "

एक पुत्र अपने आत्मा का कल्याण कैसे करे, यह रास्ता दिखाना यही माता–पिता का मुख्य कर्त्तव्य है। माता अरणिक को गुरु के पास लेजाती है। गुरु उपदेश देते हैं। फिर से आत्मा का उद्धार करने का मार्ग बताते हैं, परन्तु अरणिक साफ शब्दों में जवाब देता है–" मेरे से अब चारित्रपालन नहीं हो सकता। चारित्र के कष्ट लगातार वर्षोतक सहन करु, यह मेरे शरीर के वश की बात नहीं। फिर भी मुझे मेरे आत्मा का कल्याण करना अति आवश्यक है। मैं अपना कल्याण करना चाहता हू, परन्तु आप ऐसा मार्ग बताइये जिससे मैं जल्दी कल्याण करु। "

"अगर तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तुम्हारा मन साफ है, दृढ विचारशक्ति है,

और इच्छा है मोक्ष प्राप्त करने की, तो जाओ, वह अङ्गार सरीखी धधकती शिला है इस पर संथारा करलो।" गुरु अपने परम शिष्य को सुगम, सीधा और जल्दी का मार्ग आत्मकल्याण के लिये बताते हैं।

अग्नि धखन्ती रे शिला ऊपरे, अरणिके अनशन कीधुंजी।
रूपविजय कहे धन्य ते मुनिवरा, जेणे मनवंछित लीधुं जी॥ अरणिक—

धधकती शिला पर अरणिक मुनि अपने शरीर का उत्सर्ग करदेता है। परमात्मा के ध्यान में तल्लीन होजाता है। उस अवस्था में शरीर के साथ उनका कोई संबंध नहीं। सच्चे योगकी साधना में गरमी या ठंडी, सुख या दुःख, किसी का भान नहीं रहता। वह चित्तकी उत्कृष्ट एकाग्रतामें तल्लीन हो जाता है। जड-शरीर से उसका कोई संबन्ध नहीं रहता। अरणिक का आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है। इसका मतलब क्या है? यही है कि मनुष्य जिस समय व्रतधारी होता है वह अगर अपने व्रतों में दूषण लगा लेता है तो भी, उसे पश्चात्ताप होता है। उसे फिर से ऊपर चढने का मौका अवश्य रहता है। लेकिन जिसने व्रत लिया नहीं, प्रतिज्ञा की नहीं फिर भी उसका पालन करते हुए अगर कहीं दूषण लगा देता है, तो उसके लिये पश्चात्ताप का मौका नहीं होता। और वह हमेशा के लिए गिर आता है।

कई लोग मेरे पास ऐसे आते हैं, जिन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक व्रत लिये और भंग या दूषण होनेपर प्रायश्चित्त लेते हैं, परन्तु ऐसा एक भी आजतक नहीं आया जिसने बिना प्रतिज्ञा लिये व्रत पालन किया हो, और प्रायश्चित्त किया हो। इसलिए व्रतधारी होना बहुत जरुरी है।

भाइयो और बहनो,

कल मैंने व्याख्यान के अन्त में यह कहा था कि-जो लोग व्रत-नियम आदि लते हैं, उनकी गलती होनेपर वे पश्चात्ताप करते हैं, प्रायश्चित्त लेते हैं, परन्तु ऐसा एक भी आदमी अभीतक नहीं देखा, जिसने बिना प्रतिज्ञा लिए व्रतो का पालन किया हो और अपनी गलतियों का प्रायश्चित्त या पश्चात्ताप किया हो। जो प्रतिज्ञा लेते हैं, उन्हीं को दूषण लगता है, और बिना प्रतिज्ञावालों को न लगता हो ऐसा कभी नहीं हो सकता। बल्कि उसके दिल में तो आता है कि मैंने कोई प्रतिज्ञा तो ली नहीं, फिर मेरी इच्छा थी वहा तक पालन किया। अब इच्छा नहीं, नही पालन किया। पश्चात्ताप किस बात का ? दंड किस बात का ?

सज्जनो ! दोनो में यही फर्क है। दूसरे की आत्म-शुद्धि कभी कभी नहीं हो सकती, अगर कहीं गिर गया, जो कि बहुत सभव है, ता फिर उसका उद्धार कभी नहीं हो सकता। इसलिये व्रत, नियमों का लेना और ली हुई प्रतिज्ञा का पालन करना बहुत जरूरी है।

यह प्रतिज्ञा तो सासारिक कार्यों में भी जरूरी समझी जाती है। फिर, आत्मा के कल्याण करनेवाले कार्यों में-व्रतों में तो कितनी जरूरी होगी, इसका आप स्वयम् अनुमान कर सकते है !

जिस समय शादी होती है, तो पति-पत्नी चँवरी के नीचे बैठकर अग्निदेव की साक्षी से प्रतिज्ञा करते हैं कि, "हम दोनो एक दूसरे को जीवनभर निभाएंगे।" पत्नी प्रतिज्ञा करती है:-" मैं अपने पति को देव समझकर उनकी हमेशां आज्ञाकारिणी बनी रहुगी-अर्द्धाङ्गिणी होकर रहूगी।"

आज के जमाने की हवा के कारण से उनमें फिर विखवाद (मतभेद) होजाय तो बात दूसरी। प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा है। ऐसी प्रतिज्ञा को पालन करनेवाले मनुष्यों का हमें पूजक होना चाहिये।

प्रतिज्ञा में दृढता

व्रत अनेक प्रकार के होते हैं। गृहस्थी में अनेक कार्य, अनेक व्यापार ऐसे हैं, व्यसन ऐसे हैं, जो त्यागने लायक हैं और भी ऐसी चीजे हैं, जो त्यागने लायक हैं। जो प्रतिज्ञा कोई ले उसका पालन बराबर सचाई, ईमानदारी से अवश्य करे। यह नहीं कि किसी ऐसी खाने की चीज का हमने त्याग किया है, पर कभी उसे खाने का मौका आगया, समझ लिया अभी तो खालें, फिर कल साधुजी से प्रायश्चित्त करलेंगे-आलोचना करलेंगे। रात्रिभोजन का त्याग करनेवाला प्रतिज्ञा करलेता है कि सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना। परन्तु एक दिन सेठजी व्यापार में ऐसे लगे कि घर देर से पहुंचे। भूख अब बडे जोर से लगी है। परन्तु सूर्यास्त होगया है। खा नहीं सकते। इतना होते हुए भी उसका कोई न कोई बहाना निकाल कर कि "अभी तो हाथ की रेखाएं दिखती हैं।' इस तरह की बारीकियां निकालकर भोजन करलेंगे। इतना होते हुए भी अगर कोई कहे तो कहेंगे "प्रायश्चित्त लेलेंगे।"

जिस समय इस तरह प्रतिज्ञा का भंग किया जाता है उस समय आत्मा की सच्ची भावना दूर होजाती है, अगर गलती से भूल होगयी तो प्रायश्चित्त हो सकता है। इरादे पूर्वक किये हुए व्रत या प्रतिज्ञा के भंग का प्रायश्चित्त नहीं होता। यह भयंकर पाप का कारण होजाता है। इसका प्रायश्चित क्या है?

सच्ची बात तो यह है कि कष्टों में भी प्रतिज्ञा पालन करना। शरीर को नुकसान पहुंचाते हुए भी प्रतिज्ञा का पालन करे तभी धर्म धर्म होता है। इसलिये व्रतस्थ होना, प्रतिज्ञाओं का पालन करना, प्रतिज्ञाएं लेकर यथापूर्वक पालन करनेवालों की प्रशंसा करना, पूजक होना, गृहस्थों का धर्म है—कर्तव्य है। इसीलिए कहा: व्रतस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः।

संसार में एकसे एक बढचढकर गुणवान पुरुष होते हैं। इन गुणवानोंने व्रतों को धारण किया है, नियमों को लिया है, और अपने आचार-विचार शुद्ध रखते हुए अपनी प्रतिज्ञाओं का पूर्णरूप से पालन करनेवाले होते हैं। ऐसे मनुष्य सचमुच सबके लिये पूजनीय होते हैं।

व्रत लेना एक चीज है, और लेकर फिर उसका पालन करना दूसरी चीज है, व्रतों को लेनेवाले तो बहुत से मनुष्य हैं, लेकिन उन्हें लेकर यावज्जीवन पालन करना यही एक खूबी है।

विघ्नों का सामना

व्रतोंके पालन करनेवाले को कौन २ से कष्टो में से निकलना पडता है, इसको आप सोचिये। उसके मार्ग में नाना प्रकार के विघ्न आवेंगे, जिस चीज की प्रतिज्ञा ली है, उसे भागने के ऐसे समय सयोग से आजाते हैं कि, जिसके कारण उसका चित्त चलायमान होजाता है। लेकिन खूबी उसीकी है, जो ऐसे वक्त को भी काबू में रखता है। चाहे कुछ भी होजाय, परन्तु अपने व्रतो का भङ्ग नहीं करुंगा। उसीको फल की प्राप्ति भी होती है।

आज आप लोग अनेक प्रकार के व्रत लेते हैं, नानाप्रकार की प्रतिज्ञाए करते हैं, परन्तु ऐसा कठिन समय आनेपर फिसल जाते हैं। आपका मन चलायमान होजाता है। परन्तु ऐसे वक्त ही सबकुछ सहन करके व्रतों का पालन करें-यही कसौटी है। सब कुछ उसके लिये कुर्बान करदे। पर ली हुई प्रतिज्ञा का भग कदापि न करे। तभी व्रत लेना सार्थक है और पूजनीय भी तभी बन सकते हैं। आज व्रत लेते जायें, कल उसे छोडते जायें, तो इसका कोई मतलब ही नहीं। यह तो एक पाप है। लेना कौन बडी चीज है ? । व्रतों को लेकर पालन करना, यही बडी चीज है। साधु महाव्रतों को लेता है। ऐसे मामूली आदमी को कहदिया जाय वह भी लेलेगा, परन्तु पालन करना, उसके लिये अपनी मनोवृतिया सुदृढ बनाना, मौका आनेपर सर्वस्व की बाजी लगाकर उनका पालन करना यही श्रेष्ठत्व का लक्षण है। आपके लिये कल्याणकारी है, आप तभी पूजनीय बनसकते है।

शास्त्रकारोंने कितनी खूबी से शब्दो का प्रयोग किया है कि व्रतो को लेनेवाला, धारण करनेवाला, पूजनीय नहीं परन्तु 'व्रतों में स्थिर रहनेवाला' ही पूजनीय है। बडी महत्त्व की बात कहदी है।

लेनेवाले बहुत हैं। दुनिया को समझाने के लिये, अपनी इज्जत बढाने के लिये व्रतों की कठोरता को न समझते हुवे उस ले लेते हैं। लेकिन लेने के बाद जब परीक्षा का कठिन समय आता है तब उसको तोडने के लिये व कमजोर मनोवृत्तिवाले मनुष्य डरकर व्रता को छोडदेते हैं। किन्तु सच्चे आत्मार्थी दृढ मनोबलवाले राजा की ऋद्धि-समृद्धि बडी से बडी ऋद्धि-समृद्धि, धन-वैभव, पुत्र-परिवार, सुख-ऐश्वर्य छोड

कर व्रतों को अंगीकार करते थे। वे दृढता से उनका पालन करते थे। चाहे कुछ होजाय, उन व्रतों का भंग करना नहीं समझते थे।

भर्तृहरि का त्याग और सुख

भर्तृहरि राज-पाट, पुत्र-परिवार सब छोडकर जंगल में निकल जाते हैं। जो मनुष्य एक एक इतने ऐश्वर्य में रहा हुवा-उन्हें छोडकर निकलता है, उसको दुःख आना हम लोगों की दृष्टि से स्वाभाविक है। ...न वे दुःख को दुःख नहीं मानते। कभी २ मनुष्य भर्तृहरि से पूछा करते थेः "महाराज! आप नानाप्रकार के सुख ऐश्वर्य, राज-सम्पदा को भोगनेवाले थे। आपको इस समय इस जंगल में बड़ा दुःख उठाना पडता होगा। भर्तृहरि जवाब देते हैंः—

"एक महान् से महान् ऐश्वर्यशाली राजा या एक चक्रवर्ती सम्राट् जिस सुख का नहीं अनुभव कर सकता, उससे अधिक सुख मैं भोगता हूं।" लोग पूछते हैः-"ऐसा आपका सुख क्या है?" भर्तृहरि सुनाते हैंः—

> मही रम्या शय्या, विपुलमुपधानं भुजलता,
> वितानं चाकाशं, व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
> स्फुरद्दीपश्चन्द्रो, विरतिवनितासङ्गमुदितः
> सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥

साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी एक महान् वैभवशाली राजा, जिन सुखों को भोगता है, उनसे ज्यादा सुख भोगनेवाले होते हैं। ये सुख कोनसे हैं, सुनोः

भर्तृहरि कहते हैं-"राजा लोग पलंग पर सोते हैं, दस मन रुई डालकर रेशम की शय्या में सोते हैं, उस समय राजा कितना सुखी होता होगा? परन्तु वह क्या सुख भोगता है! उनकी इस शय्या में कभी २ खटमल पडजाते हैं। चद्दर मैली होजाती है। कभी दुर्गन्धि आने लगती है। इसी तरह कभी कुछ होजाता है, कभी कुछ। परन्तु मेरी शय्या में यह कुछ भी नहीं होता। मेरी शय्या को न बिछाने की जरुरत है, न ओढने की जरूरत है। न कभी मैली होती है, न खटमल पडने का डर भी रहता है। यह पृथ्वी मेरी शय्या है। कहींपर भी जाकर सो जाऊं। मेरे को कहीं किसी प्रकार की जरूरत नहीं। इतनी सुखशय्या मेरी होती है।

"परन्तु राजा पलंग में सोने के बाद एक तकिया रखता है, आपके पास वह कहां है?"

" ये मेरी भुजाएं ही मेरा तकीया है। मुझे कुछ हिलने डुलने की जरूरत नहीं। जब जैसी इच्छा हुई वैसे ही हाथ नीचे रख लिया, तो रखलिया और निकाल लिया तो निकाल लिया।"

" महल में जब आप सोते थे तो पलगपर चादनी तनी हुई होती थी। यहा कहा है आप के ऊपर वह ?"

"यह आकाश ही मेरी चादनी है। रात को जिस समय सोजाता हू, तारों की तरफ ध्यान चला जाता हैं तो ऐसा लगता है-मेरी इस स्वच्छ अनत विस्तारवाली चादनी में ये कुदरती मोती लटके हुवे कितने भले लगते हैं। मुझे बहुत बडा सुख का अनुभव होता है। इस चादनी के सुखके आगे उस चांदनी का सुख कोई चीज नहीं।"

" परन्तु महल में जब आप सोते थे तो नोकर लोग पखे चलाते थे। बडी मीठी २ ठण्डी २ हवा चलती थी। वह यहा कहा ?"

" यह प्राकृतिक वायु, यह ससार का कुदरती चलनेवाला मन्द २ स्वच्छ वायु मेरी तन्दुरस्ती को शुद्ध रखता है। बन्द होने का कोई डर नहीं। महल में तो नोकर जब हवा करते २ थक जाता था या ऊघने लगता था-तो डोरी वहीं की वहीं उनके हाथ में ही रह जाती थी। मैं जाग जाता था। उन्हें उलाहना देने का मौका आजाता था। परन्तु यहा इस बात का कोई मोका ही नहीं आनेका। और फिर आजकल के बिजली के पखे में तो दुर्घटना होजाने का भी डर है। छूनेपर धक्का लगने का डर है। टूटने गिरने का डर है, परन्तु यहा तो यह कुछ भी नहीं।"

" आपके महल मे बडी २ बत्तिया होती थी-प्रकाश से जगमगाता रहता था सारा महल। वह यहा कहा ?"

" मुझे जिस समय चाद का प्रकाश चाहिये चाद का प्रकाश मिल जाता है। तारों का चाहिये तो उनका मिल जाता है। जैसा चाहिये वैसा मिल जाता है। कोई टूटने-फूटने तथा बन्द होने का डर नहीं।"

' पर एक बात का कमी और रह जाता है। जिस समय महलों में आप पलग पर सोते थे, उस समय आपकी धर्म-पत्नी साथ में सोती थी। यहा पर कौन स्त्री है ? यहा पर आपको कौनसा सुख है ? जरा बताइये तो।'

"मेरी वह स्त्री कभी तो नाराज़ होजाती थी। कभी उलाहना देती थी, कभी कुछ मांगती थी, कभी कुछ लाने का आदेश देती थी। रोजाना हमारा रुठना-मनाना चलता ही रहता था, परन्तु यहां तो यह कुछ भी नहीं। विरतिरूपी वनिता, हर समय मेरे साथ रहती है, और मेरे ही साथ उठती बैठती है, और सोती है। कोई तकलीफ नहीं देती। न चूडी मांगे, न कण्ठी मांगे, न सोना मांगे, न चांदी, न साडी मांगे न और कुछ। न लेना न देना। कितना सुख ? त्यागियों को, व्रतधारियों को जितना सुख है उतना किसी बडे से बडे राजा को भी नहीं हो सकता।

बेशक, संयम को लेकर, व्रतों को लेकर उनका भंग करनेवाला मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। आज कई लोग ऐसे देखे जाते हैं, जिन्होंने लेते वक्त तो बडे उत्साह से संयम लिया, परन्तु फिर छोडदिया। ऐसे लोगों में से कोई भी सुखी नहीं है। नियम, बाधा, ब्रत लेने के बाद ढोंग करके छटकना भी नहीं चाहिए।

बाधा मेरी मा

एक समय एक ब्राह्मण का लडका बीमार पडा। उसकी बीमारी के कारण ब्राह्मणने एक बाधा ली कि 'अगर मेरा लडका अच्छा होजाय तो अम्बाजी माता को जाऊं और (१५) रु. का नैवेद्य चढाऊं। और जबतक अंबाजी न जाउं, तबतक चूरमे का लड्डु न खाऊं।'

वेदनीय कर्म का उदय कम हुआ, और संयोग से लडका अच्छा होगया। ब्राह्मण सोचता है अंबाजी जानको परन्तु संयोगवश ब्राह्मण के पास अंबाजी जाने की व्यवस्था न हो पायी।

इसके बीच १५-२० रोज के बाद गांव में एक बडा शेठ मर गया। उसके लड़के की तरफ से ८४ का जीमन हुवा। चौराशी जात के ब्राह्मणों को जीमाने का नोता निकला। उस ब्राह्मण को भी न्योता आया। पडोसीने जीमने का समय आया तो उससे भी कहा कि चलो करुणाशंकरभाई जीमने को ?

"क्या क्या बनाया है ?" ब्राह्मणदेवताने पडोसी से पूछा।

"लड्डु-गोलमटोल, चकाचक और फकाफक। दाल, साग और पूडी भी।" पडोसीने जवाब दिया।

"मेरे को तो लड्डू की बाधा है। मैं कैसे जासकता हूं। तुम्हीं जाओ।"

" अरे ! लड्डू नहीं खाना, दाल-चावल ही खाना। कमसे कम वहां आकर बैठो तो सही। चलो, देर मत करो। "

" अच्छी बात है। अगर तुम इतना कहते हो तो चलो। "

ब्राह्मण गया। सबकी पतरावली में २-२ लड्डू डाले गये। उसकी पत्तल में भी दो लड्डू डाले गये। वह देखता है, लड्डू बडे अच्छे बने हैं। सुगध बडी तेज आरही है। घी भी खूब तरातर है। विचार करता है. "क्या करु ? खाने लायक लड्डू बने है। कितना घी, कितना ममाला। परन्तु इधर तो बाधा है मेरे को, लेकिन इन लड्डूओं को छोडना भी तो ठीक नहीं"। पडोसी से पूछता है: "भाई ! अब क्या करना चाहिये ? लड्डू अच्छे बने है। खाने की पूरी २ इच्छा है, परन्तु इधर बाधा है।"

" अरे, भला आदमी बाधा तो अपनी मा होती है। मा से प्रार्थना कर कि:- " बाधा मेरी मा, लाड्ड परसे उतरकर दालपर जा। " पडोसी रास्ता बताता है ब्राह्मण को।

ब्राह्मण यही कहता है:-" बाधा मेरी मा, लड्डू पर से उतरकर दाल पर जा। " जबतक लड्डू खालू, तबतक दाल की बाधा। ५-७-८-१० लड्डू मुह में रखे, फिर मन में विचार करता है कि-" अगर थोडी सी गरमागरम दाल खालू, तो २-४ लड्डू और खा सकता हू"। ऐसा विचारकर बोलता है:—

" बाधा मेरी मा, दाल पर से उतरकर भातपर जा। " ऐसा कहकर खूब पेटभर दाल और फिर ऊपर से २-४ लड्डू ब्राह्मण महाराज पेट में उतार गये। चावल भी बनाये गये थे। चावल बहुत ही बढिया लम्बे २ और पतले २ थे। लड्डू कितने भी खाओ, चावल अगर न खाय, तो सतोष नहीं होता। उस ब्राह्मणने विचार किया कि-चावल जरुर खाना, वह फिर बोलता है:—

" बाधा मेरी मा, चावल से उतरकर दौने पर जा " बस दौना जो फेंकने का होता है, उसपर बाधा को भेजकर सबकुछ खा लिया। और बाधा कायम रक्खी।

आज यही हालत लगभग सब जगह देखी जाती है। बाधाए बहुत से लेते हैं, परन्तु जब मौका आता है उसे कुछ कठोरता से पालन करने का; तो साधुओं के पास जाते

है और कहते हैं:-" महाराज ! इसके बदले फलानी चीज की बाधा थोडे दिन के लिये रखलूं तो कोई हरकत तो नहीं है ?" बनिये कैसे पक्के। काम निकालना है और साधु को बीचमें डालना है। कोई पूछे तो जबाब देने का सहारा मिल जाय: 'क्या करुं, मेरी इच्छा नहीं थी, विद्याविजयजी महाराजने छूट दी थी' कैसे ढोंगी।

ये बातें लोगों की कमजोरी बुजदिली की सूचक हैं। धर्म के ढोंग के सिवाय, और पाप के सिवाय और कोई बात भी है ? शिथिलता जब आजाय उस समय मनुष्य को अपने आत्मा को समझाना चाहिये कि-" हे आत्मन् ! तू कौन है ? तेरा क्या स्वरूप है ? तेरा क्या कर्त्तव्य है ? और तूने क्या कर रक्खा है ?

रहनेमी और राजुल

भगवान् नेमिनाथने राजीमतिको छोडदिया और भगवान् गिरनार पधार गये। राजीमति भी वहीं पहुंचना चाहती है। जाते २ रास्ते में उनके वस्त्र बरसात के कारण भींग गये हैं। एक गुफा में अपने वस्त्र सुखा रही है। राजीमति नग्न अवस्था में वहां खडी है। उनके देवर रहनेमिजी व्रतधारी थे। साधु, त्यागी, महात्मा थे। वहीं गुफा में खडे ध्यान कर रहे थें। उनकी निगाह राजीमति पर पडी। राजिमति का रूप-लावण्य इतना सुन्दर था कि, रहनेमि चलायमान होगये। राजीमति भी व्रतधारिणी सती थी। देख रही है कि, मेरे देवर रहनेमि मेरे पर चलायमान हो रहे है। व्रतों का भंग करने की तैयारी कर रहे हैं। इन्हें समझाने का समय आगया है। कहती है—

" वरसादे भीनां चीवर, मोकळां करवा,
राजुल आव्यां तेणे ठाम रे
देवरिया मुनिवर. ध्यानमां रे'जो।
ध्यानथी होवे भवनो पाररे,
देवरिया मुनिवर ध्यानमां रे'जो। "

राजुल (राजीमति) अपने देवर मुनिराज को समझाती है-" मुनिवर ! जरा सावधान रहना। जिस व्रत को धारण किया है उसपर दृढ रहना। अगर चलायमान होगये तो व्रत नहीं रहेगा। फिर कहती है—

" हुं रे व्रतीरे तुमे महाव्रतधारी,
जास्यो सर्वे व्रतहारी रे
देवरिया मुनिवर, ध्यानमां रे'जो "

मैं भी व्रती हूं, और आप भी महाव्रतधारी हैं। जरासा चित्त चलायमान हुवा कि व्रत गये। एक ही भगवान् नेमिनाथ के पास अपने दोनोंने व्रत लिये हैं अगर चलायमान हो गये, तो पतित होजायेंगे।

राजुल समझा रही है रहनेमि को। उन्हें याद दिलाती है कि वह अपने भाई नेमनाथजी को याद करें।

यादवकुलमा जिनजी नेमनगीना,
वमन करी छे मुझने तेणे रे
देवरिया मुनिवर ध्यानमे रे'जो।

एक तरफ मुजको तुम्हारे भाईने त्याग कर, वे स्वय तीर्थङ्कर हो गये हैं और जगत् का उपकार कर रहे हैं, और दूसरी तरफ आप—

बन्धव तेहना तुमे शिवादेवी जाया,
एवडो पटन्तर कारण केणरे, देवरिया मुनिवर ध्यानमें रे'जो।

एक ही माता की कुक्षि से उत्पन्न होनेवाले दोनों भाई। उनमें और आप में कितना अतर है? एक भाई तो मुझे त्याग करते हैं, और सयम को पालन करके मोक्ष की तैयारी कर रहे हैं। और दूसरे भाई आप! उन्हीं की त्यागी हुई चीज को ग्रहण करने को तैयार हो रहे हैं।

रहनेमि सावधान होजाते हैं। चारित्र में स्थिर होजाते हैं। भगवान् के पास जाकर प्रायश्चित्त लेते हैं और अपने आत्मा का कल्याण करते हैं।

सज्जनो! खूब याद रखिये। आप भी व्रत आप लें, चाहे छोटे या बडे, लेकिन उनके लेने का उद्देश्य क्या है? क्यों? किसलिये लेते हैं? इसका पूरा विचार रखकर आप अपने नियमो का पालन करें। कभी डिगें नहीं, उन्हें भग न करें। यही आप का धर्म है।

भाइयो और बहनो !

अब आगे आता है ज्ञानवृद्धानां पूजकः

ज्ञानवृद्ध जो पुरुष होते हैं, उनकी पूजा करनी चाहिये। ज्ञान और ज्ञानी की बलिहारी है। शास्त्रकारोंने ज्ञान की महिमा इतनी दिखलायी है कि एक ज्ञानी अगर कुछ गलती भी करजायगा तो भी उसका उद्धार होने का मौका है, क्योंकि ज्ञानी समझदार है। किसी समय ज्ञान की ज्योति प्रकट होनेपर अपनी गलती उसे मालूम होजायगी, वह विचार करेगा कि " धिक्कार है मेरे आत्मा को। मैंने ऐसा पाप किया।"

चण्डरुद्राचार्य का उदाहरण मैंने आपको दिया था। इतने क्रोधी होते हुवे भी ज्ञानी महापुरुष थे, जिससे धिक्कार की भावना करते करते २ उन्होंने भी केवल-ज्ञान प्राप्त करलिया था।

अब मैं यह दिखलाना चाहता हूं कि ज्ञानवृद्ध कौन हैं? वृद्ध कई तरह के होते हैं: कोई उम्र से वृद्ध होते हैं। पर सिर्फ उम्र से वृद्ध होने से कोई मतलब नहीं। अनुभवी भी होना चाहिये। अनुभवी ही सच्चा ज्ञानी है। एक क्रिया-वृद्ध भी होते हैं। क्रियाएं खूब करते हैं लेकिन समझते नहीं। एक ज्ञान-वृद्ध होते हैं। ज्ञान में तेज हैं। क्षयोपशम इतना जबर्दस्त है कि आत्मा को सावधान रखे रहते हैं। पापों से बचने की कोशिश करते हैं। अशुभ कर्मों के उदय से पाप में गिरते भी हों, परन्तु समझ जायेंगे। फिरसे स्थिर होजायेंगे। हजारों लाखों ऐसे उदाहरण शास्त्रों में मौजूद है कि उच्च ज्ञानी होते हुवे भी गिरे, लेकिन गिरते हुवे भी आत्मा का ऐसा उद्धार करलिया कि मामुली आदमी कभी नहीं कर सकता।

यह किसका प्रताप है? ज्ञानका। ऐसे ज्ञानवृद्ध पुरुषों की आप पूजा करें। पूजा का मतलब यह नहीं कि, चांवल चढावें, धूप नेवैद्य चढावें। नहीं, उनके गुणों का आदर करें। ज्ञान का प्रचार करें। आज आप और बातों में खूब होशयार हैं। चालाक हैं, परन्तु ज्ञान के लिये तो आप लोगों में अत्यंत कमी है। आप बहुत पीछडे हुवे हैं। और यह याद रखिये कि जो जाति ज्ञान में पिछडी हुई है, जिनका साहित्य शून्य है, वह जाति नष्ट होजाती है। दुनिया में उसे जाने का कोई हक नहीं होता।

वार्षिक अधिवेशन आया। १० दिन का कार्यक्रम था। मुझे भी उसमें शामिल होने का निमंत्रण मिला था। मैं गया। उन्होंने मुझे अपनी एक धर्मशाला में ठहराया। धर्मशाला उत्सव के अवसरपर आये हुए आर्यसमाजियों से भरी हुई थी। अन्य व्याख्याताओं के साथ २ मेरे भी व्याख्यान हुए। यद्यपि व्याख्यान देकर मैं थका थकाया लौटता था, फिर भी तमाम लोग मेरे चारों तरफ घेरकर बैठ जाते थे और मुझसे ज्ञान-चर्चा किया करते थे। आनंद के साथ बगैर किसी नाराजगी अथवा राग-द्वेषकी कटुता के हमारे विचारो का आदानप्रदान होता रहता था। एक दिन शाम की बात है। मेरे पास कुछ-आर्यसमाजी भाइ बैठें थे। उनमें एक १०-११ वर्ष का छोटासा लडका भी था। वह लडका कहता है:-" महाराज! आपको हम लोगाने क्यों बुलाया है? मालूम हैं आपको?"

मैंने कहा-" हां, मालूम है। मेरे व्याख्यान करवाने के लिये बुलवाया है। ताकि आपभी जान सकें कि जैन धर्म के सिद्धांत-तत्त्व क्या है? और उनकी अपने सिद्धांत से तुलना कर सकें।"

वह १०-११ वर्ष का लडका इतने में बोलता है-" हम आर्यसमाजी सारे हिन्दुस्थान के जैनियों को आर्यसमाजी बनायेंगे।"

मैं यह सुनकर आश्चर्य में पडगया। सोचने लगा, यह जीवित जाति का निशान है। एक छोटेसे बालक में अपनी जाति व धर्म के ये ख्याल, यह उंची भावना। मैं पूछता हूं आपसे:-है आज आप में ऐसा अभिमान अपने धर्म के प्रति? आप जैन हैं। भगवान् महावीर के उत्कृष्ट सिद्धांत को माननेवाले हैं। सारे जगत के जीवों के कल्याण भावना से प्रेरित होकर आप बोलते हैं:-" सवी जीव करु शासनरसी, ऐसी भावदया मन उल्लसी॥"

एक आदर्श विद्यालय

कभी संसार के जीवों को शासनरसिक बनाने की कोशिश की है आपने? मुंह से तो बहुत कहते हो। आज मैं आपको उपदेश देता हूं कि-आपके मालवे के अंदर ही नहीं, यू.पी. और बंगाल से लेकर उधर पंजाब, राजपूताना और गुजरात के नाके तक एक ही आदर्श संस्था है जो 'शिवपुरी पाठशाला' है। आप लोगों का पैसा

नानाप्रकार के रास्तों से ऐश में आराम में, बडी २ सेठाइयों भोगने में खर्च होता जाता है, लेकिन अगर मैं कहूं कि इस संस्था के लिये कुछ दो, तो मुंह छिपाने के लिये तैयार होजायेंगे। मेरे पास आना भी बन्द करदेंगे। कहेंगे: "महाराज के पास जाना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उपदेश पैसे का करते हैं।" कहां है धर्म का प्रेम? अगर धर्म का प्रेम होता तो प्रतिज्ञा करते कि—"जबतक शिवपुरी की पाठशाला मजबूत न बन-जाय, वहांतक हम घी, दूध नहीं खायेंगे।" ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले चार आदमी मिल-जायें और झोली लेकर पैसा इकट्ठा करने को निकल जायें तो शिवपुरी की संस्था मजबूत होसकती है। लेकिन आपके सामने तो है टकटकायमान। जो कुछ है पैसा है, वह छूटता नहीं। अगर आपके दिल में सच्चा धर्म है, और धर्म के लिये कुछ भी करना चाहिये, ऐसी बात आप समझ रहे हैं तो इस संस्था को मजबूत करदें। पैसे के ऊपर से मूर्च्छा उतारकर कुछ भी करदें। यही सच्ची ज्ञानपूजा है। जो ज्ञान का प्रचार करे, ज्ञानी उत्पन्न करे, ऐसी संस्थाको मजबूत करना यही ज्ञान और ज्ञानी की पूजा है।

अब आगे कौनसा गुण आता है सो कहते हैः—

पचीसवां गुण हैः-'पोष्यपोषकः"

एक गृहस्थ के सिरपर नानाप्रकार की जिम्मेवारियां रहा करती हैं। उनको निभानेवाला मनुष्य हो।

पोष्य कौन है ?

पोष्य ये हैः-बहन, बेटी, नोकर-चाकर, ढोर-ढंकर, आदि, जो गृहस्थ के आश्रम में हो वह, उनकी अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य संभाल करें-पोषण करें। न कि केवल अपनी स्त्री को ही शणगारें। मात्र अपना ही पेट भरने के लिये-अपने ही पोषण के लिये धन नहीं होता। जो गृहस्थ अपने आश्रित पोष्य का पोषण नहीं करता है वह अपनी जवाबदारी से चूकता है। दुनिया में उसकी निंदा होती है। लोग कहेंगे—'यह इतना मालदार-पैसेवाला होते हुए भी अपने आश्रितों का पालन नहीं करता।' इसका परिणाम यह आता है कि-पैसा तो आपके साथ चलने का नहीं। उन्हें तो यहीं छोडकर चले जाना है और ऊपर से दुनिया की बदनामी की ही सीमा नहीं रहती। और मरने के समय पश्चात्ताप होता हैः—"हाय! मैंने कुछ नहीं किया, करलेता तो अच्छा होता।" ऐसा पश्चात्ताप होता है।

मक्खी शहद बनाती है। शहद बनाकर उसपर इतना मोम इकट्ठा कर लेती है कि

कहीं गिर न जाय। परन्तु मक्खी न किसी को वह शहद दान देती है, न खुद खाती है। आखिर लोग उसका छत्ता तोडकर सबकुछ ले लेते हैं। आपने देखा होगा, मक्खियाँ पैर घिसा करती हैं, यह पैर क्यों घिसा करती है? कवि कहता है:—

मांखिओए मध कीधु, खाधु न, न दान दीधु।
लूटनारे लूटी लीधु रे, पामर प्राणी, चेने तो चेतावु तूनेरे, पामर प्राणी—

साधुलोग आपको चेताते है–समझाते है कि–हे मानव! तुझे जो साधन मिले हैं, अपने आत्मा के कल्याण के लिये–उनका उपयोग करले। ऐसा मत कर कि मक्खी की तरह अन्त म तुझे भी पछताना पडे।

आज सचमुच मानव की ऐसी ही दशा हो रही है। जिन्दगीभर पैसा बटोरेंगे। अपनी जवाबदारी नहीं निभावेंगे, ऐसे भी मनुष्य होते हैं कि काफी पैसा होते हुए किसी को एक फूटी कौडी भी नहीं देते। मरनेपर उनके लडके बेईमान होजाते हैं। जानते है कि उनके लडके पैसे की कितनी दुर्दशा करते है। जुआ रण्डीबाजी आदि नानाप्रकार के दुराचरणो के रास्ते उस पैसे को बर्बाद करदेते है। पैसा बटोरकर रखनेवाला चाहे देवलोक में व्यतर–जोतिष मे चला जाय, यह जब अवधिज्ञान से देखता है कि मैंने जो पैसा इकट्ठा किया था, वह मेरे लडके इसतरह बर्बाद कर रहे है, तब विचार करता है– "मैं जाउ तथा उन्हें ऐसा करने से रोकू। चलू में साप बनकर वहा बैठ जाउ, फिर कोइ आवेही नहीं पास में। आनेवाला तिजोरा में साप देखता है। कजूस मनुष्यों की तिजोरियो की चारों तरफ साप फिरता ही रहता है। इस से मालुम होता है, वह बटोर-कर रखजानेवाला ही जरुर साप बनकर आया है। बेचारा साप बनकर आया है। मनुष्य जीवन को हार जाता है। इसलिये मित्रो!

आप समय २ पर सावधान किये जाते है। पैसे पर से मूर्छा उतारने के लिये कहा जाता है, चेताया जाता है कि–आये हो, तो कुछ करके जाओ। पोष्य–पोषक बनो, अपने कर्त्तव्य को निभाओ।

अब २६ वा गुण आता है'—

छब्बीसवा गुण दीर्घदर्शी

गृहस्थ लम्बा विचार करनेवाला हो। एक समय मुझे विचार हुआ कि कुदरतने आंखे सामने क्यों बनायी है? पीछे क्यों नहीं बनाया? बहुत विचार करनेपर मालूम

हुआ-कुदरत हमसे चाहती है कि-हम आगे ही देखें। जीवन का स्थान कहीं है तो आगे ही है, पीछे नहीं। कुदरत हमें आगे बढा देखना चाहती है। इसलिये अगर हमें देखना है-अगर हमारी सच्ची आंखे है, तो ये बाह्य चर्मचक्षु है, और अन्तःचक्षु ज्ञान है। इनसे देखें। दीर्घदर्शी बनें। लम्बा विचार करके ही कोई भी काम करें।

गतानुगतिक ब्राह्मण

किसी काम के लिये, अकस्मात व्याकुलता मत दिखाओ। ऐसे काम सफल नहीं होता। फिजूल समय भी जाता है। बात भी जाती है। ऐसा काम कभी न करना। "गतानुगतिको लोकः" ऐसा भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि कहा हैः—

"गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
तेन ब्राह्मणमूर्खेण हारितं ताम्रभाजनम्॥"

गंगाजी के किनारे हजारों ब्राह्मण स्नान करने आजा कर रहे थे। एक ब्राह्मण स्नान करने आया। उसके हाथ में एक लोटा था। किनारेपर रक्खा। विचार कियाः यह लोटा तांबे का है, कीमती है, अगर इसे यहीं रखदुंगा, तो मेरे नदी में स्नान करते समय शायद कोइ उठा लेजा। ऐसा विचार कर उसने एक खड्डा खोदकर इसे यहीं गाडदिया। और ऊपर से रेती का ढेर भी बनादिया। फिर वह गंगाजी में गया।

इतने में एक दूसरा ब्राह्मण आया। उसकी नजर उस रेती के ढेर पर पडी। उसने सोचा-"गंगाजी की रेत तो सपाट होनी चाहिए। यह ढेरी क्यों? किसीने यह ढेरी बनायी है, तो मुझे भी ऐसी ढेरी बनाना चाहिये। शायद है आज त्यौहार का दिन हो।"

बस उसने भी दूसरी ढेरी उसीके पास बनाली। तीसरा आया। उसने भी सोचा कि यह टेकडी बनाना भी कोई धार्मिक क्रिया है, मुझे भी बनाना चाहिये, उसने भी एक अपनी तरफ से बनादी। इतने में चोथा आया, पांचवा आया। इसीतरह से सैंकडो आये और सभीने यही विचार करते २ ढेरियां बना डाली। किसीने छान-बीन करने की कोइ जरूरत नहीं समझी, सैंकडों ढेरियां बनगयीं।

वह पहला ब्राह्मण जब स्नान करके निकला तो देखता है-"अररर! यहां तो हजारों ढेरियां बनगयीं हैं। मेरा लोटा कहां है? कुछ मालूम नहीं होता"। सैंकडों ढेरियों थीं, किसको तोडे? और तोडे तो कहीं झघडा होजाय? लोटा खोदिया। यह

" गतानुगतिको लोकः " है। इस प्रकार मूर्ख ब्राह्मणने अपना तांबे का लोटा खो दिया। बिचारे को पता ही नहीं लगा।

इसलिये मित्रो ! आप भी गतानुगतिक न बनें। दीर्घदर्शी बनें। हरेक बात का विचार करें। दीघदर्शी होकर अपने हानि लाभ का विचार करके ही कोइ भी काम करें। इसलिए कहा है मनुष्य दीर्घदर्शी हो। लम्बा देखनेवाला हो। लम्बा देखनेवाला मनुष्य कभी ठोकर नहीं खासकता है। वह कभी नुकसान नहीं उठा सकता। दुनिया में कभी बेइज्जती को प्राप्त नहीं कर सकता। अपकीर्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। खूब विचार कर काम करनेवाला वह होता है। जो कुछ काम करें, छोटा या बडा, लेकिन उसे करते समय बडा विचार करके, दीर्घतापूर्वक गम्भीरतापूर्वक शांतिपूर्वक, मगज को समतोल रखकर नफे नुकसान को सोचकर करता है। फिर अगर कर्मयोग से बुद्धि ही दुर्बुद्धि होजाय, नुकसान ही उठाना किस्मत में लिखा हो तो यह बात दूसरी है।

ऐसा होनेपर भी पश्चात्ताप करने का कारण उसके लिये नहीं रहेगा कि "मैंने यह काम सोचकर नहीं किया। एकदम बिना विचारे करडाला "। ऐसा पछताने का समय उसको नहीं आवेगा। विचारपूर्वक काम नहीं करनेवाले के लिये शास्त्रकार कहते हैं—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्य कारिण, गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

एकदम, अकस्मात्, बिना विचारे कोइ काम नहीं करना चाहिये। नहीं तो यह अविवेक का कारण होजाता है। और अविवेक सभी दुःखों का कारण है।

विवेक जानते हैं आप ? विवेक और विनय में फर्क है। हरेक बात के नफे नुकसान का देश, काल, भाव को देखते हुए विचार करके काम करना इसका नाम है विवेक। ऐसा जो विवेकी, गुणवान होता है, सभी प्रकार की सम्पदाएं उसके सामने आकर खडी रहती है। इसलिए हरेक क्षण में विवेकी पुरुष इस बात का ख्याल करे कि-मैंने मनुष्य जन्म पाया है, इतनी सभी आत्म-कल्याण करने की सामग्री मिली है। पैसा, धन, दौलत, पुत्र, परिवार, साधु-सत्संग, उत्कृष्ट धर्म, ये सब बातें मिली हैं। ये सारी बातें रहते हुए मैं अपने जीवन का विकास कैसे कर सकता हू ? दूसरों का भला कैसे कर सकता हू ? इतना सोच विचार कर अगर मनुष्य कार्य करे तो वह बहुत कुछ अपने ध्येय को सिद्ध कर सकता है।

समय नहीं है ?

जो लोग कहते हैं कि-धर्मध्यान, आत्मचिंतन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि नानाप्रकार की धर्मक्रियाएं करने के लिये, अपना जीवनविकास करने के लिये, शुभ कार्य करने के लिये समय नहीं मिलता, यह गलती है। समय क्या नहीं मिलता ? आप समझलें, मनुष्य इस थोडीसी जिन्दगी में भी बहुत कुछ कर सकता है। चाहे सो कर सकता है। मात्र इतना ही है कि, विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर दूरदर्शितापूर्वक काम करनेवाला होना चाहिये। यह बिलकुल सत्य है कि आत्म-कल्याण के लिये समय थोडा जरूर है, परन्तु करनेवालों के लिये इतना समय भी बहुत है। एक कवि समय की अल्पता को दिखलाते हुए कहता है—

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं, रात्रौ तदर्द्धं गतम्,
तस्यार्द्धस्य कदाचिदर्द्धमधिकम् वृद्धत्वबालत्वयोः।
शेषं व्याधि-वियोग-शोक-मदनः सेवादिभिर्नीयते।
देहे वारितरंगचंचलतरम् धर्मः कुतः प्राणिनाम् ? ॥

यह चंचल क्षणिक स्वभाववाला शरीर इसमें धर्म होना बहुत मुश्किल कार्य है। कल्पना करिये-एक पुरुष की आयु १०० वर्ष की है। हालांकि इतनी आयु आजकल किसी भाग्यशाली को ही मिलती है। फिर भी थोडी देरके लिये मानलीजिये कि-१०० वर्ष की आयु मिली। इसमें का आधा समय हमारा रात्रि में सोने में चला जाता है। इसमें हम कुछ भी धर्म-काय नहीं कर सकते। अब रहे ५० वर्ष। अब इसमें से हमारे बालअवस्थाके कमसे कम १५-१६ वर्ष निकाल दीजिये। इस उम्रतक हमें कोई भान नहीं रहता। और फिर जब ६० वर्ष की उम्र होजाती है तो वहांपर भी फिर कोई भान नहीं रहता। सिवाय मोह, माया, लालच वृत्ति को बढाने के और कुछ काम नहीं कर सकते। तो इस बेभान अवस्था में हमारे २५ वर्ष और योंही चले जाते हैं। अब रहे बाकी के २५ वर्ष। इस २५ वर्षों में भी कुछ समय रोग, शोक, चिंता, संताप, सेवा-सुश्रुषा, दवा-दारु में, हंसी-मजाक में, नाचरंग, गाना, नाटक, सिनेमा में और संसार की अन्य खटपटो में चला जाता है। शास्त्रकार कहते हैं-अब धर्म करने का समय कितना बचा है ? । मैं कहता हूं-खुबी तो यही है—

इतने थोडे समय में भी विचारशील, दीर्घदर्शी मनुष्य सोचे कि मैंने यह चिंता-

मणि सरीखा अनमोल मनुष्य जन्मरूपी रत्न पाया है। मुझे इसको सार्थक करना है— अपने आत्मा का कल्याण करना है, और दूसरों का भला भी करना है। तो वह जरुर कर सकता है। बहुत कुछ कर सकता है।

आज कुछ पौषध करनेवाले भाई मेरे पास वन्दन करने आये थे। उस समय मैंने विचार किया कि देखिये, आप धनी कहलानेवाले मनुष्य है। और ये भी मनुष्य है। आप भी धर्मात्मा कहे जाते है। ये भी धर्मात्मा हैं। ये भी ओसवाल जैन हैं। आप भी। परन्तु यह सब कुछ होते हुए, अगर आपको कहुगा—सामायिक करो, तो आप कहेंगे समय नहीं। १५।२० मिनट घर की कोठरी में बैठकर थोडासा आत्म-चिंतन-ध्यान करो तो कहेंगे हमको फुरसत नहीं। घन्टा आधा घन्टा स्वाध्याय, आत्मकल्याण की चर्चा करो, धर्मग्रन्थों को पढो, तो आप कहेंगे कि इसके लिये भी फुरसत नहीं। मैं कहता हू ये भी तो गृहस्थ है। नोकरी करनेवाले भी हैं। व्यापार रोजगार भी करते है। बालबच्चे भी है। घरबार भी है। सबकुछ होते हुए भी उनको पौषध करने की फुरसद मिली, आप कहते हैं समय नहीं। इसमें सत्य बात क्या है? यही कहो कि भावना नहीं है। भावना हो तो सबकुछ कर सकते है। नौकरी करते हुए दूसरों की दुकानोपर जाकर अपना रोजगार धंदा करते हुए भी अगर मनुष्य चाहे तो घन्टा-आधा घन्टा जरूर निकाल सकते है।

लेकिन कौन निकाले? जो दीर्घदर्शी हो, लंबा विचार करनेवाला हो, अपने कर्त्तव्यों का समझनेवाला हो। संसार में आये हैं, कुछ करना चाहिए, ऐसी भावना रखनेवाला हो। वही कुछ न कुछ जरूर कर सकता है। नहीं करते है तो, इसमें मात्र हमारा प्रमाद कारण है। इस प्रमाद को दूर करिये। दीर्घदर्शिता के गुण को रखिए। कुछ आत्मचिंतन, धर्म-ध्यान, स्वाध्याय, लोगों की भलाई वगैरह जरूर अच्छे काम कर लीजिए।

भाइयों और बहनों,

कल मैंने छब्बीसवां गुण दीर्घदर्शी बताया। अब आज २७ वां गुण बतलाता हूं।

सताइसवां गुण: विशेषज्ञः

गृहस्थ विशेषज्ञ होना चाहिए। यह विषय जरा और ध्यान देकर आप लोग सुनें। विशेषज्ञ कौन होता है ?

ज्ञान के दो भेद

सामान्य और विशेष ये दो प्रकार का ज्ञान है। 'अस्ति किञ्चित्'–कुछ है, ऐसा जान लिया, जिसको दर्शन कहते हैं।

"सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

तत्वार्थसूत्र का यह पहला सूत्र है। सम्यग्दर्शन्, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ये मोक्ष का मार्ग है। दर्शन किसको कहते हैं ? सामान्यज्ञान को। 'अस्ति किञ्चित्' कुछ है, ऐसा जो अपने को भान होता है। फिर वह भान किसी भी चीज का हो–आत्मा का हो, परमात्मा का हो, इस तख्ते का हो, इस चीज का हो, किसी का भी हो। हम चल रहे हैं। चलते २ हमारे पैर में कोई चीज छू गई। हमने सोचा 'कुछ है'। बस 'कुछ है' इसी का नाम है सामान्य ज्ञान। लेकिन हमने उस चीज को देखा–'यह फलानी चीज है' क्या है ? कैसी है ? किस वर्ण की है ? इन सारी बातों का बराबर निश्चय करना, इसका नाम है विशेषज्ञान।

अब इसीको आत्मापर घटाइये ! आत्मा को थोडासा समझलेना कि, कोई चीज है। बस इतना ज्ञान करलेना–इसका नाम है 'दर्शन'। अथवा सामान्य ज्ञान।

लेकिन "यह आत्मा अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र का मालिक है। सच्चिदानंदमय है। सिद्धस्वरूपी, अरूपी, अभेदी, निरंजन–निराकारस्वरूप है।" इन सारी बातों को जान लेना विशेषज्ञान कहाजाता है।

इसलिये आप गृहस्थों को चाहिये कि आप भी धर्म के योग्य बनने के लिये धीरे २ विशेष ज्ञान को प्राप्त करते जायें। विशेष ज्ञान प्राप्त करनेवाला मनुष्य अपनी धर्मक्रियाओं में भी सलग्न ही रहता है। अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को जान सकता है। आपको बुद्धि मिली है। इसका सदुपयोग करते जायें। आपको बुद्धि मिली है पर बुद्धि का फल क्या है?

बुद्धि का फल क्या ?

शास्त्रकार कहते हैं:—

"बुद्धे फल तत्त्वविचारण च"

तत्त्व का विचार करना यही बुद्धि का फल है। तत्त्व क्या है? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा बंध और मोक्ष। भगवान्‌ने ये ९ तत्त्व बतलाये है। इनमें कितने हेय हैं, कितने ज्ञेय हैं और कितने उपादेय हैं?—इन सारी बातो का ज्ञान करना, इनमें अपनी बुद्धि लगाना—इसी का नाम है विशेष ज्ञान।

पहले तो हमको सामान्यज्ञान ही नहीं होता, तो विशेषज्ञान की क्या बात करें?

जानना और करना

व्यवहार की सामान्य क्रियाओं को हम नहीं जानेंगे तो विशेष ज्ञान क्योंकर प्राप्त कर सकते हैं? इसलिये विशेष ज्ञान होने के लिये दोनो बातें करनी पडती है। एक तो ज्ञान और दूसरी क्रिया। ये दोनों बातें करनी होगी। लेकिन—

जानन्ति केचित् न तु कर्तुमीशा कर्तुं क्षमा ये न च ते विदन्ति।
जानन्ति तत्त्व प्रभवन्ति कर्तुं, ते केऽपि लोके विरला भवन्ति॥

संसार में नानाप्रकार के मनुष्य होते हैं। कई ऐसे हैं कि जो विशेषज्ञ है। समझते सबकुछ हैं, परन्तु करने के लिये समर्थ नहीं होते। समझते हैं—आत्मचिंतन करना चाहिये, यम, नियम, योग, समाधि, स्वाध्याय, पठन-पाठन, तपस्या, सामायिक प्रतिक्रमण वगैरह आत्मा के हित की वस्तुएं हैं। उन्हें जरुर करना चाहिए, लेकिन फिर भी करते नहीं हैं। करने की शक्ति अनुभव नहीं करते। कमजोर, उन्हें दुर्बल या बुजदिल जो भी कुछ कहलो।

बिचारे कई लोग करने के लिये समर्थ हैं, लेकिन जानते नहीं है। क्यो करना चाहिये? कैसे करना चाहिये? किसलिये करना चाहिये? इसकी ठीक विधि क्या है? ये

सारी बातें नहीं जानते। यह भी व्यर्थ है। लेकिन तत्त्वों का जानना और उन्हें करने के लिये समर्थ भी होना, ऐसे मनुष्य संसार में बहुत कम होते हैं। हमें क्या होना चाहिये? सब से श्रेष्ठ होना चाहिये। सबसे श्रेष्ठ कौन है? जो तत्वों को जानता भी है और करने के लिये समर्थ भी है। वे दोनों बातें हो, तभी हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। शास्त्रकार भी यही कहते हैं। ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः।

ज्ञान और क्रिया दोनों होनेपर मोक्ष होता है। अकेले ज्ञान से कुछ नहीं होता, अकेली क्रिया से भी कुछ नहीं होता। ये दोनों साथ होने चाहिये। ऐसे पुरुष कम होते हैं। इस में हमारी गिनती होनी चाहिये। क्रियाकाण्ड करनेवालों को चाहिये कि उस के तत्त्वों को समझने की कोशिश करें और तत्त्वों को समजनेवालों को चाहिये कि वे उन्हे क्रियात्मक रूप में लाने की कोशिश करें। उनके अनुसार खुद आचरण करें। बस, यह सोना और सुगन्ध का संयोग जब होजायगा, उस समय समझ लेना कि हमारा बेडा पार है।

न हिंदु न यवन

लेकिन आज हम कैसे हैं? एक कवि कहता है: हमारे यहां दो जातियां हैं: एक हिन्दु और दूसरी मुसलमान। परन्तु आजकल के जमाने में पढेलिखे मनुष्य, खास करके अंग्रेजी पढे लिखे मनुष्य दोनों में से किसी में भी नहीं रहे। जातिवाले कहलाने के योग्य भी नहीं रहे। और डिग्रीयां प्राप्त करके अपना हित साधन करने में भी समर्थ नहीं होते। यही एक कवि अपनी भाषा में इस प्रकार कहता है:—

> ' न संध्या संधत्ते, नियमित नमाजां न कुरुते,
> न वा मौलिबन्धम्, कलयति न वा सौन्नतविधिम्।
> न रोजा जानीते, व्रतमपि हरे! नैव कुरुते,
> न काशी मक्का वा शिव शिव, न हिन्दुर्न यवनः॥

आज हमारे बहुत से मनुष्यों की स्थिति ऐसी ही होगई है, खास करके जो अपने को बड़े-नेता कहलाते हैं उनकी। न वे हिन्दू कहे जासकते है न यवन। उत्पत्ति से भले ही उन्हें हिन्दू या यवन कहलो, परन्तु आचरण दोनोमेंसे एकका भी नहीं। ऐसा क्यों?

प्रायः बहुत से हिन्दू जो हैं, वे हिन्दुत्व के लक्षणरूप न संध्या करते है और न मुसलमानी नमाज भी पढते हैं। अब लक्षणों से रहित इन हिन्दू और यवन को क्या

कहा जाय ? फिर आगे न वे मौलिबन्धन करते है और न सुन्नत विधि कराते हैं। न रोजा करते हैं, और न उपवास, व्रत आदि धर्मक्रियाओं को करते है। अष्टमी, चतुर्दशी को कुछ एकाशन भी करते, पर यह भी नहीं। साधारण से साधारण व्रत को करना भी उनके लिये भारी होगया है।

फिर उनके लिये परमात्मा का नाम लेना, अपने तीर्थस्थान–काशी या मक्का जाना, ये भी कुछ नहीं। बस, आजकल तो उनकी बीबी ही उनके लिये सबकुछ है। सिवाय स्त्री और धन के और कीसी चीज को वे नहीं मानते, ऐसों के लिये कवि कहता है, वे न हिन्दू हैं न यवन हैं।

प्यारे भाईयो ! खूब याद रखिये। जिस धर्म मे, कुल मे, जाति में, देशमे जन्म लिया है, इसके नियमो को कुछ न कुछ पालन करना और धर्मक्रियाओ को करके अपना आत्मकल्याण करना जरुरी है। जरूर शका करिए, तर्क–वितर्क करिए। हरेक बात को हरेक क्रिया को बुद्धि की कसोटी पर कसिए। अपने दिल की शकाओं का निराकरण जरुर करिए, परन्तु इनसे बिलकुल दूर न भागिये। इन्हें समझिए और जब समझ में आजाय तो कुछ न कुछ करने की अवश्य कोशिश करिए। बल्कि मै तो हमेशा कहता हू कि–साध्य एक है, साधन अनेक हैं। अगर कोई यह कहे कि 'यही क्रिया करनी चाहिये, दूसरी नहीं' तो मैं यह मानने को तैयार नहीं। जिसकी जिस क्रिया के करने से एकाग्रता रहती हो, आत्मा प्रसन्न रहता हो, अन्तःकरण शुद्ध होता हो, वही क्रिया सत्य है, शुद्ध है, आत्मा की सहायक है। वही सच्चा धर्म है। और वह करना चाहिए। 'अन्तःकरणशुद्धित्वं धर्मत्वम्' ऐसा अतःकरण शुद्ध करने की क्रिया किसी भी धर्म की हो, कोई भी क्रिया हो, कोइ भी धर्म हो, कोई हरकत की बात नहीं। लेकिन करो, कुछ भी तो करो और अपने आत्मा की शुद्धि करने की कोशीश करो। अगर कुछ भी नहीं करते हैं, तो कवि ठीक ही कहता है कि–वह न हिन्दू है, न यवन है। बल्कि यों कहना चाहिये कि मनुष्यरूप मे मनुष्य तो जरुर है, परतु मनुष्य के धर्म को नहीं समझा।

इसलिये आपका धर्म है कि आप विशेषज्ञ बनें। नव तत्वों का ज्ञान प्राप्त करें, उनमें जो हेय हैं उन्हें छोडें, ज्ञेय हों उन्हें जानें और जो उपादेय है उनपर आचरण करके अपना आत्महित करें।

१८

अब २८ वां गुण कहते हैं—

अट्ठाईसवां गुण " कृतज्ञः "

मनुष्य कैसा हो ? कृतज्ञ हो। किसी के भी किये हुवे उपकार को मानता हो उसका नाम है कृतज्ञ।

'कृतज्ञ' और 'कृतघ्न'

कृतज्ञ का विरोधी शब्द है 'कृतघ्न'। किये हुवे उपकारों को नहीं माननेवाला। उपकार का घात करे उसका नाम है कृतघ्न। मनुष्य कैसा होना चाहिये ? कृतज्ञ होना चाहिये। किये हुवे को नहीं भूलनेवाला होना चाहिए। एक अक्षर का ज्ञान देनेवाला भी हमारा उपकारी होता है। किसी भी आफत में हमारी छोटी से छोटी मदद करनेवाला भी हमारा उपकारी होता है। किसी संकट से बचानेवाला हमारा उपकारी होता है। और किसी भी प्रकार से हमारा भला चाहनेवाला, करनेवाला हमारा उपकारी होता है। जिसने जो भी कुछ हमारी भलाई के लिये किया है, उसको बराबर सामने रखकर चलनेवाला मनुष्य कृतज्ञ कहा जायगा।

संसार में एक दूसरे के परिचय में रहते हुए, सहकार में रहते हुए हजारों आदमी ऐसे होते है, जो हमारे लिये कुछ न कुछ करते हैं। अगर हमारे लिये किसीने कुछ किया है, फिर वह करनेवाला किसीतरह से करे, यह हमें देखने का नहीं हैं, करनेवाला हमारे लिये उपकार दृष्टि से करे, कर्तव्यदृष्टि से करे, मनुष्य जीवन की सफलता की दृष्टि से करे, परोपकार की दृष्टि से करे, चाहे किसी भी दृष्टि से करे, यह हमें देखने का नहीं। हमें तो इतना देखना है कि यह हमारा उपकारी है। बस, उस का उपकार मानना हमारा कर्तव्य है। उसके उपकार का बदला देने की हमें चेष्टा करनी चाहिये। यह हमारा धर्म है। यही कृतज्ञता है। कृतज्ञ माने, जो किये हुए को जाने तथा उसका बदला देने की चेष्टा करे।

पुराने समय में हमारे घरों में रिवाज था–जो हमें मात्र अ, आ, इ,ई,–क, ख,

ग, घ सिखाता, हम उसे जीवनभर के लिये गुरु समझते थे, और उनका बहुमान आदर भक्ति करते थे।

यशोविजयजी और उनके विद्यागुरु

यशोविजयजी महाराज काशी में रहे। गृहस्थ वेष में। साधु के वेष को छोडकर, ब्राह्मण बनकर और जनेऊतक को धारण करके उन्होंने वहां विद्याध्ययन किया। ब्राह्मणो से पढे। ब्राह्मणों से पढकर जबर्दस्त विद्वान् बने। नानाप्रकार के वाद-विवादों की सभाओं को जीता। अपनी विद्वत्ता की, अपने सिद्धांत की धाक जमादी! ब्राह्मणों को मालूम हुआ कि " यह तो एक जैन साधु हैं, वेष बदलकर हमसे ये पढे हैं! उन ब्राह्मण लोगोंने उस समय उनका बडाभारी विरोध करना शुरु किया। यशोविजयजी काशी छोडकर चले गये। गुजरात में आये। साधुपना फिरसे लिया। बराबर जनता का उपकार कर रहे है। बडे अच्छे व्याख्याता थे। खम्भात में जिस समय थे, एक ब्राह्मण पंडित उन्हें ढूंढता हुआ गुजरात आया। वह ब्राह्मण पुछता है लोगोंसे— "भाइ! इधर एक साधु है। पहिले गृहस्थ होगया था। काशी में पढता था। यशोविजय उसका नाम है। वह कहां है?" इसतरह पूछते २ वे खंभात पहुचे।

उस समय यशोविजयजी महाराज बडे अच्छे वक्ता थे। उपाध्याय थे, सबकुछ थे, लेकिन जिस समय दूरसे आते हुये इस ब्राह्मण पंडित को देखा, अपने आसन से नीचे उतरकर उन्हें अपने पास लाकर बिठा देते हैं। और जनता के सामने कहते हैं— "मैं इनके पास पढा हूं। आज आपको समझा रहा हू, उपदेश दे रहा हू, आप लोग जो कुछ मुझमे देख रहे हैं, वह इस ब्राह्मण पंडितजी का प्रताप है। इन्हीं का उपकार है।"

भाइयो! ये बाते थीं हमारे आचार्यों की, हमारे महापुरुषो की। ऐसे महापुरुषों मे भी यह कृतज्ञता थी। जानते थे, किसी भी हालत मे पढाया हो, पर पढाया जरूर था। अक्षरज्ञान जरूर दिया था। न्याय व्याकरण, ज्योतिष, चम्पू, नाटक, साहित्य-काव्य, आदि २ सिखाया था। इसलिये उनके उपकार को कभी नहीं भूल सकते थे। श्रावकों को उपदेश देते हैं उस ब्राह्मण देवता की मदद के लिये। वह गरीबी से दु:ख पा रहा था। उनको एक अच्छी रकम देकर आदर सहित विदा किया। आज कोई व्यक्ति किसी महापुरुष के पास पढा हो, वर्षोतक रहकर विद्वान् हुआ हो, लेखक हुआ हो, उसको कोई कहे.—" भाई, आप तो अच्छे लेखक हैं। आपके गुरुजी का सुन्दर जीवन

चरित्र आपकी कलम से लिखें, तो साहित्य के क्षेत्र में एक अनूठी चीज रह जायगी। जनतापर महाद् उपकार होगा।" वह विद्वान् लेखक कहेगा:-"आप कितने रुपये लिखाई के देंगे?" "अरे भाई, मैं तो आपके ही गुरुजी का जीवनचरित्र लिखने का कह रहा हूं। उसके भी पैसे?" "हां, उसके भी पैसे, मैंने तो अपनी कलम पैसोंपर बेच रक्खी है। मैं किसी का मुफ्त में काम नहीं करता।" आज यह दशा प्रत्यक्ष अनुभव की जारही है।

छत्तीस गुरुओं के पंडित शिष्य

हम जब काशी में पढते थे, हमें पढाने को एक पंडितजी आते थे। प्रायः वे काशी में ४० वर्ष की उम्र में गये थे। व्याकरण की शुरुआत की थी। लेकिन थोडे ही वर्षों में धुरंधर विद्वान् हुए। लेकिन जिस समय गुरुपौर्णिमा-आषाढ शुदि पूनम का दिन आता था, बराबर हाथ में मालाएं लेकर सुबह निकलते थे और शामको पाठशाला में वापिस लौटते थे। एक दफे हमने मजाक करते हुए पूछा:—

"पंडितजी आप कहां गये थे?"

"गुरुपूजा करने को गया था।" उन्होंने जवाब दिया।

"आपके कितने गुरु हैं?"

वे बोले-"३६ गुरु हैं। एक गुरु से अगर एक दिन भी मैंने पाठ लिया है, तो वे भी मेरे गुरु होचुके। भले ही एक दिन का अक्षरज्ञान दिया हो। इसलिये इन्हें जो दक्षिणा देनी होती है, वह मैं दिया करता हूं और हरेक के घर जाकर एक २ माला भी भेट चढाता हूं।"

इसतरह वे पंडितजी प्रतिवर्ष हमारे सामने ३६ गुरुओं की पूजा करते थे।

इसका नाम है गुरुपूजा। सच्ची कृतज्ञता। इसलिये महानुभावो!

आपकी जिन्दगी में संसार में रहते हुए, व्यवहार में रहते हुए, गृहस्थी में रहते हुए, गृहस्थ धर्म के सभी कर्म करते हुए, न केवल ज्ञान के लिये ही, बल्कि और भी जगह, किसी भी बात में किसीने भी आपका उपकार किया हो, आप का कुछ भी भला किया हो, संकट में आपकी सहायता की हो, तो आपको उसका उपकार-भलाई, जीवनमरतक कभी नहीं भूलना चाहिये।

यहा एक बात में मेरा जरासा मतभेद है। जो कुछ आप दूसरो की भलाई के लिये करते है, उसको दूसरोंपर आप 'उपकार' कर रहे है, इस दृष्टि से नहीं करना चाहिये। अगर इस भावना से-इस दृष्टि स करते हैं, तो वह एक प्रकार का व्यापार होजाता है। मात्र अपने कर्त्तव्य की दृष्टि से करना चाहिये। "मेरे सद्भाग्य से मुझे दो अक्षर का ज्ञान मिला है, कुछ पैसा मिला है, कुछ शक्ति मिली है, मेरा धर्म है, कर्त्तव्य है कि मैं अपने ज्ञान से, पैसे से और शक्ति से दूसरो की मदद करु, उनकी सहायता करु, दूसरो का भला करु।" धर्म और कर्त्तव्य समझकर कुछ करना ही सार्थक है। और जिसपर उपकार किया है, वह भी उसे कभी भूलेगा नहीं। यह प्राकृतिक नियम है।

अगर ऐसा समझकर कुछ किया जाता है, तो समार की बहुत कुछ उन्नति हम कर सकते हैं। लेकिन आज तो करनेवाले यह समझते है कि मैं उपकार करता हू, और जिसपर उपकार किया जाता है, वह समझता है, 'इसने मेरे पर क्या उपकार किया?'

वहा दोनो की नियते खराब होने से, हम अपने कर्त्तव्य से च्युत होजाते हैं। ऐसी नियत कभी भी नहीं रखनी चाहिये। फिर जो उपकार करें, उसके लिये कहता हू कि जो कुछ करें, अपना कर्त्तव्य समझकर करे। ससार का महान् उपकार करनेवाले उन तीर्थङ्कर भगवान्‌ने भी यह नहीं कहा कि मैं ससारपर उपकार कर रहा हूं। मात्र भाषा वर्गणा के पुद्गलों का क्षय करने के लिये, अपने कर्मों को खपाना है इसलिये ज्ञान-दान का लाभ दूसरो को दिया है। मेरा कर्त्तव्य है जो कुछ मैंने ठीक समझा है, उसे कहू। इसके सिवाय और कोई बात नहीं थी। उपकार करके मैं ईश्वर बनजाऊ, ऐसा भगवानने कभी नहीं चाहा। हरगिज नहीं। खूबी तो यही है।

इसतरह से जो ससार मे काम करगये है उन्होंने उपकार की दृष्टि से नहीं-अपना कर्त्तव्य बजाने के लिये किया है। हम भी इस बात को दृष्टि में रखकर कुछ करना चाहिये और जिनपर कुछ किया गया है उसने उसके लिये कृतज्ञ होना चाहिये। दूसरी बात है-स्वयपर किये हुए को याद करना। क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि मैं किस गति से आया हू? क्यों आया हू? यह पञ्चेन्द्रिय की पटुता क्यों मिली है? यह सब सयोग आत्म-कल्याण के साधन क्यों मिले? अब मुझे क्या करना चाहिये? आदि आदि विचार करते तो आप जरूर कृतज्ञ हो सकते थे। अगर हम इन बातों का विचार नहीं करते है, तो हमारे जैसा कृतघ्न कोई नहीं।

मनुष्य को मिली है अच्छी ऋद्धि-सिद्धि, ज्ञान-बुद्धि, सब कुछ साधन, खान-पान, वस्त्र की समृद्धि, सब प्रकार की योग्य सामग्री, अगर हम अपने आत्मा का कल्याण करना चाहें, तो सबकुछ कर सकते हैं। परन्तु इसकी सार्थकता नहीं की तो ?

नीचस्य निंद्यं वपुः

मैं एक शेठ का उदाहरण दिया करता हूं। शायद यहां भी यह कहा हो। सुनिए

एक सेठ बहुत मालदार था। स्त्री मर गयी। लडका नहीं था, लेकिन पैसे की रेलमछेल थी। परन्तु देने के नाम किसी को कुछ नहीं।

एक दिन बम्बइ की दुकान से तार आया कि '२ लाख का नुकसान'। जहां नुकसान की बात सुनी, सेठ सा. को बहुत दुःख हुआ। दिनभर किसीतरह दुकान का काम समाप्त करके रात को दुकान बन्द करके सेठ सा. घर गये। अपने कमरे में जाकर बैठ गये। किवाड बन्द करदिये। अब लगे उस नुकसानपर दुःख करने। इतना सदमा उस नुकसान से उन्हें पहुंचा कि उनका हार्टफेल होगया और मामला खतम हुवा।

तीन दिन होगये, किसीको मालूम नहीं हुआ। न किसीने उन्हें कमरे से निकाला। मुर्दा सड गया और फूल गया। बदबू आने लगी। पास पडोस के लोगोंने पुलिस में खबर दी। पुलिसने आकर किवाड तोडे और देखा तो सेठ साहब मरे पडे हैं। फूल गये हैं, बदबू आ रही है।

सेठ के कोइ नहीं था। कभी कुछ काम नहीं किया था ऐसा। कृतज्ञता जानता ही नहीं था। यह सब कुछ साधन--पैसा-टका किस लिये मिला है ? यह जानता ही नहीं था। न किसीको लेना, न देना। किसी से कोई संबंध नहीं। किसी से बोलना न चालना, न खिलाना, न पिलाना। वह कुछ समझता ही न था। इसलिय न उसके कोई रिश्तेदार थे, न कोई भाई न बन्धु। कोई नहीं।

आखिर अफसरों के हुक्म से पुलिस मुर्दे को उठवाकर गांव के बाहर एक नदी किनारे फेंकवा देती है। उधर नदी किनारे पर कुछ दूर एक साधु तपस्या करता था। उसकी झोंपडी बनी थी और वह उसमें रहता था। योग, जप, तप भी किया करता था। उस समय भी बैठा २-" सोऽहं सोऽहं इति सहजानन्दात् समरसत्वं मोक्षमार्गः" का जाप कर रहा था। उसे बदबू आयी। देखा, क्यों बदबू आ रही है ?। मालूम हुवा कि फलां सेठ मर गया है। उसका मुर्दा यहीं पास में किनारे पर पडा है। साधु

उसकी इस हालत पर विचार कर रहा था कि, इतने में दो-चार सियार जगल से उस मुर्दे को खाने के लिये आये । साधुने उन्हें देखा । उसके दिल में दया आती है कि, अगर इस नापाक-पापी दुर्बुद्धि मनुष्य का पापी मास खायेंगे तो वे बिचारे भी नापाक होजायेंगे । इनकी दुर्गति होजायगी । ऐसा रहम खाकर, वह साधु उस सियार से कहता है—

रे रे जम्बुक ! मुञ्च मुञ्च सहसा नीचस्य निन्द्य वपु ।

अर्थात्-हे सियार ! इस पापी मनुष्य के पापी शरीर को छोडदो । यह खाने के लायक नहीं है ।

सियार कहते है-" तीन दिनों के भूखे हैं । कुछ भी तो खाने दो । "

" क्या खाना चाहते हो ? " साधु पूछता है.

" कुछ नहीं, तो हाथ ही खाने दो । " सियार प्रार्थना करते ह उस साधु से ।

साधु उन्हे उत्तर देता है।-" हस्तौ दानविवर्जितौ ॥

" अरे सियार ! इसके हाथ खाने लायक नहीं । हाथो से इसने जीवनभर में किसी को मुट्ठीभर अनाज भी नहीं दिया । नापाक है, इसके हाथने नोकरों को तमाचा मारना, स्त्री को पीटना आदि में घोर पाप करने के सिवाय कोई अच्छा काम नहीं किया, ये खाने लायक नहीं हैं । " " कान खालु तो ? "

साधु कहता है-" श्रुतिपुटौ सारश्रुतेर्द्रोहिणौ " शास्त्रों का दुश्मन था । कभी शास्त्रों की बात सुनता ही नहीं था । सुनने को कदाचित् कभी जाता भी था, तो नींद लेलेता था । साधुसंतो के कोई वचन नहीं सुने, इसके ये कान तो वेश्या के गाने, नाचरग सुनने में रहे हैं । ये भी नापाक हैं । तुम्हारे खाने योग्य नहीं " । " इस के नेत्र ही खालू तो ? "

" नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते "

" गाव में कोई साधु, सत, त्यागी, महात्मा पधारते थे, और सेठ सा० को कहा जाता था, परन्तु वे उनकी निन्दा ही किया करते थे । उनके दर्शन करने, उपदेश सुनने की कभी इच्छा भी उसने नहीं की । लेकिन अगर कहीं नाटक, सिनेमा, वेश्याओं का नाचगाना होता, तो सेठ सा० भागकर जाते थे, उन्हें बडे चावसे देखते थे " ।

सियार बडे भूखे जानपडते थे । बेचारे हैरान थे । आखिर प्रार्थना की साधु से—

" महाराज ! अगर पैर खालूं तो । " " अरे नहीं । इसके पैर भी नापाक हैं । खाने योग्य ये भी नहीं हैं । सुनो । " पादौ न तीर्थगतौ । " " इसने इन पैरों से कभी चलकर महात्मा पुरुषों के चरण नहीं छुए, कभी तीर्थयात्रा नहीं की । कभी चलकर गरीबों की मदद नहीं की । दुखियों का साथ नहीं किया । "

सियार फिर कहता है-" इसका पेट खालूं ? "

" अरे रे ! नहीं । इसका पेट भी नापाक है । खाने योग्य नहीं । क्योंकि—
" अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरम् "

"इसका पेट तो अन्याय से, घोर पाप से और अनीति से उपार्जन किये गये पैसों के अनाज से भरा हुआ है । इसका पेट पापी बनगया है । हे सियार ! तुम मत खाना । "

" महाराज ! बहुत भूख लगी है । कुछ तो खाने दीजिये । इसका मस्तक तो नापाक नहीं । इसे खालूं तो क्या होगा ? "

" अरे भाई ! नहीं । इसका मस्तक भी नापाक है । खाने के अयोग्य है । इसको भी मत छूना । क्योंकि-" गर्वेण तुङ्गं शिरः" इसको बडा भारी अभिमान रहा अपने पैसे के ऊपर अभिमान में आकर इसने न अपने माता को, न पिता को, और न बडे पुरुषों को नमस्कार किया । न अपने गुरुओं, ज्ञानी संतों को यह मस्तक झुकाया, बडा अहंकारी रहा है, यहां टूट रहा है अपनी सेठाई के घमंड में ।

मस्तक, वही मस्तक है वही सिरमौर है जो बडों को नमस्कार करता है, नम्रता को धारण करता है । अपने जीवन में विनय विवेक से नत रहता है । नम्र है । उसका मस्तक मस्तक है । परन्तु इस सेठ का मस्तक नापाक है । खाने लायक नहीं है । सियार ! तू इसे मत खा । इस सेठ का सारा शरीर ही नापाक है । कोई अंश भी ऐसा नहीं है, जो खाने लायक हो । तू कहीं और जगह जा । अपनी खुराक वहीं ढूंढ परन्तु इसका कोई भी अंश खाकर तू अपने को भी नापाक न बना । क्योंकि-इससे तो भूखों मरना अच्छा है । "

कहने का तात्पर्य यही है कि-आप अपने आत्मा का बिचार करिए । अगर कहीं त्रूटी हो तो सुधारने की कोशिश कीजिए । आपके शरीर का प्रत्येक अंग सफल है क्या ? पवित्र है क्या ? ? सदुपयोग में लिया है क्या ? यदि हां, तो बडी खुशी की बात है, और नहीं तो समझना चाहिए कि-आपका शरीर भी किसी काम का नहीं है । जीवन निष्फल है ।

प्यारे भाइयो तथा बहनो !

अब २९ वा गुण कहते है।

उनतीसवा गुण " लोकवल्लभ "

दुनिया की कौनसी व्यक्ति है जो दुनिया मे सबको प्रिय होना नहीं चाहता ? छोटा या बडा, गरीब हो या श्रीमत, स्त्री हो या पुरुष, कोई भी हो–सभी चाहते है कि–हम जगवल्लभ होजाय। दुनिया हमारी प्रशसा करे "।

लेकिन आप समझते हैं कि जबतक हम में गुण नहीं होंगे, वहांतक दुनिया हमें मानने को कभी तैयार नहीं हो सकती। यह कुदरती नियम हैं दुनिया का। हम गुण न रखे, दुर्गुणों से भरे हों, हम किसी का काम–भलाई न करें, फिर भी दुनिया हमें माने यह कभी नहीं होसकता। इसके लिये तो हमें अपने मे गुण पैदा करने चाहिये। यद्यपि ससार की दृष्टि कभी एकसमान नहीं रह सकती, सभी लोग प्रशसा करें, यह असभव है। क्योंकि दुनिया दुरगी है और रहेगी, यह बात निश्चित है। ससार के मानवीयों की प्रकृति का अध्ययन करनेवाले समझ सकते हैं कि, दुनिया का हर मनुष्य एक ही चीज को नहीं चाहता, न एक ही चीज की प्रशसा कर सकता है, एक मत कभी नहीं होसकते। कोइ कुछ कहेगा, तो कोई कुछ कहेगा।

बाप बेटा-दो और घोडा एक

ऐसी हालत में हमें क्या करना ? एक उदाहरण देता हू। शायद आपने सुना भी होगा।

एक घोडा लेकर बाप और बेटा दोनो अपने गाव को जा रहे थे। लडका घोडे पर बैठा था और बाप पदल चलरहा था। रास्ते में एक आदमी मिला। उसने कहा– " अरे भाई ! किधर जाते हो ? " " अपने गाव जारहे हैं, " बुड्ढा बोला। " और यह घोडेपर बैठा हुआ कौन है ? " आदमीने पूछा। " मेरा लडका है " वह बोला। यह आदमी लडके को कहता है " बेवकूफ ! तेरा बाप नीचे चलता है और तू ऊपर

चढ बैठा ? । तुझे शर्म नहीं आती । " वह आदमी चला गया । लडका उतर गया और बाप घोडेपर बैठ गया । आगे जानेपर एक आदमी और मिला । वह पूछता है बापसे-" यह कौन है ? " " मेरा लडका है " बापने जबाब दिया । " अरे बुड्ढे ! अभी तेरा बैठने का समय है ? छोटा लडका पैदल चलता है । उस छोटे को बैठाना चाहिये कि तेरा समय है बैठने का । " इतना कहकर वह आदमी चला गया ।

बुड्ढा नीचे उतरा, घोडे को खाली ही चलाया । आगे जाकर एक आदमी और मिला ! उन्हें देखकर बोला-" अरे भाई ! घोडा किस लिये है ? पैदल तकलीफ उठाते हो । इसपर क्यों नहीं बैठते ? बडे मूर्ख मालूम होते हो । घोडा होते हुवे भी घोडेपर क्यों नहीं बैठते ? । " आखिरकार दोनों बाप-बेटे घोडेपर चढ बैठे । चलते २ एक दूसरा आदमी मिला । उसने कहा-" अरे महामूर्ख, क्या घोडे को मारडालना चाहते हो ? इस गरीब जानवर पर दोनों चढ बैठे हो । " दोनों उतरे । अब दोनोंने घोडे को उठाया । उठाकर थोडीसी दूर चले कि एक आदमी मिला । बोला-" क्या यह घोडा मर गया है ? " बोले नहीं जिंदा है । " "तो मूर्खो ! फिर इसे घसीटते काहेको हो ? कहां लिये जारहे हो ? पागल तो नहीं होगये हो ? " वह आदमी बोला । बापने कहा-" करें क्या ? लडका बैठा वह भी पसंद नहीं, दोनों बैठे, वह भी पसंद नहीं । दोनों उतरे, वह भी पसंद नहीं । अब फिर घोडे को न उठाव तो करे क्या ? "
मित्रो !

आज संसार की यही दशा है । इसमें ऐसा ही चलता रहता है । इतना होते हुए भी दुनिया में रहनेवाले मनुष्या को यही धून रहती है कि हम लोकवल्लभ होजाय । दुनिया हमारी प्रशंसा करनेवाली होजाय । यह कैसे हो सकता है ?

विनय की आवश्यकता

आप अगर गुणों को धारण करें और अपने आत्मा की अवाज सुनकर चलें, तो हो सकता है । आप अपने आत्मा को पूछ लीजिये कि दुनिया क्या चाहती है ? हम लोग 'वल्लभ' कैसे होसकते हैं ? मेरे अनुमान से मैं कहता हूं-सबसे पहला गुण हमारे में होना चाहिय 'विनय' का । उत्तराध्ययनसूत्र में भगवान महावीरने ३६ अध्ययन कहे हैं । लेकिन इन सब में पहला अध्ययन 'विनय' का कहा है । जिस मनुष्य में विनयका गुण है वह अवश्य लोकवल्लभ होगा । यदि विनय नहीं तो वह कितना ही विद्वान्, पण्डित, गुणवान, समर्थ, मालदार, सत्ताधीश, बडी २ शक्तियों को धारण करनेवाला-

कोई भी हो सब बेकार है, निरर्थक है। इनसे मनुष्यत्व गुण नहीं होसकता।

बडाभारी श्रीमत है, लेकिन बडा अभिमानी है। नानाप्रकार की खुमारी है। कोई आदमी उनमे काम के लिये जाता है, बस उससे ऐसी ही खुमारी में बातें करेगा। सभ्य होने की वजह से वह उसके सामने कुछ नहीं कहेगा, परन्तु बाहर निकलनेपर समझेगा-कहेगा कि यह बेवकूफ है। इसे अभिमान आगया है।

पण्डित है, बडा भारी विद्वान् है, लेकिन अभिमानी है, तो दुनिया कहेगी-विद्वान् जरुर है, लेकीन घमण्डी है। कोई खास गुण नहीं। उसको कुछ अक्ल नहीं। कैसे बोलना, बर्ताव करना, उठना-बैठना, कुछ नहीं जानता, निकम्मा आदमी है।

इसी प्रकार अभिमान सबके लिये दुखदाई है। इज्जत खोनेवाला है। दुनिया का प्रेम-पात्र होने में सबसे बडी बाधा है। अगर आपमें हजार अवगुण हैं, परन्तु एक विनय का गुण आपमें होगा तो वह हजार अवगुणो को छिपा देगा। इज्जत भी बढावेगा। लोकवल्लभ बनावेगा। विनयी होना, इन्सान में इन्सानियत का होना है। इसके बिना तो इन्सान इन्सान नहीं।

दगलबाज का विनय

विनय हर एक को वशमें करता है। चाहे कोई आपका दुश्मन ही क्यों न हो, उसको भी वशमें करने की शक्ति विनय में है। सच्चा शुद्ध विनयी होना चाहिए। लेकिन-

नमन नमन में भेद है, नमन बडा अपमान।
दगलबाज दूना नमे, चित्ता चोर कमान।

ऐसा विनय नहीं होना चाहिए। जैसा आज कल लोग करते हैं। दिलमें छल प्रपञ्च, कूड, कपट लोगों को धोखा देने की कोशिश करें। पर ऊपर से खूब नाना प्रकार का विनय करें। यह विनय नहीं, विनय का ढोंग है। ढोंग ऐसा करते हैं, मानो इन जैसा विनीत आदमी कोई नही, लेकिन इसमें भी भेद है।

चित्ता जिस समय शिकार करना चाहता है, तो पहले लम्बा होकर पड जाता है। ऐसा मालूम होता है मानो मुर्दा पडा हो, बिलकुल नम्र होकर पडा है। आसपास कुछ नहीं देख रहा। पर ज्योंही शिकार पासमें आता है, झपट मारता है उस पर। इसी तरह चोर मकानमे घुसता है तो उस समय दीवार में छोटासा छेद करके ऐसा

सीधा और लम्बा होकर घुसता है लोगों को ताज्जुब होता है कि इतने छोटे से छेद से वह कैसे भीतर घुसा, फिर अंदर दीवाल में चिपक कर बडी नरमाइ से छिप जाता है। नीचे झुककर फिर भागता है। जरासा खटका होने पर झुककर सोजायगा। इधर उधर बडी सतर्कता से देखेगा। इतना विनय करेगा कि जिसकी हद नहीं।

इसी प्रकार कमान: बाण चलाते समय कमान जितनी ज्यादा झुकेगी, बाण उतना ही दूर जायगा। कमान नम्र में नम्र होजाती है। पर उसमें से निकला बाण दूर से दूर की चीज में, कठोर से कठोर चीज में छिद्र करदेगा।

आजकल अक्सर करके ऐसा ही विनय संसार में देखा जाता है जैसा कि–इन चीता, चोर, और कमान में होता है। दिलमें कुछ, कहना कुछ, और करना कुछ, इत्यादि ये ऐसे ही विनय के लक्षण हैं। ऐसा जाल फैलाता है कि जिसकी हद नहीं, परन्तु मैं कहता हूं–यह कितने भवों के लिये? किसके लिये? इसे जरा सोचिये। यह झूठ और दगलबाज का विनय कितनी जिंदगी के लिये किया जाता है? और ऐसा विनय कहां तक छिपा रहता है। तब यह लोगों को कितनी घृणा होती है?

मनुष्य इसको समझता नहीं है। हमारी जिन्दगी इससे बरबाद होजाती है। हम श्रीमंत पैसेवाले होगये तो क्या होगया?। राजा होगये, विद्वान् होगये, शक्तिधारी हो गये, सत्ताधारी होगये, सब कुछ होगये–क्या होगया? कपटपूर्वक विनय करना घोर से घोर पाप है। इसे खूब याद रखिये।

विनय और सरलता व नम्रता हृदय की शुद्धता के साथ होना चाहिए। झूट, कपटपूर्वक विनय करके अपने एक छोटे से स्वार्थ साधने के लिये किसीको फंसालेना, जेल भिजवा देना, नुकसान कर देना, करवा देना, इसके जैसा कोई पाप दुनिया में नहीं। विनय करिये, शुद्ध हृदयपूर्वक निष्पक्षता पूर्वक जितना विनय किया जायगा, उतने ही लोकवल्लभ हो जायेंगे।

यह विनय क्या काम करता है? विनय तो यह काम करता है कि हमारा कट्टर दुश्मन भी प्रशंसक हो जाता है। प्रशंसा किये बिना वह भी नहीं रहेगा।

पांच प्रकार का विनय

विनय शास्त्रों में ५ प्रकार का कहा गया है:–

(१) लोकोपचार विनय। (२) भय विनय। (३) अर्थ विनय। (४) काम विनय। और (५) मोक्ष विनय।

दुनियामें जितने प्रकार के विनय है-वे सब इनमें आगये हैं।

पहला है लोकोपचार विनय। लोकापचार-लोगों का उपचार। उपचार याने संस्कृत में दवा के हैं। लोगों की दवाई अर्थात् लोगों में प्रतिष्ठित बनने के लिये, उनमें अपनी कीर्ति फैलाने के लिये, लोगों को राजी करने के लिये, व्यवहार स्थापना करने के लिये, लोगों में प्रतिष्ठा जमाने के लिये, लोगों की तरफसे निंदा की प्राप्ति न होने के लिये जो विनय किया जाय, उसका नाम है लोकोपचार विनय। ससारमें रहने-वाले मनुष्यों को मोहल्लो में रहना पडता है। पडोसियों के बीच रहना पडता है। जाति में, धर्म में और समाज में रहना पडता है। जब हमें दुनिया के मनुष्यों के साथ रहना है, उनसे अपना व्यवहार रखना है, तो हमें चाहिए कि हम हरेक व्यक्ति का यथायोग्य विनय लोगों की पद्धति अनुसार अवश्य करें। आप अपने बाल-बच्चोंमें भी यही संस्कार डालें। इन्हें यही समझावें कि-प्रत्येक मनुष्य के साथ विनय करना उनका धर्म है। यह लोकोपचार विनय गृहस्थों के लिये अवश्य आदरणीय है।

दूसरा है भय विनय-शिष्य कोई गुन्हा करता है और गुन्हा करने के बाद गुरु का विनय ज्यादा करने लगजाता है कि शायद है, गुरुजी मुझे प्रायश्चित्त देंगे-दण्ड देंगे। इन्हें प्रणाम ज्यादा करू। इनकी चापलूसी जरा ज्यादा करु। मेरे पर प्रसन्न हो जायगे। और कोई दण्ड प्रायश्चित्त नहीं देंगे। इसप्रकार का जो विनय करना है, उसका नाम है भय विनय।

लडका नालायकी करदेता है। कोई कसूर या गलती करदेता है। घर आकर माता का खूब आदर करता है। उनसे हस-हसकर बोलता है। हरेक आज्ञा को स्फूर्ति से पालन करता है। हरतरह से उन्हें खुश करने की कोशिश करता है। सारी नम्रता की बातें करता है उसका नाम है भय विनय। इस प्रकार ससार के मनुष्य भय के कारण अगर किसी का विनय करते हैं, तो यह भय-विनय है। त्याज्य है।

क्यों हमें भय रखना चाहिये ? और फिर डरकर किसी का विनय करना यह क्यों ? हमारा जीवन पवित्र हो, शुद्ध हो, हम नेकीसे, नीति और न्यायपूर्वक चलते हो तो हमें भय रखने की जरुरत क्या ? हमें अपना जीवन ऐसाही शुद्ध, भयरहित बनाना चाहिये। फिर भी अगर गलती होजाय, तो चापलूसी किसी की करने की जरूरत ही क्या ? भय से किये गये विनय को विनय नहीं, वरन् चापलूसी कहना ज्यादा ठीक है। साफ २ शब्दो में हमें

अपनी गलती स्वीकार करलेनी चाहिए। और इसका दण्ड उठाने के लिये भी तैयार रहना चाहिए। इससे हमारे में निर्भयता बढेगी। हमारा आत्मा शुद्ध-स्वच्छ रहेगा। आगे गलती न करें इसका सतत ध्यान बना रहेगा। अतः यह भय-विनय सब के लिये सर्वथा त्याज्य है। यह हमें भीरु और चापलूस बनाता हैं। हमें आगे बढने और निर्भय बनने में बाधक होता है।

तीसरा है अर्थ-विनय। पैसे की प्राप्ति के लिये जो विनय किया जाय उसका नाम है अर्थ-विनय।

दुनियादारी के मनुष्यों को जरूरत है पैसे की। वह चाहता है हमें पैसा मिले। हम मालदार बनजायं। इसलिये वह अपने सेठजी का विनय करता है। यह अर्थ-विनय आदरणीय है।

एक जैंटिलमेन कोट-पेंट- नीकटाय लगाये नोकरी के लिये किसी ऑफिस में जाय, न हाथ जोडे न नरमाई दर्शावे, बस न लेना, न देना। ठुंट होकर खडा रहे और कहे कि-मुझे नौकरी चाहिए, नौकरी दीजिये, ऑफिस का मालिक समझ जायगा कि यह उद्धत है, बेवकूफ है। अयोग्य आदमी है। फिर वह चाहे कितना भी कहे, उसे जवाब यही मिलेगा कि-जाओ, यहां कोई जगह नहीं।

आज हमारे बहुतसे भाई, नवयुवक लोग कमाई से दूर रहेते हैं। पैसे से, नौकरी से वञ्चित रहते हैं। इसमें अन्य कारणों के साथ यह भी एक कारण मुझे मालूम होता है कि वे नम्रता, विनय और अनुशासन (discipline) जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं रखते।

शिस्त की बातें सभी कोई करेंगे। लेकिन किस चिडिये का नाम हैं, यह सोचते नहीं। हमें किसके साथ कैसी सभ्यता के साथ पेश आना चाहिये, किस प्रकार विनय करना चाहिये ? इसको समजते नहीं। इसके नियमों को पालन करते नहीं, और अनेक प्रकार के मिजाज में, पढाई के अभिमान में, अपनी ग्रेजुएटी के अभिमान में इस तरह रहते हैं, जिसके कारण सब जगह से निराश होना पडता है। व्यवहार में रहनेवालों को ऐसा नहीं चाहिये। अगर हमें अपना स्वार्थ साधना है, पैसा प्राप्त करना है, तो इसके लिये हमें औरों का विनय अवश्य करना चाहिये। सभ्यता की दृष्टिसे भी यह जरूरी है।

एक सेठ अपनी श्रीमताई के अभिमान में लम्बी टागे करके गादीपर पडा है। कोई नोकरी के लिये उसके पास जाता है। सेठ बडे अभिमान से अकड के साथ कहता है-" चले जाओ यहासे, नोकरी नहीं मिल सकती। " ऐसे समय हमें नरमाई, सभ्यता और विनय का जरूर पालन करना चाहिए, पर साथ ही हमें अपने आत्मविश्वास और स्वाभिमान को भी नहीं खोना चाहिए। यह बात मैं अवश्य स्वीकार करुगा। लेकिन अनुशासन सभ्यता और विनय का पालन यह तो हरहालत में लाजिमी है। शिष्टता एक चीज है और स्वाभिमान रखना दूसरी चीज है। आत्माभिमान रखनेवाला मनुष्य विनय और अनुशासन कभी नहीं छोडता। बेशक यह जरूर है कि हम स्वाभिमान रखें, चापलूसी न करें, अनीति-अन्याय की बात में हामें हा न करें।

चौथा है कामविनय.-काम की इच्छा से विनय करता है। विषयान्ध मनुष्य पागल और बेवकूफ बना हुआ स्त्रीके पैर चूमनेको तैयार होजाता है। स्त्री समझती है कि-वह मेरा कितना विनय करता है। पर यह विनय कौन करवाता है? विषय की इच्छा यह सब करवाती है। यह विनय उस स्त्री का नहीं है। विषय की इच्छा का है। अतः यह कामविनय भी त्याज्य है।

नाटक, सिनेमा देखने की इच्छा हुई। नाच गाना देखने की इच्छा हुई। पास में पैसा नहीं। एक दूसरे मित्र की खुशामद करता है-चापलूसी करता है। नानाप्रकार से गुलामी करता है। वह सब कामविनय है। इन्द्रियों के २३ विषय भोगने की इच्छा से जो भी विनय-चापलूसी, खुशामद किसी की की जाती है वह सब काम-विनय में आ जाता है। यह काम-विनय सर्वथा त्याज्य है।

पाचवा है मोक्षविनय-ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करनी चाहिए। नानाप्रकार की पूजा, पाठ-जप-तप, यम-नियम, सयम, व्रत, सामायिक प्रत्याख्यान आदि धर्म को धारण करना है। उसके लिये देव, गुरु, धर्मका विनय करना है। अपने आत्मकल्याण के लिये, जो विनय करना है, उसका नाम है मोक्षविनय। यह सर्वथा ग्राह्य है-आदरणीय है। सच्चा विनय तो यही है। हमारे मोक्ष के लिये, कर्मों को क्षय करने के लिये कोशिश करें। देव, गुरु और धर्म का जितना भी विनय करें थोडा है।

हम गुरुजी के पास जाते हैं। उनका विनय करते है। हाथ जोडते है। इसलिये

कि गुरुजी में जो गुण हैं उन गुणों को प्राप्त करें, गुरु से कुछ ज्ञान प्राप्त करें। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करें और मोक्ष प्राप्त करें।

लेकिन आजकल हम लोग वहांपर भी हाथ जोडें, पैरों को छुएं,—सबकुछ विनय करते हैं। लेकिन दिलमें कपट है। जाल फैला २ कर नानाप्रकार केप्रपंचों को फैलाते जायं, तो यह गुरु का विनय नहीं—नर्क का विनय है। अगर हमारे दिलों में कपट रखकर गुरु को भी विनय करके किसी प्रकार के जाल में फंसाने की कोशिष करें तो यह सच्चा गुरु का विनय नहीं, पर नर्क का विनय है।

आप लोगों को चाहिये कि अगर सच्चे मोक्ष की अभिलाषा है तो देव, गुरु, और धर्म का विनय निष्पक्ष भावसे, मात्र मोक्ष की प्राप्ति के लिये विनय करें। थोडा करें, बहुत करें, कोई हरकत नहीं, पर जो कुछ करें शुद्ध हृदय से करें। मोक्ष की प्राप्ति करने के लिये करें। कर्मों का क्षय करने के लिये करें।

महानुभावों!

ये पांच प्रकार के विनय हैं। इनमें से दो का त्याग करे, बाकी का आदर करने से मनुष्य लोक-वल्लभ होसकता है।

यह बात निश्चित है कि व्यवहार में रहनेवाले गृहस्थों को लोक-वल्लभ होना भी जरूरी है। अगर लोगों में प्रिय नहीं होता है, तो लोग उसकी निंदा-बदनामी करते हैं, चारों तरफ से उनके पीछे पडे रहते हैं। इसलिए उनको आत्मिक शांति नहीं मिल सकती। और जबतक आत्मिक शांति नहीं मिलती, तबतक धर्मध्यान करने में अनेक प्रकार की बाधाएं होती हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्यों को अपना बर्ताव—आचरण, व्यवहार इस प्रकार से रखना चाहिए कि जिससे जगत् में उनकी निंदा न हो। दुनियां उनकी ओर नेक दृष्टि से देखे।

लेकिन मनुष्य ऐसा चाहते हुए भी अपना वर्ताव ऐसा नहीं रखते हैं कि जिससे वे लोक-वल्लभ बनें। मनुष्य अपनी तरफ प्रेम की दृष्टि से कब देखता है? पहले तो हम किसीसे बिगाडें नहीं, न्याय की दृष्टि से चलें, नेक बनें, प्रामाणिकता से रहें, अपना आचरण शुद्ध रखें, जो कुछ हमसे बन सके उतनी दुनिया की सेवा करने को सर्वदा तत्पर रहे—यदि ऐसा करे तो मनुष्य हमें प्रेम और आदर की दृष्टि से देखेंगे, यह मानी हुई बात है। अर्थात् लोक-वल्लभ होने का दूसरा उपाय है सेवा।

सेवावृत्ति

आपका कुछ भी काम न करु, तो आपसे काम लेने का मेरा कोई हक नहीं और फिर आप मुझे कभी आदर और प्रेम की दृष्टि से देख भी नहीं सकते। इसलिये जरुरी यह है कि-मनुष्य ऐसे काम करे कि वह लोक-वल्लभ हो। धर्म की प्राप्ति के लिये सब से पहली बात मैं यह समझता, जोकि मनुष्य को चाहिये-जैसा कि मैंने कल कहा था-कि विनयभाव को धारण करे। नम्रता रखे। नम उमे, सभी प्रेम और आदर से देखेंगे। इसके विषय में कल मैं आपको बहुत कहचुका हू।

अब दूसरा कार्य मनुष्य क्या करे जिससे वह लोक-वल्लभ होसके? वह है "सेवा"। मनुष्य जगत् की सेवा करे। प्राणिमात्र की सेवा करे। किसी न किसी का काम करदेना, यह ध्येय अपना रखे।

मैं कहता हू आप रास्ते में जा रहे है। रास्ते में एक छोटा आदमी भी आप से कहदे कि-"मेरा जरा इतना काम है, करदीजिये।" इतना सुनते हुए-माना कि आप बडे हैं पर आदमी को सेवाभावी होना चाहिये। आप छोटे से आदमी का भी कार्य करदें, इसमें कोई हरकत की बात नहीं। हमारे १० मिनट उसकी सेवा में गये-हमारे ये १० मिनट जीवन के सफल हो गये। यह भावना हमारे हृदय में जागृत होजानी चाहिये। छोटा हो, बडा हो, गरीब हो, अमीर हो, स्त्री हो, बालक हो, वृद्ध हो, कोई भी हो। यहातक कि पशु भी हो, अगर हमारी मदद पाने की हालत में हो, वह भी अगर दुःखी हो, तो हरकिसी की सहायता करना-यथाशक्ति सेवा अवश्य करना, यह भावना हमारी होजानी चाहिये। परन्तु आज? इन बातोंमे हम हजारो कोस दूर हैं। कारण है इसका। हम अपने दिलोंमें यह मिथ्याभिमान भरे बैठे है कि, हम बडे बुद्धिशाली हैं। बहुत बडे आदमी हैं, ज्ञानी हैं, धनी हैं, मानी हैं। हमारी पोजीशनमें फर्क आ जायगा। हम इन छोटों के सम्पर्कमें कैसे आए? यह मिथ्याभिमान ही कारण है कि हम दु खीजगत् की सेवा करने योग्य होते हुए भी नहीं करते। सच्चा सेवाभाव हमारेमें अत्यन्त कम है-नहीं के बराबर है। सेवा एक सर्वोत्कृष्ट सुन्दर धर्म है। पूजा पाठ, व्रत, पच्चक्खाण, सामायिक, प्रतिक्रमण, दूसरी-तीसरी हरेक प्रकार की धर्मक्रियाएं हैं, मगर इनमे भी कोई अधिक श्रेष्ठ धर्म है, तो मैं कहूंगा-वह सेवाधर्म है। शास्त्रकार भी ऐसा कहते है -

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।"

सेवाधर्म इतना गहन, इतना बारीक और इतना महत्व का धर्म है कि योगी भी इसके महत्वको नहीं पा सकते। योगी योग का साधन करते है, सबकुछ करते लेकिन सेवाधर्म का सम्पूर्ण वर्णन करना, व्याख्यान करना, उसे सम्पूर्ण रीतिसे समजाना उसके लिये भी अति कठीन है। यह तो एक अनुभवजन्य वस्तु है।

एक कबूतरको चोट लग गई है, वह रास्तेमें गिरपडा है। आप उधरसे जा रहे हैं। आपके दिलमें उसे देखकर दया आयी, उसे उठाया, छायामें रखा, उस पर पानी छींटवाया, उसको कुछ न कुछ शांति-आराम देने के लिये प्रयत्न किया। उस समय आपके दिलमें आनंद छा जायगा, संतोष आयगा और प्रसन्नता होगी। उसका वर्णन योगी भी नहीं कर सकता। कोई नहीं कर सकता। इसी लिये शास्त्रकार इस सेवाधर्म को अगम्य कहते हैं। कष्ट इसमें कुछ नहीं। मात्र मनोवृत्ति शुद्ध रखकर किसीका थोडा सा भी भला करना यह धर्म ही सेवा है।

दूसरे की भलाई में हमारा भला

आज हम दूसरेका भला करते नहीं मगर अपना भला चाहते हैं। यह हरगिज नहीं होना चाहिये। भला उसका होता है, जो दूसरोंका भला करते हैं। हमारा धर्म हमारा भला करनेमें नहीं। अपनी गृहस्थी बढाली। बालबच्चों का, स्त्रीपरिवार का पोषण करदिया। अपना पेट भर लिया। पैसा इकट्ठा करलिया इसमें कौनसी बडी बात हुई। कोइ बडी बात नहीं। हरेक मनुष्य अधम से अधम भी अपना पेट भर लेता है, अपने बालबच्चो का, परिवार का पोषण कर लेता है, लेकिन खूबी वही है कि हम दूसरों का भला करें। किसी तरह से भी किसीका भी हमारे से भला होजाय। भला ईसे उत्कृष्ट धर्म दुनिया में कौनसा है?

भाइओं और बहनों,

'लोकवल्लभ' होने के लिए दूसरा उपाय सेवा में दिखला रहा हूं। कल इस विषय पर कुछ कहा था।

सेवाधर्म की वृत्तियां रखो। दुनिया का भला करने के तरीके जुदे २ है। पैसा आपके पास है। बहुत कमाते हैं। और कमाकमाकर खूब इकट्ठा करते जाते हैं। लेकिन इकट्ठा करना, यह हमारा साध्य नहीं। दुनिया का भला करने के लिये पुण्य से पैसा मिलता है। आपके सामने आज मौका है, जो पैसा आपको मिला है उसका सदुपयोग करने का। प्रकृति आपके अनुकूल है। पुण्य प्रकृति आपके अनुकूल है। आप दुनिया का भला करिये। यह पैसा आपके लिये नहीं, वरन् दुनिया का भला करने के लिये है। यह मैं अनेकवार कह चुका हूं।

खून के पैसे

स. १९१४ की लडाई में जिन लोगोने पैसा पेदा करलिया था उनकी आंते २ निष्फल गयीं। आजतक भी निष्फल रही है। वे खून और पैसा चूस रहे हैं। पर आज की लडाई उस लडाई से कितनी भयंकर है? आप सोच सकते हैं। आज तो निर्दोष प्राणियों, स्त्री-पुरुषों, बच्चों, शहर और गांवों में रहनेवालों, जो नहीं लड रहे हैं, उन सबको मारने के लिये ऐसे ऐसे शस्त्र-बमगोले बनाये जारहे हैं कि सुनकर आश्चर्य में डुब जाते हैं। परमात्मा को यह क्या मंजूर है?

जर्मनीने एक ऐसा हवाइ बम बनाया है जिस में आदमी के चलाने की जरूरत नहीं। अपने-आप उड जाता है। जहां जाना होता है, चला जाता है, और फट जाता है और प्राणियों का, शहरों का, बस्तियों का सत्यानाश कर डालता है। इतना संहार मनुष्यों का हो रहा है। आप ऐसी लडाई में हर चीज में-हर चीज के ठेके लेकर पैसे पैदा कर रहे हैं। एक तरफ आपकी मदद से लाखों निर्दोष प्राणी-स्त्री, बालक, वृद्ध तक का भीषण दर्दनाक संहार हो रहा है और दूसरी तरफ इन्हीं का संहार करवा-

कर आप पैसेदार बन रहे हैं। देखिये कुदरत क्या करवा रही है? अगर कोई मुझे पूछे कि महाराज, इस पैसे का तब क्या करना चाहिये, तो मैं यही कहुंगा-"तुम पिछले पैसों को काम में लेना। इस पैसे को लेना तुम्हारे लिये हराम होना चाहिए। एक पाई भी इस पैसे को छूना नहीं। इसे बिलकुल अलग रखो। अगर होसके तो किसी भले कार्य में दान करदीजिए। लेकिन इस पैसे में एक कौडी भी अपने पेट में मत जाने दो। कारण यह है कि पैसा लोहू का है। निर्दोष प्राणियों के खून का है। जगत् के संहार का पैसा है। मनुष्य जाति के भयंकर खून का पैसा हैं। आपने अगर इस खूनी पापी पैसे का एक दाना भी अपने काम में लिया-खाया-पीया इस से मौज की, तो निश्चय हैं आपकी बुद्धि बिगाडे विना कभी नहीं रहेगा। कुदरत को शायद यही मंजूर है। मैं तो ऐसे खुन के पैसे का दान करना भी उचित नहीं समझता।

इससे बचने का उपाय एक ही हैं कि-इस पैसे को अपनी नजर से बिलकुल दूर रक्खो और कोई उपाय न हो तो फिर, मात्र जितना होसके अच्छे कार्यों में, भली बातों मे खर्च करते जाओ। जो कुछ होगा परमात्मा पर विश्वास रखो, अच्छा ही होगा। तुम्हारी भावना शुद्ध है तो प्रकृति तुम्हें तुम्हारी शुद्ध भावना का अच्छा ही फल देगी। परमात्मा की इस वाणीपर भरोसा करके निश्चित रहना कि 'परिणामे बन्धः क्रियाए कर्म'

आपके परिणामों के अनुसार कर्मबन्धन होजावेगा। लेकिन जितना होसके, धर्म करते जाओ, भले कार्यों में इसे खर्च करता जाओ।

जगत् के दुःखी प्राणियों की सेवा करने का यह मौका भी अच्छा आया है। किसीको कपडा नहीं मिलता पहिनने को, नंगा ही ठिठुरता फिरता है। किसीको खाने को नहीं मिलता है। भूखसे हौनहार प्राणि मौत के मुंह में जारहा है। त्रास पा रहा है। किसीको क्या दुःख होता है? आप ढूंढिये, तलाश करिये और उनकी सेवा करके अपने पैसे की मदद से उन्हें आराम पहुंचाकर इस खूनी पैसे का भी सदुपयोग करलीजिए। आज बंगाल मौत के मुंहमें है-भूखा है, नंगा है। देश में जगह २ भीषण दुष्काल है। इन्हें देखिये। इनकी सहायता में अपने पैसे का सदुपयोग कीजिए। आपका नाम होजावेगा। आप इस खून के पैसे को लेकर भी लोकवल्लभ बनसकेंगे।

खेमा देदराणी का दान

पुराने समय में एक वक्त गुजरात में दुष्काल पडा। चांपानेर में महम्मद बेगडा

राज्य करता था। पशु और मनुष्य सभी भूख से मर रहे थे। बडाभारी सवाल खडा था राजा के सामने कि इनकी रक्षा कैसे की जाय ? एक दिन चारण बाजार में से होकर निकल रहा था। एक चापसी सेठ नामक गृहस्थ उन्हें बाजार में मिलगये। चारण उनकी प्रशंसा करता कहता है कि " आप 'शाह' हैं, आप तो राजा से भी बडे हैं। तुम्हारे बाप-दादोंने यह किया, वह किया-बस तुम्हें यह शाह की पदवी मिली। "

मुहम्मद बेगडा का सिपाही वहा खडा था। चापसी सेठ की प्रशंसा सुनकर उसके दिल आग लग गयी। जाता है सीधा बादशाह के पास। काना-फूसी करके उसे बहकाता है। " यह आपका भाट आपकी रोटी खाता है और तारीफ करता है बनियों की। उन्हें आपसे भी बडा बताता है। कितना नालायक है ! "

चारण बुलाया जाता है। राजा कहता है-" तुम हम बादशाहों को छोडकर मामूली शाहों को-बनीयों की तारीफ करते हो क्या ? "

चारण जवाब देता है:-" जो काम बादशाहने नहीं किया, वह इन शाहोंने किया है। इसलिए हमारा धर्म यह है कि जिन्होंने जो किया है, उसकी तारीफ करना चाहिए। " राजा चापसी शाह को बुलाता है। राजा कहता है:-" तुम्हें हुक्म दिया जाता है कि-दुष्काल से पीडित प्रजा का तुम एक वर्षतक पालन करो। एक भी आदमी भूख से नहीं मरना चाहिये। वरना तुम्हारी 'शाह' की पदवी छीन ली जायगी "। चापसी सेठ घर आते है।' सब महाजनों को इकट्ठा करते हैं। कहते हैं-" देखो शाह ! शाह की पदवी रखने का यही एक मौका है। राजाने इस तरह का हुक्म दिया है। हमारे बाप-दादाओंने यह शाह की पदवी ली है। इसका उन्होंने मान रखा है। ' बादशाह ' से भी ' शाह ' बडे हैं। अगर हमें भी यह बात रखनी है तो राजा का हुक्म मानलेना चाहिए। नहीं तो बादशाह हमारी यह ' शाह ' की पदवी छीन लेगा। "

' शाह ' पदवी का मान रखने का निश्चय हुवा। एक वर्षतक लाखों-करोडो मनुष्यों की रक्षा करनी थी। अकेले चांपानेर के सेठ क्या कर सक्ते थे ? मुश्किल से चार महिने का बन्दोबस्त उन लोगोंने किया। अब ८ महिने का इन्तजाम और करना है। इसके लिये राज्य से १ महिने की मोहलत ली जाती है।

कुछ श्रावक लोग चंदा करने के लिये अब गाव २ शहर २ घूमने के लिये निकले। वे पाचों पच पाटन की जा रहे थे। बैलगाडी में बैठे थे। प्रातःकाल का समय था। रास्ते में हडाला नामका एक छोटासा गाव आता है। इस गावका एक

गृहस्थ बिलकुल फटी-टूटी हालत में हाथ में लोटा लिये हुए बाहर जंगल में टट्टी गया था। वापिस गांव में लौट रहा था कि उसने इन पंचों को बैलगाडी में जाते हुवे देखा। उसने उन्हें "जुहार" किया और पूछा-"कहांसे आरहे हैं आप?"

"हम लोग चांपानेर से आरहे हैं।" उन्होंने जवाब दिया। वे सोचने लगे कि "जिस काम के लिये निकले है, वह तो अभी हुआ ही नहीं। यह फटी-टूटी हालत में कोई गरीब आदमी मालूम पडता है। अभी कुछ मांगेगा।"

उसने फिर पूछाः-"आप कौन है? कहां जारहे है?"

"हम चांपानेर के महाजन हैं, पाटन जारहे हैं।"

"आप भी महाजन हैं और मैं भी महाजन का गरीब लडका हूं। आप लोग आज यहीं ठहरें। मेरे यहां छास--रोटी खाकर आगे पधारियेगा। मैं आपको बिना कुछ खाये-पिये आगे नहीं जाने दूंगा।" वे विचारे और घबराये। "यह अपने घरपर लेजाकर न जाने हमसे क्या मांगेगा? हम उसे इस वक्त क्या देंगे? हमारे काम में देरी होरही है।"

पर आखिर उन्हें उस गरीब से दिखनेवाले गृहस्थ के घर जाना पडा। छोटासा घर था। बडे आदर से उसने उन्हें बैठाया। उसने अपनी पत्नी से कहा-"आज अपने भाग्य से महमान आये हैं। उन्हें जिमाना है। बडे २ सेठ है। जो कुछ अपने से बने भक्ति करनी चाहिये" इतना कहकर वह गृहस्थ उनके पास आकर बैठता है और पूछता हैः "आप किधर पधार रहे हैं-क्या काम है?"

उन्होंने सब किस्सा बयान किया। कहा "हमने निश्चय किया है कि-'शाह' पदवी का मान रखना जरूरी है। और इसलिये अब चंदा करने निकले हैं। चार महिने का बन्दोबस्त करचूके हैं-बाकी ८ महिने का बन्दोबस्त और करना है।"

वह गृहस्थ वहांसे उठकर एकदूसरे मकान में, जहां उसके ९०।९५ वर्ष के वृद्ध पिता बैठे थे, जाता है। उनसे सब हकीकत कहता है कि-इसतरह राजा ने हुक्म दिया है। 'शाह' पदवी की लाज रखने को चांपानेर के श्रावक चन्दा इकट्ठा करने निकले हैं, पाटन जा रहे हैं। मुझे रास्ते में मिलगये, मैं उन्हें अपने वहां लाया हूं।"

पिता कहते हैं-"तुम चलो, मैं आता हूं। मैं भी तो इन महाजनों के दर्शन करलूं। सहधर्मी भाई हैं।"

भोजन का वक्त होजाता है। बडे प्रेममे भोजन कराया जाता है। फिर दोपहर के समय सब इकट्ठे होते हैं। वह वृद्ध भी वहा जाता है। वृद्ध भी अपने पुत्र से कहता है: " बेटा! इस मौके को हाथ से न जाने देना। "

सबके सामने कहता है। वे श्रावक समझते है: " यह वृद्ध जरुर कुछ मागने के लिये कहता है। इशाराकर कहा है। अभी ये हम से कुछ न कुछ मागेगे और हमारी मुश्किल होजायगी। २००।४०० रु, और घट जावेंगे। इन्हें कुछ देना ही पडेगा। ये हमारे सहधर्मी बन्धु है। "

इतने में पुत्र कहता है, उन श्रावकों से: ' जो कुछ चन्दा आपका हुवा है वह लिस्ट का कागज मुझे दीजिये। "

" अरे! क्या करेगा यह इस कागज को लेकर? " वे श्रावक घबराते हैं, पर उसे वह कागज देदेते है।

कागज हाथ में लेकर वह गृहस्थ, जिसके रोम २ में धर्म और समाज की सेवा की लगन लगी है, सतत ज्योति जल रही है धर्मसेवा की, वह गरीबसा मालूम पडनेवाला सच्चा सेवाव्रती श्रावकों को कहता है: " इस सारे वर्ष का लाभ मुझे दीजिये। '

अभी वे श्रावक समझ भी नहीं रहे है कि, यह क्या कह रहा है? वह कह रहा है: इस सारे वर्ष का खर्च मैं समलुगा। आप इस चन्दे को बन्द करदीजिए। इसकी कोई आवश्यकता नहीं। आप बादशाह को जाकर कहदीजिए कि, एक वर्षतक सारे गुजरात का पालन-पोषण मैं अकेला करुगा, ' शाह ' पदवी का मान हम जरूर रखेंगे। हमसे कोई भी यह पदवी छीन नहीं सकता। हमे तुम्हारी आज्ञा सहर्ष स्वीकार्य है। "

सुनकर वे चापानेर के श्रावक चकित होजाते ह। उसकी बाहरी हालत देखकर सोचते है, कहीं यह पागल तो नहीं है। परन्तु वह गृहस्थ कहता है-"मैं पागल नहीं हू। खूब सोच समझकर यह बात आपसे कह रहा हू। आप वापिस लौट जाइये। जबतक मैं और मेरे पिताजी जीवित है तबतक ' शाह ' की पदवी हम नहीं जाने देंगे। आप बादशाह से जाकर कहदीजिये-हम आनमे सारे गुजरात का रक्षण करने को तैयार हैं। जितना धन चाहिये, गाडियो में भरभरकर पहुचादेने को हम तैयार है। "

अन्त में उनका सन्देह दूर होता है। उसके पास वे हर्षातिरेक में आकर गद्गद्

होकर कहते हैं:-" धन्य है तुम्हें । धन्य है तुम्हारा यह सेवाभाव । तुमने साहों की लाज रखली । सारा समाज और सारा गुजरात तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा ।"

वे श्रावक उस दानी गृहस्थ को राजा के पास चलने को कहते हैं, परन्तु वह आना-कानी करता है । कहता है:-" क्या करूंगा चलकर ? मैं एक मामूली गृहस्थ हूं । सीधा-सादा मेरा पहिनावा है । इस पहिनावे में जाना ठीक नहीं । आप तो उनसे कह दीजिये जितना धन चाहिए मैं भेजदेने को तैयार हूं ।"

आखिर वे श्रावक उस गृहस्थ को राजा के पास लेजाते हैं । राजा पूछता है: ' खेमा सेठ ! आप बहुत भारी जिम्मेदारी लेरहे हैं । सोच समजकर जवाब दें ।"

वह गृहस्थ कहता है-" ईश्वर की कृपा से, जिनदेव की कृपा से, धर्म के अनुराग से मैं आपकी आज्ञा को पूर्ण करुंगा । इसमें कमी आवे तो आप जो चाहे करना । मैं खूब सोच-समझकर जिम्मेवारी लेरहा हूँ ।"

आखिर मालुम होजाता है कि यह सच्ची बात है । उस समय राजा फिर कहता है:-"तुम्हारे पास धंधा क्या है ? व्यापार क्या है ? मिल कारखाने कितने चलते हैं ? इतना पैसा आया कहां से ?"

उत्तर देता है वह गृहस्थ-" मेरे पास न कोई मिल है, न कारखाना और न कुछ । मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं । पाली भरकर लेता हूं और पाली भरकर देता हूं । मामूली तेल, नमक और दाने-बाने का व्यापार है । और कोई व्यापार नहीं ।"

लाखों की किम्मत का हार था, राजा के गले में । उतारकर खेमा सेठ के गले में पहना देता है और कहता है-" वास्तव में बादशाह से बढकर ' शाह ' पदवी है । मैं तुम्हारा सत्कार करता हूं ।"

यह ऐतिहासिक सत्य-घटना उस समय की है । कहने का तात्पर्य यह है सेवाधर्म जिसके लिये शास्त्रकार भी कहते है-" सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः " और यह है लोक-वल्लभ होने का रास्ता ।

प्यारे सज्जनो ! आपको भी आज वैसाही मौका मिला है । अगर आपने इस मौके का लाभ नहीं उठाया, तो संसार में आकर कुछ नहीं किया यह समझना । आज खेमा सेठ नहीं है, पर उसका नाम आज भी है । वह अमर होगया । इतिहास में उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा । पैसा तो आता है, और जाता है लेकिन उनका

नाम अमर होजाता है जो संसार में आकर कुछ न कुछ भलाई कर जाते हैं।

आप भी इस सेवा-धर्म को अपनाकर लोकवल्लभ बनें। आप दान देते जायगे तो आपका पैसा खुटने को नहीं। कुए में से जितना पानी निकाला जाता है उतना ही बढता जाता है और शुद्ध और स्वच्छ भी होता जाता है।

ब्रह्मचर्य

तीसरा रास्ता है लोकवल्लभ होने का जीवन पवित्र रखना। आप अपने चारित्र को शुद्ध रक्खें।

हजारों रुपये का दान करलें और नानाप्रकार की दुनिया की सेवा करलें, परन्तु अगर जीवन पवित्र नहीं है, नानाप्रकार की विषय-वासना की लालसा लगी है, तो पूरे लोक-वल्लभ नहीं बन सकते। लोक आपकी बातें करेंगे: "बेशक, इसने कुछ दान किया है लेकिन आदमी नापाक है। नालायक है। दुराचारी है। दूसरी स्त्रियों के साथ व्यभिचार सेवन करनेवाला है। पतित है, लम्पट है, विषयी है।" आदि नानाप्रकार की बातें करेंगे। इसलिये महानुभावो!

इस बात का खूब ध्यान रखिये-सदाचारी रहें। दुराचार, विषयासक्ति जीवन में बडाभारी दुर्गुण है। इस दुर्गुण का शिकारी पुरुष महादु:खी होता है। पैसा चला गया तो समझ लीजिये कुछ नहीं गया। शरीर दुर्बल होगया, तो थोडासा नुकसान हुआ, लेकिन जीवन की पवित्रता-ब्रह्मचर्य नष्ट होगया, तो सबकुछ चलगया समझो। ऐसा पुरुष पुरुष नहीं, और स्त्री स्त्री नहीं, धनी धनी नहीं, विद्वान् विद्वान नहीं, साधु साधु नहीं, और गृहस्थ गृहस्थ नहीं।

इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करिये। इसके पालन करनेवाला शुद्ध पवित्र सदाचार की भावना रखनेवाला जो हो, उसको चाहिये कि स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहे, और स्त्री को चाहिये, पुरुषों के संसर्ग से दूर रहें और ऐसे स्त्री तथा पुरुषों से दूर रहें, जो इन्हें प्रलोभन देकर पतित करना चाहें, उनकी सरलता का दुरुपयोग करके उन्हें विषयवासना की तरफ खींचे। इसमें दोनों का कल्याण है।

विषयवासना की लालच रखना घोर पाप का कारण है। श्रीयशोविजयजी उपाध्यायने एक सज्झाय में कहा है —

पाप व धाये रे अति घणु सुकृत सकल क्षय जाय।

अब्रह्मचारीनुं चितव्युं, कदीय सफल न थाय ॥
पापस्थानक चोथुं वरजीए ।

हरेक मनुष्य चाहता है कि उसके कार्य की सिद्धि हो। हरेक कार्य उसका सिद्ध होजाय। इसके लिये वह आकाश-पाताल एक कर देता है। लेकिन क्या वह अपने कार्य को सफल कर सकता है?

हमारे यशोविजयजी महाराजने कहा है कि-जो ब्रह्मचर्य से पतित है, उसकी कोई क्रिया सफल नहीं होती। पुण्य-प्रकृति से अगर थोडी देरके लिये सफल हो भी जाय, लेकिन उसके नीचे तो पोलमपोल ही रहेगी। वह सफलता कायमी नहीं होती।

इसलिये शास्त्रकार बार बार सावधान करते हुए कहते हैं कि-अगर अपने कार्यों की सफलता चाहते हो, सुखी होना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य का पालन करो। अपनी स्त्री को छोडकर परस्त्री को माता और बहन समझो। स्त्रियों के संसर्ग से दूर रहो।

राजा मुंज और कूए का रैंट

शाम का समय था। मुंज राजा घूमने के लिये निकले। एक कुए के पास से निकल रहे थे कि, देखते हैं; एक स्त्री पानी खींचने के लिये रैंट चला रही थी। और वह रैंट चूं चूं कर रहा था। उसमें से एक ऐसी अवाज निकलती थी। राजा उस रैंट की आवाज के कारण उस रैंट को सम्बोधित करके कहता है:—

रे रे यन्त्रक ! मा रोदिः कं कं न भ्रमयत्यमु ।
कटाक्षाक्षेपमात्रेण कराकृष्टस्य का कथा ? ॥

हे रैंट ! तू क्यों रोता है ? । राजा-कवि उस चूं चूं आवाज को सुनकर ऐसा कहता है।

यंत्र जवाब देता है-" यह स्त्री मुझे चक्कर में डाल रही है इसलिये रो रहा हूं।

कवि बोलता है:-हे यन्त्र ! स्त्री ऐसी ही चीज होती है यह तो अपने कटाक्ष मात्र से ही मनुष्यों को चक्कर में डाल देती है। फिर तुझे तो यह हाथ से पकडकर चक्कर में डाल रही है। इस में कौन बडी बात है ?

एक स्त्री अपने हाथमें मांडा (मोटीरोटी) लिये खडी थी। उसमें घी था। उस मांडे में से घी नीचे टपक रहा था। कवि कल्पना करता है कि:-मांडे में से यह

घी नहीं टपकता है परन्तु मांडा रो रहा है। उसके आंसू टपक रहे हैं। कवि उस मांडे को संबोधन करके कहता है:—

'रे रे मण्डक ! मा रोदिः यदहं खण्डितोऽनया।
राम-रावण-मुञ्जाद्या, स्त्रीभिर्के के न खण्डिताः॥

हे मांडा ! तु मत रो। सन्तोष धारण कर। इस स्त्री के हाथ में पडकर-इसके संसर्ग में आकर तू रो रहा है। मत रो। समझ कि इसके हाथ में पडकर-इसके संसर्ग में आकर कौन बचा है। भगवान राम भी नहीं बचे। रावण, मुञ्ज आदि भी नहीं बचपाये। फिर तेरी तो ताकत ही क्या है ?"

कवि इस जड वस्तुओं का लक्ष करके मनुष्य को-चेतन प्राणी को, उपदेश देरहा है-हे प्राणियों, सोचो, इनके संसर्ग से अपने को बचाओ। विषयवासना से दूर रहो। इनसे बचना सहज नहीं है। पवित्रता रखना, शीलका पालन करना अति दुष्कर है। इससे प्रतिक्षण सावधान रहो। हमारे गुरुजी कहा करते थे कि इस विषय में तो अपने हाथ का भी विश्वास मत करो। किस समय हमारा हाथ क्या पाप कर डालेगा कोई भरोसा नहीं। पल-पल पर सावधान रहो।"

घडा रोता है ?

एक स्त्री पानी भरने के लिये कुए पर गयी। घडे के गले में रस्सी डालकर उसे कुए में फेंकती है। रस्सी का एक दोर अपने हाथ में रखती है और घडा कुएमें जाकर 'डुबुक-डुबुक' शब्द करता है। कवि इस आवाज को सुनकर घडे को कहता है.—

रे रे कुम्भ कुवा विषे उतरीने पोकार तु शु करे ?
जो आयुष्य हशे हवे तुमतणु, तो तू अहिं ऊगरे॥,
जे थाशे नर नारीना ज वशमा, तेनी दशा आ थशे।
फासो घाली गला विषे, जरूर ते, ऊडे कुवे नाखशे॥

हे घडे ! कुवे में जाने के बाद अब तू क्यों रोता है ? अगर तेरा कुछ आयुष्य है तो हिम्मत रख। परमात्मा पर भरोसा कर। तू बाहर निकल सकता है। अगर आयुष्य नहीं है तो खत्म होजायगा। फिर भी पछताना क्या ? जब स्त्री के हाथ में ही पड गया तो यह तो होनाही था।

कवि घडे को लक्ष्य करके मनुष्य को यह उपदेश दे रहा है। कितना सुन्दर कह रहा है:

"जो मनुष्य स्त्रियों के फंदे में फंस जायगा उसकी यह दशा होगी कि स्त्री गले में फांसा डालकर इस ८४ लाख योनिरूप भव-भ्रमण में डालदेगी, जिससे उद्धार होने का नहीं। पुण्ययोग से अगर कहीं सत्ता बलवान हुई तो ही बच सकेंगे वरना कभी नहीं।"

स्त्रियो !

कवि के इन उपदेशों को समझिये। शील का पालन करिये। अगर आप गृहस्थाश्रम में हैं, तो मर्यादा में रहिये। मर्यादा भंग न करिये। बहुत से पुरुष मेरे पास आते हैं। साधुओं के पास जाते हैं। कि-" कोई ऐसा मंत्र बताओ कि मुझे खूब पैसा मिले।" परन्तु यह कब हो सकता है। मेरा दिया हुआ मंत्र कब फलेगा ?

मन्त्र फले, जग जश वधे, देव करेरे सानिध्य।
ब्रह्मचर्य धरे जे नरा, ते पावे नव निध ॥

(पापस्थानक चोथुं वरजिये।

मित्रो !

जन्त्र मंत्र की सिद्धि का आधार अगर किसीपर है, झाडा-झपट की सिद्धि अगर किसीपर है, नानाप्रकार की उपासनाओं को आधार अगर किसीपर है, पूजा-पाठ, भाव-भक्ति, आदि सम्पूर्ण धर्म-क्रियाऐं किसीपर टिकी हैं तो एक मात्र ब्रह्मचर्य पर। इसकी महान् महिमा है। जीवन की पवित्रता, ब्रह्मचर्य की शक्ति अगर नहीं है तो कोई जन्त्र-मन्त्र धार्मिक क्रिया यहांतक कि कोई चीज की भी सिद्धि नहीं होसकती। इसे खूब याद रखिये।

पुत्र की इच्छा से स्त्रिओं का पतन

सती सुलसा को पुत्र नहीं हुआ। लेकिन पुत्र की प्राप्ति के लिये वह साधु-संन्यासियों के रूप में रहनेवाले ढोंगियों धुतारों के पास नहीं गई। डोरा-धागा नहीं करवाया। मन्त्र, जन्त्र, जादु, टोना नहीं करवाया। लेकिन उसने देव, गुरु, और धर्म की आज्ञा का पालन किया। संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन किया। सदाचार का यथाविधि पालन किया। एक पुत्र नहीं ३२ पुत्र सुलसा को प्राप्त हुए।

आज हमारी बहनें पुत्रप्राप्ति के लिये इधर उधर भटकती फिरती हैं। गृहस्थ साधु सतो के पास भेजते हैं। नानाप्रकार की बुराइयां होजाती हैं। ऐसेही अगर साधु-सतो के देने से पुत्र होजाया करे, तो ससार कोई विना पुत्र का रहे ही नहीं। जो साधु होगया, उन्हें इन बातों से कोई सरोकार नहीं। उनके पास अपनी स्त्रियों को हरगिज न भेजना चाहिए। क़िस्मत मे अगर होगा तो पुत्र होसकता है। लेकिन न भी हो तो कम से कम ब्रह्मचर्य का तो पालन करें। हजारों रिद्धियों तुमारे पास आकर खडी होजायगी, लेकिन इन ढोंगी धुतारों से बचो। इनसे अपना सत्यानाश न होने दो।

इसलिये आप सबके लिये बुड्ढे से बुड्ढे, छोटे से छोटा युवक, स्त्री, पुरुष सब के लिये जगत् में 'लोकवल्लभ' होने का यह सुन्दर से सुन्दर उपाय है। इसका सुन्दर से सुन्दर पालन करे। आप 'लोकवल्लभ होंगे। आपका कल्याण होगा। मैंने तीन बातें लोकवल्लभ होने के लिये बतायी हैः—

(१) विनय, (२) सेवा, (३) ब्रह्मचर्य।

इन तीनों को धारण करिये। लोकवल्लभ होकर अपने जीवन का विकास करिये और अपने आत्मा को मोक्ष के नजदीक लेजाइये।

भाइओ और बहनो !

अब ३० वां गुण दिखलाते हैं।

तीसवां गुण " सलज्ज: "

मनुष्य कैसा होना चाहिये ? सलज्ज-लज्जाशील होना चाहिये। लज्जा कहते हैं शर्म को, दाक्षिण्यता को। जिसकी आंख में शर्म हो, दाक्षिण्यता हो।

लज्जालुता

एक सज्जन मनुष्य अगर हमारे से आकर कुछ करने को कहता है, हमारी इच्छा चाहे कैसी भी हों, हमारे दिलों में कुछ भी भरा हो, लेकिन उस मनुष्य की दाक्षिण्यता रखते हुए हमें उस कार्य के करने के लिये तत्पर रहना चाहिये।

हमसे कोई कहते हैः–' तुम्हें ऐसे रहना चाहिये, तुम्हारी यह आदत है, ठीक नहीं है। छोडना चाहिये तुम्हारा चरित्र ऐसा होना चाहिये। ये सारी बातें उसमें है और वो कहते है तो हमें इतनी शरम, इतना लिहाज होना चाहिये कि जिससे उनके कहने को हम मानलें। अगर हम, बडों का कहना नहीं मानते उनका लिहाज नहीं रखते, उनकी शरम न रक्खें तो हमसे बढकर निर्लज्ज और कोई नहीं होसकता। और जब हम निर्लज्ज होजाते है, उस समय नतीजा यह आता है कि, हमारे आत्मा में सब दुर्गुण भर जाते हैं। अगर इन दुर्गुणों से हम बचना चाहते हैं, तो लज्जालुता का गुण हमारे में बराबर होना चाहिये।

पतन से बचने का उपाय

घरके बालबच्चे, सभी सद्गुणी बन सकतें हैं और दुर्गुणों से बच सकते हैं, यदि वे बडों की आज्ञा माननेवाले हों। उनके प्रति शर्म रखते हैं। अगर उन्होंने बडों की शर्म छोडदी, लज्जालुता का गुण छोडदिया तो वे कभी हाथ में नहिं रह सकते।

कभी न कभी, कहीं जाकर गिर जायेंगे-उनका पतन होजायगा। आज ससार के मनुष्यों को पापसे बचानेवाला धर्म तो है सो है ही, लेकिन वान आदमियों के लिये, मात्र लज्जालुता ही पाप से बचाने में कारण होता है। आज आपमे अगर कोई दान करवाता है, पैसे परसे मूर्छा उतरवाता है तो, धर्म से धर्म कम करेंगे, शर्म से धर्म करेंगे। फलाने दिया है, फला कह रहा है, तो कुछ मुझे भी करना ही चाहिये, उनकी लाज-लिहाज रखना ही चाहिये। ऐसा समझकर आप दान-परोपकार ज्यादा करते हैं।

सम्वत्सरी का पर्व आया। आपसे उपवास होता नहीं। बडी मुश्किल पडती है। आपकी इच्छा मात्र एकासना करने की है, लेकिन किसी भले आदमीने आपको कहा- "भाई, आज के दिन तो उपवास करलो, एक दीन अगर नहीं खाया, तो मर नहीं जाओगे।" आप विचार करते हैं कि 'कुछ मुश्किल तो पडेगी, मगर जब ये भाई कहते हैं, तो चलो करलू उपवास, देखा जायगा।' यह धर्म किसने करवाया? शर्मने, लिहाजने। दिलम उस भाईका लिहाज था। आखमें शर्म थी। लेकिन जब शर्म चली जायगी तो कोई धर्म नहीं कर सकता। वह निर्लज्ज हो जायगा, निष्ठुर हो जायगा।

जैसे मान लीजिये, आपका लडका बीडी पीता है। आपको आते हुए देखता है, तो बीडी छुपा देता है। आप विश्वास रखिये-उसकी आखमें आपकी शर्म है। वह कभी भी सुधरेगा। लेकिन आप हो, चाहे मा हो, कोई हो, उसके सामने यदि बेशर्म होकर धुँआ निकालता है, समज लीजिए वह कभी नहीं सुधर सकता। उसमेंमे लज्जा का गुण जाता रहा, निष्ठुर हो गया।

इस तरह जो लडका या लडकी अभी माता पिता की शर्म म है-मर्यादामें है- अपने कुल, जाति और धर्म की मर्यादामें है, कुछ न कुछ लज्जा रखता है, वह जरूर दुर्गुणोंमे बच जायगा। नीचे गिरने से बच जायगा। धर्ममें आरूढ रहेगा। लडकी हो या स्त्री हो, किसीसे बात करती हुई विचार करेगी: 'एकान्तमें बात करती हू, मेरे माता-पिता देखेंगे या सुनेंगे तो क्या कहेंगे?' जरूर बच जायगी गिरनेमे। लेकिन जब निर्लज्ज हो जाती है, तो जाती है किसी के भी साथ घूमने-फिरने, नाटक-सिनेमा में जाती है इधर उधर भटके, होटलों मे जाय, खाया-पीया। ये सारी बातें जहा हो जाती हैं, मामला खलास है। वह फिर हाथमें नहीं आ सकती।

इस लिये मित्रो!

आप सब सोच लीजिये और यह लज्जाका गुण आपमें कितना है इसका माप निकाल लीजियेगा। जबतक यह लज्जा है, तभी तक धर्म है। और अगर शर्म चली गयी तो धर्म आपके हाथसे गया; पक्का समझ लीजिये।

एक आदमीने व्रत लेकर उसका भंग कर दिया। लेकिन उसके दिलमें कुछ भी पश्चात्ताप नहीं होता है। उसको ऊपरसे प्रायश्चित्त देना भी बेकार है। क्या करेगा वह प्रायश्चित्त लेकर ? क्यों कि उसका दिल निष्ठुर हो गया है। लेकिन, जो यह समझे कि 'मुझसे व्रतका भंग हो गया, हाय ! हाय ! ! मुझसे यह पाप हो गया; धिकार है मेरे आत्मा को।' तो निश्चय है कि अभी धर्म का अङ्कुर उसके दिलमें जरूर है। वह नीचे नहीं गिर सकता।

धर्मी ज्यादा या अधर्मी ?

श्रेणिक राजा अभयकुमार से पूछता है:-अभयकुमार ! इस नगरीमें धर्मी ज्यादा हैं, या अधर्मी ?"

अभयकुमार जवाब देता है-" धर्मी ज्यादा हैं ! "

श्रेणिक बोलता है-" अरे क्या बोलता है ? रातदिन मेरी कोर्ट में मुकदमे आया करते हैं। सिवाय अधर्म के, मैं कुछ देखता ही नही हूं। और तू कहता है धर्मी ज्यादा है। यह कैसे हो सकता है ? "

अभयकुमार उत्तर देता है-" इसका निर्णय करलीजिये।" "कैसे निर्णय करें?" "ऐसा करिये कि, इस शहर के बाहर दो बडे २ बंगले हैं। उनमेंसे एक को सफेद रंग से रंगवा दीजिये और दूसरे को काले रंगसे पुतवा दीजिये। फिर शहर में डौंडी पिटवा दीजिये कि जो धर्मी हों, वे सफेद बंगलेमें इकट्ठे हों और जो अधर्मी हों, वे काले बंगलेमें। फिर दूसरे दिन प्रातःकाल देखिये, क्या होता है ?" ऐसा ही हुक्म राजा दे देता है।

फिर सारी राजगृहीनगरी उलट पडी। हजारों लाखो की भीड लगजाती है। सफेद महल के आगे धक्कमधक्का हो जाता है, घुसते वक्त, क्योंकि सारी नगरी धर्मी थी।

उधर काले महलमें किसी का नामनिशान नहीं। अब दरवाजे बन्द करदिये जाते हैं। शामके वक्त राजा अभयकुमार को साथ लेकर वहां आते हैं। सफेद रंगवाले बंगले का दरवाजा खोला जाता है। व्यापारी निकला। उससे पूछा जाता है:-" तुम

क्या धर्म करते हो ? दिनभर तो दुकान पर बैठे कारखानों और मिलों में बैठ-बैठ गरीबों का खून चूसते जाते हो। उनकी गर्दन पर छुरीयाँ फेरते हो। और तोंद फुलाये गद्दी पर पडे सडते हो। नाना प्रकार के दम्भ, छलकपट, अन्याय, अनीति और अनाचार करते हो। तुम इस सफेद बंगलेमें कैसे घुसे ?"

वह बोलता है –"हम सामायिक करते हैं। मंदिर में जाकर लम्बा तिलक निकालते हैं। मुट्ठीभर अनाज भी किसी भिखारी को देदेते हैं। कुछ थोडा दान भी करदेते हैं। इसलिये हम धर्मी है।"

अफसर, हाकिम, वगैरह भी निकले। उनसे पूछा जाता है–" अरे! तुम तो नाना प्रकार के अत्याचार जनता पर करते हो। घूस लेते हो, निर्दोष व्यक्तियों को फसाते हो। उनपर झूठे २ अभियोग चलाते हो। नाना प्रकार की अशांति अत्याचार और अनाचार फैलाये हुए हो। तुम धर्मी कैसे हो गये ?"

जवाब देते हैं–"हम हमारे राजा के तो पक्के खैर-ख्वाह हैं। उनका राज्य कायम किये हुए हैं। उनकी भलाई कर रहे हैं। इसलिये हम धर्मी हैं।"

मजदूर वगैरह निम्नश्रेणी के लोग निकले। उनसे पूछा गया :–" तुमने क्या धर्म किया ? तुम इस बंगले मे कैसे आये ?"

वे बोले–" हम अपने को मनुष्य जाति और इन दानी कहे जानेवाले बडे २ पूंजी-पतियों की सेवा करते हैं। इनके लिये हम सबकुछ होम देते हैं। बदलेमें बहुत थोडा मिलता है जिससे हम मुश्किल से अपना शरीर टिकाया रखकर पेट भरते हैं। परन्तु उनके लिये बडी २ विलासिता से ओतप्रोत अट्टालिकाएं खडी करते हैं। विलास की हरेक वस्तु उनके लिये तैयार करते हैं। दुनियामें ऐतिहासिक भवनों का निर्माण करके देश, जाति और कौम का नाम बढाते जाते हैं। दुनिया को वस्त्रादि तथा जीवनोपयोगी वस्तुऐं देते हैं। खुद नंगे भूखे और मोहताज रहते हैं। इतना कष्ट दूसरों के लिये उठाते हैं, क्या हम धर्मात्मा नहीं ? हम पापी कैसे हो सकते हैं ?"

इसके बाद काश्तकार निकले। उनसे पूछा जाता है–" तुम यहां कैसे ?"

उत्तर देते हैं—" हम नाना कष्ट सहकर अनाज उत्पन्न करते हैं। और आपका और प्रजा का सबका पेट भरते हैं। हमारे जैसा धर्म किसका है ?"

इसी तरह कसाइयों को पूछा जाता है कि-" अरे तुम यहां कैसे।" कहते हैं- " मांस खानेवालों का पेट कोई नहीं भरता। हम भरते हैं। उनकी भूख हम बुझाते हैं इसलिये हम भी यह धर्म करते हैं। इस तरह हर मनुष्य अपने को धर्मी बताता है। कोई अपने को पापी मानने को तैयार नहीं था।

इसके बाद काले बंगले का दरवाजा खोला गया, परन्तु इसमें से सिवाय दो मनुष्यों के ज्यादा नहीं निकले। और वे दोनों थे सगे भाई। उनकी सारे शहरमें प्रशंसा थी कि-अगर सारी राजगृही नगरी में कोई पक्के धर्मात्मा, सदाचारी, और पुण्यशाली हैं तो ये दोनों भाई। उनको इस काले महलमें देखकर राजा और सारी प्रजा स्तंभित होजाते हैं।

राजा उनसे पूछता है—" आप ऐसे धर्मात्मा, संयमी और शीलवान पुरुष इस स्थानमें कैसे?" वे कहते है-" महाराज, हमारे जैसे कोई अधर्मी नहीं है।" "क्यों क्या हुआ? तुमने क्या अधर्म किया?" " हमने प्रतिज्ञा की थी कि शराब कभी नहीं पीएंगे। लेकिन हमें पीछसे मालूम हुवा कि जब हम बिमार थे तो किसी वैद्यने दवाई के कारण से शराब देदी है। इस लिये हम समजते हैं कि हम बड़े पापी है।"

हजारों लाखों के दान करनेवाले, शुद्ध शील का पालन करनेवाले, अनीतिसे बचनेवाले, नीति और न्यायपूर्वक पैसा इकट्ठा करनेवाले, परोपकारी पुरुष मात्र एक समय व्रतमें भांगा लग गया, तो कहते है:- हमने अधर्म किया और दूसरी तरफ दुकानों पर बैठ कर व्यापार करते हुए नाना प्रकार से दुनिया का गला घोंटनेवाले, गरीबों का शोषण करनेवाले, बेइमानी, असत्य, अन्याय, छलकपट और अनीति करने-वाले पापी, दम्भी, व्रतों और नीति का भंग करनेवाले अत्याचारी, व्यभिचारी आदि नाना प्रकार के पापोंसे भरे सारे के सारे राजगृही के लोग अपने को धर्मी दिखाने के लिये सफेद महलमें घुस गये। कहते हैं-"हमने धर्म किया।"

प्यारे भाइयो और बहनों!

समझ लीजिये, यह क्या बात है? क्यों इतने अधर्मी होते हुए भी इन लोगोंने अपने को धर्मात्मा दिखाने की कोशिश की। इसका एक मात्र कारण है--"निर्लज्जता।" लज्जा, शर्म और दाक्षिण्यता का गुण उनमें नहीं रहा। वे निर्लज्ज बन गये। पश्चात्ताप

जैसी सुन्दर वस्तु उनमें नहीं रही। उनकी उन्नति नहीं। आत्मकल्याण उनसे हजारों कोस दूर है।

आज भी लोगों की ऐसी ही दशा है। ससार के सारे पापो को करनेवाले, अनीति, अन्याय, छलप्रपञ्च और दम्भ में रूने झूठे पापी आज अपने को धर्मी, दानी और धर्म के ठेकेदार, समाज के अगुआ नेता-लीडर दिखलाने की कोशिश करते हैं। इन सबका कारण मात्र एक है लज्जा और शर्म उनकी घट गयी। वे निर्लज्ज और निष्ठुर होगये। पश्चात्ताप का गुण जलकर खाक हो गया। जिसके दिल में थोडी सी भी लज्जा होती है, वह विचार करता-पश्चात्ताप करता है-"अरे! रे! मैं क्या कर रहा हू? इतना अधर्म, अन्याय, अनीति करते हुए भी बाह्य आडम्बर से अपने को धर्मी दिखला रहा हू। मेरे जैसा दम्भी आदमी कोई नहीं है। धिक्कार है मेरे आत्माको।"

मित्रो!

आप इस पर विचार करें। अगर आपको आत्मकल्याण प्रिय है, तो इस लज्जाके गुण को धारण करिये। आज हम पाश्चात्य सस्कृति के चक्करमें पड कर निर्लज्ज न बनें। अगर मनुष्यजीवन सफल करना है तो बडो की लज्जा रखना, समाज, जाति और धर्म की सच्ची शर्म रखना हमारे लिये बडी जरूरी है। शर्म रखनेवाला मनुष्य अधर्म, अनीति और पापोंसे बच सकता है। यह लज्जा लाल बत्ती है, पापोंसे बचाने के लिये।

एक महानसे महान् विद्वान हो, आचार्य हो, सयमी हो, साधु हो अगर समाज का भय उसकी लज्जा और शर्म नहीं रक्खेगा, तो वह भी पतित हो जायगा। निर्लज्जता जिस समय आ जाती है, बस, कोई बात नहीं रहती।

अब इक्कीसवाँ गुण कहते हैं:—

इक्कीसवाँ गुण "सदय।"

मनुष्य कैसा होना चाहिये? दयालु होना चाहिये!

मनुष्य जाति के साथ दया का सम्बन्ध

मनुष्य मरकर फिर मनुष्य क्ब बनता है, इसके विषयमें शास्त्रकारोंने कहा है:—

सलज्जः, सदयो, दानी, दान्तो, दक्षः सदाऋजुः,
मर्त्ययोने समुद्भूतो भविता च पुनस्तथा।

इतने गुण हों तब मनुष्य मरकर फिर मनुष्य योनिमें आता है।

जिसके हृदयमें लज्जा हो, और जो दयालु हो। जिसका कुदरतसे यानि स्वेच्छा से दान देने का स्वभाव हो, किसि के दबाव से बारबार बुलाने कहने ज़ोर देने से नहीं, बल्कि स्वतः दानशाली हो। दान्त हो, जो अपनी इन्द्रियों का-इसके २३ विषयों का दमन करनेवाला हो, जो दक्ष हो, चतुर हो। हरएक शुभ कार्यो के करनेमें दक्ष हो और हमेशा जो सरल प्रकृति का रहता हो। हठी-दुराग्रही न हो। सच्ची बात को समजनेपर तुरंत स्वीकार करनेवाला हो। मान-अपमान की सच्ची बात के सामने कोई कीमत न समझे, ऐसी प्रकृति का जो मनुष्य हो वह, मनुष्य योनिसे आया है, और मनुष्य योनिमें ही जायगा।

ये गुण आपमें हैं या नहीं? आप ही इसको टटोल कर देख लें कि, इतने गुण आप में है या नहीं? या इनमें से कितने हैं?

अगर आपमें ये गुण सच्ची तौरसे हैं-आंतरिक भावना से हैं, शुद्धता से हैं, उपरी दिखावे मात्र से नहीं, ढोंग से नहीं, जीवन के हरएक क्षेत्र में घरमें, व्यापारमें, रोजगारमें हर प्राणि के साथ में व्यवहार करते समय हैं, तो आप विश्वास रखिये कि, आप मनुष्य लोकसे आये हैं और मनुष्य लोक में जायेंगे।

किसी समय मौके पर मैं बतलाऊंगा कि इन चारों गतियोंमें से आया जीव कौन है और कौन प्राणी क्या कर्म करके कैसे कौनसी गति में जाता है? यह शास्त्रकारों के दृष्टि-कोण को आपके सामने रखते हुए बतलाऊंगा।

इस समय तो इतना ही कहूंगा कि मनुष्यलोक से मनुष्यलोक में आने या जानेवाले मनुष्य में इतने गुण होने चाहिये। और इनमें से भी खास गुण हैं--लौकिक दया। यह तो जो मर कर फिर मनुष्य योनिमें जाने की इच्छा करे, उसमें अवश्य होनी ही चाहिये। अब यह 'दया' क्या चीज है?

दया के आठ भेद

मैं कह चुका हूं-किसी की दुःखी, गरीब और मोहताज को देख कर अपने दिलमें उसके प्रति करुणाभाव उत्पन्न हो, उसके लिये दर्द पैदा हो। और यथाशक्ति उसकी जरूर मदद करें, इसका नाम है दया। शास्त्रकारोंने इस दया के भेद बतलाये हैं। वे ये हैं:—

(१) द्रव्यदया:—गृहस्थधर्म में रह कर पुरुष या स्त्री कोई भी गृहस्थ के लिये जरूरी कार्य करे। खाना पीना, पहिनना, उठना, न्हाना-धोना, व्यापार करना,

कमाना, बालबच्चों का पोषण करना, घर की व्यवस्था ठीकरूप से करना आदि जो गृहस्थ के जरूरी अंग हैं, करता है। इनमें जीवों की हिंसा अनिवार्य है। पाप जरूर लगता है, लेकिन फिर भी इनका बराबर उपयोगपूर्वक संचालन करे, तो वह दया हो सकती है। शास्त्रकार इसके लिये समर्थन करते हुए कहते हैं –" उपयोगे धर्म-क्रियाए कर्म।" क्रियामें कर्म है, पाप है, लेकिन जिसके हृदयमें दया होगी वह उपयोगपूर्वक अगर ये क्रियाए करेगा तो धर्म होगा। उपयोग रक्खे, विचार रक्खे कि किसीकी निरर्थक हिंसा तो नहीं हुई। ऐसे उपयोग को रखनेवाला द्रव्य-दया का पालन करनेवाला है। ऐसा शास्त्रकारोंने कहा है।

दूसरी है भावदया —एक पापी को हमने देखा। एक घोर हिंसक शिकारी या कसाई को देखा। हमें उसे देखकर भी उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। उससे घृणा नहीं करना चाहिये। अगर हम उससे घृणा करने लगे, मार-पीट या गाली-गलोंच करने लग जाते हैं, 'साला बदमाश है, नालायक है' कहते हैं, इस तरह हमारी उसके साथमें द्वेषवृत्ति बन जाती है। तो हम भी हिंसक बन गये, ऐसा समझना चाहिए। भावदया हमारेमें नहीं रही। भगवान कहते हैं: हम मनुष्यों को यह अधिकार नहीं कि हम घोरसे घोर पापी की भी घृणा या तिरस्कार करें। हमारा कर्त्तव्य है कि हम भावदया का चिंतन करें। पापी को देखकर सोचे-' अरेरे! यह इस मनुष्यभव को पाकर इस चिंतामणि रत्न को लेकर भी आज हिंसा करता है, पाप करके अपने जीवन को खो रहा है। चिंतामणि रत्न होते हुए भी इससे कोई फायदा नहीं उठा रहा है। बिचारे को कर्मने कैसा नचाया? बिचारा यह मनुष्य, क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय आदि पापों में फसा है। कर्म की गति विचित्र है। उस शुद्ध सच्चिदानंदमयी अनंत शक्ति के धारक आत्मा को इसने पतित कर दिया है। और बन्दर की तरह नचा रहे हैं। कर्मों की गति विचित्र है।" पापी को देखकर, ऐसा विचार करे, इसका नाम है भावदया।

एक साधु, एक महात्मा, एक सदाचारी पुरुष अपने अपने कर्मों से संयोगवश पतित हो जाय, और आप सारी दुनियामें ढिंढोरा पिटवावें-' यह साधु नालायक है' 'यह आदमी पतित है।' ऐसा करने का कोई हक नहीं। शास्त्रकार कहते हैं:-"अगर पतन हो गया है किसीका, तो उसपर दया करो। भाव-दया का निरंतर चिंतन करो। कर्मों की लीला को देखो और खुद बचने की कोशिश करो। पापी मनुष्य दया के

पात्र है। प्रतिहिंसा, प्रतिशोध या निंदा का नहीं। आप पवित्र बनेंगे ऐसा चिंतन करने से। इसे भावदया कहते हैं।

तीसरी दया है स्वदया-दुनिया भर की दया करनेवाले मनुष्य को मैं पूछता हूं कि-"क्या आप अपनी भी दया कभी करते हैं ?" कभी एकांतमें बैठ कर अपने आत्मा के कष्टों के बारे में भी विचार किया है ?

"पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननीजठरे शयनम् "

"अनादि कालसे यह आत्मा ८४ लाख जीवयोनि में परिभ्रमण कररहा है। हे आत्मन् ! तेरा अभीतक उद्धार नहीं हुआ ? कर्मों के आवरण से विषयकषायों से अभी भी पृथक् नहीं हुआ। अपने शुद्ध स्वरुप को अभीभी पहिचानने में असमर्थ बना। इसकी तुझे अभीतक चिंता नहीं। अनंत काल बीत गया, पर फीर भी तू नहीं संभला। साधन मिले, सभी प्रकारकी सुन्दर सामग्री मिली, मनुष्य जन्म मिला, उत्तम धर्म, जाति और कुल मिला, पञ्चेन्द्रिय की पटुता मिली, अच्छी उम्र मिली, साधु, महापुरुषों का संग मिला, परन्तु फिर भी हे आत्मन् ! तू कोरा का कोराही रह। तेरा कल्याण नहीं हुआ ? अभी तक भी पापोंमें विषय कषायों में रच-पच रहा है। धिक्कार है आत्मा को ! हमने साधन मिलते हुवे भी अभी तक अपना उद्धार नहीं किया। जन्म-मरणके दुःखोंमें अभीतक पडा है। कभी वनस्पतिमें, कभी नर्कमें, कभी पशुओंमें। ऐसी नाना प्रकार की ८४ लक्ष योनियोंमें रहते इतने दुःख उठाये, परन्तु अभी तक तू नहीं संभला तुझे बार बार धिक्कार है। तू ढीठ होगया है।"

"हे प्रभो ! इस आत्मा का उद्धार कब होगा ? इधर भी निहारो न प्रभू ! अनादि काल हो गया, इस जन्म और मृत्यु के कष्टों को उठाते। अब तो जरा अपनी कृपादृष्टि डालो। अब तो हे नाथ ! ये कष्ट सहे नहीं जाते। इस निर्बल पर दया करो।"

इस प्रकार का चिंतन करना और इस दशामें क्रियाशील होना, इसका नाम है स्वदया। अपनी दया आप अवश्य करिये। अपने आत्मा को सम्पूर्ण पापों से बचाइयेह इसे मोक्ष के निकट लेजाइए। यही आपकी सच्ची आत्मदया होगी। आज आप न दुनिया की सच्ची दया करते हैं और न अपनी।

प्रातःकाल उठकर रोज आप इस बात का विचार करें कि मैं आज का समय भरसक अपनी दया करनेमें बिताऊं।

अब चौथी दया है परदया-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकाय। अपना दुनियादारी का कार्य करते हुए इन ६ कायों की रक्षा करें। इसका पूरा उपयोग रक्खे। अगर उपयोग रखते हुए भी किसी की व्यर्थ हिंसा हो जाय तो पश्चात्ताप करें-इसका नाम है परदया।

पांचवी दया है स्वरूप दया-कभी २ मनुष्य दया का तो पालन करता है। एक मक्खी के पांवको भी हानि पहुचाता नहीं। और एकेन्द्रिय वनस्पति पर पैर रखते हुए भी विचार करेगा कि शायद है किसी जीवकी हिंसा न हो जाय। इतना ऊंचा उपयोग रखकर सब कार्य करता है। लेकिन यह सब करता है इस इच्छासे कि ऐसा करनेसे मैं स्वर्गमें जाऊंगा। वहा देवांगनाए मिलेंगी। खूब ऐश-आराम करूंगा। ऐश्वर्यका भोग करूंगा और श्रीमंताई मिल जायगी। करोडपति हो जाऊंगा। कहीं का बडा भारी राजा या सम्राट् बन जाऊंगा। सुंदर २ स्त्रियें मिलेंगी। नाना प्रकार के भोगविलास के साधन मिलेंगे।' ऐसे निदान पूर्वक जो दया की जाती है उसका नाम है स्वरूप दया। यानि स्वरूप में-दिखनेमें दया है, परन्तु चाहते यह है कि, दया के बाधक ये पौद्गलिक सुख मिले।

निश्चयात्मक तौरसे तो नहीं कहुगा, परन्तु अक्सर करके आजकल लोग जो दया पालन करते है, इसी निदान की प्राप्ति के लिये करते है। वो नियाणा कर लेते है, यह नहीं होना चाहिये। लौकिक सुख, ऐश्वर्य हिंसाकार्य है। अन्य जीवों की हिंसा करके ही, उन्हें दुःखी बनाकर ही आप लौकिक और पौद्गलिक सुख प्राप्त कर सकते हैं, इसके बिना कदापि नहीं। ऐसे समय आपको विचार करना चाहिए, दूसरे जीवों के लिये कि "सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउ न मरिज्जउ।" लोक के सभी जीव जीना चाहते हैं। मरना कोई नहीं चाहते। फिर आप अपने आत्मा की भी जरा दया करिये। उसका विचार करिये। उसे भी इस-"पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्। पुनरपि जननीजठरे शयनम्।" के दुःखो से छुटकारा दिलाने के लिये।

ऐसा विचार करके दया के फलस्वरूप लौकिक या पौद्गलिक सुखों की इच्छा न करें। यह तो आपके आत्मा के जन्म मरण के दुःखों को भी बढानेवाली है। मात्र एकांत आत्म-कल्याण की प्राप्ति के लिये-आत्मा का शुद्ध सच्चिदानंदमय स्वरूप प्राप्त करने के लिये दया का पालन करिये।

छट्ठी दया है: अनुबन्ध दया

अनुबन्धदया उसे कहते हैं कि ऊपरसे देखने में तो हिंसा प्रतीत होती हो, परन्तु परिणाम में दया हो। जैसे कि एक गुरु शिष्य को ताड़न तर्जन करता है—मात्र इस ध्येय से कि वह चारित्रधर्म में दृढ़ रहे, उसमें स्खलित होनेपर प्रायश्चित्त देते हैं। ठपका देते हैं। ऊंच-नीच सब तरह से समझाते हैं। इसी तरह माता-पिता अपने बच्चों को कहते हैं, बड़े पुरुष छोटों को कहते हैं, उन्हें अपने नियन्त्रण में रखते हैं। उन्हें झिड़कते भी हैं। मौके पर पीटना भी उनके लिये आवश्यक होजाता है—दण्ड देते हैं—वगैरह २ करते हैं। यह ऊपरसे देखनेमें हिंसा है, परन्तु इसकी जड़में गुरु की, माता पिता की या किसी भी बड़े समझदार ज्ञानी पुरुष की निःस्वार्थवृत्ति है। उनकी हितबुद्धि है कि इनका शिष्य या पुत्र का भला हो, ये पतन से बचें। सन्मार्ग पर चढ़कर अपने ध्येय को प्राप्त करें। गुरु समझता है—"शिष्य संसाररूप अग्नि की ज्वाला से तप्त हुआ उससे बचने के लिये चारित्र धर्म की शरण में आया है। मेरे संरक्षण में आया है, मुझे उसने अपना पथ-प्रदर्शक चुना है। मेरी जिम्मेदारी होजाती है, उसका हित करूं। उसे उन्मार्गपर जाने से बचाऊं। सारणा, वारणा, चोयणा, प्रतिचोयणा के द्वारा जिस रास्ते से होसके, उस रास्ते से उसे चारित्र धर्म की शरण से गिरने से बचाऊं।" उसके लिये सब कुछ करता है। शिष्य, पुत्र, पुत्री आदि क्षणभर के लिये उस समय दुःखी होते हैं, परन्तु अन्तिम परिणाम उसका अच्छा है। अन्तिम फल दया है।

वैद्य या चिकित्सक रोगी को कड़वी दवा देते हैं। चीर-फाड़ करते हैं। छुरी और कैंची से उसके शरीर के सड़े हुए अंग-प्रत्यंग को भी काट देते हैं। उस समय रोगी को दुःख अवश्य होता है। प्रत्यक्ष में हिंसा है, परन्तु अंत उसका अच्छा है। दयामय है। अन्त में रोगी निरोग होजावेगा। सुख का अनुभव करेगा। इस प्रकार से की गयी दया को अनुबन्ध-दया कहते हैं।

सातवीं व्यवहार दयाः—इसके लिये दो बातें ध्यान में रखनी आवश्यक है। विधि और उपयोग। एक व्यक्ति दुःखी है, बीमार है, उसके ऊपर दया करके उसका दुःख मिटाते हैं। दवा बनाते हैं। पानी की हिंसा होती है। वनस्पति और अग्नि की हिंसा होती है। और भी ऐसी हिंसा उन्हें आराम करने में होजाती है।

विधि और उपयोग का ख्याल रखकर उनकी मदद करने में जो हिंसा होती है, और भी अनेक धर्म और परोपकार के कार्य करते हुए जो हिंसा होती है उसके लिये शास्त्रकार कहते हैं-यह व्यवहार दया है।

अंतिम दया है निश्चय दया। हमारा साध्य मोक्ष है। उसको प्राप्त करने के लिये सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना की जावे, आत्मा का शुद्ध सच्चिदानंदमय स्वरूप देखा जावे और केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया जावे। इसके लिये जो सच्ची एकांत दया की जाय उसका नाम है निश्चयदया।

ये दया के आठ भेद हैं। ऐसी दया का पालन करें, अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप को पहिचानें और मोक्ष को प्राप्त करें, यही हमारा लक्ष होना चाहिये।

प्यारे भाइयो तथा बहनो !

अब ३२ वां गुण कहा जाता है ।

बत्तीसवाँ गुण हैः परोपकृतिकर्मः

गृहस्थ कैसा हो ? परोपकार करने में बहुत कुशल हो । रात दिन उसकी प्रवृत्ति परोपकार करने में रहे । गृहस्थाश्रम में रहकर परोपकार करने की अभिलाषा रखनेवाला हो । चाहे वह शक्तिशाली हो, चाहे न हो, श्रीमान हो या गरीब हो, स्त्री हो या पुरुष, कोई भी हो, उसके दिल में बराबर यह भावना रहे कि कुछ न कुछ दूसरों की सेवा करुं । दूसरों की भलाई करूं । मेरी शक्ति । चाहे थोडी हो, पर उसका उपयोग मैं दूसरों की भलाई के लिये करुं । थोडी बहुत भलाई तो ये कुत्ते वगैरह जानवर भी करते हैं । पशु भी हमारी व दूसरों की भलाई करते हैं । फिर हम तो मनुष्य हैं । हमारे में विचार-शक्ति है, बुद्धि है, धर्म की भावना है, अपने लाभालाभ का विचार कर सकते हैं । इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह परोपकार करने के लिये सदैव तत्पर रहे । दूसरों की भलाइ करने की वृत्ति जबतक हमारे दिलों में नहीं है, तबतक हमारा भला भी नहीं होसकता ।

जो देता है वह लेता है

शास्त्रकार कहते हैंः " यद्दीयतेऽसौ प्राप्यते । " जो देता है वह प्राप्त करता है । हम किसी का भला करते ही नहीं हैं, किसी के साथ सहानुभूति रखते ही नहीं, और न किसी की कभी मदद ही करते हैं, तो फिर हमारा भला कैसे हो सकता है ? हमारा भला कभी नहीं होसकता । बैंक में बिना जमा रखे, किसी के हाथ की बात नहीं कि बैंक से कुछ ले आवे । रखा ही नहीं तो फिर मांगे कैसे ? और मांगे भी तो मिलेगा कैसे ? इसीलिये मनुष्य का धर्म है और गृहस्थाश्रम का तो यह खास धर्म है कि परोपकार करे । लेकिन परोपकार परोपकार चिल्लाते हैं । परोपकार चीज क्या चीज है ? यह भी समझना चाहिए ।

परोपकार किसे कहना ?

परोपकार माने दूसरों का उपकार करना, दूसरों का भला करना। दूसरों का भला करनेवाला मनुष्य अगर यह समझकर दूसरों का भला करे कि, उसके बदले में वह मुझे कुछ देगा तो यह परोपकार नहीं है। इस बातपर खूब ध्यान रखने की जरूरत है। बहुत होश्यारी से इस बात को समझिये।

आप जो कुछ परोपकार का कार्य करते है और चाहते है कि उसका बदला मिले, पर फिर भी देखा जाता है कि उसका बदला आपको नहीं मिलता यह क्यों? आपको बदला जरूर मिलना चाहिए। पर क्यों नहीं मिलता? क्योंकि आप इच्छा यह रखते हैं कि इसके बदले मे कुछ मिले यही इच्छा तो बुरी है। आपने इस व्यापार ही तो समझ रक्खा है। इसलिये इसका बदला नहीं मिलता।

दुकानपर बैठकर एक थान कपडे का दिया और उसके बदले में रुपया लिया। सिवाय इस बिजनेस के कुछ नहीं है। आज के मनुष्य जितना भी परोपकार करने की वृत्ति रखते हैं-" बदला हमें मिले " इस भावनावाले हैं तो यह परोपकार कतई नहीं कहा जासकता। जहा बदले की इच्छा होती है वहा व्यापार के सिवाय परोपकार नहीं रहजाता। परोपकार तो वह है जो " बिना किसी बदले की इच्छा रखे, मात्र अपना कर्त्तव्य समझकर किया जाय " इसका नाम है परोपकार।

परोपकार वह चीज है जहा कर्तव्य समझकर किसी का भला करने की इच्छा रहे। शक्ति है, शक्ति का उपयोग नहीं किया, तो वह नष्ट तो हो ही जायगी, इसलिये बहतर है, इसका उपयोग हम दूसरों के प्रति मात्र अपना कर्तव्य समझकर करें। नहीं तो फिर वह बिजनेस होजायगा। आज दान-पुण्य होता है, अक्सर करके देखा जाता है कि वह बिजनेस के सिवाय और क्या है? कभी ऐसी भावना न रखो कि इसका बदला मुझे मिले। फिर भी बेशक, कुदरत आपको दिये बिना नहीं रह सकती। अगर आपको कुदरत, ईश्वर या आत्मा पर विश्वास है तो निश्चिन्त रहिए। आप परोपकार, भलाई या दया जो कुछ करेंगे उसका बदला मिले बिना नहीं रहेगा। लेकिन हमारी पहले से ऐसी इच्छा रखना बुरा है। हमारी महनत और इच्छावृत्ति के अनुसार थोडा या ज्यादा बदला जरूर मिलेगा। वह तो कुदरती नियम है।

परोपकार के साधन

यही सच्चा परोपकार है। मनुष्य मात्र गरीब से गरीब और अमीर से अमीर सभी इस परोपकार का आदर कर सकते हैं। परोपकार के लिए मात्र एक पैसे की ही

शक्ति काम की है ऐसा नहीं है। मनुष्य के पास नानाप्रकार की शक्तियां हैं। तन, मन और धन की तमाम प्रकार की शक्तियां हैं। अगर पैसा नहीं है, तो शरीर से भी किसी का भला कर सकते हैं। अस्पताल में चले जाय, वहां जो गरीब, दुःखी, रोगी पडे हों, ओपरेशन किया गया हो या कोई रोगपीडित हो उसकी चारपाईपर बैठ जाइए, उसकी सारसम्हाल करिये, उसके हाथ-पैर दबाएं-ससलें। उसकी सेवा करते रहें। आपको मालूम होजायगा-सेवा का सच्चा स्वरूप। खाली बातें करने से कुछ नहीं होता। कुछ शरीर चलावें, पैसा पास में नहीं होते हुए भी इस शारीरिक सेवाद्वारा इतना पुण्य आप उपार्जन कर सकते हैं, जितना एक करोडाधिपति भी नहीं कर सकता। आप दिनोंदिन ईश्वर के नजदीक होते जायेंगे। इसलिये कि आप सच्चे दिल से दूसरों की सेवा करने को तत्पर हैं।

इसके सिवाय गरीब लोग दुःखी, दलित प्राणी बस्ती से बाहर झोंपडों में रहते हैं। ढेड, भंगी, चमार वगैरह आपके दलित बन्धु हैं। उनके पास जाइए। उनके जीवन का अध्ययन करिए। उनको क्या २ तकलीफें हैं, मालूम करिए, उनकी तकलीफों को दूर करने की कोशिश करिए। सफाई का उन्हें शिक्षण दीजिए। शिक्षा का ज्ञान दीजिए। उनकी बुरी आदतों को छुडाइए। छोटे २ बच्चों को अपनी स्कूलों में भर्ती करवाइए। उन्हें शिक्षित और उन्नत बनाइए।

नानाप्रकार की सेवा करने का अवसर आपके सामने मौजूद है, लेकिन यह सब किसके लिये है जो वास्तव में परोपकार करने के पूर्ण इच्छुक हैं। जिनके दिलों में सेवा की जिज्ञासावृत्ति है उनके लिये। निरी बातें करनेवालों के लिये कुछ भी नहीं। उनके लिये तो यह सट्टा बाजार है। सट्टे की बातें किया करें। इन बातों से कुछ लेना-देना नहीं। बस कमाते जाओ, कमाते जाओ, रातदिन खटपट करते जाओ, लुटते जाओ और लुटाते जाओ। अगर सच्ची सेवा ही करना है, तो कदम२ पर अवकाश हैं। जिसको करना है, उसके लिये कोई मुश्किल बात नहीं। अगर पैसा नहीं है, तो हर किसी तरह से अपने शरीर से भी सेवा कर सकते हैं।

वचन से भी सेवा की जासकती है। कोई दो आदमी लड रहे हों, हाथ बढाकर दोनों को रोक दो, कहो-“ आप इंसान हैं। मनुष्य हैं। आपस में भाई भाई हैं। आपस में लड़ रहे हो। कोई बात है तो संतोष से एकांत में बैठकर समझ लो। ” इस तरह से जरा खडे रहकर समझाइये। कोशिश करें। जरा अपनी बुद्धिसे किसी का भला

करें। स्त्री हो, पुरुष हो, गरीब हो, कोई भी हो-दुःखी हो, रोगी हो, उसके पास जाकर बैठिये। उसे आश्वासन दीजिए कि, 'भाई, चिंता-फिकर मत करो। यह तो सब मिट जायगा। तुम्हारी तकलीफें थोडे दिन की है। वेदनीय कर्म का उदय है। थोडे दिनो में जरुर तुम ठीक होजाओगे। घबराने की कोई बात नहीं। मैं यही रहता हूं, तुम्हारे पडोस में ही रहता हूं। तुम्हारा भाई हूं। कोइ काम-काज मेरे लायक हो, जरुर कह दिया करना।" आदि आदि। आधा रोग दुःख-सताप तो इसका, आपके इस आश्वासन से ही चला जायगा। वह आपको अन्तःकरण स आशीर्वाद देगा। कहेगाः "इसका भला हो। इसने और कुछ नहीं तो खबर तो पूछी।"

लेकिन आपके यहा तो आजकल मोटरें चली ह। हवाईजहाज उड रहे है। नाचगाना, ऐशआराम, नाटक-सिनेमा, सैर-सपाटा, इनमे ही फुरसत नहीं। बैठे मोटर मे और फुर्र। समाज के धर्म को आप भूल गये। पडोसी क धर्म को छोडदिया। नैतिकता के पवित्र बधन को काट डाला। फिर आपके पडोस में अगर कोई बीमार है, दु खी है, कोई दवापानी तक लाने और पिलानेवाला नही। समाज मे कोई विधवा बहिन है, भाई है, दुःखी है, कष्ट में है, खाने-पीने का भी इन्तजाम नहीं। आपका स्वधर्मी बन्धु है, पडोसी भी है, पर आपको इसकी परवाह? अपने ऐशआराम से ही फुरसत नहीं है आपको। आपको अपने काम से फुर्सत नहीं। सेवा परोपकार किसीका भला करने क लिये आपके पास समय नहीं। वैसे आप बहुत बनते हैं। क्या गरीबो के सहायक, परोपकार के अवतार बनने का ढोग समझते है कि इस परोपकार से, इस समाजधर्म, जातिधर्म, स्वबन्धु के प्रति अपने कर्तव्य से, पडोसी के प्रति नैतिक बन्धन-इनसे दूर रहने से आपके अस्तित्व को खतरा है। आप इन्हीं के बलपर ऊंचे बने हैं। परन्तु साथही यह भी आप याद रक्खें-यह ढोग भी आपके अस्तित्व के लिये सहायक कभी नहीं होगा। आपका अस्तित्व खतरे के खतरे में रहेगा। इनके विद्रोह की आधी का एक झोंका आपके अस्तित्व को बहा लेजायगा। आपका जीवन बेकार हो जायगा। इसलिये सज्जनो!

समय जानेपर क्या?

खूब विचार रखिए, जिस समय आपके पास शक्ति है, उस समय कुछ न कुछ जरुर करलीजिये। उसके चले जाने के बाद अगर आप हजार विचार करेंगे, तो वह

गई हुई शक्ति पुनः नहीं लौटेगी। समय चले जाने के बाद पुनः नहीं लोटता। फिर कितना भी विचार आप करिये, यह क्या काम आसकता है ? शास्त्रकार कहते हैं—

शीतेऽतीते वसनमशनं वासरान्ते, निशान्ते
क्रीडारंभं कुवलयदृशां, यौवनान्ते विवाहम्।
सेतुर्बन्ध पयसि चलिते, वार्द्धके तीर्थयात्राम्।
वित्ते नष्टे वितरणमहो, कर्त्तुमिच्छन्ति मूढा।।

ठण्ड के चले जाने के बाद उसके योग्य गरम कपडे बनवाना या पहिनना, दिन के अस्त होनेपर भोजन करना, प्रातःकाल होनेपर स्त्री से विषयसेवन करना, यौवन बीत जाने पर विवाह करना, पानी के चले जानेपर बंध बांधना, वृद्धावस्था आने-पर और यौवन-शक्ति के चले जानेपर तीर्थ-यात्रा करना-ये सारी असमय की बातें हैं। इसी प्रकार, पैसे के चले जानेपर दान करने की इच्छा, परोपकार करने का विचार मूढ लोग ही किया करते हैं।

पैसे के लिये मंत्र की मांग

एक मनुष्य के पास पैसा बहुत है। लाखों रुपयों की रेलम-छेल चल रही है। वह लाखों रु. का दानकर अमर बन सकता है। बाप का नाम अमर कर सकता है। जगत् का और साथ ही अपना भी कल्याण कर सकता है। जिस समय पैसा होता है उस समय तो आंखे खुलती नहीं हैं, लेकिन जिस दिन माल चला जाता है, नष्ट हो-जाता है, दीवाला नीकल जाता है उसके बाल-बच्चों को दूसरों के घर पर बर्तन मांजकर पेट भरने का समय आता है-उस समय महाराज के पास आवें और कहें, "महाराज! कुछ मन्त्र बता दीजिए, जिससे फिर खूब पैसा आजावे। अबकीबार तो मैं खूब दान करुंगा। आप कहेंगे तो एक बोर्डिंग भी खुलवादुंगा। शिवपुरी पाठशाला के लिये एक अच्छी रकम देदूंगा। आप कहेंगे वह सब करदुंगा।"

मेरे जैसा साधु, जिस समय आप के पास पैसे की खूब रेलम-छेल होती है उस समय परोपकार करने को कहें, किसी संस्था को मदद करने के लिये कहें, उसके लिये तीन २ दफे बुलावे. समजावें परन्तु कोई सुनने को तैयार नहीं, न कोई आवे। कुछ करो। अब जब सब चला गया, दीवाला निकलने की नौबत आयी, उस समय पास आते हैं। कहते हैं हमें कुछ मंत्र-जंत्र देदीजिए। पैसा होजायगा, तो आप कहेंगे वह सब करदूंगा।"

क्या करोगे भाई ? कुछ नहीं होसकता, मित्रो अब ! शक्तियों के चले जाने के बाद कुछ नहीं होसकता। शीत चली है, घर के अदर कम्बल है रजाईया है, ओवरकोट है, सब कुछ है, ट्रन्कों में भरे पडे है। परन्तु आप शीत आने पर तो सोचते हैं: आज नहीं, इन्हें कल निकालुगा। कल नहीं परसों, नहीं तरसों। इस तरह विचार करते २ दो सप्ताह निकलता है, महिना निकलता है। बिगड जायगा, खराब हो जायगा, कपडा ट्रन्क में से नहीं निकलता आखिर दो महिने निकल गये, तीन महिने होने आये, पर फिर भी ट्रन्क में ही पडे है। आखिर अब गर्मी आने को लगी, तब ट्रन्क खोलते है, और गरम कपडे निकाल कर ओढते है। मित्रो ! क्या काम आवेंगे अब वे ? सोचिये तो सही जरा। एक बुढिया थी। सर्दी के दिन आये। बिचारी के पास ओढने के लिये कुछ नहीं था। रात को जब ठड लगी तो सोचने लगी: घर में कुछ कपडा और रुइ पडी है। कल सुबह उठु और रजाई बनालु। सुबह हुवा, सोचा, अभी क्या जल्दी है। शाम को बनालुगी। शाम आई, शोचा अब तो अधेरा होने लगा, अब कल ही बनालुगी। रात आई खूब जाडा लगा। सोचा, सुबह उठुगी और जरूर बनाउगी। सुबह हुवा, शाम आई, पर फिर भी उसकी गुदडी नहीं बनी। योंही करते २ सारा शीयाला निकल गया। सोचने लगी: " अब गुदडी की क्या जरुरत है ? गरमी तो आगई है। चलो अगले शीयाले में बनाउगी। " परन्तु इसतरह तीन-चार शीत आई और इसीतरह होते २ बुढिया की उम्र खतम हुई। परन्तु गुदडी नहीं बनी सो नहीं बनी।

मैं पूछता हु आपकी शीतऋतु कितनी गई ? पैसा कमाते गये, १ लाख, २ लाख, ३ लाख, ५ लाख और २५ लाख हुए। परन्तु आज नहीं, कल कुछ दान करुगा। नहीं परसों, नहीं फिर। नहीं फिर । इसीतरह फिर-फिर करते २ एक दिन आता है, जब 'राम नाम सत्त है' 'फिर' २ करते चले ही गये । मरने के समय डोकटर आता है। नाडी देखकर कहता है: " जैरामजी की। मामला खतम है। " उस समय लडका आता है। हाय ! हाय !! पिता चल जारहे हैं। कानोंमें आकर कहता है - " बापुजी ! आपके पीछे १० हजार फलाने काममें दुगा । " बापुजी की तो ठठरी किधरही चली जाती है। उधर बेटा कहता है कानमें।

अय पैसेदारो ! मालदारो ! कहता हु: जानेसे पहले अपने हाथ से जिस समय तुम्हारे पास पैसा है, कुछ खर्च करलो। जितना होसके अच्छे २ कार्य करलो। उस समय

कुछ पुण्य उपार्जन करलो। जितना होसके, अच्छे २ कार्य करलो। अपना नाम भी करलो। परने बाद क्या होगा ? आपका लड़का कैसा निकलेगा ? आपके पैसे का कैसे और क्या उपयोग करेगा, कौन जाने ?

जिस समय हम कुछ कर सकते हैं, जिस समय हम हरेक प्रकार की शक्तियों-तन की, मनकी, धनकी रखते हैं उस समय आत्मकल्याण नहीं करलिया। उस समय दूसरी भली परोपकार की बातें नहीं करली। फिर हमारी शक्तियों नष्ट होने के बाद दूसरों का भला करने की इच्छा करेंगे तो इससे क्या होने जाने का है ?। उस समय तो हम खुद दूसरोंसे सेवा करवाने के लिये बाध्य होंगे।

सेवा करना अच्छा या कराना ?

इस बात को खूब याद रक्खो। मैंने एक पुस्तक में भी लिखा है कि 'मनुष्य ने दूसरों का भला करने के लिये, उपकार करने के लिये इस संसार में जन्म लिया है। दूसरों से सेवा लेने के लिये नहीं।" अगर हरेक मनुष्य, क्या भाई और क्या मेरी ये बहनें, इस बात का निश्चय करलें कि हमारे शरीर से, मनसे, धनसे, यथाशक्ति जितना होसकेगा, दूसरों का भला करेंगे, परोपकार-सेवा करेंगे, दूसरों के दुःखों को-कष्टों को दूर करेंगे-मैं कहुंगा कि आज संसार सुखी होजाय। जिस दिन आपकी शक्तियां हीन होजॉय, और दूसरों से सेवा कराने का आपके लिये अवसर आजाय, उस दिन आप अपने दिलों में पश्चात्ताप करें कि 'कहां तो मैंने संसार में जन्म लिया था दूसरों की सेवा करने के लिये, और कहां, यह आज मेरी दशा होगयी है कि दूसरों से अपनी सेवा करवानी पड़ती है। मेरी लाचारी है-अफसोस है।"

इस तरह महानुभावो ! यह मनुष्यजन्म इतना श्रेष्ठ है कि इसमें रहकर आप सब-कुछ कर सकते हैं।

मनुष्य और पशु की तुलना

जितनी यह श्रेष्ठ है, उतनी ही अगर कोई नापाक और नालायक भी है तो यही एक मनुष्य जाति।

संसार के संपूर्ण जानवर कहेजाने पशु-पक्षी भी प्रकृति के अनुसार दीगई अपनी २ शक्ति के अनुसार अपने २ धर्म को बराबर निभाते हैं। प्रकृति के विरुद्ध कभी नहीं आचरण करते। और फिर जितने ये संसार के जानवर हैं, सभी संसार के लिये उपकारी

है। वे जीते वक्त तो उपकारी है ही, परन्तु मरने के बाद भी ससार का भला ही करते हैं। मनुष्य के लिये एक कविने लिखा है:—

> येषा न विद्या, न तपो न दानम्, न चापि शील, न गुणो न धर्म ।
> ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

कवि कहता है:-" मनुष्यरूप में जरुर जन्म हुवा है परन्तु जिसमे विद्या, तप, दान, शील आदि गुण नहीं है, धर्म भी नहीं है, अपने कर्त्तव्यों से परे है, आत्मकल्याण की जिसे चिन्ता नहीं, तथा प्रयत्नशील भी नहीं–वह इस लोक में जन्म लेकर भी मनुष्य के वेष में वह एक मृग है और इस पृथ्वीपर विचरण करता है "

ऐसे मनुष्य को कविने ' मृग ' की उपमा दी है। मृगोंने जब यह सुना कि हमारी उपमा ऐसे मनुष्यो से दी ह तो बडे ही दुखित हुए। कवि की यह बात उन्हें बडी बूरी लगी। वे कवि को कहते है–" हे कवि ! क्या तूने यह समझलिया है कि, इस धरातलपर हम ही सबसे बुरे हैं, जो हमारी उपमा ऐसे अधम मनुष्यो से दी जाती है। यह तुमने हमारे साथ अन्याय किया है। ऐसा नराधम तो हमसे भी ज्यादा नालायक है, क्योंकि देखो–" हम दुनिया के लिये कितना काम करते है:-सगीत बजानेवाले को हम आत्म–समर्पण करदेते हैं, किसी राजा–महाराजा या किसी शिकारी को हम अपने सींग देदेते हैं। हमारे सींग उनके घरों की शोभा बढाने के काम करते है। मास खानेवालों को हम हमारा मास देदेते हैं। जीवित रहनेपर भी हम किसीका नुकसान नहीं करते। जंगलों में रहते हैं। घासफूस खाकर अपनी जिन्दगी गुजारते हैं। जीवित अवस्था में हमारी आखों की उपमा स्त्रियों को दीजाती ह। सुन्दर आखवाली स्त्री को 'मृगाक्षी' कहते हैं। ' मृगनयनी' कहते है, इसतरह से जीते रहनेपर। और मरनेपर। हमारे चर्मपर योगी महात्मा बिराजते है। हमारी उपमा ऐसे नराधमों से देना। हे कवि ! हमारे प्रति घोर अन्याय है। कवि होकर ऐसा अन्याय मत करो। "

कवि न्यायी था। उसने मृग की बात मजुर करली। उसने अपनी गलती सुधारने के लिये कह दिया-"मनुष्यरूपेण पशवश्चरन्ति। " मनुष्य रूपसे मृग नहीं, पशु चरते हैं।

कविने जहा ' पशु ' का नाम लिया तो सभी पशु बडे दुखी हुए। गाय आगे आकर बोली-" कवि, ऐसा अन्याय मत करो, हम पर। हमारी उपमा ऐसे नराधमों

से मत दो। हम तो मनुष्य जाति के बड़े उपकारी है। जंगलों में घास खाते हैं जो किसी के कुछ काम में नहीं आती, लेकिन इसका भी बदला हम दे देती हैं। इससे भी बढ़कर। हम दूध देती हैं-दुनिया का सर्वोत्कृष्ट पदार्थ-जिसे पीकर आप अपने दिमाग, बल और शरीर को पुष्ट करते हैं। रोगों से दूर रहते हैं। इस दूध की मैं क्या प्रशंसा करूं? कवि! तुम खुद हम से भी ज्यादा इस चीज की प्रशंसा करते हो। हम बैल भी पैदा करते हैं। कहो कवि! क्या इस बैल के महत्त्व के विषय में भी मुझे तुमसे कुछ कहना होगा? इतनी अमूल्य निधियां देकर हम क्या जगत की कोई सेवा नही करते?। परोपकार नहीं करते?। अरे कवि! इतना ही नहीं, मरने पर हम अपना चमड़ा भी तुम्हारी रक्षा के लिये दे देते हैं। तुम्हें कङ्कड, पत्थर, सांप-बिच्छु आदि जहरीले जानवर, कांटे आदि के कष्टों से बचाकर न जाने कितना आराम हम इस मनुष्य जाति को देते हैं। मांस भी दे देते हैं। यहां तक कि हड्डी भी दे देते हैं। हमारा कोई ऐसा अंग-प्रत्यंग नहीं बचा, जो मनुष्य जाति के लिये न हो। हम तो अपना गोबर और मूत्र भी जगत की भलाई के लिये दे देते हैं। इतनी बात होने हुवे भी, तुम हमारी उपमा ऐसे नराधमों से दे रहे हो। इतने निष्ठुर हमारे प्रति मत बनो कवि! न्याय की हत्या मत करो।"

कवि घबरा जाता है। सोचता है, सचमुच मैंने इसकी उपमा देकर अन्याय किया है। कवि क्षमा मांगता है उनसे। फिर उपमा देता है घासकी।

घास घबराकर कवि से कहती है:-"हे कवि! ऐसा भी मत कहो-हमारे प्रति भी अन्याय मत करो। हमारी उपमा भी ऐसे नराधमों से न दो। माना कि हम छोटी हैं। बोल नहीं सकतीं। हमारे सिरपर कोई भी हमें दलन करता हुवा चला जाता है। हममें प्रतिकार करने की शक्ति नहीं। परन्तु कवि अन्याय का इतना बडा पहाड तो हमारे पर मत ढाओ। हम भी अपना धर्म निभाते हैं। पशु और मनुष्य जाति दोनों का भी हम उपकार ही करती हैं। हमें खाकर पशु-गाय, भैंस, बैल बकरी, घोडे इत्यादि पुष्ट होते हैं। दूध जैसी अनमोल वस्तु हम में से ही उत्पन्न होती है। हमारा फिर खाद बनता है, जो आपके नाज के खेतों के लिये अति उपयोगी वस्तु होती है। हमारे में कई प्रकार की ऊंची २ किस्म की जडीबूटियां होती हैं। वनस्पतियां होती हैं। वैद्य हमें पाकर फूले नहीं समाते। रोगों से पीडित मनुष्य हमारे द्वारा शांति पाकर हमें और हमारे स्वामी वैद्यराज की शतशत प्रशंसा करते हैं। कवि! तुम ही हमारी अप्र-

शसा के पाप के भागी न बनो ! हमारा उपकार न भूलो कवि ! ”

कवि को उनकी प्रार्थना मंजूर करनी पड़ी । कवि हैरान होगया । वह कोई उपमा न देसका, ऐसे नराधमों के लिये । जानवर पशु-पक्षी यावत् घास मिट्टी से लेकर तमामने इसीतरह अपने को इस उपमा से बचाया । कवि को अत में कहना पडा कि, ऐसों को उपमा देने के लिए ससार में कोई पदार्थ नहीं । ससार के सब पदार्थों से गयागुजरा अधम है तो कर्तव्य से भ्रष्ट, परोपकारहीन एक मनुष्य ही है, जिसने ससार में आकर कुछ भी नहीं किया ।

ऐसे मनुष्य का तो शरीर भी कुछ काम नहीं आता, उल्टा उसे जलाने के लिये या गाडने के लिये कुछ खर्च और करना ही पडता है । अगर वैसे ही छोडदिया जाय तो मारे दुर्गंध के आसपास में सैंकडों को रोगग्रस्त बना डाले । महामारी फैलादे । जीवित था, जब भी किसी के काम नहीं आया । सिवाय फूट फैलाने, कलह कराने, लोगों को नानाप्रकार के सकट देने, और मनुष्य जगत मे विषमता पैदा करने और विष मय बनाने के और मरने के बाद भी कुछ काम नहीं आता । अगर जमीन में गाड-दिया जाता है तो भी निकम्मा है । उल्टा गडन के बाद भी झगडे करवाता है। खून-खराबी करवाता है । कब्रों के नामपर पाखण्ड भी फैलाने से बाज नहीं आता । अगर जलादिया जाता है तो खाक होकर उठ जाता है । बतलाइये ऐसा मनुष्य किस काम आया ?

३६० हीरे

प्यारे भाईओ, सब लोग कहते हैं कि–मनुष्य जन्म चिंतामणिरत्न समान है, परन्तु उसकी सार्थकता कितने करते हैं ? सारा जन्म तो दूर रहा, एक दिन भी सफल होजाय तो भी गनिमत है ।

साबरमती नदी के किनारे एक सेलडी (ईख, गन्ना) का खेत था । किसान खेतमें एक झोंपडी बनाकर उस पर बैठ कर चिडियों वगैरह को उडाता रहता था।

एक समय की बात है । उसी नदी में पूर आया । उस किसान ने देखा कि, नदी में एक घडा बहता हुआ जा रहा है । उसने विचार किया कि, इस घडेको मैं निकाल लाऊ । वह किसान नदी के पूर में कूद पडा । और घडा बाहर ले आया । झोंपडी में आकर घडे को खोलता है तो उसमें से कुछ पत्थर के टुकडे निकले । वह अपने कपालपर हाथ धरता है । सोचता है:–‘ मेरे जस गरीब आदमी की किस्मत में

सिवाय इन पत्थरों के टुकड़ों के हो भी क्या सकता है ? खैर ! "पत्थर बडे सुन्दर और चमकदार और एक सरीखे गोल थे।" चलो गोफन से फेंकने और चिडियों के उडाने के ही काम में आजायेंगे।" लिये वे पत्थर के टुकडे उसने हाथमें और गिने तो वे गिन्ती में ३६० निकले। सोचा उसने: "आज दिनभर तो काम आजायेंगे।" ली गोफन हाथ में और फेंकना शुरु किया। पत्थर चिडियोंको ऊडाते हुए नदी में गिरते है। यों आधा दिन जाते २ आधे से ऊपर उन टुकडों को उसने फैंक दिया। दोपहरका वक्त होगया। उसकी स्त्री रोटी लेकर आयी। वह ऊपर से नीचे उतरता है। इतनेमें ऊपरसे उन पत्थरों में से एक कंकड़ नीचे गिर गया। स्त्री के साथ लडका भी नीचे खडा था। उस लडके की नजर उस नीचे गिरे हुए कंकड पर पडी। उसे बडा सुन्दर चमकीला और गोल लगा। उस लडके ने उसे उठालिया। स्त्री थोडी देर बाद घर चली गयी। लडका भी वह कंकड लिये उसीके साथ है। इधर वह किसान फिर मचानपर चढ गया और चिडियों ऊडाने में शाम होते २ सब कंकड खतम करडाला।

उधर वह स्त्री अपने बच्चे को साथ लिये घर जारही थी। जब बाजार में से होकर निकली तो एक जोहरी के नोकर की नजर उस बालक के पास रहे कंकडपर पडी। उसने उस स्त्री को बुलाया। कहा-"क्या मैं इस बालक के हाथ में रही हुई इस चीज को देख सकता हूं ?" देखकर वह बोला:-"बाई ! क्या तुम यह चीज मुझे दोगी ?"

बाई बोली:-"इस लडके से लोगे तो यह रोएगा, मेरे यहां ऐसे बहुत से कंकड हैं। तुम चाहो तो मैं कल लावूं।"

जौहरी का लडका बोला-"मैं इस बालक को खिलौने देदूं, इसके बदले।"

बाई बोली:-"तब तो कोई हर्ज नहीं। लेलो।"

उस जौहरी के लडकेने बाजार से तोता, मैना, कबूतर, मोर वगैरह २ दस-वीस खिलौने उस बालक को दिलवा दिये। बालक खुश होगया। और वह चीज, जिसको वह कंकड समझे हुए थी, उस जौहरी के लडके को देदी। और खुशी खुशी घर गयी।

वह हीरा था। जौहरी का नौकर उस हीरे को लेकर सेठ के पास गया। सेठको बतलाया। सेठ रोटी खाने को बैठे थे। सेठजी चारों तरफ देखकर नोकर से कहते हैं-"क्यों इसका सौदा हुआ कि नहीं ?"

" होगया । " नोकरने जवाब दिया ।

" कितनी कीमत लगाई ? " सेठने पूछा ।

" कुछ ज्यादा नहीं । अपने को कोई नुकसान नहीं । कुल २० पैसे की कीमत के कुछ खिलौने दिये हैं । " नोकर बोला, और उसने उस हीरे के पाने की सारी कहानी अपने सेठ से कहदी ।

सेठ बोलाः-' ऐसा कीमती हीरा ! मेरी अपनी जिंदगी में मैंने नहीं देखा । यह लाखों की कीमत का हीरा है । तूने इसे २० पैसे में खरीद कर ठीक नहीं किया । हीरेवाले को ठगना अच्छा नहीं । उसे बुलाओ और ठीक कीमत उसे दो । "

नोकर गया बाई के पास । कहता है-"बाई ! तुम्हे सेठसा० बुलाते हैं । " बुलाने का नाम सुनकर बाई डरी । सोचा उसने कि-" कहीं सेठ ठपका न दे । हमने एक कंकड के बदले इतने पैसे के खिलौने लेलिये, इसलिये । उसने कहा आदमी से भाई । लेना ये तेरे खिलौने । हमारा लडका नहीं चाहता इन्हें । हमारा वह पत्थर का टुकडा हमें वापिस करने की भी जरुर नहीं । "

नोकर ने उसे समझाया कि " सेठ तुझे इस वास्ते नहीं बुलाते है । कुछ और बात कहनी है । "

बाई जाती है सेठजी के सामने । अपनी मर्यादा से खडी होजाती है । सेठ बोलते हैं-" बाई ! तुम्हारे लडके के हाथ से जो कंकड मेरे नौकरने लिया है, इसे तुमको उसकी कीमत के एक लाख रुपये देते हैं । यह २५ हजार का बंगला है । २५ हजार के ये गेहने हैं । बाकी ५० हजार नकद देते हैं । वह कंकड नहीं है, बहुमूल्य हीरा है । "

एक किसान जाति की बाई, १ लाख का नाम सुनकर पगलीसी बन गयी । दौडी २ अपने पति के पास पहुंचती है, कहती है-" चलो-चलो ! घर चलो ! अब यह सब कुछ छोडो । खाने दो चिडियों को यह खेत । हमें अब इसकी चिंता नहीं । सब आराम होगया है । वह जो पत्थर अपने यहां पडे थे उसमें से एक सेठनीने लिया था अपने लडके से । उसके लिये उन्होंने एक लाख रुपये दिये हैं अपने को । वह कंकड नहीं है हीरा है, ऐसा सेठजी कहते हैं ।"

सुनकर वह कृपक दुःखी हुवा । सेठके पास जाता है और अपना सिर पकड-कर रोता है ।-" अरे मेरे बापरे ! "

आप जानते हैं वह क्यों रोया ? उसे तो खुशी मनानी थी कि, एक लाख रुपया मिलगया। परन्तु नहीं। वह किसान समझ रहा था कि इतने ३६० हीरों में से एक हीरा मेरे लडके के हाथ में रहगया; जिसका एक लाख रु. मुझे मिला। अगर वे ३६० हीरे रहजाते, और मैं उन्हें योंही चिडियां उडाने में न फैंक देता, तो आज मेरी कितनी उन्नत दशा होती ?" उसके दिलमें बहुत पश्चात्ताप होने लगा।

प्यारे मित्रो ! ये अनमोल ३६० दिन एक वर्ष के आपको भी मिले हैं। अब आपकी उम्रके वर्षों के हिसाब से इन दिनो को गिन लीजिये। अब बतलाइये-आपके इतने दिनों रूपी हीरों में हीरा एक भी सफल हुआ है ? अगर कृषक की तरह से एक दिन भी आपका सफल होजाय तो आपका फिर बेडा पार है। आपका कल्याण है। आपको कोई जरुरत नहीं रहेगी फिर दुनिया में भ्रमण करने की।

आपका मोक्ष होसकता है, बशर्ते कि एक भी दिन पूरी तरह सफल करलें।

प्यारे भाइयो तथा बहनो !

जीवन- विकास के साधनों में ३२ वा गुण गृहस्थों के लिये कल दिखलाया गया था' परोपकृतिकर्मठः।

मनुष्य अपने जीवन के अंदर परोपकार करने के लिये, बराबर मजबुत रहे। मनुष्ययोनि के प्राप्त करते हुए, सुंदर शरीर के प्राप्त करते हुए, सारी शक्तियों के मिलते हुए भी अगर दूसरो का भला करने की वृत्ति हम अपने दिलों में न रक्खें तो समझ लेना चाहिये कि हम पशुओ से भी गये गुजरे हैं।

कल बताया था कि, संसारमे जितनें पशु और पक्षी आदि जानवर हैं, वे सब भी जबतक संसार में रहते हैं, कुछ न कुछ दूसरो का भलाही करते हैं। मरने के बाद भी उनकी चीजें दूसरों के काम आती हैं, परन्तु मनुष्य जाति ही ऐसी है, जो जीते जी अगर कुछ करले तो करले, वरना मरने के बाद तो उसकी कोई चीज काम मे नहीं आने की। इसलिये आप लोगों का धर्म है कि दूसरों का भला करने मे आप हमेशा तल्लीन रहें। परन्तु एक बात ध्यान में रखें। आप मजदूर न बनें। परोपकार करके प्रत्युपकार की भावना न रखें, नहीं तो आप मजदूर बन जायेंगे। मजदूर मजदूरी करता है, और थोडा सा बदला मिल जाता है। उसके परिश्रम का पूरा बदला उसे कभी नहीं मिलता। ऐसे बदले की भावना रखकर किया गया उपकार, एक प्रकार की मजदूरी अथवा जैसा मैंने कहाथा–व्यापार है। मान, सम्मान, इज्जत, कीर्ति, टाइटिल अनेक प्रकार के एड्रेस–मानपत्र वगैरा २ किसी भी प्रकार की आशा को रखते हुए अगर कुछ भी उपकार का काम आप करते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि आप मजदूरी कर रहे हैं। ऐसे परोपकार नहीं कहाता।

राजा सुखी क्यों नहीं ?

विहार करते २ मैं एक समय एक अच्छे राज्य में गया था। वहां के

राजाने मुझसे कहा:- " महाराज ! इतनी माल, मिल्कियत, इतने महल मकानात, स्त्री-पुत्र, परिवार, धन धान्य से पूरित मेरा राज्य होते हुऐ तथा मेरे इतना सुख प्रजा को पहुंचाने और परोपकार करने पर भी मुझे सुख क्यों नहीं ? क्यों मेरा मन सदा दुःखी रहता है ? "

मैंने एक ही जवाब दिया कि-" आप जितना भी कुछ करते हैं, अपना कर्त्तव्य समझकर नहीं करते । आप समझते हैं-मैं अपने स्त्री-पुत्र, परिवार, धन, माल, प्रजा आदि का मालिक हूँ । इतने सब ऐश आराम का स्वामी हूँ । इस प्रकार का स्वामित्व-भाव रखकर आप, लोगों की भलाई आदि कार्य करते हैं। इस लिये आपको सुख नहीं है, दुःख होता है । आत्मा के सच्चे स्वभाव को आपने नहीं पहिचाना । आत्मा इन झूठे अस्थिर आडम्बरों और मिथ्याभिमानसे घबराता है। दुःखित ही रहता है । सुख का अनुभव कभी करता नहीं । वैसे भी आत्मा की-अंतःकरण की इस स्वाभाविक आवाजको कुचल दे, न सुनें और अपने को सुखी मानलें, पर वास्तवमें सुखी नहीं हो सकेंगे । सुखी तभी होंगे, जब आत्मा की आवाजको सुनकर चलेंगे । अपना कर्त्तव्य समझकर सभी अच्छे कार्य करेंगे । परोपकारादि-लोगों की भलाई के कार्य करेंगे और समझेंगे कि मुझे परमात्माने यह सबकुछ देकर प्राणीमात्र की सेवा करने का अवसर दिया हैं । मेरा धर्म है, इस वैभव से निर्लिप्त रहकर-तटस्थ रहकर सबका भला करूं । सबके दुःखों को दूर करूं । अपने नोकर-चाकर, आश्रितादि जितने हैं, उनके सुखदुःख का पूरा ध्यान रखूं । इतना समझकर प्राणीजगत् की सेवा करते रहेंगे, तो आपके दिलमें कभी दुःख नहीं होगा । "

आज एक प्रजा का सेवक दुःखी क्यों होता है ? आज हमारे प्रजा के सेवकों में आपसमें वैमनस्य क्यों होता है ? झगडेबाजी, दलबंदी आदि क्यों होती हैं ? इतने वाद क्यों चल रहे हैं ? इन सबका कारण मात्र एक है और वह है सच्ची सेवा के महत्त्व को समझे नहीं। स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, कर्त्तव्यका अभाव। धर्म के असली रहस्य को जाना नहीं । ये सेवा करने लिये काम नहीं करते, बल्कि अपनी बात को रखने के लिये, जगतमें पूज्य कहलाने के लिये, जगत् की प्रशंसा प्राप्त करने के लिये, और ज्यादा क्या कहूं, अपने सेवाधर्म के निर्मलव्रत को छोडकर अपने हृदय में छिपी हुई किसी भी प्रकार की स्वार्थवृत्ति को पूरी करने के लिये काम करते हैं।

वादों का जहर कब मिटेगा ?

जिसदिन कर्त्तव्य समझकर काम करेंगे। " हमने मनुष्य जन्म पाया है, साधन मिले हैं, हमें अपना कल्याण करना है, अपना जीवन सफल करना है " ऐसा जानकर किसी तरह से भी यथाशक्ति देश, जाति, समाज और धर्म का कुछ भलाकर जायें। इस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर जगत् की सेवा जब हम करेंगे, तभी हम सुखी होसकेंगे। वैमनस्य, दलबन्दियाँ और ये वाद से पैदा हुई समस्त बुराइयाँ दूर हो जायेगी। अपना कर्त्तव्य समझकर सेवा करते रहनेपर, फिर चाहे कोई हमारी प्रशसा करे अथवा न करे, टाईटिल, मान-इज्जत, सम्मान मिले या न मिले, हमारी बात रहे या न रहे, इसकी इच्छा या परवाह कतई न करें। हमें तो किसी भी तरह कुछ न कुछ यथाशक्ति सच्ची दिली निष्कपट सेवा इस जगत की करजाना है। बस इतनी बातें जिस दिन हमारे में आजायगी, उसदिन हम सुखी होजायेंगे। पराधीनतासे सच्ची मुक्ति पालेंगे। हमारे कॉंग्रेस के लीडर, प्रजा के कार्यकर्ता, धर्म के सेवक, जाति और समाज के कर्णधार आपस के वैमनस्य से टल जायेंगे। पार्टिबधी की भावना खत्म होजायगी। " वाद " सभी भले ही क्यों न रहो, परन्तु जो रहजायेंगे, उनके अदर का जहर धूलजायेगा। साहित्यिक क्षेत्र की अथवा वाग्विलास की एक वस्तुमात्र बनकर रहजायगी क्रियात्मक क्षेत्र में हम सब एक होंगे। एक बात और है। जबतक कोई सेवक या परोपकारी, सिद्धात वादी नहीं होगा और उसपर रहेगा नहीं, वहा तक वह सच्ची सेवा नहीं करसकता, सिद्धात का मतलब यहा "वाद" नहीं, यह बात जरा साफ कर लें।

सिद्धान्त क्या चीज है ?

सिद्धात ! हमारे सिद्धातों पर हमें चलना चाहिए। साधु-साधु है। पूज्य महाव्रतों को लेकर अपना और ससार का उपकार करते चला है, सतत ध्यान रखता है वह साधु कि अपनी या ससार की भलाई करते हुए कहीं मैं अपने सिद्धांतो से-इन पञ्च महाव्रतों से हीयमान न होजाऊ। अगर अपने सिद्धातों से पतित होकर, अपने व्रतों-महाव्रतों को भग करके समाजकी सेवा करने गया, तो समजलेना चाहिए कि वह साधुपनें में नहीं रह सकता। अपनी और जगत की सच्ची सेवा नहीं कर सकता।

इस लिये महानुभावो ! आपका धर्म है परोपकार करो। जितना हो सके इतना करो। परतु गुपचुप करो। आडबर तथा बाहरी दिखावों की कोइ जरूरत नहीं। धुमधाम

की कोइ जरूरत नहीं। आडंबर धुमधाम तो वे करते हैं जिनको नाना प्रकार के तुच्छ स्वार्थों की आकांक्षा है। कुत्सित स्वार्थ भरी इच्छासे हैं। आप इस आडम्बर से बचें। इनसे किसी का भला होने का नहीं। यथाशक्ति जितना होसके स्वार्थ और आडम्बर रहित होकर आप दुनियाका भलाकरें। बहुत से लोग दुसरे के आडम्बरों का विरोध करते हैं, परन्तु जब वे स्वयं नेतागिरी पर आते हैं, किसी होदे या लीडर बन जाते हैं, तब वे स्वयं इतना आडंबर–धूमधाम लोगोंसे करवाते हैं, जिसकी हद नहीं। इतना ही नहीं, जिस दुराचार और भ्रष्टाचारकी, जिस लांच और रिश्वतकी वे बुराईओं करते हैं, वे बातें स्वयं करते हैं। इसीको मैं 'अपने सिद्धान्तों' पर नहीं रहना कहता हूं। और यही कारण है। परन्तु वे अपने स्थानों को नहीं छोडते, इसका क्या कारण होना चाहिए? । यह कहने की आवश्यकता नहीं है। आज कई बड़े नेता तक भी बडी बडी लेक्चरबाजी झाडते हैं, परन्तु बहुत कम असर होता है। कइओंका भयंकर अपमान तक होता है। अब तेतीसवा गुण कहते हैं।

तेत्तीसवाँ गुणः "सौम्यः"

सौम्य क्या चीज है? शांत स्वभाव। दो प्रकारकी शांतता होती है। एक बाहरी और दूसरी आंतरिक। दोनों प्रकार की शांति रखनेवाला 'सौम्य' पुरुष संसार में कुछ न कुछ भला काम कर सकता है और अपने आत्मा का कल्याण भी कर सकता है।

दो प्रकार की सौम्यता

हमारे मुख पर इस प्रकार की शांतता, सौम्य तथा हमारी आँखों में वह अमी (अमृत) हो व शीतलता हो कि चाहे कैसा क्रूर से क्रूर प्राणी भी हमारे सामने आजायतो वह भी थोडी देरके लिये अपनी क्रूरता भूल जाय। और ठण्डा हो कर हमारे सामने बैठ जाय। हमें देखते ही उसके दिलमें हो जाय कि यह बडा गंभीर शांत और सरल आदमी है। सच्चा सेवक मालूम पडता है, और इसका आतमा बडा पवित्र है। ऐसा विश्वास जबतक सामनेवाले के दिलमें न होगा तबतक हमारे वचनों का सच्चा प्रभाव उस पर नहीं पड सकता। आकृतिके लिये नीतिकार कहते हैः–"आकृतिः गुणान् कथयति।" अर्थात् आकृति गुणों को प्रकट करती है। अगर इस सौम्य प्रकृति से विपरीत तामस वृत्ति है, गुस्से की प्रकृति है, तो चेहरे की आकृति लालसुर्ख रहेगी। आँखें लाल होंगी। हर किसी के साथ वह लडाई झगडा करने लगेगा। ऐसे आदमियों के वचनों का दूसरों पर क्या असर होसकता है?

प्रकृति के ऊपरसे शात और गभीर होने के अलावा अदरसे भी शाति होनी चाहिये। यह आतरिक शाति तो मूल चीज है। आतरिक शाति के होने पर ही ऊपर मुख की शाति, सौम्य, गाभीर्य आदि गुण प्रकट होते हैं। हमारी आंतरिक शाति समुद्र की तरह गभीर होनी चाहिये। किसी समय कोई हमारा अपमान करजाय, लेकिन हम क्षमाशील, शात प्रकृति के बने रहे।

क्रोध किसका परिणाम है ?

मैं अभी दिखलाउगा कि-क्रोध, दुष्टता, तिरस्कार, अपमान, शिस्तका भग आदि मनुष्यता के विरुद्ध वर्तन वही कर सकता है, जो कमजोर है। कमजोर के अतिरिक्त पुरुषार्थी, हिम्मती सौम्य प्रकृतिवाला कभी ऐसा वर्तन नहीं कर सकता। हमारे यहा एक सामान्य भाषामें कहावत है-" कमजोर गुस्सा बहोत " मनुष्य नाना-प्रकारकी लालसाएँ रखता है। मुझे यह मिलजाय, वह मिलजाय, और माल मिलजाय, धन-दौलत मिल जाय, ऐसी भावना होती है, परन्तु जब वह चीज नहीं मिलती है तब उसके दिलमें क्रोध या चिडचिडापन उत्पन्न होता है। और अशाति पैदा होजाती है।

मनुष्य सौम्य प्रकृति रक्खे। शात सरल हसमुख और प्रसन्नवदन रहे। दिलमें धैर्य और सन्तोष रक्खे। कोई चीज की प्राप्ति हो या न हो, हमारी इच्छा की पूर्ति हो या न हो, कोई मान दे या न दे, कोई सम्मान करे या विरोध करे, निन्दा करे या स्तुति, कोई कुछ भी करे, करनेवाले को करने दीजिये। आप अपनी सौम्य प्रकृति रक्खें। हर समय प्रसन्न वदन रहें और इस तरह अपनी मनुष्यता को सार्थक करें। देखियें फिर इसका परिणाम कितना अच्छा आता है ?। सत्य की विजय हमेशा रहती है। आप भी विजयी होंगे। निंदक, क्रोधी, दुर्गुणी, तामसिक स्वभाववाले कभी जीवनमें विजयी नहीं होसकते। सुख नहीं प्राप्त कर सकते, इसे खूब याद रखिये।

शत्रु को आशीर्वाद

हम अपने इस सौम्यता के गुण से, अगर किसी से हमारा मतभेद भी है तो उसे भी हम राजी करसकते है। मतभेद हो जाना स्वाभाविक है, परन्तु हरएक सिद्धांतवादी विरोध से डरकर अपने सिद्धांत को दबा नहीं सकता। लेकिन एक बात जरूर है कि हमारे

दिलों में विरोधी के प्रति वैषम्य भाव नहीं आना चाहिये। कटुता नहीं आनी चाहिए। उनके प्रति भी हमारा सौम्य भाव बराबर रहना चाहिये। शांति और नम्रता से अपने सैद्धांतिक मतभेदों को समझने और समझाने की कोशिश करनी चाहिए। सच बात तो यह है कि अपने विरोधीओका–शत्रुओंका होना कोई बुरी बात नही है। शत्रुओं के रहने से हम हमारे धर्ममें कर्तव्य में सावधान रहते हैं। इसलिए कहा है–" जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव येषां प्रसादेन विचक्षणोऽहम्।"

आप तो अपने दिलों में यह भावना रखिये कि हमारे शत्रु, हमारे विरोधी हजारों वर्षों तक जीते रहें, ताकि किसी न किसी दिन अंत में हम उनको भी अपना मित्र बना-लेंगे। फिर उनकी कृपासे हम हमेशा सावधान रहें कि, कहीं कोई गलती न कर बैठें, सन्मार्ग से च्युत न हो जायें। आज अगर इस मानव कहलानेवाले प्राणी के सिर पर दुश्मन न होते, विरोधी न होते, निंदा और विरोधका डर न होता, मृत्यु का भय न होता या किसी प्रकार का भय न होता अथवा किसी मानवेतर सत्ता का इस पर अंकुश न होता, तो यह मानव भयानक दानव बनजाता। मानव मानव को खाजाता। इस मानव को आज पापों का डर है। निंदा का डर है। उस परम प्रभु परमात्मा का डर है। और प्रकृति का इस पर कठोर अंकुश है। इन भयों के कारण यह कुछ न कुछ पापोंसे बचा है। और सद्धर्म तथा सन्मार्ग पर थोडा समयभी निकालता है और परमात्मा के अनुग्रह का आकांक्षी है।

हमें चाहिये, हम अपने शत्रुओं, विरोधीयों या निंदकों को हजार वर्ष जीने का आशीर्वाद देते रहें। शत्रु उन्हीं के होते हैं जिनके पास शक्ति होती है, साहस और पराक्रम होता है। इसलिये उससे जो कमजोर होता है, वही निन्दा करने के लिए तैयार होजाता है। गुस्सा करने को तैयार होजाता है। लेकिन हमारा क्या कर्त्तव्य है?

कम खाना और गम खाना

हमें सौम्यता रहें। हम शांत रहें। क्षमा करें, और गम खायें। 'कम खाना' और 'गम खाना' सबसे बडी चीज है। इनके बारेमें पहले काफी कह चुका हूं। वेद-वेदान्त पुराण-इतिहासमें, जैन सिद्धांतो में दिये गये सम्पूर्ण उपदेशों का सार अगर कोई है तो वह है कि हम अपने शरीर को पुष्ट करे। पुष्ट करने का मतलब यहां निरोग रखने से हैं, क्यों कि कहा हैं–' शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' और आत्मा को पुष्ट करें। इन दोनों की पुष्टि का साधन है ' कम खाना ' और ' गम खाना।'

इसकी आदत हम अवश्य रक्खें। यह मूलकी बात है। अगर देखा जाय तो, इस सिद्धान्त से उत्तम कोई दूसरा सिद्धान्त ही नहीं।

इसलिये महानुभावो! सौम्य प्रकृति रक्खें। आपको जिस वक्त राजमें, व्यापारमें, रोजगारमें, घरमें, बहन-भाई पुत्र-परिवारमें जब भी कभी किसी भी कार्यमें क्रोध करने का मौका आ जाय, उस समय शाति धारण कर लीजिये। 'गम' खा कर बैठ जाइए। देखिये, कितना मजा आता है। बोलनेवाला बोलकर थक जायगा और आप अपनी शांति के कारण विजय प्राप्त करेंगे। दुनिया आपकी प्रशसा करेगी कि "ओह! यह कितना सौम्य है! ऊफ तक भी नही करता, और वह लबाड बकता ही रहता है।" उसे दुनिया लबाड कहेगी, उसकी प्रशसा नहीं करेगी।

कुटुम्बक्लेश का कारण बहनें हैं

मैं अपनी बहनों को भी खासकर यही कहता हूँ कि आपके घरों में ज्यादा कलह खासकर इन्हीं बाइयों की वजहसे होता है। गृहस्थाश्रम में अगर क्लेशका बीज कहीं से शुरु होता है तो हमारी इन बहनों से होता है। वो सहोदर भाई एक माता के पेट से होनेवाले, बडे प्रेम और आनदसे आपस में रहते है। व्यापार, रोजगार, खान, पान-जो कुछ करना चाहिये, सभी बडे प्रेमसे वे करते है। लेकिन, जिस समय उनकी शादी हो जाती है और स्त्रियों आती हैं, देवरानी और जेठानी हो जाती हैं, बस, उसी समय से खिट-खिट् शुरु होजाती है, उस घरमे क्लेष का बीज तभी से पडजाता है। इसके बारें में मुझे ज्यादा नहीं कहना, आजकल तो घर २ में यह प्रत्यक्ष है। पति-पत्नी की कानाफूसी चलती है। फिर बात बात पर देवरानी जेठानी की, देवर भौजाई की और भाई-भाई की आपस में बोलाचाली होती है। वैमनस्य बढता ही जाता है। रुकने का नाम नहीं। और तब आखिर में दोनों अलग अलग होकर अपना पिण्ड छुडाते हैं। यह हैं हमारी इन बहनों का प्रताप! इस दावानल को घर में सुलगानेवाली हैं।

माताओं और बहनो, जो बहनें ऐसा करती हों, उन्होंने ख्याल करना चाहिए। बुरा न मानना, अगर ये बात सच है, तो इस दावानल सुलगाने के भयानक पाप से बचना। इसीमें सबका कल्याण है। तुम्हारा, तुम्हारे पति का, पुत्र का और समस्त परिवारका। तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत बडा है। आप चाहें तो इन घरों को स्वर्ग बना सकती हो और चाहो तो नर्क। यह मात्र तुम्हारे हाथ की बात है। इसलिये मेरा तुम्हें ही ज्यादा कहना

है कि इन घरोंको नर्क बनानेसे बचाओ, नहीं तो याद रक्खो ! सनातन सत्य है कि जिस घरमें क्लेश है, जहा दावानल रात–दिन जलता रहता है, उस घरकी ऋद्धि–सिद्धि श्री, मान–मर्यादा सब मिट्टीमें मिल जाती है। यह घर बरबाद हो जाता है यह मैं पहले भी कह चूका हूं। जो समाज और देश ऐसे गृहोंसे ऐसे गृहस्थाश्रमों से बने है, वे भी बर्बाद हो जाते हैं यह भयानक दृश्य है। कल्पना मात्र से रोम–रोम काँपने लगता है। मेरी बहनों ! अपनी शक्ति से इस समाज और देशको बचालो। तुम हमेशा से शक्ति का स्रोत रही हो। आज भी अपनी उसी शक्ति को प्रकट करो। उसकी जरूरत है। वह बुरा दिन न आने दो, जब कि यह घर २ में जलता हुवा दावानल देश जाति व समाज को ही रसातलमें ले जाय !

पुरुषों से मेरा कहना है—" अपनी भी प्रकृति सौम्य बनाओ। थोडा सहन करने की शक्ति रक्खो। जितना भी सहन करोगे, शांत–प्रकृतिवाले बनते जाओगे उतने ही सुखी हो जाओगे।"

अब ३४ वां गुण कहते हैं :–

चौतीसवां गुण :–अन्तरगारिषड्वर्गपरिहारपरायण।'

धर्म के योग्य वही गृहस्थ होसकता है जो ६ अंतरङ्ग शत्रुओं को जीतने की कोशिश करता है।

वे अंतरशत्रुओं के नाम इस प्रकार हैं :-

(१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ (५) काम और (६) मोह।

शत्रु दो प्रकार के होते हैं, एक बाह्य और दुसरे अन्तरङ्ग। बाह्य और अंतरंग क्या चीज है ?

बाह्य और आंतर शत्रु

हम लोग यह समझ रहे है कि अमुक मनुष्य ने मेरा बुरा किया–अहित किया। हम उसको दुश्मन समझते हैं। उसके वैर की वसुलात वेर से लेते हैं। हम भी उसका बुरा करने को उद्यत होजाते हैं। परिणाम यह आता है कि दोनों बुरे होजाते हैं। वह उसके लिये बुरा और दुश्मन और वह उसके लिये बुरा और दुश्मन। दो स्त्रियोंमें तकरार हुई। पहली दूसरी को कहती है 'रांड,' और दूसरी पहली को कहती

है 'छिनाल'। अब दोनो मे सती कौन है, बतलाइए ? कोई नहीं। इसी तरह वैर की वसूलात वैर से लेनेवाले भी दोनो बुरे हैं। परिणामस्वरूप आज ससार में बुराइयाँ ही बुराइयाँ नजरमे आरही हैं। यह सब क्यो और किसलिये ? इसलिये कि हम ससार के मनुष्योने एक दूसरे को ही अपना दुश्मन समझ लिया है।

सच्चा शत्रु कौन है ?

तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय कि एक मनुष्य बुराई करता है, तो बुराई का बदला बुराई से लेने का हक ही हमें नहीं है। इस बेहक को हक समझने का नतीजा है, कि आज की दुनिया में बुराइयाँ ही प्रायः नजर आती है। अगर उस बुराई को मिटाना चाहते हैं, तो उसे दूसरी बुराई से मत मिटाओ, बल्के अच्छाई से मिटाओ। वह बुराई बिलकुल मिट जायगी। नामनिशान भी उसका नहीं रहेगा। यदि तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो यही सिद्ध होगा कि, वह बुराई करनेवाला हमारा असली अहितकर्ता नहीं है। वह तो निमित्त मात्र है। हमें निमित्त कारण को नहीं देखना है। हमें तो उपादान कारण—असली कारण को पकडना है और उसे खतम करना है। अब, उस निमित्त से बचने का सच्चा उपाय क्या है ? देखना चाहिए कि जो बुराई हमारी वह कर रहा है, वह बुराई हमारे आत्मा में है, तो उसे त्याग करदेना चाहिए। सचाई को ग्रहण करना चाहिए और उस बुराई करनेवाले का उपकार मानना चाहिए। यदि वह बुराई हममें नहीं है तो निश्चित रहना चाहिए, चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। उसे बुराई, निंदा वगैरह करने दीजिए। वह अपने खानदानका परिचय देता है तो देने दीजिए। उसे आप क्यों रोके ? आप अपनी खानदानी सभालिए। सज्जनता न छोडे। अपनी सज्जनता, खान-दानीपन को बराबर सभाल कर बैठे रहें। बस, यही उपाय है, अपने बाह्य शत्रुओ पर विजय पाने का। अगर आप सच्चे पथ पर हैं, तो खामोश रहकर बैठिए। विश्वास रखिए कि, सचाई छिप नहीं सकती। जिस समय सत्य के सूर्य का प्रकाश होगा, लोग अपने आप देख लेंगे। बुरेको अपने आप बुरा समझ लेंगे। आपको डांडी पीटने की जरूरत नहीं पडेगी। बस यही उपाय है, अपने बाह्य शत्रुओं पर विजय पानेका। तात्त्विक दृष्टिसे फिर यह भी सोच लीजिए कि, वह बुराई क्यों करता है ? हमारे अशुभ कर्मों का उदय है। उसके द्वारा हमारे अशुभ कर्मों का फल

मिलना चाहिए। और उसके भी अशुभ कर्मों का उदय है । इसलिये नीच गति प्राप्त करने के लिये, निंदा और बुराई के द्वारा तैयारी कर रहा है। वह आप की दया का पात्र है। आप उस समय अपना आत्मचिंतन करिये। आपको हजारों, लाखों कर्मों की निर्जरा हो जायगी। दुनिया में आपको इज्जत मिल सकती है और सभी तरहसे शांति मिलसकती है। इसलिये संसार में रहनेवाले मनुष्यों को अपना दुश्मन न समझें। वह हमारा वास्तव में बुरा नहीं करता। हमारे अशुभ कर्म भोग का समय है, और उस के अशुभ कर्म उससे बुरा करवाते हैं। खूब याद रखिये। दुःख यह हमारी भूल का नतीजा है। यह मैं ने कई बार कहा है। फिर चाहे वह भूल हमने इस भवमें की हो या पूर्वजन्ममें। है यह भूल ही, जिसकी वजहसे हम कोई भी दुःख उठाते हैं। और अन्य कोई कारण नहीं।

जैसे हम समझें, कोई हमारी निंदा करता है, बुराई करता है, और हमारा दुश्मन होकर खडा है। तो यह निश्चित है कि, किसी समयमें इस भवमें या पूर्व भवों में हमने कोई गलती जरूर की थी, जिसका नतीजा इनके द्वारा हमें भुगतना पड रहा है। ऐसे समय हमें चाहिए कि समभाव से उसे भोगें। उसके साथ वैर करके फिर नये कर्म न बांधें, नया कर्ज न लें। पहले का लिया हुआ कर्ज चुका दें। कर्ज चुकाते समय खुशी होना चाहिये कि यह हमारा प्यारा भाई, आज, जब कि हमारे पास समभावरुपी खजाना भरा है, दिया हुवा कर्जा हमसे लेने आया है, बडी खुशी की बात है। हमारा कर्ज हम खुशी से चुका दें। अपना कर्ज का बोझा हलका करलें। इस तरह सोचकर हम नये कर्ज नहीं बांधेंगे, पुराने कर्ज से हलके होते जाएंगे।

इसलिये आपको चाहिये—इन अपने अन्तरङ्ग शत्रुओं को जीतें। इनको जीतने पर इन बाह्य शत्रुओं का तो कोई भय ही आपको नहीं रहेगा और फिर क्रमशः इन्हें भी अपना मित्र और प्रशंसक आप बना लेगे।

अब अन्तरंग शत्रु कितने हैं? इसका जरा विवेचन करता हूं। वैसे तो १८ पापस्थानक, जिस का वर्णन मैं आगे करूंगा। वे अन्तरंग शत्रु ही हैं, परन्तु उनमे से छे शत्रु मुख्य गिने हैं।

क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह और काम। ये हमारे अन्तरङ्ग शत्रु हैं। हम जब तक इन अंतरंग शत्रुओं को नहीं जीतेंगे, जीतने की कोशिश नहीं करेंगे, तब तक हम कल्याण के मार्ग पर नहीं आसकेंगे।

, जैसा कि मैंने एक दफे कहा था-आपकी पत्नी रसोई बनाती हैं। आप हमेशा उसकी प्रशंसा करते हैं। आपको अति प्रिय है उसका रसोई बनाना। परन्तु अगर किसी दिन भूल से उससे दालमें नमक जरा सा ज्यादा गिर गया, तो आप सारी थाली को ठोकर मार कर उठ जाते है। नाना प्रकार की गालियाँ उसे सुना देते हैं। पत्नी अगर जरा पढी लिखी है तो आपको जबाब भी देने लगती है। आपका गुस्सा भडकता है। आपसमें मार-पीट करने पर उतारू होजाते हैं। पडोसी इकट्ठे होजाते हैं। आप दोनों को लडते देख हसते हैं।

प्यारे मित्रो, यह कौनसी चीज है जिसने आप पति-पत्नी, जो लडाई से पहले आपस में बडे प्रेम से रहते थे, वैमनस्य खडा कर दिया? और पडोसियों के बीच आपकी हसी करायी?। जानते है आप उस चीज को? आपका एक दुश्मन आपके शरीरमें घुस गया था। कौन दुश्मन मालूम है? क्रोधरूपी आपका अन्तरङ्ग दुश्मन। यह आपके शरीरमें घुस गया था। उसने आपको आपे से बाहर कर दिया। भले बुरे का विवेक आपसे छीन लिया। आपको बदनाम कराया। आपके प्रेमको भूला दिया। इस शत्रुने बडे बडे महायोगी तपस्वियो के शरीरमें घुसकर उनका योग और तप तक भ्रष्ट करवा दिया है। समाज और जाति जातिमें, देश देशमें और मनुष्य मनुष्यमें आपसमें कलह कराया है। उन्हें नीचे गिराया है। इसकी भयङ्करताके बारे में मैं ज्यादा क्या कहू!। पहले भी बहुत कुछ कह गया हू। इसको जीतने के लिये मैं आपको दो तरीके बताता हू।

क्रोध के जीतने के दो उपाय

एक तो आप सहनशील बनिये। पत्नीने अगर दाल में नमक ज्यादा डाल दिया था तो आपको चाहिये था कि आप सहनशील रहते। सोचते: "इन्सान है, भूल तो हो ही जाती है। अगर इतने दिनों में आज इनसे भी भूल हो गयी है, तो क्या हो गया? क्या मेरे से कभी भूल नहीं होती?। मैंने भी तो सैकडो इससे भी बडी बडी भूलें की हैं।' ऐसा सोचकर आप कलहके लिये तैयार न हो। अगर दाल अच्छी नहीं बनी है, तो उस कटोरी को अलग रख दीजिये। दूसरी चीज साग वगेरह हो, या न हो तो एक दिन वैसे ही चुपचाप खाकर चले जाइए। उस समय आपकी पत्नी से कुछ न कहिये। जिस समय आपकी पत्नी भोजन करने बैठेगी और दाल में नमक ज्यादा

लगेगा, उस समय अपने आप समझ जायगी। आप की तारीफ करेगी। आपके प्रति उसका प्रेम-भक्ति अपार हो जायगी। सोचेगी-"देखो मेरे स्वामी मुझे कितना चाहते हैं। मेरा दिल कहीं न दूखे, इस विचारसे इतना नमक होते हुए भी मुझे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऊफ तक नहीं की और चुपचाप खाकर चले गये"। पश्चात्ताप भी करेगी और आयंदा से ऐसी गल्ती कभी न करेगी, इसके लिये क्षमा मागेगी।

मित्रो! मालूम हुआ आपको इतना पश्चात्ताप किसने करवाया? क्रोधने? नहीं। क्रोधने नहीं। सहन-शीलता के भाव ने। आप भी अगर यही चाहते हैं कि-प्रेम की गंगा आप अपने घरोंमें, समाजमें और जाति तथा धर्म में वहती रहे, सच्चा आनंद आपको प्राप्त हो और आप सच्चे सुखी हों तो, सहनशील बनीए, क्रोधको जीतने का यही उपाय है सहनशीलता।

दूसरा तरीका क्रोधके जीतनेका मैं बताता हूँ-प्रातःकाल उठकर प्रतिज्ञा कर लीजिए कि "आज ६ बजेसे ७ बजे तक मैं क्रोध नहीं करूंगा, चाहे कैसा भी मौका आ जाय। शांत और सहनशील रहुंगा।" इस एक घंटेकी प्रतिज्ञा को आप बराबर सोचते रहेंगे। शायद कहीं क्रोध न हो जाय। और संभव है, आपको ऐसा निमित्त मिल जायगा कि जिससे आपकी आंख लाल हो जायगी। परन्तु सम्हल जायेंगे। इस तरह करते करते आपका अभ्यास हो जायगा। मन पर कावू आ जायगा। रोज एक घन्टे से लेकर धीरे २ इसी तरहसे महिने दो महिने में डेढ घंटा, दो घंटा वढाते रहना और इसपर दृढभावनासे आचरण करते जाना। अवश्य एक दिन आपके लिए ऐसा आवेगा कि, क्रोध क्या चीज है, आप समझेंगे भी नहीं। यह मैं निश्चयसे कहता हूं। यह अभ्यास कभी निष्फल न जायगा। इसका नतीजा यह आवेगा कि, इस निश्चित समय में आप गुस्से को रोकते रहेंगे। मान लीजिये, आपके घरमें एक सेर दूध आया हैं। वह गिर गया, किसी के भी हाथसे-लडकेसे या आपकी पत्नीसे। लडकेने आकर कहा कि-"पिताजी! एक सेर दूध आया था, वह गिर गया।" ७ का समय आपने रक्खा हैं। आप गुस्सा न करने की प्रतिज्ञामें हैं। तत्काल यह विचार आवेगा आपको-"जाऊं और उसे पीटूं।" पर साथ ही ख्याल आवेगा कि, "अभी ७ नहीं बजे हैं। ७ बजने के बाद पीटूंगा।" कदाचित आपका गुस्सा तीव्र हो और इसी बीचमें आप पीटने के लिये उठें, तो आपकी प्रतिज्ञाका समय मालूम होनेसे आपकी पत्नी आपसे कहेगी-"स्वामिनाथ! आपने गुस्सो न करने की प्रतिज्ञा की है। ७ बज के बाद

पीट लेना । अभी तो आप खामोश रहिए ।" आप ठण्डे हो जायेंगे । इसी तरह और भी कोई मौका आवेगा, तो आप गुस्सा करने से बचे रहेंगे । महिने तक इसी तरहसे कोशिष करिए । फिर एक घटा–आधा घटा जैसा आप अपने लिये ठीक समझें चढा लीजिये । इस तरह करने से आप क्रोध को बिलकुल भूल जायेंगे ।

यही बात मैं अपनी बहनों से भी कहता हू कि अगर आप अपने सन्तान का, और अपना भी कुछ कल्याण करना चाहती हों, तो आप भी इसी तरह प्रतिज्ञा द्वारा इस क्रोधको जीतें ।

इसी तरह धीरे २ दूसरे कषायों को, अवगुणो को मद करना चाहिये । मैं सादी से सादी बात आपको कहता हू–आप धीरे २ इन्हें छोडिये । आप एक घटेकी प्रतिज्ञा करिये कि मै इस घटे के समय में झूठ नहीं बोलुगा । चोरी आदि नही करूगा। निश्चय से समझ लीजिये, इस तरह धीरे २ अभ्यास करते २ कुछ वर्षो में ही मालूम हो जायगा इसका प्रभाव । आप भूल जायेंगे कि क्रोध क्या चिज है ?

कुछ वर्ष पहले बडोदामें मेरी व्याख्यानमाला चली थी । उस व्याख्यानमाला को सुनकर वहां के एक बडे महानुभावने प्रतिज्ञा की कि–मै ६ से ९ बजे तक आज क्रोध नहीं करूगा ।' कहते है, उनको बात बात में क्रोध आ जाता था, उसदिन वे खाना खाने को बैठे । और सब वस्तु इनके भोजनमें थी । सयोग से उस दिन नौकर वही वस्तु रखना भूल गया, जो उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय थी । क्रोध उनके दिलमें भभक उठा । मुठियों बन्द करके और दांत कडकडाकरके नोकर को आवाज दी । उतने में अपनी तीन घटे की प्रतिज्ञा याद आयी । 'अरे, ६ से ९ बजे तक गुस्सा नहीं करने की मैंने प्रतिज्ञा की है। यह क्या कर रहा हू' बस, विचार आते ही ठण्डे हो गये। तीन घन्टे के बाद नोकर को बुलाकर कहा जरूर पर कहा बडे मिठास और शान्ति से । मित्रो ! अभ्यास और प्रतिज्ञाका यह फल है ।

इन बातों को आप समझिये । क्रोध हमारा क्या पतन नहीं करदेता है ! असंख्य भवों की सचित पुण्यराशिको भी, लाखों–करोडों वर्षो की तपस्या, साधना और योगादि को भी क्षणभरमें खत्म कर डालता है । अगर आत्मा की सची भलाई की इच्छा है आपमें, तो आजसे इस अभ्यास को शुरु करदीजिए । आपका जरुर भला होगा । आप इस पिशाच से निर्भय हो जायेंगे ।

प्यारे भाइयो और बहनो!

क्रोध के बारे में आपको बतला चूका हूं। अब 'मान' का विषय लेता हूं।

मान क्या चीज है?

मान-अभिमान की उत्पत्ति किसी विशिष्ट चीज की प्राप्ति के कारण से होती है। कोई भी एक चीज हमको प्राप्त होजाय, जिसके कारण से हमे अभिमान होता है, अगर वह चीज नही प्राप्त होती, तो कतई अभिमान न होता। पैसे की प्राप्ति हो जाय, सुन्दर शरीर, उच्च जाति, कुल, नाना प्रकार के संयोग, नाना प्रकार का ऐश और ऐश्वर्य की सामग्री मिलजाय जिसके कारण से मनुष्यको अभिमान होता है।

अभिमान का नतीजा यह आता है कि वह चीज हमसे दूर हो जाती है, जिससे हमें अभिमान पैदा हुआ। एक चीज को प्राप्त करके अभिमान करने से उससे गीर जाना इससे तो बहतर है कि वह चाजि प्राप्त ही न हो। अभिमान करके उस चीजसे हम भ्रष्ट होजायें अथवा उसका दुरुपयोग करें, फिर वह हमें दुर्गतिमें लेजाय, इससे वह चीज न मिलती, तो बहुत अच्छा था। संसारमें ऐसे अभिमान नाना प्रकार के होते हैं।

आठ प्रकार के मद

लेकीन शास्त्रकारोने मुख्य ८ प्रकार के अभिमान-मद कहे हैं। सबका समावेश इन आठमें होजाता है।

जाति-लाभ-कुलैश्वर्य-बल-रूप-तप.श्रुतौ।
कुर्वन्मदं पुनस्तानि हीनानि लभते जनः॥

जाति का मद:-

जाति का मद करना पाप है। हम उच्च जाति के तो तभी गिने जासकते हैं, जब हमारे उच्च आचार विचार हों। उच्च जातिमें उत्पन्न होते हुए भी अगर हमारे आचरण शुद्ध नहीं हैं-खाली कहने के लिये 'उच्च' कहे जाते हैं, तो उसका

नतीजा कुछ नहीं। ऐसे तो ससार में अनादि काल से असख्य जातियाँ उत्पन्न हुई, और नष्ट होगयीं, उन जातियो का कोई पता तक नहीं चलता। इस कालमें। फिर हम किस बात का अभिमान करें? मनुष्य अपने आत्मा का अगर विचार करे कि, हम नाना प्रकार के दुराचारों का सेवन कर रहे है, अनेक प्रकार के व्यसनो का सेवन कर रहे हैं, नाना प्रकार के अन्याय अनीति कर रहे है, धर्म से हजारों कोस दूर है और दिलों में फिर अभिमान करें कि हमतो बड़े उचजाति के हैं। यह कैसा अभिमान! किस बात का अभिमान?

आत्मा किसका ऊचा है और किसका नीचा है? सच्चिदानदमय आत्मा कौन उचा और कौन नीच? आत्मा के गुणों का विकास जितना होता है, उसका माप निकाला जाय तो मालूम होजाय कि हम कितने ऊच हैं।

लाभ का मद।

लाभ अनेक प्रकार के होते हैं। इज्जत, सत्कारादि का, पैसे टके का, पुत्र परिवार का-किसी का भी लाभ होवे परन्तु उस पर अभिमान करना निरर्थक है। मनुष्य भूलजाता है कि यह लाभ किस कारणसे हुआ है? लाभान्तराय कर्म टूटने के कारण हुआ है। क्षणभर का बन्ध टूटा तो हमें लाभ हो गया। यही क्षणभर बाद फिर बन्ध का उदय नही आवेगा, यह कौन कह सकता है? थोडी देर के लिये लाभांतराय के टूटनेसे कुछ पैसा कर लिया, लेकिन कौन कह सकता है कि, यह पैसे की प्राप्ति हमेशा के लिये कायम रहेगी? ससार की विचित्रताओं को देखते हुए कौन जाने कब क्या हो सकता है? यह आना जाना तो लगा ही रहता है। फिर हम किस बात पर, किस पैसे पर, किस लाभ पर अभिमान करें? दुनिया में आज आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि कल के लक्षाधिपति आज के भिखारी बन गये है और बनते जा रहे हैं। यह प्रतिक्षण का भूगोल और इतिहास बदल रहा है। हम किसी भी बात का अभिमान करें तो कैसे करें?

लेकिन मनुष्य ऐसा प्राणी है कि, उससे रहा नहीं जाता। थोडी २ इज्जत, मान-सम्मान कीर्ति हुई नहीं कि अभिमान तो जरूर ही आ जायगा। मानरक्षा हम खो रहे हैं मात्र इस अभिमान के कारण से। अभिमान आने पर वह माता-पिता, गुरु आदि किसीको नहीं मानता, बल्कि बुराईयों और दुश्मनावट करनेका तैयार होजाता है। इसलिये मेरे प्यारे बन्धुओ, अगर आपको अपने आत्मा के कष्टों के लिये, अपना

आत्मा के शत्रुओं के लिये सच्चा दर्द है, आप इससे वास्तव में दुःखी है-दुःख अनुभव कर रहे हैं, तो निर्ग्रन्थो की इस आवाज को सुनिये- उन महापुरुषों के सद्वचनो को सुनिये, जिन्हे कोई स्वार्थ नहीं। जो आपसे कुछ भी लेना नहीं चाहते। आपके दुःखों से दुःखी होकर, आत्मा की पुकार को सुनकर, आपको पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि " ओ आधिव्याधिउपाधि से पिडित मानव! समझ, जिस बात के लिये हम अभिमान करते है वह व्यर्थ है। आत्मा के लिये अत्यंत हानिकारक है। कभी किसीकी बात का अभिमान मत करो। संसार की विचित्रता को रात-दिन ध्यानमे रक्खो। सोचो जो आज मिला है, किसी दिन चला जायगा- वह नहीं भी गया, तो हम खुद भी तो चले जायेंगे। अभिमान करने की कोई आवश्यकता ही नहीं।"

कुल का अभिमान

इसी तरह उच्च कुल का अभिमान। उच्च कुल वही है, जिसमें ऊंची खानदानी है, उदारता है, दयालुता है, परोपकारवृत्ति है, पापभीरुता है, ये सब बातें पूर्वपुण्यके उदय से मिलती हैं, फिर उसका अभिमान क्या ? किस बातका ? क्यों ?

ऐश्वर्य का मद

ऐश्वर्य यह है-सत्ता, बड़प्पन, सेठाई, राजत्व किसी प्रकार का ओहदा, इसका भी अभिमान मनुष्य करता है। उसको कहते हैं ऐश्वर्य का अभिमान। मान, ऋद्धि-सिद्धि, समृद्धि प्राप्त होने के बाद लोग अभिमान कर लेते हैं। आजके लोग, अधिकारी-समाज, राज-समाज, दूसरी समाज, सेठशाहुकार सत्ता पर आरूढ हो कर कितना अभिमान करते हैं ? परन्तु वही सत्ता जब चली जाती है, और मनुष्य उस मदसे नीचे गिरजाता है, उस समय उसकी क्या दशा होती है ? आज रोजाना ऐसे उदाहरण देखने में आते हैं। जब कि हर किसी बात का यह परिणाम है तो फिर अभिमान किस बातका ? हिन्दुस्तान के कलके राजाओं की आज क्या दशा है ? अंग्रेजो की क्या दशा हुई ? और मिनिस्टरों की भी क्या दशा हो रही है ? अभी जो हैं। वे कल उस स्थान से दूर होंगे। तब उनकी दशा क्या होगी ?

बल का मद।

अब बल का मद देखिये। एक बलवान मनुष्य रोगादि कारणों से दुर्बल बन जाता है। उस समय वह कितना दयापात्र बनता है ? बल के मद का क्या परिणाम आता है। जरा, देखिए।

बाहुबली का बलमद

भरत और बाहुबली, दोनो ऋषभदेवके पुत्र । दोनों सगे भाई । राज्यसत्ता के कारण दोनों लडे, खूब लडे, अपने अपने बलोंका परिचय दिया । बाहुबली ने जब देखा कि मेरी एक मुट्ठी से मेरा भाई जमीन में धस जायगा, चुरचुर होजायगा, तब उसी मुट्ठी का उपयोग केशलुंचनमें करके वे साधु हो गये । जगलमें गये, घोर तपस्या की । उनके पिता ऋषभदेव भगवान वहां नजदीक में पधारे । वदन करने को जाना चाहिये, परन्तु 'मैं वदन करने को जाऊंगा तो मुझसे छोटे भाई, जिन्हों ने मुझ से पहले दीक्षा ली है उनको वदन करना पडेगा । मैं बडा, छोटों को वदन करु ? ' इसी अभिमान के कारण घोर तपस्या करते हुए बाहुबली को केवल ज्ञान नहीं होता था । ब्राह्मी और सुदरी-दो बहनें जो साध्वी थीं, वहां आती हैं । भगवान के पास चलने के लिये बाहुबली को समझा रही है । वे समझ गयीं कि अभिमान के कारण वहां नहीं जाते, बहनें कहती हैं-

वीरा मोरा गज थकी ऊतरो,

गज चढ्या केवल न होयरे

" भाई, हाथी परसे नीचे उतरो । हाथी पर बैठकर केवलज्ञान नहीं होता । " बाहुबली सावधान होता है । " क्या कह रही है ? कहां है हाथी ? मैं तो जमीन पर खडा हूं । हा ! धिक्कार है, मुझको ! मैं अभिमान-मदरूपी हाथी पर चढा हूं । इतनी तपस्या करते हुए, इतने कष्टों को सहते हुए, फिर भी अभिमान ! धिक्कार है मुझको । चलो, भगवान् के पास चलू " ऐसा विचार करते ही, जहां चलने के लिये पैर उठाया और कर्मबेलडीए तूटी । झटमे केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

यह अभिमान का नतीजा था । पहले बलके अभिमान में आकर भाई के साथ युद्ध किया । बाद में साधु तपस्वी होने पर भी बडप्पन के अभिमान से अपने पिता तीर्थंकर का वदन करने को जानेमें भी सकोच होता था, क्यों कि वहा छोटे भाईओ को नमस्कार करना पडता था । और इसी कारण बाहुबली को केवलज्ञान नहीं हो पाता था । अभिमान दूर हुआ और केवलज्ञान प्राप्त हुआ ।

सनत्कुमार का रूपमद

अब रूप का मद देखिये । सनत्कुमार चक्रवर्ती का नाम तो आपने सुना होगा ।

उसका रूप ऐसा था कि जिसकी प्रशंसा इन्द्र भी करता था। भरी हुई सभा में देवताओं के आगे इन्द्र महाराजने कहा-" आज अगर संसार में किसी का रूप है तो एकमात्र भरतखण्ड-मृत्युलोक में सनत्कुमार चक्रवर्ती का। उसके जैसा रूप न किसी देवता का है और न मेरा भी है।"

कुछ देवता लोग, इस बात की परीक्षा करने के लिये, कि देखें कि सच मुच उसका रूप ऐसा कैसा है? सनत्कुमार के महलों में आये। सनत्कुमार को देखकर देवता स्तंभित हो गये। "वाह! वाह!! ऐसा रूप!" देवता लोग ब्राह्मणों का वेष धारण कर गये थे, उनका रूप देखकर रूप पर पागल हो गये। उस समय यह बात चक्रवर्ती को मालूम होजाती है। वह सनत्कुमार चक्रवर्ती उन ब्राह्मण वेषधारी देवों से पूछता है:-" इतना आश्चर्य हे ब्राह्मण देवों! तुम्हें क्यों हुआ?"

" तुम्हारे रूप को देखकर।" उन्होंने जवाब दिया।

" अभी जरा ठहर जाइए। अभी क्या मुग्ध होते हैं? जब स्नानादि करके वस्त्रालङ्कार धारण करके सजधजकर राजसिंहासन पर मैं बैठुं तब देखना।"

चक्रवर्ती अपने स्नानघरमें गये। तेल उबटन इत्यादि लगाकर अपना राजसी वेषवस्त्राभूषणादि धारण करके अपनी पूरी समृद्धि के साथ अपने राज-सिंहासन पर आकर बैठे उस समय ब्राह्मण देव उसके आकृति को देखकर 'थू थू' करने लगे। उन्हें बडी ग्लानि होने लगी। उन्होंने अपना मूंह बिगाड दिया। चक्रवर्ती उनकी इन चेष्टाओंको देखकर पूछता है: " क्या हुआ भाई?"

" अरे रे रे! थोडी देर के पूर्व जो रूप हमने आपका देखा था वह बात तो अब रही नहीं। इस समय तो आपकी रोम २ सडा हुआ दिख रहा है; बडी ग्लानि हमें हो रही है।"

प्यारे भाइयो और बहनों!

सनत्कुमार चक्रवर्ती शीशेमें अपना मूंह देखता है। मालूम होता है कि उसका मुख इतना सडा हुआ है, इतनी घृणित अपनी आकृति उसे लगती है कि, जिसकी कोई हद नहीं।

एक चक्रवर्ती की ऋद्धि समृद्धि भोगनेवाला जो थोडे समय पूर्व इतना रूपवान था वही अब स्नानादि करने के बाद वस्त्रालंकार धारण कर के राजसी वेषमें सिंहासन पर

बैठने के बाद, उनको क्यों इतना सडा हुआ शरीर मालूम होता है ? यह किसका नतीजा है ? मात्र अभिमान का फल है, उसको अपने रूप पर अभिमान आगया था !

मैं अपनी बहनों को देखता हूं कि वे अपने रूप लावण्य पर छनक-मनक करती हैं। पर जिस समय कोई रोग आजाता है- धब्बे, दाग, मस्से, और नाना प्रकारके चाटे पड जाते हैं, तब दुःखी हो जाती हैं अपने रूप पर। अभिमान क्यों करना चाहिये ? एक पुण्य प्रकृति के कारण रूप मिल गया तो क्या होगया ? आखिर कितना भी रूप होते हुवे भी एक दिन उसका भी वही समय आयेगा, जब कि इस भी लकडी में जलकर राख हो जाना होगा। जो चीज एक दिन हमें भी धोखा देकर हमसे अलग हो जानेवाली है, उसके लिये हम किस बात का अभिमान करें। इसको गहराईसे सोचिए जरा ! यह चीज एक दिन छोडना है-हम छोडकर जायें या वही हमें छोडदे। फिर हमारा कैसा अभिमान ? जिस का धर्म नाशवान है, जो पौद्गलिक है, ऐसी चीज पर अभिमान करने की मूर्खता से बढकर मूर्खता और कौनसी हो सकती है ?

तपस्वी सिद्धिया क्यों नहीं पाते ?

आगे है तप का अभिमान। एक समय था जब कि मात्र एक अट्ठम (तीन उपवास) का भी तप करते थे तो देवता उनके सामने हाथ जोडे खडे हो जाया करते थे और वे सहायता करने की याचना करते थे कि आज्ञा दीजिये कि मैं क्या आपकी सेवा करु ? एक मात्र अट्ठम तप से उनकी आत्मिक-शक्ति बढ जाती थी, लेकिन आज महिने २ दो-दो महिने का उपवास करते हुए भी, देवता तो चूल्हे के चूल्हे में ही रहते हैं। इसका कारण ?

मित्रो ! ऐसे तपस्वियोंके दिलों में कुछ न कुछ अभिमान रहता है अगर निरभिमानी होकर एकांत आत्म-शुद्धि के लिये, निर्जरा के लिये तप करें, तो निश्चित है कि बिना ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुए नहीं रह सकती। ऐसी तपस्या के कारण मनुष्य नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

उपवास या लंघन !

बहनों !

आप लोग तपस्या करते हैं। करिए और खूब करिए। जितनी होसके उतनी करिए। परन्तु एक बात ! जितना करें, उतना सारा का सारा एकांत आत्मकल्याण

के लिए व कर्मों की निर्जरा करने के लिये करें। मुझे इसपर आपको बहुत कुछ कहना है, परन्तु विषय दूसरा चल रहा है। इसलिए ज्यादा न कह कर इतने में ही आपको समझाना चाहता हूं कि जैसा कि शायद मैंने एक दफे कहा था कि एक उपवास भी 'उपवास' कब माना जासकता है?।

विषय–कषाय–आहार–त्यागो यत्र विधीयते ।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लङ्घनकं विदुः ॥

विषय, कषाय और आहार इन तीनों बातों का त्याग उपवास करते समय अवश्य करें। अगर ये तीनों बातों का त्याग नहीं है, वह उपवास नहीं, लंघन है।

शास्त्र का अभिमान.

आगे है शास्त्र का अभिमान।

धर्मग्रन्थों को पढ़कर, न्याय, व्याकरण, साहित्य, चम्पू, नाटक, ज्योतिष, वैद, वेदान्त, भागवद्, रामायण, इत्यादि सब पढ़कर उसका अभिमान करना, विद्या का अभिमान करना, यह है सब शास्त्र का अभिमान। इसे भी छोडना चाहिए।

शुष्क ज्ञानियों की दशा.

मनुष्य विद्वान् होजाता है, परन्तु प्रायः उसको उस विद्वत्ता–ज्ञान का अजीर्ण हो जाता है। अभिमान आजाता है कि मैं बडा भारी विद्वान् हूं। मैं दार्शनिक हूं। मैं न्याय, व्याकरण, साहित्य का आचार्य हूं। मैं बहुत बडा धर्म–धुरीण हूं। मैं बहुत बडा वक्ता हूं, शास्त्रज्ञ हूं, ज्ञानी हूं, इत्यादि अभिमान में आकर वह देव, गुरु, धर्म, माता, पिता किसी को मानने को तैयार नहीं होता, और विना अनुभव अपनी खीचडी अलग पकाने को बैठ जाता है। उस अभिमान की गरमी उसके मस्तक में सदा प्रज्वलित रहती है। और उस गरमी के कारण उसमें गंभीरता के स्थानमें उच्छृंखलता आती है। उच्छृंखलता क्या क्या नहीं कराती? ऐसे कुपात्र में पडी हुई विद्या, बिचारे उस दुर्भागी आत्मा के लिये हानिकारक होती है। होना तो यह चाहिए कि—

ज्ञानस्य फलं विरतिः। ज्ञान का फल होना चाहिये विरक्ति। जितनी २ ज्ञान की वृद्धि हमारे में होती जाय, उतना २ हमारे में त्याग भाव और नम्रता, निरभिमानता उत्पन्न होनी चाहिये। ज्ञान तो बहुत लोग रखते हैं। ज्ञान की चर्चा खूब करते हैं और एसी २ द्रव्यानुयोग, कर्म और स्याद्वाद की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें करते हैं, जिसकी हद

नहीं। ऐसी सूक्ष्म बातें करते हुए भी, उनके जीवनमें देखें तो एक चीज का एक त्याग नहीं करेंगे। संसार की अनित्यता की भावना ऐसी करेंगे जैसे कि आज ही सब छोड देंगे। लेकिन फिर भी जीवनमें क्रियात्मकरूपसे करना-धरना कुछ नहीं। आपके जीवन में विरति या त्यागभाव कितने हैं? जब तक कोईभी चीज छूटेगी, तो नहीं, वैराग्य आपको होगा नहीं, उदासीनता होगी नहीं। हमारा ज्ञान कोरा शुष्क ज्ञान रहेगा।

आजकल के आध्यात्मिक लोग अध्यात्म की बातें करते हैं। बडी लंबीचोडी व्याख्या करते हैं। मानों जैसे उन्होंने आत्मा के सिवाय कुछ देखा ही नहीं है, परन्तु विषय की बातें उनसे छूटती ही नहीं है। मित्रो! यह ज्ञान ज्ञान नहीं है। यह भावना भावना नहीं है, वैराग वैराग नहीं है। यह सब एक प्रकार का ढोंग है। जबतक किसी चीज को अमल में न लाया जाय, किसी चीज को अपने जीवन में न उतारा जाय, या उसका त्याग न किया जाय और सिर्फ अध्यात्मवाद की बातें ही की जाय, द्रव्यानुयोग की, नवतत्त्व की और गुणस्थान आदि की बातें मात्र की जाय तो इससे आत्मा का कल्याण नहीं होने का। क्षणभर जो ज्ञानचर्चा कर लेते हैं, और उतने समयतक जो चित्त की एकाग्रता हो जाती है उतने वक्त के लिये जरुर कर्मों की निर्जरा हो जाती है, परन्तु सिर्फ इससे विशेष कुछ होने-जाने का नहीं।

"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः।" यह मैं कईबार कह चूका हूं। आखिर तो ज्ञान और क्रिया दोनों होंगे तब ही मोक्ष होगा। इसे आप न भूले।

शास्त्रकारोंने और भी इसे यों कहा है— सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

अकेले किसी चीजसे कुछ नहीं प्राप्त होनेका, यह त्रिपुटी के एकत्रित हुए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। ज्ञान और दर्शन के साथ संयम, त्याग और विरति आदि चारित्रधर्म हमारे में नहीं आवेगा, तबतक मोक्ष नहीं हो सकता।

इसलिये आप लोग कोशिश करते जाय। अभिमान छोडते जायँ। शास्त्रों को कितना भी पढते जायँ, खाली पढनेसे कुछ नहीं होनेका। देखते नहीं है कि हमारे विद्वान् कहलानेवाले 'जैन साधु' भी आपसमें क्यों क्या कर रहे हैं? समाज की कैसी छिन्न भिन्नता कर रहे हैं?। फिर भी वे समझ रहे हैं कि हम जो कुछ करते हैं अच्छा ही करते हैं।

बुजागरजी

मारवाड में एक बूजागर 'बुझक्कड' का उदाहरण दिया जाता है। हरेक गांव में एक बूजागर होता है। ऐसा ही एक गांव था। उसमें बूजागरजी थे। उनको सब लोग बुजागरजी कहते थे। गांवभरमें कभी भी कोई बात हुई कि लोग कहते:- "बुलाओ बुजागरजी को। उनको पूछो, यह बात बता देंगे।" कोई भी समस्या खड़ी हुई कि, बुलाओ। उसे हल करने को वे तैयार। अब बुजागरजी चाहे जितनी ही गप्पें मारें, सब लोग स्वीकार करेंगे। गांवभरमें सबसे बडे ज्ञानी और विद्वान् यही समझे जाते थे।

उस गांवमें मेरे जैसे एक साधु गये। चोमासा ठहराने का निश्चय हुआ। उसके बाद पूछा गया कि "महाराज! चौमासे में व्याख्यान क्या देंगे?"

साधुजी बोले:-"जैसा तुम कहो-उसी विषय पर व्याख्यान दे दें।"

लोग बोले:-"भाई! हम तो कुछ लिखे-पढे नहीं, बुजागरजी को बुलाओ।"

बुगारजी बुलाये गये। डाढ़ी उनकी लम्बी चौडी थी। उसपर धीरे २ हाथ फेरते जाते हैं। गुरुजी को वन्दना करके बैठे। लोग कहते हैं-"एक बहुत बडा मामला है। क्यों बुजागरजी, गुरुजी महाराज क्या व्याख्यान वाणी सुनावें?"

बुजागरजी सोच विचार कर बोले-"कोई हूतरजी (सूत्रजी) पढो अन्नदाताजी और में क्या पडा है? कुछ हूतरजी पढना चाहिए।"

गुरुजी बोले: कहो तो बुजागरजी, कौनसा सूत्र पढें?"

"आपकी इच्छा हो सो पढ़ें बापजी।"

"तो क्या दशवैकालिकजी पढें?"

"हुणो परो अन्नदाता (सुनलिया)"

"उत्तराध्ययनजी पढ़ें"

"हुणो परो" (सुनलिया)

"स्थानाङ्गजी पढ़ें?"

"हुणो परो" (सुनालिया)

"जीवाभिगमजी पढें?"

"यह भी हुन लियो।"

"क्या भगवती सूत्र पढ़ें?"

" चोखी वात करी । वडो आछो है । (भगवती सूत्र ठीक है) " बूजागरजी बोले ।

गुरुजी नये २ थे, सोचते हैं: बूजागरजी बडे जानकार मालूम होते हैं। बारीक बातें करते हैं। देखो, और तो सब सूत्रों के लिये नहीं किया, पर 'भगवतीजी' को पसद किया, जान पडता है-अच्छी सूक्ष्म बातों के जानकार हैं। इनसे कुछ पूछना तो चाहिए। ऐसा सोचकर गुरू जी बोले :-

" क्यों बूजागरजी ! एकेन्द्रिय किसको कहते हैं ? "

" यह तो छोटीसी बात है गुरुजी। कीडे-मकोडे, विच्छू यह सब तो एकेन्द्रिय है। " बूजागरजी ने जवाब दीया।

" बेन्द्रिय किसको कहते हैं ? "

" बिल्ली-कुत्ता वगेरा वगेरा। "

" तेन्द्रिय ? "

" हाथी-घोडे-वाघ वगेरा २ ॥ "

" चौरेन्द्रिय ? "

" चौरेन्द्रिय ? चौरेन्द्रिय अन्नदाता थे (तुम) "

" और पञ्चेन्द्रिय ? "

" मैं। बापजी "

" गुरुजीने पूछा :-" तुम्हारेमें और मेरेमें फरक क्या ? "

" थारे माथे पाघ को नहीं और मारे माथे पाघ, इस वास्ते थें चौरेन्द्रिय और मैं पचेन्द्रिय। "

महाराजने समझा कि बराबर ये लोग भगवतीसूत्र सुनने लायक ही हैं। गांव में जो सबसे बडा समझदार समझा जाता है, उसको लाकर इन्होंने खडा किया है। वे कहते हैं:-भगवती सूत्र सुनेंगे और जानते हैं इतना कि चौन्द्रिय थें और पञ्चेन्द्रिय में।

आज भी सूत्र ज्ञानियों की यह दशा हो रही है। करना धरना कुछ नहीं। कोरी बातें करना आती है, कारण कि मिथ्या अभिमान में डूबे रहते हैं।

मेरे बन्धुओ ! इस झूठे अभिमान में जिन्दगी बर्बाद होती है। सच्चे ज्ञान का तो यही लक्षण है कि, जितना जितना ज्ञान होता जाय, मनुष्य उतनाही नम्र, विनयशील, त्यागी और निरभिमानी होता जाय, विरतिभाव आता जाय और इसीसे उसकी उन्नति होती जाती है।

अगर ऐसा न हुआ, तो फिर ज्ञानी होकर क्या हुआ ? हमारे जीवनमें त्याग और विरतिभाव नहीं आया। देशविरतिधर्म का भी आदर न किया, बल्कि यों कहना चाहिये कि, अगर मात्र मार्गानुसारी के ३५ गुणोंमेंसे एक भी गुण को जीवन में नहीं उतारा तो फिर शास्त्रों को पढकर ऊंचे २ विद्वान बनकर क्या किया ?

मित्रो ! इन बातोंको सोचो। जाति, कुल, रूप, तप, विद्या, बल आदि का अभिमान किया तो, हमारा पतन होने का है। आज दुनिया में सभी कुछ एक २ करके नष्ट होता जारहा है। समाज और जातियां नष्ट होरही हैं। बडे २ पूंजीपति और सत्ताधारियों के के मुकुट क्षणमें धूलमें लौटते नजर आ रहे हैं। दुनिया पैसे से, इज्जत से नष्ट होरही है। मनुष्यतासे संसार नष्टभ्रष्ट हो रहा है इन सब का कारण है एकमात्र अभिमान। इसलिये बहनों और भाइयो आप किसी भी बात का अभिमान न करें।

माया क्या चीज है ?

अब माया कैसी होती है और माया को जीतने के लिये क्या करना चाहिये यह बात बताता हूं।

माया क्या चीज है ? संक्षिप्तमें इसका अर्थ यह है: दिलमें कुछ और वाणी में कुछ और, कार्य रुप में कुछ और इसका नाम है माया। मन की भावना वचन और वैसा ही वर्तन ये तीनों चीजें एक होती हैं तो सच्चाई और उच्चता का आदर्श कहा जासकता है। लेकिन बाजे मनुष्य ऐसे होते है, मन में कुछ होता है, वाणी मे और ही कुछ होता है और करते कुछ और ही हैं। कपट, छल, भेद को अपनाना-इसका नाम है माया और ऐसा करनेवाला है मायावी।

इसमें नुकसान किसका होता है ?

आप अपने आत्मा को पूछ लीजिये कि, कौन २ सी बातोंमें आपके मन और वाणी की जुदाई होती है ? अगर दोनों की जुदाई हो रही है तो समझ लीजिये भयंकर से भयंकर माया हम कर रहे हैं। इसका सेवन करते हुए अगर हम मोक्ष को प्राप्त करना चाहें, आत्मिक सुख प्राप्त करना चाहें तो कभी नहीं कर सकते। एक कवि भी यही कहता है—

मारे केवुं छे कांई, मारे करवुं छे कांई।
एम करो भवजल तरवो छे भाई ?

मुझे कहना कुछ है और करना कुछ है, ऐसा करके इस संसारसमुद्र को पार करना है।

आज जातीय संघों में, मण्डलों और सोसायटीयों में, सभाओं और दलो में, सर्वत्र कितना माया का सेवन चल रहा है? कहीं निखालसता है? इसको आप ध्यानमे सोच लीजिये। प्रत्येक क्षण में व्यापार में और रोजगार में जो करते हैं सो करते हैं, परन्तु इसके अलावा धर्मकार्यों में भी माया ही माया चल रही है। गुरुओं के साथ बातें करेंगे तब भी जुदी तरहसे करेंगे। मनमें कुछ और वाणीमें कुछ और ही है? परमात्मा का ध्यान करेंगे तब भी यही बाते होगी। यह सारा प्रपंच, मायाजाल संसारमें आज बडे जोरों से चल रहा है। यही कारण है कि हमें किसी क्रियासे फायदा नहीं होता। थोडा करिए कोई हरकत की बात नहीं। लेकिन निष्कामभावसे करिये। दिलमें कुछ और है, वचनमें कुछ और कहें, ऐसा न करें। जो कुछ करना है, सो करना है। जैसा ही आप करिये और वैसा ही दिलम विचारिये कि जो आपको करना है।

आप लोगों के परिचय में मैं आता ही हू। अंग्रेजों के परिचय में भी मैं आया हू। अंग्रेजो मे अकसर करके जो मेरे सम्पर्क में आये हे, उस अनुभव पर से यह कह सकता हू कि, वे अपने दिल की बात अगर कहेंगे तो साफ २ कह देगे। और वैसा ही करेंगे। कोई बात उनको ठीक नहीं जचती है, तो साफ कहदेंगे – " Very sorry " मुझे माफ करिये। मैं इस बात से सहमत नहीं हु। मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं ऐसा नहीं कह सकता "। आदि आदि। परन्तु हमारे लोग ऐसा नहीं करेंगे। दिलमें कुछ और रक्खेगे और ऊपर स कुछ और कहेंगे और जैसा कहेंगे, करेंगे उससे भी उलटा। ये हम लोगों की आदतें है। परिणाम यह आता है कि भयंकर मायावी हो कर हम घोर पाप के अधिकारी बनते हैं। इससे मेरे कहने का मतलब यह कदापि नहीं कि, अंग्रेज सभी मायावी नहीं होते या आप लोगों मे सभी में यह अवगुण है, हा, हम लोगों में इसकी बहुलता ज्यादा हो गयी है। माया क्यों होती है? इसलिये कि, जो बात हमारे में नहीं है, उसका दिखलाने की कोशिश करते है। जैसे, किसी स्त्रीके रूप लावण्य नहीं है, लेकिन पाउडर, क्रीम आदि लगाकर दिखलाती है कि मैं कितनी सुन्दर हू! यह दिखलाने की क्या जरुरत? जो है सो है। वैसा ही दिखानेमें क्या कोई बुरी बात है! लेकिन नहीं। मनुष्य प्रकृति ही कुछ ऐसी है। एक मनुष्य जितना करता है उतना

धनवान नहीं है। दानवीर नहीं है। कौडी घरसे निकालने की इच्छा नहीं है। लेकिन सेठाइ को रिझाने के लिए नाना प्रकारकी कपट क्रिया करके अपने को दानवीर दिखलाना चाहता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि, हमारी सारी बातें ऐसी होगयी है कि सिवाय जीवनमें माया, कपट, छल, भेद के और कुछ दिखता ही नहीं है।

दंभत्याग की दुष्करता

प्यारे भाईयो! आत्म-कल्याण यदि हम चाहते हैं तो, थोडा करना लेकिन निष्कपटभावसे करना। दुनियामें हरेक चीज जीती जाती है। मैं तो कहुंगा-इन्द्रियोका निग्रह होसकता है। प्राणों का भी बलिदान करनेवाले मिलते हैं, परन्तु अगर कोई चीज जीती नहीं जाती है, तो वह है एक मात्र 'माया'। एक कवि संस्कृतमें कहता है :—

सुत्यजं रसलाम्पट्यं सुत्यजं देहभूषणम्।
सुत्यजाः कामभोगाद्याः दुस्त्यजं दम्भसेवनम् ॥

अर्थात्-रस की लोलुपता जीती जासकती है। एक आदमी इन्द्रियों के विषयो को जीतने का प्रयत्न करे तो कर सकता है, षट्रस भोजन का त्याग कर सकता है, महिनों तक कर सकता है। शरीर के आभूषणों का त्याग किया जासकता है। आज तो हमारी ये गुजरात, महाराष्ट्र की बहने पहले की तरह गहने नही पहनती। अब तो सिर्फ मारवाड में ही इसका लालच रह गया है। हजारों लाखों के आभूषणों से लदी-फदी बहिनें निकलती हैं, उस समय कल्पना होती है कि श्रीमंताई का मानो विज्ञापन कर रही हैं। परन्तु श्रीमंताई है या नहीं, यह तो भगवान् ही जानता है या उनका आत्मा। आजकल के जमाने में नाना प्रकार के आडम्बर चल रहे हैं। नाना प्रकार की बदमाशियों चल रही हैं। बदमाश लोग ऐसे गहने से लदे बालक और यहां तक कि स्त्रियों तक को भी मौका देखकर उठा लेजाने हैं। उनकी हत्या तक भी कर डालते हैं। यह आपको सोचना चाहिए। जमाना बहुत ही खराब है। खैर, बात यह थी कि-

इन गहनों का भी त्याग हो सकता है और काम-भोग का भी त्याग हो सकता है। २५-३०-३५ वर्ष के नवजवान बहन, भाई अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं। ऐसे अनेक मनुष्य मैंने देखे हैं, जो जवान अवस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए और पति-पत्नी शीलव्रत का नियम लेते हुए देखे जाते हैं। लेकिन दम्भ का-कपट

का त्याग करना बड़ा कठिन है। श्री यशोविजयजी उपाध्यायने एक भजनमें कहा है:

एक गृहस्थ साधु हो जाय, संयमी हो जाय, भिक्षा-ग्रहण करनेवाला हो जाय, सच्चा अपरिग्रही हो जाय, लेकिन उसके लिये भी दम्भ, माया का त्यागना कठिन है।

केशलोचमलधारणा, सुणो सन्ताजी,
भूमिशैया, व्रत याग, गुणवन्ताजी।
सकल सुकर छे साधुने, सुणो सन्ताजी,
दुष्कर माया त्याग, गुणवन्ताजी ॥

केशों का लोच करना कितना कठिन काम है? आपके बाल सुन्दर से सुन्दर हैं, लेकिन एक बाल पकड़कर कोई खींचे तो आपकी आँखों में आँसु आजायेंगे। और खीचनेवाले पर गुस्सा होजायेंगे। लेकिन हम साधु लोग छ छ महिनों में केशों का लोच कर के उनपर से अपनी मूर्च्छा उतार देते हैं और कष्टों को सहते हैं। इतने कठिन काम को छोटेबड़े साधु मुनिराज, साध्विया, सतिया छोटी २ उम्र में होते हुऐ भी केशों का लोच कर लेते हैं। इतनी कठिन क्रियाओंको भी करते हैं। शरीर पर मेल धारण करना, दस-दस, बीस-बीस वर्षों तक पानी नहीं डालना, यह कठिन कार्य होते हुए भी करते हैं। जमीन पर सोना, आप सोवें तो आपकी कमर दर्द करने लगजाय। लेकिन साधु-मुनिराज, एक चद्दर बिछाकर नीचे सोते हैं। यह भी होता है। यद्यपि महाव्रतोंका पालन करना अति कठिन है, परन्तु यह भी होता है। लेकिन माया का त्याग करना इससे भी दुष्कर है। आप लोग एक दूसरे के साथमें संबंध रखते हैं। व्यवहार करते हैं। परन्तु हृदयमें कपट रखते हैं। इस कपट का जीतना पञ्च महाव्रतधारियों के लिये भी कठिन है।

मूंह मे मीठे मन से झूठे

मूह मीठो, झुठो मने जी, कूड कपटनो रे कोट।
जीभे तो जी जी करे जी, चितमा राखे चोट रे प्राणी ॥

मा करीश माया लगार

आप गरज आघो पड़े जो, पण न धरे विश्वास,
मनसु राखे आतरो जी, ए मायानो पाशरे प्राणी०

मा करीश माया लगार

मूंहसे मीठी २ बातें करते हैं कि, हमारा तो किसीसे वैर नहीं। सब अच्छे हैं। हमारा किसी से कुछ लेना देना नहीं। यह नहीं, वह नहीं आदि २ बाते करते हैं। लोगों में जाति का झगडा पडता है। एक दूसरे की भारी से भारी बुराइयों करने और उसकी इज्जत गिराने की कोशिश करते हैं, "जी साहब। फरमाइये साहब, कृपा महरबानी तो है आदि २।" ऐसी मीठी २ बातें करेंगे, परन्तु हृदय में हलाहल जहर भरा है। अगर वह विवादास्पद विषय सामने आभी जाय तो कहते हैं:-"आपके लिये मेरे को कुछ नहीं। यह तो जरासा मतभेद है। कोई ज्यादा नहीं। ऐसा तो होही जाता है। गलत फहमी है, दूर हो जायगी।" परन्तु यही 'खाली मतभेद' होते हुवे, भयङ्करसे भयङ्कर शत्रुता और निंदा की जाती है। दिलमें मजबूत गांठ है, ऊपरसे 'कुछ नहीं' २ करदेते हैं। कितनी माया है यह? अपने आत्मा का कितना अधःपतन? क्या दशा हो रही है आज? यह सब कुछ कितनी गतियों के लिये? कितनी उम्र के लिये करते हैं? अगर उस माया में-आर्त्तध्यान में-रौद्रध्यान में आयुष्य का बन्ध पडजाय तो किस गति में जाय? क्या कभी शांत दिलसे इस बात पर कोई सोचता भी है? क्या मनुष्यों को प्रभु के वचनों पर विश्वास है? अगर नहीं है तो फिर उसके लिये मेरा यह सब कुछ कहना भी बेकार है।

मल्लीनाथ स्त्री वेदमें क्यों?

माया करनेवाला कितनी दुर्गति को प्राप्त होता है? भगवान मल्लीनाथ ने भी अपने पूर्व भव में मित्रों के साथ माया की थी, जिसका फल उन्हें भी भोगना पडा। क्या माया की थी? देखिए।

वे ६ मित्र थे। सबोंने निश्चय किया कि-सब एक साथ तपस्या का पारणा करेंगे और एक साथ तपस्या करेंगे, परन्तु मल्लीनाथने चुपचाप बहाना बनाकर कपटाई से पारणे के दिन निश्चय के अनुसार पारणा नहीं करते हुए तपस्या बढा ली। इस तरह करते २ तीर्थंकरगोत्र अवश्य प्राप्त कर लिया, परन्तु माया करने से-कपटाई करनेसे--मन में कुछ और, बचने में कुछ और, एवं करने में कुछ और होने से स्त्रीवेद को प्राप्त किया। जब तीर्थंकरों तक की भी यह दशा है, कि माया करने से उनको भी इस प्रकार का फल प्राप्त करना पडता है, तब हमारे जैसे पामरों की क्या दशा हो सकती है? इसको आप सोच लीजिये!

इसलिये महानुभावो! धर्म कम करें, कोइ हरकत की बात नहीं। क्रिया-काण्ड

कम हो, कोई हरकत की बात नहीं, लेकिन जितना करें निष्कपट भाव से करें। मेरा आपको उपदेश है कि अतरग शत्रु को जीतने कोशिश करिये। जब हृदय में निष्कपट भाव का उदय हो जायगा, तभी माया का आप त्याग कर सकते हैं। दिलमें यह भावना हो जाय कि मुझे क्यों कपट, छल, भेद करना चाहिये ? मुझे क्या ? दिलमें जो है सो साफ २ कह दिया। नहीं कहने की बात हुई तो साफ कह दिया कि मुझे माफ करें, कहने लायक बात नहीं है। बस, हुवा मामला खतम।

भाईओ और वहनो,

अब चौथा शत्रु है लोभ। इसके विषय में पहले बहुत कुछ कह चूका हूं। फिर भी मैं आज कुछ और कहूंगा। आज सारे संसार में पाप हो रहा है। पाप की उत्पत्ति का कारण कोई है तो एक मात्र "लोभ" है।

लोभ का परिणाम

मनुष्य जानते हुए भी अभक्ष पदार्थ के सेवन करने का पाप करते हैं। वह भी लोभ ही कराता है। विषयों का लोभ भी लगा है। अच्छी आवक, अच्छा पैसा धन होते हुए भी उस पर से मूर्च्छा उतरती क्यों नहीं? दान होता क्यों नहीं? छलकपट करते हैं? दूसरों का हक छीन लेने की कोशीश करते हैं? कोई अच्छा परोपकार का कार्य नहीं करते? पैसे की चञ्चलता समझते हुए अर्थात् एक दिन या तो हमें उसे छोड देना है, या वह छोड देगा-ऐसा जानते हुए भी पैसा नहीं छूटता? इसका एक मात्र कारण है तो लोभ है। लोभवृत्ति हमारे सिर पर भूत की तरह सवार है।

इतनी बड़ी वस्ती में कोई संस्था या शिक्षणशाला ऐसी नहीं है, जो सुन्दर से सुन्दर और उच्च धार्मिक शिक्षण दे सके, और धर्म की प्रभावना व रक्षा कर सके। छोटी से छोटी पाठशाला भी यहां कोई नहीं। क्या इसका आपको विचार नहीं आता?! आपका आत्मा क्यों सोया हुआ है? इसका कारण है लोभ।

आप लोग सरकार की जेब में लाखों रुपया देने को तैयार हैं। अपने ऐश-आराम और कामवासनाओं की पूर्ति के लिये हजारों लाखों पानी की तरह बहा देते हैं। बड़ी २ रिश्वतें देने में नाना प्रकार के पापकार्यों में और पाशविक कार्यों तक में भी आप पैसे को पानी की तरह बहाने को भी तैयार रहते हैं; किन्तु ज्ञान प्रचार के नाम पर खर्चने के लिए कुछ नहीं। आपके दिलों में कोई अपील नहीं होती, आपका मन नहीं पिघलता-इसका कारण क्या है? इसका कारण है आपकी लोभवृत्ति। पैसे पर से मोह नहीं छूटता। दूसरा जबरदस्ती से भले ही छुड़ावे। अगर ये बातें नहीं होती तो,

आपके यहा तो आज एक सुदर से सुन्दर शिक्षणशाला होती कि अपने ज्ञान की एक हो सकती थी । पैसे और बुद्धि दोनों की कमी आपके यहा नहीं है, लेकिन आजका मानव कमजोर है, बुजदिल है । लाभ होरहा है तो लोभ का शिकार बन रहा है । ज्ञान-चक्षु बद है, बुद्धि कुण्ठित हो गयी है । कुछ भान नहीं है । बेभान हुआ चारो तरफ हाथ-पैर मार रहा है । आज का यह मानव लोभ में पागल बना है । न जाने कहा चला जा रहा है ? । मानव ! चेत ।

कपिल केवली

जहा लाहो तहा लोहो लाहाल्लोहो पवड्ढई ॥

जैसा लाभ वैसे लोभ । लाभसे लोभ की वृद्धि होती है । शास्त्रकार कपिल केवली का दृष्टात देते है । कपिल अपनी माता की आज्ञा लेकर जाता है-चम्पानगरी में अभ्यास करने के लिये । पिता नहीं थे । अकेली माता थी । जीविका का कोई साधन नहीं था । निर्धन थी । माताने यह सोचकर आज्ञा देदी कि-अगर कपिल कुछ अभ्यास कर लेगा तो उसके पिता के स्थान पर, राजा के यहा पुरोहित का काम कर लेगा, जिससे हमारा निर्वाह हो जायगा । गुरु के पास शिक्षण लेता हैं । वहीं रहेता है । भोजन किसी एक गृहस्थ के यहा करता है । धीरे २ युवावस्था होजाती है । शिक्षा भी पूरी होने आयी, यौवन अवस्था थी । उस गृहस्थके यहा एक दासी थी । उसके साथ उसका प्रेम हो जाता है । परिणाम में उस स्त्री को गर्भ रहा है । पुत्र-प्रसव का समय पास आया । दासी कहती है-" उस समय तो कुछ द्रव्य चाहियेगा । हम गरीब हैं, परन्तु इसका प्रबध तो आपको करना होगा । " दोनों चिंता-ग्रस्त होजाते हैं । एक दिन स्त्री को स्मरण आया और उससे बोली-" यहा का राजा रोज सबसे पहले जो उसके पास पहुँचकर आशीर्वाद देता है उसको दो मासा सोना दक्षिणा में देता है । आप भी आज वहीं जाइये । दो मासा सोना तो अपने लिए बहुत है । "

कपिल रात्रिभर जागते रहता है । सोच रहा है .-' अब जाऊँ '-' तब जाऊँ ।' करते २ रात के १२ बजे ही उठकर राज-भवन की तरफ चल दिया । इस भयसे कि शायद मेरे पहले भी कोई अन्य पहुँच न जाय । अगर कोई दूसरा मेरे पहेले पहुँच गया तो मैं एसाही रह जाऊगा । रात के १२ बजे का समय था । कपिल राजमार्ग से जारहा था । इतनेमें रात के पहरेदार मिले । उन्होंने उसको चोर समझ कर गिरफ्तार कर लिया । प्रातःकाल राजा के सामने उपस्थित किया गया । राजा पूछता है:-" तु

चोरी करने निकला था क्या मध्य रातमें ?' कपिल जवाब देता है–" नहीं।"

"तो फिर किस विचार से निकला था ?"

"आपके यहां आशीर्वाद देने के लिये आरहा था, इस इरादे से कि २ मासा सोना प्राप्त होगा।"

"क्या करोगे उस सोने का ?"

सब सत्य बात कपिलने राजा के पास कह दी और कहा कि इस भयसे कि मेरे से पहले कोई नहीं पहुँचजाय, मैं जल्दी ही घरसे निकल पडा और गिरफतार होकर आपके सामने खडा किया गया हूं। इसके लिये जो भी कुछ सजा आप देंगे उसके लिये मैं तैयार हूँ।"

राजाने सोचा कि यह आदमी सच्चा है। सब बात साफ २ कहदी है। उससे राजा कहता है कि–" दो मासा सोना ही नहीं, तुम चाहो सो देने को तैय्यार हूं। बोलो क्या चाहते हो ?"

कपील पर अब लोभवृत्ति सवार हुई।

जहा लाहो तहा लोहो लाहाछोहो पवड्ढई।
दोमासा कणणं कज्जं कोडिए न निवट्टई।

कपिल को लाभ का अवसर आया, तब उसकी लोभवृत्ति उसीसे बढ़ती ही जारही है। सोचता है–क्या माँगू ? ८ मासा, १६–२०–४०–१००–१००० मासा माँगू। क्या माँगू ? कितना माँगू ? जब राजा देने को ही बैठा है, कितना माँगूं ?

सोचकर राजा को कहता है :–" राजन् ! मुझे २४ घन्टे की अवधि दीजिए। मैं इस बीचमें सोचकर आपसे कुछ माँगूगा।" राजा स्वीकार कर लेता है।

शहर के बाहर एक रम्य वन था। कपिल वहीं जाता है। एकान्तमें बैठकर विचार करता हैं कि–" क्या मांगू ? सोचता है इतना मांगू तो कैसा रहेगा ? राज्य माँगू तो कैसा रहेगा ? महल होजायेंगे, मकान होगा, नोकर–चाकर, दास–दासी होंगे। इतना आनंद, ऐश्वर्य, घर, कुटुम्ब आदि २। इस तरह धीरे २ सो–पचास, हज़ार, दोहज़ार, लाख, करोड, अरब, खरब, करते २ सम्पूर्ण राज्य माँग लेने की भी इच्छा होगयी। परन्तु फिर भी इच्छा उसकी ठहरी नहीं। बढ़ती ही गयी। तृप्ति कहीं नहीं नजर आयी। उस समय एकायक कपिल को आत्मा का विचार हो आया। सोचता है–' धिक्–माम् धिक्'। कहां २ मासे का भी ठिकाना नहीं था, इसके लिये मारा २ भटक

रहा था, अपमान भी सहन किया, कारावासमें भी रहा, और अब राजाने वचन दिया है कि, 'मैं मॉगू सो वह देगा'—अभीतक मैं कोई निश्चय नहीं कर सका। मेरी इच्छा कहीं ठहरती ही नहीं। मेरा आत्मा का यह स्वरूप नहीं है। धिक्कार है मुझको। मैं विपरीत मार्ग पर जा रहा हू। मैं विषयों में लुब्ध बना और इतनी पतन अवस्था को प्राप्त हुआ। मैंने घोर पाप किया है। यह सारा लोभवृत्ति का परिणाम है। जिसका अंतिम फल घोरातिघोर नरक है। सयमवृत्ति को, सतोषवृत्ति को, वैराग्य-वृत्ति को जबतक धारण नहीं करूगा, इससे छुटकारा नहीं। जबतक चारित्र-धर्म नहीं अंगीकार करूगा, मेरे आत्मा का कल्याण नहीं।"

परिणामों की धारा निर्मल होती हुई बढती चली जारही है। कपिल वहीं चारित्रधर्म अंगीकार कर लेता है और समय होने पर राजा के सामने जाता है। राजा उन्हें साधु के वेष में देखकर पहिचान नहीं सका। पूछता है,—'आप कौन है?"

कपिल मुनिने कहा—"मैं वही हू जिस को आपने 'मॉगे सो दू' कहा था।"

"तो बोलो, क्या मॉगते हो?"

"क्या मॉगू? जो चाहिये था वह मिल गया। मुझे अब किसी चीज की कमी नहीं। मुझे अब आपके राजपाट, धन, दौलत, हाथी, घोडे, ऐश्वर्य आदि किसी चीज की दरकार नहीं। आपका राज-पाट, ऐश्वर्य और इस सम्पूर्ण पृथ्वी का ससागर राज्य भी मेरे सामने, मेरे इस चारित्र के आगे कोई चीज नहीं। मै नि स्पृह हो गया हू।"

प्यारे मित्रो!

खूब याद रखिये, लोभ महान् दुर्गति का दाता है। आत्मा का महान शत्रु है, इसको जीतें और सतोष वृत्ति धारण करें। मेरे उपदेश से हजारों रुपया खर्च न करें। इसमे कोई हरकत नहीं। परन्तु लोभवृत्ति करके पैसा इकट्ठा करनेका पाप तो न करें। लोभवृत्ति से पाप करके फिर धर्म करना, इससे बहतर है कि, लोभवृत्ति को ही छोडें। कीचड में पैर रखकर के धोना मूर्खता है। इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं। इन बातों पर विचार करके अगर आप सतोषवृत्ति धारण करेंगे, और थोडा भी धर्म करेंगे तो आप की उन्नति होगी। आपका कल्याण होगा।

सब अवगुणों का गुरु।

लोभ हमारे आत्मा का भयकर से भयकर शत्रु है। धर्मको छीननेवाला,

बेइज्जती करानेवाला, पैसे टके से वरबाद करनेवाला अगर कोई संसार में आत्मा का दुर्गुण है तो, एक मात्र लोभ है। तत्त्वज्ञकवियोंने तो यहांतक कहा है कि:-

सब ओगुणको गुरु लोभ भयो, तब और ओगुण भयो न भयो ॥

आत्मामें हजारों अवगुण हों, चाहे न हों, लेकिन एक दुर्गुण लोभ ही हमारे आत्मा में आजाय तो समझ लेना चाहिये कि हमारा पतन करने के लिये, दुर्गतिमें ले जाने के लिये, दुनिया में बर्बाद करने के लिये, सब तरहसे नीचे गिराने के लिये सब कुछ आगया! मैंने कई बार कहा है और फिर फिर कह रहा हूं कि, आज जो सारा संसार दुःखी है; लोहुकी नदियाँ वह रही हैं. बमके गोले बरस रहे है; घरके घर जलाए जा रहे हैं; निर्दोष स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालकों और पशु पक्षिओंको जलाया जा रहा है और यह जो भीषण मानव संहार नृशंसतापूर्वक हो रहा है, सब एक मात्र इस लोभवृतिका परिणाम है। समाज में क्लेसोंकी उत्पत्ति, भाईओं भाईओं में क्लेश मात्र इसी लोभवृत्तिके परिणामस्वरुप है। विषयोंमें आसक्त होकर जीवनको बर्बाद करनेवाला; मनुष्य, समाज और जाति में कायरता, हतवीर्यता पैदा करानेवाला, अपना आत्मघात करानेवाला यदि कोई है तो एक मात्र लोभ ही है।

जानवर और मानव में फर्क

आप लोगो के दिलोंमें कभी कभी हो जाता होगा कि. महाराज अपने व्याख्यानों में लोभ पर ही इतना ज्यादा क्यों कहते हैं?। लेकिन मैं कहता हूं, मैं तो एक छद्मस्थ अल्पज्ञ प्राणी हूं। समुद्र समान शास्त्रो में से एक बूंद का असंख्यातवें भाग जितना भी ज्ञान मुझ को नहीं है। परन्तु सारे संसार के शास्त्र, चाहे उन्हें आगम कहो शास्त्र कहो, पुराण कहो, वेद कहो, जो चाहे नामसे पुकारों, रचे गए हैं तो एक मात्र लोभसे दूर रखने के लिए और दुनियामें जो लोभवृत्ति मनुष्यों में है, वह लोभवृत्ति न पशु में है, और न पक्षिओ में है। देखा है कहीं आपने संसार के पशु-पक्षिओं को किसी चीज का संग्रह करते हुए? देखा है कभी आपने रहने के लिये कोई महल बनाना आदि। कुछ है उनके पास? किसी वेद, वेदान्त, पुराण या किसी भी शास्त्र में आप लोगोंने यह देखा कि, जिस में पशु-पक्षियों को उपदेश दिया गया हो? कि, उन्हें इस तरहसे रहना चाहिए? ऐसा करना चाहिए? आदि आदि है कहीं उनके लिए उपदेश? नहीं, किसी भी शास्त्र में कुछ भी नहीं। आगमों में भी नहीं। तीर्थङ्कर

भगवानने समवसरण में बठकर देशना दी, वह भी पशु-पक्षिओं को संबोधन करके नहीं। मनुष्य को ही सब कुछ कहा। जब जब सम्बोधन किया 'हे गौतम!' ऐसा ही कहा, जिसमें बेठे हुए सभी मनुष्य ही आ गये, और जगत् के सब मानव आ जाते थे। इस तरह से जितने शास्त्र बने, मनुष्यों के लिए बने, पशुओं के लिए नहीं।

मनुष्यों के लिए क्यों बने? जानते है आप? क्यों कि प्रकृति के विरुद्ध काम करनेवाला, संग्रह करनेवाला और तमाम प्रकारकी बुराइयों को करनेवाला अगर कोई है तो एक मात्र मनुष्य है। पशु पक्षी अपने को चाहिये उससे ज्यादा संग्रह करते ही नहीं। क्या आपने किसी हाथी के घर सोना चांदी के गहने देखे? या यह देखा कि, उनके घरमें अनाज भरा है?। फल पत्ती भर रखी हो?। शेर की गुफाओंमें जाकर देखा कि, अपनी खुराक के लिये कोई चीज भर रक्खी हो? बस, भूख लगी, दौडा जंगलमें, एक आध जानवर खाकर चलता बना। यह अम शेरकी खासीयत है कि, शेर जैसा जंगली जानवरोंको खानेवाला पेट भर जाने पर, किसीको न विचारसे नहीं मारेगा, कि 'चलो मारलो, घर रख लेंगे, कलके लिये काम आवेगा। शायद है, कल मिले या न मिले।' पर नहीं, अपना पेट भर जाने के बाद किसी चीज पर कभी आसक्ति नहीं करेगा। आज हमारी मनुष्य जाति ही है कि, जो इन्द्रियों के विषयों को नहीं जीतने के कारण खानेको बैठेगा, तब विचार करेगा कि-'यह खाऊ कि यह खाऊ" 'ऐसी खाउ, वैसी खाउ' और यह मनुष्य ही है, जो नाना प्रकारकी भयकर व्याधियों का इस इन्द्रियों की लोलुपता के कारण शिकार होता है। जानवर तभी खावेगा, जब उसे पूरी भूख लगेगी। भूख बुझ जाने के बाद कितनी भी अच्छी चीज हो, जगलके जगल घास के पडे हैं, उसके लिये हराम है। और कोई उपाधि इन जानवरों को है? सारी उपाधियों को सिर पर लकर दुर्गतिमे जानेकी तैयारी करनेवाली अगर कोइ जाति है तो एक-मात्र मनुष्य जाति है। इसलिये मनुष्यजाति के लिये, बरोबर उपदेश दिया गया है और वही उपदेश आपके लिये हितकर है। आपका उस

लोभ को कम करने का उपाय

आप पूछेंगे, लोभवृत्ति को ओछी करनेके लिये क्या उपाय है ? । इसका उपाय एक यही है कि, आप आशाकी गुलामी कम कर दीजिए—

शास्त्रकार कहते हैं:—

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः ॥

जो मनुष्य आशा के दास हैं, वे सारे जगत् के गुलाम हैं । इच्छाएं बढती जाती हैं, और उनकी पूर्त्ति के लिये मनुष्य रात-दिन कोशिश करता रहता है कि, मुझे यहांसे मिले और वहांसे मिले । और सबकी खुशामद करता है । एक आत्माभिमानी मनुष्य अपने दिल के अन्दर जिस समय आशा करता है, उस समय, अपने सिद्धान्त का खून करके, अपने विचारों का खून करके दूसरों की गुलामी करने को तैयार हो जाता है । जो चीज हमारी इन्सानीयत को खो दे, हमारी मनुष्यता को खो दे, हमारे सिद्धान्तों का खून करवा दे, वह चीज हमारे लिए किस काम की ?

जीवन की खूबी किसमें है ? जीवन की खूबी अपने सिद्धान्तों पर मर मिटने में है । अपनी स्वतंत्रता में है । अपनी आजादी में है । जीवन की खूबी उसीमें है कि, जो अपने को थोड़ा मिले, तो थोड़ा, ज्यादा मिले तो ज्यादा । सिद्धान्तो पर दृढ रहते हुए इमानदारी से और सन्तोषवृत्ति से जो मिला इसमें मस्त रहे । यह खूबी अगर आपके जीवनमें नहीं आयी तो क्या जीवन है ! इस मनुष्य जीवनमें आकर क्या किया ? यह तो हम आयुष्य के कारण जीते हैं । हमें मरना है, इसलिये जीते हैं !

और आशाको जिसने अपनी 'दासी' बना लिया है, इन्द्रियों पर काबू कर लिया है, तीनों जगत उसके चारों तरफ दास बनकर खडा रहता है । 'नहीं भाई, हमें कुछ काम नहीं, अपने घर जाओ, आराम करो ।" "जो मांगे उससे भागे और त्यागे उस के आगे ।"

त्यागे उसके आगे, मांगे उससे भागे ।

आनन्दघनजी महाराज भी कहते हैं:-" जे जेहने अभिलषे रे, ते तो तेहथी नासे." । जो जिसको चाहता है, वह उससे दूर भागता है । पर जो किसीकी परवाह नहीं करता है, सारा जगत् उसका दास बनकर खडा रहता है । किसी की परवाह मत करो ।

परवाह करो अपनी। अपने आत्मा की और दुनियामें इस शरीरको धारण करके आए हो, तो इसके लिये कुछ खाने की, कुछ कपडे और सोनेकी–ये तीनों चीजें बराबर मिल जायगी। कोई जरूरत नहीं इसके लिये हाय हाय करनेकी। आत्मविश्वास रक्खो। हमारे जैसे हजारों मीलोंकी पैदल मुसाफरी करनेवाले को जगल में भी, माल मिल जाते है। अगर आत्मविश्वास है तो सब कुछ मिल जा सकता है। आत्म विश्वास को दृढ रखिए लेकिन रुपया पैसा होते हुए भी, सब कुछ साधन होते हुए भी, आत्मा के प्रति अविश्वास है कि, 'क्या होगा? मेरे पीछे मेरी पत्नी का, मेरे लडके का? उनको खाने को नहीं मिलेगा तो? माल मत्ता आदि जावेगा तो?" इतना अविश्वास!। संसारमें मनुष्य जीवन वे भी लेकर आये है। कर्म भी साथ है, फिर इतना अविश्वास! सब कुछ होगा, आगे के लिये। इस आशा की गुलामी छोडो, अगर सच्चा सुख प्राप्त करना है तो।

स्वयभू चक्रवर्ती की समुद्रसमाधि

सब चक्रवर्तियोंने ६ खड साधे, लेकिन स्वयभू चक्रवर्ती की इच्छा हुई कि, मैं उनमें सबसे बढ जाऊ। सबाने ६ खड साधे हैं। मैं एक और साध लू। मनुष्य के मन में रहता है-कि कुछ न कुछ करु। किसी तरहसे प्रसिद्धि पाऊ।

घट छिन्द्यात् पट छिं द्यात्, कुर्यात् रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्ध पुरषो भवेत्॥

प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये ऊपर के श्लोकमें कवि दिखाता है कि, रास्ते चलते किसीका घडा फोड दीजिए। आपके चारों तरफ आदमी इकट्टे हो जायेंगे। 'क्या हो गया?' 'क्या हो गया?' आपका ही नाम लेंगे। दुनियामें सब के मुह पर आप का नाम होगा। आपकी चर्चा होगी। रास्ते मे चलते जाईये और अपने कपडों को फाडते जाईये। दुनिया इकट्ठी होजायगी, और आप ही की चर्चा चल पडेगी। कहेंगे, 'यह क्या कर रहा है? क्या पागल हो गया है? क्या हो गया है!' आदि आदि। पागल कहे या कुछ कहे, इसमे आपको क्या मतलब! बस प्रसिद्धि हो जायगी। और इसमे भी प्रसिद्धि कम मालूम होती हो तो गधे पर बैठकर बाजारमे होते हुए चले जाईये, सब अपना अपना कामकाज छोडकर देखने के लिये उठ खडे होंगे। अमर नाम हो जायगा कि इस मार्गमे अबतक उसके सिवाय कोई इस तरह नहीं निकला। नाम अखबारों मे आजायगा। स है फोटू भी आ जाय। कई गृहस्थ और साधु भी विचार अपनी

प्रसिद्धि के लिए इतने लालायित रहते हैं कि कभी कभी तो वे साधुता को भी भूल जाते है। प्रसिद्धि का भूखा पुत्र अपने मातापिता का दुश्मन बनता है। प्रसिद्धि भूखा साधु, अपने गुरु आदि पूज्यजनों के प्रति बेवफा बनता है, बल्कि, कभी कभी दुश्मन जैसा भी काम करता है।

मनुष्य चाहते हैं किसी भी तरह हम संसार में प्रसिद्ध हो जायँ। संसारमें हमारा नाम हो जाय। अच्छा काम करके प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा बहुत कम होती है। लेकिन बुरा काम करके प्रसिद्ध होनेकी इच्छा ज्यादा रहती है। समाजमें जिस समय कलह पैदा हो जाता है, उस समय कलह पैदा करानेवाले लोगों की बन आती है। वे खूब प्रसिद्ध हो जाते हैं। मैंने इस विषय में ठीक ठीक अध्ययन किया है, कि समाजमें कलह-व्यवधान आदि क्यों पडते हैं? दुनिया के अन्दर अथवा सारी समाज के अन्दर ऐसे कुछ आदमी अवश्य होते हैं, जिनका धन्धा यही है कि, समाज में कलेश पैदा कराना और उसे बनाये रखना। आप पूछेंगे उसका नतीजा क्या होता है? इससे उनको क्या फायदा होगा? मैं कहुंगा, इससे उन्हें बहुत फायदा है। सारी समाज के लोग-दुनिया के लोग उन्हें जान जाते हैं। वे प्रसिद्ध हो जाते हैं। सब लोग उनके पास आते है। उनकी पूछ हो जाती है। सब आयेंगे, कहेंगे "भाई साहब, आपको ऐसा नहीं करना चाहिये।' "ऐसा करना चाहिये," "ऐसा करते हैं ठीक नहीं है"। "भाई साहब आपको हमारी मदद करना चाहिये। यह करना चाहिये।" "वह करना चाहिये।" बस, उनका धन्धा चल निकलता है। वे 'भाई साहब' बनजाते हैं। सब कोई जाता है, कहता है "भाई साहब, यों करिये त्यों करियें।" जिनको पहले कोई पूछता तक नहीं था कि कहां किस कोठरी में सडा करता है।? वहां कलेश कराने के बाद सबके 'भाई साहब' बन जाते हैं। यह सब से बडा फायदा उनको है। स्वयम्भू चक्रवर्ती भी यही चाहता था कि, सब चक्रवर्ती का तो दुनिया नाम ही लेती है, पर मेरा विशेष नाम हो जाय कि, मैंने सातवाँ खंड भी साधा है।

चक्रवर्ती उसको साधने के लिये जाता है, परन्तु आखिरकार प्रकृति कहां तक सहन कर सकती है?। उसकी भी एक सीमा होती है। मनुष्य की इच्छा अगर कहीं पर भी तृप्त नहीं होती तो, आखिरकार प्रकृति उसको उसकी धृष्टता का दण्ड नहीं देगी तो क्या करेगी?। वह गिरेगा नहीं तो क्या होगा?। स्वयंभू चक्रवर्ती का जहाज ज्योंही थोडा आगे बढता है-सीमा का उल्लंघन करता है, त्योंही उसका जहाज समुद्रमें डूब

जाता है, और उसकी भी साथ ही जलसमाधि हो जाती है। और मर कर सीधा नरक में जाता है।

छ खण्ड का अधिपति होते हुए भी, आशा और लोभने उसको भी नही छोडा। वह भी आशा का गुलाम बनकर सातवीं नरक में गया। लोभवृत्ति और आशा का यही परिणाम है। खूब याद रखिये, कुदरत वहातक बर्दाश्त कर सकती है, जबतक कि किसीके पुन्यका उदय हो।

पापी का आनंद कब तक।

जब लग पूरबल पून्यकी, पूजी नहीं करार।
तब लग सब कुछ माफ है, औगुन करो हजार॥

धवल शेठ श्रीपाल की पत्नी पर आसक्त हो गया था। कई बार धवलशेठने श्रीपाल को मारने की कोशिश की, परन्तु वह बचता ही रहा। अपनी पुन्याई के जोरसे और श्रीपाल की दया से। परन्तु आखिर पाप का घडा फूटता ही है। धवलशेठ श्रीपाल को मारने के लिये अतिम बार सातवीं मंजिल के मकान में, जहा श्रीपाल सो रहा था, रात के समय कटारी हाथ में लेकर जाता है। लेकिन उसका पाप का घडा भर गया था, सीढी से अचानक उसका पैर फिसल गया और गिरतो ऐसा गिरा कि, कटारी उसी के पेट में घुस गइ और मरकर नरक में गया। बुरे काम करनेवाले कुछ समय सुखी देखे जाते है, परन्तु पुण्य खतम होने पर उनकी ऐसी बुरी दशा होती है, कि, जिसकी, हद नहीं। आज ससार का उसी तरहमे खातमा हो रहा है। लोभवृत्ति में आकर दुनिया का गला घोंटनेवाले, गरीबों पर-निःसहायों पर अधिकार करके उन्हे गुलाम और पराधीन बनानेवाले और पराधीन बनानेवालों के एजन्ट बनकर गरीबों का खून चूसनेवालों के पाप का घडा भरने को आया है। और उन्हीं निर्बलों, अनाथों और असहायों के हाथ से आज वे बेमौत मर रहे हैं, जिसका उदाहरण आप के सामने मौजूद है।

सर्वनाशक लोभ।

प्यारे मित्रो! सोचिए, इन बातों पर शास्त्रकार पुकार पुकार कर आपको कह रहे हैं कि लोभ का जोडा करो, यह लोभ तमाम का नाश करता है।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥

क्रोध प्रीति का नाश करता है। और मानसे विनय नष्ट होता है। विनयको शास्त्रकारोंने धर्म का पिता और दया को माता बताया है। परन्तु मान से इस विनय का भी नाश होता है। माता और पिता के बिना पुत्र की उत्पत्ति नहीं होती। धर्मप्राप्ति के लिये ये दोनों चीजें अत्यावश्यक हैं। माया मित्रता का नाश कर देती है। परन्तु इन तमाम गुणों को एक साथ ही विनाश करनेवाला अगर कोई दुर्गण है तो लोभ है। जहां लोभ आया, वहां न प्रीति रह सकती है, न विनय रह सकता है, न दया, रह सकती है और न मित्रता ही रह सकती है। यह सब अवगुणोंका-सब पापों का बाप है। इन सबके विषय में अपने पीछले व्याख्यानों में भी बहुत कह चूका हूं।

सुख का सारा संसार इच्छुक है। इसी सुख के लिये रात दिन आप लोग सब कुछ करते हैं। वह सब इसीके लिये हैं। पैसा टका, धन-दौलत जो कुछ कमाते हैं दान-पुन्य जो कुछ करते हैं, व्रत-नियम सामायिक आदिमी जो कुछ करते हैं, यानि जितनी भी क्रियाएं आप करते हैं, सब सुख पाने के लिये। परन्तु क्या सुख आपको मिलता है? नहीं मिलता। कारण इसका एक ही है कि, जबतक लोभवृत्ति आपकी नहीं रहेगी, संतोपवृत्ति धारण नहीं की जायगी, तबतक सुख आपके लिए स्वप्न के समान है। वैषयिक सुख-इन्द्रियों का सुख यह वास्तविक सुख नहीं है। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है।

एक छोटे से लेकर सभी संतोप को सुख का कारण बताते हैं। इसलिये आप सन्तोप को धारण करें। फिर इस दुनिया की कोई शक्ति आप के सुख को नहीं रोक सकती। जो मिला, सो खाया—पीया और आनन्द। परन्तु पुरुषार्थ साथ में करते जाइये। सन्तोष का मतलब पुरुषार्थ छोडना नहीं है। और 'पुरुषार्थ का मतलब भी यह नहीं होना चाहिये कि लोभवृत्ति करें। निर्लोभ पुरुषार्थ तभी होगा, जब आपके दिलों में संतोषवृत्ति उत्पन्न होगी। इनका परस्पर अन्योन्याश्रय संबन्ध है। अतः लोभ का आप अवश्य त्याग करें।

मम्मणशेठ का मुंजीपन ?

मम्मणशेठ का उदाहरण आप को मालूम होगा। कितना पैसा था उसके पास। अढलक धन सम्पत्ति थी। लेकिन इतनी ऋद्धि—समृद्धि होते हुए भी खाता था क्या? केवल चंवला और तेल। क्यों?

मम्मण सेठका जीव पूर्व जन्म में एक मामूली गृहस्थ था। उसके पास कोई ऋद्धि-समृद्धि नहीं थी। वह परिवार में भी अकेला रह गया था। उसके गाँव में किसी समय, एक बड़े सेठने जीमन किया। जीमने में उसने साढे बारह सोनामोहर की लागत का एक लड्डु, ऐसे लड्डु बनवाये। जीमन के बाद जो बचे, उन में से एक एक लड्डु हरेक स्वधर्मी बन्धु के घर पहुँचाया। उस लानीमें एक लड्डु मम्मण सेठ के यहां भी आया था। एक दो बजे का समय था। उस दिन अच्छे भाग्यसे एक साधु निर्ग्रन्थ तपस्वी मुनि उसके घर आहार लेने के लिये आये। सेठ अपने दिलमें विचारता है कि 'रसोई तो बनी नहीं है। इन निर्ग्रन्थ मुनि को मैं क्या वहराबु ? । अगर ये वापिस जायेंगे तो भी अच्छा नहीं।' इतनेमें उसे ख्याल आया 'मेरे घरमें लड्डु रक्खा है, वह इस मुनिराज को दे दू।' भावना अच्छी थी। झटसे अन्दर गया और वह लड्डु रसोई घरमें से ले आया। और साधुजी को दे दिया। धर्म भावना उसकी बडी अच्छी थी।

साधु आहार लेकर चले ही थे कि, इतनेमें सेठ की पडोसिन आयी और सेठ को कहती है: "सेठजी, वह लानीमें आया हुआ लड्डु खाया कि नहीं ?" 'मैंने तो नहीं खाया !' "क्या किया, फिर उसका ?" बोले: "मुनिराजजी आये थे, उनको दे दिया।"

"साडे बारह सोनामहोर का लड्डू इतना स्वादिष्ट बना है कि, जिस की कोई हद नहीं। तुमने उसका स्वाद भी नहीं लिया ? । जिंदगी भरमें ऐसा लड्डु अब और कब मिलने का था ? तुम बडे भोले निकले। स्वादहीन रहे।"

सेठ दौडा दौडा घर में गया और जिस बर्तन में वह लड्डु रक्खा था, उसे देखा कि कहीं चूरा खिरा तो नहीं पडा है। कुछ चूरा जो बर्तन में लगा रह गया था, हाथ में लेकर मुहमें फाक गया। जहां थोडासा स्वाद उसकी जीभ पर लगा, उसे इतना स्वादिष्ट लगा कि, जिसकी कोई हद नहीं। जिन्दगी भरमें इतनी स्वादिष्ट चीज उसने नहीं खायी थी।

दौडा मुनिजी के पीछे पीछे। 'ऐसा स्वादिष्ट लड्डू मुनिजी खाजायेंगे और मैं ऐसा ही रह जाऊंगा।' भावसे लड्डू वहराया था। आज उन्हीं को वापिस लेनेके लिए दौड लगाता है कि ऐसा लड्डू साधु को कैसे खाने दूं। साधुजी अभी ज्यादा दूर नहीं गये थे। नजदीक ही दिखाई दिये। सेठ बोला. "महाराज, जरा ठहरो।"

साधु बोले-" क्या हुआ ? "

" महाराज, यह लड्डु वापिस दे दो । "

" साधु के पात्रमें आयी हुई चीज अब तुम कैसे खा सकते हो ? "

" नहीं, आप दे दिजिये, नहीं तो ठीक नहीं होगा । "

सेठ गुस्सा करने को-झगडा करने को तैयार हो गया। मुनिने बहुत तरहसे समझाया, लेकिन वह नहीं माना सा नहीं माना । और मुनिजी को ऊंचा नीचा कहने पर उतारु हो गया । साधु विचार में पड गये । आखिर मुनिने, उस गृहस्थ के सामने ही जल्दी जल्दी उस लड्डु का चूरा करके धूलमें मिला दिया और कहा:" भाई ? यह साधु के पात्र में आचूका था । तेरे खाने लायक नहीं रहा । और साधु अपनी भिख में आयी हुई कोई चीज गृहस्थ को दे भी नहीं सकते ।"

निर्मल आर उच्च भावसे दान देनेके कारण मम्मण सेठ का उसी समय पुण्य बन्ध होगया था, जिससे उस दानका यह परिणाम आया कि उसे लाखों-करोंडों की अखूट सम्पत्ति और ऋद्धि-सिद्धि मिली । ऐश्वर्य आदि मिले । परन्तु लड्डु वापिस लेनेकी जो लोभवृत्ति लगी, इन्द्रियोंके विषयकी लालसा जो पैदा हो गयी, उसका परिणाम यह आया कि, इतनी सम्पत्ति होते हुए भी उसको भोगने का अन्तराय पड गया । तेल और चवल ही उसके नसीब में रह गये । यही उसके भाग्यमें लिखा रह गया।

आज भी ऐसे उदाहरण बहुत मिलते हैं । लाखों की सम्पत्ति होते हुए भी अन्तराय कर्म के उदय से कुछ खा-पी नहीं सकते । कुछ दान देकर पुण्य-उपार्जन नहीं कर सकते । मम्मण सेठ के अवतार होकर इस पृथ्वी पर निवास करते हैं ।

भाईओ और वहनो

अब पाचवाँ अन्तरग शत्रु बताया जाता है–काम। काम की व्याख्या शास्त्रकारोंने यों की है:–" आभिमानिक–रसानुविद्धा सर्वेन्द्रियप्रीतिः स कामः।"

काम क्या चीज है?

अत्यत रसयुक्त, आसक्तियुक्त, प्रमादयुक्त, राग–मोहयुक्त किसी विषय को भोगने का प्रयत्न करना उमका नाम है" काम।"

काम को भोगने के लिए, ससार में जितने पदार्थ है, उनको शास्त्रकारोंने दो विभागमें बाँट दिया है (१) भोग और (२) उपभोग। इन्द्रियों के २३ विषय भी इसमें आजाते हैं। इमका वर्णन आगे करुगा। य २३ विषय सम्पूर्णतया इन दो भेदो में आजाते है।

भोगः—भोग वस्तु वह है: जो एक बार भोगी जाती है। और उपभोग का मतलब है कि वह वस्तु, जो बार बार भोग म आए। कोइ भी चाज हो–खाने की पीने की, पहनने की, ओढने की, सोने की आदि जितनी चीजें ससारके व्यवहार म उपयोग में आती हैं उन सब का समावेश इन दो में आजाता है।

जैसे भोजन है, उमको आपने खालिया। यों कहिये कि उमका एक बार भोग करलिया, तो वह वस्तु खत्म होगयी। अब दुबारा वह भोग में नहीं आसकती। ऐसी जितनी वस्तुएँ है, व भोग में आजाती हैं। अब जैसे कपडे हैं–गहने मकान आदि, वे बार २ काम में आते हैं। यानि उमका न २ भोग किया जाता है। ऐसी वस्तुओं को उपभोग म गिना गया है।

इन भोग और उपभोग की वस्तुओं को कम करना या जीत लेना उमका नाम है काम का विजय। इन पर विजय जबतक नहीं किया जावेगा, तब तक आत्मा का कल्याण नहीं होसकता। और जिस समय उसको जीतलिया इन पर काबू पालिया उस समय इन चीजों को भोगते हुए भी, इनमे आसक्ति नहीं रहेगी। यह निरासक्ति ही मनुष्य की

वस्तु है। मैंने एक उदाहरण आपको दिया था कि, दो तरह के पुरुष एक ही साथ भोजन करते हैं। एक आदमी इस तरह से खाता है कि, पता ही नहीं, क्या खाया। बस, अपने पेट की भूख उसे बुझाना था, एक तरह से किराया देना था, सो देदिया। और दूसरा मनुष्य ऐसा होता है जो बडा रस लेकर "अहा! कितना स्वादिष्ट बना है? कितना मजा आता है?" आदि इस तरह से समझकर खाता है। इस तरह विषयों को भोगते हुए-काम का अनुभव करते हुए एक मनुष्य किसी प्रकार की वासना या आसक्ति नहीं रखता है। उदासीन वृत्ति से उसका भोग करता है। वह कर्म-बन्धन कम करेगा। उन्हीं विषयों को भोगते हुए, उसी काम का अनुभव करते हुए दूसरा मनुष्य उसमें आसक्त बनजाता है। और प्रतिक्षण हजारों असंख्य अशुभ कर्मों का उपार्जन कर लेता है।

स्त्री का देखना यह भी काम है, और भी हरेक चीज का देखना काम है। यह आँखो का विषय ह-काम है। मनुष्य सूर्य को भी देखते है परन्तु सर्य को देखते हुए आखें नीची कर लता है। इसी तरह काम को जीतनेवाला, किसी स्त्री को देख कर आँखें नीची करले, उदासीन वृत्ति धारण करले, बस उसका काम सफल होगया। आँखों का काम तो देखना है, लेकिन देखत ही अपनी कामवृत्ति को जात लिया, पर जिस समय ऐसा नहीं कर सकते-आसक्त होजाते हैं, उस समय भयंकर अशुभ कर्मों का उपार्जन हो जाता है। आसक्ति हमें घोर पाप-मार्ग में लेजानेवाली है, हमारे जीवन का नाश करनेवाली है।

प्यारे भाइयो! इसे खूब याद रखिये। इस आसक्ति को जीतने की पूरी २ कोशिश करिये। फिर भी मनुष्य है, गलती हो जाना स्वाभाविक है। उसका प्रायश्चित्त लेकर अपने आत्मा को शुद्ध करना चाहिये। लेकिन गलती को गलती समझते हुए भी, जानबूझकर करना इसका नाम गलती नहीं है, भयंकर भूल है। अगर आपको अपने आत्मा का थोडा भी ख्याल है तो इससे अवश्य बचिये। इन गलतियों और भूलो के लिए प्रायःश्चित्त करिए।

विल्वमंगल सुरदास क्यों वना ?

बिल्वमंगल का नाम आपने सुना ही होगा। एक त्यागी संयमी साधु पंचाग्नि कष्ट सहन करनेवाला, ४० वर्ष का योग रखनेवाला, महायोगी महात्मा था। उसके पास ज्ञान का बल था, ब्रह्मचर्य की शक्ति थी, संयम का पराक्रम था। एसे महायोगी

वह जनवस्ती से दूर जगल में एकातवास करता था। किसी प्रकार के विषय का कोई विकार उनको न सतावे। ससारी लोग उनके दर्शनों को जाते थे, और अपने को कृतार्थ करते थे। वह झोंपडे में रहकर 'सोह सोह' का जाप करता था।

एक दिन एक गृहस्थ की स्त्री दर्शन करने आयी। वैसे वह रोज आती थी, पर उस योगीने कभी उसके सामने नहीं देखा। आज सयोग से सामने देख लिया। दोनों की चार आखे मिली। स्त्री तो नमस्कार करके चली गयी, लेकिन उस योगी का मन चलायमान हो गया। चित्त के चलायमान होने से मनोवृत्तियाँ विह्वल बन गयी, "कब वह फिर मिले, और कब उससे बात करूँ? कब मिले और कब उससे बात करु" आदि बातों के चिन्तन में योगीने ध्यान धर्म सब छोड दिया। कर्मों की विचित्रता कैसी है? पञ्चाग्नि कष्ट को सहन करनेवाला ब्रह्मचारी योगी, जिसमें किसी प्रकार का मनोविकार की छाया तक कोई नहीं पासकता, मात्र एक स्त्री को देखनेसे उसकी मनोवृत्तियाँ चचल हो गयी है। विषय-वासना की भावना जाग्रत हो गयीं।

एक दिन गया, दो दिन गये, तीन दिन गये, पाच छे करत २ आठ-दस दिन हो चुके। योगी को कामचिंता लगी है। शरीर सूखा जारहा है। खाना-पीना भूलता जारहा है। चेहरा उतरता जारहा है। ब्रह्मचर्य का तेज नष्ट होता जारहा है। बडी दुर्दशा होगयी योगी की। न खाना, न पीना-सब छोड दिया। पागल सा बन गया। उस स्त्री का परिवार योगी का बडा भक्त था। उसका पति रोज आता था और योगी की यह हालत देखकर दुःखित होताथा। आखिर एक दिन नहीं रहा गया। उस स्त्री के पतिने पूछ लिया-" महाराज! बताइये, क्यों आपका शरीर दिन २ गलता जारहा है? आप को क्या रोग है? हम आपके अनन्य भक्त हैं। आपकी यह हालत देखकर हमें अपार दुःख होरहा है। आप हमें अपना दुःख-रोग-शोक बताइये। हम अपनी जान देकर भी आपको बचाएँगे।" निर्लज्ज होकर, विकारोंसे ग्रसित होकर वह कहता है'-"तुम्हारी स्त्रीको न भोगूगा, तो मेरा जीवन नहीं रह सकेगा।" विषयी मनुष्य कितना निर्लज्ज होजाता है? अपने तप और योग को भी भ्रष्ट करनेको तैयार होजाता है। वह गृहस्थ होश्यार और चतुर था, धैर्यशाली था। अपनी स्त्री के सतीत्व पर विश्वास था। उसे निश्चय था कि, मेरी स्त्री स्वप्न में भी किसी तरह का व्यभिचार सेवन नहीं कर सकता। वह महासती है, बल्कि उसके सतीत्व का प्रभाव ऐसा है कि विकारी मनुष्य भी उसके सामने आतेही निर्विकारी बन सकता है।

माताओ और बहनो ! इस उदाहरण को याद रखिये । वह गृहस्थ कहता है:- " महाराज ! इसमें कौन बड़ी बात है ? आप इतने क्यों हैरान होते हैं ? । अगर आपकी इच्छा यही है, तो पूरी कीजिये । मुझे कोई आपत्ति नहीं। आप यहीं जरा ठहरिये । मैं घर जाता हूं और अपनी स्त्री से कह देता हूं कि वह आपकी इच्छा पूरं करदे । आप हैरान न हों । मैं स्त्री को आज्ञा कर देता हूं । "

सेठ जाता है घरको । अपनी स्त्री से कहता है: " मुझे पक्का निश्चय है कि तुम पतिव्रता धर्म का पालन करनेवाली हो । मन, वचन से भी तुम पवित्र हो, लेकिन हमारे पूज्य बाबाजी की आज मनःकामना चञ्चल होगयी है । उनको तुम्हें रास्ते पर लाना होगा । मैं आज तुम्हें आज्ञा देता हूं कि, तुम बाबाजी की जिन्दगी को सुधारदो । मुज दृढ़ विश्वास है कि तुम्हारे सतीत्व में वह बल है कि, तुम्हारे सामने आते ही विकारी मनुष्य के विकार भी अवश्य शांत होजायेंगे । "

स्त्री पति की आज्ञा को स्वीकार करती है । सेठ बाबाजी के पास जाते हैं और कहते हैं:—" बाबाजी ! मैं अपनी स्त्री को कह आया हूं; आप घर जा ; मैं बाजार जाता हूं । "

बाबाजी यह सुनकर खुश हो गये । सेठ के घर गये । स्त्री बहार नीकलती है । साधु का स्वागत करते हुए: " महाराज, स्वामिनाथ, पधारिये । आप गुरु हैं, ब्रह्मचारी हैं, पंचाग्नि का सेवन करनेवाले हैं । आप धन्य है, महापुरुष हैं । पधारिये । मेरी काया पवित्र होजायगी । " इत्यादि कहते हुए अन्दर ले जाती है । पलंग पर बिठा देती है और बिठाने के बाद स्त्री कहती है-" मैं जरा कपडे बदलकर आती हूं । " जिस समय दूसरे कमरे में कपडे बदलने को जाती है, उस समय स को यह भी कहकर जाती है कि-" मैं पतिव्रता धर्म को पालन करनेवाली स्त्री हूं । , वचन और काया से कभी भी दुर्भावना तक नहीं की है । इतना पतिव्रत धर्म पालते हुए भी आज पति की आज्ञा हुई है कि, ' तू साधु की इच्छा पूरी कर । ' पति की आज्ञा से मैं अपने जीवन को नष्ट करके-सतीत्व से भ्रष्ट होकर नरक मे जाने के लिए भी तैयार हूं । " इतना कहकर वह चली जाती है ।

उस समय साधु की विचारश्रेणी बदल जाती है । विचारता :-" धिक् माम् धिक् " ! धिक्कार है मेरे आत्मा को । बार २ वह साधु अपने को धिक्कारता है कि, कहां यह और कहां आज मैं एक होकर ४० वर्षों का योग नाना प्रकार के

कष्टों को सहते हुए, अखड सयम का पालन करते हुए, इसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर, योग से भ्रष्ट होरहा हू। ईश्वर की आज्ञा का भग कर रहा हू। खुद नरक में जारहा हू और इस सती को भी नरक में धकेल रहा हू। धिक्कार है मेरे आत्मा को। हाय! हाय!! मैं क्या कर रहा हू?" साधु अफसोस करता है। रोता है। उसके दिलमें होता है-हाय! मैंने यह क्या कर डाला?

जबर्दस्त आतरिक दुःख उस साधु को होता है और विचार करता है "यह पाप किसने कराया मुझसे? यह पापवासना मेरे मन में क्यों कर उठी?" सोचते २ ख्याल होता है कि "इन पापी नेत्रों के कारण से यह सब हुआ है। जिन्होंने यह पाप किया, उन्हें अवश्य दण्ड देना चाहिये।" साधु इधर उधर नजर डालता है, एक चर्खे की सलाख जो लोहे की होती है, लेकर दोनों ऑखों में खचाखच करके भोंक लेता है। ऑखें दोनों फूट जाती हैं और खून की धारा बहने लगती है। सारा फर्श खून से ला होजाता है। उसके कपडे-लत्ते सब भी खून से तर होजाते हैं और वह साधु गश्त खाकर बेहोश होजाता है। जमीन पर गिर जाता है। उतने में स्त्री कपडे बदल कर आती है और देखती है कि महाराज तो लोहू में सराबोर पडे हैं और बेहोश हो गये हैं। स्त्री कहती है 'अरे महाराज! यह क्या हुआ। मेरे घरमे यह खून-खराबा आपने क्यों किया, और कैसे किया?"

साधु होशमे आया, रोता है, पैर पकड कर रोता है। कहता है-' तुम मेरी माता हो, सती हो, मेरी गुरु हो, मेरे आत्मा की उद्बोधक हो। मैं नरक में जारहा था। तुमने मेरा उद्धार किया। धिक्कार है मेरे आत्मा को, जिनके कारण मैं पाप में गिरते जारहा था, उनको देखि ' मैने सजा देदी। ठीक ही किया, अब मुझे मेरी झोंपडी तक पहुचा दो। जिनके कारण यह सब कुछ हुवा, उस कारण को मैंने मिटा दिया है। अब अपने आत्मा को एकात परमात्म चिंतन में बिताऊगा।"

मित्रो! येही बिल्वमगल आगे चलकर महात्मा सुरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मित्रो! जब तक आत्मा में से यह कामविकार-यह आसक्ति नहीं निकलेगी, वहातक चाहे जितना उपदेश मेरे जैसा साधु आप को दे, अथवा तीर्थंकर भी उपदेश दें तो भी आत्मा का कल्याण होने का नहीं।

संसार में रहते हुए मनुष्य को सब काम भोगने में आते हैं, लेकिन वही मनुष्य मनुष्य है, जो आत्मकल्याण का अभिलाषी है। कुछ न कुछ मोक्ष के प्राप्त करने की

इच्छा रखता है। जो पदार्थों से, काम के विषयों से विरक्त होने की कोशिश करता है, और विरक्त होने की कोशिश करते हुए इस बात का हमेशा ध्यान रखता है कि, मैं इन विषयों में कभी लिप्त न हो जाऊं!

काम एक ज्वर है?

कामज्वर किस को कहते हैं? जब बुखार की डिग्री चढती है और चढते २ मर्यादा का उल्लंघन कर जाती है, उस समय आदमी की समाप्ति हो जाती है। बिलकुल यही दशा काम की है। काम में आसक्त होनेवाला मनुष्य धीरे २ उसके अन्दर इतना डूब जाता है कि, वह अपने स्वरूप को बिलकुल भूलजाता है। बिलकुल पागल होजाता है और यावत् उसकी मृत्यु तक होजाती है। काम की १० अवस्थाएँ शास्त्रकारोंने बतलायी हैं। उनमें १० वीं अवस्था है मृत्यु।

विषय ज्वर में फंसा हुआ प्राणी इस बात को बिलकुल भूल जाता है कि, मैं क्या करने जारहा हूं? मैं कहां जारहा हूं? मेरी स्थिति ऐसी क्यों हो रही है? मैं अपनी सच्ची स्थिति क्यों भूल रहा हूं? इतना विव्हल क्यों होरहा हूं? मेरे माता-पिता, परिवार, मित्र, बान्धव लोग क्या कहेंगे? वह सब भान भूले ही गिरता हुआ चला जाता है। निर्लज्ज या बेशर्म जिसे कहना चाहिए, ऐसी दशा हो जाती है। यह काम की दशा है।

माताने अपना लडका ऊटको खिलाया

आज के नवयुवक ही क्यों? मैं तो कहुंगा कि बडे बडे आदमी भी, कभी २ विषयों में इतने आसक्त होजाते हैं कि, जिन्हें देखकर सचमुच बहुत दया आती है। जब मनुष्य कामी हो जाता है, आपे से बाहर चला जाता है, मर्यादा का भंग करदेता है-स्त्री हो, पुरुष हो, वह कौनसा पाप है, जिसे वह नहीं कर सकता? मैंने एक स्त्री के विषय में सुना था कि वह विषयमें इतनी फसी कि, अपने एक होनहार लडके को, जिसके लिये उसे शक होगया था कि, इसे मेरे पाप की बात मालूम होगयी है, और यह औरों से प्रकट करदेगा, उस लडके को मार डाला। इतना ही नहीं, उसका मांस ऊंट को खिला दिया था। परन्तु पाप कहांतक छिपता? बात मालूम होगई और फिर होना था सो हुआ। कहने का तात्पर्य यही कि जो पुरुष अथवा स्त्री, रात-दिन काम-ज्वर में फंसे रहते हैं, इन्द्रियों के २३ विषयों मे आसक्त रहते हैं, उनको यह भान नहीं रहता कि, हम कौनसा पाप करने जारहे हैं और किधर जारहे हैं? हमारा क्या

हो रहा है ? वे अधम से अधम पाप किया करते है। गर्भपात तक भी तो करते हैं। नाना प्रकार के पापाचार किया करते हैं। इस कामज्वर के परिणामस्वरूप ससार में भयानक से भयानक पाप होते हैं। एक अथवा दूसरी तरह से पाप स्वय ही हमारे शरीर में आजाता है। समझदार से समझदार मनुष्य भी कामज्वर से ग्रसित होजाता है तो उसकी भी यही हालत हो जाती है-धर्म से पतित हो जाता है। धर्मक्रियाओं को छाडदेता है।

कामी को धर्म बडा या काम?

मान लीजिये कि एक धर्मशील आदमी, जो नित्य अपनी धर्मक्रियाये करता है, कभी चूकता नहीं, एक स्त्री पर मोही बन गया है उस स्त्रीने समय दिया है कि, ' प्रात'काल ९ बजे तुम फला जगा बाग मे या कहीं मुझे मिलो।'' अब वह विह्वल हो रहा है वहा जाने के लिये। और इधर उसके धर्मक्रिया करने का समय है। अब बतलाइये, वह कामी पुरुष क्या करेगा ? परमात्मा का स्मरण या इसको छोडकर वह कामी उसी समय बागमें अपनी प्रेमिकासे मिलने जायगा ? वह धर्मक्रिया छोड देगा। और दौडता हुआ उसके पास जायगा। वहा जाने पर अगर वह नहीं मिली, तो पागल होकर उसके इन्तजार में बैठा रहेगा।

यह धर्म की क्रियाओं से पतित और अधर्म की ओर प्रवृत्ति कौन करवा रहा है ! कहना होगा, एक मात्र कामज्वर ! काम की आसक्ति। मै तो यहा तक कहुगा कि, अगर महान् से महान् आचार्य, योगि या अपने बडे से बडे धर्मगुरु उस समय उस शहरमे पदार्पण करनेवाले हों, और सारी प्रजा भक्ति और उमग से जारही हो, ऐसे वक्त पर भी वह कामी स्त्री या पुरुष, बतलाइये क्या करेगे ? उनके दिलो में यही तमन्ना लगी रही होगी कि "हमारा मिलने का समय है। यह आचार्य या धर्म-गुरु पधारते हों तो पधारें। हम तो नहीं जायेंगे, कल दर्शन करलेंगे'' बतलाइये यह काम मनुष्यों की क्या दशा कर देता है ? साधु या आचार्य तो क्या, अगर तीर्थङ्कर देव भी, ईश्वर भी आजाय तो भी उनका स्वागत छोडकर वे वहीं-अपने मिलने की जगह पर जायेंगे।

आप अपने २ जीवन को देख लीजिए। ससार की परिस्थितियों को देख लीजिए। दशा क्या हो रही है ? धर्म-ध्यान-क्रियाए छूटते जा रहे हैं। यही कारण है कि लोग काम के पीछे पागल हो रहे हैं। लोग इन्द्रियो के विषयों के गुलाम हो रहे है।

सब मनुष्य कहते हैं कि जरुर सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजापाठ आदि सब धर्म-ध्यान, क्रियाएं आदि करना चाहिए। परन्तु ऐसा होते हुए भी करते नहीं हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि एक ऐसा भूत लगा है—विषयासक्ति का जो क्रियाओं को करने नहीं देता। और इन्द्रियों के आराम के साधनों को जुटाते २ ही जीवन समाप्त हो जाता है।

कामी क्या नहीं करता?

शास्त्रकार एक कामी मनुष्य की स्थिति का चित्र खड़ा करते हुए कहते हैं कि:-

ध्यायति, धावति, कम्पमिर्ति, श्राम्यति, ताम्यति, नश्यति नित्यम्।
रोदोति, सीदति, जल्पति दीनम्, गायति, नृत्यति, मूर्च्छति, कामि।
रुष्यति, तुष्यति, दास्यमुपैति, कश्यति, दिव्यति, सिव्यति वस्त्रम्।
किं न करोत्यऽथवा हतबुद्धिः कामवशः पुरुषो जननिन्द्यम्? ॥

मात्र दो श्लोक के अंदर एक कामी पुरुष का सारा चित्र खडा कर दिया है। काम का अर्थ एक ही न समझ लीजिये कि, स्त्री के साथ समागम करना ही काम है; परंतु जैसा कि मैंने कई बार कहा है, काम मात्र स्पर्शेन्द्रिय का विषय नहीं है। काम का अर्थ अपनी इच्छा, फिर वह किसी की हो, पूरा करने की लालसा, तमन्ना, चाहे कुछ भी कह लीजिये, जिसमें आसक्ति लगी है, ऐसी बुद्धि रखना ही तमन्ना है। और इसी का नाम काम है। ऐसा कामी मनुष्य मान लीजिए एक स्त्री के साथ ही फंसा हुआ है। उस की दशा क्या होती है? शास्त्रकार कहते हैं:—

ध्यायति—कामी मनुष्य प्रतिक्षण काम का–विषयका ही ध्यान रखता है। जिस में उसकी विषयासक्ति है, या जिसके प्रति मन लगा है, उसीका निरंतर चिंतन करता रहता है। परमात्मा का, गुरु का, या आत्मचिंतन का ध्यान उसे अच्छा नहीं लगता। किसी स्त्री में फंसा हुआ कामी पुरुष सिवाय उस स्त्री के ध्यान के ओर कुछ नहीं जानता।

३० वर्ष की उम्रतक आदमी के गिरने की पूरी २ सम्भावना रहती है। यही वह उम्र है, जब आदमी विषयों की ओर तीव्रता से दौड़ता है। पतन के पथ पर तेजी से फिसलता है। मनुष्य–युवान उस उम्रतक अपने को संभाल ले–किसी की तमन्ना में न फंसे। किसी कामज्वरसे न पीडाए, तो फिर उसका रास्ता सरल हो जाता है। वह निश्चिंत होकर रह सकता हैं। फिर उसका पतन नहीं होने का। फिर तो वह आगे ही

बढता चला जायगा। उसी तरह अपनी बहनों को भी मैं कहुगा कि–आप अभी अपने को संभालें। अगर इस बीच एक बार भी आप धर्म से, कर्त्तव्य से, सतीत्व से गिरें तो फिर अपना खातमा ही समझें। मेरी बहनों के बारे में मैं पहले बहुत कह चुका हू–उनकी बहुत बडी जिम्मेदारी है। देश, समाज और जाति और यह सम्पूर्ण पृथ्वीतलही उनकी पवित्र शक्ति पर टिका है। उनका पतन समग्र–मनुष्य जाति का पतन है।

आजकाल का वातावरण और भी जटिलता पैदा कर रहा है। ऐसे समय मे आप को सावधान रहने में कितनी कठनाइयों होंगी, उसका आप पूरा २ विचार करिये। एक निर्ग्रन्थ मुनि के लिये शास्त्रों में लिखा है कि–-

" चित्तभित्तिं न निज्झाए नारिं वा सुअलंकिअं " साधु को नारि का स्मरण भी नहीं करना चाहिए। उसका चित्रतक भी नहीं देखना चाहिए। उसको नजर स भी नहीं देखना चाहिए। इतनी सावधानी और ऐसे नियम होने पर भी कभी २ उनका भी पतन होजाता है, तो, जो रात दिन स्त्री क ससर्ग में रहनेवाले हैं, गृहस्थी हैं, व कैसे बच सकते हैं ? । मुझे तो हर वक्त विचार आता है कि, आप लोगों की क्या दशा होती होगी ? । आप अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहे है। अगर आप पूरी तरहसे सावधान नहीं रहेंगे तो आपकी क्या दशा होगी ? आप कहा चले जायेंगे, कुछ पता नहीं, आगे है

धावति–दाडता है कामी पुरुष। एक स्त्री के साथ मे मान लीजिए कोई पुरुष फसा ह, और वह स्त्री कहती है कि, यहा से ६ मील पर तुम्हें मुझसे मिलने के लिये आना होगा। फला समय पर। उसको इसका पूरा २ ध्यान है, परन्तु कुछ देरी होगई, समय कुछ कम रह गया। वह कामान्ध बना हुआ मनुष्य, विषयों म पागलबना इन्सान समय कम होते हुए भी, उसके पास पहुचने की कोशिश करेगा। हम कहेंगे कि, " भाई एक मील पर जरा कुछ काम कर आओगे ? "–जवाब देगा: " महाराज, फुर्सत नहीं है। दुकान पर कोई नहीं है बाहर जाना है "। ऐसे धर्मके काम के लिये, परोपकार के लिये, आत्मा की साक्षात हितकारी बात के लिये भी समय नहीं निकाल सकता, जा नहीं सकता, कुछ नहीं कर सकता, परन्तु अपनी माशुक की आज्ञा का उठाने के लिए कडी धूप में भी दौडा जायगा।

मित्रो ! आज लोगो की यह दशा है। कामज्वर का यह परिणाम है।

इसी तरह से स्त्रीयों की भी यही दशा है। जो स्त्रियों परपुरुष में फंसी हैं, वे भी पुरुष जिस तरह नचावें, नाचने को तयार होजाती हैं। अपने खानदान को कलंकित करके अपने महान् पद को कलंकित करके, अपने आत्मा को कुचल करके जिस तरह पुरुष दौडायगा वैसे दौडने को तैयार होजाती हैं।

मैंने एक लड़के को देखा है। मेरे साथ वह पढ़ा भी था, जब हम छोटे थे। वह लड़का जिस समय युवक हुआ; कोई २५ वर्ष की उम्र में था, इसी कामज्वर में गिर गया-एक स्त्री के प्रेम से फँस गया। लड़का बड़ा होनहार था, चारित्रवान था। लोगो में उसके बारे में बातें होने लगी। मुझे विश्वास नहीं आया कि वह भी ऐसा हो सकता है। पर एक दिन मैंने अपनी सगी आँखों से उस की करतूत देखी। बड़ा दुःख हुवा मनमें। बड़ी सुन्दर उसकी आकृति थी। वडा रूपवान था, सुदृढ शरीर था, बुद्धिमान था, होनहार था। मैंने उसे समझाया, बहुत समझाया, पर नहीं समझा। एक दिन मैंने उस युवक को देखा और कुछ समय बाद देखा-उसका रोम-रोम सड़ गया था। सारे शरीर में इतने कीड़े पड़ गये थे कि जिनकी कोई हद नहीं। देखा नहीं जाता था। वह उसी में अपनी इहलोक लीला समाप्त करके चला गया।

कुछ साल पहले मैं राजकोट गया था। एक जवान लड़का था। शादी करने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। परन्तु उसके माता-पिताने उसकी शादी करदी। शादी होने के बाद जो वह विषयान्ध बना सो बना। स्त्री के पीछे, विषयों के पीछे इतना पागल बना कि वह क्षयरोग हो गया और थोड़े ही समय के बाद संसार से चल बसा। उसकी काम की वृत्ति अतृप्त ही रही। यह काम क्या नहीं कर डालता ?। शरीर का नाश तो करता ही है परन्तु आत्मा का भी नाश कर डालता है। दुर्गति का-महादुर्गति का दाता हैं। इस लोकमें भी उसके लिये नरक ही है। बेइज्जती और चौतरफ की बरबादी का प्रतीक हैं। महानुभावो ! सोचिए-किस बुनियाद पर लोग अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं ? आपको सतत सावधान रहने की जरुरत है, अगर जीवन सफल करना हैं तो इस कामासक्ति से दूर ही रहिए। यह महाभयानक दावानल है। क्षणभर में भस्म करदेगी। धन, तन और धर्म सब जलकर खाक हो जाते हैं। आगे हैं

कम्पयिषर्त्ति-कम्पायमान होजाता हैं। आपको शायद ज्ञात होगा-आपने देखा होगा कि, जिस समय पुरुष को या स्त्री को काम का वेग प्रबल रुपसे होता है, उस तीव्र आसक्ति के अंदर शरीर कम्पायमान हो जाता है। उसको भान नहीं रहता

कि मेरा क्या हो रहा है और क्या होता है।

आम्यति–थक जाता है। विषयों के सेवन करने से थक जाता है। श्वासोश्वास वेग से चलने लगते है। पसीना–पसीना निकल आता है और वह इतने निराश और हताश होजाता है कि फिर काम बुरा लगने लगता है। परन्तु वह उसी समय, जिस समय कामज्वर उतर जाता है और दो चारदिन, बल्कि अतिकामी को दो चार घंटे में फिर वही की बात वही।

न जातु जात कामानामुपभोगेन शाम्यति।

कुछ लोग कहते हैं कि, काम को भोग लेने से काम की इच्छा शात होजाती है। बिलकुल गलत बात है। जो इच्छा को शात करना चाहते हैं, उनको विषय सेवन करना कतई मना है। जलती हुई लकडियों मे और लकडी डालने से, वह अग्नि और प्रज्वलित ही होगी। शात कभी नहीं होसकती। जो कामी होता है, काम वासना की तृप्ति करते करते ५०, ६०, ७०, वर्षो के होजाते हैं, तब भी कामी के कामी ही रहते हैं। उनकी कामासक्ति मिटती नहीं, फिर चाहे शरीर अशक्त होने के कारण चलेही नहीं, परन्तु मनोवृत्तियो जो उनकी चचल हो गयी हैं वे कभी स्थिर नहीं होतीं। काम ज्वर तो ऐसा है कि इसमें गले तक डूबे हुए आदमी को क्षयरोग भी होजाता है।

ताम्यति नश्यति। दिन भर इसी तरह की भावना रखते हुए इस कामज्वर में डूबे हुये प्राणी अपन आत्मा को नष्ट करदेते हैं, तप जाता, गरमी से खाक होजाता है। जिस की कामासक्ति बढ गयी है, उसमें आसक्त हो चुका है, निकलने का कोई प्रयत्न नही करता हैं, उसका उद्धार नहीं होसकता। स्त्री चरित्र को कोई पहुच नही सकता है। जिस तरह से वह चाहे उस तरहसे पुरुष को पागल बना देती है। उससे आगे वह कामी मनुष्य क्या करता है।

नालायक़ से नालायक, बुरे से बुरा है, उस मनुष्य की भी खुशामद करने के लिये—अनेक प्रकार की चापलूसी करने के लिये भी कामी मनुष्य तैयार हो जाता है। काम मनुष्य का ख़ून करवाता है। माता, पिता, भाई, परिवार के मनुष्यों का अपमान करने तक को तैयार होजाता है। उन्हें सताने तक में नहीं हिचकता। इस कामज्वर से हृदयमें दुःख होता है। शरीर तिल २ करके जलता ही रहता है। ओज, उमंग, उत्साह, शक्ति सब विनष्ट हो जाते हैं। बिचारा हमेशा चिंतित भी रहता है। इन्द्रियों की अशक्तता से अपनी इच्छाओं को पूरी नहीं कर सकता, दीन वचन बोलता है क्या मनुष्य जीवन यही है? स्त्रीयों के साथ लम्पट होकर नीच वचन बोलते उन्हें शर्म नहीं आती होगी? अपने आत्मा का, अपने पुरुषार्थ का विचार नहीं आता होगा? फिर क्या करता है?

गायति, नृत्यति, मूर्च्छति। कामी पुरुष गाता है। गाना आता हो या नहीं, या कामज्वरसे पीडित प्राणी स्त्री या पुरुष कोई कहे तो, गाने को तैयार हो जाता है। केवल काम की इच्छा पूरी करने की लालच से कितनी दुर्दशा हैं? मनुष्य प्राणी में हजारों दुर्गुण हैं, परन्तु काम के जैसा दुर्गुण कोई दूसरा नहीं। नाचता है। उस में गर्व होजाता है। उसपर मोहित हो जाता है। वाह-वाह कर उठता है। जो पाप या बुराइयाँ संसार का कोई मनुष्य नहीं कर सकता, वह पाप और बुराइयाँ एक मात्र कामी मनुष्य कर डालता है, बिना किसी हिचक के। और कामज्वर से मूर्च्छित भी हो जाता है।

रुष्यति, तुष्यति, दास्यमुपैति रुष्टमान हो जाता हैं और थोडी सी उसकी इच्छा की पूर्ति होती हैं तो खुश खुश भी हो जाता है और समझता हैं कि उसके सिवाय दुनिया में और कोई नहीं। इस प्रकार की उसकी भावना होती जाती है। दासपना और गुलामी करने को भी तयार होजाता है। उससे चाहे कुछ भी काम करवा लो। अपनी विष्टा भी उठवालो। विष्टा को उठाने को वह कामी पुरुष तैयार होजाता है। पेशाब उठाने हो तैयार होजाता है। कपडे धोइन के लिये तैयार होजाता है और दास्यपना करते २ न जाने क्या २ करने को तैयार होजाता है। आर क्या २ करता है?

कर्षति, दीव्यति सीव्यति वस्त्रम्। आर जा कुछ करावे, करने को तैयार होजाता है। वह (स्त्री) अगर कहे—' घांघरा सी दो मेरा ' तो तुरत घांघरा सीने को बैठ जाता है। काम से अन्धा मनुष्य क्या नही कर सकता?

मित्रो ! कुछ भी तो पुरुषार्थ रक्खो। पुरुष हो, पुरुषार्थ मत छोडो। कुछ न कुछ अपने जीवनमें ज्योति प्रगटाओ। आखर कवि कहता है:—

कि न करोत्यऽथवा हतबुद्धिः
कामवश· पुरुषो जननिन्द्यम् ॥

ससार में ऐसा कौनसा नीच से नीच काम है जो कामी पुरुष, विषयासक्त पुरुष, जिस की बुद्धि नष्ट हुई है, करने को तैयार न हो जाता हो।

मैं आपको आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप यहा पर जितने भाई बहिन बैठे हैं, उन सबको चाहिए कि, वे काम के आधीन न हों, काम के गुलाम न हों, आसक्त कभी न हों। अपनी स्वतत्रता को कभी न खोवें। जिस समय आप काम के गुलाम हो जायेंगे, आप सोच लीजिए कि आपका भयकर पतन निश्चित है।

व्यापार, धधा, रोजगार करते हुए, लाखों-करोडों पैदा करते हुए, अगर काम के आधीन होकर इच्छाओं के दास बन गये, विषय-वासनामें फस गये और इच्छाओं के पीछे गुलाम बनकर दौड़ने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि, पतन है। पतन की ओर दोड रहे हैं। इस से आप बचें, सावधान रहें, सतत सावधान रहें, क्षण मात्र की लापरवाही न करें।

भाइयो तथा बहेनो!

अब छठ्ठा आत्मा का अंतरंग शत्रु है मोह। यह मोह आत्मा का घोरातिघोर शत्रु है। इस मोह का प्रलोभन हमारे सामने होते हुए, हम मोहान्ध न बनें, यही स्वभाव रखना हरएक मनुष्य का कर्तव्य है।

मोह की प्रबलता

आठ कर्मों में 'मोहनीय कर्म' सबका राजा कहा गया है, इसकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम की शास्त्रकारों ने बतायी हैं। यह मोहनीय कर्म सबसे बडा है। आत्मा का सबसे बडा घातक है। घोरातिघोर नर्क में लेजानेवाला है। संसार के मानवी इस मोह में पडकर पुत्र-परिवार के ऊपर, पैसे-टके के ऊपर पति-पत्नी के ऊपर, विषय-वासना के ऊपर दुनियां ने और अनेक प्रकार के प्रलोभनों पर जितना मोह करते है, उतना ही धर्म से दूर होजाते है।

मित्रो! आप इससे सावधान रहें। मोह का प्रलोभन जिस समय सामने आवे उस समय उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिए। इसीमें हित है अपने आत्मा का। आत्मा का ही हित नहीं, जगत का भी भला है।

लेकिन फिर भी मनुष्य फँस जाते हैं। आप की क्या बात कहूं? क्यों कि आप तो फँसे हुए ही हैं। हम साधु लोग भी, जिन्होंने माता-पिता, घर-बार, पुत्र-परिवार, जाति-पांति, सब छोड दिया है, और महज अपने आत्म-कल्याण के लिये साधुपना स्वीकार करलिया है, वे भी इस कलियुग के जमाने में किसी न किसी प्रकार के मोह में ऐसे फँसे होते हैं कि, एक साधारण चीज ही क्यों न हो, उसकी भी लालसा होजाती है कि यह चीज मुझे चाहिए।

किसी चीज पर जहां मूर्च्छा हुई, वहीं परिग्रह है। एक छोटी सी चीज है, पाई की कीमत की भी नहीं होगी, लेकिन पाई की चीज पर भी अगर ममत्व हो जाय, मोह होजाय-मूर्च्छा हो जाय तो इसे आप इतना ही परिग्रह समझिये, जितना कि एक लाख रुपये

का परिग्रह होता है। यह त्यागियों के लिये परिग्रह बताया है। मोह का कारण बताया है। इस मोहसे जो परिस्थितियाँ पैदा होती हैं, उनसे अपने आत्मा को बचालिया तो ठीक है– समझलो कल्याण होसकता है। नहीं तो बडा नर्क है।

ससार के पदार्थों में, यानि इन्द्रियों के २३ विषयों में, भोगोपभोग की समग्र वस्तुओं में आसक्ति रखना और इसके परिणाम में अपने स्वरूप को भूल जाना, धर्म को भूल जाना, समझ लेना कि, 'आत्मा, परमात्मा जैसी कोई चीज नहीं है। पाप-पुण्य, जीव-अजीव, आदि नव-तत्व जैसी भी कोई चीज नहीं है, स्वर्ग-नर्क-मोक्ष आदि भी नहीं है ऐसे भाव हो जाय-उसका नाम है मोह।"

मोही आत्मा यही बहिरात्मा

मैंने एक दफे आत्मा के तीन भेद दिखलाये थे: आत्मा, अतरात्मा और परमात्मा।

मोह में गिरा हुआ प्राणी बहिरात्मा है। क्योंकि-ससार के बाह्य पदार्थों में ही सब कुछ समझता है। इस के सिवाय और कोई चीज ही दुनिया में नहीं है, उसके लिये मोह के आवरण में सब चीजें भूल जाता है। किसी भी पदार्थ पर जिस समय मोह होजाता है, उस समय दूसरी सारी चीजें भूल जाता है। अपने कर्त्तव्य को भी भूल जाता है। आवश्यक्ताओं को भी भूल जाता है और स्वयं उसी पदार्थ के सिवाय किसी दूसरी वस्तु को नहीं मानता। वह भान भूल जाता है। इसी लिये शास्त्रकारोंने इस मोह को मदिरा की उपमा दी है।

मोह की मदिरा का परिणाम

मदिरा पीनेवाला मनुष्य भान भूल जाता है। आपको मालूम होगा कि-वह अपने घर को भूल जाता है। माता पिता को भूल जाता है। वह स्त्री को माता और माता को स्त्री कह देता है। यह काम मदिरा कराती है, पर मदिरा की अपेक्षा से भी मोह की मदिरा और जबर्दस्त है। बाजार मे मिलने वाली मदिरा पीने वाले मनुष्य ससार म कष्टों को प्राप्त होते हैं, गटर में गिर जाते हैं। विष्ठामें गिरेंगे, गालियां खारुगे, माता-पिता को भूल जाऐंगे। यह सब कुछ करेंगे, पर इस एक भव के लिये. लेकिन मोह की मदिरा पीनेवाले मनुष्यों को उस मदिरा का नशा इस भव में ही नहीं रहता, भवों भव में साथ रहता है।

संसार आज मोह में डूबा हुआ है। पैसे का जमाना है, जडवाद का जमाना है। इस मोह की मदिरामें मनुष्य फंसा हुआ पैसा और मात्र पैसा पैसा करने में लगा हुआ है। लालायित बना हुआ है। इस प्रकार से पैसे को पैदा करते समय कितनी दुर्बुद्धियां होती है, इसका विचार नहीं होगा। धर्म, आचार और विचार को खो देते हैं। खान-पान खो देते हैं। सभ्यता को खो देते हैं। अपने धर्म की क्रियाओं को खो देते हैं। देश और धर्म की श्रद्धा को खो देते हैं। मैंने कल भी कहा था और हमेशां कहता आया हूं कि, एक स्त्री बच्चे का-अपने पेट के बच्चे का खून कर डालती है, एक मात्र विषय के मोह में पडकर। एक पुरुष माता-पिता को लात मारता है-उनका तिरस्कार करता है, अपमानित करता है, एक मात्र स्त्री के कारण। अपनी जन्म देनेवाली ९-९ महिने पेटमें रखनेवाली माता, जिसका उपकार तीर्थंकर देव भी नहीं भूल सके, ऐसी माता का तिरस्कार करना, दुःख देने की कोशिश करवा रहा है। एक मात्र मोह करवा रहा हैं। संसारी मोह की चेष्टाएं हैं।

मोह के नाना प्रकार के रूप होते हैं। शास्त्रकारों ने तो इस मोह को बहुरूपी कहा हैं। हर तरह से अपनी बुद्धियों को भ्रष्ट करने के लिये, लुभाने के लिये, प्रलोभनमें डालने के लिये मोह नाना प्रकार के रूप लेकर आता है। एक चीज विलायतसे हमारे सामने आयी, उस चीज को लिया एक आदमी ने। वह विचार करता है कि, 'चाहे कुछ भी हो मुझे चाहिए ही'। मैं कहता हूं, यह मोह स्वरूप है अगर उसको मोह उस चीज पर नहीं होता तो चाहे कितनी भी कीमत होती, उस चीज का कभी आदर नहीं करता। वह चीज नहीं थी, नहीं देखी थी, उस समय काम नहीं चलता था क्या? लेकिन चूंकि उसके शरीर में मोह ने प्रवेश कर लिया है और वह मोह की आकृति सामने आकर खडी होगयी है, मन मुग्ध होगया है। इस लिये 'यह चीज तो मुझे चाहिए' यह विचार आया।

संसार, यही सीनेमा नाटक है--

सीनेमा के चित्र निकल रहे हैं। नाना प्रकार की फिल्में निकल रही हैं। वे हमारे सामने खडी होती हैं। क्या वह सिनेमा संसार की चीजों से कोई भिन्न चीज है? नहीं। फिर क्यों देखने की लालसा लगी? मात्र मोह के कारण। दुनिया में जो बातें रोजाना घटती रहती हैं, प्रेम की, लडाई की, चोरी की, बदमाशी की, झगडा-टंटा-फिसाद आदि २ की। उन्हीं सब बातों को तो चित्रपट पर लेकर खडा कर दिया जाता

है-सिवाय इसके और क्या चीज है ? मैं कहता हूं, एक दुकान पर आप बैठ जाइए और दुनिया का वही तमाशा आप वहा बैठे भी देख सकेंगे। दुनिया के तमाशे को देखते जायँ, आपको भिन्न २ अनुभव दिखाई देंगे। सिनेमा ही सिनेमा देखने में आवेगा। मनुष्य की भिन्न २ आकृति, स्वभाव, गंभीर विचार, कार्य, प्रेमरचना आदि हाव-भाव, हलन-चलन, अभिनय नाना प्रकार की वहीं बातें आप कुटुम्बों में देखिये, समाज में देखिये, धर्म में देखिये और जगह २ देखिए-वहा जो कुछ होरहा है, वही सिनेमा मे है। सिवाय दुनिया की इन चीजों के कोई दूसरी चीज इन सिनेमाओं में आपने कभी देखी क्या ? लेकिन फिरभी लोग सिनेमा देखने जरूर जायेंगे। अपने पडोस के गृहस्थ की पति-पत्नी की लडाई लोग रोज प्रत्यक्ष देख चुके हैं। कई लोग तो अपने घरमें ही रोज सिनेमा देखते हैं। फिरभी नहीं, वही चीज सिनेमामें जाकर भी देखेंगे। लेकिन मात्र फरक इतना ही है कि, वहा पर मोह का प्रत्यक्ष उदाहरण खडा होजाता है। मनुष्यों के दिलों में मोह जो गाढा होजाता है, और उसे देख कर खुश खुश होजाते हैं।

अगर लोग अपने मनमें तसल्ली करलें और देखें कि, मनुष्य का यह जीवन ही एक नाटक है। अनादि काल से यही नाटक करने का निश्चय लेलिया है। आज एक वेश लेलिया है मनुष्य का। और उसमें भिन्न २ रूप धारण कर रहे हैं। कभी बालक हैं तो कभी वृद्ध हो जाते हैं। कभी, कभी युवक बन के नाना प्रकार के कार्य करते है। कभी बीमार हो जाते हैं। कभी रोते हैं, कभी हसते है। कभी दुःख उठाते हैं तो कभी महा आमोद-प्रमोद में जीवन बिताते हैं। कभी राज्य भोगते हैं, कभी राज्य छोडते हैं, कभी श्रीमान बनते हैं। कभी गरीब। ये सारी बातें नाटक नहीं तो और क्या है ?

लेकिन सज्जनो ! ये सारी बातें मोह की है। इनको हम भूल जाते हैं और भूल कर साथ ही साथ हम अपने कर्तव्य को भी भूल जाते हैं। हमारा कर्तव्य है धर्म का पालना, सामायिकादि करना और इस तरह इस मनुष्य जीवन को सफल बनाना। लेकिन इसे भूलता कौन है ? जो मोही है। मोह के कारण ही संसार में दुःख दर्द और दुःख देखते हुए भी धर्मध्यान, परोपकार, दान, सत्समागम आदि नहीं सूझता।

मोह राजा का उपद्रव

हमारे गुरुजी कहा करते थे कि, मोह राजा है और उसके दो मंत्री है-राग

और द्वेष। क्रोध, मान, माया, लोभ, इर्ष्या वगैरह ये सब मोह के अनुचर-लडाई करनेवाले सुभट है। आवश्यकता हुई, भेजदिया क्रोध को। कभी किसीको और कभी किसीको भेजदिया।

मोह राजा की दो दासियाँ हैं: निद्रा और तन्द्रा।

आपकी इच्छा होती है कि, व्याख्यान सुनने को जायँ, लेकिन मोह राजा आप के ऊपर सवार होने को आता है। कहता है खबरदार! व्याख्यान सुनने को नहीं जाने दूंगा। वह, अपनी दासी निन्द्रा और तन्द्रा को भेज देता है। हम घडी भरके लिये चाहते हैं कि, कोई ज्ञान की चर्चा करें अथवा सामायिक आदि धर्मक्रियाएं करें, परन्तु मोहराजा कहता है: 'खबरदार! ऐसा काम हम नहीं होने देंगे'। वह हमको धर्मकार्य में विघ्न डालने के लिए क्या करेगा?

अपनी दासियों को भेजेगा, पहले भेजता है तन्द्रा को।

तन्द्रा कहते हैं आलस्य को। निद्रा आने के पहले आता हैं आलस्य। मनुष्य उबासी (जमांई) लेने लगता हैं। कुछ शरीर में दर्द होने लगता है। आंखें भारी २ होने लगती है। इस तरह तन्द्रा अपना कार्य करती है।

कोई भाई आपको सावधान कर रहे हैं, परन्तु आप कहते हैं-"क्या करें, जरा सोने का मन है"। विचारविमर्श हो रहा है। ज्ञान की चर्चा हो रही है। व्याख्यान को सुन रहे हैं और आप कह रहे हैं-"सोने का मन हो रहा है।' सिर नीचे ऊपर हिल रहा है। तन्द्रा कहती है निन्द्रा को कि "मेरी बारी गयी, अब तेरी बारी है। तू आ, और सवार हो इस पर"।

मित्रो! इस मोह राजा के सैनिकों और दासियोंने तथा मोह राजाने संसार के मनुष्यों को इस तरह से गिरा दिया है कि, २४ घन्टे हमार बर्बाद होते चले जांय, लेकिन एक आधा घन्टा भी धर्मक्रिया करना, शास्त्र-श्रवण करना, संत-समागम करना, कुछ भी अच्छा काम करना हो तो हमें निद आने को तैयार होजाती है। ये प्रलोभन हमारे सामने आजायें, ऐसे समय भी सावधान रहजाना और अपना पुरुषार्थ व्यक्त कर देना और जो आत्मा की अनंत शक्ति है, वह मोह राजा को दिखला देना कि खबरदार! तेरे जैसे सेंकडो राजे मिल जायेंगे, लेकिन मेरी शक्ति के आगे कुछ चलनेवाला नहीं। चाहे जिस प्रकार का रूप तू लेले। मेरे आत्मा की अनंत शक्ति, और उन अनंत

शक्तियों के द्वारा तुझे चूर २ कर दुगा।" ऐसा पुरुषार्थ जबतक आप नहीं करेंगे, तबतक कल्पाण कभी नहीं होने का।

स्थूलिभद्र वेश्या के घरमें-

स्थूलिभद्रजी का उदाहरण आपको समझने लायक है।

स्थूलिभद्रजी बारह वर्ष तक गृहस्थपने में वेश्या के वहा रहे थे, और वहा रहकर नाना प्रकार के भोगविलासों को भोगा था। बाद में खास निमित्त मिलने के कारण साधु हो गये थे। महान् विद्वान् और उत्कृष्ट सयमी हुए। इस के बाद गुरुमहाराज की आज्ञा लेकर, उसी वेश्या को उपदेश देने जाते हैं। उसके वहा चामासा करते हैं। कोई और कर सकता है ऐसा? १२-१२ वर्षों तक वहा रहे। वह गाढ मोह और प्रलोभन जहा अपने सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त चारों तरफ खडा हो और एक ही कमरे में जहा वे रहते हों, ऐसे वातावरण में रहकर भयकर अनुकूल उपसर्गात्मक परिस्थितियों में भी उस वेश्या को उपदेश देने के लिये जानेवाले स्थूलिभद्र में कितना मनोबल होगा? कितनी और कैसी दृढता के साथ उन अनुकूल प्रलोभनों को जीता होगा इस की क्या कल्पना कर सकते हैं।

वेश्या, पूर्वावस्था की तरह, हावभावादि करने लगती है, तब स्थूलिभद्रजी कहते हैं-"खबरदार है, मैं अब तुम्हारे साथ कोई काम नहीं कर सकता। मैं वह स्थूलिभद्र अब नहीं रहा। अब तो निर्ग्रन्थ सयमी स्थूलिभद्र हू। तेरी कोई विद्या-नाच-गाना आदि मेरे काम नहीं आसकती। और न मुझे लुभा सकती है।"

परन्तु वेश्या इसे क्षणिक आवेश समझती है। सोचती है, आसमान की बातें करते हैं। कहीं यह भी आजतक हुवा है। यह सोचकर वह कहती है-

"ना कहेशो तो नाटक करशू आज जो,
बार वरसनी माया छे, मुनिराज जो,
ते छोटी केम जाउ हू आशा भरी जो।

"बारह बारह बरस का प्रेम तुम्हारा और मेरा लगा है। आज तुम 'ना' कहते हो, यह कैसे होसकता है? मैं तो तुम्हारे प्रेम को भूल नहीं सकती। मैं तो अवश्य नाचुगी, गाऊगी, नाना प्रकार के नाटक करुगी और अपने प्रियतम को रिझाऊगी। तुम्हारा मनोरजन करुगी। अपना प्रेम तो अवश्य निभाऊगी। मैं आशा से भरी हू, सब छोडकर कहा कहा जाऊ?"

स्थूलिभद्र उत्तर देते हैं:-

"आशा भरियो चेतन काल अनादि जो,
भम्यो धरम ने हीन थयो प्रमादि जो,
न जाणो मैं सुखनी करणी जोगनी जो।"

"हे बहिन! इस आशा का दास बनकर यह चेतन अनादि काल से बेभान बना, प्रमादि बना। इस भव अटवी में चक्कर काटता रहा है। धर्म, कर्म, त्याग, संयम ज्ञान से मैं रहित था। इसी दशामें १२ वर्ष मैंने तेरे पास खोदिये। मैं ने जाना नहीं था कि योग क्या चीज है? संयम, त्याग, आत्म कल्याण क्या वस्तु है? योग की क्रियाओं से मैं अनभिज्ञ था। इसी लिए मैं तेरे पास रहा और उन बारह वर्षों में जो कुछ किया सो किया, अब तो मैं सच्चा योगी हुँ। और योगी होकर तुझे भी इन आत्मघाती भोगोंसे छुडाने के लिए-उपदेश देने को आया हुँ।"

वैश्या फिर कहती हैं कि वाह, आप योगी हैं?

जोगी तो जंगलमां वासो वसिया जो
वैश्याने मन्दिरिये भोजन रसिया जो,
तुमने दीठा एवा संयम साधता जो

"अरे! जोगी जंगलमें रहते है या वेश्या के यहां रहते हैं? अगर आप योगी है तो आपका यहां क्या काम? जंगल में जाइये। यह तो एक वैश्या का घर है! यहां तो भोग, बिलास, आमोद-प्रमोद, स्वादिष्ट भोजन, नाना प्रकार के उत्कृष्ट व्यंजन आदि हैं, यहां रहकर आप अपने संयम का, योग का पालन करना चाहते हैं? विष पीकर अमर-पद पाना चाहते हैं? मैं ने तो ऐसा संयम का साधक किसी को नहीं देखा" उस समय वह वेश्या नाना प्रकार के हाव-भाव-प्रलोभन देने को तैयार होती है परन्तु योगी कहते है-"मैं तो योगी हूँ-पहले गृहस्थ था-तब कुछ भी कर लिया लेकिन अब तो वे सब विषय-भोग मेरे लिये विष-तुल्य है।

ये काम भोग, विषय-वासनाएँ सब आज मेरे लिये शल्य के समान है। काँटे के तुल्य है। तालकूट जहर के समान हैं। दृष्टि-विष सर्प मानिंद है। ऐसे ही परिणाम हैं इन काम-भोगों के भोगने का। पर वे प्राणी भी जिन्हो ने कि इन काम-भोगों को भोगा भी नहीं है, परंतु इन का चिंतन मात्र भी करलिया है, वे तक मरकर दुर्गति के

अधिकारी बने हैं—बनते हैं। अतः हे बहिन! इन बातों को अब छोड़। मैं तो योगी हूँ, तुझे उपदेश देने आया हूँ।" पुनः—

सा.ुशु सयम, इच्छारोध, विचारी जो,
कुर्मापुत्र थया नाणी घरबारी जो,
पाणीमाहे पंकज कोरू जाणिय जो,

"पानी में कमल रहता है, लेकिन जल से स्पर्श नहीं करता। इसी प्रकार कुर्मापुत्र ने गृहस्थ में रहते हुए केवल-ज्ञान प्राप्त करलिया था। मैं भी उसी तरह अपने चित्त को चलायमान नहीं होने दुगा। तेरे घर में, तेरे साथ में रहकर भी तेरी भोग-लालसा से बचकर ही अपना आत्म-कल्याण करुगा और अपने सयम को बराबर निभाउगा।"

वेश्या बोलती है—

जाणि ए तो सघली तमारी वात जो,
मेवा मीठा रसवन्ता बहुभात हो,
अम्बर भूषण नवनवली भोंने लावता जो,

"मैं कहती थी कि फलानी साड़ी लाओ तो झट ले आते थे। मिठाई लाओ तो ले आते थे। मेवा, मिष्ठान्न, फलफूल लाते थे। मेरे कहने से आप नये २ आभूषण सोना, चादी, मोती, जवाहर के अलंकार आदि तुरत लाते थे और मुझे हर समय प्रसन्न रखते थे। ये सारी बातें करनेवाले कौन थे? आप ही तो थे और आज आप ही कह रहे हैं कि, मैं इसमें रहकर भी सयम का पालन करुगा?। यह तो ठीक नहीं है।"

स्थूलिभद्र जवाब देते हैं—हां, बराबर है—

लावतो, तो तू देती आदरमान जो,
काया जाणु सध्या रंग समान जो,
टालो ने शी करवी एवी प्रीतडी जो

"अगर ये चीजें मैं न लाता तो तू मुझे लात मारकर निकाल देती। मेरे पर तेरा प्रेम नहीं चढ़ता, मेरे टके पर—मेरी सम्पत्ति पर तू सभी कुछ करती थी, लेकिन अब यह सब मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि, इसमें मेरे आत्मा का कोई भला नहीं है। यह तेरा और मेरा शरीर रूप, लावण्य यह सब सध्या के रंग समान क्षणिक है। स्थायी रहनेवाले नहीं है, इस लिए इनमें फसकर मैं अपने आत्मा को डुबाना नहीं चाहता।"

वेश्या कहती है—

प्रीतलडी करता ने रंगभर सेज जो,
हँसताने देखाडंता घणूं हेत जो,
रिसाणी मनावीं मुझने सांभरे जो.

"आपको मुझ से बडी प्रीति थी। आप मुझे बडा प्रेम करते थे। मेरे साथ आप हंसते थे। प्रीत प्रदर्शित करते थे। मैं कभी रिस जाती थी, तो आपही मनाने आते थे। कहते थे क्यों रिस कर बैठी हो? और आज आप ऐसी बातें क्यों कहते है?" स्थूलिभद्र जवाब देते हैं—

सांभरे तो मुनिवर मनडुं वाळे जो,
ढांक्यो अग्नि उघाडयो परजाळे जो,
संयममांहे ए छे दूषण मोटकूं जो.

"साधु-संयमी का कर्म क्या है? पूर्व समय के संसार अवस्था की, विषयों की भावना आजाती है और साधु पिछले अपने संसारी अवस्था में भोगे हुए भोगों का चिंतन करता है और संयम से अपना चित्त हटा लेता है जो यह संयम में दूषण हैं। और संयम लेने के बाद भी विषयों को भूल जाना बहुत बडी बात है। याद आवे तो साधु अपने चित्त को उनसे हटा दे और विषयों की बातों को भूलने की कोशिश करे। माता, पिता, पुत्र, परिवार एकदम तो भूले नहीं जाते, लेकिन जब कभी भी उनकी याद आजाय, तो उस समय अपने को सावधान करले कि, "अरे! मैं तो इन सब को छोड चुका हूं। पञ्च महाव्रतधारी हूं। पैसा-टका सभी कुछ छोड रक्खा है। ऐसी हालत में मेरे लिये यह उचित नहीं कि, ऐसी बातें याद करुं। क्यों कि ढके हुए अग्नि को खोलने से वह प्रज्वालित ही होता है और यह बात संयमधारीयों के लिए दूषण हैं।"

इस प्रकार से स्थूलीभद्र १२ वर्ष तक जिस वैश्या के यहां रहकर भोग-विलास भोग चूके थे, उसीको प्रतिबोध करने के लिए, गुरु की आज्ञा लेकर आए और वेश्या के नाना प्रकार के प्रलोभनों को-हावभावों को-सबको लात मारकर कमल की तरह उन सबसे विरक्त है। सतत अपने आत्मा का, अपने संयम का पूरा २ विचार रक्खा। उस मोह राजा की सेना के बीच में रहकर भी अपने आत्मा को पवित्र रक्खा। और अपने दृढ मनों से उस मोह राजा की सेना को भी चूर २ कर दिया। और ऐसा करके उस वैश्या को प्रतिबोध दिया। इतना ही नहीं, उसको बाह्य व्रतधारिणी श्राविका बनायी। चौमासा पूरा होने पर जब वे गुरु के पास लौटे तब गुरुने उन्हें अपने सम्पूर्ण प्रेम से हार्दिक आशीर्वाद दिया।"

प्रतिकूल परिस्थितयों में रह कर मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है और जो कुछ संयम रखना चाहे रख सकता है। परन्तु जहा चारों तरफ गिरने के-पतित होने के-चलायमान होने के साधन भरे पडे हों, उन्हींके बीचमें रह कर संयम की रक्षा करना बडा ही कठिन काम है। यही कारण था कि श्री स्थूलिभद्रजी का कार्य, इतिहासों में 'अति दुष्कर' बताया गया और उसमें सफल होने से उनका नाम अमर हो गया।

जानते हुए वैराग्य क्यों नहीं ?

आप लोग संसार में रहते हैं, परंतु साधारण से साधारण प्रलोभनों से भी गिर जाते हैं। इसका कारण यह हैं कि गिरना और खडे रहना दोनों बातें आप को समान हैं। आप को इस बातका अभिमान किंवा ख्याल ही नहीं है कि हम क्यों गिरें ? हम हमारी पवित्रता को क्यों खोवें ? इसका एक मात्र कारण है मोह। मोह सिरपर सवार है। मोह ने बुरी तरह दबा दिया है। आपके मनुष्य-जीवन की क्या सार्थकता है ? कर्तव्य और धर्म की सारी बातें बदली जा रही हैं। आप जानते है कि " संसार अनित्य है। क्षणभंगुर हैं, नाशवान है। हमें एक दिन सब छोड कर चले जाना है। कोई किसी का नहीं है "। फिर भी दिन रात कहते रहते हैं-"यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा परिवार है।" इतना समझते हुए भी एक रत्ती मात्र भी वैराग्य की भावना नहीं आती है। एक चीजका भी त्याग, प्रत्याख्यान नहीं होता है। यह मात्र मोहनीय कर्म का उदय है। इस मोहनीय कर्म में फस कर पत्नी स्वामिनाथ २ कहती है, पर जब वही स्वामिनाथ बीमार पडते हैं और डाक्टर, वैद्य, सभी जवाब दे देते हैं कि अब तुम्हारा पति बचनेवाला नहीं है, तब वही पत्नी पति के कान में कहती है.-"स्वामिनाथ ' संसार में कोई किसी का नहीं है। मेरे पर से आप मोह उतार दें। और जरा सुन तो लीजिए, वह तीजोरी की चाबिए कहा रक्खी है ? जरा बता दीजिए "। जीवित अवस्था में जब तक इन्द्रियों सबल थीं, कभी किसीने एक दूसरे से नहीं कहा कि "संसार असार है। आप मेरे पर क्यों मोह रखते है ? कुछ तो त्याग, तपस्या, दान, सुकृत आदि कर लीजिए"। परन्तु जब लकडियों में जाने का समय आया, और इन्द्रियों निर्बल हो गयीं, कुछ भी करधर नहीं सकते, उस समय पति को पत्नी, पत्नी को पति, पुत्र को पिता, और पिता को पुत्र, आपस में कहेंगे कि "यहा कोई किसी का नहीं है। तुम तुम्हारी समालो और हम हमारी और वे चाबिए कहां रक्खी

है ?" अब यह कहना कहां तक सार्थक है ? अब कहने से क्या होता है ? पहले तो कुछ कहा नहीं कि कुछ उपाय भी करलें। यह सब मोह की माया है।

बुढिया के घर में यमराज

संसार में मनुष्यों का मोह भी कहां तक रहता है ? जबतक कि स्वार्थ में किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती। जब सिर पर आती है, तब सगी मा भी लडके को यम के हाथ दे देती है। इस पर मैं एक उदाहरण देता हूं।

एक बुढीया थी, कोई करीब ८०-८५ वर्ष की। बडी निर्बल थी। उसके एक लडका था। वही एक मात्र उसकी एक संतान थी। बडा प्रेम था, बडा मोह था उस लडके पर बुढीया का। लडक एक समय बीमार पडा और बीमारी बढते २ उसको संन्निपात हो गया। दवा-दारु की जाती है, पर कोई विशेष फायदा उसको नही हुआ। बुढीया रोज मनाती हैं कि, मेरा लडका अच्छा होजाय तो अच्छा है। रोती है, कलपती है, बडी चिंतामें रहती है। एक दिन शाम का वक्त था, आसपास की बाईयों लडके को देखने को आयीं। उस दिन संयोग से एक बाईने कह दिया कि "माई, जिसके घरमें कोई आदमी बीमार पडता है और मरने को होता हैं, तो उसके घरमें जमबाबाजी [यमराज] लेने को आते है"। मरने का किसीका कोई ठिकाना तो होता नहीं। बुढिया के दिलमें यह शंका हो गयी कि, शायद मेरे लडके को लेने के लिये कोई 'जमबाबाजी' न आजावे और फिर इधर उधर की बातें हुई और वे बाईयों अपने २ घर चली गयीं।

रात का समय था। बुढिया अपनी खटिया पर अकेली सोई हुई है। दरवाजा खुला है और पिछले कमरे में उसका लडका सोया हुआ है। आज उसकी तबीयत कुछ स्वस्थ थी। इतने में रात्रि का करीब १२ बजे का समय हुआ। घरके बाहर आंगनमें भैंस बंधी हुई थी। बुढिया की वह भेंस वहां से रस्सी खुलजाने से छूटी और छूटकर दरवाजे की तरफ बढ़ी। जानवरों का स्वभाव होता है कि, जिधर घर का दरवाजा खुला देखा, उधर ही बढते हैं। बढती आरही है भैंस। ऐसी हालत में पडी २ वह बुढिया उसको देख-रही है। उससे जरा कम दिखता था। धीरे धीरे उसे मालूम होता गया कि घरकी तरफ कुछ आ रहा है। बुढियाने सोचा कि, कहीं मेरे लड़के को लेने के लिये यमराज तो नहीं आरहे हैं। उसके दिलमें फिकर हुई कि, अगर जमबाबाजी मेरे लडके को

लेजाएंगे तो हाय हाय ! मेरा लडका मरजायगा। बडी कलपती है। विलाप करती है कि, अगर मेरा लडका मरगया और जमबाबाजी लेगए, तो मैं क्या करुगी ? मेरे खानेपीने का क्या होगा ? मेरे लिये कमाकर लावेगा कौन ? इत्यादि बहुत कलपती है।

भैंस घुसी दरवाजे में। बीचमे ही डोकरी की खटिया थी। डोकरी को विचार हुआ कि ये जमबाबाजी मेरे पासही क्यों खडे होगये ? क्या मुझे तो लेनाना नहीं चाहते ?

भैंस वहीं जम गई। हटी नहीं, क्यों कि आगे चलने की जगह नहीं थी। बुढिया का शक बढने लगा कि, शायद है मुझे ही ले जायेंगे। अभी तक उसे लडके की फिकर थी, अब उसको यह फिकर लगी कि मुझे ले जायेंगे तो मै क्या करुगी। भैंस जरा आगे को बढी। और डोकरी के साडी का पल्ला जो नीचे लटक रहा था, मुह में पकड लिया। जानवरों की ऐसी आदन भी होती है। अब तो डोकरी को निश्चय हो गया कि, जमबाबाजी मुझे उठाने लग हैं। तब लगी करने विलापात "मै मरजाऊगी, मेरा क्या होगा ?" अबतो लडके की याद भी नहीं करती, अपने ही बारे में सोचती है कि, "मेरा ईश्वर के आगे क्या होगा ? मैने तो कोई अच्छा काम किया नहीं है"। यह नहीं किया, वह नहीं किया आदि २ बातों की चिंता करने लगी। जम हटा नहीं, पल्ले को पकड कर खींचने लगा। अब तो उसको पक्का निश्चय हो गया कि जमबाबाजी मुझे ही ले जाना चाहते हैं। बुढिया सोचती है, जमबाबाजी भूल कर रहे हैं। वे आये है तो बीमार लडके को लेने को, लेकिन भूल से ले जा रहे है मुझको। इसलिये पहिले इसके कि, जमबाबजी मुझे उठाए, मै उन्हें समझा दू। ऐसा सोच कर वह बुढिया जम बाबाजी से प्रार्थना करती है—"अम-जमबाबाजी, वह मेरा बिमार लडका, जिसको तुम लेने आये हो, वह तो अदर सोया हुआ है। मुझे क्यों ले जाते हो ? मैं तो अच्छी चगी हू। भूल तुम भा कर लेते हो। वही बीमार है, बहुत दिनों से। उसीको लेजाओ न, तुम मुझे छोड दो।"

वह बुढिया जो थोडी देर पहिले लडके के मरने की आशका के कारण कलपती थी, चिंता करती थी कि मेरा क्या होगा !। अब जमबाबाजी, जो कि वास्तवमें भैंस थी, परन्तु फिर भी उनके द्वारा पकडे जाने के कारण, अपने जवान लडके का हाथ पकड कर कहती है और जमबाबासे प्रार्थना करती है–'बाबाजी ! लो यह है, जिसको तुम लेने को आए हो। लो, लेजाओ इसे, मुझे मत ले जाओ"।

प्यारे मित्रो ! यह बात आप नहीं समझते हैं क्या ? सैंकड़ों हजारों उदाहरण आपके सामने हैं । जब तक स्वार्थ है किसी का भी किसी पर, चाहे माता का पुत्र पर हो, पुत्र का माता पर हो, पति का पत्नी पर हो, पत्नी का पति पर हो, पुत्र का पिता पर हो, पिता का पुत्र पर हो और एक दूसरे को कमाकर लाकर देता है तभी तक सब सगे संबंधी हैं । परन्तु जब स्वार्थ में हानि लगजाती है, उस समय वही एक दूसरे का खून तक करने को तैयार होजाते हैं । मुकदमेबाजी आदि तो एक साधारण बात है ।

भाइओ और बहनो

कल मैने मोह के विषयमें कहा था। 'मोह' के सबध में जितना कहा जाय उतना कम है। परन्तु यहां कहाँ समय है? पजुसण आ ही रहे है। पजूसण के पहले जितना कह दिया जाय, उतना ही अच्छ है। और कहने का अभी बहुत है। पजूसण के बाद गुरुदेव की जयन्ती का उत्सव चलेगा, बादमे ओली आवेगी, और सभव है मेरी आख का ओपरेशन भी हो। खैर, जो कुछ होगा देखा जायगा।

स्वार्थी ससार

हा, तो मोह को जीतने के लिए आप लोगों ने प्रयत्न करना चाहिए। मोह को मनुष्य तभी जीत सकता है कि ससार को स्वार्थी समझे और समस्त पदार्थों को अनित्य समझे। ससार कितना स्वार्थी है यह तो मैं कईबार बतला चूका हू। कल भी कहा था। उस डोकरी को जब यह मालूम हुआ कि–' यमराज तो मेरे लडके के बदले में मुझे लेजा रहे है ' तब हाथ पकड करके लडके को बताया कि " बीमार तो यह है मैं तो चंगी हू, मुझे क्यों लेजा रहे हो? " इससे बढ कर ससार का चित्र और क्या खडा किया जा सकता है?।

इसके अलावा रातदिन ससार की स्वार्थता आप लोगों के दृष्टिपथ में निरतर आती ही है। किसी कविने ठीक ही कहा है

जीव माता पिता भाई बेनडी, सहु कुटुम्ब तणो परिवार,
जीव वहेती वारे सगु सहु मळ्यु, पछी, लाबा हो कीधा जुहार
जीव वार छु मोरा वालमा ॥

माता, पिता, पुत्र, भाई, मित्र, स्नेही, पति, पत्नी भी मनुष्य के साथ कहां तक सबन्ध रखते है, जब तक कि उसके पास मे कुछ है–पैसा है, माल मिल्कत है। मालूम हुआ कि अब इसके पास कुछ नहीं है, तो सब दूर भागेंगे। किसी सगे सबन्धी के पास, बल्कि निकट के सबन्धि के पास पैसा नहीं है और वृद्धावस्था है, न कोई उसके

बाल बच्चा है, ऐसी बुढिया का उस श्रीमान् गृहस्थ के यहां सैंकडों आदमी जिमते होंगे, ऐसे मौके पर भी, उसका भाव नहीं पूछा जायगा। वह जीमने को नहीं जायगी तो बुलाने को एक बच्चा भी नहीं जायगा। चाहे रिश्तेदारी न हो, एक साधारण मित्र भी जीमने को नहीं जायगा, तो स्वयं सेठ साहब उसके घर जायेंगे, पघडी पैर में रक्खेंगे और अपनी मोटर में ले आवेंगे, क्यों कि वह पैसेदार है। संसार की इस विचित्रता को कौन नहीं जानता है? इतना होते हुए भी मनुष्य को वैराग्य नहीं आता। एक और बात कहूं।

धर्मादा मिल्कत पर मोह

दिवाला निकालनेवाले पुरुष दिवाला निकालते हैं, पर ये दिवाला निकालनेवाले किसको रुलाते हैं? मात्र धर्मादा संस्थाओं को, गरीब बहु-बेटियों को, और विधवाओं को। और लोग तो तमाचा लगाकर फौजदारी कर २ अपने पैसे इन दिवालियों से लेंगे। धर्मादा की और इन गरीब विधवा बहनों की जितनी मिल्कियत होती है, उसे उकार जावेंगे और उसीसे फिर मौज उडावेंगे, सट्टा करेंगे, अपना और कारोबार करेंगे, रुपये में एक पाई भी उनको नही चुकाएंगे।

आज संसार के मनुष्य कहते हैं और ऐसा मानते हैं कि, ये मंदिरों की रकमों के ट्रस्टी, धर्मादा की रकमों के ट्रस्टी और लोकोपकारी संस्थाओं के ट्रस्टी बडे धर्मात्मा और सज्जन होते हैं। परन्तु मेरा तो विचार जरा और ही प्रकारका है। बहुत कम ऐसे भाग्यशाली मनुष्य होंगे, जो दूसरों की मिल्कत का सदुपयोग करने की कोशिश करते हों। बिलकुल नहीं हैं, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता। पर होते बहुत ही थोडे हैं।

आज इंदोर में कितने ट्रस्ट हैं। बहुत ट्रस्ट हैं। आप लोग चाहें तो अच्छे से अच्छा कार्य कर सकते हैं। लेकिन किसको पडी है कि जो इन ट्रस्टों का सदुपयोग करे। कईयों के घरों में धर्मादे की बडी २ रकमें पडी हैं। पर निकाल कर कोई समाज के हित का काम नहीं करना चाहते। हजारों को शिक्षा-दान दिया जासकता है। सैंकडों विधवा, दुःखी माताओं तथा बहनों का हित किया जासकता है।

कहने का मतलब यह है कि, लोगों की वृत्ति ऐसी है कि, जो धर्मादे का पैसा आता है, उसको भी घरसे निकालकर देना नहीं चाहते। खूब याद रखिये। यह तभी तक आपका है जब तक कि आपकी जिन्दगी है। जिन्दगी के बाद क्या होने का है, फिर इस जिन्दगी का भी तो कोई पट्टा लेकर नहीं आया है। जब शरीर का भी भरोसा नहीं

आज है कल नहीं, तो फिर क्यों नहीं अपने ही हाथों से कुछ न कुछ कर जाते ? लेकिन आत्मा पर कर्मों का बोझा इतना जबर्दस्त लगा है कि, ऐसी सद्बुद्धि पैदा होने की भी नहीं। वही चालबाजी, वही छलकपट, लोभ, दम्भ, अन्याय, अत्याचार, ठगाई, धोखे बाजी और प्रपच में डूबे हुए हैं।

आप पुण्य पापको मानते हैं। स्वर्ग, नर्क को मानते है, जीव-अजीव को मानते है तो मेरा तो ऐसा ख्याल है कि, जो उपदेश आपको दिया जाता है, उस पर कुछ न कुछ आचरण करते जाइये। अपने जीवन में उतारते जाइए। अगर उतारने की कोशिश नहीं की, तो जिन्दगी की कोई सार्थकता नहीं। जिन्दगी बेबन्दगी शर्मिन्दगी।

प्यारे मित्रो! अपने सम्पूर्ण साधनों को ससार के सकट दूर करने और आराम पहु चाने के लिये, मानव जाति की भलाई के लिये अर्पण करते हुए जो मर जायगा, उसका ससार में हमेशा के लिये अमर नाम रहेगा। जगत के प्राणी उनका नाम-स्मरण करते है। सूर्य तो प्रातःकाल में ६-७ बजे उदय होता है, परन्तु भलेपुरुषों का नाम स्मरण तो लोग प्रातः ४ बजे उठकर करते हैं। अर्थात् ऐसे परोपकारी मनुष्यों का उदय तो सूर्य से भी पहेले होता है। आप भी चाहते है कि हमारे मरने के बाद हमें भी लोग नमस्कार करें, तो यह कब होसकता है ? मोह को ओछा करेगें तब। सिवाय मोह को ओछा करने के और कोई रास्ता इस के लिये नहीं है। सासारिक पदार्थों से पुत्र, परि-वार, पैसा-टका पर से मोह ओछा कर के बहिर्भाव से निकलकर स्वभाव में आजायेंगे, आत्म-स्वरूप में आजायेंगे, सेवा-कर्त्तव्य को बजावेंगे। आपका नाम भी अमर हो सकता है। इस मोह शत्रु को दूर करने के लिए प्रतिदिन कोशिश करे।

अब ३५ वाँ गुण कहते है।

पेंतीशवाँ गुण-वशीकृतेन्द्रियग्राम

विषयों को जितने की कोशिश करनेवाला हो। इन्द्रियों के २३ विषयों को जीतने की कोशिश भी मोह को ओछा करने से ही होती है, वर्ना कभी नहीं। मोह-मूर्च्छा को कम कर के, मात्र अपनी डयूटी बजाने के लिए, पेट भरने के लिए, जीवन का निर्वाह करने के लिए काम किया जाय तो इतना कर्म बन्धन नही होसकता, जितना कि, उसमें आसक्ति रखकर मनुष्य कर सकता है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए, पाचों ही इन्द्रीयों के २३ विषय गृहस्थ के सामने खुले हैं। हम साधु तो कई बातोंमें

पराधीन हैं। बन्धे हुए हैं। स्वतंत्रता से आप जितने भी विषयों को जिस प्रकार से भी भोगना चाहें भोग सकते हैं. लेकिन खूबी यह है कि, इन विषयों को प्राप्त होते हुए भी इनका त्याग किया जाय, इसी में मनुष्य-जन्म की सार्थकता है। इन विषयों को प्राप्त होते हुए, आप लोग अपनी मोहवृत्तियों को काबू में रखकर जितना हो सके इतना विषयों को जीतने की कोशिश करें।

विषयों के जीतने का उपाय

स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय-ये पांच इन्द्रियाँ है। इन पांच इन्द्रियों के विषयभोग आप के सामने उपस्थित हैं। लेकिन इन्हें आप जीतिए, इसके लिये क्या करना चाहिये ?

सबसे पहली बात है मन में वैराग्यवृत्ति पैदा करने की। जबतक वैराग्यवृत्ति न होगी, और मनोवृत्ति को काबू मे करने की कोशिश नहीं होगी, वहांतक इन वृत्तियों को आप जित सके, ऐसा कभी नहीं हो सकता। भावना यह होनी चाहिए कि हम किस तरह हमारे विषयों को जीतें और उन विषयों से अलग रहने की कोशिश करें।

परन्तु आज संसार में क्या हो रहा है ? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इसका नतीजा यही आ रहा है कि, पतन हो रहा है। इतने ग्रन्थों को पढते हुए, इतने इतने व्याख्यानों को सुनते हुए, इतनी बुद्धि-विवेक होते हुए और इतनी विचारशक्ति होते हुए लोग दिन-प्रतिदिन पतित होते चले जा रहे हैं। अच्छे से अच्छा ज्ञानी, जो अच्छी अच्छी बातें करता है, ज्ञान और धर्म के तत्त्वों का भी सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन करता है, ऐसे मनुष्यों को भी मैं देखता हूं कि, विषयों के गुलाम होते जा रहे हैं। तब फिर कैसे हमारा कल्याण हो सकता है ?

हाथी कैसे पकडा जाता है ?

स्पर्शेन्द्रिय के विषय के पीछे गुलाम होनेवाला हाथी और उसमें भी एक जंगली हाथी, कैसे पकडा जाता है आप जानते हैं ? मनुष्य की ताकत नहीं कि, उस जंगली हाथी को पकड ले, लेकिन जब विषयों का गुलाम वह हाथी होजाता है, अथवा यों कहिए कि, पकडनेवाले उसे पहले विषयी बनाते हैं। एक हाथिनी को उसके सामने रखा जाता है और उसके पीछे विषयान्ध बनाया जाता है। जब हाथी पकड में आसकता है; अन्यथा कभी नहीं।

आपने शायद सुना होगा कि, हाथियों को कैसे पकडा जाता है ? भयकर से भयकर आफ्रिका के जगलों में रहनेवाले हाथियों को पकड़ने का तरीका यह है कि एक बडा भारी गडा खोदा जाता है। इतना बडा कि, हाथी उसमें डूब जाय। फिर उसको ऊपर से कागज और लकडी आदि से ढक दिया जाता है। जमीन के बराबर बना दिया जाता है। यह नहीं मालूम हो सकता कि यहा गढा है और यह जमीन पोली है। उस पोली जमीन पर एक कागज की हथिनी बनाकर रख दी जाती है। दूर से ऐसा मालुम होता है कि, मानो साक्षात् हथिनी खडी है। आदमी वहा से चले जाते है। हाथी के दिल में उस हथिनी को देखकर विकार पैदा होता है। विषय सेवन करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हो जाती है। और जब कामातुर होकर विषयसेवन करने के लिए दौडकर हथिनी के पास जाता है और उस पर हमला करता है जब वह कागज की हथिनी टूट जाती है और हाथी नीचे गड्ढे में गिर जाता है। गड्ढे में गिरने पर बहुत गहरा होने से हाथी उसमें से निकल नहीं सकता। फिर कई दिनो तक उसे, भूखा रक्खा जाता है। फिर भूखसे कमजोर हो जाता है। तब जजीरा आदि से पकड कर अनेको तरीकों से गड्ढे से बाहर निकाला जाता है।

देखिये स्पर्शेन्द्रिय के विषय के कारण से, हाथी जैसा प्राणी भी बन्धन में पड जाता है और आदमी जैसे छोटे से प्राणी के हाथ में आजाता है, विवश हो जाता है। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो जाती है। जब उस बलवान प्राणी की यह हालत है, तो हम मनुष्य की क्या दशा होती है ? आप ख्याल कर सकते है।

हम मुलामियत में पडे हैं, सुकोमल बन गये है। जमीन पर सो नहीं सकते, अगर जमीन पर सोजायें तो कमर में दर्द होने लगे। यह सब स्पर्शेन्द्रिय की गुलामी का कारण है।

अस्सी वर्ष की बुढिया की स्पर्शेन्द्रिय—

वह विषय कहा तक मनुष्य को सताता है। चाहे वह स्त्री हो, पुरुष हो, या कोई भी हो। इसके विषयमें हमारे गुरुजी कहा करते थे। जब मैं छोटी उम्र में काशी में पढ़ता था उस समय की बात है। कोई ८०-८५ वर्ष की बुढिया काशी मे गगाकिनारे भीख माँगा करती थी। शरीर मे बिलकुल जर्जर थी। आँखो से अन्धी थी। पहिले वह वहा नहीं बैठती थी, किन्तु शहर म लोगो से पैसे माँगा करती थी, परन्तु अब वह वहां हाथ पसारे भीख मागने को बैठी थी। हमने एक ब्राह्मण से पता लगाया। गुरुजी को ब्राह्मण ने कहा

"महाराज! यह ८०-८५ वर्ष की बुढिया है। बिलकुल अशक्त हो गई है। मरने के नजदीक आई है फिरभी उसके मनका विकार अभी नहीं गया है।"

महाराजश्रीने कहाः-"क्या बात तुम कहते हो? वह क्या विषय-सेवन कर सकती है? नहीं, कहीं कुछ नहीं है। आपको मात्र भ्रम हो गया है।"

ब्राह्मणने उत्तर दिया -"नहीं महाराज! उसको इतना ही विषय रहा हुआ है कि कोई पुरुष उसको स्पर्श करले या उसे ऊंचा उठाकर अलग रख दे। बस इतना ही उसको विषय है।

मित्रो! स्पर्शेन्द्रिय के विषय की कितनी तीव्रता है? ८०-८५ वर्ष की उम्र है परन्तु विषय की वासना नहीं गयी। शरीरसे अशक्त हैं, पर फिर भी कोई पुरुष स्पर्श मात्र करले तो उसको संतोष हो जायगा। हाय! ऐसे विषयों के गुलाम महाघृणित विषयों की गटरों में हम जाकर क्या आत्मकल्याण कर सकते हैं? इस वासना को जीतना अति दुष्कर है। बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है, इसके लिये तो सतत प्रयत्न आप करें, तभी आप इस से बच सकते हैं और आप का कल्याण हो सकता है।

आगे है रसनेन्द्रिय। संभवतः मनुष्य स्पर्शेन्द्रिय से बचे भी, तो भी रसनेन्द्रिय से बचना बडा कठिन है। पत्नी स्वादिष्ट से स्वादिष्ट रसोई बनाकर पति को खाने को देती है। लेकिन एक चीज उस में पसंदगी की भूल से छूटगई तो देखिये, गालियों और अपशब्द की कैसी बोछार चलती है?

मच्छी कैसे फसती है?

यह काम आप से कौन करवाता है? क्रोध कौन करवाता है? रसनेन्द्रिय के विषय की गुलामी यह सब कुछ करवा रही है। नदी तालावों का पानी कितना सुन्दर होता है और स्वच्छ दीखता है। उसमें मछलियां आनंद से किलोल करती हैं। बड़ी लुभायमान लगती है। इतनी चपल होती हैं कि मजाल नहीं, कोई उनको पकड सके। लेकिन मछली उसकी पकड मे आजाती है जो उसको खाने का लालच देता है। कहते हैं, मछली पकडने का जो जाल होता है, वह एक दोरे में बंधा होता है। उसके सिरे पर एक लोहे की सलीसी होती है। जिसकी नोक जरा टेढी होती है। उस टेढी नोक में एक आटेकी या ऐसी ही कोई खाद्य पदार्थ की चीज लटका के उसे पानी में छोड दिया जाता है। उस कांटे में लगी आटेकी गोली या वह चीज जो लगी

है, रसनेन्द्रिय के लालच में आकर मछली अपने मुह में लेती है कि बस उसका तालू उस काटेमे बिंध जाता है और काटा फिर ऊपर खेंच लिया जाता है। मछली मर जाती है केवल रसनेन्द्रिय के कारण। शिकारी अपना शिकार लेकर घर की ओर रवाना होता है।

मित्रो ! बतलाईए, मछली कैसे पकडी गयी ? पानी में रहनेवाली वह चपल मछली, जो, किसी के पकड में आ नहीं सकती, क्यों कर मौत के मुह में फस गयी ? और पकड लीगई ? मात्र एक रसनेन्द्रिय के लालच से-खाने के लालच से।

आज खाने की लालच से ससार के मनुष्य मर रहे हैं। आप लोग रात्रिभोजन छोड नहीं सकते। आप लोग अभक्ष्य पदार्थ छोड नहीं सकते। कन्दमूल छोड नहीं सकते। भगवान्ने जिन चीजों का निषेध किया है, उनको छोड नहीं सकते। बाजार की कचोरी मिठाई खाना छोड नहीं सकते, फिर चाहे वह कितने ही दिनों की वासी ही क्यों न हो। और खेर, वासी न भी सही, वह फिर भी हलवाई बनाते समय किसी बात की चतुराई ख्याल नहीं रखते। मक्खी, कीडे, मकोडे बल्कि चूहे तक पड जाते हैं। पर, वह उनकी परवाह नहीं करता। कैसा सडा गला मैदा या वेसन हो, इसकी भी वह परवाह नहीं करता। बस, बन जाने बाद में ऊपरसे आपको बडी अच्छी लगती है। खाने को तैयार होजाते है। यह सब कौन कराता है ? मात्र एक जिह्वेन्द्रिय की लालच करवाता है। स्वाद करवा रहा है। मनुष्य पीछे से भले ही बीमार हो या मर भी जावे। सुना गया था कि एक जगह १५-२० आदमी एक साथ प्रात सो कर उठने के समय मरे हुए पाये गये। खोज की गई तो मालूम हुआ कि रात्रि को उन लोगों ने भोजन किया था। और उस भोजन में कोई जहरीला जानवर गिर गया था, जिसके विष से ये सब लोग यमसदन को पहुच गये। अब विचार करते हैं कि, रात को नहीं खाते-स्वाद में लुब्ध नहीं होते तो ऐसा नहीं होता, लेकिन अब क्या होता है ? मित्रो, यह रसनेन्द्रिय का विषय है। इसको आप छोड दें, आपका कल्याण होगा।

कमल में भ्रमर क्यों फसा ?

आगे है घ्राणेन्द्रिय का विषय। सूघना इस का मतलब है। इसी सुगन्धी लेने के कारण-इसी सुगन्धी विषय की लोलुपता और आसक्ति से कमल के फूल पर भ्रमर आकर बैठ जाता है। बैठे बैठे सुगन्ध म इतना तल्लीन हो जाता है कि, चाहता है कि, सुगध लेकर अभी ऊडु, अभी ऊडु। यों उडने उडने के विचार में ही सूर्यास्त हो जाता

है। कमल अपना खुला हुआ मुंह बन्द कर लेता है। भ्रमर अन्दर ही बैठा रह जाता है। प्रातःकाल में देखो तो भ्रमर मरा हुआ है। इसी तरह मनुष्य भी अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों के लिए लालायित होते होते अपने जीवन में इनकी गुलामी स्वीकार कर लेते हैं। और अपने आत्मा के कल्याण का सच्चा मार्ग भूल जाते हैं। आत्मा इन विषयों में मूर्च्छित हो जाता है।

दीपक में पतंग क्यों पडते है ?

इस तरह से चक्षुरिन्द्रिय का विषय है। पतंग आकर दीप में गिर जाता है। झुलसकर मौत की गोद में चला जाता है। क्यों ? एक मात्र प्रकाश की चकाचौंध के कारण अपने नेत्रों के विषय को तृप्त करने के लिये। लोग किसी सुन्दर दृश्य देखने जाते हैं। क्यों ? चक्षुरिन्द्रिय के विषय की तृप्ति के लिए।

गृहस्थों के घरों में स्त्रियों के नंगे चित्र

गृहस्थों के घरों में पहले के जमाने में साधु लोग जाते थे, तो उनके घरों में देखते थे कि चारों तरफ सुंदर से सुन्दर साधु-महात्माओं के चित्र लटकाए हुए जिनको देखकर उनके घर के भावी होनहार बच्चों पर उनका सुन्दर असर होता था, और भी जो कोई देखता तो उस पर भी अच्छा असर पडता था। उनके मनोविकार शुद्ध रहा करते थे। संसार के पदार्थों के प्रति विराग उत्पन्न होता था। परन्तु आज किसी गृहस्थ के घर में हम जाते हैं, तो कहते अफसोस होता है—नंगी स्त्रियों के चित्र हमें देखने को मिलते हैं। बतलाइए, उनके छोटे २ बालकों पर क्या असर इन बेहूदा चित्रों को देख के होता होगा ? हमारी नींवमें जहर सींचा जाता है। समाज देश जाति के भावी होनहार स्तम्भों को खोखला और विषैली कामुकवृत्तिका बनाया जारहा है। ऐसे चित्रों को देखकर सिवाय कामोत्तेजना के और पतन के क्या हो सकता है ? हमें शर्म नहीं आती अपने लडके लडकियों और बहन-बेटियों के सन्मुख ऐसे बिभत्स चित्रों का प्रदर्शन करते। जरा सोचिए ! विचार करिये ! इन विषैले प्रभावोत्पादक चित्रों के अमानुषिक प्रदर्शन पर आप अपने होनहार बालक-बालिकाओं के जीवन को निर्दयता से कुचल डालना चाहते है, यह भयायक अपराध है। न केवल धार्मिक दृष्टि से ही, बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी। आप भावी समाज की नींव में कुठाराघात करने का पातक कर रहे हैं। गृहस्थ का घर तो वह होना चाहिए जिसका उद्देश्य पवित्र हो, श्रीमद् राजचंद्र कविने कहा है:-

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।

वह अवसर कब आवेगा, जबकि मैं एक निर्ग्रंथ साधु होकर त्यागी, संयमी, और तपस्वी होकर अपने चारित्र का पालन करते हुए तमाम इन बाह्य और अभ्यंतर मोह की समस्त ग्रन्थियों को भेदकर अपना आत्मकल्याण करूंगा। ऐसे २ वाक्यों से घर सजाये जाने चाहिए।

ऐसी पवित्र और उच्च भावना वाले गृहस्थों के स्थान की आज पतित दशा देखकर, दो २ आँसू भी गिराते नहीं बनता। आज हमारी क्या दशा हो रही है ? हम कहां चले जा रहे हैं ?

भरत के भवन में क्या था!

भरतचक्रवर्ती, चक्रवर्ती की ऋद्धिसिद्धि भोगते हुए भी, ६० हजार वर्षों तक मेदाने जंग में लड़ते हुए भी, उनके घर में आजकल जैसे चित्र नहीं थे, बल्कि अच्छे २ वाक्य लगे थे। जैसे-

अनित्यं संसारे भवति सकलं यन्नयनगम्।

" हे भरत! तेरी आंखों से जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे सब नाशवान हैं, अनित्य हैं। इनसे आत्मा का कोई लाभ नहीं।" और यही अनित्य भावना भाते हुए भरतचक्रवर्ती ने केवलज्ञान प्राप्त किया था। वह उसी सात्विक और पवित्र भावनामय वातावरण का असर था, जो कि भरत चक्रवर्ती के राजमहलों में और उसके आसपास रहता था और इसके सिवाय कुछ नहीं।

बातें आप बहुत ऊँची २ करते हैं, जाना बहुत ऊपर चाहते हैं, पर वातावरण अपने चारों तरफ रखते हैं कामवासनामय, बीभत्स विनाशकारी साधनों से परिपूर्ण। आप तो अब जैसे हैं वैसे हैं। आप से आगामी और देश जाति को ज्यादा उम्मीद भी अब नहीं है, परन्तु मुझे तो दया आती है करुणा से मेरा हृदय विह्वल हो जाता है, रो पड़ता हूँ, जब विचार करता हूँ इस आनेवाली भावी आगामी पीढ़ी का, जिनका भार आप लोगों के निर्बल और अयोग्य हाथों में दुर्भाग्यवश आ पड़ा है। ये हमारे बालक-बालिकाएँ—१५-१६ और २०-२२ वर्ष के युवक युवतियाँ अपने चारों तरफ इस विषैले बीभत्स कामुकतामय वातावरण को पाकर क्या होनहार नागरिक, होनहार माता और पतिव्रता गृहिणी बन सकेंगी ? यह यौवनकाल उनका जिसमें कि,

उनको देश, समाज, जाति और मानव मात्र के हित की बातें सोचना चाहिए, दृढता लगन और अटूट उत्साह के साथ उनको कार्यरूप में सफल करना चाहिए, जो अपनी शक्ति से संसार को उथल-पुथल कर सकते हैं। क्या वे इन गन्दे विषय के नालों में पडकर बहजाना चाहते हैं ? क्या आप उनको इन्हीं कामुकता के गन्दे नालों में बहा देना चाहते हैं ? उनकी उन उमंगों को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं ? आपकी बडी भारी जिम्मेदारी है।

मित्रो ! कुछ तो समझिए। इसे आप खूब याद रक्खें। आपको अपना आत्म-कल्याण करना जरूरी है। इसको मद्देनजर रखते हुए अगर आप कुछ नहीं और इतना भी आप कर सकेंगे, उन्हें आप इन गन्दे नालों से, इन लज्जाजनक वातावरणों से बचालें, तो भी अपना जीवन सफल कर सकते हैं। आप आत्म-कल्याण कर सकते हैं। आप इन विषयों को जीतने की कोशिश करें, इसी में ही आपका कल्याण हो सकता है।

नाच-गान, नाटक-सिनेमा आदि नाना प्रकार के चक्षुरिन्द्रिय के विषयों को आप जीते। चक्षुरिन्द्रिय का विषय इतनी बुरी चीज है कि कह नहीं सकते। आदमी अंधा हो, फिर भी किसी के झांझर का झणकार सुनकर सीर उंचा कर देखने की चेष्टा करता है। अरे, तू अंधा है। क्या देखने का प्रयत्न करता है ? परन्तु रहा नहीं जाता। रात का समय हो, दखने क लिए गेस होना चाहिए। बडी बडी रोशनीदार बत्तीयों होनी चाहिए। इसी एक प्रकाश के कारण से हमारी चक्षुरिन्द्रीय के विषय की तृप्ति के लिए, हमारे शौक को पूरा करने के लिए, लाखों करोडों पतंगे-जानवरों का संहार हो जाता है। यह संहार कौन करवा रहा है ?। मात्र हमारा चक्षुरिन्द्रिय का विषय करवा रहा ह।

हिरण कैसे मरता है।

जंगल में हिरण खेलते फिरते ह। बडे आनन्द के साथ इधर उधर घूमते हैं। चंचल तो इतने होत हैं कि कभी किसीकी पकड म नहीं आते। परन्तु, वे भी इस श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में मूढ होकर अपनी स्वतंत्रता और चंचलता खो बठते हैं। बन्धन में पड जाते हैं और मौत को प्राप्त कर लेते हैं। उसको पकडने का एक ही तरीका ह। कोई जंगल में जाकर सुरीला गाना गाय, बाजा बजावे, उस सुरीली मीठी आवाज को सुनकर वह चंचल मृग अपनी चंचलता छोड देता है। स्थिर होकर सुनने लगता है। उसे

भान नहीं रहता कि कहा क्या हो रहा है। उसी गान और सुमधुर स्वर को सुनने में इतना तल्लीन हो जाता है कि कब किसने उसे बंधन में बांध लिया, उसका उसको कोई भान नहीं रहता। यही हाल अपना है। एक एक विषयों की गुलामी के कारण ये जानवर अपने प्राणों का अन्त कर देते हैं।

मित्रो ! इस बात को खूब याद रखिये। इनको जितने की जबतक कोशिश नहीं करोगे, कल्याण करना कठिन है। इस में भी आप ऐसा भी कर सकते हैं कि अमुक अमुक विषय के सेवन की मर्यादा करलें। आप गृहस्थ धर्म में है, आपके लिये यह संभव नहीं कि, आप इन २३ विषयों को एकसाथ छोड दें। परन्तु आप इस की मर्यादा कर सकते हैं कि मुझे इससे ज्यादा इस चीज की आवश्यकता नहीं। इससे ज्यादा अमुक वस्तु का उपयोग मैं नहीं करुगा।

आज मार्गानुसारी के ३५ गुणों की व्याख्या समाप्त की गई। कल मैं इस के उपसंहार में कुछ कहूंगा और इस के बाद श्रावकों के बारह व्रतों पर विवेचन करुगा। यह इसी से सम्बन्ध रखनेवाला विषय है, और आप गृहस्थों के लिये अत्यन्त समझने लायक चीज है। आशा है इस को समझकर आप जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे।

भाइओं और बहनो

कल पेंतीस गुणों का वर्णन पूरा हुआ है। इन पेंतीस गुणों के व्याख्यानो से आपको पता चल गया होगा कि ये पेंतीस गुण कितने महत्त्व के हैं ? अब आज मैं इन पेंतीस गुणों के उपसंहाररूप मे कुछ कहूंगा, क्यों कि मुझे मालुम है कि इन ३५ गुणों को आप याद नहीं रक्खेंगे। इस लिए उन गुणों के साररूप ऐसी बातें थोडी बतलाऊं, कि जिससे आपको वैसा जीवन बनाने में सहूलीयत हो।

सुधा के नव कुंड

इन गुणों में से किसी भी गुण को आपने अपने जीवन में उतारने की कोशिश की है, तो आप का जीवन इस तरह बन जाना चाहिए अथवा अपने जीवन को इस तरह का बना लेना चाहिए, जिस से मेरे ख्याल से ३५ ही गुण आप में आजायेंगे। किस तरह बनाना चाहिए अपने जीवन को, इसके लिए एक कविने बहुत ही सुंदर कल्पना की है। कवि कहता है:-

> चेतः सार्द्रतरं, वचः सुमधुरम्, दृष्टिः प्रसन्नोज्ज्वला,
> शक्तिः क्षान्तियुता, मतिः श्रितनया, श्रीर्दीनदैन्यापहा,
> रूपं शीलयुतं, श्रुतं गदमदं, स्वामित्वमुत्सेकता-
> निर्मुक्तं प्रकटान्यहो ! नवसुधाकुन्डान्यमुन्युत्तमें।

ये सुधा के-अमृत के ९ कुण्ड हैं। कवि कहता है कि, विषयों के गटर में स्नान मत करो, वरना इन सुधा के-अमृत के कुण्डों मे स्नान कर के पवित्र हो जाओ। इन कुण्डों की बहुत सुंदर कल्पना कविने की है। अब इन अमृत के कुण्डोंमें से आप लोग किस किस कुण्ड में स्नान करते हैं, अर्थात् आप के जीवन में इन ९ कुण्डोंमें से कितने कुण्ड हैं, इसका माप निकाल लीजिए। तब पता चलेगा कि-इतने दिनों के व्याख्यान सुनकर आपने कुछ जरूर लिया है। मुझे भी इससे संतोष होगा कि, मेरा परिश्रम निष्फल नहीं गया। सफल हो गया। और अगर कुछ नहीं लिया, तो समझ लीजिए कि-आप जैसे

थे वैसे ही रहे। और मेरी दुकान से कुछ भी बिक्री नहीं हुई। माल तो बहुत रक्खा, लोगों को बताया, परन्तु खरीदनेवाला कोई नहीं मिला। खैर।

हृदय आर्द्र हो

पहला सुधा का कुण्ड है: चेतः सार्द्रतर।

आप का मन, आप की चित्त-वृत्ति सार्द्र यानि कोमल हो, दयालु हो, छल और कपट रहित हो।

एक कपडा पानी में भीग जाता है, जबतक पानी रहता है, टपकता है। आपका हृदय पानी की तरह दयार्द्र यानि कोमल होना चाहिए। कपडे की तरह दया से टपकता हुआ होना चाहिए। जहा हृदय सूख जाता है, फिर उसमें दयालुता-कोमलता नहीं रहती। जैसे गीला कपडा सूख जाने पर उसमें से एक बूद पानी भी नहीं निकलता। अगर हमारे हृदयमें दयालुता है, शर्म है, बडों का और ज्ञानियों तथा समझदारों का लिहाज है-मर्यादा है, कुल, जाति और धर्म की मर्यादा है, दया है, प्रेम है, और शुद्ध मनोवृत्ति है, तो अपने लाभ और नुकसान को भली भाति समझ सकते हैं। आप अमृत के कुण्डमें स्नान करके अमर हो चुके हैं। आपने अपने जीवन को सार्थक बना लिया है।

वचन मधुर हो

दूसरा कुण्ड है:-वचः सुमधुरम्

वाणीमें मधुरता आनी चाहिए। मनुष्य वही है जिसकी वाणी में मधुरता है। बहुत कुछ मैंने कहा है इसकी महत्ता के विषय में। वाणी के गुण कितने हैं, कैसी वाणी बोलना चाहिए? यह सब मैं पहले बता चुका हू। सक्षेपमें इतना ही कहना है कि-अगर आपके पास में वाणी की मधुरता है, तो आप एक सुधा के कुण्ड में स्नान कर रहे हैं। लेकिन वह मधुरता नहीं है, जिसके अदर कपट और छल-बुद्धि भरी हो। जीभ पर कोरी मिठास रहना और हृदयमें कपट रहना, इसका नाम मधुरता नहीं। खूब याद रखिए। हमारे हृदय की कोमलता के साथ में ही वाणी की मधुरता शोभा दे सकती है। अन्यथा वह एक हलाहल जहर है। आजकल ज्यादातर ऐसे ही लोग मिलते हैं। इसी लिए शास्त्रकारोंने पहले हृदय का कुण्ड कहा है। हृदय की कोमलता के साथही वाणी की मधुरता मधुरता है।

मैं खासकर अपनी बहनों को भी फिर से इसारा करदेना चाहता हूं कि, उन्हें अपने परिवार के साथ में सगे-संबंधियों और पडोसियों के साथ में और खासकर अपने बालबच्चों के साथ में पूरी तरह से कोमलता के साथ-हृदय की पवित्रता के साथ वाणी की मधुरता का व्यवहार करना चाहिए।

दृष्टि प्रसन्न और उज्ज्वल हो

तीसरा कुण्ड है: दृष्टिः प्रसन्नोज्ज्वला।

दृष्टि-नेत्र प्रसन्न और उज्वल हो। एक न्याय है: 'आकृतिर्गुणान् कथयति' अर्थात् आकृति मनुष्य के गुणों को, बिना कहे ही, बतला देती है। अगर कोई चेहरे को जाननेवाला हो, चेहरों के पहचानने का जिसका अच्छा अभ्यास हो, वह मनुष्य की आकृति, उसका चेहरा, उसकी आँखों आदि को देखकर ही कह सकता है कि, इसका शील आचार-विचार आदि कैसे हैं? इसके दिल में क्या भरा है। इसलिए आकृति प्रसन्न और उज्ज्वल होनी चाहिए।' प्रसन्न और खुश मिजान: ऐसा प्रसन्न मन कि, जिसमें कोई उदासीनता न हो। चाहे फिर कितना भी सांसारिक नुकसान हो जाय। शांति, आनंद और कोई पैसे में नहीं है। प्रशंसा या निंदामें नहीं है। इनसे हमारे आत्माका कुछ भी बिगडने सुधरनेवाला नही है। यह तो हमें अपने कर्मों के अनुसार मिलता है। हमें तो हमारे आत्मा का हरदम ध्यान रखना है। हम हमारे आत्मा के गुणों से कहीं न गिर जायें, इसकी निगरानी रखना है। ऐसी भावना जिसके हृदयमें है, कर्म प्रकृतियों पर जिन्हें अटल श्रद्धा है, भगवान् के वचनों पर जिसे विश्वास है, वह कभी उदासीन सुस्त और स्फूर्ति रहित लटके हुए चेहरेवाला नहीं हो सकता। उसके चेहरे पर अलौकिक प्रसन्नता और स्फूर्ति झलकती है। जिसे देखकर हमारे मनमें होता है कि, कितना सज्जन आदमी है। दो घड़ी बैठकर इनसे बातें करें। जो पुण्य प्रकृतिशील होता है, उसका प्रतिबिम्ब उसके चेहरे पर झलकता है। ऐसे मनुष्य को समझना चाहिए कि, वह सुधा के कुण्ड में स्नान कर रहा है। आप भी ऐसी पुण्य-प्रकृति संचित करें। खाली बातें करने से कोई काम नहीं चलने का। आज संसार के मनुष्य खून की होली खेल रहे हैं। गरीबों को हर प्रकार से चूस रहे हैं। उनके खून पर, उनके परिश्रम पर खुद रंग-रेलियों कर रहे हैं। उनके पास जबाब नहीं है। इसका अनुचित लाभ उठा रहे हैं। और उस पर भोग-विलास, ऐश-आराम के गटर में बह रहे हैं। खुद भी मरते हैं और उनको भी मारते हैं। खुद डूबते हैं

और दूसरों को भी उठने नहीं देते। ऐसे मनुष्य चाहते हैं कि, पुण्य प्रकृति बढ़े। पर कहां से ? उनके कार्य तो हिंसक पशुओं से भी भयानक हैं।

शक्ति क्षमा युक्त हो

आगे चौथा कुंड है: शक्तिः क्षान्तियुता।

याने क्षमायुक्त शक्ति होनी चाहिए। अब शक्ति का क्या माप है ? शास्त्रकार कहते हैं:-

विद्या विवादाय, धन मदाय, शक्तिः परेषा परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

विद्या की शक्ति दो तरह से काम आती है, एक तो ज्ञान के लिए। ज्ञानदान देने के लिए, अपना कल्याण करने के लिए, मोक्षमार्ग समझने के लिए और समझाने के लिए। और वही शक्ति दूसरी तरह से काम आती है विवाद के लिए। हर किसी से चर्चा करने बैठ जाने के लिए, हर किसी से वितंडावाद करने को तैयार हो जाने के लिए। अगर हमारी विद्या की शक्ति पहली तरह से काम आयी, तब तो हमारी विद्या सार्थक है, नहीं तो निरर्थक है। हमारा भला अगर नहीं हुआ तो विद्या किस काम की ?

इसी तरह से धन भी दो काम के लिए है। धन दूसरों के परोपकार के लिए हो, जिससे कि हम पुण्य उपार्जन करके सुगति को प्राप्त कर सकें। अपना कल्याण कर सकें तब तो हमारा धन हमारे लिये सार्थक है। नहीं तो, खाने-पीने, पहिनने, मस्त रहने और रंग-रेलियाँ करने के लिए हो, पूर्णरूप से हमारी इंद्रियों के भोगने के लिए हो, मोह और अहंकार बढ़ाने के लिए हो, गरीब और अशक्त लोगों को सताने के लिए हो, उनका रक्त चूसने के लिए हो, तो व्यर्थ है हमारा धन। हमारे किसी काम का नहीं। पतन के गर्त में गिराने के लिए है। हम धन के रहते हुए भी दरिद्री हैं। इसी तरह से अगर हमारे पास शक्ति चाहे शारीरिक हो, ऐश्वर्य की हो, शासन की हो, किसी भी प्रकार की हो-वह भी दो प्रकार से काम में लायी जाती है। हम दूसरों को सुखी करने में, कष्टों को हरने में, मानव मात्र को, गरीब को, अनाश्रित को शांति पहुंचाने और किसी भी तरह की मदद करने में व्यय करते हैं, तो हमारा भी भला है और हमारी शक्ति भी सार्थक है। परन्तु अगर वही दूसरों को सताने में, पीडा पहुँचाने में लायी जाती हो, तो यह हमारे लिए सार्थक नहीं, बल्कि शर्म की बात है।

ये शक्तिएं दुष्ट स्वभाववाले और सज्जनों दोनों के पास होती हैं।जो सज्जन हैं, वे इन शक्तियों का उपयोग अपने आत्मा के कल्याण में, परोपकार में कर के इन शक्तियों को सार्थक करते हैं। दुष्ट इनसे विपरीत इन शक्तियों का प्रयोग कर के अपना भी अहित करते हैंऔर दूसरों को भी लाभ नहीं पहुँचाते, बल्कि नुकसान करते हैं।

इस तरह हमारी शक्ति क्षमायुक्त सज्जन पुरुषों जैसी होनी चाहिए। कोई प्राणी नासमझी से या अपने तुच्छ स्वार्थ में पड़कर आप का नुकसान भी कर दे, तो आप अपनी शक्ति का उपयोग उसको क्षमा करके, उसका भला करने के प्रयोग में करें। यह सुधा का चौथा कुण्ड कहा गया है, इस में आप स्नान कर के कृतार्थ हो जाइए।

बुद्धि नीतिवाली हो

पाँचवा सुधा का कुण्ड है—मतिः श्रितनया।

मति यानि बुद्धि कैसी होनी चाहिए? नय और प्रमाण के आश्रित होकर रहनी चाहिए। शास्त्रकारों ने कहा है:–'बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च'। मैं कहां से आया हूं? क्या कर रहा हूं? क्या करना चाहिए? मेरा क्या लक्ष है? मुझे कहां जाना है? इसका विचार करने और उसके लिए रास्ता सोचने के लिए अपनी बुद्धिका हमें उपयोग करना चाहिए। नीति-न्याय और सदाचार के रक्षण के लिए बुद्धि का प्रयोग करें। लेकिन आज तो अफसोस के साथ कहना पडता है कि लोग अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं-एक दूसरे का नुकसान पहुंचाने में। लडाई झगडे बढाने में। घर २ म मनुष्य २ में क्लेश और कलह का दावानळ सुलगाने में। यों कहा जाय कि, गुंडाबाजी करने में। बहुत से ऐसे भी होते हैं, जो अपने को बडा बुद्धिमान समझते हैं और दूसरों का भला करने का दम भरते हैं। जाते हैं दूसरों का नुकसान करने, पर कर लेते हैं खुद ही का नुकसान। गुजराती में एक कहावत है, इसके लिये "बहु डाह्यो, बहु खरडायो" अर्थात् जो ज्यादा बुद्धिमान अपने को समझता है या जिसे, यों कहना चाहिए कि बुद्धिका अजीर्ण हो गया है, वह ज्यादा हैरान और दुःखी होता है। अभिमान स्वयं बुरा है। दूसरों का नुकशान करना भी बुरा है। इस के लिए कहावत है कि–

खड्डा खने जो और को, वाको कूप यार।

अपने को बुद्धिमान समझनेवाला एक पुरुष रास्ते में जारहा था। उसका पैर किसी चीज पर पडा। अब वह विचार करता है कि देखूं वह क्या चीज है? जिसमें मेरा

पैर गिर गया। कुत्ते की विष्ठा तो नहीं ? भैंसका गोबर तो नहीं? या किसी मनुष्य का तो नहीं ? ऐसा विचार करके वह उसे हाथ में लेता है। उसकी परीक्षा के लिये कि यह किस की विष्ठा है। देखने से पता न लगा, तो वह नाक पर लगाकर सूंघता है, कि यह किसका है ? भाई, साहब ने एकके बजाय तीन बिगाडे ? पैर तो बिगडा ही था, हाथ भी बिगाडा और नाक भी। सादी बुद्धिवाले ऐसा नहीं करते। पैर बिगडा, इसको पानी से धो डाला।

आज संसार में बुद्धि का ऐसा ही अजीर्ण हो गया है। आप इन बातों पर गौर करें। और अपनी बुद्धिका, अपनी आत्मिक उन्नति में ही उपयोग करें। और इस पाँचवें सुधा के कुण्ड में इस तरह स्नान करके निर्मल हो जायँ।

लक्ष्मी दीनों के दु खनाशक हो

अब छटा कुण्ड कहा जाता है—श्रीर्दीनदैन्यापहा—

लक्ष्मी दुःखी मनुष्यों को दान देकर उनको दुःख से छुटकारा दिलाने के लिए हो। पुण्य उपार्जन करने के लिये हो। परोपकार के लिये हो। लक्ष्मी को काम में लाना इसका सदुपयोग है। इसके विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। शास्त्रकारोंने यही कहा है कि— स्त्री को नपुंसक पति, और लक्ष्मी को कृपण मालीक, दोनों निरर्थक हैं।

आप इससे ममत्व हटाए। यथाशक्ति सबकुछ करें। इसका पूर्ण सदुपयोग करें और इस छट्ठ अमृत के कुण्ड में स्नान करें।

रूप शीलयुक्त हो

सातवा कुण्ड हैः रूप शीलयुतं—

रूप कैसा होना चाहिए ? शीलयुक्त होना चाहिए। बहुत सुदर रूप है, बडी मनोहर आकृति है, पर यह किस काम में आने की ? अगर हममें शील नहीं हैं तो ? हमारी भोली बहनें अपने रूप का अभिमान करती हैं। पाऊडर लगाकर, क्रीम, स्नो लगाकर रूप को अधिक सुन्दर जाहिर करना चाहती हैं। परन्तु आप को समझना चाहिए कि, रूप वही है, जो शीलयुक्त हो, धर्म युक्त हो, ब्रह्मचर्य युक्त हो। बाकी तो सब रूप बेरूप है, कुरूप है। रूप लावण्य सब बेकार है। कोई उसे नहीं पूछता। सब खाक होजाता है। सोचिए और कहिए, कितना रूप है आपका ? इसे खूब याद रखिए मेरी बहनो और भाइयों !

अपना आचरण शुद्ध रखना चाहिए। बड़ा वही है, जिस का बड़प्पन दूसरे लोग मान्य रक्खे। शासनाधीशों और प्रजा के बीच में जो वैमनस्य की ज्वाला सर्वत्र फैली हुई है, उसका क्या कारण है? यही कि-सत्ताधीश सत्ता के मद में अनुचित कार्य कर बैठते हैं। और प्रजा उनके बड़प्पन को स्वीकारने को तैयार नहीं है। भूलना न चाहिए कि-बड़ों को बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। मौके पर सुनना भी पड़ता है, झूकना भी पड़ता है। कभी कुशब्द, अपमान भी सहन करना पड़ता है। सबकुछ बर्दाश्त करना पड़ता है। तब उसका बडप्पन रहता है। और उससे उनके अनुयाइयों का भी भला हो सकता है। सब जगह त्याग की महिमा है। त्याग विना बडप्पन नहीं टिक सकता। वैसे खाली कहने को तो आप आपसे दबे हुए लोगों पर सेठाइ को भोग सकते हैं। पर कौन दुनिया में मानने को तैयार है आप की सेठाई को? विचारे गरीब चापचूस भले ही आप को मान लें। जो आप को भी गुमराह कर के पतन के गर्त में फैंकनेवाले हैं।

आज का तो जमाना ही ऐसा है कि, अपना स्वयं का लड़का भी यह चाहता है कि, आप उसे कुछ कहने से पहले स्वयम् उसी के अनुसार रहें। अपना स्वयम् का जीवन पहले शुद्ध और सात्विक बनाएँ।

बडे बनने का नया तरीका

एक समय था, जबकि किसी सज्जन, बुद्धिशाली, निष्पक्षपाती, परोपकारी महानुभाव को लोग पघडिएं रख करके विनति करते थे कि-आप हमारे नेता बनें, अगुआ बनें, संघपति बनें। आज यह जमाना आया है कि-मूर्ख से मूर्ख, झघडालु, तोफानी, और गुंडाबाजी करने में बडा कुशल मनुष्य, हजारों रुपये खर्च करके, ढेड़ भंगी चमारों तक के घरों में जाकरके, अरे, मांसाहारी और शराबी लोगों को मांसाहार और शराब की बोतलें पिला पिला कर के, उसकी खुशामदें करके वोट प्राप्त करते हैं, और किसी भी सभा, सोसायटी, मंदिर, उपाश्रय, कमीटीएं, धारासभा आदि के मेम्बर बनते हैं, अर्थात् नेता बनते हैं। लोगों से-भंगी चमारों से भी प्रार्थना करते हैं: "भाई, तुम हम को वोट दो, तुम कहोगे सो हम कर देंगे।" कभी कभी ऐसे लोग तो सुना भी देते हैं: "सेठजी, आज आप हम से वोट लेने जाए हैं। आपको शर्म नहीं आती?। आप तो वही हैं, जो हम को गालिओं के सिवाय बात भी नहीं करते थे। आप वही हैं न, जो हमको आपकी दुकान की पगथी पर पैर भी नहीं रखने देते थे? आप वही हैं न, जो दूगने चारगुने दाम लेकर के भी आपत्ति के समय भी आपने छटांक भर शक्कर नहीं दी थी। आप वही हैं, जो हमारे

एक भाई के पास खाने को अन्न नहीं था, फिर आपकी थोडी रकम के लिए आपने कुडकी कराकर उसको भीखमगा बना दिया। इतना इतना सुन करके भी, जबरदस्ती से बडे बनने को लोग तैय्यार होते हैं। क्या फैशन चली है? बिचारे भोले लोगों को बहका बहका कर, हाथ जोडकर, पघडिया चरणों में रखकर, हजारों रुपये खर्चकर खुरसीए शोभाने को लोग तैयार होते हैं। न कायदे जानते है, न कानुन। न विवेक है, न विनय। न सभ्यता है, न शिस्त। न व्यवस्थित बोल सकते हैं, न लिखा नाही जानते है। ऐसे लोगों में से किसी के पास या तो पैसे का जोर है, या किसी के पास नादीरशाही का। और विशेष तारीफ तो इस बात की है कि लोग उनका अपमान करें, तिरस्कार करें, हजारों मनुष्यों के सामने उनकी झडीए उडावे, निकाल जानेको कहें, फिर भी वे अपने स्थान से टमसेमस नहीं होते। एक तरफ से तो आत्माभिमान की बात करेंगे, दूसरी तरफ से दुनिया न चाहे, अपमान करे, फिर भी डटे ही रहेंगे। कहा गया आत्माभिमान! यह किसका परिणाम है? केवल लोभवृत्तिका। जडकी उपासनाका। समझते हैं कि इस नेतागीरी को छोडेंगे तो फिर करेंगे क्या? ऐसा शिकार क्या हाथमें जाने देना चाहिए? आज बहुधा जहा देखो वहा इसी प्रकारके स्वामी, नेता, ट्रस्टी बनते हुए नजर आते हैं। यह भी जमाने की ही खुबी है। और क्या कहा जा सकता है?

इस लिए जो शासक हैं, स्वामित्व प्राप्त किए हुए हैं, उन्हें चाहिए कि अपना जीवन शुद्धातिशुद्ध रक्खें। पहले समाज में नायक बन नहीं जाते; वे तो अपने स्वय के गुणों के कारण इस आसन पर बिठाए जाते थे। प्रेम और अनुराग तथा भक्ति से प्रजाके द्वारा। आजकल तो गगा उलटी ही बह रही है। आज तो नायक बनाए नहीं जाते हैं, जबर्दस्ती से बने जाते हैं। बस, जरासा पैसा हो गया, बडप्पन आगया। पैसा उन्हें बडा बना देता है। समाज में उनकी कोई गिनती नहीं, पर इस की परवाह नहीं। समाज माने या न माने, पैसा है, अथवा लेकचर बाजी झाडने को आती है, इस वास्ते वे नायक हैं। चारित्र से चाहे कितने ही भ्रष्ट निकम्मे और नालायक हों और पैसा भी चाहे कैसा आया हो, अपनी किसी बहन-बेटियों का ले लिया हो या किसी को धोखा देकर कपटसे इकट्ठा कर लिया हो। बस, फिर समाज के नायक बन बैठे। समाज की-सम्पत्ति पर भी कब्जा कर लेते हैं और उसपर भी धीरे २ हाथ साफ करना शुरू कर देते हैं। समाज के ट्रस्टों के ट्रस्टी बनजाते हैं और फिर मनमाना-दुरुपयोग उस पैसे का करते हैं। फिर चाहे हजम कर लें या दिवाला निकाल दें।

प्यारे भाइयो!

यह स्वामित्व नही हैं। सच्चे बडप्पन, सच्चे स्वामित्व के सुधा के कुण्ड में स्नान करें। आप को शांति मिलेगी। सच्चा सुख मिलेगा। आप का आत्मा उन्नति करेगा।

ये ९ सुधा के कुण्ड बताये गये हैं। इनमें स्नान कर के निर्मल बन जायँ। यही जीवन का ध्येय हो। इसी में आप का जीवन सार्थक हो। अगर इन ९ कुण्डो में स्नान कर लिया तो, गुण भी आजायेंगे और धर्म के लायक भी बन जायेंगे, परन्तु कितना भी सुनते हुए भी, कुछ आचरण में न लिया, जीवन मे सुधारा न किया, सावधान न हुए तो 'यह जानने में धूल पडी' वाली बात चरितार्थ होगी।

धूल पडी तुम्हारे जानने में !

एक सेठ सा. के घर में चोर आया। पति-पत्नी दोनों रात में सिनेमा देखने गए थे। इसलिए जरा देर से सोये। सोये ही थे, अभी निंद भी नहीं आयी थी कि, इतने में एक चोर घर में घुसा। सेठानी बोलीः-" घर में चोर आता है।"

सेठ बोले:-" मैं जानता हूं"

सेठानी फिर बोलीः—"घर में घुस आया है।"

सेठ बोले—" मैं जानता हूं"

सेठानी कहती है:—" चोर तिजोरी के पास गया।"

" मैं जानता हूं।"

" तिजोरी को तोड़ रहा है।"

" मैं जानता हूं।"

" ये अपने रुपये, नोट, सोना वगैरह सब निकाल रहा है।"

" मैं जानता हूं।"

" सब माल लिये जा रहा है।"

" मैं जानता हूं।"

" चला जा रहा है घर से बाहर।"

" मैं जानता हूं।"

" क्या जानते हो खाख। धूल पड़ी तुम्हारे ऐसे जानने में।" पत्नी ने दुःखी होकर कपाल कूटा। ऐसा न हो, इसके लिए सावधान रहें।

प्यारे भाइयो और बहनो !

जीवनविकास के लिए व्यावहारिक साधन बता चुका। अब धार्मिक साधन बताऊंगा। धर्म क्या है? और उसका जीवन में स्थान क्या है? यह बताने का प्रयत्न करूंगा।

पुनर्जन्म क्यों ?

जीवनविकास के लिए धार्मिक क्रियाकाण्ड और यम, नियम की बडी आवश्यकता है। हमारे आत्मा पर कर्मरूपी मैल लगा है। जिसके कारण से यह आत्मा अनादि काल से ससार में परिभ्रमण कर रहा है। यम, नियम हमारे आत्मा पर लगे हुए कर्ममल को दूर करने में बडी मदद करते हैं। यह आत्मा कर्मों के कारण ही

पुनरपि जनन, पुनरपि मरण, पुनरपि जननीजठरे शयनम्।

करता है। इन सारी बातों का कारण है मात्र हमारे कर्म।

इसलिए कर्म सबधी विचार करलें। आत्मा शुद्ध दूध की तरह से है। परन्तु उसमे कर्म-रूपी पानी मिल गया है। आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय अर्थात् सच्चिदानन्दमय शुद्ध स्वरूपी है। परन्तु इस पर कर्मरूप मिट्टी का गाढ आवरण आगया है, इस लिये यह आत्मा स्वय अपना दर्शन नहीं कर सकता। अपने स्वरूप को देख नहीं सकता। भान भूलगया है। अपने को नहीं पहिचान सकता कि मैं 'स्वय क्या हू?' 'मेरा लक्ष्य क्या है?' 'मुझे कहां जाना है?' 'मुझे उसके लिए क्या करना है?' आदि २।

एक पुरुष जैसे मदिरा पी ले और फिर जब उसका नशा चढता है, तब वह भान भूल जाता है। घर म बैठा है या गटर में पडा है, यह स्त्री है या माता-बहन है, पिता है या पुत्र है, इन सबका कुछ भी भान नहीं रहता। यह दशा इस आत्मा की होती है।

खानमें से मिट्टी निकाली जाय और मिट्टी का ठेर का ठेर पड़ा है हमारे सामने। हम समझते हैं कि, यह मिट्टी ही मिट्टी है। लेकिन हमारे में कोई ऐसा दूसरा विज्ञानी हैं, उसके पास बुद्धि है, विज्ञान है, जिस के कारण से मिट्टी के ठेरों में भी वह सुवर्ण का दर्शन करलेता है। और आखीर परिणाम वही निकलता है। मिट्टी जब शुद्ध होजाती है, उसका मिट्टी का अंश जब अलग कर दिया जाता है, तो सोना सोना होजाता है और मिट्टी मिट्टी रह जाती है। अब हम पहचान सकते हैं कि यह सोना है और यह मिट्टी पहले नहीं पहचान सकते थे। दूध में घी है और हमें पता भी है, लेकिन हम उसको घी नहीं कहते, दूध कहते हैं; क्यों कि उसका वर्तमान स्वरूप दूध है। जब उसका दहीं बनाकर, मक्खन निकाला जाता है, जब घी अपने रूप में दिखाता है।

यही दशा हमारे आत्मा की भी है। आत्मा अनादिकाल से शुद्ध होते हुए भी, स्वयं का दर्शन नहीं कर सकता। अपने असली स्वरूप को नहीं पहचान सकता। कर्मरूपी मिट्टी का आवरण इतना लगा है कि, जिस के कारण स्वदर्शन करने की शक्ति लुप्त हो गयी है। जीवन का विकास करते २ धीरे २ उस अज्ञान के आवरण को दूर कर दे, उस आत्मा पर लगे कर्मरूपी मिट्टी को हटा दे, तब आत्मा को अपने स्वरूप का दर्शन होता है।

खेताजी भूत क्यों बने ?

आज संसार के मनुष्य सचमुच अगर पूछा जाय तो अपना भान भूले हुए हैं। कर्मों का नशा उन्हें बेभान किये हुए है। और तब मनुष्य भान भूलता है, तब वह अपने को ही भूल जाता है। एक उदाहरण शायद पहले दे चुका हूं, फिरसे सुनिए।

मारवाड़ में एक खेताजी करके बनिया था। नदी के किनारे उसने एक खरबूजे का वाडी बनायी। उसीके पास एक झाड के नीचे झोंपडो बनायी। जिस में बैठता उठता था। खरबूजों को बाजार में लेजाना, बेच देना और अपना काम चलाता। मारवाड में ऐसा रिवाज था कि-लोग दाढ़ी मूछ रखाते थे और वह कभी कटवाते नहीं थे। खेताजी को भी दाढ़ी काफी बढी हुई थी और मूछें भी। एक दिन बाजार में खरबूजे बेचने गये और बेचकर जब वापिस लौट रहे थे, तो रास्ते में पहचानवाला हज्जाम मिला। उससे खेताजीने कहा-"मेरी हजामत करने का चल।" हज्जामने उनको जबाब दियाः "आप वाडी में चलें, मैं अभी आता हूं।" खेताजी गए वाडी में। खटिया डाल दी, और पीपल की ठण्डी छाया में बैठ गये। मीठी २ हवा चल रही थी। अच्छा

मोसम था। खेताजी को नींद आने लगी। वे अब लेट गये और घ-र-र-र घ-र-र-र नाक चलने लगी। मानो कोई ह ई जहाज चल रहा हो, खूब गहरी नींद में सोगये।

इधर हज्जाम घर गया। जाते ही पत्नीने कहा—" रोटी खाने को तो आगये, साग तो लाये ही नहीं। रोटी किससे खाओगे? वापिस जाकर साग लेआवो, तभी रोटी मिलेगी।"

बेचारा हज्जाम सोचने लगा: ' अभी कहा साग मिलेगा '? यकायक उसे याद आया—" अरे! खेताजी हजामत के लिये बुला रहे थे। वहा चला जाऊ। हजामत बना आऊ और दो-चार खरबूजे भी लेता आऊ। रोटी खाने के काममे आजायेंगे।"

हज्जाम जाता है खेताजी के खेत पर। देखा तो खेताजी तो सोए हुए हैं। उसकी नजर उनकी दाढी पर पडी। सोचा, ' खेताजीने कभी दाढी मूछ नहीं कटवाई, चलो आज मैं इन्हे साफ करदू '। निकाला उस्तरा। जन्मसे लेकर आजतक एक बाल दाढी-मूछों का नहीं निकाला था, उस्तरा हाथमें लेकर खेताजी की उस दाढी-मूछों को साफ कर दिया उस नाई ने। खेताजी नींद में ही सोते रह गये। और उनकी दाढी मूछें साफ होगयी। हज्जाम खेतमें से दो-चार खरबूजे लेकर चम्पत बना।

खेताजी थोडी देर में उठे। आँखें खोलकर जो मूछों पर हाथ फेरा, तो पता चला, दाढी और मूछें नहीं हैं। अब खेताजीने सोचा: " यह खेताजी की झोंपडी है, यही उन्हीं की वाडी भी है, लेकिन खेताजी नहीं है। मै खेताजी? बिलकुल झूठ बात!! उनके तो दाढी-मूछें थीं। मेरे तो दाढी और मूछे नहीं। इसलिए मै खेताजी नहीं।"

प्यारे भाइयो और बहनो! याद रखिए, दाढी मूछ नहीं होने से खेताजी अपने आप को अपने स्वरूप को भूलते हैं। वे फिर सोचते हैं:—" लोग बातें करते हैं कि पीपल के पेड पर भूत रहता है। मैं सचमुच भूत हू। खेताजी नहीं।" सोचते हैं:—" मैं खेताजी के घर पर जाऊ, खेताजी यदि घर पर हों, तो समझलेना चाहिए कि मै भूत हूँ।"

अपनी बात का निश्चय करने के लिए खेताजी घर गए। खेताजी दाढी मूछें वाले थे। इस खेताजी के दाढी मूछ नहीं थी। जुवान से दीखते थे। एकाएक में उनकी स्त्री भी उन्हें नहीं पहचान सकी। खेताजीने जाकर पूछा "बहन, बहन, खेताजी घरमें हैं?" स्त्रीने नहीं पहचान सकने के कारण, बिना दाढी मूछ के एक विचित्र

मनुष्य को देखकर सहसा कह दिया: "मारा पीटा, यह भूत जैसा कौन आया है।" बस, अब तो खेताजी को निश्चय हो गया कि मैं सचमुच ही भूत हूं। बस, भूत समझकर चल दिये वहां से, और पीपल के पेड़पर जाकर बैठ गये। ३-४ दिन हो जाते हैं। खानापीना सब भूल गये। खेताजी के दिल में और भी निश्चय हो जाता है कि, "मैं मनुष्य नहीं हूं, भूत हू।" वे भूत के भ्रम म तमाम चीजों को भूल गये।

३-४ दिन बाद शहर के मुखिया को याद आया कि खेताजी पर कुछ दाम लेने निकलते हैं। काफी दिन हुए, आए नहीं देने को। चलो आज उनसे मिलकर ले आवें। वह चला खेताजी के खेत पर। रास्ते में वहीं हज्जाम मिल गया। पूछा-"सेठ, कहां जारहे हो?" उत्तर दिया: 'खेताजी की वाडी में जारहा हूं, पैसा नहीं दिया इसलिए।'

म भी इसी वास्ते जारहा हूं। चलो दोनों साथ चलें। दोनों आदमी जाते हैं। वाडी के पास नीचे खडे रहे गये। झोंपडी में खेताजी नहीं देखे, सेठने कहा कि: "भाई, मैं उनके घर को गया था, लेकिन उसकी स्त्रीने कहा कि, उनका तो ७-८ दिनसे कोई पता नहीं; न जानें कहां गये?"

हजाम कहता है: "अरे सेठ! ७-८ दिन की क्या बात करते हो? अभी ३-४ दिनपहले मैंने उन्हें यहीं-इसी झोंपड़ी में सोते देखा था। और उनकी नीद में ही दाढ़ी और मूछें मैं मूंड़ गया था"।

"दाढ़ी और मूछे तूं मूंड गया है तो खेताजी यह बैठा।" खेताजी ऊपरसे जोरसे बोल पड़े।

आज हमारी दशा खेताजी से भी बुरी होगयी है। मनुष्य जन्म पाया है। सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि पायी है। सब साधन पाये हैं। सुन्दर शरीर, धन, और धर्म पाया है। पर हमने अपने खुद को नहीं पाया है। खुद को नहीं पहचाना है। एक मात्र भान-भूले हुए बैठे हैं इसलिए। हम भूत बने हुए हैं। ठिकाने--भान को लानेवाले गुरु मिलजाय तो अकल ठिकाने आसकती है। धर्म की आराधना कर सकते हैं। यह आत्मा का दर्शन किस तरह हो सकता है? कर्मों का क्षय कैसे कर सकते हैं? सम्यकत्व-शुद्ध दर्शन आदि चीज क्या हैं? ये सब पहले बतलाकर बाद में व्रत नियमों की व्याख्या आगे करता जाऊंगा।

आठ प्रकार के कर्म

८ प्रकार के कर्म हमारे आत्मा पर लगे हैं। उनको शिथिल करने की प्रवृत्ति

करना, इसको मैं जीवन-विकास का यौवनकाल समझता हूं। पैंतीस गुण यह बाल्यकाल है। वहां से बढ़कर कर्म क्षय करने के लिये प्रयत्न करना, यह यौवनकाल है। आत्मा के प्रदेशों के साथ कर्मों के पुद्गलों का इतना ओतप्रोत संबंध हो चुका है कि-उसे तोड़ना हमारे लिये मुश्किल है। अगर वे गांठे टूटें तो आत्मा का विकास जल्दी हो सकता है, इसलिए अब कर्तव्य यह आता है कि कर्मों के स्वरूप को जानकर उन कर्मों को दूर करने के लिये कोशिश करें। कोशिश यही कि धर्म की साधना करें। धर्म का साधन माने क्रियाकांड और व्रतों का आचरण करें।

प्यारे सज्जनो,

जैनधर्म की दृष्टि से कर्मों के जो भेद दिखलाये हैं, वे मैं संक्षेप से बतलाऊंगा।

संसार में आत्मा जितने प्रकार के कर्मों का उपार्जन करता है, उनको आठ विभागों में विभक्त कर दिया है।

ज्ञानावरणीय कर्म

सब से पहला कर्म है ज्ञानावरणीय। यह आकाश है, इसमें कर्मों के परमाणु ठूंस २ कर भरे हैं। ये विचित्र प्रकार के परमाणु हैं। इनका एक दूसरे से भिन्न २ स्वभाव को रखनेवाले कर्म पुद्गलों को आत्मा ग्रहण करता है। इन कर्म पुद्गलों का समूह समग्र आकाश में व्याप्त है, और आत्मा अपने प्राचीन कर्मानुसार जो जो विचार, कर्म, क्रिया आदि करता है, उस उस प्रवृत्ति-क्रियाशीलता अथवा विचार के अनुसार उन २ प्रकार और स्वभाव के कर्म पुद्गलों को उनके यानि अपनी प्रवृत्ति और क्रिया-शीलता अथवा विचार आदि के द्वारा अपनी तरफ खींचता है। ये खिंचे हुए कर्म उस आत्मा पर आकर लग जाते हैं, चिपक जाते हैं, ओतप्रोत हो जाते हैं। दूध और पानी की तरह, सोना और मिट्टी की तरह, दूध में घी की तरह एकाकार हो जाते हैं। ऐसा मालूम होने लगता है कि दोनों एक ही जाति के हैं।

इस प्रकार से आत्मा के साथ में आकाश प्रदेशों से खिंचकर उसमें एकाकार हो जानेवाले इन कर्मों के आठ भेद माने हैं जैन शास्त्रकारोंने।

उन में एक भेद वह है जिस को ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। हमारे पास १० लड़के पढ़ते हैं, पर पढ़ने में उन सभी में कुछ न कुछ तारतम्यता है। एक लड़का तो एक घंटे में २५ श्लोक याद कर लेता है। और एक ऐसा है जो एक श्लोक भी पूरा

तरह कण्ठस्थ नहीं कर सकता। श्रीमद् राजचन्द्रजी एक ऐसे ज्ञानी अभी हुए, जिन्होंने १३ वर्ष की उम्र में सभी जैन आगमों को कण्ठस्थ कर लिया था। देखते गए, पढ़ते गए, अर्थ समझते गए और सब कण्ठस्थ होते गए। आप सोचिए! आज हम टें-टें कर के मर जाएं, तब भी एक अध्याय भी मुश्किल से याद हो सकता है। यह सब किस का परिणाम है? उसका परिणाम है, जिस को हम लोग कर्म का क्षयोपशम कहते हैं। जिस आत्मा पर से ज्ञान के आवरणरूपी कर्म परमाणु दूर हो जाते हैं, उस मनुष्य, आत्मा में प्रकाश रहता है। इतनी स्वच्छ शुद्धि-बुद्धि रहती है कि, जिस चीज़ को ग्रहण वह करना चाहे, वह उसी समय याद हो जायगी। यह ज्ञानावरणीय कर्मों का दूर होना है।

वह ज्ञानावरणीय कर्म कैसा है? जैसे एक मनुष्य की आंखों पर जबर्दस्ती से पट्टी बांध दी जाय, या आप ही बांध ले, वह फिर किसी चीज़ को नहीं देख सकता। अपना घर, अपने माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, यहांतक कि, अपना शरीर भी—कोई भी चीज़ नहीं देख सकता। इसी तरह से ज्ञान के आवरणरूपी पट्टी आजाती है आत्मा पर, उसके कारण, उस आत्मा को, अनंत शक्ति, अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन होते हुए भी किसी चीज़ को नहीं जान सकता। जैसे जैसे आवरण कम होता है, वैसे वैसे ज्ञान ज्यादा होता है। किसी का आवरण गाढा होता है तो उसका ज्ञान कम होगा।

मैं खुद अपने व्याख्यान में जब कभी श्लोक बोलने लगता हूँ, श्लोक प्रसंग को सुन्दर बनाने के लिए जरूरी है और वह श्लोक बिलकुल कण्ठस्थ है, इतना कि, रोज बोलता हूँ, पर कभी २ ऐसा होता है कि मौके पर याद नहीं आता। भूल जाता हूं। जो बात अपने नाम की तरह याद होगी, उसको कभी भूल नहीं सकते। आपने कभी २ देखा भी होगा कि, किसी श्लोक का पहला अक्षर याद नहीं आता, थोड़ी देर तक रुकना पड़ता है। दो मिनिट के बाद याद आता है। यह किसका परिणाम है? एक मात्र ज्ञानावरणीय का। वह श्लोक बराबर याद होते हुए भी, वक्त पर याद नहीं आया। मंगलदास का नाम भूल जाता हूं। ऐसा क्यों होजाता है? याद तो था, पर उस समय क्यों भूल गया? ज्ञान का आवरण आकर खड़ा हो गया, इसलिए।

वकील लोग बहस करते हैं। दोनों ने वादी-प्रतिवादी के अपने २ मुद्दे की बातें याद करली हैं, और क्या २ प्रश्न करना चाहिए, यह सब सोचलिया है। मुकदमे को

जब चलाने के लिए खडे होते है मेजिस्ट्रेट के सामने, उस समय एक वकील एक प्रश्न करता है, दूसरे वकील को जवाब देना है। ठीक जवाब उसको याद था। अपना जवाब उसने पहले से सोचलिया था, लेकिन उस समय वह जवाब भूल जाता है। मेजिस्ट्रेट इस बातको अंकित करलेता है और निर्णय पहले वकील के पक्ष में देदेता है। निर्णय सुनकर ज्योंही नीचे उतरे, तब ठीक पहले सोचा हुआ उत्तर याद आगया। बतलाइए, यह सब किस कारण से हो गया ? उत्तर याद होते हुए भी मौके पर याद न आनेसे मुकद्दमा क्यों कर हार गया ? एकमात्र कारण है कि ज्ञानावरणीय कर्म का पर्दा सयोग से उसी समय आकर खडा हो गया था, जिसके कारण वह बात भूल गये। आपको यह तो मानना ही पडेगा कि जो भूल होती है, उसमें कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए, कारण बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है। वह कारण दूसरा कोई नहीं है, सिवाय ज्ञानावरणीय कर्म के। इसी कारण से शास्त्रकारोंने ज्ञान के आवरण के लिए आँखों पर पट्टी की उपमा दी है। इस तरह ज्ञान के आवरणरूपी कर्म की पट्टी हमारे आत्मा पर लगी है कि हमारा क्या कर्त्तव्य है ? हमें क्या करना चाहिए ? और हम क्या कर रहे हैं ? यह सब भूल जाते हैं और अज्ञानान्धकार में डूबे रहते है।

दर्शनावरणीय कर्म

दूसरा कर्म है दर्शनावरणीय कर्म।

दर्शन का आवरण। हमको किसी के दर्शन करने हैं या मिलना हैं, उसके पास जाना चाहते हैं, मिलना चाहते हैं। पर एक आदमी पहरेदार या संतरी या उसका सेवक हमें रोकता है और कहता है कि–आप अंदर नहीं जासकते, मिल नहीं सकते। फाटक पर संतरी खडा रहता है। कहता है–ठहर जाओ आप। राजा के पास नहीं जासकते, सिवाय उनकी आज्ञा के। आप घन्टे भर तक ठहरे रहे। बतलाइये, यह संतरी हम को अंतराय करनेवाला हुआ। दर्शन करने में हमारे लिए विघ्नभूत हुआ।

इसी प्रकार यह आत्मा शुद्ध स्वरूप सच्चिदानंदमय है, परन्तु अपना स्वरूप नहीं देख सकता। इसका कारण ? एक ही कारण है कि, उसके सामने 'दर्शन' का आवरण आकर खडा हो गया है। दर्शनावरणीय कर्मरूपी संतरी उसे रोके हुए है।

वेदनीय कर्म

तीसरा कर्म है वेदनीयः—

यह दो प्रकार का होता है। साता वेदनीय और असाता वेदनीय। साता माने सुख, और असाता माने दुःख।

अभी आप और मैं सुख में हैं—सुख भोग रहे हैं। यह भी एक प्रकार का वेदनीय कर्म है। यह भी कर्म है। संसार में रहे हुए, चारों गतिमें भ्रमण करनेवाले जीवों के लिए यह साता—असाता वेदनीय कर्म ही सुख और दुःख देते हैं। आप गादी-तकियों पर, अच्छे पलंगो पर सोते बैठते हैं। यह भी साता—वेदनीय कर्म का फल है। इसी तरह से असाता वेदनीय है। बैठे हैं, किसी का सिर दर्द होने लगा, पीडा होने लगी, नाना प्रकार के रोग होने लगे। यह सारे असाता वेदनीय कर्म का फल है। आज कल संसारमे बहुत तरह के रोग फैले हैं, जिन की कोई हद नहीं। ये भी असातावेदनीय कर्म का उदय है।

इसका स्वरूप कैसा है? जैसे कि, एक तलवार की धार पर शहद लगा दिया जाय और किसी आदमी को कहा जाय कि, इस शहद को जीभ लगाकर चाटो। यह जीभ लगाकर चाटने में जैसा स्वाद आता है, और बाद में तलवार की धार से जीभ कट भी जाती है, वैसा ही स्वाद इस सातावेदनीय कर्म का है। एक मनुष्य को विषय की तमन्ना हुई या एक स्त्री को कामज्वर हो गया। जहां कामज्वर हुवा, वहां असातावेदनीय कर्म हो रहा है। और उस समय पुरुष से संभोग कर लिया और करते हुए सुख माना, लेकिन वह कैसा सुख है? तलवार पर लगे शहद को चाटने जैसा स्वाद है। जीभ को भी कटवाता है और थोड़ी देर के सुख के बाद दुःख का भार लाद लेता है। इसी तरह से संसार का सब सुख है। जो इनमें रचे-पचे रहते हैं, वे कहते हैं: 'हमारे पास गादी है, तकिया है, मोटर है, साहीबी है, ऐश आराम के सब साधन हैं, रंग—रेलियॉ करते हैं, हम बड़े सुखी हैं,' उनका सुख वास्तव में वैसा ही है जैसा कि एक मनुष्य को रोग होने के बाद ऑपरेशन करवाने की जरूरत पड़े। इस प्रकार का सुख मिलता है। आत्मिक सुख कहीं नहीं है।

शास्त्रकार कहते हैं—सांसारिक सुख भी वेदनीय कर्म है। उनको भोगने के लिए जन्म लेना पडता है। इसे भोगे विना जन्म मृत्यु से छुटकारा नहीं। मुक्ति नहीं। इसलिए यह भी वेदनीय कर्म ही है, जो कि मुक्ति का बाधक है।

मोहनीय कर्म

चोथा मोहनीय कर्म—

मोहनीय कर्म जबर्दस्त है। लोग मदिरा पीते हैं, और जैसे पागल हो जाते हैं, विष्टा में या गटर में गिरते हैं। स्त्री को माता, बहिन को स्त्री, स्त्री को बहन कह देते हैं। इसी प्रकार मोह मदिरा से मनुष्य पागल हो जाते हैं। दीन बन जाते हैं। यह सबकुछ कर बैठते हैं एक मात्र मोहनीय कर्म के कारण।

आठ कर्मों के अदर मोहनीय कर्म की सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति है। आज सारे ससार में महामोहनीय कर्म का उदय है। मोह की मदिरा में पागल बना, स्वार्थसाधना के लिए पतन के गर्त मे गिरता जा रहा है। मानव, मानवता को भूल रहा है। आज मानव दानव बन गया है। उसे सद्–असद्, धर्म–अधर्म, मानव–और हैवान का कोई भान नहीं रह गया है। मोहनीय कर्म अपने प्रबल-प्रवाह मे है। आज इस के प्रवाह मे बहकर मामूली छोटी सी बात भी आप नहीं कर सकते। दुकान पर बैठ कर निंदा विकथा करेंगे। चुगली, चोरी, झूठ, ठगाई आदि सब कुछ करेंगे। तमाशा–नाटक-सिनेमा देखने चले जायेंगे। नाच-गाना कहीं होगा, वहां चले जायेंगे, परन्तु अगर उनसे पूछा जाय कि, महाराज का व्याख्यान सुनने चलोगे? जवाब देंगे—"मुझको फुर्सत नहीं।" मित्रो! यह मोहनीय कर्म की प्रबलता है। इससे सभाल कर रहे अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो।

आयुष्य कर्म

आगे है आयुष्य कर्म।

इसकी विशेषता है कि, आयुष्य जबतक खत्म नहीं होगा, तबतक प्राणी–आत्मा किसी एक योनि में टिका रहता है। एक जन्ममें एक ही बार यह बन्ध होता है। जब कि बाकी के सभी कर्म बार २ से पैदा होते हैं और उनका बन्ध होता है। इसको एक तरह से बेडी की उपमा दी जाती है। जैसे किसी को कुछ अपराध करने पर बेडी में बन्द करके जेल में डाल दिया जाता है। अमुक अवधि के लिए। महिना–दो महिना चार महिना, साल–दो साल। चार साल, और इस बीच में वह आजादी से कहीं जा नहीं सकता। स्वतत्रता का उपयोग नहीं कर सकता। उसी तरह से आयुष्य कर्म का बन्ध है। इस जन्म में जिस गतिमे जाने का बन्ध हो जाता है, उतने, आयुष्य तक, उतने समय तक वहां के भोग भोग कर और उपार्जन कर के फिर दूसरी

गति में प्रवेश करता है। एक तरह का तबादला हो जाता है। जैसे गवर्नर या वायसराय का तबादला तीन वर्ष या चार वर्ष, जितना उनका कार्य--काल होता है, उसको निभाना पडता है। उसी तरह से हमारा भी तबादला हो जाता है। ५ वर्ष, २५ वर्ष, ३० या ५० वर्ष आदि २। बेडी की तरह बन्धनमें जीव रहता है। उसका नाम है आयुष्य कर्म।

न मकर्म

आगे है नाम कर्म—

जिस तरह से एक चित्रकार द्वारा एक सुंदर चित्र बनता है और उसमें नाना प्रकार के रंग, हाव-भाव, फेर-फार रहता है, वैसे ही हम लोग पूर्व कर्म में से, जैसे नाम कर्म उपार्जन करके आते हैं, वैसे ही रूप-रंग, नाम ठाम जाति आदि प्राप्त होते हैं। नाना प्रकार के विचित्र नाम, जाति-योनि तथा विचित्रताएं हम देखते हैं ये सब किसके कारण से? मात्र नामकर्म के कारण से। पूर्व जन्म में हम लोग नामकर्म उपार्जन करके आए हैं। इस कारण से नाना प्रकारकी विचित्रताऐं हमें दिखलाई देरही हैं। यश, अपयश, नाम, कुनाम, अपमान यह सभी इसी नामकर्म के उपार्जन के अनुसार ही होता है, और प्राणी को मिलता है। नामकर्म आदि ये सभी जडपदार्थ हैं। पुद्गलों का खेल है। यह पुद्गलों का खेल कैसा है?

कबहिक काजी, कबहिक पाजी, कबहिक हुआ अपभ्राजी,
कबहिक जग में कीर्ति गाजी, सब पुद्गल की बाजी,
आप स्वभाव में रे, अवधू सदा मगन मे रहना।

दुनिया किसी को अच्छा कहे, किसी को बुरा कहे, किसी को पंडित कहे, किसी, को मूर्ख कहे, किसी को विद्वान कहे, किसी को अनपढ़ कहे, किसी को गरीब कहे, किसी को भाग्यशाली कहे, किसी को पूंजीपति कहे, किसी को निर्धन कहे, किसी को कुछ और किसी को कुछ। बल्कि एक ही आदमी को भी इस प्रकार के भिन्न भिन्न विशेषण लगते हैं। श्री आनंदघनजी कहते हैं कि-यह सब पुद्गलो का खेल है।

गोत्र कर्म

सातवां कर्म है गोत्र कर्म—

हम व्यवहार में कहते हैं कि, फलां नीच गोत्र का है। फलां ऊंच

इन गोत्रों की जो हमने मर्यादा बाधी है, यह भी गोत्र कर्म के कारण से। एक मात्र आत्मा पर लगे हुए गोत्र कर्म का परिणाम है।

आचारविचार शुद्ध होते हुए भी कई लोगों की प्रवृत्तियाँ एक नीच जाति में पैदा होनेवाले के समान होती हैं। और उच्च कुल में पैदा होते हुए भी आचार-विचार-हीन हो, घृणित हो, फिर भी व्यवहार में कहते हैं कि, वह उच्च जाति का है। हमारा यह व्यवहार उन तथाकथित हल्के लोगों के प्रति जो है, और आचारविचार में हलका होने पर भी, प्रवृत्ति जो अपने को उच्च कहने की है, वह सब इसी गोत्र कर्म का फल है।

इस कर्म की उपमा कुम्भकार से दीगई है। कुम्भकार (कुम्हार) जैसे नाना प्रकार के बर्तन बनाता है, मिट्टी एक है, बनानेवाला एक होते हुए भी भिन्न २ आकृतियों की वजह से भिन्न २ तौर से सम्बोधन किया जाता है। इसी प्रकार हाथ पैर, सिर आदि मनुष्य के सभी अवयव एक होने पर भी गोत्र कर्म के उपार्जन के कारण भिन्न २ गोत्रों से सम्बोधित किए जाते हैं। इसका नाम है गोत्र कर्म।

अन्तरायकर्म

अब आठवाँ अन्तराय कर्म है—

अंतराय कर्म ५ प्रकार का होता है:—

" अंतरायाः—दान—लाभ—वीर्य—भोगोपभोगगाः। "

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

अन्तराय आप जानते हैं? व्याख्यानमें आरहे हैं, पर बीच में ऐसा काम हो जाय कि, आप नहीं आसके। भावना होते हुए भी जिस काम को नहीं करसकते, उसका नाम है अंतरायकर्म।

पहला है दानान्तराय:—मैं खुद अनुभव कररहा हूं ४० वर्षों से। सामाजिक कार्य करते हुए यह अनुभव करता हूं कि, मनुष्य दान क्यों नहीं देता? जानते हैं सभी लोग कि, पैसा चचल है, पर एक कौडी देते नहीं। कोई उपदेशक सच्चे से सच्चा उपदेशक है, और सबको प्रभावित कर सकता है। यहांतक कि मुर्दे को भी चेतना दे सकता है। परन्तु कृपण मनुष्यको खडा नहीं कर सकता। कृपण क्यों नहीं दान करता? एक मात्र दानान्तराय कर्म के कारण।

एक के पास खूब आवक है, और हज़ारों लाखों की आमदनी है। इतना होते हुए भी कोडी देने का नाम नहीं। इच्छा तक भी देने की कभी नहीं होती। यह अन्तराय कर्म का कारण है। दया का पात्र है, जो दान नहीं करता। उसपर दया करनी चाहिए। घृणा कभी नहीं करनी चाहिए। बिचारा क्या करे? पैसा इतना होते हुए भी दानान्तराय कर्म जो इसके पीछे लगा है। जिस समय दान का उपदेश देता हूं, उस समय कितना भी कोई जडवादी हो, जडवादी का पूजारी हो, कृपण हो, दिल में तो इतना भाव मैं पैदा करा सकता हूं कि, उसकी नाभिमें से विचार ऊपर उठता है। सोचता है कि: "महाराज, इतना कहते हैं, तो थोडा बहुत जरूर देना चाहिए।" अब विचार उठता है-दूं कि न दूं? विचार गले तक आता है। गले तक आया और अब मुंहसे कहभी दिया कि पीछे से विचार करके कहुंगा-बस मामला खलास है। इसका मतलब है 'इन्कार,' 'नहीं देना'। जिस विचारे ने, मुर्दे को भी खडा किया था। इच्छा करने लगा कि देना चाहिए-यहां तक लाया, पर अंतराय कर्म खडा होगया। अंतराय कर्म ऐसा है कि जो सोचता है कि महाराज से कह दूं-घडीभर बाद आऊंगा, बडी मुश्किल से लोहे को तपा २ कर गरमकिया। जब गरम हुआ था तब तो कुछ हुआ नहीं, अब ठण्डा पडने पर घडी आधघडी बाद आने पर जब कि मोका निकलने पर लोहा ठण्डा पड गया है, तब क्या देगा! और क्या लेगा? यह सब अंतराय कर्म का ही कारण है।

कोई त्याग पच्चक्खाण करना है, उपवास करना है। कोई कर नहीं सकते। कारण अंतराय कर्म उसके मार्ग में खडा है।

आगे ह लाभान्तराय-

मालूम होता है कि अभी चांदी का भाव चढ जायगा और पास में ५० पेटी ली हुई है. और लाखों का फायदा होने का है। परन्तु इतने में ही क्या होता है कि, हिटलरने यों किया. अमरिकाने यों किया, जापानने यों किया या रशियाने यह किया की धुम आयी। वातावरण यकायक खराब हो गया। और भाव गिर गया। सेठजी का मूंह उतर गया। आपको शायद इस बात का अनुभव ज्यादा होता होगा। हमारे सामने प्रत्यक्ष लाभ होते हुए भी उसमें किसी प्रकार वंचित हो जाना, यह लाभान्तराय कर्म है। अगर आपको लाभान्तराय कर्म तोडना है तो धर्मकार्य करिये और किसी

दूसरे का लाभ होते हुए उसे रोकना नहीं।

तीसरा है भोगान्तराय कर्म–

एक मनुष्य घर गया है, खाना खाने के लिए। पत्नी ने खाना परोस दिया है। थाली पर बैठ चुका है। अगर भोगान्तराय कर्मका उदय है, तो कोई विघ्न आही जायगा कि जिससे थाली छोडकर भागना पडे। ऐसा संयोग मिल जायगा। जैसे कि कोई दुश्मन घरमें घुस आया। जल्दी थाली छोडकर भागना ही पडेगा या अन्य ऐसा कोई गमी का समाचार आजाय–पडोस में या किसी प्रियजन का वियोग होजाय आदि २ कारण हो जाय।

मैंने आपको एक मम्मण सेठ का उदाहरण दिया था। उसे भोगान्तराय कर्म का उदय था। लाखों करोडों की सम्पत्ति होते हुए भी घर मे नाना प्रकार की सामग्री होते हुए भी तेल और चवला के सिवाय तीसरी चीज खाता नहीं था। भोगान्तराय कर्म का बन्ध था। भाग्य में सब वस्तुओं का भोग न था। आज भी ऐसे बहुत से दृष्टांत हैं जिन के पास में लाखों की सम्पत्ति है, नोकर–चाकर, धन–माल, ऐश–आराम सबकुछ है, पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, कुछ ऐसी बीमारी लग जाती है कि, डॉकटर कहता है कि– जीवनभर तक कुछ फल या छटाकभर मोसबी का रस लो और कोई चीज नहीं खाना, नहीं तो मर जाओगे। पास में इतना पैसे होते हुए भी, वह किस काम का? यह भोगान्तराय कर्म का कारण है। घर में रोटी तक खाने को मोहताज रहते हैं। केरी खाने की इच्छा है, पर वैद्य कहता है मर जाएंगे, आप नहीं खा सकते, तुम्हारे नसीब में ही नहीं है फिर क्या खाएंगे। तुम्हारे लिए है डॉकटर की दवा, इंजेकशन।

आगे है उपभोगान्तराय कर्म—

जो बार २ भोग में आवे: कपडा जायदाद आदि २ ऐसी वस्तुओं को, जिस कर्म के कारण से नहीं भोग सकते, उसे कहते हैं उपभोगान्तराय कर्म।

पास मे रजाइयाँ हैं, ओवरकोट हैं, कम्बल हैं, बडे अच्छे २ कपडे हैं, परन्तु सब सन्दूक में पडे हैं। पहिनने की इच्छा ही नहीं होती। रात को जाडा लगता है। विचार करता है कल ओवरकोट निकालकर पहनुगा। प्रातः होता है, धूप निकलती है। कोट निकालना भूल जाता है। रात होती है, कल निकालुगा, पर दिन होने पर भूल जाता है। इस तरह पूरा जाडा निकलजाता है। फिर विचार किया, अगले सर्दी के दिनों में

अवश्य पहुंचुंगा। पर वह भी ऐसे ही निकल गया। इसके लिए एक बुढिया और उसकी रजाई का एक दृष्टांत और भी दिया था। इस तरह होते हुए भी क्यों नहीं उस वस्तुका उपयोग वह कर सकता। इसलिए कि उपभोगान्तराय है। भोग नहीं सकता।

पांचवा है वीर्यान्तराय कर्मः-

मनुष्य होते हुए-सामर्थ्य होते हुए, बुद्धि होते हुए, कई लोग इतने सुस्त और निष्क्रिय होते है, इतने निकम्मे बन जाते हैं, कि कोई भी क्रिया-सामायिक धर्म कार्य अथवा जाति का कार्य, देश का कार्य या अपने ही किसी कार्य को करने को तैयार नहीं। युवक है, गृहस्थ है, शादी हो गयी है, बुद्धि है, सब कुछ है, परन्तु यह नहीं होता कि कुछ पैसा पैदा करूं। किसी के आश्रित न हूं। अपना भार खुद सहन करूं। अगर कोई कहे और ज्यादा दबाव पडे तो, कहता हैः "तलाश करता हूं, अगर कोई नोकरी १५-२०-२५ में किसी मिल, कारखाने में या और कहीं दुकान पर मिल जाये तो करलुंगा।" वहां जाकर वह जिंदगी बिता देने को राजी होने की कोशिश कर सकता है, परन्तु स्वयं पुरुषार्थ कर के कोई स्वतंत्र धंधा कर के एक पैसा भी उपार्जन नहीं कर सकता। हमारी शक्ति है हम एकासना, आयम्बिल, उपवास आदि कर सकते हैं, पर नहीं करते। अष्टमी, चतुर्दशी है। कुछ तो त्याग कर लें। रात्रि-भोजन ही न करें, पर नहीं करते। इन सब का क्या कारण है एक मात्र वीर्यान्तराय कर्म हमारा बाधक है। उसे जीतने की कोशिश करें तो जीवन में आगे बढ सकते हैं।

हरएक प्रकार के पुण्य से, धर्म-कार्य के करने से, ब्रह्मचर्य सेवन से, नाना प्रकार के सद्कार्यों से, सदाचार से, किसी का भला करने से आदि सद्कृत्यों से रोकनेवाला है, तो यह अन्तराय कर्म ही है। यह हमें पुरुषार्थ नहीं करने देता।

वाजिदअली शाह का अयदीखाना

वाजिदअली शाहने एक अयदीखाना लखनऊ में बनवाया था। वहां के अयदी यानि प्रमादी हों वे वहां रहें, कुछ भी काम नहीं करना। हाथ पैर भी नहीं हिलाना। चारों तरफ बस शतरंज बिछाई पडी है। इन अयदियों की यह हालत हो गयी कि मुंह पर से मक्खियों उडाने तक की ताकत नहीं रही। पडे २ खाने वाले की भी यही दशा हो जाती है।

आज हम भी पुरुषार्थहीन हो गये हैं। कोई काम नहीं। और अगर कहीं आप

को बाप की दौलत मिल जाय या किसी का वारसा मिल जाय तो वाजिदअली शाह के एक अपदी से भी ज्यादा प्रमादी हो जायँ। उनमें का एक अपदी दूसरे को कहता हैः कि– "भाई! जरा मेरे मूह पर से मक्खी तो उड़ा दे।" वह दूसरा जवाब देता है कि—"अगर मैं तेरी मक्खी उडाने योग्य होता तो अभी एक कुत्ता मेरे मुँह पर मूतकर चला गया, उसीको नहीं हटा देता।" यह हालत होती है पुरुषार्थहीनों की।

आज हमारे युवकों की यही दशा है। एक मात्र वीर्यान्तराय कर्म का उदय है। जिससे दुःखी होते हैं। हाला कि सब के पास बुद्धि है, पुरुषार्थ है, शरीर है, सम्पत्ति है, सबकुछ है, पर सोये हुए हैं उन्हें जगाएँ। इस वीर्यान्तराय कर्म पर विजय पाने का प्रयत्न करें।

इस तरह ये ८ प्रकार के कर्म हमारे आत्मा पर आकर लगें हैं। इनको थोडा २ जितना शिथिल बनाते जायेंगे, उतने ही आत्मा को ऊचे उठाते जायेंगे।

इन आठ प्रकार के कर्मों के पतले करनेसे ही समकित की प्राप्ति होती है। अब समकित क्या है? उसका क्या स्वरूप है? यह मैं कल बतलाऊगा।

प्यारे भाइयो ! और बहनों !

जीवन-विकास के लिए व्यावहारिक उपाय दिखलाए थे। अब धार्मिक उपाय बताने की कलसे कोशिश कर रहा हूं। इस में सबसे पहले व्रत या नियमादि और क्रियादि हैं।

सम्यग्दर्शन क्या है?

नियम में प्रवेश करने के पहिले हमारे आत्मा के उपर लगे हुए कर्मों की शक्ति को घटाने की कोशिश करना चाहिये। व्रत-नियम की सफलता तभी मिलसकती है जब कि हम हमारी आत्मिक शक्तियों को बढ़ाने की कोशिश करें। कल मैंने आठ कर्मों का स्वरूप संक्षेप से बतलाया, उन कर्मों को पतले करनेसे आत्मा, आत्म दर्शन कर सकता है, और वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सिवाय व्रत-नियमादि सार्थक नहीं होते।

इन कर्मों को पतले करने के लिए हमें कोशिश करनी चाहिए। जहां तक होसके, नये कर्मों के आने का रास्ता बन्द कर देना चाहिए, और पुराने कर्मों को तपस्या, ज्ञान-ध्यान आदि उपायों द्वारा क्षय करने का प्रयत्न करना चाहिये। खास कर के आत्मा का अध्यवसाय, जिसको भावना कहते हैं, उस भावना से कर्मों की शक्ति मंद होती है और आत्मा अपने प्रकाश को कुछ न कुछ देखने लग जाता है। उसका नाम है सम्यग्दर्शन। जैन धर्म में 'दर्शन' का अति महत्व है। दर्शन के दो भेद किए गये हैं: एक दर्शन माने देखना, और एक दर्शन माने श्रद्धा।

एक मनुष्य चला जारहा है और चलते २ उसके पैर को कोई चीज छूगयी। उसके दिलमें आया कि 'मुझे कुछ छूगया है'। बस 'कुछ छूगया है' इसका नाम है सामान्यज्ञान। इस सामान्यज्ञान को भी दर्शन कहते हैं। अब वह छूनेवाली चीज क्या है-लकडी है, मेज है, कुर्सी है, पत्थर है, कांच है, कंकर है, क्या है? कोई हो, उसक सम्पूर्ण विवेचन के साथ में भान करना, उसका नाम है विशेषज्ञान।

सम्यग्दर्शन के भेद–

एक दर्शन का अर्थ हुवा–सामान्यज्ञान। दूसरा अर्थ है श्रद्धा। इसके लिए जैनों में पारिभाषिक शब्द है ‘ समकित ’। हरेक जैन ‘ समकित ’ शब्द से ‘ श्रध्धा ’ को पहिचानता हैं। पर कोरा शब्द ही बहुत अधिक मात्रा में जानते हैं। इसका असली तात्पर्य क्या है ? इसको जाननेवाले बहुत कम हैं। यही कारण है कि–आज इसी पवित्र ‘समकित’ के नामपर अपनी २ दुकानदारी चल रही है। “ मैं ‘समकित’-धारी हूँ और मगलदास ‘मिथ्यात्वी’ हैं। ” हम स्थानकवासी को ‘मिथ्यात्वी’ और अपने को समकिती कहते हैं। स्थानकवासी मंदिरमार्गी को ‘मिथ्यात्वी’ और अपने को ‘समकिती’ कहते हैं। इसी तरह श्वेताम्बर और दिगम्बर परस्पर एक दूसरे को ‘समकिती’ और ‘मिथ्यात्वी’ कहकर झगडे करते हैं। बस, आजकल तो ‘समकित’ का व्यावहारिक उपयोग इसीमें हो रहा है। पर यह हुवा है, एक मात्र ‘समकित’ शब्द से। इसका रहस्य बहुत कम लोगोंने जाना होगा। अगर जानते तो आपस में एक दूसरे को ‘मिथ्यात्वी’ और ‘समकिती’ कहकर लडने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अगर ‘सम्यग्–दर्शन’ अथवा ‘समकित’ की सच्ची व्याख्या समझ लेते, तो ऐसा कभी न करते। सच्चे समकिती, दूसरे की बात तो छोडिए, हम स्वय ही है या नही, इसमें भी शक है। तो फिर दूसरों को कहने का क्या अधिकार हो सकता है ?

इसलिए मेरे कहने का मतलब है–आत्मा के विकास के लिए हमको यम–नियमादिका पालन करने के लिए सबसे पहले ‘सम्यग्दृष्टि’ होना आवश्यक है। हमारी दृष्टि ‘ सम्यग् ’ हो। ‘सम्यग् ’ का अर्थ है पवित्र, निर्दोष। दृष्टि माने आँख नहीं। वरन् इसका अर्थ है हमारी अतर्दृष्टि। आत्मा का ज्ञान शुद्ध हो, पवित्र हो, तभी हम ‘सम्यग्–दृष्टि ’ है, अन्यथा नही।

मोक्ष का मार्ग

हमारे यहा मोक्ष का मार्ग सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र कहा है। मोक्ष नहीं, लेकिन मोक्ष का मार्ग। वैदिक–धर्म ग्रंथों में कहा है कि–सत्–चित–आनद मय होना आत्मा का लक्षण है। सत् माने–पदार्थ जैसी अवस्थामें है, उसके उसी अवस्थामें देखना उसका नाम है सत्। जैन शास्त्रों में ‘ सत् ’ शब्द के लिए पारिभाषिक

शब्द है-सम्यग्-दर्शन। आगे है-चित्त माने ज्ञान। जिसको जैन भाषामें सम्यग्-ज्ञान कहा है और आनंद का नाम है चारित्र।

आत्मा पवित्रतामें-आनंद में तब रह सकता है, जबकि श्रद्धा पवित्र होगी, चारित्र पवित्र होगा और वही आनंद में रह सकता है। बस, फिर अन्य झघड़े खत्म हैं। वैष्णव शास्त्रों मे उनकी दृष्टिसे सत्-चित्-आनंद है और यही चीज जैन-शास्त्रों में सम्यग्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र, इस रूपसे है।

यह 'सम्यग् दर्शन' जैनशास्त्रों में पहले रक्खा है, इसका अर्थ मैं पहिले कर चुकाहूं। आत्मा अपने स्वरूप को देखे इसका नाम है सम्यग् दर्शन। दूसरा है सम्यग् ज्ञान। ज्ञान के दो भेद मैं कहचुका: सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान। यह स्वर्ग है, मोक्ष है, अमुक है, तमुक है, आदि २। यह तो सामान्य-ज्ञान है। लेकिन मोक्षप्राप्ति के लिए हमें 'विशेष ज्ञान' की जरुरत है। शास्त्रों को पढ़ गए, आगमों को पढ़ गए, वेदान्त को पढ़ गए, बडे २ ग्रन्थो को पढ़ गए, लेकिन उनको यह सम्यग्-ज्ञान तबतक नहीं, जब कि उसका यह ज्ञान उसके आत्मविकास में कारण न हो। आत्मा अपने स्वरूप को अच्छी तरह पहिचान ले, उसका नाम है सम्यग्ज्ञान।

अब रहा सम्यक्-चारित्र:-

हमने भेख पहिन लिया। तीर्थङ्कर का वेष ग्रहण करलिया। साधु होगये। यह सम्यक्-चारित्र है, पर बाह्य दृष्टि से। हमने कपडे पहनलिए, पांच-महाव्रत ले लिये, आदि ऊपर का दिखावा कर लिया, यह बाह्य चारित्र है। सम्यक् चारित्र नहीं हुआ। सम्यक् तो तब हो, जब इस चारित्र का स्पर्शन हमारे आत्मा के साथ हो। हम उन साधुत्व के गुणों को अपने आत्मा में क्रियात्मक रूप से उतारें। संयम के नियमों को-पांच महाव्रतों का क्रियात्मक रूप से सूक्ष्मातिसूक्ष्म रीति से यथार्थ पालन करें। उसीको सम्यक्-चारित्र कहना चाहिए। इस सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र की व्याख्या के अनुसार अगर आपका बाहर और आंतरिक संबंध इनसे हो गया हो, तो आप समझलें कि मोक्ष का मार्ग आप के हाथ में आगया है। आप बेड़ा पार कर सकते हैं।

सम्यग्-ज्ञान, दर्शन और चारित्र, इनमें सम्यग्दर्शन को पहले क्यों रखा है? इसलिए कि यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और चारित्र के बीजरूप है। कोई भी वृक्ष को उत्पन्न करने के लिए बीज बोया जाता है। बीज़में से वृक्ष हो सकता है, इसी

तरह 'दर्शन' बीज रूप है। दर्शन माने श्रद्धा यानि विश्वास। यह विश्वास, किसी वस्तु पर जबतक नहीं होगा वहातक हमारा ज्ञान और चारित्र भी सब बेकार है। जब जिस चीज में श्रद्धाही नहीं है, तो फिर हम उस चीज को कैसे ले सकते हैं? और फिर कैसे उसपर आचरण कर सकते हैं? फिर इसी तरह ज्ञान और चारित्ररूपी जिस वृक्ष को हम खडा करना चाहते है बीज के अभाव में वह हो ही नहीं सकता है। यदि बीज खराब हो, तब भी वृक्ष पैदा नहीं हो सकता। इसी तरह से हमारी श्रद्धा अगर खराब है, डग-मग हो गयी है, तो ज्ञान और चारित्ररूपी वृक्ष नहीं पनप सकता, अंकुर नहीं फूट सकता। इसलिए यह सम्यग्-दर्शन पहिले रक्खा गया है।

समकित प्राप्ति के साधन-

जीव को समकित की प्राप्ति दो साधनों से होती है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है:—

त निसर्गादधिगमाद् वा—

अर्थात् यह सम्यग्दर्शन किंवा समकित निसर्ग और अधिगम से प्राप्त होता है।

निसर्ग अर्थात् प्रकृति, स्वभाव, नेचर, कुदरत। प्राकृतिक रूप से नाना जन्मों में परिभ्रमण करता हुआ यह आत्मा, कालक्रम से मनुष्य जन्म में आया। उसमें आते ही कुछ न कुछ ऐसे संयोग से-निमित्त से कर्मों की कुछ निर्जरा करके आत्मा के प्रकाश की तरफ झुक जाय यानि जो स्वाभाविक रूपसे, कुदरत से ही धीरे २ अपने प्रकाश की तरफ झुकजाय। किसी खास निमित्त की जिसे आवश्यकता न हो, उसे निसर्ग के द्वारा समकित की प्राप्ति होना कहा है।

दूसरा है अधिगमात् अर्थात् उपदेशादि किसी के उपदेश से या अन्य कोई ऐसा निमित्त आजाय कि जिससे, आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को देखने लगे, आत्मप्रकाश की ओर चले। इसका नाम है अधिगम समकित।

सब में स्वाभाविक समकित बहुत कम लोगों को होता है, लेकिन उपदेश के निमित्त से या ऐसे ही और किसी निमित्त से प्राणी को समकित की प्राप्ति अधिकता से हो सकता है। उपदेश मिल जाय, कुछ वैराग्य का निमित्त मिल जाय, जिससे श्रद्धा-समकित उत्पन्न होजाती है।

सम्यग्दर्शन का महत्व

यद्यपि 'सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' इस प्रकार मोक्षमार्ग में

दूसरा है सम्वेगः-सम्वेग माने विरक्ति-वैराग्य ।

समस्त पदार्थों से वैराग्यभाव रखना । चाहे आप संसारी हों; संसार में रहकर गृहस्थी के कार्य करते हों, बालबच्चे हों, पुत्रपरिवार हों, पैसा-टका हो, धंधारोजगार हो, सबकुछ हो, परन्तु दिल में कुछ न कुछ वैराग्य की वृत्ति जागृत रहनी चाहिए । अगर दिलों में वैराग्य-वृत्ति नहीं है, मोहसे आत्मा आच्छादित है, मोह की मदिरा पीकर सान-भूले सांसारिक असार पौद्गलिक सुखों में लिप्त बने हैं । आत्मा जैसी कोई चीज है भी या नहीं, इसको बिलकुल भूल बैठे है, तो समझ लेना चाहिए कि समकित की पहिचान का दूसरा गुण नहीं है ।

तीसरा गुण है निर्वेदः—

निर्वेद माने उदासीनता । बहुत थोड़ा अंतर है संवेग और निर्वेद में । संसार के पदार्थों पर उदासीनता अर्थात् अरुचि हो, आसक्ति, लोलुपता, तल्लीनता न हो, रचे-पचे न हों, दिल में कुछ तो उदासीनता आनीही चाहिए ।

आगे चोथा गुण है अनुकम्पा—

अर्थात् किसी दुःखी जीवको देखकर दिल में कुछ न कुछ अनुकम्पा आनी चाहिए । अगर हमारे आत्मा में रहम आती ही नहीं है, हमारे दिलों में परोपकार वृत्ति जाग्रत होती ही नहीं है, किसी भी मोहताज को देखकर हमारा दिल मोम नहीं होजाता और ऐसे दुखियों का दर्द दूर करनेमें अगर हम जरा भी हाथ नहीं बँटाते, तो निश्चय समझ लीजिए कि हममें अनुकम्पा का गुण नहीं है । दिल दया रहित है । अगर कोई ऐसा है, समझ लीजिए समकित कोसों दूर है ।

आखरी गुण है आस्तिकता-आस्था;
आस्तिकता क्या चीज है ?
श्रद्धा ही का दूसरा नाम है आस्तिकता, अब श्रद्धा किसकी ?
इसके लिए पहिले कहाजाचुका है कि,

या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुता मतिः ।
धर्मे च धर्मधिः शुद्धा सम्यकत्वमिदमुच्यते ॥

देवमें देव बुद्धि हो, गुरु में गुरुबुद्धि हो, और धर्म में धर्मबुद्धि हो । अगर यह नहीं है, तो समझ लीजिए कि ५ वां गुण नहीं है ।

प्यारे भाइयो !

याद रखिए—हरेक के लिए समकित की प्राप्ति आवश्यक है और अति आवश्यक है। यह बीज है। इसके बिना कभी आत्म कल्याणरूपी वृक्ष पनप नहीं सकता। इसी बीज को उत्पन्न करने की कोशिश करें। मोह ममत्व को दूर करें। अपने आत्मा का दर्शन करने के लिए रातदिन कोशिश करते जायँ। इन ५ गुणों को प्राप्त किए बिना हम समकित की प्राप्ति नहीं कर सकते। ये व्यवहार समकित के प्राथमिक लक्षण हैं। यदि व्यवहार समकित के ये लक्षण भी नहीं पासकने, तो निश्चय समकित तो हजारों कोस दूर है। हम तो व्यावहारिक समकितधारी भी हैं या नहीं? इसका अपने को पता लगाना है।

देवस्वरूप

अब यह भी बताउंगा कि, सच्चे देव, गुरु और धर्म हम किनको मानें? ऐसे देवों में, गुरु में और धर्म में कितने २ गुण होने चाहिए? इनके लक्षण क्या हैं? पहले देव को लीजिए।

देव :—दो प्रकार के होते हैं, एक लौकिक और दूसरे लोकोत्तर।

लौकिक देव हैं भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक। इन चार प्रकार के देवों में समस्त लौकिक देवों का समावेश होजाता है। लौकिक देव हमारी ही तरह लोक में अर्थात् ससार में रहनेवाले हैं। सांसारिक जीव हैं। चारों गति में परिभ्रमण करने वाले हैं। हम जैसे रागी और द्वेषी हैं, १८ पापों से लिप्त हैं और ८ कर्मों से युक्त हैं, वैसे वे भी हैं। मतलब कि वे मोक्ष के जीव नहीं। बेशक इतना जरूर है कि,—उनकी ऋद्धि-समृद्धि यहां की अपेक्षा से कहीं बहुत ज्यादा है। भोग-विलास, ऐश-आराम आदि के साधन उनके पास कहीं ज्यादा हैं, अतुल वैभवशाली हैं। बस, देव इसलिए कहे जाते हैं कि इन चीजों में वे बड़े हैं। बहुत आगे बढे-चढे हैं। एक राजा को आप राजा इसलिए कहते हैं कि वह आपसे कहीं ज्यादा बड़ा होता है। आपसे उनका प्रभुत्व ज्यादा है। यह ठीक है कि, नरेन्द्र-नारायण से आप एक निर्धन की अपेक्षा से बड़े हैं, ऊंचे हैं, लेकिन जितने ऊंचे हैं वैसे ही ज्यादा नीचे गिरनेवाले भी हैं। इस तरह ये लौकिक देव हमारे कल्याण के लिए कोई साधन-भूत नहीं। हम उन्हीं देवों को देव मानें, जो लोकोत्तर हैं—आत्मा के कल्याण की दृष्टि से।

लोकोत्तर देव-ईश्वर

लोकोत्तर=लोक से उत्तर; यानि हमारी जैसी दशा में नहीं। ४ गतिमें रहनेवाले नहीं। सम्पूर्ण कर्मों से जो मुक्त हो गये हैं। १८ पापों से सर्वथा रहित हैं। राग-द्वेप से बिलकुल रहित हो गये हैं। और जिन्होंने निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया है। उनका नाम है लोकोत्तर देव। ये देव कैसे होते हैं? उनके लक्षण क्या हैं? इसके बारेमें शास्त्रकार भी क्या कहते हैं? जरा वह भी आप सुन लीजिए:-

अन्तराया दान-लाभ-वीर्य-भोगोपभोगगाः,
हासोरत्यरतिभीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥
कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा चाविरतिस्तथा,
रागो द्वेपश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी: ॥

वीतराग-ईश्वर, तीर्थंकर में १८ दोप नहीं होते। १८ दोप ये हैं:—

पांच प्रकार के अन्तराय अर्थात् दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय-ये पांच प्रकार के अन्तराय नहीं है। हास्य, रति (प्रेम), अरति (दुःख), भय, जुगुप्सा (घृणा), शोक, काम, मिथ्यात्व (अज्ञानान्धकार), अज्ञान, निद्रा, अविरति तथा राग और द्वेप-ये १८ दुषणों से रहित ईश्वर होता है, बल्कि जहां राग-द्वेप का अभाव हुआ, वहां सभी दूषण दूर होही जाते हैं।

श्री हेमचंद्राचार्यने ईश्वर-महादेवका का स्वरूप दिखलाते हुए यह भी कहा है:-

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति, सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

जिनमें से समस्त दोप दूर हो गये हैं, और समस्त गुण विद्यमान हैं, ऐसे ब्रह्मा विष्णु, हरि, हर, जिन-कोई भी हो, मेरा नमस्कार है।

एक प्रसंग की बात है। कुमारपाल राजा के साथ श्री हेमचंद्राचार्य प्रभासपाटन गये। राजा के साथ आचार्यजी भी सोमनाथ के मंदिर में गये। अजैनों में आश्चर्य और जैनो में भूकंप हुआ। एक जैनाचार्य महादेव के मंदिर में! लोग टॉप टॉप करते ही रहे। आचार्यने सोमनाथ के सामने खड़े रहकर स्तुति की। उन्हों ने कैसी सुंदर स्तुति की-

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुष स चेत भवान् एक एव भगवन नमोऽस्तु ते ॥

हे भगवन्! आप किसी भी समय में हो, किसी भी प्रकारके हों, आपका नाम भी कुछ भी हो, परन्तु यदि आपके समस्त राग द्वेष दुर हो गये हैं, तो हे एक ही भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हू।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकरको ईश्वर मानते है। परन्तु उन्हीं तीर्थंकर को महादेव, भी कहते हैं। ईश्वर, महादेव, तीर्थंकर इनमे कोई भेद नहीं। और इसी लिए जैनाचार्योंने 'महादेव' के लक्षण दिखलाते हुए है।

महादेव अष्टक में कहा है:—

यस्य सङ्क्लेशजननो रागो नास्त्येव सर्वथा।
न च द्वेषोऽपि सत्त्वेषु शमेन्धनदवानलः॥
न च मोहोऽपि सद्ज्ञानच्छादनोऽशुद्धवृत्तकृत्।
त्रिलोकख्यातमहिमा महादेवः स उच्यते॥
यो वीतरागः सर्वज्ञो य शाश्वतसुखेश्वरः।
क्लिष्टकर्मकलातीतः सर्वथा नि कलस्तथा।
य पूज्यः सर्वदेवाना यो ध्येयः सर्वयोगीनाम्।
य स्त्रष्टा सर्वनीतीना महादेव स उच्यते॥
एवभूताय शान्ताय कृतकृत्याय धीमते।
महादेवाय सतत सम्यगभक्त्या नमोनम॰।

अर्थात् जिसको क्लेश उत्पन्न करनेवाला राग नहीं है, आज भी अगर दुनियामें फैले हुए क्लेश की उत्पत्ति का मूल कारण देखा जाय तो राग है। जिसमें द्वेष का लव लेश भी नहीं है, क्यों कि शांतिरूपी इधन को जलानेमें दावानल समान कोई चीज है, तो वह द्वेष ही है फिर वह महादेव कैसा है? सम्यग् ज्ञान को आच्छादित करनेवाला मोह जिसमे नहीं है। आज हमारे में जो कुछ अज्ञानता फैली है, वह किसके कारण है? मात्र एक मोह के कारण। इसके विषयमें पहले बहुत कुछ कह चूका हूँ। हम मोहान्ध बनकर आत्मा को अधकार में ले गये ह। यह मोह अज्ञानता को फैलानेवाला है। सम्यग्ज्ञान का ढकनेवाला है, जिसकी त्रिलोक म ख्याति है प्रशमा

है, महत्ता है। ऐसे महादेव को ईश्वर समझते हैं, महादेव या तीर्थङ्कर समझते हैं या जो कुछ समझना चाहिए, वह समझते हैं।

वह महादेव फिर कैसा है? शास्त्रकार और कहते हैं, सुनिए जरा—

जो वीतराग हैं, राग और द्वेष की वृत्तियाँ जिसमेंसे चली गयी हैं, जो सर्वज्ञ है, जो अक्षय आत्यन्तिक अनंत मोक्षसुख को प्राप्त कर चूके हैं, सब कष्टों से मुक्ति प्राप्त करली है, और जो सर्वथा निष्कलंक हो गया हैं, जिनको कोई रोग नहीं रहा, दुःख और दारिद्र नहीं रहा, मोह नहीं रहा, माया भी जिनकी चली गयी, जो लौकिक से लोकोत्तर बन गये, शुद्ध स्वरूपी सच्चिदानंदमयी सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्रमयी जिनका आत्मा बन गया है। देवता जिनको नमस्कार करते हैं। जो देवाधिदेव बन गए है। महायोगियों के ध्येय हैं, ध्यान केन्द्र हैं, योग का आधार हैं। महायोगी भी जिसका ध्यान लगाते हैं, और जो दुनिया को कल्याण मार्ग बतानेवाले हैं, नीति को उत्पन्न करनेवाले हैं, इनका नाम महादेव हैं।

आगे शास्त्रकार कहते हैं:—

इस प्रकार के शान्त और कृत-कृत्य हैं, जिन्होंने अपने कृत्यों को सफल करदिया है, अपने कार्यों को पूरा करदिया है, जो सर्वज्ञ बनचूके हैं, जिन्हे अब कुछ करना धरना बाकी नहीं रहा, जो करना था सब करचुके, जन्म और मृत्यु को जीत लिया और जो बड़े महाज्ञानी-सर्वज्ञ हैं, ऐसे शान्त-दान्त-धीमान महादेव को विवेकपूर्वक भक्तिपूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ।

क्या देव पर सच्ची श्रद्धा है?

कहने का तात्पर्य यह है कि-शुद्धस्वरूपी, १८ दूषणों से रहित, संसार से मुक्त वीतराग-ऐसे ईश्वरको-देव को मानना, इसीका नाम व्यवहारसमकित है।

यद्यपि संसार में सबलोग कहते हैं कि-हम देव को मानते हैं, परन्तु वे देव को भी अभिरुचि के अनुसार बनाकर के ही मानते हैं। शास्त्रोक्त देव कैसे भी हों, परंतु हमारी नेत्रों को पसंद हो, हमारे मनको पसंद हो, इस प्रकार से सज-धज के बैठे हों, तभी वे हमारे देव हैं। और इसी लिए गृहस्थ लोग अपनी इच्छानुसार देव हों, उसी को मानना, यह समकितधारी का लक्षण समझ रहे हैं। समकितधारीपने का दावा करनेवाले अकसर करके ऐसे देखे जाते हैं। दूसरी तरफ से देव को देव तो मानते हैं, परन्तु वहां

ही तक मानते हैं, जबतक अपने स्वार्थ में हानि न पहुचती हो। अपने स्वार्थ में जरा भी हानि पहुचने का समय आया, उसी वख्त देवको भी दूर हटाकर अपना स्वार्थ साध-लेंगे। देव के ऊपर सची श्रद्धा हो, वह ऐसा कभी नहीं कर सकता। वह प्राणान्त में भी देव पर की श्रद्धा नहीं हटाएगा। परन्तु इन्द्रियों की गुलामी ऐसी है कि समय आने पर मनुष्य ईश्वर के सामने की हुई प्रतिज्ञाओं को तोड़ देगा, अथवा ऐसा कपट करेगा, जिससे अपना कार्य सिद्धकर लेगा, और दुनियाँ को यह दिखाएगा कि वस्तुतः यह प्रतिज्ञा पर दृढ रहा

रामा-रतन कोली

गुजरात के एक देहात म दो भाई रहते थे। क्रमश रामा और रतना उनका नाम था। जाति के कोली थे। मछलियॉ मारते और अपना पेट भरते थे। गाव में साधुसत आते जाते थे। सत्सग करते करते ससार से कुछ उनको वैराग्य सा हो गया। भाइयोंने आपस में परामर्श किया कि, अब चलो तीर्थयात्रा कर आवें, और कुछ परभव की भी सामग्री एकत्रित करलें। निश्चय होने पर यात्रा को चले। काशी, त्रिवेणी, हरिद्वार, द्वारिका आदि घूमकर सानद यात्रा की। कई प्रतिज्ञाएँ ली। घर लौट रहे थे। चलते २ रास्ते में उन्होंने एक पानी का खड्डा देखा, जिसमें पानी तो करीब २ सूख गया था। परन्तु थोडे पानी मे मछलियॉ बहुत थीं। पानी की कमीसे वे आसानी से दिखाई देती थीं। उन दोनों भाइयोंने विचार किया—वे मछलिया देखकर सब कुछ भूल गये कि हम तो यह सब कुछ छोड आये हैं और यात्रा करके पवित्र बने हैं। मछलिया देखकर उनके मुँहमें पानी आगया। दोनों आपस में विचार करने लगे कि, मछलिया तो बहुत अच्छी हैं, इन्हें ले चलें तो बहुत अच्छा होगा। सब बाल-बचों के काम आयेगी और उनको इनसे बडी मदद मिलेगी। पर, हमें तो अब मछलियां लेना नहीं हैं, अगर ले चलें, तो गाववाले क्या कहेंगे? यात्रा करके आये हैं। अब करना क्या चाहिए? हमारे कारण हमारे लडके बच्चे भी इनसे वचित हो जायेंगे। ऐसा तो नहीं होना चाहिए।

आखिर उन्होंने एक तरकीब सोची। और वहीं से एक लकडी से रास्ते भर लकीर करते चले। गाव के द्वार पर पहुचे। गाव के सभी लोग उनका स्वागत करने के लिए इकट्ठे हुए थे। आजकल तो खैर इतना यात्रा का महत्व नहीं रहा, इन रेलों आदि के साधन सुलभ हो जाने के कारण, पर पुराने समय में दिरलेही यात्रा करने को

साधन की दुर्लभता के कारण निकलते थे, और जो जाते थे उनको सारे गांववाले बड़ी श्रद्धासे देखते थे। उन दोनों रामा-रतना के कुटुम्बों के अतिरिक्त गांव के स्त्री-पुरुष भी उनके स्वागत और दर्शनों के लिए खडे थे। पहुँचे वहां। सबोंने उनका स्वागत-सत्कार किया और अब सब चलने लगे उनके घर तक पहुंचाने के लिए।

इधर तो यह सब हो रहा था। उधर रामा रतना को चैन नहीं। किस तरह से यह मछलियों की बात अपने लड़कों से कहना। देर हो रही थी। इस वास्ते कुछ तरकीब सोची। उन्होंने करतालों के ताल के साथ भजन गाना शुरू किया:—

द्वारिकां जईने दर्शन कीधां, नाथ माराने निहाल्या,
पाप बधां त्यां पडतां मूकी पुन्यनां वचनोने पाल्या रे
लीटे लीटे जाज्यो रे, खाडामां छे खदबदियां होजो।

अपने लड़कों को इशारा करके कहने लगे—द्वारिका, गयाजी, काशीजी, हरिद्वार आदि तीर्थस्थानों को गये। सब जगह स्नानादि किये और पवित्र हुये। अब हमने तो पाप छोड़ दिये हैं लेकिन हम तुमको कहते हैं कि-इस लकडीसे जो लकीर की गई है इस लकीर के सहारे २, जिसको हम रास्ते भर करते आए हैं, जाना और जहां ये लकीर खतम होगी वहां एक खड्डा मिलेगा, वहां खदबदियां है वे लेलेना। खदबादियां माने मच्छी।

गंगा ने गोमती सरस्वती रेवा, तीर्थ न्हाया त्रिवेणी,
पापतणी त्यां कीधी प्रतिज्ञा, वदीये न मुखे एवी वाणी रे,
लीटे-लीटे आज्यो रे, खाडा में छे खदबदियां होजो

हम तो गंगा, गोमती, सरस्वती, यमुना आदि नदियों में नहा कर आए हैं। सब पापों की प्रतिज्ञा लेली है। इसलिए मुंहसे तो साफ २ नहीं कहेंगे, पर इशारा करते हैं कि, लकीर २ जाना और खड्डे में जो खदबदिया हैं वे ले लेना।

लड़कोंने अपने पिताजी की बात समझ ली, वे भी गाते हुए उत्तर देने लगे:—

समस्या बधी ए अमे समजया छीए बापा,
जरुरी वात अमे जाणी, मनमां हि कछु फिकर न करशो
लीटे लीटे जास्यु रे, लेस्युं त्यांथी खदबदिया होजी।

हे पिताजी, हमने आपकी बात समझली। हम आपकी बताई हुई लकीरसे जायेंगे। और वहां से खदबदिया लेंगे। उनमे अपना पेट भरेंगे। और आपका भी भर देंगे।

गीतकार अंतमें कुछ अपनी तरफ से भी कह देता है। आप उसको भी थोडा सुनिए।—

> माने दीवे दिवाळो कहिए, मोंटे दीवे थाय होळी।
> रामो रतनो ने भगत थया पण, आखर बोर्जाना कोळी रे॥

कोली थे परमात्मा के भक्त, पर आखिर रहे कोली के कोली।

आज आप भी अपने जीवन को इस दर्पण में देखे। आपने शास्त्रों को सुना है। धर्म भी समझा है। प्रभु को–देव को मानकर भक्ति, पूजा, सब कुछ किया है, करते है। परन्तु प्रभु के नाम पर कुछ भी त्याग किया है ? और त्याग किया है तो उसका पालन बराबर करते हैं ? मन की वासनाओं को छोडा ? अगर तत्व को मनमें नहीं उतारा, तो कितने ही उपदेश सुने, व्याख्यान सुनें, कुछ नहीं होने का। अत इसका वही है - कोली का कोली रहना

अब गुरु का लक्षण क्या है ? कल बताऊंगा।

भाईओ और बहनो,

सुदेव, सुगुरु और सुधर्म—इन तीनों पर अनन्य श्रद्धा--यकीन, इसका नाम व्यव-हार समकित। यह बात मैं कह चुका हूं। कल मैंने 'सुदेव' का क्या स्वरूप है, यह दिखलाया है। आज मैं 'सुगुरु' का स्वरूप समझाउंगा।

गुरु का महत्व

यों तो संसार में 'गुरु' का नाम धरनेवाले लाखों करोडों मनुष्य हैं, परन्तु 'गुरु' कहने से 'गुरु' नहीं होते। काशीमें आम तौर से हर किसी को 'गुरु' कहने की चाल पड़ गयी है। 'गुंडों' का परिचय किसी को कराना हो तो, कहा जाता है कि—"ये बडे 'गुरु' हैं" परन्तु वस्तुतः 'गुरु' वह है जो आत्मिक गुणों से गुरु-भारी हैं। अर्थात् सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा जिनका 'जीवनविकास' अधिक हुआ है। और जो बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारसे गुरुपद को धारण किये हुए हैं, और जो स्वकल्याण साधने के साथ दुसरों का भी कल्याण कर सकते हैं।

गुरु वह है जो त्यागी है, संयमी है, सांसारिक उपाधिओं से दूर है। दुनियादारी में रहनेवाले मनुष्यों के लिए गुरु की बड़ी आवश्यकता है। गुरु ही एक ऐसी हस्ती है जो गृहस्थों को संसार के मायाजाल से छुडाकर मोक्ष की तरफ—वीतरागता की तरफ लेजाती है। गुरु का महत्व कहांतक बखान करें? गुरु का महत्व अपार है, अवर्णनीय है, कल्पनातीत है। जबतक हमें गुरु की प्राप्ति नहीं होती, हमारा जन्म बेकार है। शास्त्रकार भी कहते हैं:—

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि ।
आकर्णदीर्घोज्ज्वललोचनोऽपि दीपं विना पश्यति नान्धकारे ॥

मैंने अनेकवार कहा है कि, कोई कितना भी बुद्धिशाली हो, ज्ञानी हो, विद्वान हो, गुणों का समुद्र हो, परन्तु बिना गुरु की कृपा के वह भी धर्म की प्राप्ति नहीं कर सकता। तभी तो गुरु की महिमा भक्तने इस प्रकार की है:—

गुरु गोविंद दोनों खडे, किसके लागू पाय ?
बलिहारी गुरु देवकी, गोविन्द दियो बताय ॥

बुद्धिशाली इतना घमड रखते हैं कि, हम तो सब कुछ जानते हैं। यह सब कुछ जानने का अभिमान रखनेवाले अगर अपने आत्मा में रहे हुवे घोर अन्धकार को जानते होते, तो कभी दिलों में अभिमान न रखते। पर जैसे २ अपने अदर रहे हुए अधकार को जानते जाते हैं, वैसे ही वैसे २ अपनी अपूर्णता को जानते जाते हैं। जिस प्रकार कि समुद्र में नाव में बैठे नाविक या सवार किनारे को नजदीक देखकर कहते हैं कि-यह एक समुद्र कोई ज्यादा लम्बा नहीं है। वह दूर किनारा है, लेकिन स्टीमर आगे २ चलती जाती है। हम देखते हैं-अरे बाप! अभी तो किनारा कितना बाकी है? इतने चललिए फिर भी किनारा आ नहीं रहा, यह तो बहुत लम्बा है। हद ही नहीं। इसीतरह से ज्ञान का समुद्र है। सच्चा ज्ञानी धैर्य से, निराभिमानता से उसे प्राप्त करता रहता है, और जैसे-२ ज्ञान को प्राप्त करता जायगा, अपनी अपूर्णता खूब देखता जायगा।

लेकिन वह कुछ नहीं जानता जो महाघोर अधकार में पडा है। वह समझता है कि-मैं सबकुछ जानता हू, परन्तु अधकार में कुछ नहीं देखता। एक मनुष्य के नेत्र बहुत तेज हैं। उसके नेत्र कान के बराबर तक लम्बे हैं। आखो का तेज अपूर्व है। इतना होते हुवे भी क्या उसकी यह तेज नेत्र की ज्योति अंधकार में काम दे सकती है? वहा तो उसे भी लालटेन की आवश्यकता होगी। बिना लालटेन या प्रकाश की सहायता के वह अधकार मे कभी नहीं देखसकता। इसी तरह ससार के मनुष्य कर्मों के अधकार में डूबे हुए हैं। बिना गुरु की सहारे के ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए अगर आपको ईश्वर प्राप्त करना है, मोक्ष प्राप्त करना है तो गुरु को मानना अत्यावश्यक है।

गुरु के लक्षण

लेकिन गुरु कौन? इसके लिए श्री हेमचन्द्राचार्यने कहा है:—

महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः।
सामयिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता ॥

अर्थात् महाव्रतों को धारण करनेवाले हों, धीर हों, भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हों, सामायिक-अर्थात् समभाव में रहते हों और धर्म का उपदेश करते हों, इतने गुण रखनेवाले को गुरु कहा है।

महाव्रत पांच हैं: १ हिंसा का त्याग, २ झूठ का त्याग, ३ चोरी का त्याग, ४ अब्रह्म का त्याग और ५ परिग्रह का त्याग। सब से बड़ी बात यह है कि-साधुने इन पांच बातों का त्याग किया हुआ होना चाहिए।

यद्यपि गृहस्थों को अपने गृहस्थाश्रम के चलाते हुए अनेक प्रकार का आरंभ समारंभ करना पड़ता है, हिंसा के त्यागी होते हुए भी सर्वथा त्याग गृहस्थ नहीं कर सकते; परन्तु साधु सर्वथा मन, वचन, काया से किसी की भी हिंसा न करे। इसी लिए साधु को बीस बिस्वा की दया और गृहस्थ को सवा बिस्वा की दया कहा है।

सज्जनो, हिंसा क्या चीज है? लोग कहते हैं कि-किसी जीव को सर्वथा मार देना, वह हिंसा है, परन्तु यह गलत है। किसी का मन दुखाना यह भी हिंसा है। इसी लिए हिंसा की व्याख्या शास्त्रकारोंने यों की है:-" प्रमादात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा " पांच प्रकार के अथवा आठ प्रकार के प्रमाद कहे हैं। जिसका वर्णन मैं आगे करुंगा, उनमेंसे किसी भी प्रकार के प्रमाद से किसी भी जीव के प्राण की हानि पहुंचाना, उसीका नाम हिंसा है। जीव तो मरता है नहीं, स्थानान्तर करता है। इस लिए 'जीव का मारना हिंसा' नहीं; परन्तु 'प्राणों की हानि पहुंचाना' हिंसा कहा है। यहां पर जरा प्राणों के संबंध में समझाऊं। कुल प्राण १० हैं। पांच इन्द्रिय, ३ बल (मनोबल, वचनबल, कायबल) श्वासोच्छ्वास और आयुष्य। एकेन्द्रियादि जीवों को भी न्यूनाधिक प्राण होते हैं, जैसे-

१ एकेन्द्रियको-४ प्राण, स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु।
२ बेइन्द्रियको-६ प्राणः उपर्युक्त चार के अतिरिक्त रसनेन्द्रिय और वचनबल।
३ तेइन्द्रियको-७ प्राणः उपर्युक्त छ के अतिरिक्त घ्राणेन्द्रिय।
४ चौरिन्द्रियको-८ ,, ,, सात के ,, चक्षुरिन्द्रिय।
५ पंचेन्द्रियको- { असंज्ञी पंचेन्द्रिय को श्रोत्रेन्द्रिय मिलाकर ९ प्राण
संज्ञी पंचेन्द्रिय को मन मिलाकर १० प्राण होते हैं।

मनुष्यको दस प्राण होते हैं। अब हिंसा वही है कि-एकेन्द्रियादि किसी भी जीव के किसी भी एक या अधिक प्राणों को तकलीफ दी जाय। किसी इन्द्रिय को हानि पहुंचायी जाय, चाहे मन, वचन, काया को कष्ट पहुंचाया जाय, चाहे किसी जीव के श्वासोच्छ्वास में धक्का पहुंचाया जाय, या आयुष्य ही खतम कर दिया जाय, कुछ भी किया जाय, उन सभी में हिंसाका पाप अवश्य लगता है।

पांच महाव्रतधारी

साधु वही है कि जो किसी भी एकेन्द्रिय की भी इरादापूर्वक अनुपयोग से हिंसा करे नहीं। एक बात अवश्य है। साधु को भी विहार, भिक्षा, जंगल आदि जाना आना पड़ता है। उसमें किसी जीव को तकलीफ होने की संभावना है, परन्तु यदि वह ख्याल-उपयोग रखते हुए चलने फिरने की आवश्यकीय क्रिया करता है, तो उसको हिंसा का पाप नहीं। वह क्षन्तव्य ही है। ऐसी गलतियों से कोई बाधा नहीं पहुंचती। पर अगर साधु होते हुए भी, अनेक प्रकार की इच्छाएं रखता हो, इरादापूर्वक किसी की प्राणहानि करता हो, तो जानना कि उसके साधुपने में खामी है। साधु को भिक्षा वृत्ति भी करनी चाहिए। यह क्यों करना चाहिए ? भोजन अपने हाथ से बनानेमें प्राणियों की प्राणहानि होती है। इसलिए एक भी जीव की प्राणहानि अपने हाथ से न हो, कुछ भी क्रिया इस संबधी न करनी पड़े, इसलिये भिक्षा करे। गृहस्थ जो आहार बनाये, उसमें से बहुत थोड़ा २ वह ले। (साधु ले) जैसा कि भँवर फूलों से रस लेता है। साधु के ही निमित्त अगर वह भोजन बनाया गया हो, या उसके निमित्त से गृहस्थने थोड़ा सा भी कुछ हिस्सा ज्यादा किया हो, इस इरादे से कि गाव में फला साधु आये है, उनको आहार बहराना है, कुछ उनके हिस्से का भी रखलें, उनके लिए भी रसोई बनादें। इस इरादे से अगर थोड़ा सा भी बनाया गया हो, तो वह साधु के लिए वर्ज्य है। साधु ऐसे आहार को भी कदापि न ले। क्यों कि इससे हिंसा का हिस्सा साधु के भाग में आता है।

दूसरा महाव्रत है साधुका मन, वचन और काया से सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्य का पालन करे। झुठ न बोले। झुठ ४ कारणों से बोला जाता है। इस के बिना कोई भी झुठ नहीं बोलता। वे चार कारण है—क्रोध, लोभ, भय और हास्य। इन चारों के बारे में पहले बहुत कुछ कहा जाचुका है। साधुओं को इन कारणों से सर्वथा दूर रहना चाहिए ताकि झुठ बोलने का मौका ही न आवे। जो ऐसा करता है वही साधु है। अन्यथा कदापि नहीं।

इसीतरह साधु चोरी का त्याग करे। मन, वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करे। ये तीसरे और चौथे महाव्रत हैं।

५ वा महाव्रत है परिग्रह का त्याग। शास्त्रकारोंने परिग्रह मूर्च्छा को कहा है। इस मूर्च्छा से अलग रहे। परिग्रहव्रत सर्वथा अंश में सच्चे अंतःकरणसे पालन

करना चाहिये। वही साधु धर्म को पाल सकता है। गृहस्थों के लिए भी यही उपदेश है कि दुनियामें रह कर वे सबकुछ करें; घर बार, पुत्र-परिवार सब हो, पैसा भी पैदा करे। पर मूर्च्छा न रक्खे। इन पांच महाव्रतों को वही साधु पालन कर सकता है, जो धीर है, बहादुर है, धैर्यवाला है।

धीर साधुपुरुष अखंड धीरता रक्खे, कष्टों के समय घबरा न जाय। धीर पुरुष ऐसे भी आपत्ति के समय में अपने धर्म को-कर्त्तव्य को नहीं छोड सकता। इसलिए साधु में यह गुण अवश्य होना चाहिए। क्यों कि-एक साधारण बात है कि-

जे कम्मे शूराः ते धम्मे शूराः

जो कर्म में शूर होते हैं, वे धर्म में भी शूर होते हैं।

भिक्षावृत्ति

तीसरी बात यह है कि साधु भिक्षावृत्ति से निर्वाह करनेवाला हो। साधु स्वतंत्र है, आजाद है। साधु जैसा स्वतंत्र जीवन संसार में किसी दूसरे का नहीं। चक्रवर्त्ती जैसा ऋद्धि-सिद्धि भोगनेवाला भी गुलाम है। विषयों के बन्धन में जकड़ा रहता है। साधु स्वतंत्र संयमी, त्यागी, निष्परिग्रही, मूर्च्छा रहित, उसके जैसा सुखी संसार में कोई हो नहीं सकता। सुख उसीको है जो स्वतंत्र है। विषयों की सब प्रकार की गुलामी से रहित है। मूर्च्छा से मुक्त है। अगर हमारे में आजादी नहीं है, स्वतंत्रता नहीं है, तो हम कभी सुखी नहीं हो सकते। चाहे फिर गुलामी किसी भी वस्तु की हो, पैसे की, टके की, घर की, बाहर की, स्त्री की, पुत्र की, धन की, दौलत की या प्रशंसा की गुलामी हो, इच्छाओं की गुलामी हो, मान इज्जत पाने की लालसा हो, गुलामी हो। लेकिन गुलामी तो गुलामी ही है। सुख उसमें मिल नहीं सकता। आज़ादी ही है। ऐसा स्वतंत्रतापूर्वक जो विचार करता है, वही सच्चा साधु है। शास्त्रकारोंने ऐसे स्वतंत्र-मस्त साधुओं के सुख का वर्णन करते हुए कहा हैः—

न चेन्द्रस्य सुखं किंचित् न सुखं चक्रवर्तिनः
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥

अहा! साधु का सुख कितना सुंदर है? बड़ों २ को इसकी ईर्ष्या होती है। शास्त्रकार कहते हैंः उस संयम के सुख के आगे इन्द्र का भी सुख कोई चीज नहीं। चक्रवर्ती का सुख भी उस सुख के सामने अपना सिर ग्लानि और लज्जा से झुका लेता

है। उस संसार की वासनाओं से सर्वथा विरक्त, परमात्मा के चरणों में अगाध भक्ति से अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले, एकांत में वास करनेवाले मुनि का सुख अगाध है। अखूट है, अनंत है, अनुपमेय है। तीनों लोक से सम्पूर्ण सुख उसके आगे धूलि-समान है। अवर्णनीय है। वह सच्चा साधु है।

इसी आजादी को कायम रखने के लिए ही साधु के लिए भिक्षावृत्ति अनिवार्य है। अगर भिक्षावृत्ति को छोडदे तो उसकी स्वतन्त्रता उड जायगी। खान-पान की चीजें अगर खुद बनाने लगे तो बस फिर हो गया मामला खलास। यह भी चाहिए, वह भी चाहिए, लकडी भी चाहिए, कोयला भी चाहिए, आटा चाहिए, पानी भी चाहिए आदि सब संग्रह करने २ में सब खत्म हो जाता है मामला। एक रसोई के पीछे अनेक चीजों की आवश्यकता होती है। फिर उस में से संग्रह करने की वृत्ति जाग्रत होती है।

बाबाजी की लंगोटी

एक थे बाबाजी। मात्र शरीर पर लंगोटी रखते थे। दो लंगोटी रखते थे। एक पहिनते तथा दूसरी धोकर सुखा देते थे। रहनेके लिये अेक बड के पेड के नीचे पडे रहते थे। पत्थर की शिला पर सो रहते। परन्तु होता क्या था की, एक चूहा वहां बड पर रहता था। वह रात के समय आता और उस लंगोटी को कुतर डालता। बेचारे बाबाजी बाजार में जायें और दूकानदारों को कहें। अपने भक्तों से रोज नई लंगोटी लाये और चूहा फिर उसको भी काट डाले। एक दिन हुआ, दो दिन हुए, तीन दिन हुए, पर यह तो रोज का ही किस्सा हो गया। अब रोज २ कहां मांगने जाय, बाबाजी परेशान होगये। एक-दिन उपाय सोचकर एक बिल्ली ले आये। बिल्ली के डर से चूहा तो आना बंद होगया, परन्तु एक दूसरी समस्या खडी होगयी। उस बिल्ली को खिलाने की चिंता बाबाजीने सिर पर पडी। उसको दूध पिलाने के लिए एक बकरी पाली। एक भक्त आया। उसने देखा बाबाजीने दूध के लिए बकरी पाली है। यह अच्छा नहीं। उसने बाबाजी को एक गाय देदी। दो-तीन सेर दूध गाय का होजाता रोजाना। बिल्ली भी दूध पीती और बाबाजी भी पीलिया करते। मस्त होगये बाबाजी।

कुछ अर्सा बीता। उस गाय को दो बछडे बछियाँ का बडे लाड प्यार से बाबाजीने लालन पालन किया। कुछ बडे हुए तो बाबाजीने सोचा-बछडे बडे होगये है कहीं भाग न जायें, इसलिए कुछ ऐसा उपाय करु कि यह सवाल हल होजाय।

बाबाजी जहां रहते थे, वहां बहुत खाली जगह पेड़ के चारों तरफ पड़ी थी। बाबाजीने क्या किया कि उस जगह एक बाड़ा बनादिया। बस उसीमें गाय और उसके बछडे, बिल्ली समेत बाबाजी आनंद से रहने लगे। भक्त लोग आते और बाबाजी के दर्शन करते। एक भक्तने देखा कि, बाबाजी को तकलीफ होती होगी मकान की। उसने उसी बाड़े में बाबाजी के लिए एक छोटा सा मकान बनादिया।

अब बाबाजी के बछड़े बडे हुए ही थे। बाबाजीने विचार किया:—इन सबका बडा खर्चा है मेरे पास। बाडे में जमीन काफी है। क्यों नहीं यहीं इन बैलो से खेती करना आरंभ करदूं? अब तो बाबाजीने खेती भी करना शरु करदी। खूब अनाज हुआ। बाबाजीभी अब बडे मजे से रहते और गायों बैलों और बिल्ली आदि के लिए भी खूब घास और दूध इत्यादि हो जाता था। बाबाजी मस्त होकर रहने लगे। साल—दो साल बीता। गाँव के पटवारी को पता चला कि बाबाजी भी खेती करने लग गए हैं। पटवारीने अपने आदमी को बाबाजी के पास भेजा कि "बाबाजी आप भी खेती करने लगे हैं, जमीन का लगान दीजिए।" बाबाजीने उसे टालदिया। कहने लगे: "हम तो बाबाजी हैं। हम लगान—वगान कुछ नहीं देते।" पटवारी खुद आया। उसे भी यह जवाब मिला। बाबाजी लगान देना कुछ नहीं चाहते थे। जो कुछ होता था सब का सब अपने ही घर में रख लेते थे। खूब माला—माल होजाना चाहते थे। बाबाजी को अब पैसे की, धनकी जो चाट लग गई थी, संग्रह की कुटेव जो पड़ चली थी आखिर पटवारीने बाबाजी पर ३ साल के लगान का नोटिस निकाल दिया। उस पर भी जब बाबाजीने कोई ध्यान नहीं दिया, तो पटवारीने मजिस्ट्रेट से कहकर के वारन्ट निकलवा दिया। सिपाही बाबाजी को पकड़कर कोर्ट में ले गये और बाबाजी जाते वक्त दोनों अपनी लंगोटी भी साथ लेकर गये।

जो त्यागी था, पैसा—टका एक समय जिस के पास कुछ नहीं था, वही मनुष्य मेजिस्ट्रेट के पास आता है। माया की बड़ी विडम्बना है। मेजिस्ट्रेट पूछता है:— "आपने यह ३ वर्ष का लगान क्यों नहीं दिया।" बाबाजी! यह लगान आपको देना पड़ेगा।"

बाबाजी बोले:—" हम साधु हैं, बाबालोग हैं, हम लोग तो लिया करते हैं, दिया नहीं करते। मैं लगान नहीं दुंगा।"

जज बोला:—" तो फिर जब तुम बाबा हो, साधु हो तो जमीन काहे को बोते

हो ? जमीन बोते हो इसलिए लगान देना पडेगा। नहीं तो सजा मिलेगी। जेल की हवा खानी पडेगी।"

अब बाबाजी की आँखे खुली। बाबाजी विचार में पड गये। सोचने लगे कि, मेरी यह दशा किस कारण और कैसे हुई ? मैं तो पहले स्वतंत्र था, माग के ले आता खा लेता था, पी लेता था, परमात्मा की प्रार्थना भजनादि करता था। जहां कहीं सो रहता था। किसी बात की न चिंता थी, न दुख था। स्वतंत्र था। सोचते २ बाबाजी को विचार हुआ, सचमुच यह सारी कठनाइयाँ एक मात्र इन २ लँगोटियों के कारण से हुई। मेरी आज की इस दशा के कारणभूत येही लगोटियाँ है। इन्हीं लगोटियों को चूहे से बचाने के लिए बिल्ली रक्खी। उस बिल्ली के लिए दूध का इतजाम करने के लिए पहले बकरी और बाद में गाय रक्खी। गाय के लिए घास का बन्दोबस्त करने के लिए बाडा बनाया और बादमें खेती करनी पडी। और इसी खेती के कारण आज यह दिन देखना पडा। बाबाजी अपनी लगोटियों की तरफ इशारा करके बाबाजी मेजिस्ट्रेट को कहता है —" जो कुछ किया है, इन दोनों लगोटियोंने किया है। मैं निरपराधी हू। मेरा कोई कसूर नहीं। मैं त्यागी का त्यागी हू। बाबा हूं, पर इनके कारण मुझे यह सब कुछ देखना और सुनना पडा"। ऐसा कई करके वे दोनों लगोटियाँ मेजिस्ट्रेट के सामने फेंकी।

प्यारे सज्जनो !

आज हमारे साधुओं की भी यही धीरे २ प्रवृत्ति होती जाती है। खानपानकी चीजों का सग्रह, ससार व्यवहार की दैनिक उपयोग की सामग्रियों का परिग्रह, नाना प्रकार का परिग्रह भारतवर्ष के बहतर लाख गुरु करने लगे हैं। इतना ही नहीं, साधु-संतों महतो में मालामालों की धून लगी है। फिर भी दुःख है कि वे अपने अपने को गुरु कहलाते हैं। यही शिथिलता किसी अंशोमें त्यागी संयमी यह व्रतधारी जैन साधुओं से भी आने लगी है। और नहीं तो "यह मेरी लाईब्रेरी है' 'यह मेरा पुस्तकालय है।' 'यह मेरा उपासरा है'। येह बाते हमारे पचमहाव्रतधारियों की अवनति की सूचक हो रही ह। संक्षेप से कहें तो आज के साधु स्वादु हो गये हैं। निर्ग्रन्थ सग्रन्थ होने लगे हैं। मोक्षाभिलाषी नरकाभिलाषी बन रहे हैं। लगभग २५०० वर्ष पूर्व प्रभु महावीरने जो भिक्षावृत्ति का निर्माण श्रमण सघके लिए किया था, वह महान वैज्ञानिक मार्ग है। उसके जैसी स्वतत्रता का साधन प्राणी के लिए और कोई नहीं है।

हिंदुधर्मशास्त्रों की आज्ञा

हिन्दुधर्मशास्त्रोंमें भी इस भिक्षावृत्तिका, जैनो से भी ज्यादा कीर्तन किया गया है। जिस तरह जैन साधुओं के लिए पचन-पाचन आदि क्रियाएं निषिद्ध हैं, उसी तरहसे वैष्णव ग्रन्थो में भी संन्यास के आचारविचारों में भी यही कहा गया है:-

चरेत् माधुकरी वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नैव भुंजीत बृहस्पतिसमादपि ॥

संन्यासियों के लिए कहा गया है कि, अगर एक साधु को किसी समय में पेट भरने के साधन उपलब्ध नहीं हैं, खाने की आवश्यकता है। और कोई हिन्दु का घर नहीं है, ऐसी अवस्था में वह म्लेच्छ के घर से भिक्षा भले ही ले, परन्तु किसी एक ही घर की भिक्षा कभी न करे। थोडा २ सब के यहां से लाकर अपनी उदरपूर्ति करे। और अपने हाथ से भी पचन-पाचन की क्रिया कभी न करे। संन्यासियों के लिए यहां तक कहा है कि, अपवित्र आचरण रखनेवाले के घर से भी अगर ठीक समझे तो आहार लेले, यह बेहतर है, परन्तु स्वयं पचन-पाचन की क्रिया कभी न करे। इसतरह निर्वाह करनेवाला जो हो, वही साधु है। किसी एक घर से भी पूरा आहार लेना नहीं चाहिए। थोड़ा २ ले, ताकि गृहस्थी को उस एकाद रोटी के लिए, कोई विचार न हो। इसमें एक बात यह भी है कि, ऐसा करने से उसकी श्रद्धा भी बनी रहती है। उसकी धर्मभावना भी भ्रष्ट नहीं होती।

सामायिकस्थ

साधु का एक लक्षण यह भी बताया है कि-वह सामायिक में स्थिर रहनेवाला भी हो। सामायिक माने समभाव। किसको कहते है? साहूकार हो, राजा हो, लूला हो, लंगड़ा हो, गरीब हो, अमीर हो, कोई भी हो, प्राणी मात्र समभाववृत्ति को रखनेवाला हो प्राणी मात्र पर समभाववृत्ति को रखनेवाला हो। अर्थात् साधु सब का कल्याण चाहे। सम्पूर्णजाति की कल्याण-कामना रखनेवाला हो। किसी का पक्षपात न करे। किसी की चापलूसी न करे। मानले कि, यह बडा श्रीमंत है, राजा है, महाराजा है, सत्ताधारी है। इसकी प्रशंसा या चापलूसी करने से मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जावेगी, ये लोग भी मेरे पास आयेंगे, मुझे नमस्कार करेंगे, ऐसी भावना भी कतई न रक्खे। साधु वही है जो जिस दिनसे चारित्र किया है, उस दिन से लेकर अपने शरीर का साथ छोडनेके दिनतक, सम्पूर्ण जगत के प्राणियों पर समभाववृत्ति रक्खे। बेशक, इतना जरुर है, कि जो सत्ताधारी हैं,

श्रीमत हैं, उनके ये साधन समाज के कल्याण हित के लिए उपयोग में लाने का उपदेश दे, धर्म की प्रभावना बढ़े, इस तरह के कार्य उन श्रीमतों से करावे और ऐसा उपदेश भी अवश्य दे। परन्तु उस श्रीमत या सत्ताधीश का गुलाम तो न बने। आजकल तो प्रायः यह हो रहा है कि किसी साधु के उपदेश से कोई श्रीमत पाच पचीस हजार खर्च करे, तो इसका परिणाम यह आता है कि साधु उस श्रीमत को ही देखता है। वह अपनी स्वतंत्रता खोकर उस श्रीमत का ही कहना करता है। और श्रीमत यह समझता है कि मानो उसने पाच पचीस हजार में एक साधु को खरीद लिया, जो उसकी जगह २ वाह! वाह! पुकारनेवाला एक ब्युगल। इसका नाम साधुता नहीं, समभाव नहीं, सामायिक नहीं। साधु किसी प्रकार के स्वार्थ में आकर उपदेश न करे।

धर्मोपदेशक

इसी लिए साधु के लक्षणों में पाचवाँ लक्षण धर्मोपदेशक बताया है। साधु धर्म का ही उपदेश करे। सासारिक उपदेश कभी न करे। दुनियादारी के उपदेश से-बातों से सर्वथा दूर रहे। कई साधु अन्धभक्तों को तेजी-मंदी बताकर श्रीमत बनाने की कोशिश करते हैं। यदि पैसेदार होना यही मानव जीवन का भूषण था, तो स्वय, त्यागी क्यों बने थे! खरी बात यह है कि-साधु वेषमे साधु है परन्तु उनका आतर जीवन सांसारिक वासनाओं से भरा पडा है। साधुने स्वय आत्मकल्याण के लिए साधुता स्वीकारी है तो उसका एक ही कर्त्तव्य है कि-वह ससार के मनुष्यों को आत्मकल्याण का ही मार्ग बतावे। नैतिक धर्म सिखावे। सदाचार में रहने को कहे।

इस प्रकार पाच महाव्रतों को पालन करनेवाले, धीर, भिक्षावृत्ति से निर्वाह करनेवाले, ससार के समस्त जीवों पर समभाव रखनेवाले साधु हैं। वेही गुरु हैं। उन्हीं को गुरु समझना चाहिए। और, गुरु समझकर निःस्वार्थ वृत्तिसे, विवेकपूर्वक उनकी भक्ति करनी चाहिए।

भक्ति करने में बहुत कुछ विचार की आवश्यकता है। वह भक्ति किस काम की जिस से गुरु का पतन हो। वह भक्ति किस काम की, जिससे धर्म की निंदा हो। वह भक्ति किस काम की, जिसे अपने और किसी के आत्मा को कोई फायदा न पहुचे। कारण मात्र एक है, विवेक की खामी। हरेक कार्य समय, स्थान और पात्र देखकर विवेकपूर्वक करना चाहिए। इस का ख्याल नहीं रखनेका क्या परिणाम हुवा है, इसका एक दृष्टात देकर समझाऊ।

भक्ति तो अच्छी है, जीव कठोर है।

किसी छोटे गांव का एक मनुष्य शहर में गया। वहां किसी एक बडे सेठ के यहां जाकर ठहर गया। वह सेठ उसका रिश्तेदार था। बड़ी आदर-भक्ति से एक अच्छे कमरे मे ठहराया। सेठने नौकर को हुक्म कर दिया कि १० बजे के समय उन्हें स्नान करवा देना। गर्मी के दिन हैं। १० बजे नौकर आया और अतिथि को स्नानघर में ले गया। पानी बड़ा ठण्डा रक्खा हुआ था। बरफ और गुलाबजल डाला हुआ था। बड़ा शीतल जल था। ऐसे शीतल पानी से वह गांव के रहनेवाले अतिथिने स्नान कर लिया। गरमी के दिनों में ठण्डा-पानी बडा अच्छा लगता है। वह अतिथि अपने दिल में विचार करता है: मैं गांव का आदमी हूं, यह बड़ा भारी सेठ है। मेरी कितनी भक्ति कर रहा है। इसके बाद नौकर उसको भोजन कराने के लिये ले गया। सेठ सा० के साथ बैठ कर चांदी की थाली में भोजन करता है। इधर पंखा चल रहा है बिजली का। और खस के पर्दे की खुशबू आ रही है। बड़ी ठण्डक और तरावट हो रही है। गरमी का असर कुछ भी मालूम हो नहीं रहा है।

अब अतिथि मन में विचार कर रहा है-धन्य है इस सेठ सा० को, जो इतनी मेरी भक्ति कर रहे हैं। उनके यहां तो रोजाना ऐसा ही होता था, परन्तु यह बिचारा नहीं जाननेवाला देहात का अतिथि दिल में विचार करता है कि यह सबकुछ मेरे लिए ही हो रहा है।

खैर, अतिथि बड़े आराम से दिन भर रहा। शाम को गाडी से जाने लगा। जाते २ सेठ सा. को कहता गया कि " सेठ सा. मैं तो गरीब आदमी हूं, गांव का रहनेवाला हूं, आपने मेरी बहुत भक्ति की है। परन्तु कभी आप मेरे गांव से निकलें, तो मेरी झोंपडीको भी पवित्र करें "। सेठजीने उत्तर दिया-" भाई! हम तो कामकाजी आदमी हैं। वक्त मिलता नहीं है, फिर भी अगर हो सका तो आपके यहां आनेका भी प्रयत्न करुंगा। "

गांव का वह अतिथि चला गया। कुछ समय बीत गया। माघ-पौष का महिना आया। बडी कडाके की ठण्ड पड रही थी। आदमी घरसे बाहर नहीं निकल सकते थे। संयोग से उस बडे सेठ सा. को किसी कार्यवश बाहर जाना पडा। मोटर में बैठे हुये मोटर के चारों तरफ के दरवाजे और खिड़कियां बिलकुल बंद हैं। ठण्ड घुसने की कोई जगह नहीं। ड्रायवर गाडी चला रहा है। चलाते चलाते संयोग से उनकी कार

उसी गांव के पास आयी। गाव को देखकर सेठ सा. को उस गांववाले अतिथि की वह बात याद आयी जो उसने जाते समय कही थी कि सेठ सा. किसी समय मेरे यहा भी पधारना।

सेठ ने कार रुकवाई और उसके घर गये। उसे आवाज दी। कौन आया? कौन आया? करता नीचे आया। अभीतक धूप नहीं निकली थी। गाव का सेठ घर में दरवाजा बन्ध कीए बैठा आग सेक रहा था। नीचे आया, दरवाजा खोला, देखा तो वही शहर के शेठ सा. आये हैं। अदर वह उन्हे लेगया। खटिया बिछाई गयी और उस पर सेठ सा को बिठा दिया। इधर वह गांव वाला अपनी पत्नी के पास गया, बोलाः "यह वैही सेठ है, जिन्हो ने मेरी इतनी भक्ति की थी। तुम्हें भी उतनी ही भक्ति करनी चाहिए"।

पत्नी बोली–'क्या करु?'

गांववाला सेठ बोला "तुझे आवे सो कर ले।"

"तो भी कुछ तो कहो?"

"जैसा उन्हों ने किया, ऐसा तू भी कर। उन सेठ सा. ने जब मैं गया था, तो मेरी बडी भक्ति की थी। ठण्डे बर्फ के पानी से मुझे स्नान करवाया था। बडा अच्छा शीतल श्रीखड–पूडी का भोजन करवाया था। पखे से हवा करवायी थी। आदि ये सारी बाते की थी। तू भी वह कर।"

बिचारा गांववाला सेठ भूल गया था कि, जिस समय वह गया था, उस समय जेठ का महिना था, बडी गर्मी के दिन थे। पर आज तो पौष माघ का महिना है, कडाके की सर्दी पड रही है।

वह कुम्हार के घर गया। कोरी मटकी ले आया। पानी भरकर दो घन्टे तक ठण्डा होने के लिए रखदिया। इधर फिर वह हलवाई के यहा गया, बढिया दही ले आया। उसकी बढ़िया श्रीखंड बनवायी, और यह सब करके अब वह अपने मिहमान के पास पहुचा। उस समय कोई १० बजे का समय हुआ होगा। बोला "सेठ सा.! स्नान करने को पधारें"। अभी तो उनका ओवरकोट ही नहीं उतरा था। परन्तु अपने आतिथ्य करने वाले की बात को कैसे इन्कार करे? लाचार, सेठ सा. को ओवरकोट उतार कर स्नान के लिए जाना पडा। पानी से हाथ लगाकर देखा तो बस उँगलियाँ ही

जम गई। उँगलियाँ इतनी अकड गई कि ग्लास हाथ से पकडा ही न जाय। सेठने विचार किया, अब तो मरने की नौबत आगयी है। यह सेठ तो मुझे मार देगा। सेठ से स्नान होता नहीं है, मटकी में हाथ जाता नहीं। बड़ी कठनाई से थोडा पानी इधर उधर कर के स्नान किया। स्नानसे निपट कर कपडे लत्ते पहनने के बाद जीमने को बैठे। सेठजीने थाली परोसी। श्रीखंड पूडी वगैरह गर्मी के दिनों में खाने योग्य भोजन सामने आया। वह भोजन इन सर्दी के दिनों में सेठानीने अपने अतिथि सेठ की थाली में परोसा है। सेठ का हाथ काँपता है। चलता नहीं है। इधर आतिथ्य करनेवाला गांव का सेठ विचार करता है कि सेठ सा. के घर पर तो बडी तरावट होती थी, तब भोजन बडे आनंद के साथ करते थे। इतनी तरावट मैं गरीब आदमी इस देहात में कहां से कर सकता हूं? अभी इन्हें गरमी लगती होगी। जरा हवा करदूं तो फिर ये ठीक रीत से खाने लगेंगे। सेठ सा. के दो लडके थें-छगनिया और मगनिया। बुलाया उनको और दोनों को कहा:-" अपने अतिथि आये हैं, उन्हें जरा हवा करो दो बेटा दो सूपडे उन्हें हवा करने को दे दिये। अब लगे वे दोनों लडके उन सूपडों को चलाने और अपने अतिथि को हवा करने।

इधर उस घरवाले सेठने सोचा कि शायद है, अब भी गरमी लगती हो। मेरे लिए खस का पर्दा लगाया गया था, पर मैं तो गरीब आदमी ठहरा। कहां से यह सब कुछ लासकता हूं? उसने क्या किया, अपना रूमाल था बडा सा और मोटासा, उसको पानी में भिगोया और ऊपर से लगादिया। अब यह तो पानी से तर रूमाल और ऊपर से सुपडों की हवा। बस निमोनिया होने में थोडी सी कसर बाकी रह गयी।

बिचारा लखपति सेठ ५-५-७-७ मिलों का मालिक, उसकी आंखों में से टप-टप आंसु निकल जाए।

आंसू देखकर गांव का सेठ कहता है-" सेठ सा०! आप तो शहरों के रहनेवाले हैं, और मैं गांव का मामूली आदमी। आपने जो मेरी भक्ति की, उतनी तो मैं कैसे कर सकता हूं। फिर भी अगर कोई कसर रह गई हो तो आप फरमावें।"

" भाई तेरी भक्ति तो बहुत अच्छी है, परन्तु मुझे दुःख तो इस बातका है कि मेरी यह जान बडी कठोर है, जो अभी तक निकलती नहीं।"

मेरे भाईयो!

साधुओं गुरुओं की भक्ति, तीर्थंकरों की भक्ति, धर्म की भक्ति आप लोग

प्रायः इसी तरह की करते हैं। हजारों, लाखों, करोडो रुपयों का खर्च करते हैं, परन्तु विवेक नहीं है। दुनिया विवेक को ही देखती है। दुनिया की नजरों में हम लोग हास्यास्पद हो रहे हैं। आज समाज को जीवित रखने का प्रश्न हमारे सामने खडा है। समाज की अज्ञानता को दूर करने का सवाल हमारे सामने है। धर्म का प्रचार करने की आवश्यकता है। परन्तु आप इन पर नहीं सोचते। आपका कर्त्तव्य इनके प्रति क्या है? आज का समय आपसे क्या माग रहा है? आजका जगत किधर जा रहा है? आप इन पर विचार करने की कोशिश नहीं करते। आप जहा हैं, वहा के वहीं आँख बन्द कर के बैठा रहना चाहते हैं। उससे मम होते नहीं। यह रूढिया से चली आयी गुरुभक्ति, देवभक्ति, धर्मभक्ति वर्तमान समय के लिए सची भक्ति नहीं है। साधुओं के आपस के झगडों को कोर्टों में ले जाकर लाखों रुपये आप खर्चने को तैयार हैं। यह क्या गुरुभक्ति है? दुनिया क्या कह रही है? समय, स्थान और पात्र को आप भूल गये हैं। आप मान बैठे हैं कि, हम जिन को मान बैठे हैं, वही साधु हैं। ऐसा कभी नहीं मानें। सारा ससार साधुओं से भरा पडा है। उपकारी का उपकार जरूर माने, लेकिन जगत में दूसरा साधु नहीं, ऐसा कभी नहीं मानें। सच्चे साधुओं की सब की भक्ति करनी चाहिए। सच्चे साधुत्व में सब जगह आराम ही आराम है, आराम की कोई कमी नहीं. बल्कि मैं तो आप के कल्याण के लिए कह रहा हू। इस बात को ध्यान में रखकर ऐसे किसी भी सच्चे साधु का उपदेश सुनना और उसे मानना आपका धर्म है। ऐसे साधुओं पर, ऐसे गुरुओं पर श्रद्धा रखना, यही समकित का लक्षण है।

भाईओं और बहनों,

कल मैंने गुरु का स्वरूप समझाया था। अब धर्म की बात आती है।

धर्म का स्वरूप

धर्म पर श्रद्धा रखना भी जरुरी है। देव, गुरु और धम-ये तीनों पर अटल श्रद्धा रक्खी जाय, तभी सम्यकत्व की प्राप्ति होती है। संसार से पार उतारनेवाली कोई चीज है तो वह धर्म ही है।

"चिरं जीयात् देशोयं धर्मरक्षणात्" हमारे शास्त्रों म, हमारे ग्रन्थोमें, पूर्वाचार्यों के शब्दों में हमारा देश हजारों लाखों करोडो वर्षोंतक जीता रहे-मात्र धर्म के रक्षण से" यह भावना थी। अगर धर्म नहीं तो जीवन नहीं। धर्म हमारे जीवन में एकीमतहो जाना चाहिए। श्वासोश्वास हमारा धर्ममय होना चाहिए। धर्ममात्र उपाश्रय मे, स्थानक में, मंदिर में ही नहीं, धर्म हमारे आत्मा में है। वह धर्म हमारे जीवन में ओतप्रोत होजाना चाहिए। यह नहीं कि घन्टा दो घन्टा माला फेरते समय, सामायिक करते समय या मंदिर में जाते समय मात्र के लिए हम पाप करना बंद करदें। इसके बाद तो दुनिया भर का पाप करें। ऐसा शास्त्रकार कभी नहीं कहते। धर्म तो अपने क्रियात्मक रूप में हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया में ओतप्रोत होजाना चाहिए। घर में दुकान में बाजार में, बाहर-अंदर, धर्म स्थानों में, मंदिर में, सब जगह हमारा जीवन धर्ममय रहे। अगर आप ऐसे हैं, तो अपने को समझना चाहिए कि, आप धर्मात्मा हैं। अमुक समय के लिए पाप में प्रवृत्ति नहीं करनेसे आप धर्मात्मा नहीं बन सकते। धर्मात्मा की यह व्याख्या सर्वथा गलत है। धर्म की व्याख्या तो यह है-

दुर्गतौ प्रपतर्त् प्राणित धारणात धर्म उच्यते।

दुर्गति में गिरते प्राणी को जो बचाता है, रक्षा करता है उसका नाम है धर्म। और धर्म को आचरण में लानेवाला धर्मात्मा।

प्यारे भाइयो और बहनों! धर्म बडी महत्त्व की चीज है। धर्म प्रेम करना सिखाता है। दुर्गति में जानेसे बचाता है। मानव बनना सिखाता है। धर्म अधर्म की शिक्षा कभी नहीं देता। मानवता को खो देना कभी नहीं सिखाता। मनुष्य से घृणा करना धर्म नही सिखाता। देश, जाति के हितों को भूल जाना धर्म नहीं सिखाता। राष्ट्रधर्म की अवहेलना करना धर्म नहीं सिखाता। यह सब सीखना और इन सबका आचरण करना, एक मात्र धर्म है। धर्म सब से पहले मानव बनना सिखाता है। मित्रो! धर्म तभी धर्म है, जब उस धर्म को धर्म समझकर पालन करे। लोग कहते हैं-'जैन धर्म' को भगवान महावीरने पैदा किया। बौद्ध धर्म बुद्ध भगवानने पैदा किया। हिन्दू धर्म को राम, कृष्ण और शंकराचार्यने पैदा किया। ये सब गलत बातें हैं। धर्म कभी किसी के द्वारा उत्पन्न हो सकता है?

'वत्थुसहावो धम्मो'-वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। मानवता ही मानव का धर्म है। जड का स्वभाव जडता। अग्नि का स्वभाव ऊष्णता। यही क्रमशः इनका धर्म है। आत्मा सच्चिदानदमय है। शुद्ध ज्ञान, दर्शन और चारित्रमय है। यह आत्मा का स्वभाव-धर्म है। अपने इसी स्वभाव धर्म को समझना और पहिचानना, खोजना, उसको प्राप्त करना, उस पर ही आचरण करना, यही इस आत्मा का सच्चा धर्म है। यह धर्म है और इसके विपरीत सारे आचरण अधर्म है।

आत्मा के स्वरूप को, स्वभाव को समझना इसका नाम है धर्म। इसके साथ ही साथ हम ज्ञान से भी उनकी पहिचान कर सकते है। एक प्रश्न हो सकता है कि जब धर्म धर्म ही है। तब फिर यह 'जैन धर्म,' 'बौद्ध धर्म', 'वैष्णव धर्म' आदि २ क्या चीज है?

ये धर्म के विशेषण हैं। घोडा घोडा है पर लाल घोडा, पीला घोडा, सफेद घोडा यह उनके विशेषण हैं। आज हम जैन धर्म क्या चीज है? इसको भी नहीं समझे हैं। जैन कुलमें ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल, के कुल में जन्म लेलिया, इसलिए जैन धर्म में है, फिर वह चाहे जितने पाप को करे, कोई हरकत नहीं। पर ऐसा नहीं। इसकी व्याख्या सुनना जरूरी है।

जैन धर्म के खास लक्षण

'जैन धर्म'को ही लीजिए। 'जैन' शब्द क्या सूचन करता है? 'जि-जय' धातु से 'जैन' शब्द बना है। इसका अर्थ है 'जीतना'। 'जीते' सो जैन। 'जयति रागादीन

शत्रून् इति जिनः' जो रागादि शत्रुओं को जीतता है वह जिन। और 'जिनेन प्ररूपितो धर्मः जैनधर्मः'। ऐसे रागादि शत्रुओं को जीतनेवाले जिनने जो प्ररूपित किया-बताया, वह 'जैन धर्म'। जैन धर्म में मुख्य तीन बातें दिखलायी है। वे तीन बातें आज आपको समझाऊं। कहा है:—

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते।
न.स्त्यन्यपीडन किञ्चित् जैनधर्मः स उच्यते ॥

स्याद्वाद क्या चीज है?

जरा समझनेवाले समझलेना। हमारे आचार्योने क्या व्याख्या की है? ये तीन बातें जिसमें हैं, इसका नाम ही जैन धर्म है, चाहे कहीं, सेभी ये तीन चीजे प्राप्त होती हों।

सब से पहली बात जिसमे 'स्याद्वाद' हो। अब मुझे यह समझाना है कि 'स्याद्वाद' है क्या चीज? इसके नाम से तो सब लोग परिचित होंगे। जिस समय कोई अनुचित कार्य करता है, उस समय बचाव करते हुए कहता है कि—यह स्याद्वाद है। किन्तु लोग 'स्याद्वाद' का। दुरुपयोग करते है? पुण्य भी कर सकते हैं और पाप भी कर सकते हैं। पर मित्रो! यह नहीं हो सकता। 'स्याद्वाद' तुम्हें पाप करने की स्वीकृति कदापि नहीं देसकता। सुनिए ज़रा स्याद्वाद की व्याख्या "एकस्मिन् वस्तुनि सापेक्षरीत्या विरुद्धनानाधर्मस्वीकारो ही स्याद्वादः।"

एक वस्तु में अपेक्षापूर्वक विरुद्ध ऐसे भिन्न भिन्न धर्मों का स्वीकार करना उसका नाम है स्याद्वाद। उदाहरण के तोर पर, कोई भी एक चीज लेलीजिए। एक पेड लीजिए, एक वस्तु लीजिए। ईश्वर लीजिए, आत्मा लीजिए। सारे संसार के जितने पदार्थ हैं उस में अपेक्षापूर्वक भिन्न २ धर्मों को स्वीकार करना, इसका नाम है स्याद्वाद। मैं बहुत संक्षिप्त से समझा रहा हूं। पुण्यों को पाप नहीं कह सकते। यह तो स्याद्वाद को नहीं समझने की बात है। स्याद्वाद का सच्चा तात्पर्य समझे नहीं। एक पदार्थ को लेलीजिए। आप के बीच में बैठे इन कोठारी साहब को लेलीजिए। अब गिनिए। ये क्या २ हैं। वे पिता है, पुत्र है, पति हैं, मामा हैं, भांजे है, ये मनुष्य हैं, ये नित्य है, अनित्य भी हैं। आदि सब बातें इनमें घट सकती हैं।

ये एक हैं। पदार्थ एक है। असंख्य धर्मो को रखिए, सब घट सकते हैं। लेकिन अपेक्षासे, यदि अपेक्षा नहीं रक्खी, तो एक वस्तु में अनेक धर्म नहीं आ सकते।

ये बराबर पिता है। किस की अपेक्षा से ? अपने पुत्र की अपेक्षा से। यह पुत्र भी है, अपने पिता की अपेक्षासे। अपने भाजे की अपेक्षासे मामा है, और अपने मामा की अपेक्षा से भाजा है। अपनी पत्नी की अपेक्षासे पति है और साथ ही अपनी बहन की अपेक्षासे भाई भी है। और इन सबको छोडकर मनुष्य का शरीर धारण किया है, इस अपेक्षा से वह मनुष्य भी है। आत्मा की अपेक्षा से नित्य है, लेकिन शरीर के नाशवान होने की अपेक्षा से अनित्य भी है। अपेक्षापूर्वक आप जितने धर्म लेना चाहें ले सकते हैं। इसका नाम है 'स्याद्वाद'। सक्षिप्त से इसकी यह व्याख्या है। इसी तरह ससार के किसी भी पदार्थ में अपेक्षा से अनेक धर्म घटा सकते है।

'ही' और 'भी'

इसको सरलता से और थोडे में समझने के लिए एक बात कह देता हू। हिन्दी में जिसको 'ही' और 'भी' कहते हैं। इसमें 'भी'को आप 'स्याद्वाद' कह लीजिए। तब आपका मतलब हल आसानी से होजायगा। 'ही' नहीं कहना चाहिए, 'भी' कहना चाहिए। जैसे मान लीजिए, एक मनुष्य है-मैं ही हू। मुझे कोई कहे- 'साधु' है-भेष की दृष्टिसे। उसका मुझे साधु कहना ठीक है। परन्तु अगर 'ही' शब्द लगाकर 'साधु ही' कहा जाय, तो दूसरा कोई धर्म मेरे में नहीं आसकता। जैसे मैं मनुष्य भी नहीं रहा। मैं नित्य भी नहीं रहा, और अनित्य भी नहीं। आत्मा भी नहीं, और जड भी नहीं। "ही" कहनेसे मैं 'साधु ही' रह गया। और कुछ नहीं कहला सकता। क्यों कि 'ही' शब्द दूसरे धर्मों का निषेध करता है। इसलिए यह 'ही' शब्द लगाना गलत है। पर अगर 'ही' के स्थान में 'भी' लगाया जाय, जैसे मैं 'साधु भी' हू, 'मनुष्य भी' हू, 'नित्य भी' हू 'अनित्य भी' हू, अमुक भी हू, तमुक भी हू, तो आप इस तरह अनेक धर्मों का मेरे में समावेश कर सकते हैं। और ऐसा करने पर आप सही हो सकेंगे। बस, 'स्याद्वाद' यही चीज है। अगर किसी में 'स्याद्वाद' लगाना है, व्यापक दृष्टि से, न्याय दृष्टिसे और सच्ची दृष्टि से किसी चीज को देखना है, तो 'भी' लगा दीजिए, आपकी भाषा असत्य नहीं हो सकती।

एक मनुष्य 'लाल मंदिर' को देखकर चला जाता है। बाहर जाकर बात करता है कि, फलाना मंदिर का मकान, जिसे मैं अभी देखकर आया हू, 'लाल ही' मकान है। लाल 'ही' कहता है। और कुछ नहीं कहता है। क्यों कि जब 'ही' कहता है, तो लाल

के सिवाय और किसी रंग का बोध नहीं होता है। स्पष्ट है। हां, तो वह कहता है कि जिस मकान में महाराज ठहरे हुए हैं, वह 'लाल ही है।'

एक दूसरा आदमी मेरे पास आता है और देखकर चला जाता है। उसका बाहर ध्यान ही नहीं गया। अंदर ही देखकर चला गया। वह उस दूसरे आदमी को कहता है कि, 'जिस मकान में महाराज ठहरे हैं वह 'सफेद ही' है। मैं अभी देखकर आया हूं'। वह पहला आदमी कहता है कि 'नहीं, वह 'लाल ही' है'। अब यही 'ही' का झगड़ा चला। एक कहता है वह बरावर लाल 'ही' है, और दूसरा कहता है कि नहीं, वह तो बरावर सफेद 'ही' है। दोनों में इसी बात पर तकरार होने लगी।

इसी बीच में कोई समझदार सज्जनने दोनों को कहाः-"भाई! लड़ते क्यों हो? चलो, मकान बताओ। महाराज कहां ठेहरे हैं। कौनसा मकान देखा तुमने? कहां देखा, जरा चलकर बताओ"। जो 'लाल ही' मकान कह रहा था वह बाहर से दिखाकर बोला कि, "देखिए, यहां महाराज ठहरे हैं और यह मकान लाल है कि नहीं?" मध्यस्थ आदमी बोला-"बिलकुल ठीक है तुम्हारा कहना। तुम सच्चे हो"। उन्होंने दूसरे आदमी से पूछाः-"भाई! बताओ, तुमने सफेद कहां देखा?" वह दूसरा आदमी उस मध्यस्थ पुरुष को मकान के भीतर ले गया और अंदर का मकान का हिस्सा बताकर कहने लगा कि, "देखिये, साहब! है न यह मकान सफेद?" मध्यस्थने कहा कि, "भाई! तुम भी ठीक हो। तुम भी सच्चे हो"। तो क्या हुवा? दोनो सच्चे थे। लेकिन झगडा इसलिए करते थे कि एक कहता था कि "नहीं, 'लाल 'ही है' और दूसरा कहता था कि "नहीं, सफेद ही है" यह 'ही' कहने के कारण झगड़ा हुआ। अगर वे यह कहते कि "नहीं भाई, हम दोनो ठीक कह रहे हैं। वह मकान 'लाल भी' है और 'सफेद भी' है अगर वे दोनों 'ही' को छोड़कर 'भी' का प्रयोग करते, तो तकरार कभी न होती। सीधी सी बात है। इस के समझने में कोई कठिनाइ नहीं है। बहुत से लोग कहते हैं-'बड़ा गहन विषय है'। अब आपही बताइए, इसमें कौनसी गहनता है? बिलकुल सीधी और सादीसी बात है। सच्ची व्यावहारिक और नित्यानुभव की बात है। जब कभी किसी भी आदमी में तकरार हो गई हो, तो आप विचारिए कि, इन दोनों के कथन की अपेक्षा क्या है? बस, उनके कहने का आशय या अपेक्षा समझ लें तो, तकरार खतम होजायगी।

इसी 'ही' के कारण हमारे समाज, पंचायतों आदि में झगड़े होते हैं। आपस में

एक दूसरे पर कटाक्ष करके आक्षेप-निक्षेप करके तकरार खडी कर देते हैं। वह कहता है 'ऐसा ही' है, 'ऐसाही' होना चाहिए, और दूसरा इसमे विपरीत 'ही' लगाता है। 'ही' को लेकर लडते झगडते हैं। और पचायत, जाति, देश और धर्म को नुकसान पहुंचाते हैं। तकरार करके अपने आत्मा को कलुषित करते रहते है, परन्तु यह 'ही' नहीं छोडते। 'ही' छोडकर 'भी' अगर वे अपनालें, तो उनके सभी रोग मिट जायँ। सब तकरार लुप्त हो जाय। एक वस्तु में अनत धर्म का प्रतिपादन भी आप तभी कर सकते है, जब 'ही' के स्थान पर 'भी' बोलेंगे। अगर कहते जाएगे कि, इस वस्तु में यह 'भी' धर्म है। आत्मा 'नित्य भी' है, और 'अनित्य भी' है। 'रूपी भी' है और 'अरूपी भी' है, आदि २। परन्तु कोई कहे कि 'नहीं, आत्मा 'नित्य ही' है, तो ऐसा कहना भूल है।, क्यों कि वह अपेक्षा से नहीं बोलता है। अपेक्षा मे बोलो कि, 'नित्य भी' है, 'अनित्य भी' है। नित्यानित्य भी है। किसी अपेक्षा से हार नहि खा सकता। कोई उस के कथन को असत्य करने का दावा नहीं कर सकता।

अब मैं आपको यह बताउगा कि आत्मा नित्य और अनित्य किस प्रकार है ?। आत्मा शुद्ध स्वरूप है। सच्चिदानन्दमय है। मोक्ष में जानेवाला है। इस अपेक्षा से नित्य है, क्यों कि मोक्ष में भी रहेगा। आत्मा मरता नहीं। इस लिए वह नित्य है। आत्मा कभी मरता नहीं। इस अपक्षा से आत्मा को नित्य कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु शरीर की अपेक्षा से आत्मा 'अनित्य' भी है। आत्मा शरीर को धारण किये है। कर्मों के आवरण के कारण से। इसलिये अगर कोई मरजाता है, तो हम कहेंगे कि 'फलाना मर गया'। मरा नहीं, परन्तु उसने शरीर बदल डाला। इस शरीर के बदलने की अपेक्षा से यह भी कह सकते हैं कि आत्मा 'अनित्य' है। इस शरीररूपी घर मे रहनेवाला घर छोडकर जाता है, इसलिए कहते हैं कि 'मर गया'। वरना आत्मा कभी मरता नहीं है। यह अपेक्षापूर्वक हरेक प्रकार के धर्म का स्वीकार किया जाय, इससे 'स्याद्वाद' समझ में आजाता है। इसको समझने के बाद तकरार कभी नहीं हो सकती। कहनेवाले की अपेक्षा क्या है? इरादा क्या है? किस आशय को लेकर कहता है!, ऐसे आशय को बिना समझे उसका विरोध करने लग जाते हैं। यह हमारी मूर्खता है। 'स्याद्वाद' के सिद्धात के विपरीत आचरण है। हमें उसका आशय समझना चाहिए। बहुत दफे हम उपदेश करते हुए एकही बात को दो तरह से, या भिन्न २ रूप मे भी

कह देते हैं। परन्तु लोग हमारी अपेक्षा क्या है? हम किस आशय को लेकर किस के संबंध में यह बात कही? यह तो समझते नहीं। फिर बाजार में जाकर कहेंगेः "महाराजने यह कहा, ऐसा कहा," परन्तु भाइयो, आप यह कर्मबंधन फजूल न करें। समझने की थोडी कोशिश करें कि कहने का क्या आशय था? क्या होना था?। फजूल न समझें, विना जरुरी बात अपने मुंह से निकाल देने में आप को क्या हाथ लगता है?। हमें इन चीजों को समझकर व्यवहार में चलने की आवश्यकता है। इसके बिना हम अशांति पैदा करने के जिम्मेदार होते हैं। और खुद भी अशांति मोल ले लेते है। अशांति मोल लेना, हमारे जीवन का कदापि ध्येय नहीं है। आप इस चीज को समझें। पति पत्नी के, पिता पुत्र के, भाइ २ के आपस में लडाई झगडे हो जाते हैं। यदि अपेक्षा को ध्यान में रखा जाय कि, किसी अपेक्षा से वह भी ठीक है, उनका कहना भी ठीक है, मेरा भी कहना ठीक हैं। तो बस फिर खलास है। मामला जीवन संघर्ष में नहीं है। मेरे मित्रो, किसने आपको बहला दिया है? जीवन तो समझौते में है। 'स्याद्वाद' को समझकर अपने व्यवहार में उतारने में हैं। फिर यदि आप के जीवन में समझने की भावना नहीं है, 'स्याद्वाद' का ज्ञान नहीं है, तो आपसे सुख, मानसिक शान्ति और सांसारिक उन्नति सब आप से हजारों कोस दूर हैं।

जिस समय आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर इस भूमि पर विचरण कर रहे थे। उस समय भी आज की तरह, बल्कि आज से अधिक उग्र रूप में धर्मों में, सम्प्रदायों में, समाज में सर्वत्र लडाइयाँ, आपस की असहनशीलता से चल रही थी। उस समय और भी अन्य महापुरुष इस वसुंधरा पर विचरण कर रहे थे। बुद्ध जैसे संत भी उस समय हुए थे, और भी कई बडे २ महापुरुष उस समय थे। उन लडाइयों को मिटाने के लिये, उस आपसी वैमनस्य को शांत करने के लिये, आपस में प्रेम की गंगा बहाने के लिये भगवान महावीरने उस समय 'स्याद्वाद' का सिद्धान्त खडा कर दिया था। मानव को भगवान ने सच्चे धर्ममार्ग पर लगाया। उन्होंने कहा कि— "किसी धर्म को उन्मूलन करके कदाग्रह पूर्वक किसी के गले में अपना मत डालना अन्याय है 'स्याद्वाद' के सिद्धांत से विपरीत है। धर्म हमें प्रेम करना सिखलाता है। धर्म की आड मे अन्ध बनकर प्राणियों का संहार करना, किसी के साथ जबरदस्ती करना, कभी नहीं सिखाता। 'स्याद्वाद' को पहचानने पर जोर दो, अपना मत ही सच है, ऐसा कभी मत कहो। दुसरे का भी सत्य हो सकता है, ऐसा समझकर दूसरे

से भी प्रेम करो, मोह निद्रा को छोडो। बुद्धि से काम लो। ऐसा तो न आज तक हुआ और न आगे भी हो सकेगा कि सभी मानव एक ही धर्म के मार्ग पर चलें।। ऐसा हो भी कैसे सकता है? ससार में मत असख्य हैं, असख्य मार्ग हैं, एक ही ध्येय प्राप्ति के लिये, इस को कभी न भूलो। किसी के साथ जबरदस्ती न करो। स्याद्वाद को हर समय याद रक्खो। सहिष्णु बनो। अपने दिल के अदर के कपट और मैल को निकाल दो। सरलता से एक दूसरे मे प्रेम करना सीखो। दूसरे की भलाई में अपनी भलाई समझो। जगत की भलाई में आपकी भी भलाई शामिल है। धर्म के नाम पर लडाईया, यह मूर्खता की सूचक है। इससे तो अज्ञानता का खुला प्रदर्शन होता है। इस से विरमो, स्याद्वाद की आज भी हमें उतनी ही जरूरत है, जितनी की भगवान वीर के समय में थी। हम भगवान के अनुयायी होने का दावा करते हैं, तो हमें चाहिए, उनके इस मत के अनुसार अपना आचरण और व्यवहार रखें। सहिष्णु बनें और सब धर्मों के अनुयायीयों से प्रेम करें, अपने गले लगावें। उन्हे अपने सहधर्मी समझे। हम सब तो एक ही लक्ष्य के साधक हैं फिर हम में भेद कैसा?

किस लिये झगडे करते हो? अपेक्षा से देखो। अपनी आंख खोलकर चलो, इसीमें सब का हित है। आज देशकाल की यही प्रेरणा है। तकाजा है। नहीं तो समझो, आज का समय हमारे लिये बुरा है। अगर एक बनकर नहीं रहे और लडते रहे तो जिन धर्मों के नाम पर आज हम लड रहे हैं, जिस धर्म के अनुयायी होने का दावा करते हैं, समय आनेवाला ह जब हम खत्म हो जायेंगे, इस झगडे ही झगडे में। और जिन धर्मों के नाम पर आज हम लड रहे हैं, कभी उन धर्मों का नाम लेनेवाला भी कोई न रहेगा। स्याद्वाद के सिद्धात को अपनाने में ही कल्याण है। और उसके अनुसार चलने में है, इसे आज याद कर लेना। द्रव्य क्षत्र काल भाव की अपेक्षा से किसी का व्यवहार कैसा है? किसी की भाषा कैसी है? किसी का रहन सहन कैसा ही है? आदि, हम इन सब चीजों को बिना समझे तकरार करने बैठें, तो वह व्यर्थ है। इसके लिये तो हम को 'स्याद्वाद' के सिद्धात को समझने की आवश्यकता है। इस के बिना हमारा झगडा सुलझानेवाला नहीं। हमारी बुद्धि शुद्ध होनेवाली नहीं। इसके लिये मैं एक दृष्टात भी दे देता हू, सुनिये।

चार अन्धों का हाथी

एक हाथी का उदाहरण है। चार अन्धों को एक हाथी दिखाया जाता है। फिर

कहा जाता है कि, इसे पहिचानो। चारों उस हाथी को हाथ फेरकर देखते हैं। फिर एक से पूछा गया है कि, 'हाथी कैसा है?' वह अन्धा उत्तर देता है—'हाथी खंभे जैसा है'। क्यों कि उसने सिर्फ हाथी के पैरों पर हाथ फिराकर हाथी को पहचानने की कोशिश की थी। दूसरा तडाक से उस का विरोध करते हुए कहता है: 'नहीं, तुम झूठे हो, हाथी तो सूपडे जैसा है'। उस सूपडे कहनेवाले अन्धेने हाथी के कानों पर ही हाथ फेरकर हाथी का अनुमान लगाया था। इतनेमें तीसरे को क्रोध आया। क्रोधित होकर बोल उठाः—'तुम दोनों झूठे हो, हाथी तो चबूतरे सरीखा है।' क्या करे, उसने मात्र हाथी की स्थूल पीठ पर हाथ फेरकर हाथी का अनुमान लगाया था। इतने में अब चोथे की बारी आयी, वह गुस्से में लाल पीला होकर बोला—'अरे, तुम तीनों के तीनो महामूर्ख मालुम होते हो। तुमने किसी ने हाथी नहीं पहिचाना। हाथी तो मोटे रस्से जैसा होता है'। उस विचारेने भी हाथी का अनुमान हाथी की सूंढ पर हाथ फेरकर लगाया था। वे आपस में ही झगडते रहगये और हाथी कैसा है, इसका ठीक ज्ञान प्राप्त न करसके।

मित्रो! कहने का तात्पर्य क्या है? आज हम सब भी अपनी अज्ञानता के कारण अंधे बने हुए हैं। हमने जो कुछ जाना, वही ठीक समझे बैठे हैं। 'स्याद्वाद' को भूल बैठे। अपनी ज्ञान शक्ति को खो बैठे। अपनी सहिष्णुता के गुण को भूल गये। आपस में लडने और मरने में हमने अपने कर्तव्य की इति समझली। हमारा यह हृदयद्रावक पतन है। हमारी दयनीय दशा का यह दर्दनाक चिज है। अगर वे अंधे स्याद्वाद सिद्धान्त को समझ लिये हुए होते, तो हाथी के एक एक अंग को ही हाथी समझ कर आपस में झगडकर अपने लक्ष्य को खोने का पाप नहीं कर बैठते। स्याद्वाद की नजर से वे सभी सच्चे थे, पर सच्चे तभी थे जब एक दूसरे की अपेक्षा को जानकर समझौते से काम लेते। हाथी मे हमारे बताये गये चारों गुण हैं। चारोंमेंसे एक के बिना भी हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा। इस तरह से समझने पर वे अपने लक्ष को भी प्राप्त कर सकते थे। जबतक हम इस स्याद्वाद को नहीं अपनाते, तबतक जैन धर्म से हजारों कोस दूर हैं:

पक्षपात रहितता

'जैन धर्म' के लक्षण में दूसरा लक्षण है:

पक्षपातों न विद्यते ।

कितना सुंदर शब्द है ?

पक्षाना पातन पक्षपातः ।

आकाश में पक्षी उडता है । लेकिन उडनेवाले की पख तूट जाय तो, आकाश का पक्षी नीचे आकर गिरता है। आज हमारे जैन समाज का ही नहीं, सारे हिंदुस्तान का पतन हुआ है । जैन समाज का पतन हुआ है तो मात्र एक कारण से कि हमारे पख तूट गये हैं । 'पक्षपात' होगया है । इतना पक्षपात हो गया है कि, साधुओं में भी 'यह स्थान मेरा' 'यह उपाश्रय तेरा' 'यह मेरा धर्म, यह तेरा धर्म' 'ये मेरे अनुयायी' 'ये तेरे अनुयायी' 'ये मेरे सेवक' 'ये तेरे सेवक' । बस इसी प्रकार गृहस्थोंने भी 'मेरे तेरे' की बातें स्वीकार कर के सारे समाज को छिन्नभिन्न कर रखा है । ऐसी हालत में पतन न हो तो और क्या हो सकता है ?

भगवान् महावीर के सिद्धान्तों में कहीं पक्षपात नहीं है । गुणों की पूजा है । व्यक्ति की पूजा नहीं। क्या महावीरने कभी कहीं भी ऐसा कुछ कहा है कि मेरे सिवाय, किसी को 'तीर्थंकर' मानना नहीं ? "मेरे सिवाय किसी और की उपासना करना नहीं ? मैं तुम्हारा देव गुरु और धर्म और तुम मेरे ही चेले ?" महावीर देव ऐसा चाहते तो कह सकते थे, परन्तु नहीं । उन्होंने सच्चे देव, गुरु और धर्म की व्याख्या करते हुए निष्पक्षता से काम लिया । उन्होंने सच्चा मार्ग बताया कि "किसी की पूजा में मत पडना, गुणों की पूजा करना', चाहे व गुण किसी भी धर्म या किसी भी व्यक्ति और किसी भी प्राणी में क्यों न हो ? । आपको यदि इस पर विश्वास न हो तो नवकार मत्र को ही देख लीजिये ।

नमो अरिहन्ताण ।
नमो सिद्धाण ।
नमो आयरियाण ।
नमो उवज्झायाण ।
नमो लोए सव्व-साहूण ॥

क्या है इस में किसी का नाम ? अरिहंतों में किसका नाम लिया ? शत्रु को जीतनेवाले, शत्रु को मारनेवाले, शत्रु को जेर करनेवाले । अरिहत वे हैं जिन्होंने

कर्मरूपी शत्रुओं को जीता है, वे सब हमारे लिये अरिहंत हैं। उनको नमस्कार करते हैं। एक जगह बैठकर 'नमो अरिहंताणं' कहेंगे तो महावीरस्वामी को क्या? ऋषभदेव को ही क्या? संसार में जितने भी अरिहंत हुए हैं, केवली हुए हैं, उन सब को हमारा नमस्कार पहुंचता है।

इसी प्रकार 'नमो सिद्धाणं'। सिद्धों को नमस्कार हो। भगवान महावीर और आदिनाथ को ही नहीं, जितने भी इस संसार के चक्कर से निकलकर 'सिद्ध' हुए हैं, उन सब को हमारा नमस्कार होता है फिर चाहे विलायत का यूरोपियन मरकर 'सिद्ध' हुआ हो, चाहे तो भंगी, चमार आदि के घर से मरकर 'सिद्ध' हुआ हो, सब को हमारा नमस्कार होता है। और कोई शर्त नहीं, एकही शर्त है कि, वह 'सिद्ध' गति को प्राप्त हुए हों तो हमारा नमस्कार हैं। १५ प्रकार के सिद्ध होते हैं। इनमें से कोई भी हो, जो सिद्ध हो चुके हैं–अपने कर्म रूपी शत्रुओं से छुटकारा पाकर 'निर्वाणपद' प्राप्त कर लिया है, उनको हमारा नमस्कार है।

आगे है "नमो आयरियाणं।" 'आचार्य को नमस्कार हो'। किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्यों को नहीं, किसी जैन आचार्य को नहीं, परन्तु उन आचार्यों को नमस्कार हैं जिनमें आचार्य के ३६ गुण हैं। इन ३६ गुणों का धारण करनेवाला, फिर कोई भी हो। कितना ऊंचा है हमारा सिद्धांत! आज हम लोगोंने पक्षपात कर लिया है। हमारी आंखों पर पक्षपात का चश्मा चढा है। जैन गृहस्थोंने आचार्यों को भी बांट लिया है। भगवान महावीरने पक्षपात नहीं रखा। जबतक हम अपनी आंखों पर पक्षपात का चश्मा लगाए रक्खेंगे, वहां तक धर्म हमसे कोसों दूर रहेगा। इसी प्रकार 'नमो उवज्झायाणं' और 'नमोलोए सव्वसाहूणं' को भी समझ लीजिए।

उदयपुर के चोमासे की बात है। हमारे गुरुजी के पास दो आदमी आये दर्शन करने। इनमें से एक ने तो गुरुजी को जैन विधि के अनुसार वंदन किया। और दूसरा खाली हाथ जोडकर विना झुके बैठ गया। मुझे जरा यह बात बुरी लगी। मैं गुरुजी के पास ही बैठा था और जवान उम्र में था। मैंने इस बात को याद रखी। फिर एकान्त में मैंनें वह बात गुरुजी से पूछी। उन्होंने जो जवाब दिया, मैं उसे जीवन भर भूल नहीं सकता। उन्हींने कहाः "वह जैन था। श्रावक भी था। घर मै बैठकर दिन में कइ बार कम से कम एकदो बार भी 'नमो आयरियाणं' तथा 'नमो लोएसव्वसाहूणं' बोलता

होगा। उस वक्त अगर मैं साधु हू और मुझ में साधुत्व के गुण हैं, तो उसका किया हुआ नमस्कार उसके घर में बैठे २ मेरे यहा पहुंच जायगा और उस नमस्कार का फल उसे वहा बैठे २ मिल जायगा। और यदि मेरे में साधुपन नहीं है, और चारित्र नहीं है, सयम नहीं है, महाव्रतों का मैं यथावत पालन नहीं करता हू, तो कोई मेरे पास आकर भी सैकडों बार खमासणा देकर नमस्कार करे तो भी न मेरा कल्याण होनेका है, न उसको कोई लाभ होनेका है। "

इसलिए, भाइयो ! इस पक्षपात के चश्मे को उतार दीजिये। अमुक को मानना, अमुक को न मानना, इसको छोडो। इससे हम यथार्थ गुण ग्रहण से दूर पडजाते है। म आपको ही नहीं, सम्पूर्ण जगत के मानवियों से कहता हू कि-अपने २ समाज, व्यक्तित्व या धर्म में से पक्षपात उतार फेंको, गुणानुरागी होजाओ। तीर्थंकर भगवान के सिद्धात को हम फिर यथार्थ रूप में समझ सकते है। इसी लिये शास्त्रकार कहते हैं कि- " पक्षपातो न विद्यते " जैन धर्म में पक्षपात का नामोनिशान नहीं है।

परपीडन का अभाव-

तीसरा है परपीडन का अभाव। किसी दूसरे को पीडा न देना। इस प्रकार ३ लक्षणों युक्त धर्म का नाम जैन धर्म कहा गया है। इसकी व्याख्या के अनुसार, स्याद्वाद के सिद्धात के अनुसार किसी को पीडा न पहुचाने की वृत्ति न हो। इस प्रकार धर्म की भावना करें, तभी आप जैन धर्म को सच्चे अर्थों में धारण कर सकते हैं। सबको जैन धर्मानुयायी बनासकते हैं। अपनी तरफ आकर्षित करसकते है। सच्चे जैनी हैं तो फिर पक्षपात कैसा ?।

भाइयों और बहनों,

व्रतों की आवश्यकता

जीवन विकाश के लिये व्रतों की आवश्यकता है। व्रत, नियम, प्रत्याख्यान इन की बड़ी जरुरत है। क्यों जरुरत है ? यह बात मैं पहिले दिखला चुका हूं। सिवाय व्रतों के लेने के, हम जीवन को बराबर पवित्रता से व्यतीत नहीं करसकते। अगर हमारे से किसी समय गलती होजाती है तो व्रत लिये होंगे तो, हमको पश्चात्ताप करने का समय आवेगा। अगर व्रत नहीं लिये होंगे, तो हमारे दिलमें यही आवेगा कि हमने कौन व्रत लिये है ? संसार आधि, व्याधि, उपाधि से भरा हुआ है। ऐसे संसार में रहकर कुछ भी तो हिंसा से वचना, झूठ से वचना, चोरी से, अब्रह्मचर्य, परिग्रह से बचना, पापों से बचना हमारे लिये जरूरी है। मनुष्य जीवन पाप करने के लिये नहीं, पापों से बचने के लिये है। मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता मानी गयी है तो मेरे ख्याल से इसी दृष्टि से मानी गयी है कि मनुष्य में विचार है, बुद्धि है, विवेक है, वह समय पर हरेक बातों से, पापों से बचने की कोशिश करता है। अगर मनुष्य जन्म को रखते हुए भी, इतनी बुद्धि को प्राप्त करते हुए भी पापों से न बचे, तो उनके जैसे अज्ञानी कोई नहीं, और हमने मनुष्य जन्म को व्यर्थ खोया है।

इतना सौभाग्य मिलते हुए भी, सुंदर साधनों को प्राप्त करते हुए भी, सम्पदा और बुद्धि आदि प्राप्त करते हुए भी, अगर हमने मनुष्य जन्म सफल नहीं किया, व्रत नियम नहीं लिये, पापों से बचे नहीं, तो हमारे जैसा अज्ञानी संसार में कोई दूसरा नहीं हो सकता।

इसलिये शास्त्रकार कहते हैं—यदि इस मनुष्य जाति में आकर कुछ कर जाना चाहते हो तो, व्रत नियमों को धारण करो। हरेक धर्मों में कुछ न कुछ व्रत-नियमादि जरूर हैं, लेकिन निष्पक्षपात दृष्टि से कहना चाहिए कि, जैन धर्म के अंदर श्रावको के यानी गृहस्थों के और साधुओं के व्रतों का जो विवेचन विस्तृत रूप से

किया गया है, और जो तात्त्विकता उनमें भरी है, उतनी शायद मेरे ख्यालसे दूसरे धर्मों में नहीं होगी। हमें एक बात की जरुरत है कि, हम व्रत नियमों का पालन तभी कर सकते हैं, जब हमारे में सम्पूर्ण श्रद्धा होगी। श्रद्धा के बिना दुनिया में कोई काम नहीं चलता। आप बडे २ व्यापार रोजगार करते हैं; नाना प्रकार के साहस करते है, इन बातों के अदर भी श्रद्धा का तत्त्व यदि नहीं होता तो आप एक कदम आगे नहीं बढ सकते थे। व्यापार म भी श्रद्धा आवश्यक है। यह विश्वास होता है कि मैं दो पैसा इस व्यापार में जरुर पैदा करुगा, पर अगर ऐसा करुगा तो कुछ नुकसान होगा, ऐसा होगा कि कैसा होगा? करु या न करु? इस तरह से यदि आत्मविश्वास नहीं है, तो कुछ नहीं कर सकते। इसी तरह, इस मनुष्य जीवन में भी एक तत्त्व की जरूरत है, और वह है श्रद्धा। जीवनयात्रा को वही सफल कर सकता है, जिसके खून की बूद २ में श्रद्धा भरी है।

लोगों में सच्ची श्रद्धा है क्या?

आज मैं देखता हू और खूब बारीकी से अध्ययन करता हू, तो इस नतीजे पर पहुचता हू कि, भले ही लोग और काम सैंकडो करें। लेकिन जीवनयात्रा में सच्ची श्रद्धा नहीं है। मेरा कहना कहातक सच होसकता है, यह आप अपने आत्मा को पूछ लीजिए, मालूम होजायगा। वह श्रद्धा श्रद्धा नहीं है कि, जिस समय सकट आजाय, थोडी थोडी आफत आजाय, उस समय श्रद्धा को अलग कर स्वार्थ को साध लें। श्रद्धा की कसोटी तो वहीं पर होती है, कि जिस समय कष्ट आते हैं। वैसे तो बगुला होता है, पानी के अदर वहे ध्यान लगाकर बैठता है, मानो बडा धर्मात्मा है, ऐसा मालूम पडता है कि जैसा उनके जैसा कोई शात ध्यानी नहीं है। समाधि लगाकर बैठा है, लेकिन जैसे ही कोई मछली उसके पास आयी कि, उसकी समाधि पार लगगयी। बस, गटक कर गले के नीचे उतार देता है उस बिचारी को। उसकी समाधि टूट गई। आज कई लोग व्रतों को लेते है, श्रद्धा को रखत हैं, देव, गुरु, धर्म आदि पर पूर्ण श्रद्धा रखने का दावा करते हैं, लेकिन, कहा तक वह श्रद्धा? जहा तक कि स्वार्थ में बाधा नहीं पडती। अगर जरा मात्र हानि पहुचने की नौबत आयी, हानि भी पुद्गलों की, आत्मिक हानि नहीं, उस समय वह श्रद्धा को ताक में रखकर स्वार्थ साधने को तैयार होजाते हैं। देव है तो क्या है। गुरु या धर्म हो तो भी क्या हुआ?। हमारे शरीर और हमारे ऐशआराम में बाधा क्यों?। हमारे भोगविलास में विघ्न क्यों? हमारे विचारों में बाधा क्यों?। सम्वत्सरि का दिन

आगया, सब समझते हैं कि, हमारे लिये येही आत्मसाधन का दिन है। आत्मा को शुद्ध करने का दिन है, कर्मों की निर्जरा करने का दिन है। उस दिन उपाश्रय मे बैठकर मनुष्य व्याख्यान सुन रहा है, और इतने में एक आदमी आकर कहने लगे कि, दुकान पर ग्राहक आया है, पांच पचास हजार का माल, नहीं नहीं पांच पचास का माल खरीदनेवाला है। उस समय उसकी क्या हालत होगी ?। महाराज, चाहे कैसा भी व्याख्यान करते हों, धीरे से सेठ साहब सरक जायेंगे। दुकान जाकर अपना व्यापार कर फिर चुपचाप आकर वहीं बैठ जायेंगे। बतलाईए, इसी का नाम श्रद्धा है ? परमात्मा की स्तुतिमग्न बैठे हैं, पर कोई कहे कि, एक महमान आये हैं। फलाना काम है, अमुक है, तमुक है, उसी समय मन चंचल हो जायगा। खैर, जाने दीजिए इन बातों को। हमारे धर्मस्थानों पर कोई हमला करे, और आपका मकान बिल्कुल सामने है ! कौन ऐसा होगा ? जो कुर्बानी करके भी अपने धर्मस्थानों की रक्षा करने को तैयार होजायगा ? कोई तैयार होनेवाला नहीं। कहने लगेंगे: "क्या करें, चलती नहीं हमारी।" मैं मानता हूं कि नहीं चलती है, न चले, पर जितना हो सके, उतना तो करने को तैयार रहना चाहिए। दूसरे लोगों को देखिये। मुसलमानो को ही देखिए। मसजिद में जाइए। एक इंट भी तो हिलाइए। देखें एक गाड़ी हांकनेवाला ही क्यों न होगा, हजार काम छोडकर निमाज पडेगा। श्रद्धा इसीका नाम है। यद्यपि हमारी उसकी सारी बातें जुदी हैं।

लेकिन एक बात हम देखते हैं, वे जो कुछ मानते हैं उसपर श्रद्धा अटल रक्खेंगे। जिसको मानते हैं, उस पर दृढ रहते हैं। आज आप लोगों की श्रद्धा कैसी है ? कहते हैं नवकार मंत्र गिननेवाला दुःखी नहीं हो सकता।

नवकारमंत्र क्या फल देता है ?

शास्त्रों में तो यहां तक कहा गया है कि—

सच्चे हृदय से एक नवकार मंत्र का जाप करनेवाला संसार का सुख तो क्या ? मोक्ष तक को प्राप्त कर शकता है।

ईक्कोवि नमुक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा॥

एक नवकार मंत्र स्त्री हो, या पुरुष हो, उसको मोक्ष देनेवाला होजाता है। यह किसके लिये कहाजाता है ? आपके लिये नहीं ? लोग " क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा, रुष्टा तुष्टा

क्षणे क्षणे," पल में राजी, पल मे नाराजी, पल में काजी और पल में पाजी, घडी भर में कुछ और घडी भर में कुछ, ऐसी दशा रखनेवालों के लिये यह नहीं है। अनन्य श्रद्धा रखनेवालों के लिए है। व्रतों का लेना महज है, लेकिन श्रद्धापूर्वक-विश्वासपूर्वक उसको निभाना कठिन है। कुछ भी आफत आजाय, हम इतने कमजोर मनोबल के होते हैं कि तत्काल उसको छोड देंगे। फिसल पडेंगे। रात्रिभोजन का त्याग किया है, सब कुछ कर दिया है, पर जिस समय बाजार में थोडी देर होजाय, सूर्य अस्त होगया है, भूख लगी है। ख्याल तो आता है कि-रात्रिभोजन का त्याग है, अब रात को कैसे खाउंगा? परन्तु खानेकी इच्छा पूरी करने की तरकीब निकाली। 'अरे भाई, अभी हाथ की रेखाए दिखती हैं। जल्दी जल्दी खालू।'

जबतक मनुष्य की ऐसी मनोवृत्तिया हैं, तबतक इन व्रतों का चाहिए उतना लाभ मनुष्य को मिलने का नहीं। सम्पूर्ण सफलता उस समय मिलती है जब तमाम प्रकार से अखडतापूर्वक नियमों का पालन किया जाय। सात्विक, पवित्र और दृढ आत्मबल हो जाय, परन्तु आजकल गृहस्थों की श्रद्धा इतनी कमजोर-पोली है, कि जिसके कारण जीवनविकास का मकान गिर रहा है। सच पूछे तो लोगों में श्रद्धा ही नहीं है।

देव, गुरु, धर्म का महत्त्व

देव, गुरु, ओर धर्म, इन तीन तत्वों में सभी कुछ आजाता है। स्त्री पर, पुत्र पर श्रद्धा जरुर है, पैसे पर भी जरुर है। इज्जत पर भी श्रद्धा है। अगर श्रद्धा की न्यूनता कहीं है तो एक मात्र देव, गुरु, और धर्म पर। लेकिन श्रद्धा का यह पोलापन कितना नुकसान करता है, इसका अनुभव रोज करते हुए भी, श्रद्धा में दृढ नहीं होते।

आपको एक मकान बनाना है। उसमें पहिले इस बात का विचार करेंगे कि बगला मजबुत करना है।? कागज पत्तों का बगला नहीं कि, जो फूक लगे और फना होजाय। पहले पहल मजबूती का ख्याल रखकर तीन चीजें मजबूत करेंगे : एक तो उसकी निंव मजबूत करेंगे, ४-६ फूट गहरी उसकी निंव लगावेंगे, यदि मिट्टीवाली जमीन होगी तो उससे भी ज्यादा गहरी निंव डालेंगे। इसके बाद दीवार को मजबूत बनाएगे। दीवार मिट्टी ईंटों की, चाहे पत्थरों की, परन्तु अदर पोलापन तो नहीं रहता, उसका ख्याल रक्खेंगे। मतलब कि-दिवारें मजबूत बनाएंगे। और इसके बाद तीसरी चीज है छतकी। ऊपर के छप्पर की, ढकन की। वह भी मजबूत ही

करेंगे। ध्यान रखें कि, कहीं छत ही ढल न जाय। मतलब कि इसकी मजबूती का भी आप सतत ध्यान रखेंगे। इस प्रकार जिस मकान की ये तीनों बाते मजबूत हैं, उस मकान में रहनेवाला बेफिक्र होकर रह सकता है। यह तो हुई आप की सांसारिक बात। इसी तरह आप के जीवनयात्रा की–जीवन के विकासरूपी भवन की तीन बातें भी मजबूत हैं या नहीं? इसका भी आपको अंदाज लगा लेना चाहिए। संसार में जीव भिन्न प्रकार के हैं। जुदी २ गतियों से आये हुए हैं और भिन्न २ गतियों में जानेवाले हैं। हरेक आदमी अपने आत्मा से तो जरूर पूछ सकता है। अपने आत्मा का आवाज जरूर सुन सकता है कि सचमुच मेरी श्रद्धा इन चीजों पर कितनी है? देव, गुरु और धर्म पर। इसको आप सोच लीजिए। अगर आपका दिल यह कहता है कि, मैं तो ठगाई करता हूं, महाराज को और देव को भी ठग रहा हूं। वास्तविक श्रद्धा है ही नहीं।

गुप्त नास्तिकता

ऐसी अवस्था में जीवनविकास का महल कभी नहीं टिक सकता है। थोडी देर को, वृत्तियों को राजी कर लीजीये, लेकिन अगर आत्मा आपको साक्षी नहीं देता है इन कामों के लिये, तो समझ लीजिए कि आपमें गुप्त नास्तिकता भरी हुई है। मैंने हजारो मील की पैदल यात्रा की। गांव गांव फिरा। हजारों लाखों लोग परिचय में आये, मैंने देखा, लोग धर्मकर्म जरुर मानते हैं, और परमात्मा २ जरूर कहते हैं, लेकिन मैं देख रहा हूं कि, मोके पर परमात्मा को बिलकुल भूला ही देते हैं, ताक में रख दिया जाता है, उस समय मेरे मन में ऐसा ही विचार उठता है कि परमात्मा नहीं मानते, गुप्त नास्तिक हैं।

बाह्य नास्तिक चार्वाक वगैरह होते हैं कि, जो पाप पुण्य बंध मोक्ष निर्जरा स्वर्ग नरक आत्मा परमात्मा–आदि कुछ नहीं मानते। इन गुप्त नास्तिकों से चार्वाक अच्छे हैं; क्यों कि वे खुले नास्तिक हैं, और साफ कहते भी हैं, जब कि इन सब को मानते हुए गुप्त नास्तिक हमारे घर में पडे हैं।

ईश्वर के झूठे सोगन

इसका उदाहरण मैं पहिले दे चूका हूं। फिर भी और दे देता हूं। मान लीजिए कि–एक जैन ३–४ घंटे तक अपने भगवान को लगातार याद करता है। मंदिर में भगवान के सामने बैठ कर घंटो स्तुति करता है। और प्रवृत्ति से बता रहा

है कि, भगवान में और गुरु, धर्म में कितनी श्रद्धा है। दुनिया उसकी प्रशंसा कर रही है। उसी मनुष्य को कोर्ट मे जाना पडता है किसी के मुकदमें में साक्षी देने के लिये। उसकी साक्षी से उसका कुछ नफा नुकशान होने का नहीं, लेकिन वादी या प्रतिवादी की तरफ मे साक्षी होकर जाता है। कठहरे में खडा है। तिलक को देखकर पूछा जाता है: 'आप कौन हैं?'

'मैं जैन हू।'

'किसको मानते हैं?'

'तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी को।'

'भगवान महावीरस्वामी की सोगद खाओकि, मे इस मुकदमें में झूठ न बोलूंगा।'

नफा नुकसान कुछ होने का नहीं है, दो पक्षो में से एक पक्ष को जिताने के लिये गवाही देने आया है। मेजिस्ट्रेट सोगद खिलाता है कि, सोगद खाओ कि म झूठ नहीं बोलूंगा। मजबूरन कार्ट के नियमों के अनुसार भगवान महावीर की सोगद खाकर कहता है कि, 'इस मुकदमें में मैं झूठ नहीं बोलूंगा'। अब यह अपने आत्मा को पूछे कि, परमात्मा का सोगद खाने के बाद वह कितना सत्य बोला हैं? समझ लिजीए उसने तीर्थंकर भगवान को ताक मैं धर दिया है। ईश्वर को माननेवाले बहुत से लोंग मात्र स्वार्थसिद्धि तक मानते हैं। या दुनिया को दिखाने और उसे ठगने के लिय मानते हैं। अपने आत्मकल्याण के लिये बहुत कम लोग मानते ह। यदि आप सच्चे जैन होते या सच्चे वैष्णव होते, और आपको सची श्रद्धा ईश्वर पर होती तो अमल में तो सोगद कभी नहीं खाते। और कदाचित सोगद भी खानी पडती तो मरणान्त कष्ट आने पर भी झूठ नहीं बोलते। एकदम सच ही कहते। झूठ कभी उसकी जबान तक नहीं आसकती थी। परमात्मा पर सची श्रद्धा इसका नाम है। जबतक यह श्रद्धा नहीं आवेगी, वहा तक हम खाली कूड-कपट मे अपने देव, गुरु और धर्म तीनों को ही छल रहे हैं। हम दुनिया को दिखाने के लिये कुछ भी कर देते ह, लेकिन होता यह है कि, इन छल-प्रपंच में पडकर अशुभ कर्मों का उपार्जन कर लेते हैं। लोग सिर्फ दो पैसों के ठीकरों के लिये देव, गुरु धर्म की झूठी २ सोगद खाने को तैयार होजाते है। इनको कुर्बान करने मे कोई हिचकिचाहट नहीं करते। आज ससार में जो दावानल सुलगा हुआ है, त्राहीत्राही लोग पुकार रहे हैं, यह गुप्त नास्तिकता, धोखेबाजी का फल है। आज गुप्त नास्तिकता दुनिया में चल पडी है। सभ्यता की आड में

पैशाचिकता का तांडव नृत्य हो रहा है। उन्ही सब का बदला आज दुनिया को मिल रहा है।

मैं कहता हूं, बिल्कुल थोड़ा करें, बहुत धर्मात्मा नहीं बनेंगे तो कोई हरकत नहीं। पर जितना करें सच्चा करें। खाली समकिती होने का ढोंग करें, इसमें कुछ नहीं। सुधर्म को धर्म मानना, और सुगुरु को गुरु मानना, एवं सुदेव को देव मानना, यह मैंने कहा है, बहुत बार पहिले भी कहा है। अगर लड़का थोड़ा भी बीमार पड जाय तो आप देवी देवता की मानता मानते हैं। पीर पैगम्बर के यहां नाक रगड़ने में भी शर्म अनुभव नहीं करते। आप कर्म सिद्धांत के माननेवाले होने का दावा करते हैं। कर्म सिद्धान्त के अनुसार तो, कर्म का उदय होने से बीमारी या संकट आया है, अब किसी के बाप की भी ताकत नहीं कि, हमारे लड़के को अच्छा कर सके। किसी देव, किसी पीर, किसी पैगम्बर बिचारों की ताकत नहीं जो हमारे आयुष्य तक हमें मार सके या मरनेवाले को जिला सके। किसी की मजाल नहीं कि इस कर्म सिद्धान्त में दखल दे सके। स्वयं परमात्मा तीर्थकर देव भी इसी सत्ता के भोग बने हैं। अर्थात् उन्हें भी कर्म भोगने पडे हैं। समकितधारी आदमी देवी, देव, भवानी, पीर पैगम्बर को मानने को कभी तैयार नहीं हो सकता। स्वप्न में भी नहीं। उसका तो सदा विश्वास होता है कि कर्म के अनुसार सुख दुःख की प्राप्ति होती है। कुटुम्ब में लोग मर गये, कुछ भी हो गया तो क्या हुआ? जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन तो मरना अनिवार्य है। लेकिन धर्म पर सच्चा विश्वास करनेवाला मनुष्य कभी दूसरी तरफ लक्ष नहीं कर सकता। हमारी चंचलता, गुप्त नास्तिकता के कारण ही लोग देव, गुरु, धर्म पर अटल विश्वास रखते नहीं। अश्रद्धा और चंचलता का परिणाम यह है कि, किसीमें से भी लोग लाभ नहीं उठा सकते। आत्मिक लाभ तो उठाना स्वप्नवत हो जाता है।

समकितपूर्वक व्रत

इस लिये प्यारे सज्जनो, सब से पहिली बात यह है कि, देव गुरु धर्म पर अटल श्रद्धा रखिये। हेमचन्द्राचार्यजी के शब्दो में कहता हूं कि, आप पहिले श्रद्धा पर दृढ हो जाइए। फिर व्रत-नियमादि सब कुछ करिए। इसी लिए बारह व्रत लेनेवाले को समकितमूल बारह व्रत लेने का अधिकार है अर्थात् समकित-श्रद्धा को प्राप्त करे, बाद में १२ व्रत ले।

१२ व्रत लें लें, चाहे पाच व्रत ले ले, लेकिन लेना एक चीज है और विश्वास से उसका पालन करना दूसरी चीज है। जबतक के लिये व्रतों का सचाइ से पालन न किया जाय, तबतक आत्मकल्याण नहीं हो सकता। मचे कल्याणमात्र से पालना नहीं होता और "ले लिये है, इस लिये करना है।" अदर से और ऊपर से पोलमपोल चलती है। हम तो दुनिया को दिखलाने के लिये १२ व्रतधारी श्रावक अगर ५ व्रतधारी साधु होते है। ससार में रहनेवाला मनुष्य व्यापारी मनुष्य लाखो करोडों का व्यापार करनेवाला जितना झूठ, अनीति, बईमानी आदि करता है, उतना ही यदि पांच महाव्रतधारी साधु या बारह व्रतधारी गृहस्थ करे तो इनमें अन्तर क्या ? पाच महाव्रत और बारह अणुव्रत लेने की सार्थकता क्या ?

प्यारे भाइयो और बहनो, इसलिए मेरा कहना है कि यह मनुष्य जीवन बार २ मिलनेवाला नहीं है। ८४ लाख जीवयोनि में परिभ्रमण करते हुए हमारा यह अहोभाग्य है कि, हमें मनुष्य का जन्म मिला है, आर्य क्षेत्र मिला है, उत्तम कुल मिला हैं, पचेन्द्रिय की पटुता मिली है, बुद्धि मिली है। देव, गुरु, और धर्म का समागम मिला है। इतनी सामग्रियों के मिलते हुए भी, हम अपने आगे के लिये कुछ न करें, अपने कल्याण के लिये कुछ न करें, सिर्फ यही ससार के छल-प्रपचमें फसे रह जॉय, जो कि हमारे साथ कभी चलनेवाला नहीं, तो इसके जैसी मूर्खता दूसरी क्या हो सकती है ? । मित्रो, हम यह क्या कर रहे हैं ! । आपको रातदिन सावधान रहना चाहिए। आत्मा के कल्याण की जो भावना रखते हैं, वेही कल्याण कर सकते है। इसलिये देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धा रखना यह खास आवश्यक है। इसके बाद व्रतधारी हो सक्ते हैं। इसके लिये दो प्रकार के व्रत होते हैं। एक देशविरति और दूसरा सर्व विरति। देशविरति कहते है एक भाग को। अमुक अश-थोडा अश पालना इस का नाम है 'देशविरति'। देशविरति माने देश का यानि हिंदुस्तान का त्याग नहीं, पुत्र परिवार, कुटुम्ब आदि का त्याग नहीं, दुनियादारी के कार्यों को करते हुए, व्यापार रोजगार को करत हुए, इन सब बातों के करते हुए भी किसी न किसी अश में पापप्रवत्तियों का त्याग करना, कुछ न कुछ अशों में त्याग करें। ससार में आरभ ओछे हों, ऐसी कोशिश करना, इसका नाम है देशविरति।

आप लोग ससारी है, दुनियादारी में रहते हैं, घरबार रखते है, पुत्रपरिवार आदि का पालन-पोषण आपको करना है, इसलिए गृहस्थधर्म में रहते हुए १२ व्रतों को अगीकार करना चाहिए। इन बारह व्रतों का वर्णन मैं कलसे प्रारभ करुगा।

भाइओं और बहनों,

वारह व्रत

आज मुझे गृहस्थों के बारह व्रतों के संबंध मे कहने का है। यों तो बारह व्रतों का वर्णन शास्त्रकारोंने बहुत विस्तार से किया है, और उनमें लगते हुए दोषों से बचने के लिए १२४ अतिचार बताये हैं, परन्तु मैं यहां संक्षेपसे मूल मूल बातें बतलाऊंगा। बारह व्रतों का वर्णन सुनने से आपको पता चल जायगा कि संसार के कार्यो को करते हुए भी, मनुष्य बारह व्रतों को ले सकता है, और लिए अनुसार उसका पालन भी कर सकता हैं। बारह व्रत कोई असंभवित या अशक्य बात नहीं है। बल्कि, मैं तो यहां तक कहता हूं कि, १२-१५ वर्ष का लड़का भी बारह व्रतों को ले सकता है। बात है तो मात्र एक ख्याल रखने की, थोड़ी सावधानी रखनी चाहिए।

बारह व्रतों के लेने के पहले एक बात पक्की कर लेने की है, यह आपको स्मरणमें रही होगी। व्रतों के लेने के पहले श्रद्धा-समकित पक्की कर लेनी चाहिए, अर्थात् सुदेव, सुगुरु और सुधर्म-इन तीन चीजों पर पक्की दृढ श्रद्धा होजानी चाहिए। इस विषय में पिछले दो तीन व्याख्यानों में बहुत कुछ कहा जा चूका है। चित्त की डांवाडोल अवस्था में लिये हुए व्रतों का पालन ठीक तरहसे नहीं हो सकता। इस लिए पहले श्रद्धा पक्की करनी चाहिए। और हर समय सावधानी, उपयोग रखना चाहिए। जैन शासन में ऐसी सख्ताई नहीं है, कि 'ऐसा ही करना चाहिए', 'इतना ही लेना चाहिए।' नहीं, जितना हो सके उतना लो, लेकिन, जितना लो उतना अवश्य पालो।

प्रथम व्रत-

बारह व्रतों में सब से प्रथमव्रत है: स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत। आप इसके शब्दार्थ को समझ लें। स्थूल+पाण+अतिपात+विरमण+व्रत-इस प्रकार पांच शब्द हैं। इस का अर्थ हुआ-स्थूल रीतिसे, अर्थात् सूक्ष्मता से नहीं, प्राणों के, अतिपात यानि नाशके त्याग का व्रत लेता हूं।

संसार में जीव स्थावर और त्रस–दो प्रकार के हैं। दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक जीव हैं। इन जीवों की हिंसा नहीं करने का यह व्रत है। परन्तु संसार में, गृहस्थाश्रम में रहा हुआ मनुष्य सर्वथा हिंसा से कैसे बच सकता है? उन्हें नाना प्रकार के आरंभ–समारंभ के काम करने ही पडते है। इसी लिए गृहस्थ स्थूल व्रत लेता है। स्थूल व्रत लेने से उसको कई प्रकार की छूट मिलजाती है। अर्थात् व्रत भंग न हो, इसके लिए वह अवकाश रख लेता है। अर्थात् स्थूलप्राणातिपात–विरमण व्रत, माने मैं प्राणों के अतिपात के त्याग का व्रत लेता हू। परन्तु मेरा व्रत स्थूल दृष्टि से है, सूक्ष्मता से नहीं अर्थात् सर्वथा जीव घात का मैं त्याग नहीं करता हू। किसी अंश में त्याग करता हू।

श्रावक कौन?

मैं तो श्रावक उसे कहता हू, जो हितकारी वचनों को श्रवण करें, अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाय तो श्रद्धा, विवेक और क्रिया ये तीनों बातें जिसमें होती हैं, उसका नाम है श्रावक। कोई आपसे पूछे: "क्या आप श्रावक हैं?" श्रावकों के कुल में जन्म तो जरुर लिया है, पर रहे कोरे के कोरे। क्रिया करते हैं, विवेक है, और श्रद्धा नहीं तो फिर श्रावक कैसे? खैर। प्रथम व्रत में 'स्थूल' इस लिए कहा कि–यह व्रत अंशमें है, सर्वथा नहि, सूक्ष्मता से नहीं। अब 'प्राणो' का अतिपात कहा, 'जीवों' का नहीं कहा। इस का कारण यह कि जीव तो मरता नहीं है। हानि होती है प्राणों की। इस लिये एक प्राण की भी हानि पहुचाई जाय, तो समझलना चाहिए कि, हमें हिंसा का पाप लगा है। जीव तो कभी मरता ही नहीं। मैंने कल और परसों कहाथा। जीव कहीं भी रहे –यहां मनुष्य लोकमें रहे, चाहे नर्क में रहे, स्वर्ग में रहे, चाहे मोक्ष में रहे। जीव कभी मरता ही नहीं, लेकिन जीवों के साथ में रहे हुए १० प्राण मनुष्यों के और अन्य जीवों के साथ सब में जो प्राण हैं, उनमें किसी प्रकार का नुकसान करना–अतिपात करना–हानि पहुचाना उसका नाम हैं हिंसा।

प्राणों में अतिपात का मतलब है कि चाहे चार प्राण रखनेवाला एकेंद्रिय जीव हो, लेकिन इन चार प्राणों में से किसी भी प्राण को हानि करना, इस का नाम है हिंसा। ऐसी हिंसा के त्याग का नाम है अहिंसा।

प्राण क्या है?

अब प्राण क्या हैं? यह मुझे बतलाना है। प्राण वह हैं, जिस के आधार से यह

जीव जीव कहा जाता है, जिसके आधार से जीव की क्रिया होती रहती है। जिसके कारण संसार के अंदर जीवों का परिभ्रमण होता है।

मनुष्य में १० प्राण हैं-पांच इन्द्रिय, तीन बल-अर्थात् मनोबल, वचनबल और कार्यबल, श्वासोच्छ्वास और दशवां आयुष्य। इस तरह से १० प्राण मनुष्य के होते हैं। इन दश में से भिन्नभिन्न प्राणीयों को कम ज्यादा प्राण होते हैं। जैसे पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तकके-एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण होते हैं। शरीर, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य और चौथा काय बल होता है। अब इन चार प्राणोंमेंसे किसी भी प्राण की हानि पहुंचाइये, आपको हिंसा जरूर लग जायगी। किसी के कलेवर को किसी प्रकार की हानि पहुंचाना, तकलीफ देना उसका नाम है हिंसा।

इसी तरह बेन्द्रिय के ६ प्राण होते हैं। मूँह और वचनबल ज्यादा होता है एकेंद्रियसे।

तेन्द्रिय के सात प्राण होते हैं, उसके नाक इन्द्रिय बढती है।

चौरेन्द्रिय के ८ प्राण होते हैं, उसके आंख इन्द्रिय बढती है।

पंचेन्द्रिय के ९ भी होते हैं और १० भी दोनों तरह के होते हैं। इसमें किन्ही के मन होता है और कुछ तिर्यंच ऐसे होते हैं, जिनके मन बल प्राण नहीं होता। इस तरह वे ९ प्राणवाले ही रह जाते हैं।

इन प्राणों को हानि पहुंचाने से हिंसा लगती है। अर्थात् पांच इन्द्रियों में से किसी को हानि पहुंचायी जाय, किसी के मनमें दुःख हो, ऐसी कोई क्रिया की जाय, किसी की वाणी या शरीर को तकलीफ पहुंचायी जाय, किसी के श्वासोच्छ्वास को धक्का पहुंचाया जाय अथवा किसी की आयुष्य खत्म कर दी जाय, इन सबमें हिंसा का पाप लगता है। कोई आवश्यकता नहीं कि एक भी प्राणी को हानि पहुंचाई जाय। आप किसी मनुष्य को ऐसे शब्द कहें कि, उसके किसी भी प्राण को हानि हुई। आप कहेंगे हमने उसे मारा नहीं, चपेटा नहीं, कुछ नहीं किया, पर बुरे वचन सुनाकर आपने उसके मन प्राण को हानि पहुंचायी, यह भी हिंसा ही हुई।

पापकर्म कैसे भी है।

किसी का कोई गला दबा दे रहा है, कुदरती सांस जरुर चलरहा है, पर उसने उसके श्वासोच्छ्वास को रोक दिया। श्वासोच्छ्वास यह भी एक प्राण गिना गया है। उस के श्वासोच्छ्वास को हानि पहुंचायी। जरुर पाप का भागी हुआ। आप यह

जरूर चाहते हैं कि हम इन पापों से सर्वथा बचजाँय। एकेन्द्रिय के प्राणों को भी नुकसान पहुचाने तक का भी पाप न करें। और साथ ही साथ आप यह भी चाहते हैं कि, हम ससार का अपना कार्य भी करते रहें, और वास्तव में आपका कहना बिलकुल सच है। यह प्राणों की हिंसा का पाप तो पग २ पर तैयार है। हम साधु लोग भी इससे नहीं बच सकते। आहार करते हैं, विहार करते हैं, बोलते हैं, उठते हैं, हर क्रिया में कुछ न कुछ प्राणहानि का पाप अवश्य होता है। उससे हम बच नहीं सकते। इसी बात से परेशान होकर दशवैकालिक सूत्रमें शिष्यने भगवान से पूछा कि, हे भगवन्!

> कह चरे? कह चिट्ठे? कहमासे? कह सए?
> कह भुञ्जन्तो भासन्तो?, पाव कम्म न बन्धइ?

हे भगवन्! चलना, उठना, बैठना, सोना, खाना, पीना आदि क्रियाए हम किस ढगसे करें, कि, जिससे हमको पाप का बध न हो?। इन क्रियाओं के करने में जो प्राणहानि का पाप अनिवार्य रूप से होता है, उसमे हम कैसे बचें?

भगवान् उत्तर देते हैं —

> जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे जय सए।
> जय भुञ्जन्तो भासतो पाव कम्म न बन्धइ॥

अर्थात् खाते, पीते, सोते, बैठते आदि क्रियाए करते समय यतना रक्खो—उपयोग रक्खो, ख्याल रक्खो तो हे शिष्य, तुम्हे कोई पाप नहीं लगेगा। अर्थात् प्रत्येक क्रिया के करते हुए उपयोग—ख्याल रखना चाहिए कि जिससे कोई जीव की हानि न हो।

इसी तरह गृहस्थ के लिये भी शास्त्रकार उपाय बतलाते हैं कि, चाहे तुम खेती करो, व्यापार करो, रोजगार करो, लडाइया करो, मैदाने जग में पडो, सारे काम जो तुम चाहे सो करो, पर एक बात का ख्याल बराबर रखना कि आवश्यकता के अतिरिक्त कोई हिंसा न हो। खूब सोचने की बात है। पैसा टका लेनदेन आदि जरूरत से ज्यादा अधिक अधिक आपने किया तो यह पाप में शुमार होगा। अनिवार्यता का विचार किया जाय।

बस, सिद्धान्त इतना ही है कि, मनुष्य जीवन में सबकुछ करलो, मकान बनालो, खूब रूपया पैसा कमालो, लेकिन जरूरत से ज्यादा न रखने के सिद्धान्त को ध्यानमें रक्खो। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक किसी भी जीव के प्राणों को हानि भी नहीं

पहुंचानी चाहिए। अर्थात् अनिवार्य कार्यों को करते हुए यदि किसी भी जीव के प्राणों की हानि पहुंचेगी, तो वह गृहस्थ के लिए छूट है। यह सिद्धान्त की बात कर रहा हूं। मानव जीवन की स्वाभाविकता की बात कर रहा हूं। स्वाभाविकता की बात यह है कि, अनिवार्य कार्यों के अतिरिक्त किसी को भी तकलिफ देना हमारे लिये नाजायज है। "जिओ और जीने दो" का सिद्धान्त हमें मानना होगा। अगर हमें स्वयं को जीने का हक्क रखना है, तो जैसा हक्क हमारा है, वैसा ही संसार के सारे प्राणी मात्र का है। चाहे स्थावर हो या त्रस हो। एकेन्द्रिय हो, बेइन्द्रिय हो, कोई भी प्राणधारी हो।

सब जीव जीना चाहते है

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जउं ॥

अर्थात् सारे प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहते। हमें क्या हक्क है कि, किसी को विना किसी अनिवार्यता के हम किसी को भी हानि पहुंचाएं।

हिंदु शास्त्रों में भी कहा गया है कृष्णभगवान अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन !
सुखं वा यदि वा : दुखं स योगो परमो मतः

अगर तुम संसार में रहकर हिंसा से बचना चाहते हो, और अहिंसा का पालन तुम्हें करना है, तो पहिली बात यह है कि जैसा तुम्हारा आत्मा है वैसा दुनिया के तमाम आत्माओंको समझ लो। जैसा सुख तुम्हें प्रिय और दुक्ख अप्रिय है, इसी तरह संसार के समस्त आत्मा सुख की अभिलाषा करनेवाले हैं और दुःख उनको भी अप्रिय है। बात जब तक जीवन में—हृदय के अंतःप्रदेश में नहीं उतरेगी, वहां तक कभी हिंसा से बच नहीं सकते। दूसरों को नुकसान करनेवाला, प्राणों का नाश करनेवाला, हानि पहुंचानेवाला, ठगाई करनेवाला, दूसरों को बर्बाद करनेवाला, हरेक कार्य में विघ्न डालनेवाला वही हो सकता है, जो अपने ही आत्मा को आत्मा समझे, दूसरों के आत्मा को कोई चीज न समझे।

जिस समय ऐसी स्वार्थान्धता आजाती है, उस समय चाहे हमारे हृदय में दया भी हो, पर थोडी देर के लिये उस पर पर्दा आजाता है, और हम हिंसा कर डालते हैं। और पाप के भागी बनजाते हैं। स्वार्थ को साधने के समय में हम दया को ताक में

रखदेते हैं और फिर स्वार्थ सिद्ध होजाने पर वही दया की बातें करेंगे, ' सब जीवों को सुखी रखना चाहिये, ' एसा ढोंग करने लग जायेंगे ।

गृहस्थों की अहिंसा कहातक?

हेमचन्द्राचार्यने गृहस्थों के पालने की अहिंसा की व्याख्या सक्षेप में यों की है-

" नीरागस्त्रसजन्तूना हिंसा सकल्पतस्त्यजेत् "

निरपराधी त्रस जीवों को मारने की बुद्धि से न मारु। इसके अन्दर गृहस्थों के लिए जितनी छूट होनी चाहिए, वह सब आजाती है। मैंने गृहस्थों के लिए सवा विश्वा की अहिंसा का पालन बतलाया है वह सवा विस्वा की अहिंसा इस प्रकार होती है।

सपूर्ण अहिंसा को बीस विस्वा का नाम दिया। उसको कम करते करते सवा विस्वाकी अहिंसा गृहस्थ को इस प्रकार पालने की है:—

ससार में दो प्रकार के जीव बताए त्रस और स्थावर। इन दो विभागो में ससार के तमाम प्राणियों का समावेश हो जाता है। कोई प्राणी इससे बाहर नहीं। २० विस्वाकी दया पालन करनेवाला मनुष्य तमाम प्रकार के जीवों की मन, वचन, काया द्वारा हिंसा से बचे। जरा मात्र भी किसी जीव के प्राणों का हानि न पहुचाए, तो समझ लेना चाहिए कि सपूर्ण अहिंसा का पालन करनेवाला है। लेकिन ससारी जीवों के लिये यह नहीं हो सकता। उन्हें हजारों प्रकार के काम करने पड़ते हैं, ऐसी दशामें क्या करे?

इसके लिये सुनिये: त्रस और स्थावर दो प्रकार के जीव हैं। त्रस के १० नबर और स्थावर के १० नबर। कुल २० विस्वा। उनमें से गृहस्थों के लिये स्थावर-ऐकेन्द्रिय की छूट जरुरी है, क्यों कि, गृहस्थाश्रममें पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय और वनस्पतिकाय-इन जीवों का आरभ अनिवार्य है। इसके सिवाय गृहस्थों का काम नहीं चलसकता। इस लिये इन स्थावर जीवों की छूट हुई। अर्थात् दस कम हुए। दस रहे। हालां कि—स्थावर जीवों की छूट होते हुए भी बिना प्रयोजन—निरर्थक उन जीवों को तकलीफ देने का कोई हक नहीं। उपयोग अवश्य रक्खे, परन्तु अनिवार्य कार्य में छूट दी गयी, अब गृहस्थ इस तरह १० भेदों से बच गये।

अब आई त्रस काय की हिंसा की बात।

बेशक, इस से बचना जरुरी है। लेकिन संसार में ऐसा भी होता है कि गृहस्थों को मकान बनाना पडता है। कुआं, खेती आदि कई मोटे २ काम हैं, इन में उपयोग रखते हुए भी हिंसा होजाना संभवित है, इसलिए दो भेद कर दिये: एक 'संकल्प' और दूसरी 'आरम्भिक'। दश भेद थे जिसमें से संकल्पी और आरम्भी। संसारी काम के लिये आरम्भ करना है तो संकल्पपूर्वक किसी जीव को नहीं मारना, इतना तो करोगे? गुरुने पूछा। अर्थात् 'आरंभ की छूट रखकर संकल्पकी प्रतिज्ञा हुई।' इस लिए पांच रहे।

अब एक बात और है, कोई राजा है, कहता है: कोई बदमाश हमारी बहन बेटियों पर हमला करे, हमारी जमीन जायदाद या मिल्कियत पर हमला करे, हमारी जिंदगी पर हाथ उठावे आदि कोई करे तो क्या हम चुपचाप बैठे रहें? क्या उस आततायी को इरादापूर्वक संकल्पपूर्वक मारने की इच्छा न करें? हमारे घर में चोर आजाय तो क्या हम उसे सजा न दे?

ठीक है इतना करो। अपराधी को चोट पहुंचाना, सजा देना मारना इस लिये तुम्हें छूट दे देते हैं, पर निरपराधी को नहिं मारो। अर्थात् 'संकल्प' के पांच में से भी आधे गये, ढाई रहे। अब अपराधी की छूट होते हुए भी, कम से कम भगवान कहते हैं 'अपेक्षा' का भी विचार कर लेना। इस में भी सापेक्ष और निरपेक्ष दो भेद किये हैं। अपेक्षा देखो, यह दंड देने योग्य है या नहीं? इस लिए आधा-सवा विस्वा बाद होनेसे सवा बिस्वा दया रही।

अपराधी कौन?

मान लीजिये, एक गुनहगार को सजादेना जरुरी है लेकिन गुनहगार कैसा है! कौनसा गुनहा किया है? साधारणतया आप बैठे हैं या किसी कार्य में बैठे हे। इस बीच खटमल ने आपको काट दिया। इसका नतीजा यह नहीं कि उसको इसके लिये फांसी की सजा दी जाय। अपेक्षा का विचार करलो। एक छोटा गुनहगार कपडा चुराकर लेगया और एक गुनहगार भयंकर अत्याचार और दुराचार कर रहा है। इन दोनों की सजा में अपेक्षा का विचार करलो। किस अपेक्षा से कितनी हिंसा जरुरी है। किसके कैसा दंड देना है। अपेक्षा का विचार करके सजा दो, वरन हिंसा से बच नहीं सकते।

छोटी सी बात के लिये हमारा कोई गुनहगार नहीं है। जिसको हम गुनहगार समझ रहे है। सांप, बिच्छु, खटमल आदि। इनके लिये एक व्याख्यान में पहिले भी

आदि। इनके लिये एक व्याख्यान में पहिले भी कर चुका हू। इनको अपना गुनहगार समझ कर हम इनका खून कर देते हैं। खटमलने जरासा खून चूस लिया। एक विचारे मच्छरने जरासा काट लिया। हम इनको मार डालेंगे? । एक साप या बिच्छू सीधा, मार्ग रास्ते में चला आरहा है, लोग इसको गुनहगार समझकर मार डालते हैं। क्या ऐसा करने का कोई आवश्यकता है? ऐसा नहीं कर सकते। आप अपेक्षा का विचार करें, ये आपके गुनहगार नहीं हैं। इसी तरह ससार म लोग बहुत ही निरर्थक हिंसा करते हैं। और व्यर्थ पाप के भागी बनते हैं। यह हिंसा बिल्कुल नाजायज है। यह तो लोग सिर्फ अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए करते हैं, स्वार्थ के लिये हिंसा करना बडा भारी पाप है।

आप सापेक्ष और निरपेक्ष का विचार करें। इस प्रकार सवा और निकालने से सवा विस्वा की अहिंसा गृहस्थ के लिए रहती है, गृहस्थाश्रम में रहते हुए आपको नाना प्रकार की छूटें देदी गई हैं।

अहिंसा, गृहस्थ के लिए कहातक पालन करने की है, मैंने समझा दिया है। मन, वचन, काया से किसी जीव के एक भी प्राण को तकलीफ न दीजाय, उसका नाम है सर्वोत्कृष्ट अहिंसा। जिसको २० विस्वाकी दया कहते हैं। तकलीफ न दीजाय, इतना ही नहीं, दिलायी भी न जाय, और देनेवाले को अच्छा भी न माना जाय। यह साधुओं के लिए है। गृहस्थों के लिए इस प्रकार सर्वथा पालन करना अशक्य ही नहीं, असभवित है। इस लिए सवा विस्वाका पालन तो अवश्य करना ही चाहिए। इस प्रकार २० विस्वा की दया में से अगर मनुष्य बचाते २ ओछे से ओछी हिंसा करे, तो भी सवा विस्वा की दया से अपना काम चला सकता है। लेकिन यह मत समझना की सवा विस्वा की दया बतलायी है, उससे ज्यादा दया पालन नहीं करना। मनुष्य को चाहिए कि जितनी हो सके इतनी ज्यादा से ज्यादा हिंसा से बचने की कोशिश की जाय। सवा विस्वा उसके लिये है, जो किसी प्रकार से नहीं बचसकता है। जिसको अनिवार्य कहना चाहिये। बाकी तो मनुष्य चाहे इतनी दया का पालन कर सकता है। जितना उपयोग और ख्याल मनुष्य हिंसा से बचने का रक्खे, इतना ही बच सकता है

मित्रो, हिंसा से बचने का एक ही उपाय है। वह है उपयोग। क्यों कि, काम कुछ भी करें। परन्तु पहले यह विचार करें कि, यदि थोडी हिंसावाले कार्य से

निर्वाह होता है, तो अधिक हिंसावाला धंधा क्यों करुं ? निर्दोष धंधे में-कम हिंसा के धंधो से पेट भरने का साधन मिल सकता है, तो क्यों अधिक हिंसावाला धंधा करें ?

पापों की स्पर्धा !

परन्तु आज तो इस घोर पापभरे जमाने में—इस घोर जडवाद के समय मे पापों की भी स्पर्धा हो रही है कि एक मनुष्य अमुक हद तक पाप करता है, तो उससे ज्यादा पाप मैं कैसे करुं ? गृहस्थ धर्म में सब कुछ किया जासकता है। लेकिन विना उपयोग विना आवश्यकताओं के लिये भी मैं नहीं समझता कि, आज के हमारे बहुत से पागल बन के लोलुपी बंधु क्यों निरर्थक पाप करते हैं ? आपको जीवननिर्वाह के लिये पैसे जरुर चाहिए. यह मैं मानता हूं। लेकिन अगर हमारे जीवननिर्वाह के योग्य पैसा मिल जाता है, व्यवहार ठीक रीति से चल जाता है, सबकुछ होता है, फिर क्यों ज्यादा पापों का ढेर कर के पैसा बढाने की लालसा रक्खी जाती है ? अनाज का धंधा करनेवाले और कपडे का धंधा करनेवाले लोगों को मैने देखा है और बहुत कुछ सुना है, जिस समय भूख से लाखों आदमी मर रहे हैं, और अनाज सड़ रहा है, लाखों गरीब विचारे नंगे फिरते हैं, लाखो पवित्र सती अबलाएं कपडे के अभाव में अपने शरीर को पूरा ढक भी नहीं सकती। जाड़े सर्दी में ठिठुर २ देश लाखों होनहार लाल मोत के गाल में चले जाते हैं। उस समय वे पापी निष्ठुर पैसे के लोलुपी व्यापारी बंधु उन नाज के ढेरों को और कपडों के ढेरों को मंहगे भाव से बेचते और पैसा कमाने की लालच में छिपाकर चुप पडे रहते हैं। जब अनाज सड जाता है, पडा २ उनके कोठों में, उस समय वे जीवदया पालन करने का ढोंग करनेवाले, ढोंगी गृहस्थ उन जीवों की क्या दशा करते हैं ?। आप व्यापारी लोगों को मेरे से कहीं बहुत ज्यादा मालूम है। किस प्रकार वे जीवों की हिंसा करते हैं, और घोरातिघोर पाप करते हैं। मुझे उस समय एक ही विचार आता है कि यह किसलिये होता है ? उन लोगों के पास लाखों रुपिया है, अनेक प्रकार की परमात्मा की कृपा से सहूलियतें है, और साधन हैं, अनेक प्रकार के धर्म ध्यान के भी साधन हैं। परमात्मा ने बुद्धि भी दी है। संगति भी अच्छी मिलती है। दो पैसे का दान भी करसकते हैं। देशका भला बुरा सब कुछ भी समझते हैं। गरीबो के दुःखदर्द से यह नहिं कि जानकार न हों, उनके दुखों से परिचित भी हैं, फिर भी यह हिंसा और पापाचार क्यों ? यह राक्षसी कृत्य क्यों ? किस लिये ?

शास्त्रकार बिल्कुल निषेध करते हैं, इतनी घोर हिंसा करके धर्म करना। दान करना, दानी होने का ढोंग करना, कोई हक नहीं। ऐसे धर्म का करना हमारे लिये कोई जरूरी नहीं। ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। जिस में अनंत मनुष्यक जीवों की हिंसा करके पैसा पैदा करलें, और आखिरकार मेरे जैसे एक साधु के उपदेश से एक दो हजार दान करदें, फिर कहलावें कि हम कैसे दानी हैं ?। इसके लिये शास्त्रकार निषेध करते हैं।

हिंसाजनक अति व्यापार

एक कवि कहता है, जो मनुष्य अनीति से पैसा पैदा करता है, हिंसा झूठ चोरी से धन जोडता है, नाना प्रकार के आरम्भ समारम्भ को बढाता है, उसको तुम क्यों सता रहे हैं ? उसको तो किरतार परमेश्वर स्वयं ही मार रहा है। उसके आत्मा पर कर्मों का ऐसा थर लगगया है कि बिचारा घोर पापों के कारण से किस नरक में जायगा—यह कुछ भी पता नहीं।

सज्जनों ! शास्त्रकार जिस बात की छूट देते हैं, वह छूट लेने का हमें अधिकार नहीं। इसमें खूब ख्याल रखने की जरुरत है। ओछे से ओछे व्रत नियम क्यों लिये जाते हैं ? बतलाता हूं। व्रत या नियम यह है कि, हम संसार में भरी हुई हिंसा में से जितनी ओछी से ओछी और जितने कम से कम परिग्रह में हम अपना जीवननिर्वाह करते हुए अपने ध्येय को प्राप्त करें। इतने छोटे २ व्रत नियम लेते हुए भी इनमें इतना भंग लगजाता है कि, जिसकी हद नहीं। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि—ओछी से ओछी हिंसा से अपना काम करें।

अनिवार्य हिंसा-

एकेन्द्रिय जीव की हिंसा भी हिंसा ही है। यह आप न समझें कि अनाज हम खाते हैं, यह हमारा हक है। हक नहीं है, हक की दृष्टि से हमें किसी भी जीव को मारना और खाना कोई हक नहीं, कोई न्याय नहीं और पाप की दृष्टि से भी। लेकिन, चूंकि हमारा काम कम से कम इस चीज के बिना नहीं चलता है। 'अजबवपरिहार' जिस को शास्त्रकार कहते हैं, इससे हमें छूट दी गयी है। सिवाय इसके और कोई छूट नहीं। जिस के बिना हमारा काम कतई नहीं चल सकता,

उसके लिये हमारी लाचारी है। उससे अधिक हिंसा करने का हमारा हक नहीं, जितनी हमें छूट हैं, उसके आगे हमारा कोई हक नहीं और छूट भी नहीं। ठीक व्याख्या इतनी ही है। आप उतनी ही हिंसा का उपयोग कर सकते हैं जिसके बिना आप का काम नहीं चल सकता है। साधु क्या करते हैं? विहार करते हैं, आहार करते हैं, निहार करते हैं, लेकिन बिना प्रयोजन वे भी नहीं कर सकते हैं। जितने से उनका काम चलता है, उतना ही कर सकते है। इन बातों का उल्लंघन कर के आगे नहीं जाना चाहिए।

भाइओ और बहनो,

कल मैंने गृहस्थों के प्रथम व्रत " स्थूलप्राणातिपात विरमणव्रत " की व्याख्या करते हुए अन्त में यह दिखलाया था कि गृहस्थ को इतनी ही हिंसा का उपयोग करना चाहिए, जिसके सिवाय काम नहीं चलता। परन्तु यह भी नहीं होना चाहिए कि बिना प्रयोजन, मात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, अपनी जिह्वेन्द्रिय की लालच के लिए छूट का दुरुपयोग किया जाय। दुरुपयोग करते करते मनुष्य मर्यादा चुक जाता है, और झूठा बचाव करने को भी तैयार हो जाता है।

हस्तीतापसों की दलील

आर्द्रकुमारजी दीक्षा लेकर अपने आप साधु होकर भगवान के पास जारहे थे। उन्हें हस्तितापसों का आश्रम मिलता है। वे लोग क्या करते थे?। एक कोई बडा हाथी मार लेते, और उस एक जानवर के मांस से अपना जीवननिर्वाह करते थे। आर्द्रकुमार चले जारहे हैं। हस्तितापस आश्रम में जाते हैं। वहा वादविवाद चलता है। तापस लोग पशुवध में अपना बचाव करते हुए कहते हैं कि–"तुम भी तो कितने ही प्राणियों की हिंसा करते हो, हम तो एक ही प्राणी की हिंसा करते है। तुम्हारे अनाज खाने में कितने जीव होते हैं?। इतने जीवों को मारकर अपने पेट को भरते हो, और हम एक मात्र हाथी के एक जीव को मार कर कितने ही मनुष्यों का जीवननिर्वाह कर लेते हें। तुम्हारी हिंसा से हमारी हिंसा ओछी है" इस तरह से वे हस्तितापस अपना बचाव करते हैं।

आर्द्रकुमार उत्तर देते हैं कि, " हाथी के प्राण और अनाज के प्राणों में कितना अंतर है? हाथी पंचेन्द्रिय है। पंचेन्द्रिय की हिंसा घोर–अतिघोर हिंसा गिनी जाती है। क्यों कि–उन में ९ और १० प्राण हैं। और अनाज के एकेन्द्रिय में मात्र चार प्राण हैं। इस लिए पंचेन्द्रिय की घोर हिंसा कर के–क्रूरतापूर्वक अहिंसा कर के तुम अपना निर्वाह करते हो। और अनाज एकेन्द्रिय जीव है। पंचेन्द्रिय के प्राणघात की

तुलना में इसका पाप बहुत नगण्य है। एकेन्द्रिय जीव की हिंसा से जब हमारा काम चल सकता है, तो हमको दोइन्द्रिय जीवों की हिंसा करने की जरूरत नहीं। दोइन्द्रिय से काम चल सकता है, तो तेइन्द्रिय की हिंसा करने की जरूरत नहीं, तेइन्द्रिय से काम चल सकता है, तो चौरेन्द्रिय की हिंसा करने का हक्क नहीं, और चौरेन्द्रिय से काम चल सकता है, तो पंचेन्द्रिय की हिंसा करने की कोई जरूरत नहीं।

क्यों? एकेन्द्रिय जीवों ने ऐसे घर में जन्म लिया है कि, जहां मात्र शरीर और ४ प्राण ही होते हैं। बेन्द्रिय के ६ प्राण और तेन्द्रिय के ७, चोरिन्द्रिय के ८, असंज्ञी (बिना मनवाले) पंचेन्द्रिय के ९ और संज्ञी (मनवाले) पंचेन्द्रिय के १० प्राण होते हैं। इन प्राणों की न्यूनाधिकता, वह उनकी पूण्य प्रकृति के कारण से है। ऐसी हालत में हमें ध्यान रखना चहिये और विचार करना चाहिए कि हमारा काम कैसे चलेगा? हमको अपने निर्वाहके लिये एकेन्द्रिय की हिंसा हमारे लिये अशक्य परिहार है। लेकिन एकेन्द्रिय जीव को काममें लेते हुए भी निर्दय हृदय तो नहीं बनना चाहिये। यदि निर्दयतापूर्वक जो हिंसा एकेन्द्रिय की भी की जाती है, तो यह पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा से कुछ ओछी नहीं होती।

हिंसा का परिणाम हिंसा की हमारी मनोवृतियों पर निर्भर है। अगर हमारी मनोवृतियों में क्रूरता भरी पडी है, और "हमारा तो धर्म ही वनस्पति फल फूल अनाज आदि खाने का है" ऐसा समझ कर क्रूरतापूर्वक इन एकेन्द्रिय जीवों की भी हिंसा की जाती है, तीव्रता और आसक्तिपूर्वक जिह्वेन्द्रिय की लालच से, तो वह और पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा-इन दोनों प्रकार की हिंसा में कोई अंतर नहीं, क्यों कि हमारी मनोवृत्तियां हिंसा में भरपूर होती हैं।"

इसी तरह हस्ती तापसों को उपदेश से समझा कर उनको, वहां से आर्द्रकुमार अपने साथ ले जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि-हमें शास्त्रकारों के कथन का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

मांस मछली का व्यापार

घोर हिंसा का व्यापार करनेवाले, और यहां तक कि, मांस और मच्छीयों का व्यापार करनेवाले नामधारी मानवी अगर यह समझ ले कि, यह तो हमारे गृहस्थाश्रम के लिये छूट दे दी गयी है, तो यह घोर से घोर निध्वंस परिणामी पापी है।

मैंने ऐसे जैनों को देखा है, जो विलायत मे आनेवाले बकरी, गाय, मछली आदि के मास के पेक डिब्बो का व्यापार करते हैं। देखिये, जैनी कहलाते हुए, अहिंसा धर्म का दावा करते हुए इस छोटे से पापी पेट के लिए ऐसा धधा करनेवालों की मनोवृत्तियाँ अहिंसक कही जा सकती है क्या ? ऐसे धधे से उत्पन्न पैसों की रोटीयाँ बनाकर व खायें, उनके बालबच्चों को खिलाय, और साधुओ को भी बहरावें। बतलाइये यह कौनसा पैसा है ? कितना नीच धधा है ? क्या शास्त्रकार आपको इसके लिये छूट देते हैं ? मेरे प्यारे भाईयो, मैं बार २ कह रहा हू, कि-शास्त्रकारों के कथन का दुरुपयोग मत करो।

हिंदुस्थानमें मच्छलीया का व्यापार करनेवाले तालावों जाकर में टोकरों में उन्हें भर लाते हैं और बेचते हैं। विलायती डिब्बों का व्यापार करनेवाले सुन्दरता स्वच्छता और चमकदार पेकिंग में फेशन की चमक में पड कर वह व्यापार करते हैं। एक तरफ तो हम इस मच्छीमारों को नालायक और कसाई ठहराते हैं, और दूसरी तरफ आजकल की फेशन में लगे चमकदार लेबलों में बद डिब्बों का व्यापार करके पापी पेट को भरें, यह कहकर कि, हम गृहस्थों को छूट देदी गयी है, कितने दुःख और शर्म की बात है।

यही मच्छीमार मच्छलीयों का व्यापार करत हुए भी अपने दिलों में यह समझते है कि, हम ऐसे कुल में जन्मे है कि, हमें मजबुरीसे यह काम करना पडता है। हमें ऐसा करना नहीं चाहिए, हमें धिक्कार है। जब दूसरी तरफ से उच्चकुलीन कहलानेवाले डिब्बों का व्यापार करते हुए कहते है " हम गृहस्थों को छूट है।" इन दोनों में कौन अच्छा है ? । इसको आपही सोच लें।

क्या हमारे जीवन के निर्वाह के लिये ससार में कोई और धधा नहीं है ? सच बात तो यह है कि यूरोपने हमारे देश को इसी प्रकार भ्रष्ट कर दिया है।

नतीजा क्या आता है ? । इन जीवों की घोर हिंसा करके किसीने कदाचित मान लीजिये थोडासा पैसा पैदा भी कर लिया, लक्षाधिपति और करोडाधिपति भी हो गये। फिर भी आखिरकार क्या होने का है ? अत में तो इसे छोडकर जानाही है। थोडी सी जिंदगी के लिये इतना घोर पाप करके क्यों अपने आत्मा को बिगाडते हैं ? ऐसा धधा कर के आपका जीवननिर्वाह उचित रीति से होसके, और जिसमें कम से पाप और

आरम्भ हो। यह आपके आत्मा को भी शांति देगा। निर्दोष धंधे बहुत हैं। यह पैसे का लालच छोडे। यह पापी पैसे न चाहे सो व्यापार करवा देता है। धर्म से भ्रष्ट, आत्मा से पतित, आम जनता की दृष्टि में पतित और घृणित यह पैसा बना देता है। ऐसे धंधों से दूर रहना यह गृहस्थों का धर्म है, गृहस्थ के प्रथम अणुव्रत में ऐसी छूट नहीं है, जिससे मनुष्य निर्ध्वंसपरिणामी-निर्दय बने।

यहां पर जैन धर्म पर एक बडा भारी आक्षेप लगाया जारहा है, मैं इसका भी खुलासा यहां कर देना चाहता हूं।

अहिंसा कमजोरी का लक्षण है?

आक्षेप है कि, "जैन धर्म की अहिंसा ने और दया ने देश को कमजोर बना डाला है। हमारे राजपाट को भूला दिया है। हम इतने हतवीर्य बनगये हैं कि, हम अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को भी लेने की हिम्मत नहीं कर पाते"। आदि २।

मैं कहता हूं यह बिलकुल झूठा आक्षेप है। ऐसा आक्षेप करनेवाले जैन धर्म के सिद्धांतों को कतई नहीं समझते हैं। जैनधर्म के एक २० विस्वा और सवा विस्वा के सिद्धांत को समझनेवाला साधारण से साधारण बुद्धिवाला भी यह कभी कहने का साहस नहीं कर सकता कि जैनधर्म कायर बना सकता है। ओर जैनी कुछ नहीं कर सकता। कई वर्षों की बात है: 'मार्डन रिव्यू' में लाला लाजपतरायजी का एक लेख आया था। उस में आक्षेप किया गया था कि "जैन धर्म की दयाने हमारी जाति को बिलकुल हतवीर्य बना दिया है।" इसका जवाब महात्मा गांधीजीने दिया था। उन्होंने बताया था कि-"दया यह कभी भी कमजोर नहीं बना सकती। पहिले दया तो वही रख सकता है, जो बहादुर है, वीर्यवान है, शक्तिशाली है, दूसरे से कभी दया नहीं रखी जा सकती। दूसरों को तकलीफ देने की इच्छा वही कर सकता है, जो क्रोधी है, कमजोर है। जिनके जिगर बहादुर है, जबर्दस्त है, दया-क्षमा को पालन करनेवाला है, वह कभी किसी को दुःख नहीं दे सकता। यह तो क्षमा का धर्म है कि हमारे गुनहगार को भी माफी दे, क्षमा कर देना कितनी बहादुरी का काम है।"

गुस्सा-तामसिकता कौन करता है? जिस में कमजोरी होती है।

शेर इसलिये हाथी को मारता है कि उसमे तामसिकता है। हाथी अगर उतनी तामसी वृत्ति को अपनाए तो एक नहीं चार चार शेरों को अपनी सुंढ में लेकर टुकडे कर

डाल सकता है। इतनी ताकत हाथी में है। लेकिन हाथी में जो ताकत है, वह क्षमा के साथ है। प्रबलता है। शेर में यह क्षमा नहीं है, गुस्सा है, क्रूरता है जो कि उसकी कमजोरी का लक्षण है। इसी कारण से वह एकदम आक्रमण करदेता है।

वह मनुष्य, जिसमें कमजोरी होती है, जो तामसिक वृत्तिवाला है, दिल में रात-दिन क्रोध रखता है, वही दूसरों का नुकसान कर सकता है, दूसरा नहीं। इसलिये कहता हूं कि, जहां दया हमारे कल्याण का लक्षण है, वहां हमारे क्षमा और पुरुषार्थ का भी लक्षण है।

बेशक, दया करनेवाला मनुष्य जितना पुरुषार्थ के साथ में संसार के कार्य कर सकता है, उतना ही अपने आत्मा का भी कल्याण कर सकता है।

जो कर्म में शूरवीर है, वह धर्म में भी शूरवीर होता है। " जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा "। जैन धर्म का पालन करते हुए, दूसरे धर्मों का पालन करते हुए, पहिले व्रत का पालन करते हुए, स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत का पालन करते हुए गृहस्थ युद्ध में जा सकता है, हजारों लाखों आततायीयों को मार सकता है, कोई शास्त्रकार इससे इन्कार नहीं करता।

अनिवार्य संयोग।

पर मात्र एक ही बात का ध्यान रखना है। हमारी आवश्यकता का उपयोग रखना चाहिये। अनिवार्यता का बराबर ध्यान रखकर इस कार्य को करना चाहिये। सापराधी और निरपराधी का विचार होना चाहिये। अगर इन सब बातों को ध्यानमें रखते हुए, कोई अनिवार्य परिस्थिति में हथियार भी उठाले तो यह उसका धर्म होजाता है। इस से उसके व्रतमें कोई बाधा नहीं आती। वह कभी गृहस्थ धर्म से च्युत नहीं कहला सकता। अ गर अनिवार्य परिस्थिति में भी वह हथियार उठाने से दूर रहता हो और उसके इस कार्य से देश, जाति और मानव की हानि होती हो, तो वह धर्म से च्युत हो गया है, ऐसा समझना चाहिये। वह दया का पालन करनेवाला क्षमा का धारक गृहस्थ कहलाने से वंचित होता है। आज वर्तमान में चलनेवाले महान् विनाशक युद्ध के लिये मैं कोई नहीं कहरहा हूं। यह तो दो पूंजीवादी राष्ट्रों का युद्ध है। दुनिया की पिछड़ी और निरपराध जातियों को पराधीनता के भयङ्कर मोहपाश में बांधे रखने की

भयानक प्रतिस्पर्द्धा के भयानक हथकंडे है। यह युद्ध युद्ध ही नहीं है। युद्ध वह है जो हमारा देश, हमारी मिलकत, हमारी बहन बेटियां आदि के ऊपर कोई हमला करे, उसका सामना किया जाय। निर्दोष गांव के गांव जलादेना यह क्या कोई युद्ध है? युद्धमें भी नीति, प्रामाणिकता होनी चाहिए। देश को विदेशी आततताईयों और अत्याचारिओं की पराधीनता के पाश से छुडाने में अगर किसी समय हथियार अनिवार्य हो जाय, तो वैसी हालत में हथियार उठाने से भी जैनधर्म कभी किसी को नहीं रोकता, बशर्ते कि गृहस्थने अपने व्रत लेने के समय उस प्रकार की छूट रक्खी हो। बचाव करना यह गृहस्थ का अनिवार्य धर्म है। जैनधर्म की २० विस्वा में से सवा विश्वा दया का यही अर्थ है। भारतवर्ष के जैन इतिहास में कई ऐसे महाराजा और सेनाधिपति जैन हो गये हैं, समय २ पर इसी अनिवार्य परिस्थिति में उन्होंने आततायियों के विरुद्ध हथियार उठाये हैं, बडी २ लडाईयों लडी हैं। जन्मसिद्ध हकों के नामपर जन्मजात नागरिकता के न्याय के नाम पर ऐसा अगर वे नहीं करते तो, अपने मानवधर्म से च्यूत होते। राजधर्म से च्यूत होते। जैनधर्म मानवधर्म है। मानवता प्रथम है, गृहस्थधर्म का यह आदेश है।

जैन राजाओं के युद्ध-

भरत चक्रवर्ती, चेडा राजा आदि ने भी युद्ध किये। भरतने तो भगवान ऋषभदेव के पुत्र होते हुए भी ६० हजार वर्ष तक अनेकों युद्ध किये। अपनी ऋद्धि समृद्धि और देश को बचाने के लिये। लेकिन इतनी मानव हिंसा करते हुए भी भरत अपने मनमें समझते थे कि, मैं तो मात्र अपना कर्तव्य बजा रहा हुं। इसके साथ मेरा निजी कोई स्वार्थ संबंध नहीं और अपने जीवन के अंत में तो 'अरीसा' भवन में अनित्यता की भावना करते हुए केवल ज्ञान को प्राप्त करलेते हैं। जन्म मृत्यु के दुःखों से विराम पालेते हैं।

चेडा राजा ते हक के नाम पर, न्याय के नाम पर जब देखा कि शांति के सब प्रयत्न निष्फल होचूके हैं, अंतिम युद्ध करना अनिवार्य हो चुका है, इसके बिना नाम की रक्षा होनी कठीन है, तो ९ मल्ल और ९ लच्छवी राजाओं को युद्ध में सहायता देने की प्रार्थना की। सब राजा जैन थे। न्याय की रक्षा के नाम पर सबने युद्ध में भाग लिया। कइयों के उपवास थे, व्रत थे। १२ व्रतधारी श्रावक थे, पर युद्ध से मुंह नहीं मोडा। वहीं मरे और युद्ध में काम आए। इस तरह राजा कुमारपालने भी कई युद्ध किये।

क्या इन लडाइयो में नुकसान नहीं होता था ? । जरुर होता था । प्राणिओ–लाखो प्राणिओं की हत्या होती थी, मनुष्य के खून होते थे । यह सारी बाते होते हुए भी एक गृहस्थ अपने धर्म से अलग नहीं हो सकता । बेशक, युद्ध करना, हिंसा करना, यह धर्म नहीं हे, परन्तु यहा कहने का तात्पर्य यह कि समय पर गृहस्थों को रक्षा के लिये ऐसा करना पडता है, क्योंकि वह गृहस्थ ह और गृहस्थों को ऐसे अनिवार्य प्रसगो में ऐसा करनेकी छूट है ।

हा, साधुओं के लिये अलग धर्म है । वे सर्वांश में अहिंसा का पालन करनेवाले हैं, उनका दर्जा उच्च कोटि का है । उनकी दया २० विस्वा की है । वे एमे युद्धों में भाग लेना तो दूर की बात, मन से चिंतन भी नहीं कर सकते । यह ऊची बात है, जो कि सर्वविरति साधु के लिये ही है । गृहस्थों का धर्म जुदा है । तभी हो उनकी दया सवा विस्वा की है । और उसे शास्त्रकारोंने ' देशविरति ' के नाम से पुकारा है । यह चीज नहीं समजनेवाले ही, जैनधर्म पर और दयाधर्म पर ऐसे कायरता के आक्षेप कर सक्ते है । अन्यथा कोई नहीं ।

महावीर प्रभु के दश श्रावक–

भगवान महावीर के दस श्रावकों के चरित्रों को पढें । उनके पास ५००–५०० हल थे । चालीस चालीस हजार गौंएं थीं । इतना बडा आरम्भ समारम्भ करने के कारण क्या वे जैनधर्म से और श्रावकधर्म से पतित हो गये थे ? । मित्रो, यह कहना बिलकुल गलत है ।

इतना सब होते हुए भी, इतना व्यापार रोजगार धधा खेतीवाडी वगैरह करते हुए भी, ये भगवान के श्रावक ही नहीं, शास्त्रों में हवाला आता है कि वे भगवान के शुद्ध श्रावक थे । आगेवान प्रधान श्रावक थे और शास्त्रों में जहा भी वर्णन आया, इन्ही दश श्रावकों का वर्णन आया, बल्कि इन श्रावकों के चरित्रों का जुदा सूत्र ही बना, जिसका नाम " उवासगदसाओ " हैं ।

बात ' अहिंसा ' की चल रही हैं, इसलिए एक और बात भी स्पष्ट करदेना उचित समझता हू ।

दु खमुक्त करने के लिए जीव को मारने की मूर्खता–

आजकल एक ऐसा भी सिद्धात चल पडा है कि, " अगर कोई जानवर बीमार है, और घोर वेदना पा रहा है, तो उसको शूट करके या जहर देकर मारदेना चाहिये ।"

कितना वाहियात सिद्धांत है ? । जिस प्रकार हमें जीने का हक है, वैसा ही दूसरे को भी है । बेशक, यह ठीक है कि, उसको वेदना बहुत हो रही है, और हम यह समजते हैं कि वह विचारा जीव कैसे सहन करता होगा ? परन्तु हमको इसका क्या ज्ञान है कि यहां से मरने के बाद वह सुखी हो जायगा ? । कोई ज्ञान नहीं, न कोई प्रमाण ही हमारे पास है । दूसरी बात आप अस्पताल में जाइए, कोई मनुष्य या पशु आपको ऐसा मिलेगा कि जिसके शरीर से खून चूरहा है, विष बह रहा है, महादुःखी है, आपसे देखातक नहीं जाता । परन्तु वह भी यही कहेगा कि "डाक्टर साहबको बुलाइये, कुछ पैसे खर्च करिये । मेरे को किसी तरह बचाईये"। मतलब कि-हरेक जीव, चाहे कैसी भी वेदना भोगता हो, जीनेको ही चाहता है, मरने को नहीं चाहता । और मानलीजिए कि-वेदनासे परेशान होकर क्षणभरके लिए मरनेकी इच्छा भी करे, तो भी हमारा क्या हक है कि हम उसे मारें । और मार करके हम उसको सुखमें भेजते हैं, यह कहने का भी हमारे पास क्या साधन है ? भयंकर से भयंकर-इस संसार का दुःख नरक के दुःखों के आगे कोई चीज नहीं । आगे मरकर हम किस गति में आएगें उसे सोचते हैं ? । इसका भी पता नहीं । जब हमको यह पता नहीं, तो फिर उसको मारने का क्या हक है ? ।

तीसरी बात यह है कि, इस बीमार जानवर व मनुष्य की वेदना को हम सहन नहीं कर सकते, या वह स्वयं नहीं कर सकता ? । बात तो वास्तव में यह है कि, हम सहन नहिं करसकते, इसलिये उसको मारना यह भी कहां का कायदा है ?

हमारे घरों मे कोई क्षयरोगी, रक्तपीत्तिया कैसे २ रोगी होते है, हमें निश्चित है कि वह बच नहीं सकता । यह बात निश्चित होते हुए भी, और अनुभव में बराबर आते हुए भी, रोगी को जहर देकर या शूट करके मार नहीं सकते । और ऐसे मारें, तो एक भी आदमी जीने का अधिकारी नहीं रहेगा ।

संसार के सभी मनुष्य दुःखी हैं । हजारों मीलों की मुसाफरी करते हुए मैंने यही अनुभव किया है । और सभी उपदेशक भी यही कहते हैं । अब इन दुःखों से छुटकारा दिलाने के लिये, अगर कोई यह कहे कि सबको शूट करदो, तो यह कहां का न्याय है ? गांधीजी कईबार ऐसे बीमार हुए कि, उनके बचने की किसीको आशा नहीं थी, फिर भी किसी डाक्टरने यह नहीं किया और न सलाह दी कि-गांधीजी बचनेवाले नहीं है, इसलिए झहर देकर मारदेना चाहिए । हम सब जानते है कि जन्मलिया हैं वह अवश्य मरेगा ही ।

फिर आज किसी को क्यों नहीं कहदेते कि " भाई मुझे पोइजन देदो, मारडालो । इस ससार के मृत्यु के दुःख मे मुझे बचादो" और इसतरह मारने लग जायँ और यह सिद्धात स्थिर हो जाय कि ससारमे कोई बचानेवाला न हो उसको मारदेना चाहिए, तो ससार में कोई भी बच नहीं सकता ।

जीओ और जीने दो-

मित्रो, ' जिओ और जीने दो ' के सिद्धात पर रहो । कई ऐसे रोगी होते हैं कि, जिसको डाक्टर और सब लोग कह चुके हैं कि ' बच नहीं सकते । ' फिर भी आपरेशन करते हैं । दवाई करते हैं । फिर मरा हुआ समज स्मशान में भी ले गये । परन्तु स्मशान से भी वापिस होकर लोटे हैं, एसे भी किस्से मौजूद हैं ।

हमें रोगी का दु ख बरदास्त नहीं होता । इसी लिए हम किसी को मारने की राय दें यह कितनी अन्यायपूर्ण और निर्दयता की बात है ?

प्यारे भाईयों, कहने का साराश यह है कि विवेक से काम लीजिये । २० विस्वा दया में सवा विस्वा दया का पालन करनेवाला भी गृहस्थ धर्म को यथोचित रीतिसे निभा सकता है । मगर इसका मतलब यह तो कदापि नहीं कि, आपको सबकुछ करने की छुट देदी गई है ।

भाईओ और बहनो,

आज मैं दूसरा व्रत। दूसरे अणुव्रत के ऊपर कहूंगा।

दूसरा अणुव्रत है स्थूलमृषावादविरमणव्रत।

वाणी का महत्त्व-

वाणी की क्या कीमत है ? मैंने बहुत करके इसके बारे में पहले कहा है। वाणी मनुष्य के जीवन की किस्मत से, एवं दुनिया की किसी भी बहुमूल्य वस्तु से ज्यादा किमती है। इस से बढकर और इसकी तारीफ क्या हो सकती है ?

इस वाणी से आप जहर भी उगल सकते हैं और चाहे तो अमृत की भी वर्षा कर सकते हैं। देश, जाति, समाज और स्वयं को भी आप इसी वाणी से अधःपतन के गर्त में धकेल सकते हैं और चाहें तो इनका उद्धार एवं कल्याण भी कर सकते हैं। मानव मात्र का परम हित कर सकते हैं। देश और समाज को पराधीनता से मुक्त करा सकते हैं। संसार में सुख और शान्ति की गंगा बहा सकते हैं। पार्टी स्पीरीट पैदा कर सकते हैं। संगठन का बिगूल भी बजा सकते हैं। वाणी में वह चमत्कार है कि आप इस से चाहे जो करालो। मोक्ष की प्राप्ति भी आप इस से कर सकते हैं और ज्यादा आपको इस से क्या चाहिये ?

वाणी के आठ गुण-

मैंने कई बार कहा है कि, इस वाणी को निकालते समय खूब उपयोग रक्खें। वाणी के विषय मे पहले बहुत कुछ कहा जा चूका है। फिर भी कहता हूं कि-एक मनुष्य को वाणी बोलते समय आठ बातें ख्याल में रखना चाहिए।

महुरं निउणं थोवं कज्जावडियमगव्वियमतुच्छं ।
पुव्वमइसंकलिअं भणन्ति जं धम्मसंजुत्तं ॥

अर्थ-भाषा मधुर बोलो, कडुआ वचन कभी न बोलो। खराब वचन का असर

बडा बुरा होता है। चाहे आप कुछ भी करलें। अपने दिमाग में अभिमान लाकर कटु वचन किसी व्यक्ति को कहदें, उसका असर अच्छा कैसे होगा ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। मानवशास्त्र के प्रतिकूल चीज है।

निपुण-चातुर्य भराहुआ वचन बोलें। जितना बोलने की जरूरत हो, उतना ही बोलें। जरूरत से ज्यादा बोलने से क्या फायदा ? थोडे शब्दों में ज्यादा अर्थ हो, ऐसी गंभीर वाणी बोलें। दो शब्द से काम चलसकता है, तो तीन शब्द कभी न बोले।

जरूरत पडने पर ही बोलें, अन्यथा मौन रहें। अपमानकारी शब्द न बोलें। किसी को द्वेष पहुचे, ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। अगर आप यह ख्याल करते है कि, इस से हमारा प्रभाव पडेगा, तो यह गलत बात है। आपका प्रभाव तो आप के सद्कार्योंसे पडेगा। ठीक रास्ता पकडीए, गलत रास्ते पर न जाइए।

हलके-तुच्छ शब्द भी कभी नहीं बोलना चाहिए। इनका भी सुननेवालो पर बडा बूरा असर पडता है। हमारे बाल-बच्चों पर तो इसका बडा अहितकारी प्रभाव पडता है। वे भी ऐसे खराब शब्द-गाली गलोच बोलने के आदी हो जाते हैं। यह उनके भावी जीवन के लिये और अपने लिये भी बडा अहितकर है। जो शब्द आप मुंह से निकालें उससे क्या फायदा और क्या हानि होगी ? उसको सोच समज कर ही बोलना चाहिए।

और आठवाँ वाणी का गुण है धर्मयुक्त वाणी बोलनी चाहिए, अपने मुंहसे अधर्म का कोई शब्द न निकालें। क्रोध में आकर या तामसिक वृति में आकर अधार्मिक वाणी निकालना हमारे लिये अहितकर है। तामसिकवृत्ति के जोर में बडों बडों का भी कोई मान नहीं रहता। साधु-सन्तों का भी होश नहीं रहता और अधर्म वाणी का उपयोग कर बैठते हैं। किसी को ' शाप ' या ' अभिशाप ' दे बैठते हैं। तो ऐसा नहीं करना चाहिये। यह हमारे आत्मा के लिये महापातक है। हम घोर कर्म उपार्जन कर बैठते हैं, इसलिये इस बात को ध्यान में रखना चाहिये।

इस तरह आठ गुणों से युक्त वाणी को लक्ष्य रखकर अपने जीवन में उतारते हुए इसे अपने आत्मा के हितसाधन में उपयोग करेंगे, तो व्रतों का पालन आप कर सकेंगे। अन्यथा कभी नहीं।

संसार में रहते हुए इस दूसरे व्रत का पालन गृहस्थ किस तरह कर सकते हैं, यह मैं अब बताऊगा।

झूठ यह सब से बडा पाप है-

गृहस्थाश्रम में रह कर मनुष्य यह समझता है कि, झूठ के सिवाय व्यापार कैसे करें, बालबच्चों का भरण-पोषण कैसे करें और संसार का व्यवहार कैसे चलावें ?। लेकिन यह मान्यता बिलकूल गलत है । जिन्होंने अपने जीवन में सिवा छल, भेद, प्रपञ्च आदि के कोई दूसरी बात नहीं की, उनके दिलों में यह बात जरूर आती है । लेकिन शुरु से अपने जीवन को सत्यता की तरफ रखनेवाला मनुष्य जरूर इस बात को समझ सकता है कि झूठ बोलना महापाप है और मनुष्य के लिए सत्यतापूर्वक जीवन बिताना ही बहुत जरूरी है ।

मनुष्य के मनसे अगर झूठ का भय मिटजाता है. तो वह सारे पापों को बिना हिचकिचाहट के करने लगता है। एक व्यभिचारी व्यभिचार सेवन को तैयार हो जाता है। लोगों के पूछने पर वह सत्य हकीकत कह देता है क्योंकि असत्याचरण से उसको डर नहीं। इसी प्रकार बेइमानी करनेवाले बेइमानी करते हैं और बदमाश लोग बदमाशी करते हैं, क्योंकि झूठ बोलने में उन्हें शर्म नहीं ।

भंगीयनने जमीन साफ क्यों की ?-

अभी एक सज्जनने मुझे एक अखबार में से लेख पढाया था। शास्त्रीय लेख है। ध्यान से सुनिये-एक मातंगी (भंगी) रास्ते में एक मनुष्य की खोपडी में मांस को लिये हुए जा रही थी । मांस खानेकी उसकी आदत थी, थोडी दूर जाकर एक एकान्त जगह पसंद की । जमीन साफ की, पानी छिटका और फिर अपने कपड़े बिछाकर बैठ गयी।

एक सज्जन जो उधर से जा रहे थे, उन्होंने उस मातंगी को देखा, उसकी हरकतें देखी, उसको बडा ताज्जुब हुआ। उसके पास जाकर बोलेः-' अरे मातंगी, तू स्वयं मांस खानेवाली, हलके आचरणवाली, कोई तेरा धर्म नहीं, कर्म नहीं, तेरे कपडे भी दुर्गंधमय और मलिन। मारे बदबूके तेरे पास कोई खड़ा भी नहीं रह सकता। शरीर पर भी खून के छींटे पडे हुए हैं। मक्खियों तेरे पर भिनभिना रही हैं और एक मनुष्य की खोपडी में मांस लिये बैठी है। इतना होते हुए भी तूने बैठने की जगह साफ की, उसे पानी से छिटका और कपड़ा बिछाकर बैठी। कहां तेरी अशुद्धता और कहां तेरा यह दिखावा शुद्धता का ढोंग ?। यह क्या बात है ? तेरा जमीन का साफ करना, पानीका छींटकाव करना और बैठने के लिये कपड़ा बिछाना, ये बातें तेरी अशुद्धता के साथ कोई मेल नहीं खाती।

मातगी कहती है–" महाराज, आपका कहना बीलकुल ठीक है। लेकिन इस भूमि पर से झूठ बोलनेवाले अनेकों पापी निकले होंगे। यह भूमि उनके स्पर्श से अपवित्र हो गयी थी। इसलिये इस को शुद्ध करके बैठी, अन्यथा मैं भी अपवित्र हो जाती। मैं जरूर पापी हू, लेकिन असत्य बोलनेवाले मेरे से भी ज्यादा पापी, अपवित्र एव हलके हैं। इसलिये यह जगह साफ करके बैठी हू।"

प्यारे सज्जनो! यह शास्त्र का उदाहरण है। झूठ बोलनेवाले को शास्त्रकारोंने घोर पापी कहा है। मातगी के पापों से भी उसका पाप अधिक है। चाहे जितने उच्च कुल में पैदा हुआ हो, लेकिन झूठ बोलनेवाला ससार को धोखा देनेका प्रयत्न करेगा और नाना प्रकार के छल-प्रपच-कपट करेगा। धार्मिक कृत्यों में भी उसके आचरण पवित्र नहीं होंगे, क्योंकि हर किसी पाप को वह झूठ की चद्दर के नीचे छिपाने का होसला रखता है।

प्यारे सज्जनों, यह घोर पाप है। झूठ की शास्त्रकारोंने बडी निंदा की है। आपको झूठ से बचना है, तो उपर्युक्त नियमों का पालन करें।

एक बोल और एक तोल-

' दुविधा में दोनों गई माया मिली न राम ' जैसी आज तो दशा हो रही है। पैसों के लिये इतना झूठ-प्रपच करते हैं कि जिसकी हद नहीं। लेकिन न पैसेदार बनते हैं और न कुछ अपना कल्याण ही कर पाते है। जबतक ' एक बोल और एक तोल ', पर आप नहीं आयेंगे, तबतक आप सुखी नहीं होनेके। देश की उन्नति का आधार व्यापारियों पर ज्यादा निर्भर है। अत देश को स्वतत्र और सुखी देखना आप चाहते हैं, तो मेरी इन बातों का अमल करें। इस सिलसिले में एक बात और याद आयी। उसको भी कह दू। हमारे गुरुजी कहा करते थे कि-जबतक आप लोग झूठ-लालच में आकर झूठी बडाइयों में फस कर तीसरी शक्ति के हाथ का खिलौना बने रहोगे, वहां तक देश का उद्धार नहीं होने का, और न तुम्हें स्वप्न भी सुख हासिल होनेका।

कुल्हाडी का हत्था-

एक देहाती शहर मे गया और बहुतसी कुल्हाडियाँ बनवायीं, और उनको भरकर लेजा रहा था। रास्ते में एक बडा घना जगल पडा। बेशुमार पेड खडे थे। कुल्हा-

डियों से भरी गाडी को देखकर सारे पेड कांपने लगे । 'अभी ये कुल्हाडियॉ हमको काट डालेगी, और हमारा सत्यानाश करदेगी' । उस समय एक बूढा–समझदार पेड बोला:–" बच्चों ! घबराओ मत । ये कुल्हाडियां हमारा कुछ नहीं कर सकती । ऐसी एक क्या सैकडों गाडियां आजाय तो भी हमारा बाल बांका नहीं करसकती, लेकिन एक शर्त है, इतना ख्याल रखना, इसमें हमारे में से कोई मिलने न पावे । यानि जबतक इन कुल्हाडियों में लकड़ी का हथ्था न लगेगा, तबतक वे कुल्हाडियां कुछ नहीं कर-सकती । अतः आप लोगोमें से भी कोई किसीका हाथा न बने ।

कुठारमालिकां दृष्ट्वा द्रुमाः सर्वे प्रकंपिताः ।
वृद्धेन कथितं तत्र अब जातिर्न विद्यते ।

इसी तरह मित्रो, एक कपडे का व्यापारी कपडे बेचता है । जरा गडबडी की कि हवालात की हवा खानी पडती है, क्योंकि कंट्रोल का जमाना है । पडौसी सब मिले जुले हैं–आप कितना भी गडबड करिये–कानून तोडिये, आपको कोई नहीं पकड सकता । लेकिन अगर पडौसी ही गद्दार है, जरासी ही आप की गलती पकडकर आपको कैद में डलवायगा और खुद घरमें घुसकर दिवाली मनायेगा ।

मित्रों, हमारी आज यह दशा हो रही है कि हम अपने हाथों से अपना नाश कर रहे हैं । आज इन बातों को हम भूल बैठे हैं । 'एक बोल और एक तोल' पर रहिये, आप अपनी जिंदगी आनंद से बसर कर सकते हैं ।

पांच प्रकारके मोटे झूठ-

गृहस्थों को मोटे झूठ का त्याग करने का है, उसमें ये बात खास करके आती है जो आपको ध्यान देने योग्य है ।

कन्या सम्बन्धी–पेसा लेकर के रूप–गुण कर्मानुसार किसीका सम्बन्ध न बैठता हो तो भी, उसका सम्बन्ध करवादेना । झूठी कन्या की तारीफ करना और उसका विवाह किसी अच्छे लडके से करवा देना या ऐसे ही किसी हीन गुणवाले लडके को अच्छा बतलाकर किसी अच्छी लडकी से शादी करवा देना । इस तरह किसीके जीवन को बरबाद कर देना, इस से भयंकर पाप और क्या हो सकता है । ऐसा झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए ।

दूसरा झूठ है–गाय, बैल, ढोर, पशु सम्बन्धी । जैसे कोई गाय दूध देने

वाली न हो, लेकिन पैसे के लोभ में पडकर उसको दूध देनेवाली बतला कर बेच देना। बैल बूढा है-अशक्त है उसको भी अच्छा बतलाकर बेचना। झूठी दलाली करके बीचमें पैसे मारलेना। इससे पशुओं की आर्त-आह लगती है। खरीदनेवाला भी बडी बद दुआ देता है और उन पशुओं को बुरी तरह पीटता है और खाने को भी नही देता। अत. यह भी बडा झूठ है।

तीसरा बडा झूठ है भूमि सम्बन्धी। जमीन के लेने-देने के सम्बन्ध में झूठ बोलनेवाले झूठी दलाली न करें। आज सारा संसार कष्टों मे सड रहा है। मात्र तीन चीजों के कारण-जर, जमीन और जोरू। जरासी जमीन के लिये लोग आपस में मर मिटते हैं और मुकदमों में तबाह हो जाते हैं और वंशपरपरा में वैर चलना ही रहता है, अतः गृहस्थों को भूमि सम्बन्धी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

चौथा बडा झूठ है थापणमोसा। किसी की कोई चीज है। आपके यहा आपके विश्वास पर रक्खी है। कुछ लिखा-पढा भी नहीं की है। वह मनुष्य अपनी धरोहर वापस मागे, उस समय फिरजाना और " किसके यहा रक्खी है ?। मेरे पास तेरी कोई चीज नहीं है, अगर तूने मेरे यहा रक्खी हो तो मेरे हाथकी चिठी ला।" इस तरहका झूठ बोलना और किसी की चीज दबालेना, यह भी महापाप है, क्योकि विश्वासघाती महापापी।

किसीकी कोई चीज अपने पासमें हो और मनमें यह ख्याल करना कि, यह भूल जाय या मरजाय तो अच्छा। इसकी चीज मेरे पास रह जायगी। ऐसी बद नीयती भी बहुत खराब है और ये भावनायें मनुष्यको घोरातिघोर नर्क में डालती है। आज ससार के दुःखी होने का यह भी एक कारण है।

पाचवा बडा झूठ है-कूट साक्षी देना। झूठी गवाही देना। झूठ बोलना। कोर्टमे जाकर परमात्मा की साक्षी लेकर जैन कहलानेवाले-महावीर के अनुयायी होने का दम भरनेवाले-दया धर्मका पालन करने का ढोंग करनेवाले, उच्च कुलमें जन्म लेनेवाले झूठ बोलते हैं, झूठी गवाही देते हैं। अपने थोडे से स्वार्थ के लिये बडे बडे पाप करते भी नहीं हिचकिचाते। बहीखाता आदि भी बदल डालते हैं। सारी बातें कितनी जिंदगीके लिए और किसके लिए करते हैं ? यह मुझे मालूम नहीं, अगर आप यह समझते हों कि, ' हम अनन्तकाल तक यहां ही सुख भोगेंगे। मृत्यु

हमारा कुछ बिगाड नहीं सकती' तो यह तो कभी होनेवाला नहीं। मनोवृत्तियों खराब हों, उस समय अगर मृत्यु होजाय, तो मालूम है क्या गति होगी?। और यदि आयुष्य का बन्ध न भी हो, तो भी अशुभ कर्म कितने उपार्जन होंगे?। उसका फल क्या भोगना पडेगा?। इसका भी आपने कभी ख्याल किया है?।

आपलोग कर्मकी फिलोसोफी से अनभिज्ञ हैं। अगर कर्मों की विचित्रता को आप जानते होते-कर्मों का आप को डर होता कि 'हमारे ऐसे कर्मों के फलसे हमारी ऐसी दुर्गति होती है, अच्छा-बुरा जोकुछ होता है वह हमारे कर्मों से ही होता है,' तो मेरा विश्वास है, आप ऐसे बूरे और हलके कार्य करने को तैयार न होते?।

मैं यह बात सिर्फ जैनों के लिए ही नहीं, मानव मात्रके लिए कह रहा हूं। अगर आप परमात्मापर विश्वास रखते और धर्म ग्रंथो में तो यह भी कहा गया है, कि परमात्माने बहुतसी गतियों और योनियों का वर्णन किया है; कि ऐसे ऐसे कार्य करनेवाले ऐसी ऐसी गतियों में जाकर जन्म लेंगे। अगर हमको इन परमात्मा के वचनों पर श्रद्धा होती, तो हम बहुत कुछ अंशों में इन पापों से बच जाते।

लेकिन संसार लोभवृत्तियों में पडकर मोह के भंवर में फंसकर घोर से घोर पाप करने को तैयार होजाता है-उस समय न परमात्मासे डरता है, न शास्त्रों की बातों को याद करता है, और न गुरुओ के हितोपदेश को लक्ष्य में रखता है, यह मोह की विचित्र लीला है।

अभी उपदेश सुना और अभी ही घर पर जाकर आप अपना कार्य शुरु करदेंगे। कोई पूछेंगे कि, "भाई! आपने क्या उपदेश सुना?" तो कह देंगे-"महाराज का उपदेश महाराज के पास रहा। हमारा तो यही धन्धा है"। ऐसे निध्वंस परिणामवाले लोग होगये हैं। यही कारण है कि-लोग बुरे कामों से बाज नहीं आते और कष्टों को भोगते हैं।

आज तो हमारे आचरण ही पूरे झूठमय होगये हैं। सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक, नैतिक सभी क्षेत्रों में हम झूठ ही झूठ चलाते हैं। एक साधारण मिसाल आप को दूं। आप शाक लेने जारहे हैं,-कोई आप से पूछ बैठे कि-'कहां जारहे हैं?' तो आप सच नहीं बोल देंगे। 'जरा इधर जारहा हूं'-मतलब क्या? कि जीवनकी शरुआत से ही हमारे में ऐसी झूठी आदत पडगयी हैं, कि 'मूंहसे स्वाभाविक ही झूठ

निकल पडेगा । मैं कहता हू-इसको निकालिये और सदा सत्य बोलने की ही आदत डालिये ।

जीवन का हित-जीवन का विकास मात्र सत्यता में हैं । सचाई का जीवन ही जीवन है । अगर यह बात हमारे दिलों में नहीं आयी है और रात-दिन झूठ मे ही मस्त रहे, तो समझ लीजिये कि हमारा जीवन मिट्टी के पूतले के बराबर है । बल्कि उससे भी गया गुजरा है ।

व्यापारियों की दशा-

जबतक हमारे देशमें 'एक बोल और एक तोल' की कहावत चरितार्थ रही, हमारा देश उन्नति के शिखर पर रहा और जबसे इस उच्च गुणको हमने खो दिया, हम पतन के गड्ढे में जा गिरे । हमारे यहा किसी व्यापारी की दुकान पर ठीक भाव आपको मालूम नहीं होंगे । जैसा मुह वैसी बात । ग्राहकों को ठगना यही व्यापारीयों का आजकल उसूल रह गया है । एक रुपये की किम्मत की चीज के दाम अगर आप पूछेंगे तो पाच रुपये बतालावेंगे पहले । फिर जितने में सोदा पता उतने में ही सही । बिचारे अबोध और छोटे बालक तो ठगाकर ही आवेंगे । यह दशा है आजकल हमारे देशके दानी कहलानेवाले व्यापारियों की ।

दूसरी तरफ आप युरोपियन कम्पनीओं को देखिये । 'एक बोल और एक दाम' चाहे छोटासा बच्चा चलाजाय, चाहे बूढा । चाहे अपढ गवार चलाजाय, चाहे कोई बडा प्रोफेसर । हरेक चीजों के ऊपर दाम के लेबल लगे होंगे । न एक पाई इधर, न उधर । समय पर दुकान खोलते हैं, समय पर बन्ध । न हाय हाय है, न परेशानी है । और हमारे यहा के व्यापारियों को देखिये, सुबह से बैलों की तरह जुतते हैं रातको १०-१२ बजे तक लगे ही रहेंगे । न स्नान-पूजन की फूरसद है, न खाने को अवकाश है, फिर भी हाय हाय और हाय हाय मची रहती है । परिणाम क्या ? लूट लूट कर इकट्ठा करते हैं, लेकिन एक झपट ऐसी आती है सब सफाया । कहावत है "मीयां चोरे मुठ तो अल्लाह चोरे ऊंट ।' कहने को तो सब कहते हैं कि, मैं लाख कमाया या क्रोड कमाया, लेकिन टेक्स के बहाने सरकार का ऐसा हाथ पडता है कि, सब कमा कमाया साफ अथवा और भी कई कारणों से साफ । अत सज्जनो 'एक बोल और तोल' की कहावत के अनुसार चलिये । आप सुखी होंगे ।

प्यारे भाइओं और बहनों !

आज तीसरे व्रत की व्याख्या करुंगा।

तीसरा व्रत है–स्थूल अदत्तादानविरमणव्रत।

स्थूलरीति से, नहीं दी हुई चीजको नहीं लेना, उसका नाम है–स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत।

तीसरा व्रत–

एक शहरमें मेरे व्याख्यान हो रहे थे। मेजिस्ट्रेट और पुलिस कमिश्नर भी मौजूद थे। मैंने पुलिस कमिश्नर से कहा–" आपके यहां चोरी की व्याख्या क्या है? मेरे ख्याल से, जंगल में किसी मनुष्यको लूंटलेना, किसी गृहस्थके घरमें चुपके से या दिवाल तोडकर घुसके उसकी जायदादको उठाना, किसी गृहस्थकी छाती पर चडकर तमचा दिखाकर–धमका कर उस से तिजोरी की चावियाँ लेकर नोटोंके बंडलो को उडाजाना। ऐसी ऐसी चोरीया करनेवाला आप की परिभाषा में ' चोर ' गिना गया है। लेकिन एक शख्स, जो रातदिन चोरी करता है, उसकी व्याख्या आपको यहा नहीं है, परिणाम स्वरूप वह चोर बडे धडाके से चोरियाँ करता चला जाता है और कभी पकडा नहीं जाता है। उसकी कलई मैं आज आपके सामने संसार के हित के लिये खोलता हू–दुकान पर बैठकर, भोले–अनपढ ग्राहकों को ठगनेवाला, ज्यादा पैसे लेकर कम माल देनेवाला, अपनी बहियों मे झूठी बात लिखनेवाला बनिया कितना बडा भारी ' चोर ' है, इसका भी कभी आपने विचार किया है?।

सफेद चोर–

आजकल अपने यहां चोरियों कैसी होती है?। एक सेठ साहब दुकान पर बैठे हैं। बहुत दिनों का परिचयवाला कोई आदमी सेठ को मालदार व इमानदार समझ कर उसके पास पचीस हजार की रकम धर देता है, और कहता है ' मैं अभी वापस

लौटते समय लेजाऊंगा'। वह उससे रसीद-फरीद कुछ नहीं लेता है। वापस लौटते समय जब मांगता है, तो सेठजी साफ नट जाते हैं। 'हमको मालूम नहीं, रसीद ला'। आश्चर्य तो यह है कि, शेठसा० बडे चोर होकर भी चोर नहीं गिने जाते हैं। बल्कि बडे इमानदार बने रहते हैं। यह है हमारी चोरी की परिभाषा।

और एक मनुष्य किसी गृहस्थ के घरमें घुसता है। हाथमें तमंचा लेकर पलंग पर बैठ जाता है। सेठ साहब को जगाता है। चाबियाँ मांगता है। चाबियाँ लेकर चोर तिजोरी खोलने जाता है। चोरसे तीजोरी नहीं खुलती, वह सेठ को खोलने को कहता है। तमंचे से भयभीत सेठ तिजोरी खोलते हैं और तिजोरी में की रकम चोर को दे देते हैं। चोर चला जाता है। सेठ पुलिस थाने में जाते हैं। रिपोर्ट करते हैं कि 'मेरा माल चोर ले गया'। उस समय पुलिसवालों को पूछना चाहिये कि, 'चोर तेरा माल ले गया कि तूंने अपने हाथसे चोर को अपना माल दिया?'। यदि सेठ सच्चा होगा तो कहेगा कि-'मैंने अपने हाथ से दिया है' तो फिर फरियाद किस बात की? । जाओ, मजा करो,' ऐसा पुलिसको कह देना चाहिये। लेकिन फिर भी पुलिस उसकी तलाश करती है और हाथ आने पर उसको सजा देती है। लेकिन दुकान पर बैठकर रातदिन गरीबों के खूनों के चूसनेवालों के लिये कोई सजा नहीं। यदि कोई गरीब फरियाद भी करे, तो सेठसा०का नैवेद्य का प्रभाव ऐसा होता है कि आफीसर देवता उस गरीब की सुनवाई कभी नहीं करेंगे, बल्कि ऊपर से चार जूते लगा कर भगा देंगे।

गृहस्थो, आपने कभी इस बात का विचार किया है कि, आप सहज एक रुपये के फायदे के लिये दूसरेको सो रुपये के नुकसान में डालने के लिये तैयार रहते हैं?। और इस प्रकार अन्याय से उपार्जन किये हुए पैसों की रोटियाँ हमारी बुद्धि का नाश करदेती है। अतः प्रामाणिकता भी गृहस्थों को रखना बडा जरूरी है। बेइमानी मनुष्य को हेवान बनादेती है। नीतिवान ही सच्चा गृहस्थ है। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूं कि-गृहस्थों का तीसरा व्रत है **अदत्तादान विरमणव्रत**-चोरी से बचना। चोरी कभी नहीं करना। मैं इन सारी बातों का समावेश चोरी में लाता हूं।

आजकाल तो हर मनुष्य की दानत ही 'चोरी' की हो गयी है। पास में पैसा नहीं होते हुए भी मनुष्य एकदम मालदार बनना चाहते हैं। और इसके लिये हमेशा कहींसे किसी भी तरह पैसा मिलजाय, उसकी ताकमें रहते हैं। फिर उसमें न्याय-

अन्याय का विचार नहीं करते है। और इसीलिए लोगों की नियत हरघडी बुरी ही रहती है। शास्त्रकार कहते है-" उपयोगे धर्म, क्रियाए कर्म, और परिणामे बन्ध " जैसी हमारी भावना होगी, वैसा ही हमें कर्मका बन्ध होगा। व्यापारी हो चाहे, नौकरी करनेवाला। अगर नियत दूसरेके मालपर है, तो वह ' चोर ' हैं। स्वधर्म को छोडकर परधर्म में जानेवाले सभी चोर हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे और व्यवहारिक दृष्टिसे भी यह बात खूब ध्यान में रखनी चाहिए।

धर्मादे में भी धोखाबाजी-

आज धर्मादे के पैसे में भी बेइमानी चल पडी है। धर्मादे के पैसे समझते हुए भी, उसको बहुत समय तक अपने पास नहीं रखना चाहिए। उसमे नियत मे फर्क हो ही जाता है। वह तो धर्मका हक है। उसको धर्मकार्य में शीघ्र खर्च कर देना चाहिये। अपने खुद के काम में उसका कभी उपयोग नहीं करना चाहिए। धर्मकार्य मे खर्चते हुए भी, उसमें आदमी को अपने नामना की भावना नहीं रखनी चाहिए। न उस धर्मादा की रकम का व्याज भी खाना चाहिये। अगर ऐसा करते हैं, तो वह भी भयकर ' चोर ' बनते हैं।

मैं ट्रस्टीओं को भी कुछ कहना चाहता हू। जो धर्मादा ट्रस्ट के ट्रस्टी बनते हैं। उनका कर्तव्य है कि ट्रस्ट की योग्य व्यवस्था करें। उसका दुरुपयोग न हो, उसका ध्यान रक्खें। अगर वे ऐसा नहीं करते हैं, और अपनी इच्छानुसार, अपने व्यापार-रोजगार के लिए या अपनी नामना के लिए या खुद अपने लिए उसका उपयोग करते हैं, तो वे भी भयकर मे भयकर चोर है। इस प्रकार ट्रस्टका अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इसके सिवा कि, वे उसके व्यवस्थापक रहें। उसकी सुदर रीत्या व्यवस्था करें और धर्म-कार्य में उसका खर्च करें, यह उनका कर्तव्य है।

कुछ लोग अपने आपको और दुनिया को धोखा देना चाहते है। धर्मादा की जो रकम वे निकालते है, उस रकम से वे यात्रा करने जाते है। खाना-पीना, रेल किराया आदि सब उसी रकममें मे खर्चते हैं। और कहते हैं कि, ' हम धर्मादा की रकम धर्मकार्य म ही खर्चते हैं '। लेकिन आपही बतलाईए कि, इस तरह क्या वे अपने

लिए उस धर्मादा की रकम को खर्चने का हक रखते हैं ? । वे धर्मादा की रकम खाने-वाले हुए या नहीं ? पूछते हैं तो, जवाब देते हैं-' इतनी रकम यों खर्च हुयी । इतनी रकम इसमें खर्ची, इतनी रकम यात्रामें खर्च हुयी ' । लेकिन हम पूछते है कि-यह सब क्या आपकी जेब मे से खर्च हुयी ? । धर्मादा के पैसे की रोटियाँ से अपना उदर भरनेवाले भला कभी सुखी होसकते हैं ? उनकी बुद्धि निर्मल रह सकती है ? इसका विचार कीजिए ।

चोरीमय जीवन-

आज संसार के लोग सुख के लिये इतना प्रयत्न करते हुए-इतने सुख के साधन मिलते हुए सुख प्राप्त नहीं कर सकते । उनको शान्ति नहीं मिलती । आत्मिक शान्ति उन्हें दुर्लभ है । धैर्य नही । संतोष नहीं । प्रसन्नता नहीं । शान्तिपूर्वक धर्मक्रिया करने का उनमें उत्साह नहीं । उनका जीवन हाहाकार से भरा है । परस्पर अविश्वास और आघात-प्रत्याघात से परिपूर्ण हैं । इसका एक मात्र कारण चोरीमय जीवन है । मनोवृत्तियों बडी दूषित हैं । अतः मित्रो, मेरा आपसे यही उपदेश है कि आप लोग किसी भी प्रकार की चौर्यवृत्ति से दूर रहें । किसीको धोखा न दें । आपको सरकार का गुन्हेगार बनना पडे, ऐसी चोरी चाहे वह बडी हो या छोटी, कभी न करें । आप दोष में फंसे या नहीं, यह दूसरी बात है । आपके ऊपर अभियोग चले या नहीं, इसको भी जाने देजिये । आप इतने हुशियार हैं कि, आपकी चोरी का आप किसीको पता न लगने दें, यह भी दूसरी बात है । लेकिन चोरी आखिर चोरी है । प्रकृति के नियमसे कोई बच नहीं सकता । पाप आखिर प्रकट हो ही जाता है । आपके पुण्य का उदय है, तबतक आप सब कुछ कर सकते हैं । आगे आपके हाथकी बात नहीं । एक कवि कहता है—

जबलग पुरबल पुन्यकी पूंजी नही करार ।
तब लग सबकुछ माफ है ओगुन करो हजार ॥

हजारों चोरियों करते जाईए, आपके पूर्व जन्म में किये हुए पुन्यके बलसे सब-कुछ छिपा रहेगा, या आपके पुन्यका नाश होता जायगा, लेकिन जिसदिन आपका यह पुण्यका खजाना खाली होजायगा, आपके पाप-आपकी चोरियों प्रकट होजायगी । उस समय आपको उसका फल अवश्य भोगना पडेगा । अतः मित्रो ! इस पुन्य का

नाश न करो। इस अमूल्य खजाने को लुटाओ मत। सुकृत करो। चोरी से बचो और अपने पूण्य के खजाने को और बढाओ। तुम्हें आराम और शान्ति दोनों मिलेगी।

होना तो यह चाहिए कि, कभी किसीकी भी चीज उठाना नहीं चाहिए। आपकी वृत्तियां इस प्रकारकी बनालेना चाहिए, कि कभी किसीकी चीज न लें। हराम के माल खानेकी भावना ही न हो। पुरुषार्थ से, नेक नियति से, प्रामाणिकता से, शुद्ध वृत्ति के साथ जो कुछ प्राप्त हो, उसी पर निर्भर होकर रहना यह सबसे श्रेष्ठ बात है।

माताए बच्चों को बचावें-

हमारी माताओं को चाहिए कि, बचपन से ही बच्चों में ऐसे संस्कारों का बीजारोपण करें कि कभी उनमें बुरी भावनाए पैदा ही न हो। कभी कभी ऐसा होता है कि, बच्चे कहींसे कोई चीज उठाके ले आते है, तो बहुतसी माताए बडी प्रसन्न होती है। बच्चा कहीं से पैसा ले आया, समझती है चलो आज शाक का खर्च निकला। बच्चे को कुछ नहीं कहती हैं। बच्चे की आदत धीरे धीरे चोरी करने की पडजाती है। माता भूल जाती है कि जो बच्चा आज एक पैसा चोरी करके लाया है, बडा होने पर बडी बडी चोरियाँ करेगा। नतीजा घरको बरबाद कर देगा। इज्जत में बट्टा लगावेगा और कुलमें कलक लगानेवाला होगा। अत मात-पिताओं को चाहिए कि बच्चों को चोरी की आदत से फौरन रोक दें। कोई भी चीज कहीं से भी उठाकर लाया हो तो फौरन उसको उसी जगह रखने को कह दें। इसका असर उसके भावी जीवन पर बडा सुदर होगा। बचपन की भूलों का ही परिणाम होता है, कि कोई आगे जाकर बडा चोर और बदमाश होजाता है। ऐसे हथकडे दिखलाते हैं कि उसके कार्य को देखने वाले आश्चर्य में पडजाते है। सिवाय चोरीके, फिर उसको कोई धधा ही नहीं सूझता। हर काम में उसको चोरी ही चोरी सूझेगी। दुकानपर भी उसको अगर बिठला दिया जाय, तो वह ग्राहकों को ठगनेका या किसी प्रकार उसकी कोई चीज उठानेका प्रयत्न करेगा। बिना उसके उसको चैन नहीं पडेगा। आज लोगों की वृत्तियाँ ही इस प्रकार की हो गयी है। उसीका परिणाम है कि आज सारा ससार दुःखी और त्रस्त हो उठा है। प्रमाणिकता लोगों से कोसों दूर भग गई। अतः महानुभावो, अगर आप चैनसे रहना चाहते हैं तो इस अप्रमाणिकता को छोड दे। घरके व्यवहार-व्यापार में आप नीतिपूर्वक वर्तन रक्खें। क्या अच्छा या क्या बुरा है? इसकी जाच के लिए आप अपने अन्तरात्मा से पूछें, वही आपको ठीक जवाब देगा। आपको जो अप्रिय है वह

दूसरे के साथ भी आप कभी न करें। आपकी चीज कोई उठा जाय, आपको कोई ठग जाय, यह जैसे आपको पसंद नहीं है, वह भला दूसरे को कैसे पसंद आयगा ? अतः चोरी के महापाप से बचने के लिये भी गृहस्थों को 'स्थूल अदत्तादान विरमण-व्रत' अंगीकार कर के रास्ते में किसी गिरी हुई चीज को उठाना, जमीन में किसी के गटे हुए धनको निकाल लेना, किसीकी रक्खी हुई धरोहर को हडप करना, किसीके मकान को तोडकर प्रवेश करना, किसीका ताला तोडना, किसी की गांठ खोलकर माल लेलेना, कस्टम के मालको छुपाकर सरकारी गुन्हेगार बनना, कम देना, ज्यादा लेना-संक्षेप से कहा जाय तो चोरी की बुद्धिसे ऐसी कोई भी प्रवृत्ति करना, जिससे राज्य के गुन्हेगार बनें, और व्यवहार में भी लोग बुरा कहें, ऐसी चोरी संबंधी कार्यों से बचना चाहिए।

चतुर्थव्रत-

अब चौथा व्रत आता है: स्थूल मैथुनविरमणव्रत।

इस व्रतमें भी 'स्थूल' शब्द का प्रयोग इसलिए कियागया है कि-गृहस्थाश्रम में जो रहना चाहता है, उसके लिए शादी करनेकी छूट है, अर्थात् वह लग्न कर-सकता है। जब लग्न करता है तो फिर वह 'सर्वथा ब्रह्मचारी' नहीं कहा जासकता है, आंशिक ब्रह्मचारी है।

इसलिए स्थूल दृष्टिसे मैथुन का त्याग करना यह इस चौथे व्रत का अर्थ है। मैथुन का अर्थ है संभोग करना-स्त्रीसमागम करना।

एक गृहस्थको गृहस्थाश्रम में रहते हुए, ब्रह्मचर्य के पालन के लिए किन किन नियमों का पालन करना चाहिए, यह मैं पहले बतला चूका हूं। फिरभी मैं इसे थोडे में प्रसंगोपात्त दुहरा दूं।

यावज्जीवन ब्रह्मचर्य-

वह पुरुष सच्चा शक्तिशाली और पुरुषार्थी है, जो यावत् जीवन अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करता है। अखंड ब्रह्मचर्य की रक्षा करनेवाला पुरुष महातेजस्वी और शक्ति-संपन्न होता है। ऐसा गृहस्थ अपना और संसार के बहुत मनुष्यों का कल्याण कर सकता है। यह बात गलत है कि, 'गृहस्थाश्रम में ऐसा विधान नहीं है'। संसार के सब

व्यापार रोजगार करते हुए, भाई, बहिन, माता, पिता आदि कुटुम्ब के साथ में रहते हुए मनुष्य अखड ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। ऐसे उदाहरण उपलब्ध नहीं है ऐसा नहीं है।

अबलाओं का सबलापन-

जो हमारी बहनें बाल्यावस्था में विधवा हो जाती हैं, वे यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं। आपकी अपेक्षा ये बहनें बलवती हैं या नहीं ? जिसको आप 'अबला' कहते हैं, उन अबलाओं को धन्य है कि दुर्भाग्य से छोटी अवस्था में पतिका सयोग करने भी नहीं पातीं और विधवा होते हुए भी अखड शीलव्रत का पालन करती हैं। दूसरी तरफ आप अपने कलेजे पर हाथ रखकर पूछे और अपने जीवन को देखें कि, आपकी क्या दशा है ? । मैं तो हमेशा इस बातका विचार करके आश्चर्यान्वित होजाता हू कि, किस तरह ये बहिनें इतना दुष्कर व्रत पालन करती होंगी। जरूर कोई पतिता भी होगी, लेकिन ज्यादातर ये अपने शील की बडी यतना से रक्षा करती हैं। यह हमारे देश के धार्मिक पुनित सस्कारों का परिणाम है कि, छोटी अवस्था में होते हुए भी, कोई संरक्षक न होते हुए भी, अनेकों आफतें झेलकरके भी कभी अपना शीलभग नहीं होने देतीं। वह पुरुषार्थ इन्हीं में हैं, वह फिर चाहे लज्जा, भय, शर्म किसी भी कारण से हो। लेकिन है यह एक जबरदस्त बल । कितना कठिन कार्य है इस शीलका पालन करना ? । इसके विपरीत आज पुरुषों की क्या दशा है ? । कितना पाप और अत्याचार मचा रक्खा है इन पुरुषोंने। सब प्रकारकी छूट इन पुरुषोंने लेली है । न लाज है, न शर्म है, न भय है।

पुरुषों की पाशविकता-

मैंने ऐसी बहनें देखी हैं, जिन्होंने जीवन पर्यन्त शादी नहीं की । और शादी की भी और दुर्भाग्य से छोटी उम्र में ही विधवा हो गयी तो यावज्जीवन अपने शीलको अखडित रक्खा और रख रही है। कितना कठिन कार्य है—आज के प्रलोभनों से युक्त, वासनामय और वर्षेले वातावरण में रहकर इसका करना ? । आज लोगोंकी मनोवृत्तिया कहा जाकर टकरती है, इसका पता भी है आपको ? । आजकल कभी कभी तो लोग ऐसे पापों की बातें करते है कि, हमारा दिल टुकडे टुकडे होजाता है। सच झूठ को परमात्मा जाने, हम कल्पना नहीं कर सकते कि, यह विभत्स ससार कहा

जाकर गिरेगा ? । हमलोग शील की रक्षा के लिए अपने उपदेश में लोगों को समझाते हैं कि "परस्त्री को माता या बहिन और परपुरुष को पिता या भाई की तरह समझना चाहिए। ऐसा विचारने से हमारे मनमें विकार नहीं पैदा होंगे। विकारों को नहीं उत्पन्न होने देने के लिए यह बडा श्रेष्ठ तरीका है। आर्य संस्कृति ऐसी है कि, माता-पिता भाई बहनों के साथ विषय-संभोग की इच्छा कभी नहीं होगी।" इसलिये शास्त्रकार भी पुकार पुकार कर यही बात कहते हैं। हम लोग भी यही बात बार बार दुहराते हैं कि, संसार में रह कर अगर आपलोग अपने ब्रह्मव्रत को अखंड रखना चाहते हैं तो, माता-बहन और पिता-भाई एक दूसरे को समझें।

लेकिन, आज तो घोर कलियुग आया है। बहन, पुत्री और माता तक को भी कई पापी पुरुष नहीं छोडते और यही हाल स्त्रियोंका हो रहा है। आज ऐसी बातें समाचार पत्रों में आती हैं, सुनकर के ग्लानि, लज्जा और शर्मके मारे सिर नीचा हो जाता है। कितना भयङ्कर जमाना है। आज हमारी दशा क्या हो रही है ? । संसार रसातल में घसा जा रहा है। परम पुनित ऋषियों की भूमि इस भारत में भी आज यह पाप बडे जोरों से हो रहा है। ऐसा कहा जाता है। लेकिन अगर यह बात सच्ची है तो मामला खलास है। मैं कहता हूं, अब दुनिया में हमारे पास शील पालन करने के लिये जो उदाहरण देनेको था, वह भी नहीं रहा। लोगोंने प्रकृति की मर्यादा को भी तोड दिया। शील पालन करने के लिये माता-पिता भाई बहन के सिवाय हम दूसरा उदाहरण क्या देसकते हैं ? । पर अब तो कोई उदाहरण भी नहीं रहा।

गृहस्थों के लिए सख्त नियम-

मनुस्मृति में एक जगह मनुजीने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये विधान किया है कि,—

> मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
> बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

माता हो, बहिन हो, पुत्री हो, कोई हो, यदि युवावस्था में आ गये हैं, तो पिता पुत्र और भाईका भी अधिकार नहीं कि, एक आसन पर बैठे। एक चटाई पर, एक पलंग पर बैठने का इन्हें अधिकार नहीं। क्योंकि इन्द्रियोंका वेग बडा बलवान

है। चाहे कोई बडा भारी विद्वान् ही क्यों न हो, उसका भी पतन कब होजाय, कुछ कह नहीं सकते।

आप कहेंगे यह तो बेकार बात है। मनुजी में अक्ल नहीं थी। इतना कठोर से कठोर नियम मनुष्य के लिये रखने की मनुजी को क्या आवश्यकता थी ?। लेकिन आज ससार में ये प्रत्यक्ष उदाहरण, हमें इन नियमों की सचाई और यथार्थता बतला रहे हैं। उदाहरण हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं–यह इन्द्रियोंका विषय, मनोवृत्तियों का विषय कामवासना का विषय माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री कुछ नहीं देखते। मनुष्य विषय में जब अन्धा होजाता है, तब सब भूल जाता है। इसलिये मनुजी पहिले से ही सावधान रहने की कडी से कडी चेतावनी दे गये हैं। इस विषय–वासना से भरपूर वातावरण से विषाक्त ससारमें आप किस तरह अपने को बचाकर रह सकते हैं। यह मेरे कुछ समझ में नहीं आता। मैं नहीं समझ सकता कि, आजका मानव कहा चला जायगा ?। उसकी क्या दशा हो जायगी ?। यह विषय–वासनाकी घोर आसक्ति उन्हें पतन के कितने गहरे नर्क में ले जायगी ?।

स्त्रीका चित्र भी साधु न देखे–

हम साधुओंके लिये भी भगवानने सख्त से सख्त नियम बतलाये हैं।

चित्त भित्तिं न निज्झाए, नारीं वा सुअलंकिअं।

अर्थात् जिस मकानमें दीवाल पर एक भी स्त्रीको चित्र–पुतली भी बनायी हुई हो, उस मकान में साधुको नहीं रहना चाहिए। उस पुतली के सामने खडे रहनेका भी अधिकार नहीं है। एक त्यागी–सयमी वैरागी साधु, जिसने ससार को छोडा है, उसके लिये भी जब सख्त से सख्त नियम बनाये हैं, तो आप गृहस्थों की क्या दशा होगी ?। आपके यहां तो आजकल जहां देखो वहा स्त्रियों–विषय–वासनाका वातावरण, रस–गान, वाद्य शृगार का भरापूरा वासनामय वातावरण और फिरभी आपके दिलों में इस बातका ख्याल नहीं आता कि, हमें गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी आत्मकल्याण जरुर करना है। हम इस वातावरण में क्योंकर आसक्त होवें ?। कितना पतन है ?। साथ ही कितना कठिन काम भी है ? इस वातावरण से अलग रहकर आत्म-दमन करनेका। आप इन बातों को नहीं समझ रहे हैं। यही कारण है कि, आज घर घरमें इतना घोर पाप हो रहा है। जिसकी कि कोई सीमा नहीं। आप किस तरह तैर सकते

हैं ? । आपका उद्धार कैसे हो सकता है ? । मेरी समझ में तो आप अपने मनमें से इस बातको निकाल दीजिये कि हम गृहस्थ हैं, इसलिये सब प्रकारके कार्य करने की छूट है । पाप फिर वह कोई भी पाप हो, जितना भयंकर और छोडना दुष्कर है, और आपके लिये दोनोंके लिये बराबर है । आत्मकल्याण के लिये आपको-और साधुओंको दोनोंको उससे दूर रहना चाहिए । जैसे साधुओं के लिये नियम हैं, आपके लिये भी वैसे ही है । एक आसन पर बैठना, आपके लिए भी मना है ।

अब इस विषय को कल आगे समझाऊंगा ।

प्यार भाइओ और बहनो,

लक्ष्मण का ब्रह्मचर्य-

कल मैंने 'गृहस्थों का चतुर्थव्रत-स्थूल मैथुन विरमणव्रत' के विषय में कहा था। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना जरुरी है। उसके लिए भी नियम है। सबके लिए नियम इसीलिए बनते हैं-बने हैं कि-साधु और गृहस्थ अपने अपने धर्म का पालन करें। कल मैंने कहा था कि-माता, बहन या पुत्री हो, यदि युवावस्था में है तो, उनके साथ एक आसन पर बैठने का उसके भाई, पुत्र और पिता का भी अधिकार नहीं। इतने सख्त नियमों में रहनेवाला गृहस्थ ही, गृहस्थाश्रम के ब्रह्मचर्यव्रत को पालन कर सकता है। मैंने पहले भी एकदफे कहा था कि-सीताजी के साथ रहते हुए भी लक्ष्मण को पता नहीं था कि, सीता का मुंह कैसा है?। कितनी विचित्र और संयम की बात है। कितनी सतर्कता और कठोरता-से इस नियम का लक्ष्मणजीने पालन किया होगा। चौवीस घण्टे साथ में रहते हुए भी, सीताजी के हाथ बनी हुई रसोइ जीमते हुए भी, प्रत्येक कार्य में उनके सेवक की तरह रहते हुए भी, रात-दिन साथ-साथ भ्रमण करते हुए भी, बोलते चलते हुए भी, लक्ष्मणजी की आखें सदैव नीचे ही रहती थी। मेरी भाभी कौनसी साडी पहनती है?। कैसा लावण्य है?। मुह कैसा है? आदि आदि बातों का पता ही नहीं था। इसी संयम और ब्रह्मचर्य का प्रताप था कि, जिस समय मेघनाद को मारने का प्रश्न उठा है, उस समय यह कहा गया था कि मेघनाद को कोई मार सकता हैं, तो एक मात्र लक्ष्मण ही मार सकता है। दूसरा कोई नही। इसको मारने की शक्ति लक्ष्मण के सिवाय किसीके पास नहीं। और यह शक्ति लक्ष्मणने प्राप्त की अपने कठोर संयम और शील से।

अगर आप भी शुद्ध रीतिसे संयम और शील का पालन करना चाहते हैं, तो

आपको सबसे पहिले इस जहरीले वातावरण को दूर करना होगा । और अपने दिलमें इस बात की प्रतिज्ञा करनी होगी कि, जिस समय हमारे से कोई गल्ती हो तो भयंकर से भयंकर प्रायश्चित्त लेना पडेगा । और दृढ करलेना होगा कि, अपनी पत्नीके सिवाय दूसरी बहन माता और पुत्रिओं के सामने अपनी आंखे नीची करलेना होगा ।

इसी तरह हमारी बहन और माताएं जिस समय यह दृढ प्रतिज्ञा करलेगी कि, आंखसे आंख मिलाकर किसी परपुरुष को देखेंगे नहीं । उस समय वह सच्ची सती होगी । जिसमें सच्चा सतीत्व रहता है. उनकी आत्मशक्ति बढ जाती है । संसार के बड़े से बड़े महान् संकट में भी वे विचलित नहीं होते । लोगों के दिलों में हो जाता है कि, ऐसा क्यों हुआ ? यह एक अबला हो कर इतनी शक्ति इनमें कहांसे आयी ? पर सतीत्व की शक्ति महान् है । सच्चे सतीत्वसे बढ़कर कोई दूसरी बड़ी शक्ति वसुन्धरा पर नहीं । इस अलौकिक शक्ति से महान् से महान् संकट भी क्षणभर में दूर हो जाते हैं ।

कष्ट निवारण का एक उपाय-

प्राचीन समयमें होनेवाली स्त्रियों को देखिये । वे बड़ी बड़ी सुकोमल नारियाँ, जिन्होंने अपने जीवनमें कभी तकलीफ कैसी होती है, जानातक नहीं । उन्होंने महान् से महान् दुःख झेले हैं । और साहस के साथ उन कष्टों-और दुःखों पर विजय पायी है, एक मात्र अपने सतीत्व के प्रतापसे । जब इन नारियों पर संकट आये, अपने सतीत्व से तब तब उनपर विजय पाली । श्रीपाल की माता को कितना कष्ट आया । श्रीपाल को लेकर भयङ्कर जंगल में भटकना पडा । कई हिंसक पशु-पक्षियों के बीच में भी वह अपने सतीत्व के प्रताप से बची रही । और भी बड़े बड़े संकट आये, लेकिन सबसे पार होगयी । सीताजी पर कलंक आते हुए भी और अग्नि में कूदते हुए भी. और जब लोगोंको यह निश्चय था कि, सीताजी जल जायेंगी, किसी तरह से नहीं बच सकती, उस हालतमें भी बड़ी जाज्वल्यमान अग्नि पर उनके उज्ज्वल सतीत्वने प्रभाव डाला और वह अग्नि भी पानी हो गया । कोई बचने का साधन नहीं था । पर सतीत्व के बलने चमत्कार किया । उनका सतीत्व सच्चा था । अपने पतिके सिवाय जीवनभर मनसे भी किसीको नहीं चाहा । किसी परपुरुष की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा । स्पर्श करना तो दूर की बात थी । रात दिन अपने पतिकी ही मूर्ति और भाव मनमें रहता था । इसी शील के प्रभाव से अग्नि भी पानी हो गया । लोगोंने और

देवी-देवताओंने आकाश से जयजयकार किया। फूल बरसाये। उनका नाम अमर हो गया। आज भी उन्हें श्रद्धा और भक्ति से देखते हैं। उनका सतीत्व आज भी हिन्दू नारियों को प्रबल प्रेरणा दे रहा है। ऐसी सतीओं के सतीत्व के कारण ही आज आर्य-संस्कृति अमरत्व को पायी है। आज भी यदा कदा वैसे उदाहरण हमें आए रोज मिलते ही रहते हैं।

अग्नि में लडका क्यों बचा ?-

थोडे दिनों की बात है। एक पतिव्रता धर्म को पालन करनेवाली स्त्री की बात सुनी थी। कहा जाता है कि-वह इतना सतीत्व का पालन करनेवाली थी कि मेरे शरीर का नाश होजाय, लेकिन मेरे पति को कुछ न होने पावे। कुछ दिन साथ रहकर पति परदेश चला जाता है। स्त्री को लडका होता है। उसके तीन वर्ष बाद पति आता है। लडके को देखकर प्रसन्न होता है। लडका खेलता-कूदता है। पत्नीने अपने स्वामी को स्नान कराया, खिलाया, पिलाया और बादमें सब काम से निवृत्त होकर दोनों पलगपर बैठे हैं। बातचीत करते हैं, पति को निद्रा सताती है और वह अपनी पत्नी की गोद में ही सोजाता है। पत्नी बडी प्रसन्न थी-इतने दिनों के बाद पति को अपनी गोदमें सोते हुए देखकर।

इधर लडका सामने खेल रहा था। आगनमें एक कुंड था। उसमें अग्नि जल रहा थी। लडका खेलते खेलते कुड की तरफ चला गया। माता घबडाती है कि कहीं लडका आग में न गिर पडे, अतः इशारा करके लडके को बुलाती है। पतिदेव की निद्रा भग के भय से वह उठती नहीं है, और इधर बच्चा सचमुच आग में गिर पडता है। वह व्याकुल हो उठती है कि हाय ! मेरा बच्चा मरगया। उतने में ही पति उठता है, और पत्नी से कहता है, बच्चा कहा गया ? अभी यहां ही खेलता था इधर-उधर गया होगा। लेकिन उसका हृदय भरआता है और आखमें से आसू टपक पडते हैं।

पति आश्चर्य में पडजाता है, और पूछता है' " आखिर बात क्या है ? रोती क्यों हो ? "

" वह बच्चा तो सामने के अग्निकुड में गिरपडा है। न मालूम उसका क्या हुआ होगा ? " स्त्रीने जवाब दिया।

" कैसे गिर गया ? क्या तेरा ध्यान नहीं था ? "

" ध्यान तो था, लेकिन उस समय आप मेरे पाऊं पर अपना सिर रखकर गहरी निंद में सोरहे थे। उस समय उस लडके को बचाने की अपेक्षा आपकी सेवा मेरे लिये बहुमूल्य थी। अतः मैंने आपको जगाया नहीं।"

दोनों के चेहरे पीले पड गये और दोनों लडके को देखने दोडते हैं। देखते हैं तो आग ठंडी पडी है। बच्चा राख के ढेर में खेलता हुआ दिखाई देता है।

थोडी देरके पहिले जो आग धधक रही थी, धधकती हुई अग्नि में ही माता अपने बच्चे को पडते हुए देखती है, वही आग लडके के गिरते ही शान्त होजाती है। मालूम है किसका प्रताप है यह ? । उस स्त्री के सच्चे सतीत्व का। जिस सतीत्व के आगे आग भी शान्त होजाती है। यह उच्च सतीत्व का लक्षण है। देखना, कहीं आप बहनें इस उदाहरण को अजमानें न लग जावें। घर जाकर आप भी पतिसेवा में तत्पर होजाय और बच्चे को यह समझकर के, कि, हम भी पतिसेवा में दृढ है, अग्नि में जाने दें। यह तो इस दृष्टान्त का दुरुपयोग है। और शायद आप मेरे पर भी दोष लगादें कि, महाराजजीने तो हमारे लडके को मरवा दिया। हां, आप का मनोबल दृढ है, मन-वचन-काया से आपने अपने सतीत्व की रक्षा की है और उसके प्रताप से आपमें सच्चा सतीत्व तेज प्रकट हुआ है, तो उस तेजमें समस्त कष्ट और सब पाप भस्मीभूत हो जायेंगे यह निर्विवाद है। इसलिये आप अपने धर्म की रक्षा करें।

विधवा बहनों को भी मेरा यही उपदेश है कि, प्राण जाय तो बहत्तर है, सर्वस्व नाश होजाय तो कुरबान है, कोई परवाह नहीं, लेकिन इस पापी पेटके लिये इस संसार की धधकती हुइ विषय-वासना के कुंड में आप कभी न गिरें। अपने शील की दृढता-पूर्वक रक्षा करें और सधवा बहनों से भी मेरा यही कहना है कि, अपने पति के सिवाय परपुरुष के तरफ आप कभी निगाह न करें। मर्यादा में रहें। मर्यादा में रहनेवाले ही अपने सत्य का पालन करसकते हैं।

पुरुषों का तो कहना ही क्या ? इन्होंने तो इतनी छूट ले रक्खी है, जिस की कोई सीमा ही नहीं। खुद गिरते हैं, दूसरों को भी गिराते हैं। अगर आपसे व्रत का पालन नहीं होता, आप शादी कर सकते हैं। लेकिन दूसरों को व्रत का भंग कराने का आप दुःसाहस न करें। परस्त्री को माता और बहन या पुत्रीवत् समझें। यही गृहस्थों का स्वदारासंतोष नामक चतुर्थ व्रत है और स्त्रीयों को भी परपुरुष को पिता, भाई या पुत्र के समान समझना उनके लिये चतुर्थव्रत है।

स्वस्त्रीसभोग भी क्यों ?

शास्त्रकारोंने कहा है: 'पुत्रकाम' स्वदारेष्वधिकारी ' पुत्रकी इच्छा से ही स्त्रीसभोग करने का अधिकार है। अन्यथा सयम से रहें। स्वदारासंतोष और स्वभर्तार संतोष का भी यही मतलब है कि, मनुष्यको सयमसे रहना चाहिए। कुत्ते भी मर्यादित हैं।

मनुष्य होकर भी रात-दिन अपनी स्त्री के साथ ही क्यों नहीं, विषयवासना में रत रहते हैं, तो मनुष्य का जीवन कुत्ते आदि पशुओं से भी गयाबीता है। पंचमी, अष्टमी, चौदश आदि तिथियों का ख्याल भी करना चाहिए। अरे, तिथियों का तो छोड़ो, पर्युषण-सवत्सरी आदि महापर्वो में भी कई लोग नहीं बचते। ऐसी हालत में यह कहा जाय कि ऐसे लोग महाव्यभिचारी हैं, तो इसमें अतिशयोक्ति क्या है ? कुत्ते जैसे निकृष्ट प्राणी भी प्रकृति के नियमों को नहीं तोडते। वे भी जब उनकी ऋतु होती है, समागम करते है। उनके लिये कवि कहता है—

> कार्तिक मासके कुतरे तजे अन्न और प्यास।
> तुलसी वाकी क्या गति ? जिनके बारह मास ॥

कुत्ता, जो कि खास ऋतु में ही विषयसेवन करता है। वह भी ऋतु आने पर पागल होजाता है। खाना-पीना सब भूल जाता है। बिमारीयों से सड जाता है। मुह भी ऐसा होजाता है कि देखनेसे भी घृणा पैदा हो। जब उनको, एक निश्चित ऋतुमें विषय सेवन करने से यह हालत होती है, कवि कहता है कि, बारह महीनें विषय-सेवन करनेवालों की क्या दशा होती होगी ? । स्वस्त्री के साथ भी मर्यादा भग करके विषय-सेवन करनेवाला उतना ही व्यभिचारी है, जितना की परस्त्री के साथ रमण करनेवाला। अतः मर्यादा उल्लघन कभी नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य पालन के लिए क्या करना ?

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये शास्त्रकारोंने नव वाड बतलायी हैं। उसके अनुसार आपको अपना जीवन बिताना पडेगा। चित्तवृत्तियों को स्थिर करना पडेगा। विषय-वासनामय वातावरण को छोडकर सादा और सात्विक वातावरण पैदा करना पडेगा। सादा-सात्विक भोजन और उच्च विचार के सिद्धान्त को दृढतापूर्वक अपनाना पडेगा। पर्वो में प्रतिज्ञा लेकर भी आप स्त्री के सहवास में आकर उस प्रतिज्ञा का भग करदेते हैं।

इन शिथिल मनोवृत्तियों को काबू में करना पडेगा। प्रतिज्ञा के पालने के लिये आपको स्त्रियों के संसर्ग में न आना पडे, इस बातका ख्याल रखना चाहिये। भोजन भी बिलकूल सादा करना चाहिए। गरिष्ट और चटपटे मसालेदार भोजन, हमारी इन्द्रियों को उत्तेजित कर देता है। ऐसे विकृत भोजन का भी शील की रक्षा के लिए त्याग करना चाहिए। अच्छे अच्छे नैतिक कार्यों में आपको अपने मनको लगादेना चाहिए। सद्-वाचन में मनको पिरोदेना चाहिए। तभी आप अपने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर सकते हैं।

योग, सामायिक, प्रतिक्रमण, जाप आदि निरर्थक हैं, जबतक आप अपनी मनो-वृत्तियों को वशमें नहीं रख सकते। निन्यावें करोड जाप करिये, चाहें सेंकडो माला फिरावें, जबतक आपका मन आपके अधीन नहीं, आपकी सब क्रियाए निरर्थकप्रायः हैं।

सुनने में आता है कि, बहुतसे मनुष्य सिद्धि करते करते पागल होगये। सिद्धि की लालच से बहुतसे कोठरियों में बंद होजाते हैं। श्मशानभूमि में रातभर खडे रहते हैं। गुफाओं में जाकर ध्यान लगाते हैं, लेकिन इनका नतीजा यह होता है कि वे बिलकूल पागल होकर बाहर आते हैं।

इसका क्या कारण है? आपने सोचा है कभी? वे तपश्चर्या करते हैं, ध्यान लगालेते हैं, सबकुछ करते हैं लेकिन फिरभी उनकी मनोवृत्तियों नहीं बदलती। जाप करते करते, तपश्चर्या करते करते यह वासना की वृत्तियों-लोभ-मोह-क्रोधादि वृत्तियों उभडकर राक्षसीरूप धारण कर हठात् साधकके सामने खडी होजाती हैं। अगर इन उभरती हुई राक्षसी वृत्तियों को मनुष्य दबादेता है, तब तो सिद्धि उनके सामने हाथ जोडकर खडी होजाती है। लेकिन अगर वे ही इनके शिकार होजाते हैं, तो वे पागल होजाते हैं-उनका चित्त भ्रमित होजाता है।

आपकी तपश्चर्या और सिद्धियों को सिद्ध करने का एक ही उपाय है। उसको आप सिद्धकर लीजिए। आपको सबकुछ मिलगया है-वह है वीर्य-रक्षा। इसके पीछे सारी सिद्धियों अपने आप चली आयेगी।

इसलिये मित्रों, मेरा आपसे यही उपदेश है कि, अपने व्रत का पालन करिए। परस्त्री का सर्वथा त्याग करें। अपने गृहस्थाश्रमको पवित्र रखें और स्वर्गीय आनंद और सुखका अनुभव करें।

इस विषय पर जितना भी कहा जाय उतना कम है। आजकी इस पतन अवस्था को देखकर मेरा ख्याल है कि अगर मुझे समय हो तो मैं प्रतिदिन इसी विषय पर आपको समझाऊ। आपका तो हुआ सो हुआ, लेकिन इस भावी पीढीके लिये, जो विषके बीज बोये जारहे हैं-उसके भीषण परिणामों से भावी संतति कैसे अपना त्राण पा सकेगी ?। मैं यही सोच कर काप उठता हू।

आजकी हालत में तो, आपको हम भलेही हजारों वर्षोंतक उपदेश देते रहें, कोई विशेष लाभ तबतक होता मालूम नहीं होता, जबतक आप खुद अपने कर्तव्य का विचार न करे। मेरा क्या कर्तव्य है ?। मुझे किस तरह संयमपूर्वक रहना चाहिये ?। इस सिद्धान्तका आपके हृदय मे विश्वास होजाना चाहिए कि-'वीर्यनाश ही मृत्यु है और ब्रह्मचर्य ही जीवन है'।

आधुनिक प्रलोभनों से बचें-

इसलिये महानुभावो ! ज्यादा क्या कहू। युवक हो, बाल हो, वृद्ध हो, स्त्री हो, पुरुष हो, कोई हो-सबको इस बातका विचार करना चाहिए। वीर्यनाश करनेवाले आधुनिक साधनों से दूर रहना चाहिए। मिठाईयों और नमकीन, तेलखटाई आदि पदार्थों को खाते हुए, नाटक-सिनेमा, नाचरंग देखते हुए, विलासमय वातावरण में रहते हुए आप कैसे ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते है ? इसलिये आपको इन बातोंसे बचना चाहिए। छोटे छोटे बच्चोंमें इन वैषैले वातावरण का असर न हो, उनकी आदतें खराब न हो जाय, इन बातोंका आपको पूरा ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा आपका देश-समाज-जाति एव अपने कुल के लिए भी भयकर अपराधी एवं द्रोही साबित होगे।

खास करके मैं अपनी बहनों को कहूंगा। और आशा करुगा कि, वे तो मेरी बातों पर अवश्य ध्यान देगी, और अमल करेगी। आप अपनी जिंदगी रहन-सहन व्यवहार सादा बना लीजिये। जिसके कारण आपकी मनोवृत्तियों शुद्ध और निर्मल हों। सात्विक रहें। मनुष्य-जीवन सार्थक होजाय। आप के ऊपर बडी जिम्मेदारियों हैं। भावी पीढीयों का सुधरने-बिगडने का आधार आपके ऊपर ही ज्यादा है।

'धर्मकी बहन' बनाने का ढोंग-

बहनों से मैं एक बात और । आजकाल बहने मर्यादा का बहुत भग कर रही हैं। पुरुषों से मेल-जोल में, में, रहन-सहन में, हसी-मजाक में वे बडी

आजाद हो रही हैं। लेकिन उनको सावधान रहना चाहिए। पतन की शुरुआत धीरे धीरे होती है। पुरुष और स्त्री पहिले आपस में मेलझोल बढाते हैं। फिर हंसी-मजाक भी होने लगती है। चिठ्ठीपत्री शुरु होती है। एकान्त में बैठना उठना भी होता है। जिसका नतीजा अन्त में दोनों के पतन के रूपमें आता है।

आजकल ' धर्मकी बहन ' बनाने की प्रथा चल पडी है। उस विषय पर भी पहले मैंने कहा है। जिस-किसी जातिकी-धर्म की है, गृहस्थ आपस में एक दूसरे की स्त्री को 'बहन' बनाते हैं। ठीक है। लेकिन इन 'धर्मकी बहनों' के साथ भी आज के निर्बलवृत्ति गृहस्थ दुराचार का सेवन करते हैं। या धर्मकी बहन की ओटमें वे अपनी विषय-वासनाओं की पूर्ति करते हैं, क्योंकि ' बहन ' बना करके वे उनके साथमें सब प्रकार की छूट ले सकते हैं और जिसका परिणाम यह आता है। आप संसारकी समस्त स्त्रियों को अपनी ' बहन ' क्यों नहीं समझते।

लेकिन मनुष्य के हृदय मे वासनाओं के पुंज भरे पडे होते हैं। और उनकी तृप्ति के लिये मनुष्य नाना प्रकार के उपाय सोचता रहता है। और पवित्र सम्बन्ध के नाते वे अपनी अपवित्र भावनाओं को पोषता रहता है। किसी स्त्री को 'धर्मकी बहन ' बनाता है। बहन से एकान्त में बातचीत करते हैं। हंसी दिल्लगी होने लगती है। शारीरिक स्पर्श शुरु होजाता है। आखिरकार दोनों अपने पवित्र चारित्र से भ्रष्ट होजाते हैं। यह दशा मनुष्य की होजाती है। कोई जरूरत नहीं, ऐसा सम्बन्ध करने की और रखने की। अपनी पत्नी को छोडकर के संसार की सभी स्त्रियों को ' बहन ' ही समजिए। और स्त्रियों के संसर्ग मे ज्यादा न रहिए। नहिंतो आपको गिरते देर नहीं लगेगी।

पुरुषो का परस्पर दृष्टिसंग-

स्त्रियोंकी बात छोड दीजिए। लेकिन दो पुरुष भी एक दूसरे से प्रेम करते हैं। मित्रता करते हैं। पर, धीरे धीरे उनकी मित्रता के बढने के साथही साथ हमें मालूम होता है कि, वे मित्र हैं, लेकिन उनकी मित्रता का परिणाम आये दिन कितना भयंकर आता है। इसके उदाहरण हमें प्रत्यक्ष मालूम होरहे हैं। यह मित्रता धीरे धीरे दृष्टिरागमें बदलती है। और एक मित्र दूसरे मित्रको देखे बिना चैन नहीं पाता। सबकूछ भूलजाता है। उसके प्रेममें पागल बनकर इतना बेशुद्ध होजाता है कि, जिसकी कोई हद नहीं। इसलिये मैंने पहिले भी एकबार कहा था कि-कामराग, स्नेहराग और दृष्टि-

राग—इन तीनों राग में ' दृष्टिराग ' बड़ा भयकर है । दोनों पुरुष होते हुए भी आपस में दृष्टिराग होजाता है, फिर चाहे यह विषय शरीर का हो या मन का । लेकिन मानसिक विषय ऐसा होजाता है कि उसको पागल बना देता है ।

मित्रो ! यह प्रेम और मित्रता जैसा आप कहते हैं, वैसा नहीं है । सच्चा प्रेम मनुष्य को मुक्ति दिलादेता है, सच्ची मित्रता हमारे जीवन को सन्मार्ग पर ले आती है । परमात्मा के ऊपर हमारा वैसा प्रेम और भक्ति होजावे, तो हमारा बेड़ा पार होजावे । शुद्ध प्रेम में दृष्टिराग नहीं होसकता । प्रेमी का सयोग हुआ, तो भी क्या और गया तो भी क्या ? सयोग-वियोग इस शुद्ध प्रेम में बाधक नहीं बन सकते ।

कहने का मतलब यह है कि, जो प्रेम दृष्टिराग को पैदा करता है, वह प्रेम नहीं रहा । वह तो हमारा पतन करदेता है ।

प्यारे भाईओ और बहनो ! खूब याद रखिए । ससार में रहकर पवित्र बने रहना कितना कठिन काम है, इसको आप सोच लीजिये ।

अन्तमें जो जिज्ञासु है, जिन्हें लालसा है और जो अपना श्रेय-भला चाहते हैं, अपने जीवन को उच्च एव पवित्र बनाना चाहते है, उनसे मेरा यही कहना है कि, वे इन बातों पर दृढ मनोबल से आचरण करें, अपनी इन्द्रियों को वशमें करें । संयम से रहें । अखड ब्रह्मचर्य का यदि पालन नहीं कर सकते हैं तो गृहस्थ धर्म का पालन करें । गृहस्थ का मतलब है वे शादी कर के स्वदारा-सतोष के नियम का पालन करें । और परस्त्री का सर्वथा त्याग करें और स्वदारा में भी मर्यादा का पालन करें । जीवन को सात्विक सुदर और सरल बनाये रक्खें ।

भाइओ और बहनों,

आज मैं पांचवे व्रत पर कहूंगा।

पाँचवा व्रत है–स्थूलपरिग्रहपरिमाणव्रत।

पांचवा व्रत–

यह 'परिग्रह' शब्द कैसा है? । जिसको इसका 'ग्रह' लगा है, वही बतला सकता है। वैसे साधारण 'ग्रह' लगनेवाले को जो अनुभव नहीं होता है, उससे ज्यादा इस 'ग्रह' के लगने से अनुभव होता है। यह उन सब 'ग्रहो' में बड़ा ग्रह है; चारों तरफसे यह ग्रह लगता है।

आत्मा को मुरझा देनेवाला, आत्मा का पतन करनेवाला अगर कोई है तो मात्र 'परिग्रह' है। इस परिग्रह का '**परिमाण**'–मर्यादा कर के आप निश्चित हो। यह आप गृहस्थों के लिये अत्यावश्यक है।

पैसा साधन मात्र हो–

संसार में रहते हुए आपको पैसे की जरुरत है, यह मैं मानता हूं और कई बार पहले भी कहचूका हूं। पर जरूरत है किसलिये?

इसकी जरूरत मात्र एक साधन के रूप में आपको है और होना भी चाहिए। लेकिन जब पैसा हमारा 'साधन' न होकर 'साध्य' होजाता है, तब हम उसके लिये अनीति, अन्याय और बेईमानी करने लग जाते हैं। और उस पैसे के लिये नाना प्रकार के पाप करते हैं।

इस पापाचार को रोकने के लिये ही '**परिग्रह का परिमाणव्रत**' बतलाया गया है। इस व्रतमें एक और खूबी है कि, आप लोग जितना परिग्रह का 'परिमाण' कर लेंगे, उससे बचनेवाले पैसे का लाभ दूसरों को मिलेगा। परिग्रह का परिमाण आपके लिये इसलिये भी जरूरी है कि, जो मनोवृत्तियाँ आपकी आसक्ति की तरफ

जाती है, और आशा की कोई सीमा ही नहीं रहती, वह रुक जायगी। परिमाण से-मर्यादा से आगे नहीं बढेगी। आसक्ति के कारण आप लोग सात्विकता को भूल जाते हैं, दया-दान-परोपकार को भूलजाते हैं, मोह बढजाता हैं, नाम और यश की भूख आपको अत्यन्त सताने लगती है, यों कहना चाहिये कि पूजीवादी की तमाम बुराईयों जिससे पैदा होती है वे सारी बुराईयों को काबूमें रखने के लिये 'परिग्रह का परिमाण' करना बडा जरुरी है।

देश में इतना दुःख क्यों ?

आज इस धन-धान्य से पूरित देशमें यह आर्थिक एवं भोजन सम्बन्धी संकट क्यों आया ? क्यों करोडों मानव मुट्ठिभर अन्न के बिना तडप तडप कर अपने प्राणों को छोड रहे है ? मैं मानता हूं कि-विदेशी साम्राज्यने हमारी यह दशा की। मैं मानता हू कि पराधीनता का यह अभिशाप हैं। लेकिन इसके साथ ही साथ मुझे यह कहते भी तनिक संकोच नहीं होता कि-हमारे व्यापारी बन्धुओं का भी इसमें बडा हाथ है। सारा व्यापार आज उनके हाथमें है। अगर वे परिग्रह का परिमाण करें, लोभ-लालसा को कम करें तो मैं मानता हू कि, देश की स्थिति बहुत कुछ अंशों में सुधर जाय। लेकिन दुनिया इस व्रतको भूल गयी है। मैं कहसकता हू देश को पराधीनता से मुक्त कराने और सुख प्राप्त कराने में भी यह 'व्रत' बडा सहायक हो सकता है।

श्रीमंतों की निर्दयता-

हमारे पुंजीपति परिग्रह-परिमाणव्रत का आदर करें तो ? वे तो पैसे की अधिकाधिक लालसा में फंस गये हैं। देशका उन्हें कोई पता नहीं। चाहे देश रसातल में जाय या अनन्तकाल तक पराधीनता की बेडियों मे जकडा रहे। उन्हें कोई दरकार नहीं। वे तो अपनी ही लालसाओं की तृप्ति में मशगूल हैं। लक्षाधिपति, कोटाधीश बनना चाहते हैं और कोटाधीश, अब्जपति बनना चाहते हैं। उनकी आशाओं का कोई अन्त नहीं। उन आशाओं की पूर्ति कैसे हो रही है ? उनका उन्हें कोई पता भी नहीं। लाखों आदमियों को तन ढकने को कपडा नहीं खानेको मुट्ठीभर अनाज नहीं, बैठनेको कहीं जगह नहीं। ये सब उनकी ही आशाओं की तृप्ति की बदौलत हो रहा है। उनका उन्हें पता नहीं। गरीब और गरीब होते जारहे हैं। लेकिन ये पूंजीपति आज पैसे के नशे में मतवाले हो रहे हैं। लेकिन उनके नशों को उतारने के लिये आज कम्यूनिझम,

सोश्यालिझम, बोलशेविझम, गांधीइझम आदि वाद मुंह खोले आ रहे हैं, इसका शायद उनको पता नहीं होगा।

आप खूब याद रखिये, अगर आपके पास अनाज के कोठे के कोठे भरे पडे हैं, और आपके पासवालों को दिनमें एक दफा भी खाने को नहीं मिलता, तो इसका नतीजा अच्छा नहीं होता, यह बिलकुल सीधी-सादी बात है।

हमारे क्रोडाधिपति या लक्षाधिपति इस बातको सोच लेते कि-इस लक्ष्मी पर हमारा कोई हक नहीं। यह गरीबों की लक्ष्मी है। मजदूरों की पूंजी है। हमारे पास तो एक अमानत के तौर पर रक्खी हुई है। हमें इस अमानत को हजम करके विश्वास-घात करने का पाप नहीं लेना है। तो आज हमारे देश के लाखों करोडों व्यक्ति जो बेंगाल, मद्रास और अन्यान्य देश में तडप-तडप कर मर रहे हैं, उनके मरने की नौबत कभी नहीं आती।

राजाओं का कर्त्तव्य-

इसी तरह लाखों-करोडों रुपया प्रजा के पसीने की कमाई का छीन छीन कर तिजोरियों में और खजानों में भरनेवाले हमारे देशकेराजा लोग, विलायत जाकर ऐश-आराम और भोग-विलास की गटर में अपनी लक्ष्मीको नहीं बहाकर, ये समझते कि, प्रजा के पैसों को इस तरह उडाने का मुझे अधिकार नहीं, इनसे मुझे प्रजा के हित के ही कार्य करना चाहिए, तो इससे प्रजा की और साथ में उन की भी भलाई होती।

प्राचीन समय को याद करिये। जो राजा, प्रजा को अपने पुत्रवत् समझकर उनका पालन करता था, और दोनों सुख से--आनंद से अपनी जिंदगी बिताते थे, प्रजा को किसी तरह का कष्ट नहीं होताथा। आज के राजाओं को देखिये, जिसकी प्रजा भारे कष्ट के कराह रही है, और आप विलायत में भोग भोगते ही रहे हैं। यही दशा आजके धनवानों की भी हो रही है।

लोभके कारण ससार का संहार-

आज का साम्यवाद जैनों के परिग्रह परिमाण व्रत में बड़ी खूबीसे समाविष्ट होता है, अगर आप गहराई से सोचेंगे तो, आपको मालूम हो जायगा। आज का साम्यवाद आजकी विषमता से पैदा हुआ है। जो पूंजीपति और गरीबों में संघर्षरूप से बराबर चल रहा है। और जिसमें अनेक त्रुटियों भी निहित हैं, लेकिन

यह परिग्रह परिमाणव्रत तो दोनो के प्रेम-पूर्ण सहयोग पर स्थित है। अगर और जरा बारीकी से विचार किया जाय तो एक ही नतीजे पर पहुचते हैं। हमारा कोई हक नहीं कि, हम आवश्यकताओ से ज्यादा वस्तुओं का सग्रह करके ज्यादा पैसों का सग्रह करके अथवा ज्यादा वस्तुओं का सग्रह करके हम दूसरों को उनसे वचित रक्खें। गरीबों को भूखों मारें, उनकी आवश्यकताओं को मिटावें। आजकी यह मानव सहार लीला केवल परिग्रह के ऊपर निर्भर है।

आज हिटलर और चर्चिल यह भीषण सहार करने पर क्यों तुले हुए हैं ?। क्या इनके पास खानेको नहीं है ? इनके लडके भूखों मर रहे हैं ? नहीं, दोनोंमें से किसीका लडका भूखा नहीं मरता। बल्कि, इनके पास किसी चीज की कमी नहीं। लेकिन फिर भी इनको एक लालसा सता रही है। इस ससार की सारी सत्ता, सारी मिल्कियत और सारी पूजी पर अपने अपने अधिकार जमाने मे ये दोनों तुले हुए हैं। दोनों को लालसा की आसुरी भूख लगी हुई है। इसलिये मनुष्यजाति का यह सहार हो रहा है।

सहारकों के एजट-

उधर यह हो रहा है और इधर राक्षसों के एजन्ट हमारे पुजीपति, धन बटोरने का यह स्वर्ण अवसर जानकर अपनी राक्षसी माया को फैला रहे हैं। अपने भाईयों को भूख की भट्ठी में भुज रहे हैं। दाने दाने के लिये तरसा रहे हैं। इनको अपने सगे भाई की भी परवाह नहीं, इनको तो एक ही लालसा का भूत लगा हुआ है। खूब पैसे इकट्ठे करने की दौडधूपमें पडे हुए है। न तो इनके दिलमें दया है और न मानव प्रेम। इन सारी बुराइयों को नष्ट करने का एकमात्र उपाय है-परिग्रह-परिमाणव्रत। इस व्रत के प्रभावसे मनुष्य की लालसाए बहुत ही सीमित होजाती हैं। और वह बहुत से पापोंसे बच सकता है। आप अपनी आवश्यकताओं का नियम कर लीजिए। मनमें एक परिधि निश्चित कर लीजिए कि-' हम इतना पैसा रक्खेंगे।' लाख-दो लाख या दस लाख। इस नियम का नतीजा यह होगा कि, आप की इच्छाए सीमित हो जायगी। और इच्छाए सीमित होनेसे आप का पाप भी सीमित होजायगा, क्योंकि ससार के मनुष्य की एक इच्छा की यदि पूर्ति होती है, तो उसके हृदय में फिर बहुतसी इच्छाए पैदा होती हैं। और उन बहुतसी इच्छाओं की पूर्ति के लिये वह नाना प्रकार के

अनीति-अत्याचार करने को तैयार होजाता है। अतः सब पापों को रोकने का एक ही उपाय है कि-आप अपनी इच्छाओं को सीमित बनालीजिए, और इच्छाओं को कम करने के लिए 'परिग्रह-परिमाणव्रत' के समान संसार में दूसरा कोई अमोघ उपाय नहीं है।

परिग्रह परिमाण से एक और फायदा-

दूसरी बात। इस व्रत से एक बडा फायदा यह है कि-आपने जितना नियम लिया होगा, उससे ज्यादा यदि आपके पास धन होजायगा तो आप उसे सद्कार्यों में खर्च करसकेंगे। इससे जनहित के बहुत बडे कार्य आप से होगें। परोपकार के कार्य में धन का सदुपयोग करके आप पुण्य को हांसिल कर सकेंगे। अन्याय या अनीति की तरफ आपकी कभी प्रवृत्ति ही नहीं होगी।

मान लीजिये, आपने एक लाख रुपये का नियम लिया है और एक लाख रुपया आपने कमालिया। अब जो कुछ भी ज्यादा आप कमायेंगे उसको आपको अच्छे अच्छे कार्यों में लगादेना ही होगा। तीर्थ-यात्रा, साधुसेवा आदि पुण्य कार्यों में खर्च करेंगे। गरीबों को अन्न-वस्त्र देसकेंगे। संस्थाओं को पुष्ट कर सकेंगे। देखिये, आप का और दूसरों का आप कितना भला कर सकते हैं ? शास्त्रकार कमाने की मना नहीं करते। खूब कमाईये और खूब आनंदसे रहिए। लेकिन दूसरों को दुःखी कर के, या दूसरोंको भूखे मारके आप धनवान बनने की कभी इच्छा न करें। ऐसी बातें तब ही होती है, जब इच्छाओं को रोकें, अतः सारी बुराईओं को नष्ट करनेवाले और सब तरह के सुखों को देनेवाले इस परिग्रह-परिमाणव्रत के महत्त्व को आप समझ गये होंगे।

व्रत लेने पर भी ठगाई-

लेकिन इस व्रत को पालन करने के लिए आपको अपनी वृत्तियों पर अंकुश करना पडेगा। आपकी मनोवृत्ति यों काबु में होनी चाहिए। नहीं तो इस सुंदरव्रत का भी आप दुरुपयोग कर सकते हैं। उस समय यह व्रत आप के लिए एक ढोंग होजायगा। समझ लीजिये, पहले आपने एक लाख रुपये का व्रत लिया। लाख होगये। अब चंचलता बढी। परिमाण बढा कर के आपने एक करोड रुपये का करलिया और करोड होगया तो अब्जों के ऊपर चले जायेंगे। या फिर चालाकियाँ करने लग जायेंगे। थोडा पैसा अपनी पत्नी के नाम करदिया, थोडा अपने पुत्र के नाम करादिया, थोडा अपने भाई के नाम पर करदिया। इस प्रकार पैसा जैसे बढता गया, आप दूसरों के नाम चढाते गये। और

अपने नाम पर तो उतना ही रक्खा, जितना परिमाणव्रत किया है। यह उस व्रतका भयकर दुरुपयोग हैं । ऐसे दिखावटी व्रतों से कोई फायदा नहीं । व्रत के असली मतलब को नहीं समझकर केवल दुनिया को दिखलाने के लिए व्रत लेना भी बड़ा भारी पाप है। उससे बुराईयों में कोई फर्क नहीं आता।

आज अवसर करके धर्मवृत्ति के पीछे ढोंग चल पडा हैं। केवल दिखलाने के लिए लोग सबकुछ करते हैं, व्रत भी रखते हैं, दान भी करते हैं, लेकिन भीतरी मनो वृत्तियों बडी मलिन और कपटी होती है, जिससे कोई फायदा नहीं होता । सबसे पहिली बात हृदय की शुद्धि-मन की पवित्रता की है।

पाप करके पुण्य का फल नहीं लिया जाता-

गृहस्थाश्रम में रहते हुए द्रव्य की जरूरत है, यह बात मैं पहिले बतला चूका हू। लेकिन शास्त्रकारोंने यह ' परिग्रह परिमाण ' व्रत इसलिये बतलाया है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से ज्यादा चीजें न रक्खे, क्योंकि जरूरत से ज्यादा चीजें इकट्ठी करने में जब मनुष्य लगजाता है, तो वह नाना-प्रकारके पाप, अत्याचार, छल, प्रपच, कपट करने लगजाता है । आप लोग कहेंगे कि, " हमारी पुण्य प्रकृति से हम प्राप्त करते हैं, और भोग-विलास भोग रहे हैं, उसमें भाग पाडने का क्या हक ? "

बेशक, मैं भी मानता हू कि, जो कुछ मिलता है अपनी अपनी पुण्य-प्रकृति से मिलता है। लेकिन इसको प्राप्त करनेके लिए जो दुनियाको नुकसान पहुचाया जाता है, अनीति की जाती है, घोर-पाप किया जाता है, वह किसके आधार से कियाजाता है । यह सब पापाचार करने का क्या हक है ? । याद रखिये, बुराई का नतीजा एक दिन अवश्य भोगना पडता ही है । प्रकृति के नियम को कोई टाल नहीं सकता। पाप करके पुण्य का नाश न करिए। अगर आपकी पुण्य प्रकृति है, तो नीति और न्याय से धन को उपार्जन कर के पुण्य को और बढाईए।

धन का उपयोग कैसा होता था?

पहिले के जमाने में भी लोग पैसा इकट्ठा करते थे और ऐसे ऐसे धनवान होते थे कि एक एक आदमीने सालभर तक लाखों आदमियों को जीवित दान देकर मृत्यु के मुख से बचाया था । करोडों रुपया खर्च करके मंदिर और धर्मशालाओं का निर्माण किया था।

इतिहास के पन्ने उलटिये और खूब गहराई से उसका अध्ययन करिए । गरीबी उस समय नहीं था । हर मनुष्य प्रसन्न एवं सुखी था । खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी । पासमें धन भी खूब था । कोई मांगनेवाला भी उस समय नहीं था कि जिसको देते । अतः उन्होंने सोचा कि इस धनको ऐसे कार्यों में खर्च करना चाहिए कि, जिससे देश, धर्म और जाति की इज्जत बढ़े । हजारों मनुष्यों को उससे शिक्षा मिले । भविष्य के इतिहास में भी लिखा जाय कि–प्राचीन कालमें हमारे देश में ये कला–कौशल्य था। ऐसी शिल्पकलाएं थी । ऐसा सुखी और सम्पन्न हमारा देश था । अकेले वस्तुपाल तेजपाल, ऐसे ही कार्यों में करीब तीन अरब रुपये दान कार्यों में लगा गये । इस परसे अनुमान लगा सकते हैं कि, लक्ष्मी उस समय कितनी थी ।

पहिले के हमारे राजा लोग भी ऐसे ही होते थे । चार वर्ष तक प्रजासे कर आदि इकठ्ठा करके खजाना भरते थे । और पॉचवे साल उस सारे द्रव्य को प्रजा के हित के लिये खर्च करदेते थे । उसमें से एक कोडी भी अपने खर्च के लिये लेना हराम समझते थे । टेक्स जरूर पहले के समय में भी था । लेकिन वह टेक्स प्रजा के हित के लिए, प्रजा के रक्षण के लिए था और अन्तमें उसका उपयोग प्रजा के हित के लिये ही करते थे । कवि कालिदास के शब्दों में कहा जाय तो—

प्रजानामेव भूत्यर्थं प्रजाभ्यो बलिमग्रहीत् ।

प्रजा के कल्याण के लिये ही राजा प्रजासे टेक्स लेते थे ।

कहने का मतलब कि उस समय के लोगों की चित्तवृत्तियों इतनी मर्यादित थी कि, आज के मनुष्यों की तरह वे हाय हाय नहीं करते थे । उन लोगों के पास जितना भी होता था, उसी पर संतोष से जीवन बिताते थे । लेकिन आज इतना होते हुए भी संतोष नहीं, धैर्य नहीं, पांच मिनिट बाल–बच्चों के साथ आनंद से बातचीत करनेकी–बैठने की फुरसद नहीं । रोटी खाने का भी समय नहीं । आगे भोजन की थाली पडी है और हाथमें टेलीफून का रिसीवर लिये हुए हैं । यह है आज की दशा ।

धर्मादे के द्रव्य का भी व्यापार–

बनियों की यही वणिकवृत्ति धर्मादे के पैसेमें भी काम कर रही है । धर्मादे के पैसोंको भी व्यापार–उद्योग आदि में लगाकर, व्याज उपजाकर बढने का प्रयत्न करते हैं । पेढीएं चलाते हैं । खर्चने का नाम नहीं । इससे बुद्धियां भी भ्रष्ट होती है और

उससे उपार्जित पैसा भी नहीं फलता। उस पैसेसे उपार्जित पैसा हमारे पेटमें आता है, तो हमारी बुद्धिया भ्रष्ट करता है, इसी तरह किसी का अमानत का पैसा भी-अपने नामसे व्यापार में लगादेना, यह भी-ऐसा ही पापमय कार्य है। भयकर ठगाई है। आज ऐसे ठगारे समारमें बहुत होगये हैं। अगर कोई कहता है, तो लडाई झगडे पर उतारु होजाते है, समाजमें झगडे खडे करदेते है और अगर देनेकी नौबत भी आवे, तो किसी तरह झगडा डालकर थोडे बहुत में अपना पल्ला छुडालेते हैं।

यही किस्सा देवद्रव्य का है। शास्त्रकारों के कथानुसार सातवीं नरकमे भले ही चले जावें, पइ रुपया अपने पेटमें डालकर स्वर्गमें जानेकी-लालसा बना रक्खेंगे। देवद्रव्यके नाम से इतना झगडा उठायेंगे कि, जिसकी हद नहीं। आज इन ट्रस्टीयों को इसके बारे में कोई पूछनेवाला भी कोई है?

क्षत्रियों का धर्म बनियों के हाथ-

हमारा धर्म क्षत्रियों का धर्म था। बहादुरों का धर्म था। जो किसी की भी चीज को हडपना पाप समझते थे। बल्कि इमानदार होते थे। और प्रामाणिकता से धर्म का पालन करते हुए अपना पवित्र जीवन पालन करते थे। यह धर्म था प्रभुमहावीर का। आज हमारा वही धर्म व्यापारीयों के, तिजोरियों को भरनेवाले बनियों के हाथों में आया और ऐसा आया कि वे भगवान को भी अपने कब्जे में रक्खें, पैसे को भी रक्खें, गुरुको भी रक्खें और धर्म को भी अपने कब्जे में रखकर तागडधिन्ना करते हैं। परन्तु धर्मरूपी सूर्य छिपाये छिप नहीं सकता। यह प्रकृति का अटल नियम है। थोडे से दिन और यह तागडधिन्ना करलें।

अभी एक आदमीने बम्बई में दिवाला निकाला था। नाम मैं नहीं लूगा। चौदह लाख का देवाला निकाला। उसमें अपने शिवपुरी सस्था की भी रकम थी। कहाजाता है कि-बाजारवालोंने तो सबोंने लड-झगड कर कुछ न कुछ वसुल किया। मगर रोती रहगयीं तो ऐसी धार्मिक सस्थाऐं और विधवा अनाथ बहनें। वह आदमी दिवाला निकालने के कुछ ही समय पहिले अपने गाव पर गया और उसने एक तीस हजार की कीमत का सेनीटोरियम बना लिया। पूछा क्या बनाते हो? बोलदिया, सेनीटोरियम बनाता हू। परोपकार का काम है।

वहां से बम्बई गया और फिर वही 'जय रामजी की' दिवालिया बनगया।

यह हमारा आज का धर्म पुन्य होता है और ऐसे ही लोग समाज में आगेवान होते हैं।

भगवान का उपदेश-

भगवान पुकार २ कर कहते हैं कि 'ए प्राणियों' अगर ऐसे घोर पाप से बचना चाहते हो, तो 'परिग्रह का परिमाण' कर दो। धर्मादे की वा अनीति और अन्यायोपार्जित एक चीज भी अपने घरों में मत रखो। अपनी २ बुद्धियों को अगर शुद्ध रखना है, तो इन बातों से बचें, पैसे की अपेक्षा आत्मा को अधिक समझें। इन सब बातो को खूब अच्छी तरह समझें। इसी में आप के आत्मा का सच्चा भला है।"

इतने पापो से उपार्जित पैसे को इकट्ठा करके आखिर कैसे बचा? । इसके लिये झगड़ा करते हैं, क्लेश करते हैं, पाप करते हैं। यहां से जाते २ ही रास्ते में हवा निकल जाय और न जाने क्या होजाय? वह इकट्ठा किया पैसा न जाने किसके हाथ आये? क्या हो?। फिर किसलिये यह सब किया जाता है?

मित्रों, आत्म कल्याण और चीज है। ऐसे आत्म-कल्याण नहीं होता कि खाली बातें करते रहो। मौज-मजे उड़ाते रहो। अन्याय-अनीति का कोई ध्यान न रक्खो, भोगविलास में मस्त रहो। इसके लिये तो रोम २ मे पवित्र भावना रहनी चाहिए। वृत्ति सरल और सात्त्विक होनी चाहिए। आत्मा क्या है?। कहां जानेवाला है? कहां से आया है? हमारा क्या कर्तव्य है?। इस पर प्रतिक्षण विचार करनेवाला मनुष्य ही आत्म-कल्याण कर सकता है। और उस पर आचरण करना अत्यन्त जरुरी है।

परिग्रह का परिमाण कैसे करना?

इसलिये परिग्रह का परिमाण करलो। परिमाण दो तरहसे होता है: एक तो यह होता है कि, अपनी मिल्कियत का एक आंकडा मुकरर करलो। उस में मकान, पशु, मोटर आदि की किम्मत निश्चित करलो कि ये इतनी किम्मत के हैं और रोकड रकम कितनी है उसका भी परिमाण कर लो और उससे ज्यादा बढ़ जाय, तो उसको सद्कार्य में लगादो।

दूसरा परिमाण यह है कि—परिग्रह नव प्रकार का है। उस नव प्रकार के परिग्रह का श्रावक को परिमाण (निश्चित) करलेना चाहिए?

पहिला है धन। इसका परिमाण करलीजिये कि हम इतना धन-लाख, दस लाख आदि रक्खेंगे। यदि उससे बढ जायगा तो उसको धर्मकार्य में लगादेंगे।

दूसरा है धान्य। सब प्रकार के अनाज इतने मन या इतने माप में रक्खेंगे।

तीसरा खेत है। यदि आप खेती आदि करते हैं, या करवाते हैं तो, हम इतने बीघा जमीन रक्खेंगे। इस प्रकार निर्णय कर लीजिए।

चौथा है वस्तु। यानि मकान आदि की सख्या नियत करलें कि, हम इतने मकान रक्खेंगे।

पाचवा चादी का माप करलें कि, मैं इतने तोला चादी रक्खूगा।

छट्ठा सोने का माप करलें कि, मैं इतने तोला सोना रक्खूगा।

सातवा पीतल, तांबा आदि धातुओं का माप करलेना कि, म इतना इतना रक्खूगा।

आठवा दो पैरवाले दास-दासी आदि नौकरों का माप करलेना कि मैं इतने रक्खूगा।

नवमां चार पैरवाले पशुओ का परिमाण करलेना कि, मैं इतने पशु रक्खूगा।

ये नव प्रकार के परिग्रह का परिमाण है। ऐसा परिग्रह का परिमाण करने मे आपकी वृत्तिओं का दमन होगा। आपको शाति बढेगी। आपमें मनोप्रवृत्ति उत्पन्न होगी। आपकी मनोवृत्तियॉ शुद्ध रखने का यही मात्र एक उपाय है।

आप इस परिग्रह-परिमाण का फल तो देखिये। आप कितना आनद, शाति और सुख का अनुभव करते हैं। आपकी लक्ष्मी भी बढती जायगी। दान भी आप कर सकेंगे और पुण्य भी उपार्जन करगे। नाना प्रकारके यश-कीर्ति आपको मिलेगी और सबसे बडा काम आप अपने आत्मा का हित कर सकेंगे। और अपने जीवन को सफल बना सकेंगे। आज का आप का अस्थिर जीवन मिटकर आपका आत्मा स्थिर होजायगा। लोभवृत्तियाँ दूर होजायगी। अनीति-अत्याचार-ठगी-झूठ-प्रपच से आप बच जायेंगे और अपने आत्मा का कल्याण कर सकेंगे।

भाइओं और बहनो !

अब छठवें व्रतसे आगे चलाऊंगा ।

छठ्ठा व्रत-

छट्ठा व्रत है—दिग्परिमाणव्रत । दिग्परिमाण का मतलब है दिशाओं में जाने आनेका परिमाण करलेना । अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण–ये चार दिशाएं, अग्नि, नैरुत्य, वायव्य और ईशान–ये चार विदिशाएं और ऊर्ध्व दिशा तथा अधो दिशा–इन दस दिशाओं में जाने आने का नियम करलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दिशामें मैं इतने मीलसे और पश्चिम आदि दिशाओंमें मैं इतनी मीलसे ज्यादा नहीं जाऊंगा ।

दिशाओं का परिमाण क्यों ?

आपको शायद आश्चर्य होगा कि भगवानने ये दिशाओं का परिमाण क्यों बतलाया ? इसमें ऐसी कौनसी बात है ?

इस दिशाओं का परिमाण का सम्बन्ध परिग्रह–परिमाणव्रत से है । दिशाओं का परिमाण करलेने से, वृत्तियों पर अंकुश होजाता है । हमारे प्रबल शत्रु ये बढ़ती हुई वृत्तियाँ है । आर्तध्यान और रौद्रध्यान है । अपने हितकारी ध्येय से ये वृत्तियाँ हमें हटानेवाली हैं । मान लीजिये, हमें बम्बई जाना नहीं है । विलायत या अमेरिका जाना नहीं है । इतना होते हुए भी हमारी वृत्तियाँ अमेरिका, विलायत या बम्बई के ही स्वप्न देखा करती है । "अमेरिका में ऐसे ऐसे मकान होते हैं ? बड़े धनी लोग हैं, वहांके लोगोंको एक दफे देखना चाहिए । वहां जाना तो चाहिए । हमको भी उनके जैसे धनवान बनना चाहिए" । ऐसे ऐसे कोरे विचार बैठे बैठे करते रहते हैं । इससे होता कुछ नहीं, सिवाय आर्त्तध्यान और कर्मबन्धन के । इसलिए आप अपने लक्ष्य के ऊपर कायम रहिए । अपने आत्महित को कभी न भूलें । आपका वास्तविक हित किसमें है, इसको कभी विस्मरण न करें । इस भौतिक चकाचौंध में कभी न फसें । जिसका

अंतिम परिणाम विनाश और आत्मघात है और कुछ नहीं । आप इनसे बचिए । अपनी वृत्तियों को वशमें रखिए । धर्मध्यान और शुक्लध्यान में अपनी वृत्तियों को लगाइए । आत्मचिन्तन में रत रहिए । वैसे मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि किसीको विलायत नहीं जाना चाहिए । आपको विलायत जाना जरुरी है तो आप जासकते हैं । आप अपनी व्यापारिक एव देश की उन्नति के लिये विदेश जाना चाहते हैं तो जरुर जाईए । समाज के हितके लिए या धर्म की उन्नति के लिऐ विदेश जाना चाहते हैं तो जैनधर्म आपको मना नहीं करेगा । लेकिन केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए, या फिजूल सासारिक मौजशौक के लिए विदेश जानेसे या बहुत दूर जानेसे क्या फायदा ? सिवाय कि अपने आत्माको महारम्भ के पापसे लादना । इसलिए इन कारणों को लक्ष्य करके शास्त्रकारोंने हमको कल्याण के लिये दिशाओं का परिमाण करने को कहा हैं । इसमे भी हमारे आत्माको सतोष और शान्ति की वृद्धि होगी । पहले के समय में हमारे सत्ताधारी श्रावकलोग छोटे से छोटे धन्धे से ही अपना गुजारा करलेते थे । और सालमें चारसो–पाचसो बचालेते थे, जिनको धर्मकार्य में और परोपकार में लगाते थे । इस तरह सतोप और शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे ।

राक्षसी लालसाए–

लेकिन आज तो राक्षसी लालसाए हो गयीं हैं । एक पूरी होती भी नहीं है कि, सैंकडो दूसरी पैदा होजाती हैं । एक शहेर में मेरे एक परिचित सज्जन मुझे मिले । बातचीत के सिल सिलेमें बोले कि " महाराजजी, आप तो कहते हैं यह भी मत करो और वह भी मत करो । लेकिन हमारी आशाए बहुत बडी बडी है । मेरी स्कीमें आप देखेंगे तो आपको आश्चर्य होगा । मैं तो चाहता हू कि ससारमें मैं बडा धनवान होजाऊं। देश–विदेश में मेरी सैंकडों दुकाने चले । बडी बडी मिलों का मालिक मै बनू और कारखाने खोलबाऊ और बडा सत्ताधारी और ऐश्वर्यशाली होजाऊ । "

यह तो उदाहरण मात्र है । बाकी प्राय प्रत्येक मनुष्य ऐसी लालसाओं में फसा हुआ पाया जाता है । लेकिन कभी किसी मनुष्यो की ऐसी आशाए पूरी नहीं हो पाती है और आर्तध्यान और रौद्रध्यान करके भयकर कर्मों का उपार्जन करके मनुष्य इस ससार के दावानल में अपने आत्मा को होमता रहता है । और दुःखों को झेलता है ।

मैं पूछता हू–क्या आपके जीवन का यही ध्येय है ? । यही ध्येय रखनेवालों

से मुझे कुछ कहना नहीं है, क्योंकि कहूंगा तो वे मानेंगे भी नहीं । लेकिन जो वास्तविक में जिज्ञासु हैं, श्रद्धालु हैं, मुमुक्षु हैं, सात्विक वृत्तिवाले हैं, उन लोगोंसे ही मेरा कहना है कि, आप ऐसी लालसाओं से बचें और परिमित आशाएं रखकर जीवन को सफल करें ।

प्रतिज्ञा लेनेसे क्या ?

आप कहेंगे कि, 'प्रतिज्ञा लेनेसे क्या फायदा ? हम ऐसे ही नहीं जायेंगे ।' ठीक है, यह तो बहुत ही उत्तम है । लेकिन सज्जनो ! यह बडा कठीन है । आज तो लोग प्रतिज्ञाएं ले लेकर भी तोड डालते हैं तो फिर विना प्रतिज्ञा आप कैसे पाल सकते हैं ? । क्योंकि लोगों के मन बड़े शिथिल और ढीले होगये हैं । प्रतिज्ञा लेनेसे तो आप फिरभी कुछ बच जायेंगे । सैंकडो आदमी के सामने लीहुई प्रतिज्ञा को तोडते आपको जरूर शर्म आवेगी । शास्त्रों में भी ऐसे सैंकडो उदाहरण है, जो ऐसी प्रतिज्ञाओं के कारण बड़े बड़े पापसे बच गये हैं ।

अतः नियम अवश्य करना चाहिये । आज आप बहुतसी बातें पराधीनता के कारण करते हैं । हम रोज आपसे कहते हैं कि, आप थोड़ी थोड़ी तपश्चर्या करें । ऊणोंदरी तप करें । भूखसे एकाद रोटी कम खायें । लेकिन आपने आजतक किसी धर्मोपदेशक की बात नहीं मानी । आज आप भूखों मरनेको तैयार है । समय आप से यह सब करवा रहा है । आज कन्ट्रोल के कारण आपको छे-आठ छटांक में अपन गुजारा करना पडता है, तो आप करते हैं, । गवर्मेन्ट के आधीन होकर आप सब कुछ करने को तैयार है, लेकिन धर्म समझकर आप कुछ भी करने को तैयार नहीं, यह आप की कितनी अधोगति सूचित करती है ?

कहने का तात्पर्य यह है कि, आजकी आवश्यकताओं को देखकर इन नियमों का पालन करें और दिशाओं आदि का परिमाण करलें । कम चीजोंसे अपना निर्वाह करने की कोशिश करें । ज्यादा आर्तध्यान करनेकी जरूरत नहीं । संतोषवृत्ति से जो कुछ मिले, उसीमें मस्त रहें । मेरे इस कथन का आप कुछ गलत अर्थ न लगावें । मेरा कहनेका यह मतलब नहीं कि, सरकारने आपकी जो दीन-हीन दशा करदी है, आपको पंगु बना दिया है, अतः आप उसीमें मस्त रहें । यह तो हमारा आत्मघात होगा । यह विषय अलग है । इसके विषयमें तो मैं पहले काफी कहचूका हूं कि पराधीनता हमारे लिये भयंकर अभिशाप है । आझादी के विना हमारा कल्याण नहीं । हम

निर्विघ्नतापूर्वक अपने इन व्रतों को पालन भी नहीं कर सकते, बिना इस पराधीनता को दूर किये। इसको तो मिटाना ही चाहिए। लेकिन इसके लिए भी आपको अपनी इन्द्रियोंको वशमें करना पड़ेगा। कम चीजोंका ही-और वह भी स्वदेशी पवित्र चीजों का इस्तमाल शुरु करना पड़ेगा। ऐसा करेंगे तभी आप स्वतंत्र होंगे। अतः दिशाओं का परिमाण भी आपको करना चाहिए।

सातवाँ व्रत-

अब सातवाँ व्रत है-भोगोपभोग विरमणव्रत।

संसार की सब चीजें शास्त्रकारोंने भोग और उपभोग नामक दो विभागों में विभक्त करदी है।

भोगोपभोग क्या ?

भोगकी चीजें वे हैं जो एक दफे काममें आती है-जैसे रसोई आदि चीजें।

और उपभोग की वस्तुए वे है, जो बार बार काममें आती है, जैसे मकान, वस्त्र, आभूषण आदि।

इन दोनों प्रकार की चीजों का हमें परिमाण कर लेना चाहिए। और जितनी चीजें हमें उपयोगी हों, जितनी चीजों के बिना हमारा काम न सरता हो, उतनी ही चीजें हमको रखने का निर्णय करलेना चाहिए। जरूरत से ज्यादा चीजें हमको रखने का अधिकार नहीं है। यही इस व्रतका मतलब है। यह जैनधर्म का धार्मिक साम्य-वाद है। इसे आप साम्यवाद कहें, समाजवाद कहें, या बोलशेविज्म कहें। कुछ भी कहें। जैनधर्म तो इसी साम्यवाद के ऊपर स्थिर है।

क्या सभी चीजें हमारे उपयोग के लिए हैं ?

आजकल के शिक्षित कहे जानेवाले लोग जरूर यह कहेंगे कि, " संसार में जितनी चीजें होती है वे सब हमारे उपयोग के लिए तो बनी है। अगर उपयोग में न आती तो बनती ही क्यों ? " लेकिन यह महज गलत ख्याल है। यह ठीक है कि, सब उपयोग के लिए है। लेकिन आपको तो उतनी ही चीजें उपयोग में लानेका हक है, जितने की आपको वास्तव में जरूरत है। मैं तो यहातक कहूगा कि, हमें खाना भी नहीं चाहिए, क्योंकि इससे भी एकेन्द्रिय जीवोंकी हत्या होती है। लेकिन हम इसलिए खाते हैं कि, बिना खाये हम जिन्दा नहीं रह सकते। इसलिए हमको आत्म-

रक्षा के लिए ही खाना जरूरी हैं, न कि दुनियाभर की चीजें पेटमें भरने के लिए। अतः अगर हम थोड़े से थोड़े खानेसे और कम से कम हिंसा से अपना जीवन टीका सकते हैं, तो हमको ज्यादा हिंसा करने की क्या आवश्यकता है ? यह एक मामूली बात है। अगर इस बात का ख्याल हमको रहे, तो संसार का कोई प्राणी दुःखी न हो।

चौदह नियम-

शास्त्रकारोंने इस व्रतके पालन के लिये प्रतिदिन १४ नियम धारने को बताये हैं। उससें हम रोज कितनी चीजें काममें लेते हैं, और कितनी चीजें हमको काममें लाना चाहिए, यह मालूम होजायगा—

सचित्त-दव्व-विगई-वाणह-तंबोल-वत्थ-कुसुमेसु ।
वाहण-शयन-विलेवण-बंभ-दिसि-नाण-भत्तेसु ॥

सचित्त-

पहिला नियम है सचित्त। सचित यानि जिसमें चित्त-प्राण हो। यदि निर्जीव चीजोंसे ही हमारा निर्वाह होता हो तो हमको सचित्त यानि जीववाली वस्तुएं काममें नहीं लाना चाहिए। लेकिन गृहस्थों के लिए सर्वथा सचित्त चीजों के बिना काम चलाना मुश्किल है, अतः उनको ऐसा विचार तो अवश्य रखना चाहिए कि, जहांतक होसके थोडे से सचित्त पदार्थों से अपना निर्वाह करे।

सचित्त पदार्थोंमें से आपके काममें नित्यप्रति आनेवाली चीजें एकेन्द्रिय पदार्थ हैं। एकेन्द्रिय के पांच भेद हैः—मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

इन पांचों चीजोंका आप नियम कर लिजिये कि आज मुझे प्रातःकाल से लेकर शाम तक और शामसे लेकर सुबह तक इनमें से कितनी और कौनसी चीज काम में लेनी हैं और कितनी रखलूं। इनको आप एक डायरी में नोट करलिया करें।

अब इतना ख्याल रखना चाहिए कि, कम से कम चीजोंसे हम अपना निर्वाह चलाने की कोशिश करे। अगर एक बाल्टी पानीसे आपका स्नान हो सकता है, तो कोई आवश्यकता नहीं कि नलके नीचे बैठकर पानी डंडेलते ही जायँ। इसी तरहसे एक सेर वनस्पति से आपका काम चल सकता है और दो एक सागभाजी से आप अच्छी तरहसे अपना भोजन कर सकते हैं, तो कोई आवश्यकता नहीं कि बीसों प्रकार की सेरों वनस्पति का दुरुपयोग करें। थोडी आग से एक चूलहे से काम चलता है तो

फिजूलकी भट्टिए क्यों जलाना चाहिए ? । थोडी देर पखा चलाने से या बिना पखे ही हमारा काम चलजाता है, तो दिनभर पखा चलाने से क्या फायदा ? क्योंकि इन सब कामों म एकेन्द्रिय जीवों की हत्या होती है । अत' कहने का तात्पर्य यह है कि- कम से कम चीजोंसे उपयोगपूर्वक-सावधान होकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करें । इसमे हिंसा से बचना और इन्द्रिय-मन पर कट्रोल-ये दोनों फायदे होते हैं ।

इसी तरहसे अगर एकेन्द्रिय से आप का काम बखूबी चल सकता है तो कोई आवश्यकता नहीं कि आप अपने लिये बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करें। गेहूं, चना आदि एकेन्द्रिय वस्तुओं से हमारा निर्वाह अच्छी तरह हो सकता है, फिर मासाहार करने का और उसके लिए बेइन्द्रिय आदि जीवो की हिंसा करना हमारे लिये महापाप है ।

इस तरह परिमित एव जरूरी चीजों से आप अपना जीवन बितावें । देखिए, आपको कितना आनद आता है और आपका जीवन कितना उच्च श्रेणि का होजाता है।

द्रव्य-

दूसरा नियम है द्रव्य का परिमाण । यानि आज मैं इतनी चीजें खाऊगा । पाच-सात-दस आदि । अगर पाच चीजों से आपका पेट अच्छी तरह भर जाता है तो चालीस-पचास चीजें थाली में लेकर बैठना और इस तरह अपनी इन्द्रिय की गुलामी स्वीकार करना और शारीरिक बिमारियों को बुलाना नहीं तो और क्या है ? ' भोगे रोगभयं ' ' यत्र भोगास्तत्र रोगाः ' जहा भोग वहां रोग है । इस बातको याद रखिए । आपको निरोगी एव सुखी रहना है, तो इन्द्रियों के गुलाम न बनिए। जीभ के वशमें आकर के चटपटे, मसालेदार और गरिष्ठ पदार्थों का अपने पेटमें न भरिए । इससे आप रोगी हो जायेंगे और जीवन के सुखको गवा बैठेंगे और हजारों को भूखे मारने के पाप के भी भागी बनेंगे ।

आज ससार में फैली हुई इन नाना प्रकार की बिमारीयों का अगर कोई कारण है तो हमारा खान-पान ही कारण है । श्रीमन्त लोग नाना प्रकार के मेवा-मिष्टान्न खाते हैं । लेकिन अपनी होजरी की तरफ वे कभी नहीं देखते । जिह्वा की लोलुपता

में आकर वे पेटमें गरिष्ठ पदार्थ ठूंसते ही जाते हैं, जिसका परिणाम बिमारी के रूपमें वे भोगते हैं। फिर दोडते हैं डॉक्टरों के वहां। तत्काल कुछ फायदा करनेवाली लेकिन परिणाम में बिमारियों को स्थायी रूप देनेवाली दवाईयाँ डॉक्टर इन धनवानों को पिलाते हैं। इससे मरीज डोक्टर के चंगुल में ऐसा फंसता है कि उसका धन और जीवन दोनों का खातमा होजाता है।

विजातीय द्रव्य इकट्ठे होने से शरीर में रोग उत्पन्न होता है। जो द्रव्य हमारे खाने के लायक नहीं है, या हमारी प्रकृति के खिलाफ है, वे सभी विजातीय हैं। ऐसे द्रव्य कभी नहीं खाना चाहिए। आजकाल की डॉक्टरी दवाईयां भी विजातीय द्रव्यों से युक्त होती हैं। जो रोगों को और बढ़ाती हैं।

अतः आपको रोगों से छुटकारा पाना है-सुखी होना है, पापसे बचना है तो आप रोजाना द्रव्यों का परिमाण कर लीजिए कि इतनी चीजोंसे ज्यादा में नहीं खाऊंगा।

विगय-

तीसरा नियम हैं विगय का परिमाण। विगय दो प्रकारकी हैः विगय और महाविगय। महाविगय चार प्रकार की है-मांस, मदिरा, मद्य (शहद) और मक्खन। ये चार चीजें महापाप का कारण होनेसे इनका सर्वथा त्याग करना चाहिए। यानि इनको कभी उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

दूसरी विगय छ प्रकार की हैः घी, दहीं, दूध, तेल, गुड (शक्कर) और तली हुई चीजें।

विगय का मतलब है विकृति। जो चीजें विकृति यानि विकार करनेवाली है, उसको विगय में लिया है। ये छ चीजें हमारी प्रकृति में-स्वभाव में विकार करनेवाली है। बिमार को भी वैद्य लोग इन चीजों को खानेकी मना करते हैं; क्योंकि रोग को मिटाने के लिये इन चीजों को छोडना जरूरी है। कारण इनके खाने से पाचनशक्ति मंद हो जायगी और इनको पचानेके लिये बड़ा लम्बा समय भी चाहिए और ताक़त भी चाहिए।

ये विगय हमारी इन्द्रियों के विकार को बढानेवाली है। जिनको विकार से सर्वथा बचना है, उनको चाहिए कि इनका सर्वथा त्याग करें। अगर सर्वथा त्याग नहीं कर

सकते, तो उनको चाहिए कि इनका क्रम से कम परिमाण करलें कि दिनभरमें मैं इतनी विगयों को काममें लाऊगा । इनमें भी एक बात ध्यान में रक्खें कि, दूध और दहीं एक साथ नहीं खाये जाते । घी और तेल भी एक साथमें नहीं खाया जाता । अगर इन इन्द्रियों की गुलामी छोडने के लिये-जिह्वेन्द्रिय पर काबू करने के लिये आप प्रातःकाल उठकर यह नियम करले कि, मुझे इन विगयों में से आज एक विगय मात्र खाना है । वह कोई भी हो । बाकी की विगयों को में आज छोडदेता हू । आपको बडा फायदा होगा । आपका शरीर स्वस्थ रहेगा और कोई बिमारी भी आपको नहीं होगी ।

बहुत मे सरल हृदय के युवक मेरे पास आते हैं और अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शिकायत करते हैं कि, 'महाराज ! मुझे स्वप्नदोष होता है । मेरा स्वास्थ्य खराब होरहा हैं । ' मैं उन्हें यही सलाह देता हू कि आप इन विगयों का त्याग करें । जिह्वेन्द्रिय पर काबू रक्खें । इन्द्रियों की गुलामी को छोडदें । प्रकृति के नियमानुसार रहकर अपना खान-पान सात्विक रक्खें । आपके शरीर में कोई विकार उत्पन्न नहीं होगा । एव शरीर हृष्टपुष्ट रहेगा । जो अपने शील की रक्षा करने चाहते हैं, उनको इन विगयों का त्याग करना चाहिए, क्योंकि विकार को पैदा करनेवाली यही चीजें है ।

वाणह-उपानह-

चौथा नियम है वाणह् यानि उपानह्-जूते, चप्पल आदि ।

आजकल तो यह फैशन होगयी है कि जिसके पास ज्यादा जूते, वह ज्यादा सभ्य । किसी भी घरमें प्रवेश करते हुए सर्व प्रथम किसके दर्शन होते हैं ? इन जूतों की लाइनों के माना घर में जूतोंकी दुकान लगी है । पचासों जोडी जूते पडे रहते हैं । आजकल के शिक्षित लोगों का और इनके घरका शृगार अगर कोई है तो मानो ये जूते ही मिलेंगे । आजकल तो यही हमारी दशा है । सरकारी कन्ट्रोल के कारण और महगाई के कारण जरूर इनके दर्शन कम होरहे हैं ।

महानुभावो ! इन जूतों के पीछे, इन मुलायम चमडे के बूटों आदि के पीछे-आप के शृगारके पीछे, घडीओं के बडे बडे मुलायम पट्टों के पीछे कितने जीवों का सहार होता है ? । इसका कभी आपने विचार भी किया है कि ये चीजें किन चमडों से बनती हे ।

सिन्ध, बंगाल, पंजाब और अन्य प्रान्तों में कुछ लोग कसाईयों के दलाल होते हैं। वे क्या करते हैं? गर्भवती भेड, बकरियों और गायों को खरीदते हैं। उनके गर्भमें जब बच्चा बड़ा होजाता है तो उन गाय, भेड और बकरियों को मार डालते हैं। गर्भमें रहे हुए उन बच्चोंके चमडे उतार लेते हैं और फिर उनको बेचते हैं। जिनसे आप लोगों का शौक पूरा किया जाता है। गर्भमें रहे हुए बच्चोंका चमडा बड़ा मुलायम होता है। घडी आदि के पट्टे, क्रूमके बडे मुलायम जूत्ते आदि चीजें इन्हीं चमडों के बनते हैं। अभी 'अर्जुन' पत्र में समाचार छपे थे कि, पंजाब सरकार इस धन्धे को बन्ध करने का सोच रही हैं। यह है हमारे देश की हालत। छोटे छोटे पशुओं की निर्मम हत्याएं हो रही है, जिसको सुनकर रोंगटे खड़े होजाते हैं। अपने श्रृंगार-विलास और मौज शौख में पड़कर आप ऐसी पापयुक्त चीजों का उपयोग करके अपना सबकुछ नष्टभ्रष्ट कर रहे हैं। मित्रो! जरा विचार करो। होशमें आओ। जरा संभलो, कहां चले जा रहे हो। क्या कर रहे हो?। भोगकी विष-गंगा में डूबे हुए हो। क्यों पतन के मार्गमें दौड़े चले जारहे हो?। ठहरो, जरा ठहरो। तुमको अभी जिन्दा रहना है। तुमको मनुष्य बनकर जीवित रहना है।

मित्रों! भोग दुःखदायी है। अपनी आवश्यकताएं सीमित करो। थोड़ेसे थोडे में अपना निर्वाह करो। आज के समय की भी यही पुकार है।

कोई भी वस्तु आप उपयोग में लावें, उसके विषय में यह भी सोचें कि, यह वस्तु बनती कैसे हैं?। और जो वस्तु भयंकर हिंसा से बनती हो, उसको छोडदें। आपके जैसे अहिंसाप्रेमी और दयाधर्म के पालनेवाले इस बात का ध्यान नहीं रक्खेंगे, तब कौन रक्खेगा? आपको तो ऐसी चीजें काममें लाते शर्माना चाहिए। लेकिन आज तो हमारे मनके परिणाम ही निध्वंस होगये हैं। आज तो हमारे पुंजीपति भाई यही सोचेंगे कि यदि हम ऐसे चमडे के कारखाने खोलें तो क्या हरकत है?। सालमें कितने लाख रुपये कमाएंगे?। इसी धूनमें है। उनको हिंसा-अहिंसा से कोई मतलब नहीं। इसका कारण हमारी बुद्धियां भ्रष्ट होगयी हैं। विचारशक्ति हमारी नष्ट होचुकी है। भूखें मरजाना बहत्तर है, लेकिन ऐसे घोर हिंसामय व्यापार करके पैसेदार बनने की भावना महानिकृष्ट है।

इसलिये सज्जनो! शास्त्रकारोंने प्रत्येक वस्तुओं का परिमाण करलेने का बड़ा सुंदर रास्ता दिखलाया है। जिससे मनुष्य महा पापकारी कार्यों से बच जाय। जूते,

चप्पल, बूट आदि का भी आपको परिमाण करलेना चाहिए कि, सालमें हम इतना रक्खेंगे। मनुष्य के लिये सालमें एक या दो जोडी बूट काफी है। मुलायम चमडे के बूट कभी पैरमें न डाले। क्रूमके बूट भी न पहिनें। और दूसरों को भी मना करें। क्योंकि इसमें भयंकर पाप है। मौजे आदिका भी परिमाण करलेना चाहिए।

तबोल-

आगे पाचवा नियम है तम्बोल या मुखवास की चीजों का परिमाण। भोजन करने के बाद अपना मुह साफ करने के लिए जो चीजें मुहमें डाली जाती है–जैसे पान, सुपारी, इलायची, लोंग वगैरह मुखवास की चीजें कही जाती हैं। मुंह साफ करनेके लिये मुखवास की चीजें खाना जरूरी है। लेकिन बकरी की तरह दिनभर मुह भरा ही हो–और कुछ न कुछ चबाते ही रहें, यह कहांतक उचित है? बहुत पान या सुपारी खाना स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है। अतः इसका परिमाण करलेना चाहिए कि, मैं दिनभर में इतने पान खाऊंगा। केवल मुखशुद्धि के लिये दिनभरमें दो या तीन पान काफी है। दूसरों के ऊपर भी इसका बडा सुदर असर पडता है। आप किसीके यहां मिलने को गये, उन्होंने सत्कार के लिए आपको पान दिया। दूसरे घर गये वहां भी आपने पान खाया। तीसरे घर गये वहा भी खाया। चौथे घर गये आपके सत्कारार्थ आपके आगे पान धरा गया। आप नम्रता से कह सकते हैं: 'मेरा आज तीन पान खाने का नियम था, वह पूरा होगया है, अब माफ करियेगा'। आपको दृढ-प्रतिज्ञ देखकर वे कितने प्रभावित होंगे, उसका अनुमान करिए। अतः इसका भी नियम किजिये।

वस्त्र-

अब छट्टा नियम है वत्थ याने वस्त्र का परिमाण।

आपको प्रतिदिन पहिनने के कपडों का नियम करलेना चाहिए कि आज मैं इतने कपडों से काम चलाऊंगा। आपके घरमें पचासों धोती, कोट, खमीज आदि पडे हैं, सबको तो रोजाना आप काममें नहीं लाते। वैसे बहनों के लिये भी साडियॉं, जम्फर, ब्लाऊज आदि बहुत पडे हैं। उसमें से आज के पहिनने के लिये नियम कर लेना चाहिए। नहीं तो बडी गडबडी मचजाती है कि, इतनी साडियोंमें से मैं आज कौनसी साडी पहिनूं। इस गडबडी से बचने के लिये भी नियम बडा जरूरी है।

आज तो जमानेने बड़ा फायदा करदिया है। सादगी से रहना और कम से कम चीजोंसे अपना निर्वाह चलाना। इस सिद्धान्त का असर, हमारे इन नियमों पर भी बड़ा पडा है। बस, एक खद्दर का धोती, एक कुर्ता, और एक साफ धूली हुई खद्दर की टोपी। इन तीन चीजोंसे ही मनुष्य अपना रोजाना काम चला सकता है।

पुराने जमाने में भी हमारे बहुत बड़े से बड़े सद्गृहस्थ इसी सादगीमें रहते थे। हालांकि उनका समय वह था, जबकि देशमें अन्न और वस्त्रकी प्रचूरता थी। कोई नंगा या भूखा नहीं रहता था। पर आज तो बडी विषम परिस्थिति है। लाखों भाईओं को आज तन ढकनेको कपडा नहीं मिलता। सर्दीसे ठिठुर ठिठुर कर मर जाते हैं। लाखों बहन-बेटियों को अपनी लज्जा निवारण के लिये कपडे का टुकडा नहीं मिलता। यह हमारी आज की दयनीय दशा हैं। ऐसे समय में आप अमर्यादित रूपसे सैंकडों कपडों का दुरुपयोग करें, कितनी विडम्बना है ?। कितना अन्याय हो रहा है ?। एक भाईके पास कपडों का ढेर है। दूसरे के पास तन ढकनेको एक लंगोटी भी नहीं। कितनी विषमता है ?। इस विषमता को अगर मिटानी है तो, आप वस्त्र परिमाण का नियम करलें। आज मानव मानव मिटकर दानव बन रहा है। वह अपने भाई को भी नहीं छोडता। तरह तरह के बाद और विचारधाराएं आज चल पडी है। आप इन वादों के भीषण परिणामों से बचना चाहते हैं तो अपने इस पुराने साम्यवाद के सिद्धान्तरूप इस परिमाणव्रत को अपनाईए।

प्यारे भाईओ और बहनो,

कल मैं, सातवें व्रतमें प्रतिदिन चौदह नियम धारने के-विचारने के हैं, वे बतला रहा था। उन चौदह नियमों मे छठा नियम 'वस्त्र' सबधी कहा था। अर्थात् प्रतिदिन हमारे काममे कितने कपडे लाने चाहिए, इसकी भी मर्यादा बांधलेना चाहिए। इससे कितना फायदा होता है, यह भी दिखलाया था। अनेक प्रकारकी फिजुल खर्ची से मनुष्य बच सकता है। सादगी आती है। उच्छृखलता दूर होती है। यह बात हमारी बहनों को खास करके ध्यान में लेना चाहिए। उनके लिए यह नियम बहुत जरुरी है। मैं अपनी बहनों से यही कहूगा कि, आपके पास में कपडों के ट्रक के ट्रन्क भरे पडे हैं और आपके पडोस में रहनेवाली बहन के पास लज्जा-निवारण के लिए भी कपडा नहीं है, तो क्या उस समय आपके दिलमें इतनी भी दया नहीं आती कि उसमें से एक कपडा उसको भी देदू। यदि ऐसी भावना आपके दिलमें नहीं उठती है, तो समझना चाहिए कि, आप घोर स्वार्थी एव निर्दय हैं। और दूसरों को नगा रखनेके आप अपराधी भी है। जरूरतसे ज्यादा कपडे रखने का आपको कोई अधिकार नहीं। शास्त्रकारोंने भी इसीलिए, यह वस्त्रों के परिग्रह-परिमाण का नियम बतलाया है। जिससे आप जरूरी कपडें ही रक्खें। इसमें आपका और दूसरों का भी कल्याण है।

कुसुम-

आगे है सातवाँ नियम 'कुसुम' यानि फूल। इसमें तेल, इत्र, लवन्डर, पाउडर, क्रीम आदि का भी समावेश होजाता है। आजकल तो इतनी चीजें फैशन की चल पडी है कि मुझे तो पूरे नाम भी याद नहीं। इस फैशनने आपके जीवन को नष्टभ्रष्ट करदिया है। अतः फैशन का तो बीलकूल त्याग करना चाहिए। अगर आप गृहस्थ होनेके कारण सर्वथा इनका त्याग नहीं कर सकते तो, इसका भी आप परिमाण तो कर लीजिए।

वाहण-सवारी-

अब आठवाँ नियम है 'वाहण' याने सवारी का परिमाण। प्रातःकाल में उठकर यह प्रतिज्ञा कर लीजिए कि, सायकल, टांगे, मोटर, रेल इन सवारियों में मैं इतने मीलसे ज्यादा नहीं बैठूंगा। इन सवारियोंमें से भी मैं आज फलां फलां सवारी पर नहीं बैठूंगा। अर्थात् सायकल और रेल के सिवाय आज मैं और किसी सवारी पर नहीं बैठूंगा। ऐसा नियम करने से फिजूल मौजशौक के लिए सवारियों में फिरना आपका रुक जायगा। हजारों जीव जो टांगे या मोटरके नीचे दबकर मरजाने की संभावना है, वे बच जायेंगे और आप भी पापोंसे बच जायेंगे।

अभी यहां के एक सद्गृहस्थ जैन नाथद्वारा की यात्रा के लिए गये थे। मोटर के द्वारा उन्होंने यात्रा की। उन्होंने कहा—'मेरा हृदय इस यात्रा करके बडा दुःख पाया। क्योंकि बरसादकी मोसम होनेके कारण नाथद्वारा की सडकों पर अलसिया नाम का जो बडा ही सुकुमाल जीव होता है, ढेर के ढेर पडे थे और हमारी मोटर उन पर सरर होकर चली जाती थी। उनका नाश होते देखकर हमारे हृदय में बडी वेदना होती थी, लेकिन क्या करें ? यात्रा पूरी करने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं था" गनीमत है, उनके दिलमें दया के भाव उत्पन्न हुए। नहींतो दूसरे हमारे भाई तो आजकल यही सोचते हैं कि 'क्या करें ?। रास्ते में क्यों पडे हैं ? । मरने दो। और ऐसे कठोर मनके परिणाम से भयंकर पाप उपार्जन करते हैं। कहने का मतलब कि, इन नियमों से हम बहुत पाप से बचजाते हैं। इसमें क्या है ? ऐसा कभी न सोचें।

बहुत वर्षों पहले मैंने एक लेख लिखा था। लेख गुजराती में था—'एमां शुं ?' यानि 'इसमें क्या ?'।

जिसके हृदयमें ऐसा आजायगा कि, 'इसमें क्या ?' तो समझ लीजिए कि, उसका पतन होजायगा। क्योंकि वह प्रत्येक बात में यही सोचेगा कि 'इसमें क्या ?' वह कहेगा, प्रतिक्रमण करनेमें क्या है ?। सच बोलने में क्या धरा है ? । इन नियमों में क्या है ? । पूजा-पाठ में क्या है ? । बस, खलास। उसको सब बातों में 'इसमें क्या' ही दिखेगा। जब कि इससे विपरीत भव्य आत्मा से कोई पाप भी होजायगा, तो उसको बडा पश्चात्ताप होगा और आयन्दा वह ऐसे पापों से बचने की कोशिश करेगा। अतः इन सवारियों का भी आप परिमाण करलें।

शयन-

अब आगे नवमा नियम है शयन।

सोने के लिए पलग, मच्छरदानी, तकिये, गद्दे, चादर आदि कितनी चीजें काम में लाना? उसका परिमाण कर लीजिए।

विलेपन-

दशवाँ नियम है विलेपन।

तेल, साबुन आदि लेपन की वस्तुओं की भी मर्यादा करले कि इससे ज्यादा चीजें मैं आज काममें नहीं लाऊंगा।

ब्रह्मचर्य-

ग्यारहवाँ नियम है वम्भ। यानि ब्रह्मचर्य के लिये नियम कर लीजिए। वैसे परस्त्री का गृहस्थ को सर्वथा त्याग होता ही है। पर, स्वदारा में भी सतोष रखना चाहिए। और प्रतिदिन मर्यादा करलेना चाहिए कि, 'आज मुझे ब्रह्मचर्य का पालन करना है या नहीं?' आप जितना इस व्रत का पालन करेंगे, उतना ही आपके लिये लाभकारी है। आप अपने सामने एक ही बात रखिए कि, 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है, और वीर्यनाश ही मृत्यु है'। सिंह का दृष्टान्त आपको अपने सामने रखना चाहिए कि, सिंह पशु होकर भी साल में एक या दो दफे विषय-सेवन करता है। आप तो मनुष्य हैं। कम से कम इतना ध्यान तो अवश्य रक्खें कि, जितने दिन का अतर देकर आप विषय-सेवन करेंगे उतना ही आपके लिए कल्याणकारी होगा।

दिशा-

अब बारहवां नियम है दिशिपरिमाण। छट्ठे दिग्व्रत में जो यावज्जीवन के लिये दिशाओं का परिमाण किया जाता है, उस का प्रतिदिन सक्षिप्त करलिया जाय कि, 'आज मैं इस दिशा में इतने मील से अधिक नहीं जाऊंगा, क्योंकि जीवन भरके व्रत में तो आपने दिशाओं का परिमाण ज्यादा भी किया है, लेकिन हमेशा आपको इतना जाना न हो, तो आप प्रतिदिन के नियम में उसको घटा भी सकते हैं। अत प्रतिदिन इसका नियम करलेना चाहिए।

स्नान-

आगे तेरहवां नियम है न्हाण यानि स्नान का परिमाण। प्रतिदिन आपको कितनी दफे स्नान करना है? इसका भी नियम कर लीजिए कि-आज मैं एक या दो बार से ज्यादा स्नान नहीं करुंगा।

भक्त-भोजन-

चौदहवां नियम है भत्त यानि भोजन। दिनमे कितनी दफे भोजन करना और कितना करना? इसका भी नियम कर लीजिए। आज मनुष्य दिनमें दस दफे खाता है, और बिमार पडता है। कोई ठिकाना नहीं। अतः इसका भी नियम कर लेना चाहिए कि आज मैं दिनमें दो या तीन दफे खाऊंगा।

इन चौदह नियमों का पालन आपको अवश्य करना चाहिए, इससे आप का बड़ा कल्याण होगा और आप का जीवन सुखी होगा। यह सातवाँ व्रत समाप्त हुआ।

आठवॉ व्रत-

अब आठवाँ व्रत है-अनर्थदंड विरमणव्रत।

अनर्थदंड का मतलब है: ऐसे कार्य जिनके कारण हमें विना प्रयोजन ही दोष लगे उनका नाम है अनर्थदंड। उसका विरमण याने त्याग करने की प्रतिज्ञा करना।

महानुभावों! खुब याद रखिए। आज संसार में लोग बहुत से ऐसे कार्य करते हैं, जिनमें कोई प्रयोजन नहीं और फिजूल पाप के भागी बनते हैं।

अहिंसक होते हुए हिंसा का पाप-

मिसालके तौरपर-आपके यहां बन्दूक पडी हुई हैं। कारतूस भी पडे हैं। हालांकि आप कभी बन्दूक चलाते नहीं। न आपको चलाना भी याद है। अहिंसक और दयालु हैं आप। लेकिन आपके किसी मित्रने कारतूस और बंदूक मांगी, आपने लिहाज में आकर देदी। उस बंदूक से उसने १०-१५ जानवर मार डाले और पकाकर खागया। आपको क्या लाभ हुआ इससे? सिवाय पापके भागी बनने के।

विना कारण किसी की हंसी-मजाक करना, किसीको चिडाना, किसीको आपस में लडाना ये सब ऐसे काम है, जिनमें हमें कोई फायदा नहीं-सिवाय कर्म-बन्धनके। ये सब अनर्थदंड की क्रियाए हैं। हंसी-मजाक में भी मनुष्यो में आपस

में झगड़ा होजाता है। मारपीट भी होजाती है। अतः ऐसे कार्य मनुष्य को छोड़ देना चाहिए।

किसीको आपस में पशुओं को लड़ाने का बड़ा शौख होता है। दो पशुओं की लड़ाई में सैंकड़ो छोटे छोटे प्राणियों का नाश होजाता है जिसमें कि कोई कुछ फायदा नहीं।

कोई भी ऐसा कार्य या विचार, जिनमें सिवाय कर्मबन्धन के वास्तविक कोई फायदा ही नहीं, ऐसे सब कार्य अनर्थदंड में आजाते हैं। इससे बचने की कोशिश करना चाहिए। जैसे किसी जीव की हिंसा होती हो, शिकार होतीहो, उसको देखना, इत्यादि।

सामुदायिक कर्म–

आप जानते हैं कि, संसार का हरेक मनुष्य एकसा पाप नहीं करता। लेकिन पाप करनेवाले के साथ जितना हमारा सहकार होता है, उतना हम भी पाप के भागी बनते हैं। शास्त्रकारोंने इसको 'सामुदायिक कर्म' कहा है। इसके उदाहरण आज संसार में खूब पाये जाते हैं।

जैसे मान लीजिए कि, एक स्टीमर में पचास मनुष्य बैठे हैं और वह पानी में डूब रही है। पचासों आदमी पानीमें डूबकर मर गये। अब यह पचास आदमी एक साथ पानीमें क्यों डूबे?

इसका कारण यही है कि, इन सबने किसी पूर्व भव में एक साथ मिलकर ऐसा कर्म किया था कि, जिस हिंसक कर्मसे सब का सबन्धन था। इस सामुदायिक कर्म के कारण सब की हत्या एक साथ हुई और सबने एक साथ कर्म के फल को भोगा।
स्टीमर में डूबें, एक क्यों बचा?

एक शिकारी है और ५–२५ आदमी उस शिकारी को शिकार में सहायता दे रहे हैं। और सब मिलकर किसी जानवर को मारते हैं। वे सब उस शिकारी की तरह पापों का बन्धन करते हैं और सामुदायिक कर्म बांधते हैं। जिसका नतीजा सबको साथ में भोगना पड़ता है। शिकार में सहायता न करते हों, मात्र देखते ही हो, परन्तु देखने के समय भी मनोवृत्तियाँ हिंसक बनने से पाप के भागी बनते हैं।

ऐसा भी होता है कि किसी मनुष्य के परिणाम बीच में बदल भी जाते हैं कि, 'अरर, यह मैं क्या कर रहा हूं? इस निर्दोष प्राणी को मैं क्यों मार रहा हूं?।'

ऐसी सद्भावना से वह उस पाप के परिणाम से बच भी जाता है। जैसे स्टीमर के डुबने से ४९ आदमी तो डूब गये और एक आदमी को लकडी का तख्ता मिलने से बच जाता है। वह भी आफत में तो फंस गया, लेकिन उसकी सद्भावना के परिणाम से वह आफत से बच गया।

आज संसार में भीषण लडाईयाँ होरही हैं। लडनेवाले लडते हैं, और मरनेवाले मरते हैं। लेकिन आप भी अखबार पढ़ पढ़कर के खुश होते हैं कि सरकार हार रही है, जर्मन जीत रहा है, या जर्मन हार रहा है, सरकार जीत रही है। वह ऐसा करता है, वैसा करता है? । यह ठीक हुआ। वह मरा, यह मरा। आदि विचार करके फिजूल कर्म का उपार्जन करते हैं। न लेना, न देना! न स्वार्थ, न परमार्थ। और फिर ऐसे कर्मों का फल एक साथ भोगते हैं। यह भी अनर्थदंड ही है। क्योंकि विना कारण कर्म उपार्जन करते हैं और उसका फल भोगते हैं।

कभी कभी हम अपनी आदत के कारण किसीके अच्छे कार्य में-कोई परोपकार के कार्य में बाधा डालते हैं। हमारे जरा से स्वार्थ के कारण भी हम दूसरों के अच्छे कार्यों में विघ्न उपस्थित करते हैं। अपना बडप्पन जमाने के लिए हम किसी जनोपयोगी कार्य में या कोई परोपकार के कार्यमें अडंगा जमाते हैं, ये सब अनर्थदंड नहीं तो और क्या है?

ऐसे ऐसे घोर पापों का परिणाम होता है कि, हमें उसका नतीजा अवश्य भोगना पडता है। और जब नतीजा भोगना पडता है, तब हम विचार करते हैं कि, हमने कौनसा ऐसा पाप किया कि आज हमें यह दुःख भोगना पडता है?।

लेकिन पाप करते समय हम कुछ विचार नहीं करते हैं। जब पाप का फल भोगना पडता है तब हमको याद आता है कि, हमने कोनसा पाप किया? जिसका यह बदला भोगते हैं।

अतः सज्जनो! आप इस अनर्थदंड से बचें। ऐसा कार्य कभी न करें, जिसमें सिवाय नुकसान के हमको कोई फायदा नहीं।

नववाँ व्रत-

अब नववाँ व्रत है **सामायिक**।

सामायिक का अर्थ है—समभाव में रहना।

समता सर्वभूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च ।

सामायिक क्या चीज है ?

अर्थात् समस्त जीवों पर-एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक यावत् राजा, महाराजा, देव कोई भी हो, सब जीवों पर समान दृष्टि होना-सबको अपने समान समझना, इसी का नाम सामायिक है। कितना भी कष्ट या सुख आवे मनमें राग-द्वेषकी भावना नहीं लाना, यही सामायिक का सच्चा स्वरूप है। ऐसी सामायिक आप यावज्जीवन तक लेलें तब तो, सबसे अच्छा है, और इसीमें आपका कल्याण है। लेकिन यह न हो सके तो दिनमें कम से कम एक दफे ४८ मिनिट तक समभाव में स्थिर होकर आपको सामायिक व्रत धारण करना चाहिए। क्योंकि यह आपका-गृहस्थों का नवमा व्रत है।

स्त्रियों की सामायिक में होड-

आज स्त्रियाँ सामायिक की होड लगाती है। एक कहती है मैंने दस सामायिक आज की। दूसरी कहती है मैंने पनरह की। लेकिन मैं कहता हू आप अपने आत्मासे पूछें कि, सच्ची सामायिक आपकी एक भी हुई है क्या? सिर्फ दो घडी एक जगह बैठकर सामायिक ली, और गप्प मारने लगे, या दुनिया भरकी कुथली करने लगे, इससे तो आपकी सामायिक सच्ची सामायिक नहीं मानी जासकती। और न ऐसी सामायिक से कुछ फायदा होता है। जैसा शास्त्रकारोंने कहा है-समभाव में तल्लीन होकर आत्मचिंतन, धर्मध्यान, शास्त्रश्रवण या सद्वाचन में दो घडी काल व्यतीत करें, तभी सच्ची सामायिक है।

गृहस्थों को कम से कम दिन में एक सामायिक तो अवश्य करनी चाहिए। अगर एक भी सामायिक आपकी अच्छी तरह से होगयी, तो बेडा पार है। कम से कम देवलोक तो आपके हाथमें आ ही जायगा। और आप इस दुषम काल को सुख से पार कर लेंगे। अत आप दिनभर में कम से ~~ एक सामायिक करने का तो अवश्य व्रत लें।

दशवाँ व्रत-

अब आगे दशवाँ व्रत है ~ ।

देशावगासिक क्या ?

अमुक समय तक अमुक स्थान को छोडकर के बहार नहीं जाना. और उतना समय मात्र स्वाध्याय, धर्मध्यान में व्यतीत करना। इसका अर्थ यह भी करते हैं कि, एक दिनमें दस सामायिक करके बैठ जाना और बहार से कोई चीजें लेना या मंगाना नहीं। आत्मध्यान में लीन रहना।

दस सामायिक यानि आठ घण्ट तक एक आसन पर स्थिर होकर बैठजाना। मनुष्य इतना चंचल प्राणी है कि, वह कभी एक जगह स्थिर होकर बैठता नहीं। उसकी मनोवृत्तियाँ कहीं की कहीं घूमती रहती है। अतः सारी दुनिया की झँझटें दूर कर के-व्यापार रोजगार को बन्द करके एक दिन आसन लगाकर स्थिर होकर ध्यान में बैठजाना चाहिए।

दुनियाके त्रिविध तापों से बचनेकी भावनावाले जीव को आत्मशान्ति के लिए यह बड़ा सुंदर उपाय है। उपाश्रय में जाकर सब झंझटों को छोडकर रागद्वेषकी परिणति से रहित होकर मनुष्य दश सामायिक करे। यही देशावगाशिक व्रतका मतलब है।

ग्यारहवाँ व्रत-

अब ग्यारहवाँ व्रत है-पौषध व्रत।

आत्मा को जो पुष्ट करे उसका नाम है पौषध। धर्म को जो पुष्ट करे उसका नाम है पौषध।

पौषध क्या ?

अन्तःकरणशुद्धित्वं धर्मत्वम्।

अन्तःकरण को-मनको शुद्ध करना, इसीका नाम धर्म है। शरीर की पुष्टि के लिये जैसे आप नाना प्रकार के पाक खाते हैं, वैसे ही आत्मा की पुष्टि के लिये यह पौषध-रूपी पाक शास्त्रकारोंने बतलाया है।

उपवास या एकासन कर के बारह घंटे के लिए या चौबीस घण्टे के लिए साधु-वृत्ति को धारण करलेना। संसारके सब व्यापारों को उतने समयके लिए बिलकूल त्याग देना, इसीका नाम पौषध है। अब आप चाहे उतने दिनके लिए पौषध व्रत लेसकते हैं। कम से कम अष्टमी, चौदश आदि बड़ी तिथियों को तो आपको यह व्रत अवश्य

लेना चाहिए। और इसमें किसी प्रकार का अतिचार न लगे। उसका ध्यान रखना चाहिए। साधु जिन्दगीभर साधुवृत्ति स्वीकार करता है। गृहस्थ अमुक घण्टों के लिये या दिनों के लिये साधु बनता है, अतः उसको किसी प्रकार का दोष न लगे इसकी खास सावचेती रखना चाहिए। पौषधशाला में जाकर गुरुमहाराज के समीप में यह व्रत लेना चाहिए और क्रियामें तथा धर्मध्यान में समय को विताना चाहिए। अगर पौषधमें भी अनेक प्रकार की व्याधियों लगी हैं, चिन्ताए लगी हैं, आधि-व्याधि-उपाधि में फसे हैं, तो यह आपका पौषध नहीं पाखड होजायगा।

जबतक अपने आत्मा को पवित्र विचारमय नहीं कर लेंगे, मनको काबू में नहीं कर लेंगे, कष्ट सहन करने को तैयार नहीं होंगे, तबतक कल्याण नहीं। आठ दिन या एक दिन या बारह घंटे के लिए साधुवृत्ति को स्वीकार करना, जमीनपर सोना, परिषह सहन करना, कषायो को जीतना ये बातें जितनी कठिन हैं, उतनी ही आत्मा के लिये हितकर है।

सक्षेप से सक्षेप में इस पौषधव्रत का अर्थ यही है कि गृहस्थीकी सब झझटों को छोडकर एकान्त में धर्मध्यान में मस्त रहें। और साधुत्व का स्वाद चक्खें। कितना आनद है इस साधुवृत्ति में और कितना कष्ट है इस भोग-विलास में। यह पता आपको लगे और कभी न कभी आप इस कल्याणकारी साधुता का मार्ग लें। यही बात शास्त्रकारोंने लक्ष्य रखकर और आपको थोडी देरके लिए सच्चा मार्ग दिखलाते हैं। बारह व्रतधारी श्रावक को कम से कम सालमें बडी बडी तिथियों को यह पौषध अवश्य करना चाहिए।

बारहवाँ व्रत-

अब बारहवा व्रत है अतिथिसविभाग व्रत। अर्थात् सम्यक् प्रकार से अतिथियों के लिए अपने पास की चीजों का विभाग कर देना।

अतिथि कौन ?

लेकिन अतिथि किसको कहना चाहिए ? इसके लिए जैसे मै पहले कह चूका हूं कि अतिथि उसे कहते हैं:—

तिथि-पर्वोत्सवा सर्वे, त्यक्ता येन महात्मना।
अतिथिं त विजानीयात्, शेषमभ्यागत विदुः।

दुनिया में भिक्षावृत्ति से आजीविका चलानेवाले दो प्रकार के भिक्षुक है: एक अतिथि और दूसरे अभ्यागत।

अतिथि उसे कहते हैं, जिसने तिथि और पर्व का त्याग किया है। मतलब कि उनके लिए हंमेशा तिथि और पर्व है। ऐसे पवित्र जीवन बितानेवाले, संयमी, त्यागी, महात्मा योगी पुरुष, जो अपने और परहित में हंमेशा रत रहनेवाले साधुपुरुषों को शास्त्रकारोंने अतिथि कहा है।

और अपंग–लूले, लंगडे, आजीविका कमाने में असमर्थ, भिख मांगकर जो अपना जीवन बिताते हैं वे अभ्यागत है।

आप गृहस्थ लोगों के लिये तो दिवाली, पजूसन, ओली आदि पर्वके दिन नियत हैं–अमुक समयसे आते हैं। उन दिनोंमें आप लपसी करेंगे। सीरा करेंगे। लेकिन जो साधु हैं, त्यागी है उनके लिए तो रोज हजारों चीजें विना मांगे मिलती हैं। उनको तो रोज दिवाली है और रोज पजूसन। उन्होंने तो तिथि और पर्व की भावना त्याग दी है; क्योंकि आत्मकल्याण की साधना करना यह हमेशां का कार्य है।

सूयडांग सूत्रमें कहा है–नित्यं तवो कर्म।

अर्थात् साधु हंमेशा तप में लीन रहते हैं। शील का पालन करते हैं। बस, संयम लेलिया तबसे उनको न तिथिसे मतलब है, न पर्वसे। इनको अतिथि कहा है, और शेषं अभ्यागतं विदुः। और बाकी मांगनेवाले को अभ्यागत कहा है।

आतिथिसत्कार–

अतः आप का फर्ज है कि, आप ऐसे त्यागी, संयमी, साधुओं को भिक्षा देकर के जीमें। ऐसे त्यागी–महात्मा पुरुषों के पात्र में आपका अन्न जाने से आपका जीवन सार्थक होजाता है। ऐसे लोगों को भिक्षादे करके जीमें, तभी आपका भोजन भोजन है। अन्यथा राक्षसी भोजन कहा गया हैं। ऐसे अतिथियों को जमाने के बराबर संसार में और कोई पुण्य नहीं।

वैसे आप लोगोंमें अतिथियों को बहोराने का रिवाज जरूर पड़गया है। और यह बहुत ही अच्छा है लेकिन इससे भी ज्यादा आपकी यह प्रतिज्ञा और भावना होनी चाहिए कि ‘ जबतक मेरे यहां मेरे हाथोंसे मैं किसी संयमी–साधुपुरुष को भोजन न देदूं, तबतक मैं भोजन न करुं ’। इसका नाम व्रत है।

प्रतिज्ञा का दो प्रकार

इसमें भी दो प्रकार होते हैं। एक वह है, जो प्रतिज्ञा करता है कि, ' साधु जितनी चीजें लें, उतनी ही चीजोंमें अपनी तृप्ति करना। दूसरी चीज न लेना और अगर साधु या अतिथि न आए तो उस दिन कुछ भी नहीं खाना।" और एक वह हैं जो चाहते हैं कि, ' साधु आजाना चाहिए और कुछ न कुछ लेजाना चाहिए।'

विवेक की आवश्यकता–

दोनों प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करनेवाले बारह व्रतधारी गृहस्थ होते हैं। लेकिन इसमें विवेक की आवश्यकता है। वे साधु को वहोराने के लिए अपने यहां ले जाते हैं और कहते हैं. " महाराज, यह भी लीजिए और वह भी लीजिये, क्योंकि मुझे ये चीजें खानी हैं। अगर आप नहीं लेंगे तो मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं उन चीजों को नहीं खा सकूंगा, तो यह ठीक नहीं।" कभी साधु को नहीं कल्पे ऐसी चीजें भी अपने खाने के लिए, साधु को भी लेने को कहे तो, यह तो अविवेकपूर्ण बात है।

विवेक तो यह है कि साधुजी को मालूम नहीं होना चाहिये कि आपको अतिथि-संविभाग की प्रतिज्ञा है या फलानी चीजें खाने की प्रतिज्ञा है। लेकिन साधु महाराज अकस्मात् आगये, वहोराने को चीजें रखदी। जो उनको चाहिये वे लेले। और फिर जितनी चीजें हमने पहले से धारली हो उनमें से जितनी चीजें साधुजीने ली हो उतनी ही खावें। यह है ' अतिथि संविभाग ' व्रत।

व्रत का पालन कब ?

बिलकुल अपनी वृत्तिओं को-प्रतिज्ञा को अपने ही मनमें रखकर अगर सयोगसे अकस्मात् मुनिराज पधार जांय, तो समजना चाहिये कि मेरा अहोभाग्य है। पात्र में डालकर तब भोजन करुंगा, नहीं तो उपवास कर लूंगा। इस तरह मौन रहना यह अतिथि-संविभाग व्रत है। यह बात जरूर है कि साधुजी को विनति करना व्रतधारी का धर्म है, लेकिन इन भावों को मनमें रखते हुए, विनति करते समय यह भाव किंचित् मात्र भी झलकने न पाये कि मेरी ऐसी प्रतिज्ञा है कि वह किसी सुपात्र को जीमा करके जीमूंगा। इसके अलावा गरीब-मोहताज, लूले, लंगडों को भी जरुर भोजन देना चाहिए। आंगने पर आये हुए गरीबों को जरूर यथाशक्ति दान देना चाहिए। यह

चाहिए, वहां आज अशान्ति का बोलबाला है। घोंघाट और कोलाहल इतना कि एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़े। उपाश्रय में देखिए, एक तरफ महाराज उपदेश दे रहे हैं। दूसरी तरफ दुनियाभर की बातें हो रही हैं। बच्चों का कोलाहल अलग हो रहा है। औरतें अलग ही चिल्ला रही हैं। यह दशा है हमारे उपाश्रयों की। फोटू भी ऐसे लगाये जाते हैं जिसका धार्मिकतासे कोई सम्बन्ध नहीं। सद्भावनाएं पैदा करनेके बजाय जिससे कुभावनाएं ही पैदा होती हैं। आज तो मंदिर और उपाश्रय फुरसद के समय बैठने के और गप्पा मारने के मानो अड्डे होगये हैं। यह कितनी शोचनीय बात है!

आपने ईसाईओं के गिरजाघर देखे होंगे। कितने शान्त और पवित्र वातावरण-युक्त होते हैं। एक भी शब्द नहीं सुनाई देगा। हजारों आदमी इकट्ठे होंगे, लेकिन शान्ति से प्रार्थना करेंगे। ध्यानमें लीन होजायेंगे और पूरा होने पर चुपचाप चलदेंगे। आत्मिक शान्ति के लिये ऐसा शान्त वातावरण ही होना चाहिए।

अतः मंदिरों में और उपाश्रयों में आप शान्ति रक्खें। सांसारिक बातें बिलकुल वहां न करें। सभामंडप में सुंदर वचनों के बोर्ड लगावें। त्यागी-महात्मा पुरुषों के चित्र टांगे। जीवन को उच्च बनानेवाले महात्माओं के प्रसंग आलेखें। इन बातों से ही हमारा आत्मा पवित्र एवं उच्च बनेगा।

आज आप लोगों को इतना उपदेश देते हुए आपके ऊपर कोई असर नहीं होता। इससे तो अच्छा है, स्कूलों में या कोलेजों में जाकर छोटे बच्चों को उपदेश दिया जाय, जिससे उनके जीवन पर तो कुछ असर हो। क्योंकि जिनके जीवन पर अभी किसी प्रकार की कालिमा नहीं चढी है, अभी जिनका जीवन बन रहा है, जिनको कोमल लता के समान जिधर मोडना चाहें उधर मोड़ सकते हैं। ऐसे समय में अगर उन सरलमति बालकों के बीच में कुछ कहा जाय तो सुंदर से सुंदर असर होता है। आज आपके बीच कितना भी उपदेश दिया जाय, लेकिन आप तो वहीं के वहीं। झूठ, प्रपंच, छल, भेद, खटपट आपकी वही की वही चलती रहती है, अतः आपको अपना जीवन सार्थक करना है तो आप इन बातों को छोडकर धर्मक्रिया में अपने मनको लगावें, तभी आप का कल्याण हो सकता है।

ज्ञानके साथ क्रिया की आवश्यकता-

इसलिये शास्त्रकारोंने कहा है कि जिस तरहसे ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है, और

जिस तरहसे व्रत लेना आवश्यक है, उसी तरह क्रिया-काड करना भी जरूरी है। बहुत से लोग बातें बडी बडी करेंगे। बडी बडी फिलोसोफी छाटेंगे। द्रव्यानुयोग और आगमों की बडी बडी बातें करेंगे। लेकिन उनसे पूछा जाय कि, आप कितने सम भावमें रहते हैं ?। ईश्वरपूजा या सामायिक कुछ करते है ?। तो कुछ नहीं। करना धरना कुछ नहीं और केवल बातों मे क्या कभी पेट भर सकता है ?। बिमारी की हालत में केवल क्वीनाईन के गुणगान करने मे बुखार नहीं हटता, जबतक कि उसको खाया न जाय। अत: हमको बातों को छोड करके अमली काम करना चाहिए। सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, ईश-प्रार्थना, ध्यान, शास्त्रश्रवण आदि नाना प्रकारकी क्रियाए है। अपनी रुचिके अनुकूल जिनमें हमारा ध्यान लगे, उसको हमें करना चाहिए। केवल रूढीसे नहीं, लेकिन प्रत्येक बात समझ करके करनी चाहिए। वैसे सामान्य तौरसे छ बातें हैं जिसको प्रत्येक मनुष्य, चाहे किसी धर्मको माननेवाला, हो प्रतिदिन करनी चाहिए। वे छ कर्तव्य ये है, उनको षट्कर्म, 'खटकरम' कहते हैं।

षट्कर्म-

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय. सयमस्तप: ।
दान चेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिने दिने ॥

देवपूजा, गुरु की सेवा, शास्त्रों का पठन, सयम, तप और दान-ये छ कर्तव्य गृहस्थों के प्रतिदिन के कर्तव्य है। इसे आपको करना चाहिये।

मैंने एक दफा व्याख्यान में कहा था कि जैसे किसी कपनी के दो पार्टनर होते हैं, वैसे ही हमारे जीवन के भी दो हिस्सेदार है। एक आत्मा और दूसरा शरीर। हम अपने शरीर के लिए-व्यवहार के लिए जितना उद्यम करते हैं और कष्ट सहन करते हैं, उतना क्या कभी आत्मा के लिए करते हैं ?।

दो हिस्सेदारों मे एक को अगर कुछ नहीं मिलता और दूसरा ही सब हडप कर जाता है, तो यह निश्चित है कि, उसको दिवाला निकालना पडेगा। वैसे ही अगर हम शरीर के लिए स्त्री-पुत्र-परिवार के लिए, अपने ऐश-आराम के लिए सबकुछ करते हैं, लेकिन अपने आत्मा के लिए कुछ नहीं करते, तो हमको एक दिन रोने का मौका आवेगा। मरते समय हमारे आत्मा तडफेगा कि हाय मेरे पास कुछ नहीं, मेरा क्या होगा ?। इससे बचने के लिए आपको इन छ कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

देव पूजा-

जैन शास्त्रों में दो तरह के देव माने हैं-एक लौकिक और दूसरे लोकोत्तर । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये लौकिक देव हैं। और समग्र कर्मोंसे रहित केवलज्ञान को धारण करनेवाले, सिद्ध हुए है, वे लोकोत्तर देव हैं।

अब आप विचारिए, इनमें से आपको कौनसे देव की पूजा करनी है ? ।

वीतराग की पूजा क्यों ?

अगर आपको समग्र कर्मों से मुक्त होना है, वीतराग अवस्था को प्राप्त करना है, मोक्ष में जाना है, तो ऐसे देवों की उपासना करिए, जिनमें ये बातें हों। जिन्होंने मोक्ष को पा लिया हों।

लेकिन आप तो दूसरे प्रकार के देवी देवताओं के पास घूमते फिरते पाये जाते हैं। जो देव हमारी तरह कषायी, विषयी, लम्पटी और झगडालू हैं, ऐसे ही भवनपति, व्यन्तर आदि देवी-देवताओं के पास जाने से आपको क्या फायदा हो सकता है ? सिवाय कि आप और सांसारिक कार्यों में उलझ जाय । आपका आत्मा और पतित होजाय। सज्जनों, ये चार प्रकार के देव लौकिक देव हैं। हमारी ही तरह कर्मोंसे युक्त हैं। उनके पूजनसे कोई लाभ नहीं। लोकोत्तर देवोंके पूजनसे ही हमारा कल्याण है । लौकिक देव तात्कालिक आपको कुछ फायदा भले ही करदें । लेकिन वह फायदा भी सांसारिक ही होगा और परिणाम में तो वह दुःखदायी ही है।

श्रद्धा फलती है-

वीतराग की उपासना करनेवाला मनुष्य, वीतराग की दशा प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य, वीतराग के सिवाय दूसरे की उपासना नहीं करसकता । उसी वीतराग परमात्मा की आराधना से हमारे सब काम सिद्ध होजाते हैं। लेकिन उनपर तो हमें विश्वास नहीं। लडका बिमार होजाता है, लोग उन्हीं देवी-देवताओं की मनौती मनाते हैं, उनके तीर्थों की उपासना करने चलेजाते हैं। अगर उन देवी-देवता का पूजारी कहे कि, आटेकी मूर्गी बना लिजिये, देवीको भेट चढाना है तो वह भी करने को तैयार हैं। बल्कि यहां तक मैंने देखा है कि, ताजिये, पीर, पैगम्बर और कब्र तक को पूजने को लोग तैयार होजाते हैं। यह हमारे समाज की दशा है। कहां है हमको अपने धर्म पर यकीन ? कहां है हमको वीतराग परमात्मा के ऊपर श्रद्धा ? कहां है हमारा भगवान्

महावीर पर अटल विश्वास ? सब कष्टों को मिटानेवाला नवकार महामंत्र को तो आज आप भूल बेठे हैं।

आज तो आपको इस वीतराग के धर्म पर से बीलकुल श्रद्धा उठ गयी है। विना श्रद्धा कोई वस्तु फलीभूत नहीं होती। संसार के सुख-दुःख कर्मों के फल हैं, उसको साधारण देवी-देवता तो क्या ? परमात्मा भी नहीं मीटा सकता। इस बात पर विश्वास करिए। झूठे वहेम और धोखे में आकर आप अपने धर्मको कभी न भूलें।

खूब याद रखिए, जबतक आपको सच्चे देव पर श्रद्धा नहीं होगी, मुक्ति का मार्ग आपके हाथमें नहीं आवेगा। आप कहेंगे, ' हम तो गृहस्थ हैं। हमको सबकुछ करना पडता है ' लेकिन यह व्हानेबाजी तो जिसको अपने धर्मपर अटल श्रद्धा नहीं, उसके लिए हैं। आपके धर्म में-आप के भगवान् में ऐसी कौनसी कमी है, जिसके लिए आप दूसरी जगह जाते है ? । अगर आपको श्रद्धा ही नहीं, तो दूसरी बात है। इसलिये महानुभावो ! परमात्माकी पूजा करना आपके लिए जरूरी है। परमात्मा की पूजा, जो वीतराग हैं, राग-द्वेष से रहित हैं, जिनका कोई रूप-आकृति नहीं है, उनकी पूजा हमें क्यों करनी चाहिए ? और कैसे करनी चाहिए ? यह मैं आपको अब बतलाऊंगा।

श्रावकों को प्रतिदिन परमात्मा की पूजा करके ही भोजन करना चाहिए। यह हमारा नियम होना चाहिए। यदि हमारी परमात्मा के ऊपर भक्ति-श्रद्धा है तो उसकी पूजा करना हमारे लिए जरुरी है।

फल कौन देता है ?

आप शायद यह प्रश्न करेंगे कि, वीतराग की पूजा करने से हमको क्या फायदा होनेवाला है ? । वे वीतराग हैं। न किसीको सुख देते हैं, न दुःख। तब हमें क्या फायदा ? ।

खूब याद रखिए, कोई भी क्रिया करने का आधार उस क्रिया के अन्दर नहीं। लेकिन हमारे अंतःकरण पर फल का आधार है। फल की प्राप्ति कोई लेता-देता नहीं, लेकिन हमारे अंतःकरण से ही उत्पन्न होती है। अंतःकरण जितना भक्तियुक्त एवं पवित्र होगा, हमको फलकी प्राप्ति उसी अनुपातसे होगी। आप दान करते हैं। चाहे आप हजारों रुपया का दान करें, चाहे एक रोटी के टुकडे का दान कर। लेकिन जिस को दान किया गया है, उसने आपको क्या दिया ? । तीन दिनका भूखा भिखारी

आपके आंगन में खड़ा है। उसको देखकर आपके दिलमें दयाका भाव जाग्रत होता है और आप उसे खाने को रोटी देते हैं। बस, यह शुभ भावना ही आपके पुण्य-बन्ध की हेतुभूत होती है। रोटी तो गौण वस्तु है। अगर आपके दिलमें दया नहीं, श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं, आप हजारों का-लाखों का दान करिए, सिवाय वाह वाह के आप के आत्मा को कोई लाभ नहीं। अतः परिणाम यह निकलता है कि, अपने कार्यों के फल का आधार दूसरे पर नहीं, लेकिन अपने अंतःकरण पर निर्भर है।

इसलिये वीतराग भगवान् कुछ लेते-देते नहीं, लेकिन वीतराग परमात्मा के दर्शन से हमारी भावनाएं शुद्ध होती हैं, हमारा अंतःकरण पवित्र होता है। बस यही फल है और यह कोई साधारण फल नहीं। परमात्मा की पूजासे चित्त प्रसन्न होता है और चित्त प्रसन्नता से सारे कष्ट नष्ट होजाते हैं।

आप भी मानते हैं कि, सोबत का असर होता है। आप जैसी सोबत करेंगे, वैसे होजायेंगे। आप जुआरी या व्यभिचारी मनुष्य की संगति करेंगे, आप जुआरी या व्यभिचारी हो जायेंगे। विद्वानों का संग करेंगे, आप विद्वान् बनेंगे। पहेलवानों की सोबत करेंगे, आपके दिलमें भी पहेलवान होने की इच्छा जाग्रत होगी। यह संगति का असर है। आपको वीतराग होना है,-कर्मों से मुक्त होना है, तो आप वीतराग की उपासना करें। आप वीतराग हो जायेंगे यह निश्चित है।

मूर्त्ति की आवश्यकता-

असली वस्तु अगर हमारे सामने नहीं है, तो उसकी पहिचान के लिए, उसकी आकृति एक बड़ा साधन है। साधु की पहिचान उसके भेखसे होती है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासी मनुष्यो को हम उनके पहिनावोंसे पहेचान सकते हैं। इसी तरह साक्षात् परमात्मा यहां नहीं होनेपर भी और मूर्ति साक्षात् उनकी प्रतिकृति नहीं होनेपर भी, शास्त्रों में वर्णित उनके रूप के अनुसार उनकी मूर्ति बनाकर उस मूर्तिमें उनका आरोप करके और वह मूर्ति हमारे परमात्मा के समान ही है। और उस मूर्तिसे हम वीतराग दशा को प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार एक भील के बच्चेने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उससे धनुष्यविद्या हांसिल की थी। बशर्ते कि हमारी उसमें ईश्वरबुद्धि हो। दुनियाके प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म और प्रत्येक मनुष्य मूर्ति को मानता है। विना मूर्तिको माने हमारा काम नहीं चल सकता। मुसलमान भाईयों को देखिए वे पश्चिम दिशा के तरफ मूंह करके नमाज पढ़ते हैं। पूर्वमें नहीं। पश्चिम दिशा के तरफ